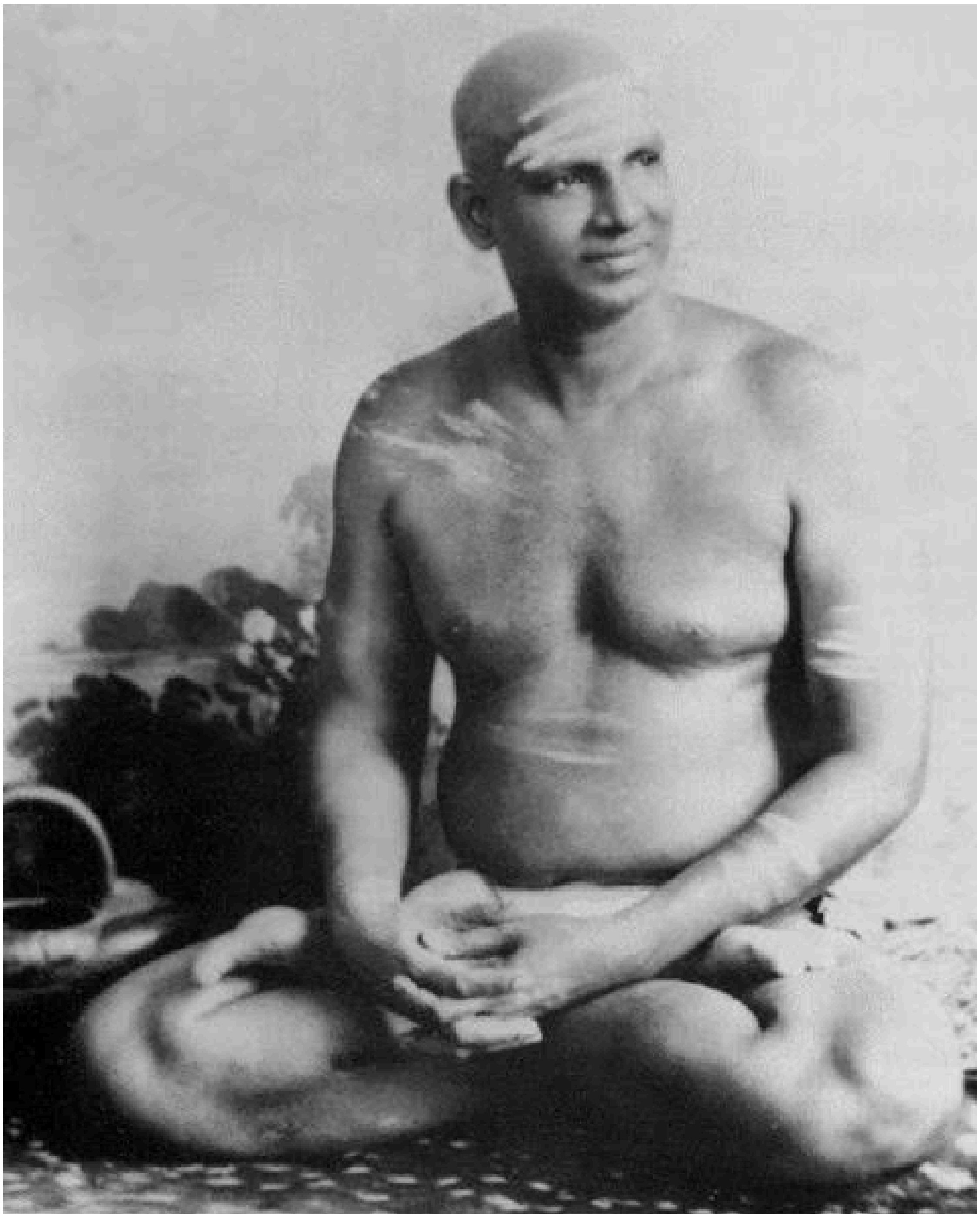
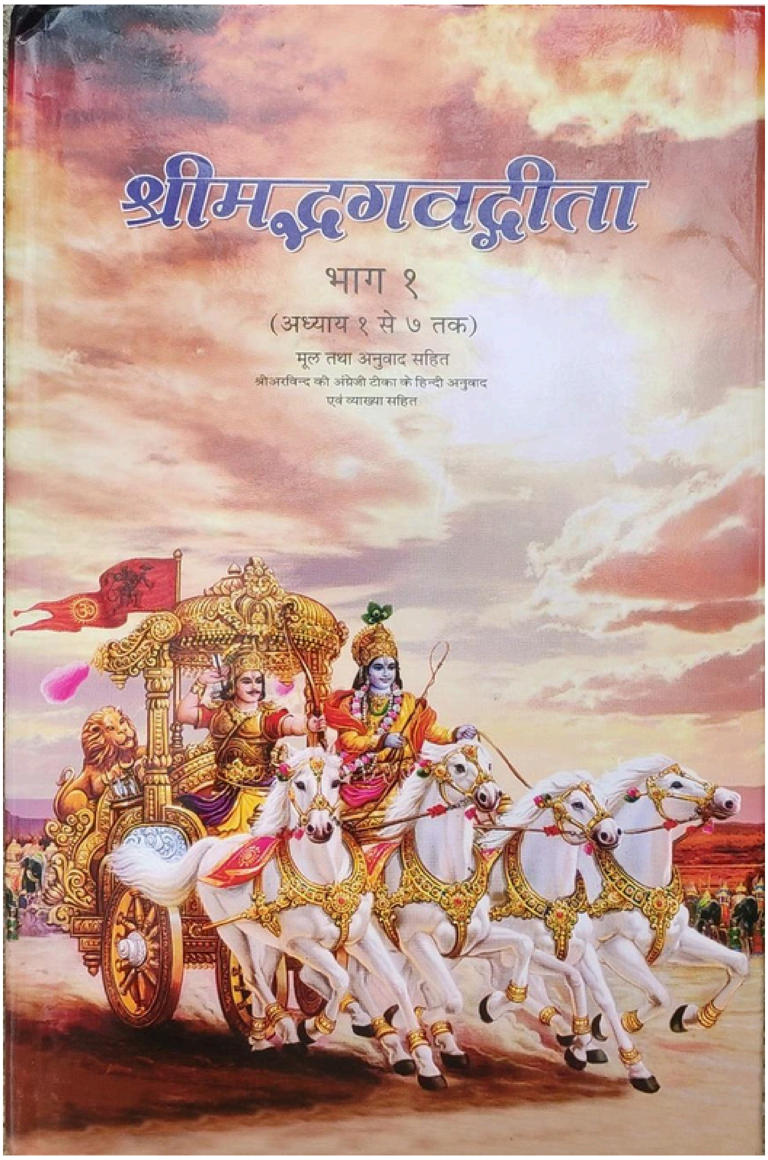



श्रीमद्भगवद्गीता
भाग १
(अध्याय १ से ७ तक)
मूल तथा अनुवाद सहित
श्रीअरविन्द की अंग्रेजी टीका के हिन्दी अनुवाद
एवं व्याख्या सहित

श्रीमद्भगवद्गीता

भाग १

अध्याय १ से ७ तक

श्रीमद्भगवद्गीता भाग

१

(अध्याय १ से ७ तक)

मूलतथाअनुवादसहित

श्रीअरववन्द कीअंग्रेजीटीकाकेहिन्दीअनुवादएवंव्याख्या सहित

अंग्रेजी टीका का संपादन

स्व. श्री परमेश्वरी प्रसाद खेतान

हिन्दी व्याख्या

चन्द्र प्रकाश खेतान

हिन्दी अनुवाद व व्याख्या संपादन

पंकज बगड़िया

श्रीअरववन्द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट

झुंझनू, राजस्थान

प्रकाशक

श्रीअरववन्दडिवाइनलाइफट्रस्ट

श्री अरववन्द हदव्य जीवन आश्रम

खेतान मिोल्ला

झून्झून-३३३००१, राजस्थान

URL: www.sadlec.org
www.resurgentindia.org
www.aurokart.com

मुरक :-

श्रीअरववन्द आश्रम प्रेस

पुदुचुचेरी

भगवान् ्श्रीकृष्ण को समवपति

जजनकी कृपा से िमें

श्रीअरववन्द व श्रीमाँके चरण कमलों की

शरण प्राप्त िुई िै।

संपादकीयनोट

यि पुस्तक स्वगीय श्री परमेश्वरी प्रसाद खेतान द्वारा संपाहदत अंग्रेजी पुस्तक 'द भगवद् गीता' के हिन्दी रूपांतर के आधार पर श्रीअरववन्द हदव्य जीवन शशक्षा केन्र में िुए अध्ययन सत्रों में साधकों के बीच िुई चचाि-पररचचाि, सिज अंतःस्फूणा तथा श्री चन्र प्रकाश जी खेतान के ननजी आध्याजममक अनुभवों आहद के माध्यम से िुई श्रीअरववन्द व श्रीमााँ के मूल शब्दों की व्याख्या का अशभलेख िै। सत्रों के ध्वननलेखों को भाषा में ढालनेऔर उनकी एडिहटंगं (संपादन), संशोधन आहद का काय िसुश्री सुमन शमिाव श्री दीपक तुलस्यान की सिायता से मेरे द्वारा ककया गया िै। अनेक स्थानों पर चचाि-पररचचाि के दौरान श्रीमााँ-श्रीअरववन्द तथा योगी श्रीकृष्णप्रेम के जजन संदभों का िवाला हदया गया था उन्िेंयिााँ मूल रूप से सजममशलत कर शलया गया िै जो कक पाठक के शलये पूरे ववषय को अधधक स्पष्ट, सुगम और प्रभावी बना देते िैं। व्याख्या को मूल से पृथक् करने के शलए नतरछे अक्षरों (italics) का प्रयोग ककया गया िै। प्रथम भाग में गीता के प्रथम सात अध्यायों को सजममशलत ककया गया िै और दूसूरे भाग में शेषे ग्यारि अध्यायों को सजममशलत ककया गया िै।

पुस्तक में प्रस्तुत गीता पर टीका श्रीमााँ की कृनतयों से शलये कुछ संदभों को छोड़कर शेषे श्रीअरववन्द के शब्दों में िै जजनकी संदभ िसूची अंत में दी जा रिी िै। ववचार में ननरंतरता बनाए रखनेके शलए कुछ स्थानों पर मूल संपादक श्री परमेश्वरी प्रसाद खेतान द्वारा कुछ शब्द या वाकयांश जोड़े गए िैं जजन्िेंवगााकार कोष्ठक में हदखाया गया िै।

मूल संस्कृत श्लोकों का अनुवाद तथा पुस्तक में हदये गये शीषकि श्रीअरववन्द की पुस्तक 'ऐसेज ऑन द गीता' पर आधाररत िैं। अध्यायों के परंपरागत शीषकि प्रमयेक अध्याय के अंत में हदये गये िैं। िाशसये में दी गई संख्याएाँ गीता के अध्याय व श्लोक संख्या को दशाातिी िैं।

जैसा कक श्रीमााँ ने किा "श्रीअरववन्द गीता के संदेश को उस मिान् आध्याजममक गनत का आधार मानतेिैं जो मानवजानत को अधधकाधधक उसकी मुजकत की ओर, अथात् िशमथ्यामव और अज्ञान से ननकलकर समय की ओर ले गई िै, और आगे भी ले जाएगी। अपने प्रथम प्राकट्य के समय से िी गीता का अनतववशाल आध्याजममक प्रभाव रिा िै; परंतुजो नवीन व्याख्या श्रीअरववन्द ने उसे प्रदान की िै, उसके साथ िी उसकी प्रभावशाशलता अमयधधक बढ़ गई िै और ननणाायिक बन गई िै।"

वष ि१९९२ में अपनेप्रथम संस्करण के समय से िि स्व. श्री परमेश्वरी प्रसाद खेतान द्वारा संपाहदत 'द भगवद्गीता' पुस्तक को पाठकों द्वारा खूब सरािा गया िै। श्रीअरववन्द की अद्भुत टीका के तीसरे संस्करण के ऊपर अब इस व्याख्या के आनेसे िम आशा करते िैं कक यि पुस्तक श्रीअरववन्द व श्रीमााँ के आलोक में गीता को समझने,े उसे व्याविाररक रूप से जीवन में उतारनेमें पाठकों के शलए और अधधक सिायक शसद्ध िोगी।

- पंकज बगड़िया

ववषय-सूची

प्रस्तावना
I. अन्वेषणकाभाव

...वेद, उपननषद् अथवा गीता जैसे ककसी प्राचीन सग्रंथ के अन्वेषण में आरंभ में िी ठीक-ठीक यि स्पष्ट कर देना बिुत उपयोगी िोगा कक िम ककस ववशशष्ट भाव से इस अन्वेषण में प्रवृत्त् िो रिे िैं और वास्तव में िम कया समझते िैं कक इससे वि कौनसी चीज प्राप्त करेंगे जो मानवजानत और उसके भववष्य के शलए मित्त्व की िोगी। सवप्रिथम, ननःसंदेि िम एक ऐसे परम समय की खोज कर रिे िैं जो एकमेव व सनातन िो, जजससे अन्य सभी समय प्रादुभूित िोतेिैं, जजसके प्रकाश से अन्य सभी समय ज्ञान की योजना में अपना उधचत स्थान, अपनी व्याख्या अथवा ननरूपण तथा अपना परस्पर संबंध पातेिैं। परंतुठीक इसी कारण वि परम समय ककसी एक तीक्ष्ण या एकांगी सूत्र के अंदर बंद निींककया जा सकता, कदाधचत् ्िी वि िमें समग्रता में तथा संपूण िआशय सहित ककसी एक दशनि में या ककसी एक सग्रंथ में, या कफर ककसी एक गुरु, मनीषी, पैगमबर या अवतार के मुख से पूण िरूप में तथा सदा के शलए पूणतिः अशभव्यकत िुआ शमले। और यहद उस समय के प्रनत िमारा दृजष्टकोण या भाव उसे छोड़कर अन्य प्रणाशलयों अथवा पद्धनतयों में ननहित समयों के असहिष्णु बहिष्कार को आवश्यक बताता िो तब भी इसका अथ िैि कक वि समय अपनी समग्रता में िमारे द्वारा खोजा निीं ंगया िै; कयोंकक जब िम आवेश में आकर अथवा तीक्ष्ण रूप से ननषेध करते िैं तो सीधे-सीधे इसका अथ िोता िै कक इस समय को समझने अथवा सरिाने में तथा इसे ननरूवपत करने ेमें िम समथ िनिीं। दूसरे, यद्यवप यि समय एकमेव तथा सनातन िै, तो भी यि अपने-आप को काल में और मनुष्य की मन-बुद्धध द्वारा अशभव्यकत करता िै; अतः प्रमयेक सग्रंथ में आवश्यक रूप से दो तत्त्व िोतेिैं, एक अस्थायी या सामनयक, नश्वर तथा उस देश और काल ववशेषे के ववचारों से संबद्ध जजसमें वि उमपन्न िुआ था, और दूसरा तत्त्व िोता िै सनातन व अववनश्वर तथा सभी कालों व देशों में प्रयोज्य या व्यवििाय।ि इसके अनतररकत परम समय की अशभव्यजकत अथवा वणनि में उसे जो वतमिान रूप हदया जाता िै, जजस पद्धनत तथा योजना से, जजस ताजत्त्वक व बौद्धधक साचेँ में ढालकर और जजस ववशशष्ट वाकय रचना का प्रयोग कर उसको अशभव्यजकत की जाती िै वे सब अधधकांशतः काल के पररवतनिों के अधीन िोतेिैं और इस कारण (कालांतर से) वैसी िी शजकत निींरख पाते; कयोंकक मानव-बुद्धध सदा अपने-आप में बदलाव लाती रिती िै; ननरंतर िी ववभाजन करती और संयोजन करती िुई यि ननरंतर िी अपने ववभाजनों को बदलनेऔर अपनेसमन्वयों को नए िम से रखने को बाध्य िोती िै; यि नवीन वाकय-रचनाओं अथवा अशभव्यजकतयों तथा प्रतीकों िेतुपुरातन का मयाग करती जाती िै, या कफर यहद वि पुरातन प्रयोगों का पुनः उपयोग करती भी िै तो भी उसके संकेताथ िया गूढाथ िको या कम-से-कम उसकी वास्तववक अंतवस्तिु तथा अथि–संगनतयों को इस प्रकार इतना बदल देती िै कक िम इस प्रकार की प्राचीन पुस्तक को पढ़ते समय इस ववषय में कभी भी सवथिा सुननजश्चत निीं िो सकतेकक उसे िम उसी आशय और भाव में समझ पा रिे िैं जैसा आशय व भाव वि पुस्तक अपनेसमकालीन

लोगों के शलए रखती थी। अतः ऐसे सग्रंथ में जो तत्त्व धचरंतन मित्त्व का िै वि वि तत्त्व िै जो सावलिौककक िोने ेके साथ िी अनुभूत ककया गया िो, जीया गया िो और बौद्धधक दृजष्ट की अपेक्षा उच्चतर दृजष्ट से देखा गया िो।

भगवान् ्का पूण िसमय तो कभी अशभव्यकत ककया जा िी निींसकता। इसशलए जब यि अशभव्यजकत में आता िै तो सीशमत िो जाता िै। कोई अनुभव, चािे वि ककतना भी गिरा कयों न िो, बिुत आन्तराजममक जगत् ्का िी कयों न िो, तो भी उसके शलए िम यि निींकि सकते कक वि चरम अनुभव िै। अवश्य िी वि बिुत गंभीर िो सकता िै, समय िो सकता िै। पिली चीज तो यि िै कक भगवान् ्के समय की पूण िअशभव्यंजना िो िी निींसकती। परंतु जगज्जननी ऐसी िी असंभव चीज को साधधत करनेका प्रयमन कर रिी िैं अन्यथा ये ऐसे ब्रह्माण्ि अशभव्यजकत में आते िी निीं। यहद व्यजकत का उस परम् ्का अनुभव बिुत गिन भी िो, तो ककसी अथ िमें वि उसे समझ तो सकता िै, पर जब वि उसकी अशभव्यजकत करना चािता िै तो जो मानशसक चेतना िै, जो बुद्धध िै, उसमें वि पाता िै कक वास्तव में इसे समुधचत रूप से अशभव्यकत निीं ककया जा सकता। िमारे वैहदक ऋवषयों ने पाया कक तकिबुद्धध की भाषा में इसे अशभव्यकत करना संभव निीं िै। इसकी अशभव्यजकत के शलए प्रतीकाममक भाषा को िी उन्िोंनेसबसे अच्छा माध्यम पाया। यहद व्यजकत अंतबोधाममक चेतना में िो तो वे प्रतीक उसके शलए जीववत-जागृत िोंगे, सजीव िोंगे। उसके शलए वे कोई मृत पयायिवाची निीं ंिोंगे, जैसे कक एक घोड़ा का अथ ि अभीप्सा से लगा शलया जाए, या कफर नदी का अथ िचेतना से लगा शलया जाए। ऐसे प्रतीकों की भाषा में िम उस समय को थोड़ा-बिुत अशभव्यकत कर सकते िैं। वेदों में जो अशभव्यजकत िुई िै वि इसी प्रकार की िै। परंतु अब चूंकक िम उन प्रतीकों के पीछे के गूढ़ाथ ितक निीं जा पाते इसशलए उनमें ननहित समय िमारे शलए अगम िो गया िै। उपननषदों में उसे कुछ अधधक मानशसक भाषा में अशभव्यकत ककया गया िै, गीता उनसे भी अधधक मानशसक भाषा में उसका ननरूपण कर रिी िै। पर यिााँ भी जो ननरूपण-पद्धनत िै, जो प्रतीक प्रयोग में लाए गए िैं, वे उस समय अशभव्यजकत के शलए जो उधचत मिसूस िुए उस अनुसार प्रयोग में लाए गए िैं। परंतु यि सब िोने के बावजूद भी जब उस समय की अशभव्यजकत िोती िै, तब यहद िममें क्षमता िो, अंतज्ञानि िो, आंतररक समझ िो तो िम शब्दों के परे भी उस समय को पकड़ सकते िैं, ग्रिण कर सकते िैं। तब शब्द िमारे शलए केवल एक पारदशी पदाि-मात्र रि जाते िैं। इसी कारण िमारे ऋवषयों ने जजस प्रकार की शब्दाशभव्यजकत की िै, जजस रीनत से उन्िोंने उस समय की अशभव्यजकत की िै वि िमें उस समय तक पिुाँचने ेमें अधधक रोकती निीं िै और िमें उस समय के दशनि िो जाते िैं। जजस पुस्तक में वि पदाि बिुत झीना िोता िै, पारदशी िोता िै उसमें उस समय को देखना अधधक आसान िोता िै। और गीता ऐसी िी पुस्तकों में से एक िै जजसमें उस समय की अशभव्यजकत बिुत अच्छी तरि से िुई िै और आवरण बिुत िी कम िै, इसशलए यि शाश्वत रिती िै कयोंकक कोई भी मनुष्य जो थोड़ी-बिुत भी गिराई में जस्थत िै उसके शलए इसमें से कुछ ग्रिण करना अधधक आसान िै। यहद कोई अधधक गिराई में ननवास न भी कर रिा िो तो भी वि इससे इतना तो अवश्य िी ग्रिण कर सकेगा जो उसके शलए उपयोगी िोगा। इसशलए गीता की यि ववशशष्टता िै कक इसमें सबके शलए कुछ-न-कुछ अवश्य िी शमल जाता िै। यि जो शाजब्दक अशभव्यजकत का बािरी तत्त्व िै उसी पर अधधक आग्रि रखने की अपेक्षा िम उससे आगे जा सकते िैं। ऐसा भी संभव िै कक गीता जो बता रिी िै िम उससे शुरू करें और उससे भी परे चले जाएाँ।

श्रीअरववन्द की 'एसेज ऑन द गीता' की सारी टीका यिी तो दशातिी िै। ऐसा संभव िै कक गीतोपदेश में
जजन चीजों के बारे में स्वयं श्रीकृष्ण भी बोलनेमें सचेतन न रिे िों, चूंकक तब वे योगारूढ़ थे और उनके द्वारा वि
उपदेश प्रवाहित िो रिा था, उसे भी श्रीअरववन्द अब सामने ला रिे िों। ऐसा निीं ंिै कक जो समय उसमें ननहित िैं
वे
उस अशभव्यजकत से सीशमत िैं। िम उससे आगे जा सकते िैं, ककतना भी आगे जा सकते िैं। वेदों की वववेचना
में
यि संभव िै कक वैहदक ऋवष जजतना समझते थे िम उससे भी आगे जा सकतेिैं कयोंकक आखखर यिी तो इस समय
की ववलक्षणता िै। िमारी चेतना के द्वारा यि काम ककया जाना संभव िै। इसशलए ऐसी पुस्तकें अपने-आप में
आध्याजममक ऊजिा-स्रोत के समान िोती िैं। जजस प्रकार धचत्र, धचत्रकाररयाँ, स्थापमय आहद भी ऊजिा-स्रोत िो
सकतेिैं जो ककसी पात्र के समक्ष ककसी गिन अंतदिशनि को प्रकट कर सकतेिैं और आध्याजममक ऊजिा के संचार का
माध्यम बन सकतेिैं, उसी प्रकार ये सद्ग्रंथ िैं। गीता भी इसी प्रकार की एक पुस्तक िै। इसशलए श्रीअरववन्द
किते रिे िैं कक यि जानने ेका मित्त्व कम िै कक तामकाशलक लोगों ने इसे ककस प्रकार समझा था। िमारे शलए
आवश्यक यि िै कक िम स्वयंइसे जानें और साथ िी यि जानें कक इसे अशभव्यकत कैसे करें ताकक अधधक-से-
अधधक लोग उससे जुिकर, इसके ज्ञान पर सवार िोकर उत्तरोत्तर आरोिण कर सकें। इसी प्रयोजन से श्रीअरववन्द
ने 'गीता प्रबंध' शलखी। गीता में यहद उन्िें वि सूत्र न शमला िोता, प्रचुर रूप से वि शाश्वत् ्तत्त्व न शमला िोता, जो
आज भी उतना िी नूतन तथा समय िै - चूँकक गीता की नवीनता जजतनी अपनी शुरुआत में थी उतनी िी आज भी
िैतो वे किते िैं कक इसमें वे अपना समय नष्ट निीं ंकरते। जो भी भगवान् ्के और जगत् ्के रिस्य को जानना
चािता िै वि गीता को अनदेखा निीं ंकर सकता। सभी वाद-वववाहदयों की इस ववषय में मत-शभन्नता िै कक
श्रीकृष्ण के कथन का तामपय िकया था। परन्तु इसकी बजाय देखना तो यि चाहिये कक आज के समय में उसका
अथ िकया िो सकता िै। अशभव्यजकत में तो वि समय पूणतिः आ िी निींसकता। और यहद किींककसी ने उसे
अशभव्यकत ककया भी िो तो वि अंनतम निींिो सकता। िमेशा िी व्यजकत उससे अधधक ऊँचाई पर जा सकता िै
तथा उसी चीज की अशभव्यजकत को और अधधक समृद्ध बना सकता िै। जैसे कक बुद्ध की प्रनतमा के चेिरे के भाव
को देखकर योगी श्रीकृष्णप्रेम ने किा कक 'अवश्य िी वैसा भाव किीं ंववद्यमान िोना चाहिये अन्यथा वि
अशभव्यकत िी कैसे िो पाता।' आवश्यक निीं ंकक स्वयंवि मूनतकिार भी उस भाव के ववषय में सचेतन रिा िो
परंतु
अवश्य िी कोई दूसूरी शजकत उसके िाथों को काम में ले रिी थी कयोंकक (जैसा कक श्रीअरववन्द अपने'साववत्री'
मिाकाव्य में शलखते िैं) 'अदशकि िाथ अदृष्ट की आज्ञा पालन करते िैं' (p. 460)। बुद्ध के चेिरे पर जो करुणा का
भाव अशभव्यकत िुआ िै, उनकी आखाँों में जो शांनत िै, वि किीं ंन किीं तो अवश्य िी ववद्यमान िै और उन्िें
उसी
की खोज करनी िै। उन्िोंने किा कक उस मूनत िने उनके समक्ष जजन चीजों को प्रकट ककया वैसा तो कदाधचत् ्वे
पाली में सारे बौद्ध साहिमय का अध्ययन कर के भी निींसमझे िोंगे।' अतः परमाममा का समय एक ऐसी
ववलक्षण चीज िै जजस पर ककसी का कोई एकाधधकार निीं। अपने-अपनेदृजष्टकोण से सभी उसे शभन्न-शभन्न
रूप से समझते िैं। उसे िम अपनेमन में, प्राण में, भौनतक सत्ता में जजस भी प्रकार से समझेंगे उसी प्रकार से उसे
अशभव्यकत करेंगे। और चूंकक उस वैयजकतक अशभव्यजकत का इतना भारी मूल्य िै इसीशलए सृजृष्ट इतनी जहटल
िै। यहद मनुष्य, प्राणी, पशु–पक्षी, पमथर आहद सभी अपने-अपने तरीके से परमाममा के ननरपेक्ष समय को
अशभव्यकत न कर रिे िोतेतो वे अजस्तमव में आ िी निीं ंसकतेथे। असमय का कोई अजस्तमव निींिोता कयोंकक

असमय का अजस्तमवमान िोना तो एक अताजत्त्वक बात िै। सभी चीजें समय के ककसी-न-ककसी पिलू को अवश्य

िी

अशभव्यकत करती िैं। एक बार जब यहद िमें इस बात का बोध िो जाए कक सभी अपने-अपनेतरीके से उस समय को अशभव्यकत कर रिे िैं, तो िम घोर संकीणतिा से कुछ बच सकतिें और चीजों के प्रनत एक अधधक सहिष्णु और सिानुभूनतपूण िदृजष्टकोण अपना सकतिें। प्रस्तुत प्रस्तावना में श्रीअरववन्द ने इस त्रबंदु ुको बिुत सुंदर ढंग से रखा िै कक सग्रंथों के प्रनत उधचत दृजष्टकोण कया िोना चाहिये। अन्यथा व्यजकत इनके ववषय में अंध श्रद्धा रखने का दककयानूसी दृजष्टकोण अपना लेता िै और िठपूवकि इस पर आग्रि करने लगता िै कक पुस्तक में इसने या उसनेवैसी िी बात किी िै जैसा उसने स्वयं समझा िै। परंतु इसमें व्यजकत को समझना िोगा कक समस्या उस किी िुई बात में निीं अवपतुवि उसे जजस रूप में समझता िै उसमें िै, कयोंकक जो किा गया िै उसके बारे में वि ननजश्चत कैसे िो सकता िै कक वि उसे वैसा िी समझ रिा िै। और कफर केवल विी अजन्तम समय िो यि भी आवश्यक निींिै।

अतः गीता के उस त्रबल्कुल सटीक ताजत्त्वक गूढाथ िको वैसे िी जानना जैसा कक उस समय के लोगों द्वारा समझा गया था, - यहद ऐसा सिी-सिी करना संभव भी िोता - तो भी इसे म ैंगौण मित्त्व का मानता िूूँ। और यि संभव भी निीं िै जैसा कक गीता पर शलखे गए और अभी भी शलखे जा रिे मूलभाष्यों की परस्पर मत-शभन्नत्रता से स्पष्ट िो जाता िै; कयोंकक ये सभी एक दूसूरे से असिमत िोने में िी एकमत िैं, प्रमयेक िी गीता में अपनी िी तत्त्वज्ञान की पद्धनत तथा धाशमकि ववचारधारा खोज ननकालता िै और यिा ाँतक कक अमयंत श्रमसाध्य ननष्पक्ष ववद्वत्ता तथा भारतीय दशनि के ऐनतिाशसक ववकासिम के ववषय में अमयंत प्रकाशमान शसद्धांत भी िमें इस अपररिाय िभूल से निीं ंबचा सकते। परंतु लाभकारी रूप से जो िम कर सकतिें वि यि िै कक गीता में ननहित उन यथाथ िजीवंत समयों को खोजें, भले िी उनके तत्त्वववज्ञानसंबंधी रूप जो भी िों, और इसमें से वि तत्त्व ननकालें जो िमें अथवा व्यापक रूप से संसार को सिायता पिुाँचा सकता िै और कफर यथासंभव ऐसे अमयंत स्वाभाववक तथा जीवंत रूप व शब्द-अशभव्यजकत में उसे व्यकत करें जो िमारी वतमिान मनुष्यजानत की मानशसकता के अनुरूप तथा उसकी आध्याजममक आवश्यकताओं की पूनत िमें सिायक िो... यहद िम इस मिान् ्सग्रंथ के भाव में अपने-आप को तल्लीन कर दें और ववशेषेकर यहद िमनेउस भाव में जीने का प्रयास ककया िो तो िम उसके अंदर उतना यथाथ िसमय प्राप्त करने ेके शलए आश्वस्त िो सकते िैं जजतने को ग्रिण करने के िम पात्र िैं और साथ िी व्यजकतगत तौर पर इससे िम उतना आध्याजममक प्रभाव और वास्तववक सिायता प्राप्त कर सकते िैं जजतना इसमें से प्राप्त करना िमारे शलए अशभप्रेेत था। और, अंततः, यिी देने के शलए तो ये सग्रंथ शलखे गए थे;े शेषे सब केवल शास्त्रीय वाद-वववाद और धाशमकि मत-मतांतर िै। केवल वे िी सद्ग्रंथ, धम ितथा दशनि मनुष्यजानत के शलए जीवंत मित्त्व के बने रिते िैं जो कक इस प्रकार सतत् ्िी नवीकृत िो सकतिीं, पुनः जीये जा सकते िों, तथा उनमें ननहित सनातन समय के तत्त्व को सतत् ्िी नए रूपों में गढ़कर एक ववकसनशील मनुष्यजानत के अंतःववचार तथा आध्याजममक अनुभव में ववकशसत ककया जा सकता िो। शेषे सब अतीत के स्मारकों के रूप में बचे ेरितिें परंतु उनमें भववष्य के शलए कोई यथाथ िशजकत या सजीव प्ेरेरणा निीं ंिोती।

इस अंश में जो नया त्रबंदु िु वि यि िै कक, िमारे वैहदक ऋवषयों ने जजन प्रतीकों में अशभव्यजकत की िै वे प्रतीक ननत-नूतन, धचन्मय और जीवंत िैं। उन प्रतीकों की व्याख्या िम अपनी आवश्यकताओं के अनुसार कर सकतिैं और उस रूप में उन्िें समझ सकते िैं। पर जब वि अशभव्यजकत ऐसे शब्दों में, ऐसे प्रतीकों में िोती िै जो बिुत अधूरे िैं, जैसे कक अमूत िमानशसक भाषा या मानशसक प्रतीक, तब कफर समय के साथ वे प्रासंधगक निीं रि पाते, और अपनेको देश-काल के अनुसार नमनीय न रि पाने के कारण क्षखणक या अस्थायी ववषय बनकर रि जाते िैं। ककतनी िी बौद्धधक पुस्तकें आती िैं जो कुछ समय प्रचलन में रिने के बाद प्रचलन से बािर िो जाती िैं। कुछ में यहद कुछ अधधक अंतवस्तु िोती िै तो वे कुछ अधधक समय तक हटक जाती िैं। जिा ाँसमय को शजकतशाली रूप से अशभव्यकत ककया िुआ निीं िोता, जीवंत प्रतीक की भाषा के अन्दर यहद समय की संवेदनशील अशभव्यजकत निीं िुई िोती या कफर यहद व्यजकत के अन्दर धमाधांता िै जजस कारण वि उस पर आवश्यकता से ज्यादा या कम मित्त्व देता िै तो वे अशभव्यजकतयााँ अपना मूल्य खो बैठती िैं, और ऐसी पुस्तकें अपनेबनेरिने की शजकत खो बैठती िैं। िो सकता िै व्यजकत ने समय के कुछ अंश को देखा िो पर उसकी अशभव्यजकत बिी भााँनत िोने के कारण वि ननरंतर निीं रि पाती। परंतु इस सब के साथ िी साथ यि भी एक तथ्य िै कक जजन समयों को बिुत गिराई में देखा जाता िै वे अपनी अशभव्यजकत की शजकत अपनेसाथ ले आते िैं, जैसा कक गीता में िुआ िै, वेदों में िुआ िै। ये पुस्तकें सदा नूतन बनी रिती िैं। कयोंकक उनके अनुभव को सदा िी अनुभूनत में पुनः जीया जा सकता िै। और कफर गीता के कुछ तत्त्व जो देश-काल मयाहिदत प्रतीत िोते िैं - जैसे कक जानत-प्रथा, यज्ञ-अनुष्ठान आहद तामकाशलक ववषय- उन्िें भी श्रीअरववन्द कितिैं कक जजस ननहित गिरे अथ िमें गीता उनका प्रयोग करती िै उस रूप में ले शलया जाए तो उनके अथ िकी वि सीशमतता भी लुप्त िो जाती िै। जैसे कक गीता में यज्ञ का जो ववचार अंतननहिित िै तीसरे अध्याय में तो ऐसा प्रतीत िोता िै कक वि त्रबल्कुल िी अपूण िऔर अपररपकव िै, मानो वि समय-ववशेषे और समुदाय ववशेषे के शलए िी प्रयोजनीय िो, परन्तुचौथे अध्याय में गीता ने उस सारी सीशमतता को यि कि कर तोि हदया कक ब्रह्म िी यज्ञ िै, ब्रह्म िी अभीप्सा िै, सब कम िब्रह्म िी िैं। इसशलए िर प्रतीक को यहद िम गिराई में देखें तो वि उस देश और काल से सीशमत निींरिता अवपतु ुशाश्वत रूप ग्रिण कर लेता िै। अतः गीता में ऐसा बिुत िी कम िै जो िमें पररसीशमत करता िो। इसीशलए यि बिुत मूल्यवान् ्िै।

(iv.24)

गीता में ऐसा ववषय बिुत िी कम िै जो देश से सीशमत और सामनयक अथवा अस्थायी िो और इसका भाव और ववचारधारा इतनी उदार, गंभीर और व्यापक िै कक उस थोिे बिुत को भी सरलतापूवकि, इसकी शशक्षा का जरा भी िास या अनतिम ककये त्रबना, व्यापक रूप हदया जा सकता िै; यिी निीं, उसे देश या काल से संबद्ध रखने की बजाय ऐसा व्यापक रूप देनेपर उसकी शशक्षा की गिराई, उसके समय और उसकी शजकत में वृद्धध िोती िै। वास्तव में, स्वयंगीता िी बारंबार उस व्यापक रूप का संकेत करती िै जो ककसी ववचार को हदया जा सकता िै भले िी वि ववचार अपने-आप में देशकालमयाहिदत िो। जैसे कक 'यज्ञ' संबंधी प्राचीन भारतीय ववधध और ववचार को गीता देवताओं और मनुष्यों के पारस्पररक आदान-प्रदानस्वरूप मानती िै - जबकक यि ववधध और भाव स्वयं भारतवष िमें िी दीघ िकाल से लगभग लुप्त िो गए िैं और सवसिाधारण मानव-मन को और अधधक यथाथ िप्रतीत निीं िोते; परन्तु गीता में इस 'यज्ञ' शब्द को िम इतना संपूण िरूप से सूक्ष्म, आलंकाररक और प्रतीकाममक अथ ि

हदया गया पार्तिं तथा देवता-संबंधी धारणा देशकालमयादिा और ककंवदंती से न के बराबर ि◌ी बाँधी ि◌ुई अथवा इतनी मुकत और इतनी पूण ि◌रूप से सावभिौशमक और दाशनिनक ि◌ै कक ि◌म यज्ञ और देवता दोनों को मनोववज्ञान और प्रकृनत के साधारण ववधान के व्याविाररक तथ्य के रूप में सिज ि◌ी ग्रिण कर सकर्तिं और इर्न्िं प्राखणयों में परस्पर ि◌ोनेवाले आदान-प्रदान, एक-दूसूरे के हिताथ ि◌िोनेवाले बशलदान और आममदान के ववषय में जो आधुननक ववचार ि◌ैं, उन पर इस तरि प्रयुकत कर सकर्तिं कक इनके अथ ि◌और भी अधधक उदार और गमभीर ि◌ो जाएँ, ये अधधक आध्याजमिमक स्वरूप वाले और गंभीरतर तथा अधधक ववस्तीण ि◌समय के प्रकाश से प्रकाशशत ि◌ो जाएँ। इसी प्रकार शास्त्र-सममत कम ि◌करनेका ववचार, समाज की चातुवण्यि ि◌व्यवस्था, चारों वणों की परस्पर जस्थनत का, या दूसूरों की तुलना में शूरूों और जस्त्रयों के आध्याजमिमक अनधधकार का उल्लेख, ये सब प्रथम दृष्ट्या देश या काल-ववशेषे से संबद्ध प्रतीत ि◌ोर्तिं और यहद इनके शाजब्दक अथ ि◌पर ि◌ी अनतशय बल हदया जाए तो कम-से-कम ये गीता की शशक्षा को उतने अंश में संकीण ि◌बना देते ि◌ैं, गीता को उसके उपदेश की व्यापकता और आध्याजमिमक गंभीरता से वंधचत कर देते ि◌ैं और, अधधक व्यापक रूप से, समस्त मनुष्य जानत के शलए उसकी प्रामाखणकता को सीशमत कर देते ि◌ैं। परन्तु यहद ि◌म इसके पीछे के आन्तररक भाव और अथ ि◌को देखें, न कक केवल देश-ववशशष्ट नाम और काल-ववशशष्ट रूप को, तो ि◌म देखते ि◌ैं कक यिाँभी अथ ि◌गिरा और यथाथ ि◌ि◌ै और इसका आन्तररक भाव दाशनिनक, आध्याजमिमक और सावभिौशमक ि◌ै। शास्त्र शब्द से प्रतीत ि◌ोता ि◌ै कक गीता का तामपय ि◌उस ववधान से ि◌ै जजससे मनुष्य जानत ने स्वयंके ऊपर उस प्राकृत असंस्कृत मनुष्य के ननरे अिंभावापन्न कम ि◌के स्थान पर, तथा अपनी वासनाओं की तृजृप्त को ि◌ी अपनेजीवन का मानक और उद्देश्य बना लेने की प्रवृवृर्त् पर एक अंकुश के रूप में आरोवपत ककया ि◌ै। ऐसे ि◌ी ि◌म देखर्तिं कक समाज को चातुवण्यि ि◌व्यवस्था भी एक आध्याजमिमक तथ्य का ि◌ी मिज एक स्थूल रूप ि◌ै, जो स्वयंउस स्थूल रूप से स्वतंत्र ि◌ै; यि स्वभाव ननयत कम ि◌की उस अवधारणा पर आधश्रत ि◌ै जजसमें कक कम,ि◌ उस कतिा के स्वभाव की समयक् ि◌मानुगत अशभव्यजकत के अनुसार ननष्पाहदत ि◌ों, और वि स्वभाव नैसधगकि गुण और आममाशभव्यजकतकारी वृवृर्त् के अनुसार उसके जीवन की धारा और क्षेत्र को ननधारिरत करे। चूँकक गीता अपनेअमयंत स्थाननक और सामनयक दृष्टांतों को इसी (गंभीर और व्यापक) भाव से प्रस्तुत या ववकशसत करती ि◌ै, अतः सवत्रि ि◌ी ि◌मारा इसी शसद्धांत का अनुसरण करना और सवत्रि ि◌ी उस गंभीरतर सामान्य समय को ढ़ूँढ़ना औधचमयपूण ि◌ि◌ी ि◌ोगा जो कक अवश्य ि◌ी उन सब प्रथम दृष्ट्या हदखने ◌ेमें स्थाननक और सामनयक बातों के पीछे नछपा ि◌ोता ि◌ै। कयोंकक ि◌म सदा ि◌ी ऐसा पाएँगे कक वि गंभीरतर समय और शसद्धांत धचंतंन के स्वभाव मात्र में ि◌ी तब भी ननहित ि◌ोता ि◌ै जब वि स्पष्ट शब्दों में व्यकत नििंककया गया ि◌ोता ि◌ै।

और न ि◌ी ि◌में उन दशनिसंबंधी मतों या धम ि◌संबंधी मान्यताओं के साथ अन्य ककसी भाव से व्यविार करना चाहिए, जो कक गीता में सामनयक दाशनिनक शब्दों के या धाशमकि प्रतीकों के प्रयोग के कारण प्रवेश कर जाते िैं या कफर ककसी प्रकार इससे संबद्ध ि◌ो गए ि◌ैं... न ि◌ी ि◌में उन मत-मतांतरों पर चचिाकरने ◌ेकी आवश्यकता ि◌ै जो गीता को ककसी धाशमकि संप्रदाय या परंपरा-ववशेषे का फल मानर्तिं। गीता का उद्गम जो भी रिा ि◌ो, परंतुइसका उपदेश सावभिौशमक अथवा व्यापक ि◌ै।

गीता की दाशनिनक पद्धनत, इसमें समय का जो व्यवस्थापनिम ि वि इसके उपदेश का वि भाग निीं ंि जो अमयंत मित्त्वपूण,ि गिन तथा धचरस्थायी िो; ककन्तु इसकी रचना का अधधकांश ववषय, इसके सांकेनतक और ममस्पिशी प्रधान ववचार जो इस ग्रंथ के जहटल सामंजस्य में वपरोये गये िैं, वे ेधचरंतन रूप से मूल्यवान् ्तथा प्रामाखणक िैं, कयोंकक, वे मिज एक दाशनिनक बुद्धध के चमकदार ववचार या चकक्त करनेवाली पररकल्पनाएँ निीं िैं,अवपतु आध्याजममक अनुभव के धचरस्थायी समय िैं, िमारी उच्चतम अध्याममपरक संभावनाओं के प्रमाणयोग्य तथ्य िैं, जजन्िें इस जगत् ्के रिस्य की ति तक पिुँचनेके प्रयास में कदावप उपेक्षक्षत निीं ंककया जा सकता। इसकी वववेचन पद्धनत जो भी िो, जैसा कक भाष्यकार प्रमाखणत करने की चेष्टा करते िैं, परंतु इसका गठन न तो ककसी दाशनिनक मत ववशेष का समथनि करने िेतु या कफर ककसी एक ववशशष्ट योग पद्धनत के दावों को िी मुख्य रूप से प्रनतपाहदत करने िेतु िुआ िै और न िी ऐसा करनेके शलए यि अशभप्रेत या ननयत िै। गीता की भाषा, ववचार की संरचना, ववववध ववचारों का इसमें संयोजन और उनका संतुलन, न तो ककसी सांप्रदानयक आचाय िि की मनोवृवत्त् से संबंध रखते िैं, और न िी वि ककसी ऐसे सख्त ववश्लेषणाममक तकिशास्त्री की प्रकृनत से जो समय के ककसी एक पिलू को काट-छाटँकर बाकी सबको अलग कर देनेकी प्रवृवत्त् रखती िो, अवपतु ुइसकी अपेक्षा इसमें तो ववचारों की एक ववस्तृत, तरंधगत और सवाशिलंगनकारी गनत िै जो एक ववशाल समन्वयाममक बुद्धध और सुसंपन्न समन्वयाममक अनुभूनत की प्रमयक्ष अशभव्यजकत िै। यि उन मिान् ्समन्वयों में से एक िै जजनकी सृजष्ट करनेमें भारत की आध्याजममकता उतनी िी समृद्ध रिी िै जजतनी कक ज्ञान की उन अमयंत प्रगाढ़ और अनन्य कियाओं तथा धाशमकि साक्षामकारों की सृजष्ट करने ेमें, जो परम एकाग्रता के साथ ककसी एक िी सूत्र को अथवा एक िी माग िको उसकी पराकाष्ठा तक अनुसरण करते िैं। । गीता की ववचारधारा] काटकर पृथक् पृथक् निीं ंकरती, अवपतु सामंजस्य और ऐकय साधधत करती िै।

गीता का ववचार अथवा शसद्धांत शुद्ध रूप से केवल अद्वैतवाद निीं िै यद्यवप इसकी दृजष्ट में एक िी अव्यय, ववशुद्ध, सनातन आममतत्त्व अखखल ब्रह्माण्ड की जस्थनत का आश्रय िै; न मायावाद िी िै यद्यवप यि सृष्ट जगत् ्में त्रत्रगुणाजममका प्रकृनत की सववव्यापी माया की चचाकिरती िै; न यि ववशशष्टाद्वैत िी िै यद्यवप यि उस एकमेवाद्ववतीय परब्रह्म में उसकी सनातन परा प्रकृनत को जस्थत बताती िै जो कक जीव के रूप में अशभव्यकत िोती िै और साथ िी (गीता) आध्याजममक चेतना की परम जस्थनत के रूप में परब्रह्म में लय की अपेक्षा उसमें ननवास करने ेपर िी अमयधधक बल देती िै; न यि सांख्य िी िै यद्यवप यि सृष्ट जगत् ्की व्याख्या प्रकृनत-पुरुष के द्वववध तत्त्व के द्वारा करती िै; न यि वैष्णव ईश्वरवाद िी िै यद्यवप यि पुराण प्रनतपाहदत श्रीववष्णु के िी अवतारस्वरूप श्रीकृष्ण को िमारे समक्ष परमाराध्य देवाधधदेव के रूप में ननरूवपत करती िै, और न िी इन भूतेश में जो कक जगमपनत तथा समस्त प्राखणयों के परम सखा िैं तथा उस अननदेश्य ननववशेष ब्रह्म में कोई ताजत्त्वक भेद करती िै और न िी उस ब्रह्म के पद में इन कृष्ण से कोई वास्तववक श्रेष्ठता को िी स्वीकार करती िै। गीता के पूव िउपननषदों में जैसा समन्वय िुआ िै वैसा िी गीता का समन्वय िै जो कक आध्याजममक िोने के साथ–ी-साथ बौद्धधक भी िै और इसशलए स्वाभाववक रूप से ऐसे ककसी भी अनुदार मत को पररवजजति कर देता िै जो इसकी सावलिौककक व्यापकता को क्षनत पिुँचाए। इसका उद्देश्य उन खण्डिनाममक भाष्यकारों के उद्देश्य से ठीक ववपरीत िै जजन्िोंने इस सद्ग्रंथ को सवाधिधक प्रामाखणक तीन वेदाजन्तक ग्रंथों में से एक के रूप में

प्रनतजष्ठत पाया और इसे स्वमत के मंनि तथा अन्य मतों और संप्रदायों के खण्नि के शलए शस्त्र के रूप में प्रयुकत करने ◌ेका प्रयास ककया। गीता कोई तकिशास्त्रीय युद्ध का अत्र निीं ि◌ै; यि एक ऐसा मिाद्वार ि◌ै जो समस्त आध्याजममक समय और अनुभूनत के जगत् ◌्की ओर खुलता ि◌ै और जो झााँकी यि ि◌में प्रदान करता ि◌ै वि उस परम हदव्य धाम के सभी क्षेत्रों को अपनेमें समाववष्ट कर लेती ि◌ै। गीता इन क्षेत्रों को योजनाबद्ध तो करती ि◌ै, पर किीं भी यि [एक से दूसूरे क्षेत्र को] ववजच्छन्न निींकरती, न ककसी प्रकार की दीवारें या घेरा खिा करती ि◌ै जो कक ि◌मारी दृजष्ट को पररुद्ध कर दे।

मानव-मन सदा आगे की ि◌ी ओर बढ़ता ि◌ै, अपनेदृजष्टकोण को बदलता तथा अपनेववचार के ववषयों को ववस्तृत करता ि◌ै, और इन पररवतनिों का पररणाम ि◌ोता ि◌ै धचंतंन की पुरातन प्रणाशलयों को अप्रचशलत या लुप्तप्राय बना देना अथवा, जब उन्िें सुरक्षक्षत रखा भी जाए तब भी, उन्िें ववस्तृत और संशोधधत करना तथा सूक्ष्मतया या प्रमयक्ष रूप में उनका मूल्य बदल देना। ककसी प्राचीन शसद्धान्त की प्राणवंतता उसी ि◌द तक ि◌ोती ि◌ै जजस ि◌द तक वि ऐसे पररवतनि के शलए स्वाभाववक रूप से अपने-आपको अनुकूल बना लेता ि◌ै; कयोंकक उसका अथ ि◌यि ि◌ोता ि◌ै कक उसके ववचार के रूप की सीमाएँ या अव्यवियतिाएँ जो भी रिी ि◌ों, कफर भी इसके अंततत्त्वि का समय, जीवंत दृजष्ट एवं अनुभूनत का समय, जजसके आधार पर इसकी प्रणाली का ननमाणि ि◌ुआ था, वि अब तक भी अक्षुण्ण ि◌ै और एक स्थायी समयता अथवा प्रामाखणकता तथा साथकिता रखता ि◌ै। गीता एक ऐसी पुस्तक ि◌ै जो असाधारण रूप से दीघ ि◌काल से बनी ि◌ुई ि◌ै और यि आज भी प्रायः उतनी ि◌ी नूतन ि◌ै और अपनेवास्तववक सार-तत्त्व में अभी भी त्रबल्कुल उतनी ि◌ी नवीन ि◌ै - कयोंकक इसे अनुभूनत में सदा ि◌ी पुनः साक्षात् ◌्ककया जा सकता ि◌ै जजतनी कक यि तब थी जब यि पिले-पिल मिाभारत में प्रकाशशत ि◌ुई थी या उसकी रूपरेखा के अंदर शलखी गयी थी। भारत में अभी भी यि उन मिान् ◌्शास्त्रों में से एक के रूप में स्वीकार की जाती ि◌ै जो अमयंत प्रामाखणक अथवा अधधकारपूण ि◌रूप से धाशमकि धचंतंन को ननयंत्रत्रत करते ि◌ैं और इसकी शशक्षा को भी, वि पूण ि◌रूप से स्वीकृत न ि◌ो तब भी, सभी संप्रदायों द्वारा उसे परम मूल्यवान् ◌्माना जाता ि◌ै। इसका प्रभाव केवल दशनिसंबंधी या ववद्याध्ययन संबंधी अथवा सैद्धांनतक ि◌ी निीं ◌ंि◌ै अवपतु प्रमयक्ष एवं जीवंत ि◌ै, एक ऐसा प्रभाव जो धचंतंन और कम ि◌दोनों पर ि◌ो, और इसके ववचार वास्तववक रूप से एक जानत और संस्कृनत के पुनरुज्जीवन एवं ◌ंनव-जागरण

केएकप्रभावकनकेरूपमें काय ि◌कर रिे ि◌ैं। यिा ◌ाँतक कक ि◌ाल ि◌ी में एक मिान् ◌्वाणी [व्यजकतमव] द्वारा यि भी किा गया ि◌ै कक आध्याजममक जीवन के शलए ि◌में जजन ककन्िीं भी आध्याजममक समयों की आवश्यकता ि◌ै वे सभी गीता में प्राप्त ि◌ो सकतिैं। उस उजकत को अमयन्त शाजब्दक अथ ि◌में लेना इस ग्रंथ के ववषय में अंध-ववश्वास को प्रोमसाहित करना ि◌ोगा। आममा का समय अनंत ि◌ै और उसे इस प्रकार से पररसीशमत निीं ककया जा सकता। तथावप यि किा जा सकता ि◌ै कक अधधकतर प्रधान सूत्र इसमें ववद्यमान ि◌ैं और आध्याजममक अनुभूनत एवं उपलजब्ध के समस्त परवती ववकास के ि◌ो तुिए भी ि◌म अब भी एक ववशाल अनुपे्रेरणा एवं मागदिशनि ि◌ेतु इसकी ओर मुि सकतिैं।

अतः, गीता के इस अध्ययन में ि◌मारा उद्देश्य इसके ववचारों की पांडिमयपूण ि◌या शास्त्रीय आलोचना अथवा इसके दाशनिनक शसद्धांत को आममतत्त्वसंबंधी अनुसंधान के इनतिास के अन्दर ले आना न ि◌ोगा, न ि◌ी

मि इसके साथ ववश्लेषणाममक तकिशास्त्री की रीनत से िी व्यविार करेंगे। िम इसके पास सियता और प्रकाश पाने के शलये आते िैं और इसमें िमारा उद्देश्य िोना चाहिए कक इसमें से इसका वि सारभूत और जीवंत संदेश खोज ननकालें, जजससे मनुष्य जानत को अपनी पूणतिा और अपनी उच्चतम आध्याजममक भववतव्यता के शलए ग्रिण करना िै।

॥. उपदेश का सारमम िै

यिा ाँएक ऐसी सुस्पष्ट धारणा की ववशेषे रूप से आवश्यकता िै जो गीता के सारभूत ववचार, उसकी शशक्षा के केंरीय मम िको पक़िे रिे, कयोंकक अपनेसमृद्ध और बिुमुखी ववचार से संपन्न िोने के कारण तथा आध्याजममक जीवन के नानाववध पिलुओंका समाशलंगंन करने तथा प्रनतपादन की धाराप्रविा घुमावदार गनत से युकत िोने के कारण, अन्य सद्ग्रंथों की अपेक्षा अधधक रूप में, गीता अपने-आप को एक पक्षपातपूण िबुद्धध से पैदा िुए एकपक्षीय भ्ांत ननरूपण के प्रनत खोल देती िै।.....

इस प्रकार, ऐसे लोग िैं जजनके अनुसार गीता कम–योग का प्रनतपादन त्रबल्कुल भी निीं ंकरती, अवपतु जीवन को और सब कमों को संन्यास के शलये तैयार करनेवाली एक साधना का उपदेश करती िै: ननयत कमों को अथवा जो कोई कम िसामने आ प़िे ेउसका तटस्थ अथवा उदासीन ननष्पादन िी साधन या साधना िै; जीवन और सब कमों से अंततः संन्यास िी एकमात्र वास्तववक लक्ष्य िै। गीता से िी उद्धरण लेकर और गीता की िी धचंतन-पद्धनत में यत्र-तत्र ववशशष्ट रीनत से बल देकर इस मत को प्रमाखणत करना सवथिा सरल िो जाता िै, ववशेषेकर तब जब संन्यास जैसे शब्द के उस ववशेषे प्रयोग की ओर से िम अपनी आाँखें मूाँद लेते िैं जजस ववशेषे अथ िमें गीता इसका प्रयोग करती िै। परन्तु ऐसे मत पर और अधधक िटे रिना तब सवथिा असंभव िो जाता िै जब पक्षपातरहित िोकर व्यजकत देखता िै कक ग्रंथ में अंत तक बारंबार इसी पर बल हदया गया िै कक अकम िकी अपेक्षा कम ििी श्रेष्ठ िै और सममव के द्वारा कामना का सच्चा और आंतररक मयाग कर के कमों को परमपुरुष को अपणि करने ेमें िी वरीयता िै।

कफर कुछ अन्य लोग इसका वणनि इस रूप में करते िैं मानो भजकत-तत्त्व का प्रनतपादन िी गीता की संपूण िशशक्षा िो और ऐसा बताकर गीता के अद्वैत तत्त्वों को, और सभी कुछ के एकमेव ब्रह्म में शांत भाव से ननवास करने की जस्थनत को इसमें जो ऊाँचा स्थान हदया गया िै उसको पृष्ठभूशम में िाल देते िैं अथाित् ्उसकी अविेलना करते िैं। और ननस्संदेि गीता का भजकत पर हदया बल, इसके द्वारा भगवान् ्के इस पिलू पर आग्रि कक वे ईश्वर और पुरुष िैं, और कफर इसका पुरुषोत्तम शसद्धान्त जो परम् ्पुरुष को क्षर और अक्षर पुरुष दोनों से िी श्रेष्ठ शसद्ध करता िै और जो कक विी िैं जजनसे जगत् ्के समबन्ध से िम ईश्वर किते िैं, ये सब गीता के अमयंत ववलक्षण तथा इसके अमयंत प्रधान तत्त्वों में से िैं। तो भी, ये ईश्वर िी वि आममा िैं, जजनमें संपूण िज्ञान की पररणनत िोती िै, और [ये िी] यज्ञ के प्रभु िैं, सभी कम िजजनकी ओर ले जाते िैं, और ये िी प्रेममय स्वामी िैं जजनकी सत्ता में भजकतमय हृदय प्रवेश पाता िै। और गीता [इन तीनों में] पूण िरूप से उधचत संतुलन बनाए रखती

ै, किींज्ञान पर बल देती िै, किीं ंकम िपर और किींभजकत पर, परन्तु वि बल उसके तामकाशलक ववचार-प्रसंग के प्रयोजन से िोता िै, न कक इनमें से ककसी एक को दूसूरों से पृथृक् पूण िवरीयता देनेके शलए िोता िै। जजनमें इन तीनों का समागम िोता िै और शमलकर एक िो जाते िैं, वे िी परम् ्पुरुष पुरुषोत्म िैं।

परन्तु वतमिान में, वस्तुत: जबसे आधुननक बुद्धध ने गीता को मानना और उस पर थोिा-बिुत ववचार करना आरमभ ककया िै, तब से लोगों की प्रववृर्त् गीता के ज्ञानतत्त्व और भजकततत्त्व को गौण मानकर, उसके कम ि पर हदये ननरंतर आग्रि का फायदा उठाकर उसे एक कमियोग-शास्त्र, कमि–माग िमें ले जानेवाला प्रकाश, कमि–ववषयक शास्त्र िी मानने ेकी ओर हदखायी देती िै। ननस्संदेि गीता एक कमि–योग-शास्त्र िै, परंतु उन कमों का जजनकी पररसमाजप्त ज्ञान में अथात्ि्आध्याजममक शसद्धध में और शांनत में िोती िै, उन कमों का जो भजकत-प्रेररत ैं, अथात्ि्अपनी समग्र सर्त्ा का पिले परम् ्पुरुष के िाथों में और कफर उनकी सर्त्ा में सचेतन समपणि, और यि ककसी भी प्रकार उन कमों का शास्त्र निींि जैसा कक आधुननक मन कमों से समझता िै, उन कमों का त्रबल्कुल निीं ंजो अिंकार और परोपकार के भाव से ककये जाते िैं या जो वैयजकतक, सामाजजक और मानवतावादी प्रयोजनों, शसद्धान्तों और आदशों से प्रेररत िोते िैं। कफर भी आधुननक टीकाएँ गीता का यिी अशभप्राय हदखाने की चेष्टा करती िैं। ककतनी िी प्रामाखणक वाखणयों या सर्त्ाओं द्वारा िमें बारंबार यि बताया जाता िै कक भारतीय ववचार और आध्याजममकता की जो सामान्य तपश्चयामिमक और ननववृर्त्मागी प्रववृर्त् िै, उसका खण्िन करते िुए गीता त्रबल्कुल स्पष्ट शब्दों में मानव कम िके शसद्धान्त की, सामाजजक कतव्यिों का नन:स्वाथ िभाव से ननवाि करने के आदश िकी, इतना िी निीं,ं अवपतु(ऐसा लगता िै कक) समाजसेवा के सवथिा आधुननक आदश िकी भी घोषणा करती ै। इन सब बातों का उर्त्र मेरे पास इतना िी िै कक गीता में, स्पष्ट िी, और केवल इसका ऊपरी अथ िग्रिण करते ुए भी, इस तरि की कोई बात निीं िै, यि केवल आधुननकों द्वारा गलत अथ िलगाया जाना िै, यि एक प्राचीन ग्रंथ का आधुननक बुद्धध के अनुसार अथ िलगाना िै, एक सवथिा पुरातन, सवथिा प्राच्य और भारतीय शशक्षा को वतमिान यूरोपीय या यूरोपीय रंग में रंगी बुद्धध के अनुरूप पढ़ने की चेष्टा करना िै। गीता जजस कम िका प्रनतपादन करती िै वि कोई मानवीय निीं ंअवपतु हदव्य कम िैि; कोई सामाजजक कर्त्व्यिों का पालन निीं ंअवपतु कर्त्व्यि अथवा आचरण के अन्य सभी मानदण्िों को मयाग कर भागवत् ्संकल्प का ननष्काम पालन िै जो कक मिारी प्रकृनत के द्वारा किया करता िै; कोई समाजसेवा निीं,ं अवपतुसवश्रेिष्ठ, भगवतावविष्टों, मिापुरुषों का कम ि ै जो ननवैयैजकतक अथवा अनासकत भाव से संसार के शलये, तथा उन भगवान् ्के प्रनत यज्ञ-रूप से ककया जाता िै जो मनुष्य और प्रकृनत के पीछे अवजस्थत िैं।...

अत: आज की मनोववृर्त् के दृजष्टकोण से गीता की व्याख्या करना और गीता से सवोच्च और सवसंपूिण ि धम िके रूप में िमें नन:स्वाथ िकतव्यिपालन की बलपूवकि शशक्षा हदलाना, एक त्रुहट िै। जजस प्रसंग से गीतोपदेश ुआ िै उसका ककंधचन्मात्र ववचार करने से िी यि स्पष्ट िो जायेगा कक गीता का ऐसा अशभप्राय िो िी निींसकता था। कयोंकक, इस उपदेश का संपूण िकारण, जजस प्रसंग से इसका आववभिाव िुआ िै और जजस कारण से शशष्य को गुरु की शरण लेनी पिी उसका मूल तो कतव्यि की परस्पर संबद्ध वववववध भावनाओं का जहटल रूप से उलझा िुआ वि संघष िैि जजसका अंत मानव-बुद्धध के द्वारा खिे ेककये गए सारे उपयोगी बौद्धधक और नैनतक भवन के ढिने

में िोता ि ै। मनुष्य-जीवन में ककसी-न-ककसी प्रकार का संघष िप्राय: िी उमपन्न िुआ करता ि ै, जैसे कभी गृिास्थ्य-धम िके और देश-धम िया ककसी उद्देश्य या अशभयान की पुकार के बीच दुवुवधा, कभी स्वदेश के दावे और मानव जानत की भलाई या ककसी बृित्र धाशमकि या नैनतक शसद्धांत के बीच संघष।ि यिााँतक कक एक आन्तररक संकट या समस्या भी उमपन्न िो सकती ि ै, जैसी कक गौतम बुद्ध के जीवन में उपजस्थत िुई थी, जजसमें अंतःजस्थत भगवान् ्के आदेश का पालन करने के शलए सभी कर्त्व्यों को मयाग देना, कुचल िालना और एक ओर फेंक देना पिता ि ै। म ैंनिीं समझता कक गीता इस प्रकार के आंतररक संकटकाल का समाधान बुद्ध को पुनः अपनी पमनी और वपता के पास भेजकर और उन्िें पुनः शाकय राज्य की बागिोर िाथ में देकर करेगी; न िी यि एक रामकृष्ण को ककसी स्वदेशी पाठशाला में पंडित बनकर छोटे बालकों को ननष्काम भाव से पाठ पढ़ानेका ननदेश करेगी; न िी यि एक वववेकानन्द को अपनेपररवार के भरण-पोषण करने ्के शलए बाध्य करेगी और इसके शलए वीतराग िोकर वकालत या धचककमसा या पत्रकाररता का पेशा अपनाने को किेगी। गीता ननःस्वाथ िकर्त्व्यि पालन की निींअवपतु

बदंव्य, सीबीनधमोंअनुकरणमकीगशक्षकदेतीकमैत्र '**सर्वारम्भ्** का िी

आश्रय ग्रिण करने ्की शशक्षा देती ि ै; और एक बुद्ध, रामकृष्ण या वववेकानन्द का भगवद्-कम िगीता की इस शशक्षा से पूणतिः समस्वर अथवा अनुरूप ि ै। यिी निीं, ं यद्यवप गीता कम िको अकम िसे श्रेष्ठ मानती ि ै, परंतु कमि–संन्यास का ननषेध निींकरती, अवपतु इसे भी भगवान् ्तक पिुाँचने के अनेक मागों में से एक के रूप में स्वीकार करती ि ै। यहद उसकी प्राजप्त केवल कम ितथा जीवन तथा सभी कर्त्व्यों के मयाग करने से िी िोती िो और भीतर से पुकार प्रबल िो तो इन सबको अजग्न में िोम कर िी देना िोगा, इसमें ककसी का कोई वश निीं ंचल सकता। भगवान् ् की पुकार अलंघ्य ि ै, और अन्य ककन्िीं भी िेतुओंके सामने इसकी तुलना निीं ंकी जा सकती।

इसके सदृश अन्य ककसी भी मिान् ्ग्रंथ की तरि िी गीता को इसकी संपूणतिा में पढ़कर तथा एक उर्त्ोर्त्र ववकसनशील ववचार के रूप में इसका अध्ययन करने ेपर िी समझना समभव ि ै। परन्तु आधुननक टीकाकारों ने, बंककमचंर चटजी जैसे उच्च कोहट के लेखक से आरंभ कर, जजन्िोंनेपिले-पिल गीता को, इस नए अथ िमें, कर्त्व्यि ननष्पादन का अथ िप्रदान ककया, गीता के पिले तीन या चार अध्यायों पर िी प्रायः पूण िबल हदया ि ै, और उनमें भी समता के ववचार पर और 'कतव्यिंकम'ि की उजकत पर, जजसका अशभप्राय वि ि ै जो आधुननक दृजष्ट में कर्त्व्यि शब्द से समझा जाता ि ै, और इस उजकत पर बल हदया जाता ि ै कक 'कम िमें िी तेरा अधधकार ि ै, कमफिल में जरा भी निीं' जजसे कक गीता के मिावाकय के रूप में प्रचशलत तौर पर उद्धृत ककया जाता ि ै। और उच्च दशनि अथवा तत्त्वज्ञानसंपन्न शेषे अठारि अध्यायों को गौण मित्त्व प्रदान ककया जाता ि ै, िा, ाँ अवश्य िी ग्यारिवें अध्याय के ववश्वरूप-दशनि को छोि़कर। आधुननक बुद्धध के शलए ऐसा त्रबल्कुल स्वाभाववक ि ै जो कक तत्त्वसंबंधी सूक्ष्मताओं तथा अनतदूरूवती आध्याजममक अनुसंधानों के प्रनत असहिष्णुिोती ि ै या अभी कल तक भी असहिष्णु रिी ि ै, और अजुनि के समान िी कम िमें रत िोने ेको आतुर रिती ि ै तथा मुख्य रूप से कम िके ककसी व्याविाय ि ववधान 'धम'ि से िी प्रयोजन रखती ि ै। परंतु गीता जैसे ग्रंथ से व्यविार करनेका यि अनुधचत तरीका ि ै।

(ii.47)

प्रश्न : जबकक गीता का मिावाकय िै: 'सवधिमान्ि्पररमयज्य....' कफर भी आम तौर पर जब भी गीता की चर्चाचाोती िै तब अधधकांश लोग 'कमण्यिेवाधधकारस्तु.ु..', कक तुमिारा केवल कम िका अधधकार िै, फल का निीं,ं ऐसे िी ववचारों पर ववशेषे बल कयों देते िैं और जो मिावाकय िै उस पर ववशेषे ध्यान निीं ंदेते?

उत्तर : स्वयं गीता में तीसरे िी अध्याय में भगवान् ्कितिे कक 'कम ितो मेरी िी प्रकृनत करती िै, केवल मूढ़जन ऐसा समझते और किते िैं कक वे स्वयंकमों के कतिा िैं।' परंतु जजन टीकाकारों को इस बात का कोई गिरा अनुभव निीं िोता वे िी इस प्रकार की उजकत कर सकते िैं कक गीता कम िको िी प्रधान बता रिी िै। और कफर ववशभन्न प्रशसद्ध व्यजकतयों द्वारा गीता पर शलखी टीकाओं में इस ववचार पर बल देनेके कारण िी यि आम प्रचलन में इस तरि समझा जाता िै। परंतु ुफल की इच्छा रखे त्रबना ककये जाना वाला यि ननष्काम कम िवास्तव में तो िम जीवन में लागू िो कैसे कर सकते िैं, कयोंकक कामना-रहित कम िकरना कया िमारे वश में िै? इस कम िकी ववषमता को देखकर िी तो अजुनि यि पूछता िै कक ऐसा कम िसंभव िी कैसे िो सकता िै। यहद कामना न िो तो व्यजकत कम िकरेगा िी कयों और यहद करेगा भी तो ववशभन्न कमों व ववकल्पों के बीच उसके शलए चुनाव करने ेका आधार िी कया िोगा? इसी के उर्त्रस्वरूप भगवान् ्यज्ञरूप से कम िकरने के ववचार का ननरूपण करते िैं कक 'सारा जीवन यज्ञमय बनाओ, 'मेरी' प्रसन्नता के ननशमर्त् कम िकरो। इसी से तुमिारी समस्या का िल िोगा।' श्रीअरववन्द की गीता के ऊपर टीका से प्रभाववत िोकर िी योगी श्रीकृष्णप्रेेम ने हदलीप कुमार रॉय को किा था कक िर हिन्दुसुतानी को इसे पढ़ना चाहिए कयोंकक इसमें जजन तत्त्वों का ननरूपण िुआ िै, वे ेऔर किीं ंनिीं ंशमल सकते। इसी से प्रभाववत िोकर श्री हदलीप कुमार श्रीअरववन्द के संपकि में आए व उनके शशष्य बने।

प्रश्न : कया ऐसा कि सकते िैं कक श्रीअरववन्द के पूण ियोग में सभी योग-पद्धनतयों के समन्वय िोनेके पूव िगीता िी एक सवाधिधक समन्वयकारी पुस्तक रिी िै जो सभी योग-पद्धनतयों को लेकर उनका समन्वय साधते िुए उन्िें अनतिम कर जाती िै?

उत्तर : अवश्य िी, इसीशलए इसे सवोच्च ग्रंथ, हिन्दु ुधम िकी बाइबल के रूप में माना जाता िै। ऐसा निीं था कक श्रीअरववन्द की टीका से पिले ककसी को गीता के ऐसे समन्वयाममक स्वरूप की समझ न िो। परंतु आधुननक मानशसकता के शलये इसे समझ पाना कहठन िै। जजस तरि के कम िकी शशक्षा तथाकधथत आधुननक बुद्धधजीवी गीता के द्वारा हदलवाना चािते िैं वैसी ककसी चीज पर गीता का कोई बल निीं ंिै। वि तो ईश्वर के ननहित कम िकरनेकी बात करती िै। इसमें भगवान् ्स्वयं िी स्पष्ट रूप से अजुनि को अपनी शरण में आनेका ननदेश करते िैं। स्वयं श्रीअरववन्द के योग का आधार भी यि पूण िआमम-समपणि िी िै। इन सब ववषयों को श्रीअरववन्द पयाप्ति रूप से प्रकट करेंगे।

गीता कमयिोग से आरंभ करती िै और कमयिोग के चलते-चलते ज्ञानयोग को समाववष्ट कर लेती िै। और कफर उन दोनों के साथ भजकतयोग में प्रवेश कर जाती िै। भगवान् ्के प्रनत पूण िसमपणि िी योग की इस संपूण िगनत की पररणनत िै। पर गीता का मिावाकय तो असंहदग्ध रूप से एक िी िै – सवधिमान्ि्पररमयज्य - और स्वयंगीता िी यि बता रिी िै। इसशलए इसमें कोई ववववाद निीं िो सकता कक गीता का मिावाकय कया िै। जैसे कक श्रीअरववन्द

 जब स्वयं किते िैं कक उन्िेंनिेंअपनेयोग में भजकत को सवोच्च स्थान प्रदान ककया िै तो

यहद कोई किे कक

श्रीअरववन्द के योग में कम िको िी प्रधानता दी गई िै तो यि एक बेतुकी बात िोगी। और वास्तव में अपने-आप में ये परस्पर शभन्न चीजें भी निीं िैं। यहद व्यजकत के अंदर भजकत िो तो वि भगवान् ्के शलए कम ि भी करेगा।

यहद

कोई किे कक वि भगवान् ्का भकत तो िै पर उनके शलए कम ि निीं करता, तो इसका अथ िि कक उसकी भजकत पूण ि

निीं ंिै। इनके साथ िी साथ उसमें ज्ञान भी आ जाएगा, कयोंकक यहद ज्ञान न िो तो भजकत अपूण िरिती िै जजसके

त्रबना सच्चा कम ि भी निीं ंिो सकता। इसशलए यहद समग्र भजकत िोगी तो ज्ञान भी अवश्य िी आ जाएगा।

जजसे समता का गीता उपदेश करती िै वि उदासीनता निीं, गीता के उपदेश की आधारशशला रखे जाने और उस पर उपदेश की प्रधान संरचना के ननशमित िोने के पश्चात् ्अजुनि को हदये इस मिान् ्आदेश कक, "उठ, शत्रुओंका संिार कर और एक समृद्ध राज्य का भोग कर", में ककसी अटल परोपकारवाद की या ककसी ववशुद्ध ववकार-रहित आमम-मयाग के भाव की ध्वनन तक निीं ंिै; गीता की समता एक आंतररक संतुलन और ववशालता की जस्थनत िै, जो कक आध्याजममक मुजकत की आधारशशला िै। इस संतुलन से युकत िोकर और इस मुकतावस्था में िमें उस 'कतव्यिंकम'ि को करना िै, यि एक ऐसी उजकत िै जजसे गीता अमयंत व्यापकता के साथ प्रयोग करती िै जजसमें **'सर्कवर्ाणवि'**, सभी कमों का समावेश िै, और जो भले िी सामाजजक कर्त्व्यिों या नैनतक दानयमवों को अपने अंदर समाववष्ट रखती िो पर उनका अनतशय रूप से अनतिम कर जाती िै। वि कतव्यिंकम िकया िै, इसका ननधारिण व्यजकतगत पसंद से निीं ंिोना िै; और न कम िका अधधकार और कमफिल का मयाग िी गीता का मिावाकय िै, अवपतु यि एक आरंशभक उपदेश िै जो योगपवति पर चढ़ना आरमभ करने वाले शशष्य की प्राथशमक अवस्था पर लागू िोता िै। इसकी आगामी अवस्था में इस उपदेश का लगभग अधधिमण िी कर हदया जाता िै। कयोंकक इससे आगे गीता प्रभावपूण िरूप से इसकी स्थापना करती िै कक मनुष्य कम िका कति निीं ंिै, कम िकी कजी तो (हदव्य) प्रकृनत िै, कम िके त्रत्रगुणमय रूपों से संपन्न मिान् ्शजकत िै जो उसके द्वारा काय िकरती िै, और मनुष्य को यि देख लेना सीखना िोगा कक कम िका कति वि निीं िै। इसशलए **'कर्ण्वयेर्ाधधकारः'** का भाव तभी तक लागूिोता िै जब तक कक िम कर्त्ापिन के भ्म में िैं, और जैसे िी िम स्वयं अपनी चेतना के शलए अपने कमों के कतापिन का भाव मयाग देते िैं वैसे िी कमफिलाधधकार के समान िी कमाधिधकार भी मन-बुद्धध से ननश्चय िी नतरोहित िो जाता िै। तब समस्त कमि–ववषयक अिकार, चािे वि फलाधधकार का िो या कमाधिधकार का, समाप्त िो जाता िै।

परन्तु प्रकृनत का ननयनतवाद गीता का अंनतम वचन निीं ंिै। मन, हृदय और बुद्धध के साथ भगवच्चेतना में प्रवेश करने और उसमें ननवास करने के शलए बुद्धध की समता और फल का मयाग तो केवल साधनमात्र िैं; और गीता ने इस बात को स्पष्ट रूप से किा िै कक इन्िें साधनस्वरूप तब तक प्रयोग में लाना िोगा जब तक कक साधक इस योग्य निीं िो जाता िै कक वि इस भगवच्चेतना में रि सके या कम-से-कम अभ्यास के द्वारा इस उच्चतर अवस्था को स्वयं में िमशः ववकशसत करनेका प्रयास न कर ले। और यि भगवान् ्कया िै जो कक श्रीकृष्ण स्वयं िोने ेकी घोषणा करते िैं? ये पुरुषोर्त्म िैं, जो अकतािपुरुष के परे िैं, जो कती प्रकृनत के परे िैं, जो एक के आधार िैं और दूसरे के स्वामी, ये वे प्रभु िैं जजनका यि सारा प्राकट्य िै, जो िमारी वतमिान मायावशता की अवस्था में भी

प्रकृनत के ननयमों का ननयमन करते ि◌ुए अपनेजीवों के हृदय में ववराजमान ि◌ैं, ये वे ि◌ैं जजनके द्वारा कुरुक्षेत्र की समरभूशम की सेनाएँ जीववत ि◌ोती ि◌ुई भी पिले ि◌ी मारी जा चुकी ि◌ैं और जो अजुनि को इस भीषण संरिकम ि◌का केवल यंत्र या ननशमर्त् मात्र बनाए ि◌ुए ि◌ैं। प्रकृनत उनकी केवल कायकिाररणी शजकत ि◌ै। साधक को इस प्रकृनत-शजकत और उसके त्रत्रववध गुणों से ऊपर उठना ि◌ोगा, उसे त्रत्रगुणातीत ि◌ोना ि◌ोगा। उसे अपनेकम ि◌प्रकृनत को निीं समवपति करनिींगे, जजन पर कक अब उसका कुछ भी दावा या 'अधधकार' निीं ◌ंि◌ै, अवपतु उन परम् ◌्पुरुष की सर्त्ा में समवपति करने ि◌ोंगे। अपना मन, बुद्धध, हृदय, तथा संकल्प उन्िीं में आधश्रत कर, आमम-ज्ञान के साथ, भगवद्-ज्ञान के साथ, जगत्–संबंधी ज्ञान के साथ, पूण ि◌समता, अनन्य भजकत और पूण ि◌आमम-दान के साथ उसे अपने कम ि◌उन प्रभु की भेंट-स्वरूप करने ि◌ोंगे जो सारे तपों और समस्त यज्ञों के स्वामी ि◌ैं। उनके संकल्प के साथ एकसंकल्प और उनकी चेतना से सचेतन ि◌ोना ि◌ोगा और वे 'तत्'◌् पुरुष ि◌ी कम ि◌का ननणयि और प्रारंभ करेंगे। यिी वि समाधान ि◌ै जो भगवान् ◌्गुरु अपने शशष्य को प्रदान करते ि◌ैं।

गीता का मिान्,◌् परम वचन, इसका मिावाकय कया ि◌ै ि◌में उसे ढूँढ़ने की आवश्यकता निीं; कयोंकक स्वयं गीता ि◌ी अपने अंनतम श्लोकों में उस मिान् ◌्संगीत का परम स्वर घोवषत करती ि◌ै। "अपनिेृदेशजस्थत भगवान् ◌् की, सवभिाव से, शरण ले, उन्िींके प्रसाद से तू पराशांनत और शाश्वत पद को लाभ करेगा। मनैं ◌ेतुझे ◌ेगुह्य से भी गुह्यतर ज्ञान बताया ि◌ै। अब उस गुह्यतम ज्ञान को, उस परम वचन को सुन जो म ◌ैंअब बतलाता ि◌ूँ। मेरे मन वाला (मन्मना) ि◌ो जा, मेरा भकत बन, मेरे प्रनत यज्ञ कर, और मेरी अचनिा कर; तू ननश्चय ि◌ी मेरे पास आयेगा, कयोंकक तू मेरा वप्रय जो ि◌ै। सभी धमों का पररमयाग कर के केवल मेरी शरण ग्रिण कर। म ◌ैंतुझे ◌ेसब पापों से मुकत कर दूंगा; शोक मत कर।"

गीता का प्रनतपादन अपने-आपको तीन मिान् ◌्सोपानों में बाटँ लेता ि◌ै, जजनके द्वारा कम ि◌मानव-स्तर से ऊपर उठकर हदव्य स्तर तक पिुँच जाता ि◌ै और वि उच्चतर धम ि◌की मुकतावस्था के शलए ननमनतर धमि–बंधनों को नीचे ि◌ी छोड़ जाता ि◌ै। पिले सोपान में, मनुष्य द्वारा कामना का मयाग कर, पूण ि◌समता के साथ कताभिाव से यज्ञ-स्वरूप कम ि◌ककया जाता ि◌ै, यि यज्ञ उन ईश्वर के शलए ककया जाता ि◌ै जो परम ि◌ैं और एकमात्र आममा ि◌ैं,

यद्यवप अभी तक इनको व्यजकत द्वारा स्वयंअपनी सर्त्ा में अनुभव निीं ककया गया ि◌ै। यि आरंशभक सोपान ि◌ै। दूसरा सोपान ि◌ै केवल फलेच्छा का ि◌ी मयाग निीं,◌ं अवपतु कमों के कतिापन के भाव का भी मयाग इस अनुभूनत में करना ि◌ोता ि◌ै कक आममा सम, अकति, अक्षर तत्त्व ि◌ै और सब कम ि◌ववश्व-शजकत के, परं प्रकृनत के ि◌ैं जो ववषम,

कती और क्षर शजकत ि◌ै। अंनतम सोपान में, परम् ◌्आममा को ऐसे परम-पुरुष के रूप में जान लेना ि◌ोगा जो प्रकृनत के ननयामक ि◌ैं, जजनके कक प्रकृनतगत जीव आंशशक अशभव्यजकत ि◌ैं, और जजनके द्वारा अपनी पूण ि◌परामपर जस्थनत में रिते ि◌ुए प्रकृनत के द्वारा सारे कम ि◌कराए जाते ि◌ैं। उन्िें ि◌ी प्रेम, आराधना और कमों का यजन अवपति करना ि◌ोगा; सारी सर्त्ा उन्िीं को समवपति करनी ि◌ोगी और संपूण ि◌चेतना को ऊपर उठाकर इस भागवत् ◌्चेतना में ननवास करना ि◌ोगा जजससे कक जीव भगवान् ◌्की प्रकृनत और कमों से परे उनकी हदव्य परामपरता में भागी ि◌ो सके

और पूण ि◌आध्याजममक मुजकत की अवस्था में रिते ि◌ुए कम ि◌कर सके।

प्रथम सोपान ि◌ै कमयिोग, (भगवमप्रीमयथ)ि◌ ननष्काम कमों का यज्ञ; और यिा ◌ाँगीता का आग्रि कम ि◌पर ि◌ै। द्ववतीय ि◌ै ज्ञानयोग, आममा और जगत् ◌्के समस्वरूप का ज्ञान तथा आमम-उपलजब्ध; यिा ◌ाँआग्रि ज्ञान पर ि◌ै; पर साथ-साथ ननष्काम कम ि◌भी चलता रिता ि◌ै, यिा ◌ाँकममिाग ि◌ज्ञानमाग ि◌के साथ एक ि◌ो जाता ि◌ै पर उसमें घुल-शमलकर अपना अजस्तमव निीं खो देता। तृतीय अथवा अंनतम सोपान ि◌ै भजकतयोग, परमाममा की भगवान् ◌्अथवा हदव्य पुरुष के रूप में उपासना और खोज; यिाँआग्रि भजकत पर ि◌ै; पर ज्ञान को गौण निीं बनाया गया ि◌ै, अवपतु वि उन्नत ि◌ो जाता ि◌ै, अनुप्राखणत अथवा सशकत ि◌ो जाता ि◌ै और पररपूण िि◌ो जाता ि◌ै, और कमों का यज्ञ अब भी जारी रिता ि◌ै; द्ववववध माग ि◌अब ज्ञान, कम ि◌और भजकत का त्रत्रववध माग ि◌बन जाता ि◌ै। और, यज्ञ का फल, एकमात्र फल जो साधक के सामने ध्येयरूप से अभी तक रखा ि◌ुआ ि◌ै, प्राप्त ि◌ो जाता ि◌ै, अथात्ि◌्भगवान् ◌्के साथ ऐकय और परम् ◌्हदव्य प्रकृनत के साथ एकमव साधधत ि◌ो जाता ि◌ै।

पिला अध्याय

कु रुक्षेत्र

संसार के अन्य मिान् ◌्धमग्रंथिों के बीच गीता की ववलक्षणता यि ि◌ै कक वि अपने-आप में एक स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में जस्थत निीं ि◌ै; न यि बुद्ध, ईसा या मुिममद जैसे ककसी मौशलक अथवा सृजनशील व्यजकतमव के आध्याजममक जीवन का या कफर वेदों और उपननषदों के समान ककसी ववशुद्ध आध्याजममक अनुसंधान के युग का िी फल ि◌ै, अवपतुयि राष्ट्रों और उनके संग्रामों तथा मनुष्यों तथा उनके परिामों के ऐनतिाशसक मिाकाव्य के अन्दर एक उपाख्यान ि◌ै जजसका प्रसंग इसके एक प्रमुख पात्र के जीवन में उपजस्थत एक ववकट संकट-काल से पैदा ि◌ुआ ि◌ै जजसमें कक उस पात्र के समक्ष उसके जीवन का ऐसा कम ि◌उपजस्थत ि◌ै जजसमें अन्य कमों की पररपूणतिा ि◌ोने ◌ेवाली ि◌ै; एक ऐसा कम ि◌जो भयंकर, अनत प्रचंिऔर रकतपातपूण िि◌ै, और एक ऐसा क्षण या ऐसी ननणायिक घडी उपजस्थत ि◌ै जब उसे या तो इस कम ि◌से ववल्कुल परावतनि करना ि◌ोगा या इसे (इन सब रकतपातों में से ि◌ोते ि◌ुए) इसकी ननदिय पूणाितुनत तक पिुँचाना ि◌ोगा। इस बात से कोई फकि निीं पड़ता - जैसा कक आधुननक समालोचकों का मानना ि◌ै कक ऐसा ि◌ी ि◌ै कक गीता मिाभारत के बाद की रचना ि◌ै या निीं, जजससे इसके रचनयता ने इसे मिाभारत में इसशलए शमला हदया कक इसकी शशक्षा को भी इस मिान् ◌्राष्ट्रीय मिाकाव्य की प्रामाखणकता और लोकवप्रयता का लाभ शमल जाए। मुझे ◌ेलगता ि◌ै कक इस धारणा के ववपक्ष में बड़े ◌ेप्रबल प्रमाण ि◌ैं और इस पक्ष में भीतरी बािरी जो कुछ प्रमाण ि◌ैं वे अमयंत अपयाप्ति और स्वल्प ि◌ैं। परन्तु यहद यि मत सिी अथवा यथेष्ट भी ि◌ो तो भी यि तथ्य तो शेषे रिता ि◌ै कक ग्रंथकार ने न केवल अपनेइस ग्रंथ को मिाभारत की बुनावट में इस प्रकार जहटलता से बुनकर घुला-शमला देने का अथक श्रम ककया ि◌ै कक इसके ताने-बाने को मिाभारत से अलग निीं ककया जा सकता, अवपतु वि ि◌में बार-बार वि प्रसंग भी याद हदलानेमें सावधान ि◌ै जजस प्रसंग से यि गीतोपदेश ककया गया: और यि प्रसंग की ओर लौटने ◌ेका काय ि◌वि प्रकट रूप से केवल उपसंिार के समय ि◌ी निीं करता, अवपतु

अपनेगंभीरतम तत्त्वननरूपण के बीच में भी करता ि ै। िमें ग्रंथकार का यि आग्रि मानना िी िोगा और इस गुरु-शशष्य-संवाद में गुरु और शशष्य दोनों का िी यि जजस प्रसंग की ओर बारंबार ध्यान खींचता ि ै उसे उसका पूण ि मित्त्व प्रदान करना िी िोगा। इसशलए अवश्य िी गीता के शसद्धान्त को मात्र ककसी सामान्य अध्याममदशनि या नीनतशास्त्र के रूप में न देखकर नीनतशास्त्र और अध्याममशास्त्र को मानव जीवन पर प्रमयक्षतः प्रयुकत करने पर व्यविार में जो संकट उपजस्थत िोता ि ै उसे दृजष्टगत रखते िुए इस ग्रंथ पर ववचार करना िोगा।

धृतराष्ट्र उर्ाच

धर्क्षे त्रे ेकुरुक्षेत्रे ेसर्र्ेता युयुत्सर्ः ।

र्ार्काः पाण्डर्ाश्चैर् ककर्कुर्तव सञ्जय ॥ १॥

१. धृतराष्ट्र ने कहाः हे सञ्जय । धर् वकी भूमर् कुरुक्षेत्र र्ें युद्ध की इच्छा से एकत्रत्रत हुए र्ेरे तथा पाण्डु के पुत्रों ने क्या ककया?'

सञ्जय उर्ाच

दृष्ट्र्ा तु ुपाण्डर्ानीकं व्यूढं दुयोधनस्तदा ।

आचायर्ुवपसङ्गम्य राजा र्चनर्ब्रर्ीत् ्।।२।।

२. सञ्जय ने कहाः पांडर्ों की सेना को व्यूह रचना र्ें ख़िी देखकर राजा दुयोधन ने अपनेआचाय व(द्रोिाचाय)व के सर्ीप जाकर ये र्चन कहे :

पश्यैतां पाण्डुपुत्रािार्ाचाय वर्हतीं चर्ूर् ्।

व्यूढां ंद्रुपुदपुत्रे तर् मिष्येि धीर्ता ।।३।।

३. हे आचाय व! आपके बुद्धधर्ान् ्मिष्य द्रुपुदपुत्र धृष्टद्युम्न के द्रारा व्यूह रचना र्ें ख़िी की गयी पांडुपुत्रों की इस वर्ाल सेना को देणखये।

'गीता की व्याख्या की एक ऐसी पद्धनत भी ि ै जजससे न केवल यि उपाख्यान िी अवपतुसंपूण िमिाभारत िी मनुष्य के आंतररक जीवन का एक रूपकमात्र बन जाता ि ै, और कफर उसका िमारे इस बाह्य मानवीय जीवन तथा कम िसे कोई संबंधं निीं रिता, अवपतु इसका संबंधं केवल अंतराममा और िमारे अन्दर अधधकार जमाने के शलये ल़िनेवालो शजकतयों के बीच युद्ध से रि जाता ि ै। यि एक ऐसा मत ि ै जजसकी पुजष्ट इस मिाकाव्य के सामान्य स्वरूप और इसकी वास्तववक भाषा से निीं िोती, और यहद इस ववचार पर बिुत अधधक जोर हदया जाए, तो गीता को सीधी-सादी दाशनिनक भाषा आहद से अंत तक जकलष्ट, कुछ-कुछ ननरथकि दुबोधता में बदल जाएगी। वेद की और कम-से-कम पुराणों के कुछ अंश की भाषा स्पष्ट रूप से

रूपकाममक ि, जो कक अलंकारों और स्थूल दृष्यमान जगत् ्के आवरण के पीछे रिनेवाली वस्तुओंके मूत िप्रनतरूपों के वणनि से भरी पिी ि, परंतु गोता तो ववल्कुल स्पष्ट शब्दावली में शलखी गई ि और मनुष्य के जीवन में जो ब्रिी-ब्रिी नैनतक और आध्याजममक कहठनाइयााँउपजस्थत िोती ि उन्िीं को िल करनेका दावा करती ि, अतः यि अनुधचत िोगा कक इस स्पष्ट भाषा और सुस्पष्ट ववचारों के पीछे जाकर और अपनी कल्पनाओंको संतुष्ट करने िेतु मन के अनुसार तोि-मरोिकर उनका अथ िलगाया जाए।

अत्र िूरा र्हेष्वासा भीर्ाजुनवसर्ा युधध ।
युयुधानो वर्राटश्च द्रुपदश्र् र्हारथः ।।४।।
धृष्टद्युम्नकेतुश्चेककतानः काशिराजश्च र्ीयर्वान् ्।
पुरुजजत्कुजततभोजश्च िैब्यश्च नरपुङ्गर्ः ।।५।।
युधार्तयुश्च वक्रातत उत्तर्ौजाश्र् र्ीयर्वान् ्।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर् वएर् र्हारथाः ।।६।।

४-६. इस वर्िाल सेना र्ें र्हाधनुधारवी िूरर्ीर हैं जो लिनेर्ें भीर् और अजुनव के सर्ान हैं; जैसे युयुधान (सात्यकक) और वर्राट और र्हारथी राजा द्रुपद। धृष्टद्युम्नकेतु, चेककतान और बलर्ान् ्काशिराज, पुरुजजत्,् और कुजततभोज, र्नुष्यों र्ें श्रेष्ठ िैब्य और पराक्रर्ी युधार्तयु और बलर्ान् ्उत्तर्ौजा, सुभद्रा का पुत्र (अमभर्तयु) और द्रौपदी के (पाचोँ) पुत्र; ये सब ही र्हारथी हैं।

अस्र्ाकं तु वर्शिष्टा ये ताजतनबोध द्वर्जोत्तर् ।
नायका र्र् सैतयस्य संज्ञाथं ंतातब्रर्ीमर् ते ।।७।।
७. हे द्वर्जश्रेष्ठ! अब हर्ारे पक्ष र्ें जो वर्शिष्टगि हैं, र्ेरी सेना के नायक हैं, आपकी जानकारी के मलये उनके नार् कहता हूाँ, उतहें जान लीजजये।

भर्ातभीष्र्श्च कर्णश्र् कृपश्च समर्ततञ्जयः ।
अश्र्त्थार्ा वर्कर्णश्र् सौर्दवत्तस्तथैर् च ॥८॥
अतये च बहर्ः िूरा र्दथे त्यक्तजीवर्ताः ।
नानािस्त्रप्रहरिाः सर्े ेयुद्धवर्िारदाः ।।९।।

८-९. आप तथा (वपताई) भीष्ट्र और कि,व संग्रार्वर्जयी कृपाचाय वऔर ऱैसे ही अश्र्त्थारा् और वर्कि,व सोर्दत्त का पुत्र भूररश्रर्ा; इनके अततररक्त और भी बहुत से ि्रूर्ीर हैं जजतहोंने ऱेरे मलये जीर्न का उत्सग वकर ददया है, अनेक प्रकार के िाखाखों से सुसजजजत, ये सभी युद्ध करने ेऱ्ं तनपिु हैं।

अपयाप्वतं तदस्ा्कं बलंभीष्ट्रामभरक्षक्षतर् ्।

पयाप्वतंजत्र्दऱेतेषांबलंभीरा्मभरक्षक्षतर् ्।।१०।।

१०. भीष्ट्र के द्र्ारा रक्षक्षत हऱारी यह सेना अपररमर्त है। ककंतु ुभीर् के द्र्ारा रक्षक्षत इनकी यह सेना पररमर्त (पररमर्ा और बल ऱें कर्) है।

अयनेषु च सरे्षु यथाभागर्ऱ्जस्थताः ।

भीष्ट्रऱेर्ामभरक्षततु भर्ततः सर् वएर् दह ।।११।।

११. इसमलये युद्ध के सब प्ररे्-द्र्ारों पर अपने-अपनेयथा तनधारवरत स्थानों (र्ोचौं) पर ख्िे ेरहकर आप सब के सब ही भीष्ट्र वपताई की ही सब ओर से रक्षा करें।

तस्य सञ्जनयतहष वकुरुर्द्ृधः वपताईः ।

मसंहंनादं वर्नद्योच्चैः िङ्ख दध्ऱौ प्रतापर्ान् ्।।१२।।

१२. तब र्हाप्रतापी कुरुर्ंकि र्द्ृध भीष्ट्रवपताई ने दुयोधन के हृदय ऱें हष वको उत्पतन करते हुए ऊँचेस्र्र से मसंहं के सर्ान गजनवा करते हुए अपना िङ्ख बजाया।

ततः िङ्खाश्र् भेयश्चच पिर्ानकगोर्ुखाः ।

सहसैर्ाभ्यहतयतत स िब्दस्तुर्ुलोऽभर्त् ्।।१३।।

१३. तदनंतर िङ्ख और नगारे और ढोल, र्ृदंग और नर्रसिंगे सहसा ही बज उठे, उनका र्ह िब्द र्हाप्रचंड हुआ।

ततः श्र्ेतैहयैयुक्वतेर्हतत स्यतदने जस्थतौ ।

र्ाधर्ः पाण्डर्श्र्ैर् ददव्यौ िङ्खौ प्रदध्र्तुः ।।१४।।

१४. इसके अनंतर श्र्ेत घिोंड़ों से जुते हुए वर्िाल रथ पर बैठे हुए श्रीकृष्ट्ण और पाण्डुपुत्र अजुनव ने भी अपने-अपने ददव्य िङ्खों को बजाया।

पाञ्चजतयं हृषीकेिो देर्दत्तं ंधनञ्जयः ।

पौण्ड्रं ंदध्ऱौ र्हािङ्ख भीर्कर्ाव र्ृकोदरः ।।१५।।

अनततवर्जयं ंराजा कुततीपुत्रो युधधजष्ठरः ।

नकुलः सहदेर्श्र् सुघोषर्णिपुष्पकौ ।।१६।।

१५-१६. हृषीकि (श्रीकृष्ण) ने पाञ्जजतय नार्क िङ्ख को, धनञ्जय (अजुनव) ने देर्दत्त नार्क िङ्ख को और भयंकर कर् वकरनेर्ाले रृकोदर (भीर्सेन) ने पौण्ड्र नार्क र्हािङ्ख को बजाया। कुतती के पुत्र राजा युधधजष्ठर ने अनंतवर्जय नार्क िङ्ख को तथा नकुल और सहदेर् ने सुघोष और र्णिपुष्पक नार्क िङ्खों को बजाया।

काश्यश्च परर्ेष्र्ासः मिखण्डी च र्हारथः ।

धृष्टद्युम्नो वर्राटश्च सात्यककश्र्ापराजजतः ।।१७।।

द्रुपदो द्रौपदेयाश्र् सर्वशः पृधृथर्ीपते।

सौभद्रश्च र्हाबाहुः िङ्खातदध्ुः पृथक्पृथक् ।।१८।।

१७-१८. हे राजन् ्! र्हा-धनुधारवी कामिराज और र्हारथी मिखण्डी, धृष्टद्युम्न और वर्राट और अजेय सात्यकक, द्रुपद और द्रौपदी के पुत्र और र्हाबाहु सुभद्रातनय अमभर्तयु इन सबने चारों ओर से पृथक् पृथक् अपने िङ्खों को बजाया।

स घोषो धातरवाष्ट्राणां हृदयातन व्यदारयत् ्।

नभश्च पृधृथर्ीं ंचैर् तुर्ुलो व्यनुनादयन् ्।।१९।।

१९. उस र्हाप्रचंड िब्द ने आकाि और पृथ्र्ी को गुंजायर्ान करते हुए धृतराष्ट्र के पुत्रों के हृदयों को वर्दीर्ण वकर ददया।

अथ व्यर्जस्थतातदृष्ट्र्ा धातरवाष्ट्रान् ्कवपध्र्जः ।

प्रर्ृत्ते िस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डर्ः ।।२०।।

हृषीकेिंतदा र्ाक्यमर्दर्ाह र्हीपते ।

२०-२१. हे राजन् ्! इसके अनंतर कवपध्र्ज र्ाले पांडुपुत्र अजुनव नेधृतराष्ट्र के पुत्रों को व्यर्जस्थत रूप र्ें र्ख़ि े देखकर िस्त्र प्रहार के प्रारंभ होने ेका सर्य आने ेपर उस सर्य अपने धनुष को उठाकर हृषीकि (श्रीकृष्ण) से ये र्चन कहे।

अजुनव उर्ाच सेनयोरुभयोर्ध्वये रथं ंस्थापय र्ेऽच्युत । ॥२१॥

यार्देताजतनरीक्षेऽहं योद्धकार्ानर्जस्थतान् ्।

कैर्यवा सह योद्धव्यर्जस्र्न् ्रिसर्द्यरे् ।।२२।।

२१-२२. अजुनव ने कहाः हे अच्युत! (अनघ, अचल श्रीकृष्ट्ि!) रे्रे रथ को दोनों सेनाओं के बीच रे्ं जस्थत करो, जजससे कक र् ैंयुद्ध की इच्छा से ख़िे ेहुए इन वर्पक्षक्षयों का तनरीक्षि कर लूँ और यह जान सकूँ कक इस रिरूपी र्होत्सर् रे्ं रु्झे ेककन-ककन के साथ युद्ध करना है।

योत्स्यर्ानानरे्क्षेऽहं य एतेऽत्र सर्ागताः ।

धातरवाष्ट्रस्य दुबुद्धधेयुद्धधे वप्रयधचकीषवः ।।२३।।

२३. धृतराष्ट्र के पुत्र दुबुद्धधध दुयोधन का युद्ध रे्ं वप्रय करनेकी इच्छा से जो यहा ाँआये हुए हैं उन युद्ध करने र्ालों को र् ैंदेख लूँ।

कोरे फलमूलक अथवा व्याविाररक मनुष्य की यि ववशेषेता िै कक वि अपनेसंवेदनों के द्वारा िी अपने कम िके आशय के प्रनत सचेत िोता िै। अजुनि ने अपनेसखा और सारथी से अपनेको दोनों सेनाओं के बीच में अवजस्थत करनेको किा, ककसी गंभीर ववचार से निीं, अवपतु ुउन असंख्यों मनुष्यों का मुाँि एक ननगिा में देख लेनेकी उस दंभयुकत मंशा से जो अधम िका पक्ष लेकर आये िैं और जजनका अजुनि को इस रण रूपी मिोमसव में सामना करना िै, जजन्िें उसे धम िकी ववजय के शलये जीतना और मारना िै।

सञ्जय उर्ाच

एर्रु्क्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।

सेनयोरुभयोर्ध्वये स्थापतयत्र्ा रथोत्तर्् ्।।२४ ।।

भीष्ट्र्द्रोिप्रर्ुखतः सर्वेषां च र्हीक्षक्षतार्् ्।

उर्ाच पाथ वपश्यैतान् ्सर्र्ेतान् ्कुरूतनतत ॥२५॥

२४-२५. सञ्जय ने कहाः हे धृतराष्ट्र ! गुडाकेश (तनद्राववजयी अजुनव) द्र्ारा इस प्रकार कहे जाने पर हृषीकेश (इजतद्रयों के स्र्ार्ी श्रीकृष्ट्ि) ने दोनों सेनाओंके बीच भीष्ट्र् और द्रोिाचाय वके सार्ने और संपूि वराजाओंके सार्ने उस उत्तर्् रथ को ख़िा कर के ऐसा कहा कक "हे पाथ!व इन एकत्रत्रत हुए कौरर्ों को देख।"

तत्रापश्यजत्स्थतातपाथःव वपतृनृथ वपतार्हान् ्।

आचायातवर्ातुलातरातृतृपुत्रातपौत्रातसखींस्तथा ॥२६॥

श्र्शुरान् ्सुहृदश्चैर् सेनयोरुभयोरवप ।

२६-२७. तब अजुनव ने हााँ दोनों ही सेनाओं र्ें उपजस्थत वपता के सदृों (चाचाओं-ताऊओं) को, वपताहों, आचायााँ, र्ार्ाओं, भाइयों, पुत्रों, पौत्रों और संगी-साधथयों को, श्वसुरों को और स्नेदहयों को देखा।

तातसर्ीक्ष्य स कौततेयः सर्ावन् ्बतधूनर्जस्थतान् ्।।२७।।

कृपया परयावष्टो वर्षीदजतनदर्ब्रर्ीत् ्।

२७-२८. उन सब अपनेसंबंधधयों को इस प्रकार युद्ध के मलये तैयार ख़िे ेदेखकर कुततीपुत्र अजुनव अततिय वर्षाद से अमभभूत हो, वर्षाद और संताप से ग्रस्त हो इस प्रकार बोलाः

जैसे िी वि उस दृश्य को देखता िै वैसे िी इस गृि-युद्ध और वंश-युद्ध का अथ िउसकी समझ में आ जाता िै- एक ऐसा युद्ध जजसमें न केवल एक िी जानत, एक िी राष्ट्र, एक िी वंश के, अवपतु ुएक िी कुल और एक िी पररवार के लोग एक-दूसरे के ववरुद्ध आमने-सामने ख़िे िैं। वे सब जजन्िें सामाजजक मनुष्य परम वप्रय और पूज्य मानता िै उन्िीं लोगों का उसे शत्रु ुके नाते सामना करना और वध करना िोगा- पूज्यपाद गुरु और आचाय,ि पुराने ेसंगी-साथी, शमत्र, सियोद्धा, दादा, चाचा, और वे लोग जो ररश्ते में वपता के समान, पुत्र के समान, पौत्र के समान िैं, वे लोग जजनके साथ रकत का संबंध िै या जो साले-संबंधी िैं, इन सभी सामाजजक बंधनों को तलवार के द्वारा काटना िोगा।

यिा ाँश्रीअरववन्द अजुनि की प्रकृनत को जजस रूप में प्रकट कर रिे िैं वैसा वणनि िमें कदाधचत िी अन्य ककसी टीका में शमलता िै। ऐसा निीं ंथा कक अजुनि यि निीं जानता था कक कौन-कौन उनके पक्ष में िैं और कौन-कौन उनके ववपक्ष में िैं। इस ववषय में वि पूणतिः अशभज्ञ था। अतः श्रीअरववन्द उसकी प्रकृनत को सामने लाकर बता रिे िैं कक अजुनि एक संवेदन-प्रधान व्यजकत था न कक ववचार-प्रधान। उसकी बुद्धध में संवेदनों के द्वारा िी प्रकाश आ सकता था। इसीशलए जब युद्ध के मैदान में वि पूरा दृश्य उसके सामने आया, वे लोग उसके सामने आए तब उसे यि अनुभव िुआ कक इस युद्ध का वास्तव में अथ िकया िै। गीता के ववचार के ननरूपण का िम एक ऐसे व्यजकत के अनुसार िै जो व्याविाररक स्वभाव वाला िै, जजसके ववचार और धम िबिे ेसुननधाररत िैं और सूक्ष्म चीजों में जजसका अधधक प्रवेश निीं िै। इसी कारण अजुनि को बार-बार प्रश्न पूछने े पि़ते िैं। तो ऐसा िै अजुनि का स्वभाव। श्रीअरववन्द ने 'गुरु और शशष्य' शीषकि से पूरा अध्याय िी इस ववषय पर शलखा िै।

अजुनव उर्ाच

दृष्ट्र्ेर्ं स्र्जनंकृष्ण युयुत्सुं सर्ुपजस्थतर् ्।।२८।।

सीदजतत र्र् गात्राणि र्ुखं ंच पररिुष्यतत ।

र्ेपथुश्र् िरीरे र्े रोर्हषश्चर् जायते ।।२९।।

२८-२९. अजुनव ने कहा : हे कृष्ट्ि! अपनेइन स्र्जनों को यहााँयुद्ध के मलये सर्ुपजस्थत देखकर र्ेरे िरीर के सभी अंग मिधथल हो रहे हैं और र्ेरा र्ुख सूखा जा रहा है, र्ेरे िरीर र्ें कंप और रोर्ांच हो रहा है।

ऐसा निीं िै कक इन बातों का अजुनि को पिले पता निीं था, पर उसको उन सबका जीवंत अनुभव निीं िुआ था; उसे तो धुन सवार थी अपने अधधकार के दावों की, अपनेऊपर िुए अमयाचारों के बदले की, अपनेजीवन के शसद्धांतों और सिी के शलये लड़नेकी, न्याय और धम िकी रक्षा कर के तथा अधम िऔर अमयाचार से युद्ध कर के उनको मार भगाकर क्षत्रत्रय-धम िका पालन करने ेकी। इन सब की धुन में उसनेयुद्ध के इस पिलू के बारे में न तो कभी गिराई के साथ सोचा न अपनेहृदय के अंदर और जीवन के ममस्थिल में अनुभव िी ककया। और अब हदव्य सारथी यि उसकी दृजष्ट के सामने लाते िैं, उसकी आखाँों के आगे सनसनीखेज तरीके से उपजस्थत करते िैं और इससे उसकी संवेदनाममक, प्राणमय और भावमय सत्ता के ममि–स्थल पर एक गिरा आघात-सा लगता िै।

गाण्डीर्ं संसते हस्तात्त्वक्चैर् पररदह्यते।
न च िक्नोम्यस्थातुं भ्रर्तीर् च र्े र्नः ।।३०॥

३०. गाण्डीर् (अजुनव का धनुष) र्ेरे हाथ से धगरा जा रहा है और त्र्चा र्ानो जली जा रही है। और र्ें खड़ा होने र्ें भी असर्थ वहो रहा हूाँ और र्ेरा र्न र्ानो चक्कर खा रहा है।

तनमत्तातन च पश्यामर् वर्परीतातन किेर् ।
न च शे्रयोऽनुपश्यामर् हत्र्ा स्र्जनर्ाहर्े ।।३१॥

३१. और हे किेर् । र्ुझे वर्परीत लक्षि भी ददखाई दे रहे हैं। युद्ध र्ें अपनेआत्र्ीय जनों को र्ारने र्ें र्ुझे कोई कल्याि भी नहींददखाई देता।

न काङ्क्षे वर्जयंकृष्ट्ि न च राजयं सुखातन च ।
ककं नो राजयेन गोवर्तद ककं भोगैजीवर्तेन र्ा ।।३२।।

३२. हे कृष्ट्ि! (ऐसी) वर्जय को र्ें नहीं चाहता और न राजय को चाहता हूाँ, न सुखों को ही चाहता हूाँ। हे गोवर्तद ! बतलाओ हर्ें राजय से क्या लाभ है, भोगों से क्या लाभ है अथर्ा जीर्न धारि करने से भी क्या प्रयोजन है?

पिला पररणाम िोता िै एक भाव-संवेदनाममक और शारीररक संकटावस्था जो उपजस्थत कम िऔर उसके भौनतक फलों से और कफर स्वयं जीवन के प्रनत िी जुगुप्सा का भाव पैदा कर देती िै। वि उस प्राखणक उद्देश्य - सुख और भोग - से अपना मुाँ फेर लेता िै जजसके अभिावयुकत मानव जानत पीछे पड़ी रिती िै; वि क्षत्रत्रयों के उस प्राखणक उद्देश्य - ववजय, राज्य, अधधकार और मनुष्यों पर शासन करने की (प्रबल लालसा) - से भी अपना मुाँ मोड़ लेता िै। यहद इसे इसके व्याविाररक अथ िमें ववचारा जाए तो यि धमयिुद्ध आखखर िै ककसशलए, शसवाय स्वयंअपने, अपनेभाइयों और अपनेदलवालों के स्वाथ िअथवा ितुशसद्ध करने के शलए, अधधकार करने, भोग

करने ेऔर राज्य करनेके शलए? परंतु इतनी ब्रिी कीमत पर तो ये प्राप्त करने ेयोग्य िी निीं ंिैं, व्यथ ििैं। इन चीजों का स्वयंअपने में कोई मूल्य भी निीं ंिैं, ये तो केवल सामाजजक और राष्ट्रीय जीवन को सुसंपन्न बनाये रखनेके साधनमात्र िैं और अपने पररवार और जानत (race) के लोगों का संिार कर के ठीक इन्िींउद्देश्यों को िी उसे अभी नष्ट करना िोगा। और तब भावनाएँ पुकार उठती िैं।

येषार्थे काङ्क्षक्षतं नो राजयंभोगाः सुखातन च ।
त इर्ेऽर्जस्थता युद्धे प्रिांस्त्यक्त्र्ा धनातन च ।। ३३ ।।
आचायाःव वपतरः पुत्रास्तथैर् च वपतार्हाः ।
र्ातुलाः श्र्ुरिाः पौत्राः श्यालाः सम्बजतधनस्तथा ॥३४॥

३३-३४. जजनके मलये हर्ें राजय, भोग और सुख की आकांक्षा हो सकती है, र्े ये आचायगवि, वपता र्ग व(ताऊ-चाचा आदद), पुत्रगि, तथा वपतार्ह, र्ार्ा, श्र्सुर लोग, पोते, साले, और भी दूसूरे संबंधी लोग अपनेप्रिा और धनों (की आिा) का त्याग कर के युद्ध र्ें उपजस्थत हैं।

एतातन हततुमच्छार्मर् घ्नतोऽवप र्धुसूदन ।
अवप त्रैलोक्यराजयस्य हेतोः ककं नु र्हीकृते।।३५।।

३५. हे र्धुसूदन! (श्रीकृष्ट्ि) भले इनके द्र्ारा र्ेरा र्ध हो जाए पर र् ैंत्रत्रलोकी के राजय के मलये भी इतहें र्ारनेकी इच्छा नहींकरता, पृथ्र्ी के आधधपत्य की तो बात ही क्या है?

तनहत्य धातरवाष्ट्रातनः का प्रीततः स्याजजनादवन ।
पापर्ेर्ाश्रयेदस्र्ातहत्र्ैतानाततातयनः ।।३६।।

३६. हे जनादवन । (श्रीकृष्ट्ि) इन धृतराष्ट्र के पुत्रों (कौरर्ों) को र्ारनेपर हर्ें कौन-सा सुख मर्ल सकता है? यद्यवप ये आततायी हैं तथावप इतहें र्ारने पर हर् पाप के ही भागी होंगे।

यि सारा प्रकरण िी भयंकर पाप िै- कयोंकक अब संवेदनों और भावावेगों के ववरोि का समथनि करने के शलये नैनतक बोध जाग उठता िै। यि एक पाप िै, आपस के लोगों की मार-काट में न कोई धमसिमममतता िै, न न्यायोधचतताः ववशेषेतः जब कक मारे जानेवाले स्वभावतः िी पूजा और प्रेम के भाजन िैं, जजनके त्रबना व्यजकत जीना िी निींचािेगा, और इन पववत्र भावनाओं को भंग करने ेमें कोई पुण्यकम िनिीं ंिो सकता, और यि और कुछ निीं ंबस घोर पाप िो सकता िै।

तस्र्ातनाहावर्यंहततुंधातरवाष्ट्रान् स्र्बातधर्ान् ।
स्र्जनं दह कथंहत्र्ा सुणखनः स्यार् र्ाधर् ।। ३७ ।।

३७. अतः हर्ारे मलये अपनेही बांधर् धृतराष्ट्र के पुत्रों (कौरर्ों) को र्ारना उधचत नहीं ैहै। क्योंकक हे र्ाधर्! हर्ारे अपनेजनों की हत्या कर के हर् ककस प्रकार सुखी हो सकतेहैं?

श्रीअरववन्द इसका सजीव धचत्रण प्रस्तुत करते िैं कक ववषम पररजस्थनत उपजस्थत िोनेपर मनुष्य की प्रकृनत ककस प्रकार प्रनतकिया करने लगती िै। सबसे पिले तो मन उचट जाता िै, भावनाओं को चोट पिुँचती िै। युद्ध का एक व्याविाररक संकट िै, और उससे संकुचन को उधचत-अनुधचत ठिरानेके शलए नैनतकता, पाप-पुण्य का बोध आगे आता िै। इस तरि व्यजकत का स्वभाव ककसी भी चीज को उधचत-अनुधचत ठिरा सकता िै। इसका मुख्य कारण िै कक अजुनि की प्रकृनत इन भावावेगों को सिन करनेके शलए तैयार निीं ंिै और इससे अपना मुँि मोड़ लेना चािता िै। इसके शलए उसका सारा नैनतक बोध, मन, बुद्धध, धमि–अधम िसंबंधी उसकी धारणाएँ उसके समथनि में उतर आते िैं। िम स्वयंभी सारे हदन इसी प्रकार की किया-प्रनतकिया करते रिते िैं। वास्तव में तो, िमारी शारीररक और प्राखणक प्रकृनत को जो अनुकूल निींलगता उसे मन नैनतकता से, पुराण-कथाओंआहद के माध्यम से उधचत ठिरानेका प्रयास करता िै, और िमें यि आभास िी निीं ंिोता कक िम धोखा खा रिे िैं। गीता इसी से आरंभ करती िै कक जजन भावावेगों को अजुनि सिन निीं ंकर पाता िै, और उनसे अपनेपलायन के समथनि में जो-जो दलीलें देता िै, वे ेसब ककस प्रकार अनुधचत और अपयाप्ति िैं। अजुनि सरीखा भौनतक संवेदनों से चाशलत व्यजकत निीं जानता कक इस तरि की ववकट समस्या को कैसे िल करे। वि निींजानता कक इसे नैनतक आधार पर, व्याविाररक आधार पर, या उसे ज्ञात अन्य ककसी भी आधार पर उसे कैसे िल ककया जा सकता िै। इसीशलए वि किता िै कक, "चािे मेरा सब कुछ नष्ट कयों न िो जाए, तो भी मुझे ेये सब रकतरंजजत सुख-भोग निीं ंचाहिए, इसशलए म ैंइसके शलए लिूं ंिी कयों?" अजुनि की इन बातों का मानशसक स्तर पर कोई उत्र्र िो भी निीं सकता। इस तरि की पररजस्थनत उसके सामने लायी गयी िै और इसके समाधान के तौर पर सबसे पिले उसे उसके क्षत्रत्रय स्वभाव के अनुसार कतव्र्यों की तथा अन्य दानयमवों की याद हदलाई गई िै जजन्िें अजुनि स्वीकार करने वाला निीं थ।ा

यद्यप्येते न पश्यजतत लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मर्त्रद्रोहे च पातकर् ्।।३८ ।।
कथंन ज्ञेयर्स्र्ाभः पापादस्र्ाजतनर्ततुर्र्् ।
कुलक्षयकृतं दोषंप्रपश्यद्मभजनवादवन ।।३९।।

३८-३९. यद्यवप लोभ के द्र्ारा इनकी बुद्धध के भ्रष्ट्र (आच्छाददत) हो जानेके कारि ये लोग कुल के क्षय होने से उत्पतन होनेर्ाले दोष को और मर्त्र का अतनष्ट्र करनेर्ें होनेर्ाले पाप को नहींदेखते हैं, परंतु ुहे जनादवन! हर् लोग तो कुल के क्षय होने से उत्पतन होनेर्ाले दोष को देखतेहैं (सर्झते हैं) तब किर इस पापकर् वसे हटने के मलए हर्ें अपना वर्ेक क्यों न कार् र्ें लेना चादहए?

गीता की शशक्षा में िम देखते िैं कक अिभाव से मुजकत की जो मागँ की जाती िै वि ककतनी सूक्ष्म वस्तु िै। अजुनि शजकत के अिंकार एवं ंक्षत्रत्रय के अिंकार द्वारा लड़नेके शलये प्रवृत्त िोता िै; इससे ववपरीत उसकी दुबुलिता के अिंकार द्वारा, उसके संकुचन द्वारा, अरुधच के भाव द्वारा तथा मन, स्नायववक सत्ता और इजन्रयों को अशभभूत करनेवाली शमथ्या 'करुणा' द्वारा उसे युद्ध से पराङ्गमुख कर हदया जाता िै, यि वि 'हदव्य करुणा' निीं ंजो भुजाओं को सुदृढ़ बनाती िै तथा ज्ञान को सुस्पष्ट बना देती िै। परन्तु उसकी यि दुबुलिता मयाग का तथा पुण्य का बाना पिनकर आती िै: "इन रुधधरशलप्त भोगों को भोगने से तो शभक्षुक का जीवन व्यतीत करना किीं अच्छा िै; मुझेसमस्त पृथ्वी का राज्य भी निीं ंचाहिये, न देवताओं का िी राज्य चाहिए।" िम कि सकतेिैं कक गुरु की ककतनी बड़ी मूखतिा िै कक उसकी इस वृवृत्त् का समथनि निीं ंककया, संन्याशसयों की सेना में एक और मिान् ् आममा की वृद्धध करने ेतथा संसार के सामने पावन मयाग का एक और उज्ज्वल दृष्टान्त उपजस्थत करनेका यि भव्य अवसर खो हदया। परन्तुहदव्य पथप्रदशकि, ऐसे पथप्रदशकि जजन्िें शब्द-आडंबर द्वारा छला निींजा सकता, इसे ककसी और िी रूप में देखते िैं, "ये दुबुलिता, ववभ्म-मनत और अिंकार िैं जो तेरे अन्दर बोल रिे िैं। आममतत्त्व को देख, अपनी आखेँ ज्ञान की ओर खोल, अपनी अिबद्ध आममा को शुद्ध कर।" और, उसके बाद? "युद्ध कर, ववजय प्राप्त कर, एक समृद्ध राज्य का उपभोग कर।" अथवा प्राचीन भारतीय परंपरा से एक अन्य दृष्टान्त लें। ऐसा प्रतीत िो सकता िै कक यि अिंकार िी था जजसने ेअवतारी पुरुष राम को लंका के राजा से अपनी पमनी को पुनः प्राप्त करनेके शलये एक सेना खड़ी करनेतथा एक राष्ट्र का ववनाश करने ेको उद्यत ककया। परन्तु कया यि इससे कम अिंकार िोता यहद वे ेउदासीनता का जामा पिन ज्ञान के प्रचशलत शब्दों का दुरुपयोग करते िुए किते, "मेरी कोई पमनी निीं,ं कोई शत्रु ुनिीं, कोई कामना निीं;ं ये तो इजन्रयों के भ्म िैं, मुझेतो ब्रह्म-ज्ञान का संवद्धिन करना चाहिये और जनक की पुत्री के साथ रावण जो चािे करे।"

जैसा कक गीता बलपूवकि किती िै, इसकी कसौटी भीतर िै। वि यि कक अन्तराममा को लालसा और आसजकत से मुकत रखा जाये, परंतु साथ िी इसे अकम िके प्रनत आसजकत से तथा कम िकरनेके अिपूण िआवेग से भी मुकत रखा जाए, पुण्य के बाह्य रूपों के प्रनत आसजकत तथा पाप के प्रनत आकषणि - दोनों से िी एक समान मुकत रखा जाये। एकमेव आममतत्त्व में ननवास करने तथा उस एकमेव आममतत्त्व में कम िकरने के शलये 'म-ैंपन' और 'मेरा-पन' से मुकत िोना िोगा; ववराट् (वैजश्वक) पुरुष के ककसी व्यजकत-ववशशष्ट केन्र के द्वारा कम िकरने ेसे इंकार करने के अिंकार का मयाग करना और साथ िी सब कुछ को छोड़कर केवल अपने वैयजकतक मन, प्राण और शरीर की सेवा करनेके अिंकार का भी मयाग करना िोगा। आममा में ननवास करने का अथ ियि निीं ंकक ननव्यजिकतक आममानन्द के उस मिासागर में ननमग्न िो सब वस्तुओं से बेखबर एकमात्र अपने हित उस अनन्त के अंदर ननवास ककया जाए; अवपतु इसका अथ िैि उस (परम) आममा की तरि और उस आममा में ननवास करना जो इस दिे में तथा सब दिेों में और साथ िी सब दिेों से परे भी समान रूप से ववद्यमान िै। यिी पूणज्ञिान िै।

कुलक्षये प्रिश्यजतत कुलधरा्ःव सनातनाः ।
धरे् नष्ट्टे कुलंकृत्स्नर्धरो् ऽमभभत्युर्त ।॥४०॥

४०. कुल का क्षय होने से सनातन कुलधर् वनष्ट हो जाता है; और धर् वके नष्ट हो जाने पर अधर् वसंपू वकुल को अमभभूत कर लेता है।

अधर्ामवभभर्ात्कृष्ट् प्रदुष्ुट्यजतत कुलजस्त्रयः ।
खीषु दुष्ुट्टासु ुर्ार्ष्र्ये जायते र्ि्सवङ्करः ।।४१।।

४१. हे कृष्ट्! अधर् वकी अमभरृ्द्धध हो जानेसे कुल की जस्त्रयाँ दुशुचररत्र हो जाती हैं। है र्ष्र्ये (श्रीकृष्ट्) । जस्त्रयों के दुशुचररत्र होनेपर र्ि्ाँ का सांकय वउत्पतन होता है।

सङ्करो नरकायैर् कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतजतत वपतरो ह्येषां लुप्तवपण्डोदककक्रयाः ।।४२।।

४२. र्ि्सवांकय वकुलनिाक लोगों को और स्वं कुल को भी नरक र्ें ले जानेका कारि बनता है; क्योंकक वपण्ड और जल की कक्रया के लुप्त हो जानेसे इनके वपतर (वपतृलोक से) धगर जाते हैं।

दोषैरेतैः कुलघ्नानां ंर्ि्सवङ्करकारकैः ।
उत्साद्यतते जाततधर्ाःव कुलधर्ाश्वर् िाश्र्वताः ।।४३।।

४३. कुलघाततयों के इन र्ि्सवांकय वके उत्पादक दोषों से सनातन जाततधर् वऔर कुलधर् वनष्ट हो जाते हैं।

उत्सतनकुलधर्ाि्व ां र्नुष्ट्याि्ांजनादवन ।
नरकेऽतनयतं र्ासो भर्तीत्यनुिुश्रुर् ।।४४।।

४४. हे जनादवन ! जजनके कुलधर् वनष्ट हो गये हैं उन र्नुष्ट्यों का नरक र्ें तनश्चय ही तनर्ास होता है। ऐसा हर्ने े सुना है।

अहो बत र्हत्पापं कतुं ंव्यर्मसता र्यर् ्।
यद्राजयसुखलोभेन हततुं स्र्जनर्ुद्यताः ।।४५।।

४५. अहो ! खेद की बात है कक हर् लोगों ने बहुत ब्ि े पाप (के) करने े का तनश्चय ककया है जो हर् राजयसुख के लोभ से अपनेआत्र्ीय जनों का र्ध करने के मलये तैयार हुए हैं।

यदद र्ार्प्रतीकारर्ि्स्त्रं ि्त्रपार्ायः ।
धातरवाष्ट्रा रि हतयुस्ततर्े क्षेर्तरं भर्ेत् ्।।४६।।

४६. इसकी अपेक्षा यदद िस्त्रों से रदहत और कुछ भी प्रततकार न करते हुए रुझको िस्त्रधारी धृतराष्ट्र के पुत्र युद्ध र्ें ग्रार डालें तो यह र्ेरे मलये अधधक कल्याकारी होगा।

सञ्जय उर्ाच

एर्ुक्त्र्ाऽजुनवः संख्ये रथोपस्थ उपावरि्त् ्।

वर्सृजृय सिरं चापंकिसंवग्नर्ानसः । ॥४७॥

४७. सञ्जय ने कहाः युद्धभूमर् र्ें ऐसा कहकर अजुनव िोक से व्यधथत-धचत्त हो गया और बिासदहत धनुष को पररत्याग कर के रथ के वपछले भाग र्ें अपनेस्थान पर बैठ गया।

.....यद्यवप अजुनि को केवल अपनी िी पररजस्थनत से, अपने िी आंतररक संघष िऔर कमि–ववधान से मतलब िै, तथावप जैसा कक िम देख चुके िैं, जो ववशेषे प्रश्न अजुनि ने उठाया िै और जजस ढंग से उठाया िै वि वास्तव में मनुष्य-जीवन और कम िके सारे िी प्रश्न को सामनेले आता िै। यि संसार कया िै और कयों िै और जैसा यि िै उसमें इस सांसाररक जीवन का आममजीवन के साथ कैसे मेल बैठे? इस समस्त गिरे और कहठन ववषय का हदव्य गुरु ठीक उस आधारशशला के स्थापन के रूप में िल करना चािते िैं जजस पर वे उस कम िका आदेश देते िैं जजसे सर्त्ा के एक नवीन सन्तुलन से और एक मोक्षप्रद ज्ञान के प्रकाश द्वारा करना िोगा।

तब कफर वि कौन-सी चीज िै जो उस मनुष्य के शलए कहठनाई उपजस्थत करती िै जजसे इस संसार को, जैसा यि िै, वैसा िी स्वीकार करना िै और इसमें कम िकरना िै और साथ िी अपनेअन्दर की सर्त्ा में, आध्याजममक जीवन में ननवास करना िै। संसार का यि पिलू ूकया िै जो उसके जागृत मन को व्याकुल कर देता िै और ऐसी अवस्था ला देता िै जजसके कारण गीता के प्रथम अध्याय का नाम 'अजुनि-ववषादयोग' साथकि िुआ; वि ववषाद और ननरुमसिा जो मानव-जीव को तब अनुभूत िोता िै जब यि संसार जैसा िै ठीक वैसा िी, अपनेअसली रूप में उसके सामनेआता िै और उसे इसका सामना करना पड़ता िै, जब आचार और नेकी के भ्म का परदा आखोँं के सामने से, और ककसी ब्िी चीज के साथ उसका मेल िोने ेसे पिले िी, फट जाता िै? यि वि पिलू िै जजसने बाह्य रूप से कुरुक्षेत्र के नर-संिारि और रकतपात के रूप में आकार ग्रिण ककया िै और आध्याजममक रूप से समस्त वस्तुओं के स्वामी के कालरूप-दशनि के रूप में जो उन प्राखणयों का भक्षण करनेऔर नष्ट करने ेके शलये प्रकट िुए िैं जजनर्ें स्वियं उन्िोंनेरचा िै।.... जीवन एक युद्ध और एक संिारक्षेत्र िै, यिी कुरुक्षेत्र िै; ये भगवान् ् मिाभयंकर िैं, यिी दशनि अजुनि को उस समर भूशम पर दृजष्टगोचर िोता िै।

....यहद िम जरा भी भगवान् ्की सर्त्ा को स्वीकार करते िैं, जैसा कक गीता स्वीकार करती िै, तिने का तामपय ििै कक यहद वे ऐसे सवव्यापी, सवज्ञि और सवशिजकतमान् ्िैं कफर भी सदा परामपर-पुरुष िैं जो जगत् ्को प्रकट कर के स्वयंभी उसमें प्रकट िोतेिैं, जो अपनी माया, प्रकृनत या शजकत के दास निीं,ं अवपतु प्रभु िैं, जो अपनी जगत्–संकल्पना या रूपरेखा में अपनिी बनाए जीव-जन्तुओं, मानव-दानव द्वारा बाधधत या कुंहठत निीं

ककये जा सकते, जजन्िें अपनी सृजृष्ट या अशभव्यजकत के ककसी भाग के उत्र्दानयमव को अपनेसृषृट या अशभव्यकत प्राखणयों के ऊपर लादकर स्वयं उससे मुकत िोने ेअथवा अपनी प्रामाखणकता शसद्ध करने ेकी कोई आवश्यकता निीं ंिै; (यहद िम ऐसा स्वीकार करते िैं) तब तो मानव को एक मिान् ्और दु:साध्य श्रद्धा धारण कर के िी आगे बढ़ना िोगा। जब मानव अपने-आपको एक ऐसे जगत् ्में पाता िै जो देखने में युद्धरत शजकतयों की एक भीषण ववश्रृंखलता, ववशाल और अंधकारमय शजकतयों का संग्राम प्रतीत िोता िै, जिा ँजीवन सतत् ्पररवतनि और

मृमृयु

द्वारा िी हटका िुआ िै, और जो व्यथा, यंत्रणा, अमंगल और ववनाश की ववभीवषका द्वारा चारों ओर से नघरा िुआ िै, और जब ऐसे जगत् ्के अन्दर उसे सभी में सवव्यापी ईश्वर को देखना िोता िै और इस बात के प्रनत सचेतन िोना िोता िै कक इस पिेली का कोई िल अवश्य िै और यि कक जजस अज्ञान में वि अभी ननवास करता िै उसके परे

कोई ऐसा ज्ञान िै जो इन ववरोधों में सामंजस्य स्थावपत कर देता िै, तो उसे इस श्रद्धा के आधार पर ख़िा िोना िोगा कक, 'भले तुम मुझे ेमार भी िालो, कफर भी म ैंतुमिारा भरोसा िी करूंगा।' समस्त मानव धचंतंन अथवा श्रद्धा जो सकिय और ननश्चयामक िोती िै, चािे वि ईश्वरवादी िो, सवेश्वरवादी िो या अनीश्वरवादी िो, वि ननजश्चत तौर पर न्यूनाधधक स्पष्टता और पूणताि के साथ इस प्रकार के ककसी भाव को अपने में रखती िै। यि स्वीकार करती िै और ववश्वास करती िै : स्वीकार करती िै जगत् ्को ववसंगनतयों को, और ववश्वास करती िै भगवान्, ्

वैजश्वक सर्त्ा या 'प्रकृनत' के ककसी उच्चतम तत्त्व में जो िमें इन ववसंगनतयों को अनतिम करने, े अनतिांत या ववजजत करने तथा समस्वर करने ेमें समथ िबनाएगा, और कदाधचत् ्ये तीनों िी कियाएँ एक साथ करने में समथ िो। उपजस्थत प्रश्न एक ब़िा िी मूलभूत प्रश्न िै। सारी मनुष्यजानत के शलए सदा से िी यि ब़िी ववकट

बनाएगा कक अनतिम और अनतिांत करने के द्वारा समस्वरता चररताथ िकरें।

समस्या रिी िै। श्रीअरववन्द किते िैं कक यद्यवप अन्य कुछ ने इसका अपनेतरीके से समाधान करने ेका प्रयास ककया िै परंतु हिन्दुसुतान ने िी मूलभूत रूप से इसका िल ककया िै। गीता उसी प्रश्न को सामने ला रिी िै, यिी कुरुक्षेत्र िै, कक िमारे समाज में सब जगि एक प्रचशलत धारणा यि िै कक परमाममा, अल्लाि, गॉ – भले िम जजस

भी नाम से उन्िें पुकारें - ब़िे िी दयालु िैं। और वेदान्त तो यिा ँतक किता िै कक वे स्वयंिी इन सब रूपों को धारण ककए िुए िैं। इसशलए यि तो प्रश्न िी निीं उठता कक वे स्वयंके साथ कोई अनुधचत व्यविार करेंगे। उनकी प्रववृत्र्त् स्वयंको पीड़ित करने में आनंद लेने की या कफर दूसूरों को सताने में आनंद लेने की निीं। कोई भी धम िइस पर ववश्वास निीं ंकरता। अब यहद िम चीहटयों के दृजष्टकोण से इस संसार को देखें तो उन्िें कदाधचत् ्िी यि रास आता िोगा? उसी प्रकार जब िम कमजोरों पर अमयाचार, प्रकृनत का दोिन, आपसी ल़िाई-झग़िा, जस्त्रयों पर अमयाचार, ननदोष व्यजकतयों की िमया, बुरे लोगों को शासन आहद करते देखतिैं तो िमारा नैनतक बोध, सौंदयामिमक बोध आित िोता िै और तब यि प्रश्न उठना स्वाभाववक िी िै कक परमाममा ऐसा कयों करते िैं? जब

धम िका काम िै मानव को भगवान् ्की ओर अशभमुख करना, तो इस समस्या का समाधान करना उसके शलये पिली आवश्यकता बन जाती िै।

इस समस्या के समाधान िेतु शभन्न तकि हदये जाते िैं। एक किता िै कक परमाममा की बात न मानकर मनुष्य नेत्रुहट की और उसका दण्ि तो उसे भोगना िी प़िेगा। दूसूरा किता िै कक व्यजकत ने पूवजिन्म में कोई पाप

ककये िैं इसशलए उन कमों का पररणाम तो भोगना िी पड़ेगा। विीं तीसरा किता िै कक परमाममा तो दयालु िैं परंतु एक शैतान भी िै जो ये सब काम करवाता िै। यहद व्यजकत परमाममा के ववधान के अनुसार चलेगा तो वि शैतान से बच जाएगा अन्यथा शैतान के िाथों में जा धगरेगा और कफर अनेक तरीकों से यंत्रणाएँ पाएगा। इसशलए ये सारे बुरे काम शैतान के कराए िुए िैं। जगत् ्की ववषमताओं के स्पष्टीकरण शलए इस प्रकार के शभन्न-शभन्न तकि हदये जाते िैं।

परन्तु श्रीअरववन्द यिाँ अपनी टीका में कि रिे िैं कक जो परमाममा स्वयं िी सभी जगि अशभव्यकत िो रिे िैं, उन्िें इस सबके शलए मनुष्यों को या उन शजकतयों को जजममेदार ठिराने की आवश्यकता निीं िै जजन्िें उन्िोंने े स्वयं िी रचा िै। वे कमजोर निीं ंिैं कक अन्य कोई शजकत आकर उन्िें सीशमत कर सके या उनकी इच्छा को

ववफल कर सके। भारतीय संस्कृनत के अंदर इस ववषय में सदा िी स्पष्ट बोध रिा िै कक परमाममा की इच्छा िी एकमात्र प्रभावी िोती िै। तब कफर कुरुक्षेत्र का जैसा भयंकर स्वरूप िै और जजस प्रकार का परम दयालु स्वरूप परमाममा का बताया जाता िै, इन दोनों में मेल कैसे बैठाया जाए? बाह्य प्रतीनतयों के स्तर पर इस समस्या का िल निीं ंककया जा सकता। इसशलये जो ईश्वर की सत्ता को मानने ेवाला िै, सद्भाव वाला, सहृदय व्यजकत िै उसे तो इस सुदृढ़ श्रद्धा का आश्रय लेना िी पड़ेगा कक भले िी प्रतीनत में बुराई शासन करती िै, ननदोष व्यजकतयों की िमया िोती िै, और यद्यवप वि स्वयं भी इससे ग्रस्त िै और स्वयं तकलीफ में आ सकता िै तो भी परमाममा तो सदा कल्याण िी करते िैं।
अतः इसके समाधान िेतु दूसरा तकि हदया जाता िै कक जजस प्रकार माता-वपता अपने बच्चों का भला िी चािते िैं परन्तु कई बार बच्चों को उनका ककया िुआ समझ न आने के कारण बिुत बुरा लगता िै उसी प्रकार परमाममा तो िमारे भले के शलए िी सब कुछ करते िैं ककन्तु िम उसे निीं समझ पा रिे िैं और जजस हदन िमारे अन्दर चेतना जागृत िोगी उस हदन िम इसका अथ ि समझ जाएँगे, और जब िम समझ जाएँगे तो भगवान् ्के सियोग से इससे ऊपर उठ जाएँगे और ऐसी भव्यताओं में प्रवेश करेंगे जो कक परमाममा िमारे शलए संजोए िुए िैं पर जजनकी िम अब कल्पना भी निीं ंकर सकते। यि सकाराममक आध्याजममकता िै। इसमें व्यजकत देखेगा कक परमाममा केवल करालवदना काली िी निीं िैं, वे े उदार माता भी िैं। अतः अजुनि को िल तब शमलेगा जब वि इस कुरुक्षेत्र को एक कम भयिाांत दृजष्ट से देखेगा, जो कक मानव दृजष्ट की एक मूलभूत समस्या िै।

प्रश्न : तो कफर कमि–ववधान और संस्कार का आधार कया िै?

उत्तर : यि तो केवल एक स्पष्टीकरण िै, एक व्याख्या करने का तरीका मात्र िै। अन्यथा इस सब प्रपंच की, घोर प्रतीनतयों की व्याख्या कैसे की जाए। कयोंकक िमारे नैनतक बोध के अनुसार यहद कोई अच्छे काम करे और उसके साथ भी बुरा बतिाव िो या बुरे पररणाम आएँ, तो इसकी व्याख्या कैसे की जाए। अतः या तो इसके शलए भगवान् ्पर दोष मढ़ा जाए या कफर वपछले जन्मों में ककये कमि–ववधान का तरीका ननकाला जाए।

[कयोंकक] भगवान् ्केवल संारिकाििाि निंअवपतु सब प्राखणयों के परम सुहृद् भी िैं; केवल वैजश्वक त्रत्रदेव िी निंअवपतु परामपर पुरुष भी िैं; जो करालवदना काली िैं वे स्निैमयी मंगलकाररणी माता भी िैं; कुरुक्षेत्र के प्रभु हदव्य सखा और सारथी भी िैं, सब प्राखणयों के मनमिोन िैं, साक्षात् ्(अवतारी) श्रीकृष्ण िैं। और इस संग्राम, संघष िऔर ववश्रृंखला में से िोकर वे िमें जिााँ किीं ंभी ले जा रिे िों, जजस भी लक्ष्य या देवमव तक वे िमें आकृष्ट कर रिे िों, परंतु इसमें संदेि निीं ंकक वे िमें इन सभी पिलुओं की ककसी परामपरता तक ले जा रिे िैं...पर किा,ाँ कैसे, ककस प्रकार की परामपरता से, ककन पररजस्थनतयों से, यि िमें ढूाँढ़ना िोगा, और इसे ढूाँढ़ने ेके शलये पिली आवश्यकता िै कक इस जगत् ्को जैसा यि िै वैसा देखें, और उनकी किया आरमभ में और अब जैसे-जैसे अपने-आप को प्रकट करती जाए वैसे-वैसे उसका अवलोकन करते जाएाँ और उसका उधचत मूल्यांकन करते जाएाँ, इसके बाद उनका माग िऔर लक्ष्य बेितर रूप में स्वयं प्रमयक्ष िो जाएाँगे। इससे पूव िकक िम अमर जीवन की ओर मिारे माग िको खोज सकें, िमें कुरुक्षेत्र को स्वीकार करना िोगा, िमें मृमयुके द्वारा जीवन का जो ववधान िै उसे स्वीकार करना िोगा। िमें अवश्य िी अपनी आखोंें खोलकर, अजुनि की अपेक्षा कम व्यधथत दृजष्ट से, काल और मृमयु के िमारे स्वामी का दशनि करना िोगा और इस वैजश्वक संारिकिता* को अस्वीकार करने,े इससे घृणाा करने या इससे भयभीत िोने की वृवृत्ति् को छोि़ देना िोगा।....केवल कुछ िी ऐसे धम िरिे िैं जजन्िोंने भारत के सनातन धम िके समान ननःसंकोच रूप से यि किनेका सािस ककया िै कक यि रिस्यमय ववश्व-शजकत एक भगवत्त्त्व िै, एक त्रत्रमूनत िै; जजसने ेकक इस जगत् ्में कियारत शजकत के स्वरूप को न केवल परोपकारी दुगाा िके रूप में िी ऊाँचा निीं ंउठाया अवपतु रकतरंजजत संारि-नृमय करनेवाली, करालवदना काली के रूप में भी प्रनतजष्ठत करने ेऔर यि किने का सािस ककया िै कक "यि भी परम माता िै; इन्िें भी परमेश्वरी जानो और यहद तुममें सामथ्य ििो तो इनका भी पूजन करो।" यि बड़ी मित्त्वपूण िबात िै कक जजस धम िमें ऐसी अचल समयननष्ठा और ऐसा प्रचण्ि् सािस रिा था विी ऐसी गंभीर और व्यापक आध्याजममकता का ननमाणि करने में सफल िो सका, जजसकी कोई बराबरी निींकर सकता। कयोंकक समय िी वास्तववक आध्याजममकता का आधार िै और सािस उसकी आममा।

जो चर्चिाम पिले कर चुके िैं यि उसी का ववस्तार िै। परमाममा के रचनाममक और ववनाशकारी दोनों िी रूपों को स्वीकार करना िोगा। कुरुक्षेत्र को इस दृजष्ट से देखना िोगा कक इसके पीछे भी प्रभु की लीला िै, जजसे िम भले िी समझ तो निीं सकते परन्तु कफर भी जजसके पीछे कुछ-न-कुछ शुभ अवश्य िै। हिन्दुसुतान ने कभी ऐसा निीं ंमाना कक भगवान् ्कुछ गलत करते िैं या उनका कोई ववरोधी िै जो ऐसा करता िै, या कफर उनका ववनाशकारी पक्ष तो बिुत खराब िै और सृजनाममक पक्ष बिुत अच्छा िै। उन्िोंने तो काली को भी माता माना िै। और जजसमें यि सािस निीं िै कक इस दृश्य का सामना कर सके उसके शलए वास्तव में आध्याजममकता का कोई मूल्य निीं िै। अब अजुनि के शलए आवश्यक िै कक कुरुक्षेत्र को जजस जोश से, जजस भाव से वि देखता िै उसकी बजाय अधधक गिरे दृजष्टकोण से देखे, इस श्रद्धा के साथ देखे कक इस सब के पीछे कोई शुभ नछपा िै। इसी जस्थनत तक ले जाने के शलए और उसे समझानेके शलए कक इसका कया अथ ििै श्रीकृष्ण, जब अजुनि ने वि रूप देखने की इच्छा प्रकट की तब, ग्यारिवें अध्याय में उसे वि हदखाते िैं और कफर सारी चीजें समझाते िैं।

अभी यि गीता का आरमभ िै कक वास्तव में जगत् ्जैसा दृश्यमान िोता िै उसमें ककस तरि एक आध्याजममक दृजष्टकोण या भाव रखा जा सकता िै, और उसे रखते िुए व्याविाररक जीवन में किया की जा सकती िै। इस प्रश्न का िल यिी िै कक इस सबको िमें इस श्रद्धा के साथ देखना िोगा कक इसके पीछे भगवान् ्का कल्याणकारी िाथ िै भले िम इसे समझ न पातेिैं। इसे समझनेके शलए िमें उस चेतना में जाना िोगा जिा ँिम इसे समझ सकतेिैं कक जिाँ भगवान् ्का रूप भयंकर मिाकाली का िै, तो विीं मिालक्ष्मी का भी िै, श्रीकृष्ण का रूप जिाँ ववनाशक कालपुरुष का िै, तो विीं सखा, वप्रय, मधुर बोलने वाले का भी िै और साथ िी चार िाथों वाले ववष्णु का अभयदान देनेवाला रूप भी िै और जिाँ इन सबका समन्वय िो सकता िै।

यिा ँिमें स्मरण रखना िोगा कक गीता की रचना ऐसे समय में िुई थी जब युद्ध मानव कियाकलाप का आज से भी अधधक आवश्यक अंग था और जीवन की व्यवस्था से उसके बहिष्कार का ववचार तब एक पूण िरूप से असंभाव्य अथवा काल्पननक बात िोती। ववश्व-शांनत और मनुष्यों में पूण िसद्भाव का शसद्धांत - कयोंकक त्रबना एक ववश्वव्यापी और पूण िपारस्पररक सद्भाव के कोई सच्ची और स्थायी शाजन्त निीं ंिो सकती िमारी मिोन्ननत

----

* मानवकी दृजष्ट को भले शुभ लगे अथवा अशुभ, केवल शुभ के शलए िी गुप्त संकल्प काय िकर सकता िै। िमारी ननयनत दोिरे अथों में शलखखत िैः 'प्रकृनत' के द्वंद्वों द्वारा िम भगवान् ्के सजन्नकट पिुँचते िैं, अंधकार से ननकले िैं पर कफर भी प्रकाश की ओर बढ़ते िैं। मृमृयु तो अमरता की ओर िमारा पथ िै।
'त्राहि-त्राहि' जगत् ्की अशभशप्त वाखणयाँ पुकारती िैं, कफर भी अंततः शाश्वत 'शशव' ववजयी िोता िै।

के इनतिास में एक क्षण के शलये भी मानवजीवन को अधधकृत करने में सफल निीं िुआ िै, कयोंकक नैनतक, सामाजजक और आध्याजममक रूप से जानत इसके शलए तैयार निीं थी और अपने ववकासिम में प्रकृनत का संतुलन या उसकी जस्थनत ऐसे ककसी भी अनतिमण िेतु अपने को आकजस्मक रूप से तैयार करने की स्वीकृनत निीं देती। अभी तक भी िम लोगों ने वास्तव में ककसी ऐसी व्यवस्था की संभावना से परे ववकास निीं ंककया िै जिा ँपरस्पर ववरोधी स्वाथों के बीच यथासंभव कोई समझौता कर लेने की प्रववृत्त् न िो, जजससे कक घोर-संघषों की पुनरावृवृत्् को कुछ कम ककया जा सके।.... संभवतः एक हदन आ सकता िै, िम तो किेंगे, ननश्चय िी आयेगा, जब मनुष्य-जानत आध्याजममक, नैनतक और सामाजजक रूप से सवव्यािपी शांनत के राज्य के शलए तैयार िोगी; ककंतु तब तक ककसी भी व्याविाररक तत्त्वज्ञान और धम िको, युद्ध के पिलू को और मनुष्य के योद्धा-रूप स्वभाव और कतव्यि को स्वीकार कर उसका समाधान करना िी िोगा। जीवन को अपने वतमािन स्वरूप में िी लेते िुए, न कक केवल इस रूप में कक ककसी सुदूरू भववष्य में उसका स्वरूप कया िोगा, गीता यि प्रश्न करती िै कक जीवन के इस पिलू तथा किया को, जो कक वास्तव में मनुष्य की सवसिाधारण गनतववधध का िी अंग और स्वभाव िै, ककस प्रकार आध्याजममक जीवन के साथ सुसमंजंस ककया जा सकता िै।

मानव की न्यायननष्ठता के शलए यि उसका वैजश्वक अपराध ि,ै
उस सवशिजकतमान् ्का शुभु और अशुभु से परे रिना
पुण्याममा को इस दुष्ुट जगत् ्में उनके भाग्य के भरोसे छोड़
इस भयंकर दृश्य में पापाममा को राज करने देना।
सब कुछ प्रतीत िोता िै ववरोध और संघष िऔर संयोग,
एक ननरुद्देश्य श्रम और बिुत अल्प अथ,ि
उन आखोँ के शलए जो एक अंश देखती िैं, और समग्र को चूक जाती िैं...

इस प्रकार पहला अध्याय 'अजुनववर्षादयोग' सऱाप्त होता है।

दूसूरा अध्याय

I.आयिक्षत्रत्रयकाधममित

-

सञ्जय उर्ाच

तं तथा कृपयावर्ष्टर्शुरुपूाकुवलेक्षिर् ्।

वर्षीदततमर्दं र्ाक्यरुर्ाच र्धुसूदनः ।।१।।

१. सञ्जय ने कहाः इस प्रकार वर्षाद से भरे हुए, आसुाँओंसे भरपूर और व्याकुल नेत्रोंर्ाले, तनरुत्साह और िोक से अमभभूत हृदय र्ाले अजुनव से र्धुसूदन (श्रीकृष्ट्ि) ने ये र्चन कहेः

अजुनि की प्रथम आवेशपूण िअिपरक शंकाओं की बाढ़ के शलए, संारि कम िसे पीछे िटने, उसके दुःख और पाप के बोध, एक ररकत और नन:सार जीवन के शलए शोक-संताप और पाप कम िसे िोने ेवाले पापमय पररणामों के पूवानुिमान के शलए, हदव्य गुरु का उत्र ि एक क़ि ेशब्दों में फटकार।

श्रीभगर्ान् ्उर्ाच

कुतस्त्र्ा कश्र्लमर्दं वर्षर्े सर्ुपजस्थतर् ्।

अनायजुवष्ट्टरुर्ण्यर्वर्कीततकवरर्जुनव ।।२।।

२. श्रीभगर्ान् ्ने कहाः हे अजुनव। इस कदठनाई एर्ं संकट की घ़िी र्ें यह वर्षाद (कश्र्ल) तेरे र्ें कहा ाँसे आ गया है? यह आय व(श्रेष्ट्ठ) जनों के द्र्ारा पसंद नहींककया जाता; न यह स्र्ग वकी प्राजप्त कराता है और न ही कीतत वकी।

क्लैब्यं ंर्ा स्र् गर्ः पाथ वनैतत्त्व्य्युपपद्यते ।

क्षुद्रं हृदयदौबल्वयंत्यक्त्र्ोवत्तष्ट्ठ परंतप ।।३।।

३. हे पाथ!व नपुंसकता को र्त प्राप्त हो; यह तेरे योग्य नहींहै। हे परंतप! (ित्रुओं का दर्न करने र्ाले) अपनेहृदय की इस तुच्छ दुबुलवता का पररत्याग कर के (युद्ध के मलये) ख़िा हो।

कया िम किंगे कक यि तो एक वीर का दूसूरे वीर को वीरोधचत उत्र ि, ककन्तु वि र्नींजजसकी िम हदव्य गुरु से आशा करते िैं; इसके ववपरीत उनसे कया यि आशा र्नीं ंकी जानी चाहिये कक वे सदा मृदुतु, साधुता एवं ं आमममयाग के भावों को तथा सांसाररक ध्येयों से पीछे िटने और संसार की रीनतयों से छूट ननकलने को िी प्रोमसाहित करेंगे? गीता स्पष्ट रूप से किती ि कक अजुनि अवीरोधचत दुवुलिता में जा प़ि ि... कयोंकक वि करुणा से अिांत, 'कृपयाववष्टम्' ्, िो गया ि। तो कया यि दैवी दुबुलिता र्नीं? कया करुणा एक हदव्य भावावेग र्नीं ि, जजससे इस प्रकार की क़ि फटकार के साथ ननरुमसाहित र्नींककया जाना चाहिए? अथवा कया िम ककसी ऐसी शशक्षा के समक्ष तो र्नीं जो केवल युद्ध और वीर कम िका िी उपदेश देती िो...स्वयंपरम गुरु िी आगे के एक अध्याय में दैवी समपदा के गुणों को धगनातिुए प्राणीमात्र पर दया, मृदुतु, िोध से तथा हिंसा और कष्ट देनेकी कामना से मुजकत आहद को ननभयिता, ओज और तेज के बराबर िी आवश्यक बतलाते िैं। िूरता, कठोरता, भयानकता और शत्रुओंके वध में िष,ि धन-संचय और अन्यायपूण िभोग आसुरी समपदाएँ िैं, इनकी उमपवर्त् उस प्रचण्ि आसुरी प्रकृनत से िोती ि जो जगत् ्में और मनुष्य में भगवान् ्की सर्त्ा को अस्वीकार करती ि और केवल

कामना को ि◌ी अपना आराध्यदेव जानकर पूजती ि◌ै। तो कफर ऐसे ककसी दृजष्टकोण से तो अजुनि की दुबुलिता फटकारी जानेयोग्य निीं ि◌ै...

एक दैवी करुणा ि◌ै जो ि◌मारे पास ऊपर से उतरती ि◌ै...यि करुणा युद्ध और संघष ि◌को, मनुष्य के बल और उसकी दुबुलिता को, उसके पुण्यों और पापों को, उसके ि◌ष ि◌और संताप को, उसके ज्ञान और अज्ञान को, उसकी बुद्धधमर्त्ा और मूखिता को, उसकी अभीप्सा और उसकी असफलता (आहद द्वंद्वों) को एक प्रेम, ज्ञान और शांत जस्थर सामथ्य ि◌की दृजष्ट से देखती ि◌ै और उनमें प्रवेश कर के सबकी सिायता करती और सबके कलेश का ननवारण करती ि◌ै। साधु और परोपकारी में यि अपने-आप को प्रेम या उदारता की बिुलता के रूप में मूनतमिान कर सकती ि◌ै; ववचारक और वीर में यि उपकारी प्रज्ञा एवं बल की ववशालता तथा शजकत का रूप धारण करती ि◌ै। यिी आय ि◌ योद्धा की वि करुणा, उसके शौय ि◌का प्राण ि◌ै जो ककसी घायल अथवा क्षत-ववक्षत को निीं ◌ंमारा करती, अवपतु दुबुलि की, दशलत की, अिीत और पनतत की सिायता और रक्षा करती ि◌ै। परन्तु वि भी हदव्य करुणा ि◌ी ि◌ै जो बशलष्ठ आततायी और घृष्ट अमयाचारी को मार धगराती ि◌ै, ककसी प्रकार की घृणा तथा प्रचंड ि◌ोध के कारण निीं,◌ं कयोंकक ये कोई उच्च हदव्य गुण निीं ि◌ैं, पावपयों पर ईश्वर का कोप, दुष्टों से ईश्वर की घृणा इमयाहद बातें अद्धि-प्रबुद्ध संप्रदायों की वैसी ि◌ी कजल्पत कािाननयाँ ि◌ैं जैसे कक उनके द्वारा आववष्कृत नरकों की अनंत काल तक चलती यातनाओं की कथाएँ – अवपतु, जैसा कक प्राचीन आध्याजममकता ने स्पष्ट रूप से देखा, कक जब वि बल के मद से मर्त् पापी दैमय का संिार करती ि◌ै तो ऐसा वि उतनी ि◌ी प्रेम और अनुकंपा के साथ करती ि◌ै जजतनी प्रेम और अनुकंपा वि उन दीन-दुखखयों और पीड़ितों पर करती ि◌ै जजनन्िें उस दैमय की हिंसावृर्त् और अन्याय से इसे बचाना ि◌ोता ि◌ै।

परन्तु जो अजुनि को उसके कम ि◌और लक्ष्य अथवा अशभयान का पररमयाग करने के शलये उकसा रिी ि◌ै वि कोई इस प्रकार की करुणा निीं ◌ंि◌ै। वि करुणा निीं अवपतु दुबुलि आममदया से पररपूण ि◌नपुंसकता ि◌ै, उस मानशसक यंत्रणा से पीछे ि◌टना या हठठकना ि◌ै जो उसके कम ि◌के फलस्वरूप उसे भोगनी पिेगी... और अन्य सभी मनोदशाओं में यि आममदया अमयंत अधम और अनाय ि◌मनोदशाओं में से ि◌ै। इसका जो दूसरों के प्रनत दया का भाव ि◌ै वि भी आमम-तुजष्ट का ि◌ी एक रूप ि◌ै, यि स्नायुओंका संिकिम ि◌से भौनतक संकुचन या कातरता ि◌ै, धातरिाष्ट्रों के ववनाश से हृदय का अिंपरक भावावेगमय संकुचन ि◌ै, कयोंकक 'ये ि◌मारे स्वजन ि◌ैं' और इनके त्रबना तो जीवन ि◌ी शून्य ि◌ो जाएगा। यि दया मन और इजन्रयों की एक दुबुलिता ि◌ै, - ऐसी दुबुलिता उन लोगों के शलये हितकर ि◌ो सकती ि◌ै जो अभी अपनेववकासिम के ननचले स्तर पर ि◌ैं, जजनन्िें दुबुलि ि◌ोना ि◌ी चाहिये अन्यथा वे ि◌ूर और कठोर बन जाएँगे; उनन्िें अपनेकठोरतर रूपों को अपनेसंवेदनाममक अिंकार के मृदुतर रूपों के द्वारा सुधारना ि◌ोगा, उनन्िें उस अशकत तत्त्व, तमोगुण का आवािन करना पिेगा जजससे कक उनके राजशसक आवेशों की उग्रता और अनतयों का दमन करने ◌ेमें उस प्रकाशमय तत्त्व, सत्त्वगुण, की सिायता की जा सके। परंतुयि माग ि◌ उस उन्नत आय ि◌पुरुष का निीं ि◌ै जजसे दुबुलिता के द्वारा निीं,◌ं अवपतुशजकत से और अधधक शजकत के द्वारा आरोिण करना ि◌ै। अजुनि देवमानव ि◌ै, नरश्रेष्ठ बननेकी प्रकिया में ि◌ै और इसशलए वि देवताओं द्वारा चुना गया ि◌ै। उसे एक काय ि◌सौंपा गया ि◌ै, उसके पास उसके रथ पर स्वयं भगवान् ◌्ववराजमान ि◌ैं, उसके ि◌ाथों में हदव्य गांडीव

धनुष ि ै और अधम िके मिारथी, संसार में भगवान् ्के नेतृमृव के ववरोधी उसके सामने ख़िे ि ैं। यि ननणयि करने ेका उसे अधधकार निीं ंि ै कक अपनेभावावेगों और आवेशों के अनुसार कया करेगा और कया निीं करेगा, या अपने अिपरायण हृदय और बुद्धध की बात मानकर एक आवश्यक ववनाश से िट जाए, अथवा इस कारण अपनेकम िसे ववरत िो जाए कक यि उसके जीवन में दु:ख और ररकतता ला देगा या चूँकक जजन िजारों–जार (प्राखणयों) को अवश्य इसमें नष्ट िोना ि ै उनके ववयोग की तुलना में इस (कृमय) के लौकककक पररणाम का उसकी दृजष्ट में कोई मूल्य निीं। यि सब उसका अपनेउच्चतर स्वभाव से दुबुलितावश अध:पतन ि ै। उसे तो केवल अपने 'कतव्यिंकम'ि को देखना िोगा, केवल भगवान् ्के उस आदेश को सुनना िोगा जो उसके क्षात्र स्वभाव में से िोकर हदया जा रिा ि ै, उसे केवल जगत् ्और मानव जानत की भववतव्यता के शलए मिसूस करना िोगा जो उसे अपना देव-प्ेरेवषत मनुष्य जानकर पुकार रिे ि ैं कक वि जगत् ्और मानव जानत के प्रयाण में सिायक िो और उसे ग्रिांत करनेवाली अंधकार की सेनाओंको मारकर उसके पथ को ननष्कंटक करे।

यिा ाँध्यान देने की बात यि ि ै, िालाकाँक उसका सीधा संबंध इस संदभ िसे तो निीं ंि ै पर वि ि ै मित्त्वपूण,ि कक मनुष्य की बुद्धध के तकि बुित िी सतिी प्रकार के िोतिैं। िमारी बुद्धध अजुनि के पक्ष में ब़िे ेअच्छे-अच्छे तकि दे सकती ि ै कयोंकक िमारे नैनतक दृजष्टकोण, िमारी पसंद के अनुसार िम देखतिैं कक ल़िाई-झग़िे ेसे तो सामंजस्य बेितर ि ै, पर ऐसे दृजष्टकोणों से देखने पर मनुष्य के ननणयि सौ में से ननन्यानवे बार गलत िी िोंगे। जीवन की सबसे ब़िी समस्या यि ि ै कक िमारी सोच, धारणाओं, दृजष्टकोणों आहद का जैसा स्वरूप ि ै वे अपने-आप में ववश्वास के योग्य निीं। अगर ऐसा न िोता तब तो िम आध्याजममकता में सिज िी आगे चल प़िते और िमें मागदिशनि की आवश्यकता िी न िोती। परंतु ये चीजें िमें धोखा देती ि ैं और इनमें से ककसी भी चीज का कोईववश्वास निीं ंककया जा सकता। यहद व्यजकत को श्रीमाताजी का गिरा स्पश िप्राप्त निीं ि ै तो उसकी कोई सुरक्षा निीं। अन्यथा तो वि केवल अपनी िी चीजों और ववचारों को उधचत ठिराता रिेगा और इधर-उधर भटकता रिेगा। परंतु ये सभी ववषय सतिी निीं, अवपतु ुभीतर से अनुभव करने के िैं। इसका कोई मूल्य निींकक मिारे शसद्धांत, िमारे नैनतक मूल्य, िमारे तौर-तरीके कया ि ैं, ये सब िमारे कम िको सच्चे रूप में उधचत-अनुधचत निीं ंठिरा सकते और कम िका ननदेशन निींकर सकते। कम िका ननदेशन तो इससे िोना चाहिये कक श्रीमाताजी की (भगवान् ्की) इच्छा कया ि ै। और गीता के वतमिान संदभ िमें भी यिी बात ि ै। साधना पथ में िम जजतना अधधक इस बात को समझ लें कक िमारी अन्त:प्रज्ञा की तुलना में बुद्धध और उसके ववचार ब़िे िी अपूण,ि अपयाप्ति तथा ननष्प्रभावी ि ैं, और जजतना िी िम इन पर आग्रि रखना बंद कर दें, उतना िी िमारे शलए बेितर ि ै और माग ि सुरक्षक्षत िो जाता ि ै। जब तक जीवन में गिरी दृजष्ट न िो तब तक कुछ भी साथकि निीं ककया जा सकता। अन्यथा मि जजस जस्थनत में रितिैं, उसे िी उधचत ठिरानेवाले तकि देते रिते ि ैं और इससे कभी भी िम माग िपर आगे निीं ंबढ़ सकते। इसशलए, यहद िमारे अंदर सच्चा वववेक निीं ंि ै तो िमें कम-से-कम उनका अनुसरण करना चाहिये जजनमें यि ि ै, अन्यथा इस माग िमें िमारी कोई भी गनत निीं।

अजुनव उराच

कथंभीष्ष्र्हं संख्ये द्रिोंच र्धुसूदन ।

इषुमभः प्रतत योत्स्यामर् पूजाहार्वररसूदन ।।४।।

४. अजुनव ने कहाः हे र्धुसूदन (श्रीकृष्ट्ि)! र् ैककस प्रकार युद्ध रें् भीष्ट् और द्रिो के वर्रुद्ध (ित्रों) बिाों से युद्ध करूाँगा? हे अररसूदन (ित्रुनिाक)! रे् दोनों ही परर् पूजनीय हैं।

गुरूनहत्र्ा दह र्हानुभार्ान् ्श्रे्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यर्पीह लोके ।

हत्र्ाथकवार्ांस्तु गुरूतनहैर् भुञ्जीय भोगानुरुधधरप्रददग्धान् ्।। ५।।

५. क्योंकक इन र्हानुभार् गुरुजनों की हत्या की अपेक्षा इस लोक रें् मभक्षा र्ागाँकर पेट भरना भी श्रे्रेयस्कर है। क्योंकक इन गुरुजनों की हत्या करने ेपर भी र् ैइस लोक रें् रक्त से सने हुए धन और दूसूरे कर्नीय पदाथ-वरूप भोगों को ही तो भोगूाँगा।

न चैतद्वर्द्ः कतरतनो गरीयो यद्र्ा जयेर् यदद र्ा नो जयेयुः।

यानेर् हत्र्ा न जजजीवर्षास्र्तेऽर्जस्थताः प्रर्ुखे धातरवाष्ट्राः ।। ६।।

६. और हर् यह भी नहीं जानते कक इन दोनों रें् से कौन-सा हर्ारे मलये श्रे्रेष्ठ है, कक हर् उन पर जय प्राप्त करें अथर्ा रे् हर् पर वर्जयी हों;- हर्ारे सार्ने धृतृराष्ट्र के पुत्र (पक्ष के लोग) ख़िै ेहैं जजनको र्ारकर हर् जीना भी नहीं ंचाहेंगे।

यि उस मनुष्य का संवेदनाममक, भावावेगाममक तथा नैनतक ववरिो ि ै जो अब तक कम िऔर उसके प्रचशलत मानदंसे संतुष्ट रिा ि ै; पर जो अपने-आप को इन मानदंऔर इन कमों द्वारा ऐसे भीषण ववप्लव में झोंका गया पाता ि ै जिा ाँवे ेएक-दूसूरे से और स्वयंके साथ भी भीषण संघष िमें रत ि ैं, और ख़िै िोने ेके शलए नैनतक आचार-व्यविार का कोई आधार िी निंरि गया ि ै, ऐसा कोई सिारा निंबचा जजसे थामकर चला जा सके, कोई धम िी निंरिा। मानशसक सर्त् में जो कम ितत्त्व अथवा कमि–पुरुष ि ै उसके शलए यि सबसे भयंकर संकटावस्था, ववफलता तथा पराभव ि ै। स्वयंयि ववरिो अमयंत सिज और स्वाभाववक ि ै; संवेदनाममक रूप से ववरिो ऐसे कक, इसमें भय, दया और जुगुप्सा के त्रबल्कुल सामान्य भाव ि ैं, प्राखणक रूप से ववरिो ऐसे कक, जीवन के उद्देश्यों और कम िके सवस्वीकृत एवं ंसुपररधचत ितुओंमें आकषणि और श्रद्धा न रिना, भावावेगाममक रूप से ववरिो ऐसे कक, सामाजजक मानव की सामान्य भावनाओं जैसे स्नेि, आदर-समकार, सजममशलत प्रसन्नता व संतुजष्ट की कामना - का एक ननममि कतव्यि से पीछे िटना जो उन सभी भावनाओं का उल्लंघन करने वाला ि ै; नैनतक रूप से ऐसे कक, पाप और नरक का अनतसामान्य भाव तथा 'रकतरंजजत भोगों' के ननषेध का 'भाव; व्याविाररक रूप से, यि बोध कक कम िके मानदण्एक ऐसे पररणाम तक ले आए ि ैं जो कम िके व्याविाररक उद्देश्यों को िी नष्ट कर देता ि ै।

इसमें बात ब़िी स्पष्ट ि ै। जब तक मनुष्य के जीवन में परस्पर-ववरोधी कतव्यि-अकतव्यि की जस्थनत पैदा निं ंिो जाती, तब तक जो भी भाव प्रधान रूप से प्रभावी रिता ि ै उसी के अनुसार सब कुछ ठीक-ठाक चलता रिता

ै। परन्तु संकट तो तब पैदा िोता िै जब ऐसी पररजस्थनत आ खड़ी िोती िै जजसमें परस्पर ववरोधी कर्त्वि्य उपजस्थत िो जाते िैं और दोनों का िी दावा शजकतशाली िोता िै। अब यिा ाँअजुनि के समक्ष अनेक धम िएक दूसरे के ववरोध में आ खड़े िुए िैं- अधम िपर ववजय के शलए लड़े, े क्षत्रत्रय धम िका पालन करे, या अपनेगुरुओंके प्रनत कर्त्वि्य का पालन करे या उनका संिार करने ेका पाप करे। ऐसी पररजस्थनत में कौन से कतव्यि का पालन करे। ऐसे में जो मनुष्य मानशसक आदशों के अनुसार कम िकरता िै वि स्वाभाववक रूप से इस चयन में दुववधा अनुभव करेगा कक कौनसे आदश िका अनुसरण करे। यिी अजुनि के साथ िो रिा िै। उसका इजन्रयबोध एक बात किता िै, भावाममकता दूसूरी बात, नैनतकता तीसरी बात और कर्त्वि्य कम िकी भावना एक अलग िी बात किती िै। और इसी संकटावस्था से गीता का जन्म िोता िै। इसके समाधान के रूप में गीता िमें उस उच्च स्थल तक ले जाएगी जिा ाँइन सब प्रश्नों का मित्त्व िी निीं रिेगा, जिा ाँइस तरि के शभन्न कतव्यिों का अंतववरोध समाप्त िो जाएगा और बुद्धध में स्पष्टता आ जाएगी। जब कोई योग माग िमें चलता िै तो उसके शलए केवल एक िी कतव्यि रि जाता ैऔर वि िै विी कम िकरना जजसमें श्रीमाताजी (या भगवान)् की प्रसन्नता ननहित िो। ककंतु चूंकक इस ववषय में अंधकार रिता िै कक 'उन्िें' कौनसी चीज प्रसन्न करेगी, इसशलए व्यजकत कतव्यिबोध का सिारा लेता िै। परंतु ऐसे में यात्रा कभी भी अपनी पूणि्ताुनत तक निींपिुाँच सकती कयोंकक यात्रा में व्यजकत कभी सिी मोड़ ले लेता िै तो कभी गलत। सामान्यतः साधना में ऐसा िी िोता िै और इस कारण अधधकतर लोग एक िी जगि पर चककर काटते रिते िैं। इस सब से िमें यि सबक लेना चाहिये कक त्रबना सच्चे मागदिशनि के साधना में सफलता संभव निीं ै।

कापण्वयदोषोपहतस्वभार्: पृच्छामर् त्र्ां धर्सम्वरूढचेताः ।
यच्रेयः स्याजतनजश्र्तं ब्रूदह तन्रे् मिष्यस्तेऽहं िाधध र्ां त्र्ां प्रपतनर् ्।।७।।

७. कापण्वय दोष (दुबुलवता) ने रु्झसे रे्रा (सच्चा र्ीरोधचत) क्षत्रत्रय स्वभार् छीन मलया है, धर्-वअधर् व(कत्तव्वय-अकत्तव्वय) के तनियव करने ें रे् रे्री संपूि वचेतना वर्ूढ़ हो गयी है, इसमलये र् ैंआपसे पूछता हू्ाँ कक जो रे्रे मलये श्रे्यस्कर हो उसे तनजश्चत रूप से रु्झे ेबतलाइये; र् ैंआपका मिष्य हू्ाँ और आपकी िरि र्ें आया हू्ाँ, रु्झे ज्ञानोद्दीप्त कीजजये।

न दह प्रपश्यामर् र्र्ापनुद्याद् यच्छोकरु्च्छोषिमर्जतद्रयािार्।्
अर्ाप्य भूर्ार्सपत्नरृ्द्धं ्राजयं सुरािार्वप चाधधपत्यर् ्।।८।।
८. क्योंकक पृथ्र्ी पर सरृ्द्ध और तनष्कंटक राजय अथर्ा देर्ताओं के ऊपर आधधपत्य (स्र्गव के ऊपर राजय) के प्राप्त हो जाने पर भी र् ैंऐसा कोई साधन नहींदेखता जो रे्री इजतद्रयों को सुखाने र्ाले इस िोक को दूरू कर सके।

सञ्जय उर्ाच

एर्रु्क्त्र्ा इषीकेिं गुडाकेिः परंतप ।

न योत्स्य इतत गोवर्तदरुक्त्ा तूष्र्ीबिभूर् ह ।९।।

९. सञ्जय ने कहाः हे परंतप (धृतृराष्ट्र), इषीकेि से इस प्रकार कह देने के बाद, गुडाकेि (तनद्राजयी अजुनव) उन गोवर्तद से "र् ैंयुद्ध नहींकरूंगा" इस प्रकार कह कर चुप हो गया।

अजुनि श्रीकृष्ण को हदये अपने उत्र्र में फटकार को स्वीकार करता ि ै, जबकक अभी भी वि उनके आदेश पालन में आनाकानी करता ि ै और इन्कार कर देता ि ै। वि अपनी दुबुलिता को जानता ि ै, कफर भी उसकी अधीनता स्वीकार करता ि ै। उसकी कापण्यिता (दुबुलिता) ने उससे उसके सच्चे वीर स्वभाव को छीन शलया ि ै, उसकी सारी चेतना धमसंमूिढ़ (कककतव्यिववमूढ़) ि ो गयी ि ै और वि अपनेहदव्य सखा को अपने गुरु के रूप में स्वीकार करता ि ै; परन्तुजजन भावावेगमय और बौद्धधक आधारों पर उसने अपनी धमपिरायणता के बोध को आधश्रत ककया था, उर्न्ेंसिवथा धगरा हदया गया ि ै और वि एक ऐसे आदेश को स्वीकार निींकर सकता जो उसके अनुसार उसके पुराने ेदृजष्टकोण के जैसा ि ी ि ै और कम िकरनेके शलए कोई नया आधार प्रदान निीं ंकरता। इसशलए अभी भी वि

प्रस्तुत कम िके शलए अपनी अस्वीकृनत को उधचत ठिराने की चेष्टा करता ि ै और उसके समथनि में अपनी स्नायवीय और संवेदनाममक सर्त्ा के दावे को प्रस्तुत करता ि ै जो इस संरिकम िसे और इसके पररणाम के रूप में रकत से सने िुए भोगों से काँपती ि ै, अपने हृदय के दावे को प्रस्तुत करता ि ै जो उसके इस कृमय के बाद आनेवाले शोक और जीवन की ररकतता से कापँता ि ै, अपनेप्रचशलत नैनतक धारणाओं के दावे को प्रस्तुत करता ि ै जो भीष्म और रोणाचाय िसरीखे गुरुजनों का वध करनेकी अननवायतिा से भयभीत अथवा स्तंशभत ि ैं, अपनी तकिबुद्धध के दावे को प्रस्तुत करता ि ै जो उसको सौंपे गये भीषण और प्रचण्ि कम िमें कोई भी भलाई निींदेखती, अवपतु जजसमें उसे अशुभ अथवा बुरे पररणाम ि ी नजर आते ि ैं। वि दृढ़-प्रनतष्ठ ि ै कक (युद्धसंबंधी) ववचार और ि ेतु के पुराने आधार पर वि निीं लड़ेगा और कफर वि अपनी आपवर्त्यों के उत्र्र की प्रतीक्षा करने लगा, जजनका कक (उसकी समझ में) कोई उत्र्र निीं ि ो सकता। अजुनि की अिपरक सर्त्ा के इर्न्ीं दावों को श्रीकृष्ण सवप्रिथम नष्ट करना शुरू करते ि ैं ताकक उस उच्चतर धम िके शलये स्थान बनाया जा सके जो कम िके समस्त अिपरक ि ेतुओं का अनतिमण करेगा।

तरुर्ाच हृषीकेिः प्रहसजतनर् भारत ।
सेनयोरुभयोर्ध्यये वर्षीदततमर्दं र्चः ।।१०।।

१०. हे भारत (धृतराष्ट्र) ! दोनों सेनाओं के बीच र्ें ि ोक करते हुए अजुनव से श्रीकृष्ट्नि ेर्ानो हाँसते हुए ये र्चन कहे।

श्रीगुरु का उत्र्र दो ववशभन्न धाराओं पर चलता ि ै। पिला संक्षक्षप्त उत्र्र उस सामान्य आयि–संस्कृनत की उच्चतम धारणाओंपर आधाररत ि ै जजसमें कक अजुनि पला-बढ़ा ि ै, उसने शशक्षा-दीक्षा ली ि ै, दूसूरा, सवथिा शभन्न प्रकार का और अधधक व्यापक ि ै, जो कक एक अधधक अंतरंग ज्ञान पर आधाररत ि ै जो कक िमारी सर्त्ा के गंभीरतर समयों की ओर खुलता ि ै, और विी ज्ञान गीता की शशक्षा का वास्तववक आरंभ-त्रबंदु ि ै। पिला उत्र्र वेदांत दशनि की

दाशनिनक और नैनतक धारणाओं पर तथा कर्त्व्यि और स्वाशभमान-संबंधी उस सामाजजक भाव पर आधश्रत ि जजससे आयों के समाज का नैनतक आधार बना था।

श्रीभगर्ान् ्उर्ाच

अिौच्यानतरिोचस्त्रं प्रज्ञार्ादांश्र् भाषसे ।

गतासूनगतासुंश्र् नानुिोचजतत पजण्डताः ।।११।।

११. श्रीभगर्ान् ्ने कहाः जजनके मलये िोक करना उधचत नहीं ्है उनके मलये तू िोक करता है और किर भी ज्ञानी के जैसी बातें कहता है, ककंतु ुजो ज्ञानी है र्ह न तो जीवर्त के मलए और न ही रृ्त के मलए िोक करता है।

न त्रे्र्ाहं जातु नासंन त्रं ्नेरे् जनाधधपाः ।

न चैर् न भवर्ष्यार्ः सरे् र्यर्तः परर् ्।।१२।।

१२. र् ैंककसी भी सर्य नहीं था ऐसा नहींहै, तू नहींथा ऐसा भी नहीं है, ये राजा लोग नहीं ्थे यह भी सही नहींहै; और हर् सब लोग यहा ाँसे प्रयाि करने ेपर नहींरहेंगे यह भी नहीं ्है।

देदहनोऽजस्न्र्् ्यथा देहे कौर्ारं यौर्नं जरा ।

तथा देहाततरप्राजप्तधीरस्तत्र न रु्ह्यतत ।।१३।।

१३. जजस प्रकार देहधारी आत्र्ा इस देह र्ें कौर्ार, यौर्न और र्ृद्धार्स्था से गुजरती है, उसी प्रकार उसे इस देह से दूसूरे देह की प्राजप्त होती है; इस वर्षय र्ें धीर और वर्र्ेकी र्नुष्य र्ोह को प्राप्त नहीं होता।

अजुनि ने अपनी अस्वीकृनत को नैनतक और यौजकतक आधारों पर उधचत ठिरानेकी चेष्टा की ि, परंतु ु इसमें उसने मिज अपने अज्ञानी और अशुद्ध भावावेगों के ववरोि को युजकतयुकत प्रतीत िोने वाले शब्दिांबर से ढका भर ि। उसने भौनतक जीवन और शरीर की मृमयु के संबंध में इस प्रकार किा ि मानो ये िी प्रमुख यथाथतिाए ाँ िीं; परन्तु ज्ञानी और पंडितों की दृजष्ट में इनका ऐसा कोई मूलभूत मित्त्व निीं ि। अपनेशमत्रों और बंधुओंकी शारीररक मृमयु का दुुःख एक ऐसा शोक ि जजसे प्रज्ञा अथवा वववेक और जीवन का सच्चा ज्ञान कोई स्वीकृनत निीं प्रदान करते। ज्ञानी पुरुष ककसी जीववत अथवा मृत के शलए शोक निीं ककया करता, कयोंकक वि जानता ि कक दुुःख और मृमयुआममा के इनतिास में घटनाएँ मात्र ि। आममा, न कक शरीर, िी यथाथतिा ि। ये सब मनुष्यों के राजागण, जजनकी आनेवाली मृमयु के शलए अजुनि शोक कर रिा ि, इस जीवन के पिले भी जीये ि और आगे भी मानव-दिे में जीयगें; कयोंकक जैसे आममा शारीररक रूप से कौमार, यौवन तथा वाद्धिकय की अवस्था से गुजरती ि वैसे िी वि शरीर-पररवतनि करती ि। शांत तथा वववेकी बुद्धध से युकत, जो धीर ि, ववचारक ि, जो जीवन को जस्थरतापूवकि देखता ि और अपने-आप को इजन्रयानुभवों और भावावेगों से ववक्षुब्ध और अंधा निीं िोने देता, वि भौनतक प्रतीनतयों से धोखा निींखाता; वि अपनेखून के, अपनी स्नायुओंके तथा अपनेहृदय के कोलािल को

अपनेननणयि का आच्छादन अथवा अपनेज्ञान का खण्नि निीं ंकरनेदेता। वि शरीर और इजन्रयों के जीवन के बाह्य तथ्यों के परे जाकर अपनी सत्ा के वास्तववक तथ्य को देखता िै और अपनी अज्ञानमय प्रकृनत की भावावेगमय और भौनतक कामनाओं से ऊपर उठकर मानव-जीवन के सच्चेऔर एकमात्र ध्येय में पिुाँच जाता िै।

र्ात्रास्पिास्वतु कौततेय िीतोष्ट्सुिखद्ु:खदाः ।
आगर्ापातयनोऽतनत्यास्तांजस्तततक्षस्र् भारत ।।१४।।

१४. हे कुततीपुत्र अजुनव! भौततक पदार्थों के (इजतद्रयों के साथ) जो स्पि व(संयोग) होतेहैं रे् िीत ऊष्ट्, सुख और दु:ख देनेर्ाले हैं, और रे् अतनत्य होतेहैं, रे् आते हैं और चले जाते हैं; हे भारत उनको तू सहन करना सीख ।

इन चीजों को तब तक सिन करना िोगा जब तक इन पर ववजय न प्राप्त कर ली जाए, जब तक कक ये मुकत पुरुष को कोई दु:ख न दे सकें, जब तक कक संसार की सब पाधथवि घटनाओं को, चािे सुखद िों या दु:खद, वि ज्ञानयुकत और जस्थर समता से वैसे िी ग्रिण न कर सके जैसे िमारे अन्दर गूढ़ शांत सनातन आममा उन्िें ग्रिण करती िै। शोक और भय से ववचशलत िोना, जैसे अजुनि िुआ िै, और अपनेगंतव्य पथ से भ्ष्ट िो जाना, तथा दैन्य और दु:खभार से दबकर शारीररक मृमृयु की अननवाय िऔर अनतसामान्य घटना का सामना करने ़से पीछे टिना 'अनायजुिष्टं' अनाय िअज्ञान िै। यि उस आय िका माग िनिीं ंिै जो धीर शजकत के साथ अमर जीवन की ओर ऊपर चढ़ता रिता िै।

ii2

यं दह न व्यथयतत्येते पुरुषं ंपुरुषषभव ।
सर्दु:खसुखं ंधीरं सोऽर्ृतत्र्ाय कल्पते ।।१५।।

१५. हे पुरुषों र्ें श्रेष्ठ (अजुनव)! जजस र्नुष्ट्य को ये स्पि वव्यधथत नहीं करते, जो धीर-जस्थर वर्ेकी र्नुष्ट्य दु:ख और सुख र्ें सर्ान रहने ़र्ाला है ई अपने-आप को अर्ृतत्र् के योग्य बना लेता है।

...जगत् ्के मिान् ्चिों के भीतर युगों-युगों के द्वारा पुनरावनतति िोतेमनुष्य के जीवन और मरण केवल एक ऐसी दीघ िकालव्यापी प्रगनत िै जजनके द्वारा मानव-प्राणी अपने-आपको तैयार करता िै और अमृतमव के शलये योग्य बनाता िै। और वि अपने-आपको कैसे तैयार करे? कौन-सा मनुष्य योग्य िोता िै? वि व्यजकत जो अपने-आपको प्राण और शरीर समझने ़वाली धारणा से ऊपर उठ जाता िै, जो संसार के भौनतक और संवेदनाममक संपकों को उनके अपनेमूल्य पर, अथवा दिेममबुद्धध वाले लोग उसे जो मूल्य प्रदान करते िैं उस पर, उन्िें स्वीकार निीं करता, जो स्वयंको और सभी को आममा जानता िै, जो अपने-आप को अपनेशरीर में निीं, ं अवपतु आममा में ननवास करने ़का अभ्यासी बना लेता िै और दूसूरों के साथ भी आममा के रूप में, न कक उन्िें मात्र दैहिक प्राणी जानकर, व्यविार करता िै। कयोंकक अमृतमव का अथ िमृमृयुसे बचे ़रिना निीं ंिै - वि तो एक मन से युकत िोकर जन्मे प्रमयेक प्राणी को पिले से िी प्राप्त िै, अवपतु जीवन और मरण को अनतिम करना, उनके परे चले

जाना ि ै। इसका अशभप्राय उस आरिोण या ऊध्वा–गनत से ि ै जजससे मनुष्य मन से अनुप्राखणत शरीर के रूप में न रिकर अंततः एक आममा के रूप में और 'आममा' के अंदर ननवास करता ि ै। जो कोई शोक और दुःख के अधीन ि ै, इजन्रयानुभवों और भावावेगों का दास ि ै, क्षणभंगुर और अननमय पदाथों के स्पशों में शलप्त रिता ि ै, वि अमृतमव का अधधकारी निीं ि ो सकता।

नासतो वद्यते भारो नाभारो वद्यते सतः ।

उभयोरवप दृष्टोऽततस्त्नयोस्तत्त्वदमिमवभः ।।१६।।

१६. जो र्स्तुतः सत् है उसका अभार् नहीं हो सकता, रै्से ही जैसे जो असत् है उसकी वद्यर्ानता नहीं हो सकती। तथावप इन दोनों सत् और असत् के वर्रोधों का ही अंत तत्त्वदमियवों द्वारा देखा गया है।

अवर्नामि तु तद्वद्धध येन सर्मवदं ततर् ्।

वर्नाियव्यस्यास्य न कजश्चत्कतुवहवतत ।।१७।।

१७. ककंतु जजस आत्र्ा से यह संपूि ववश्र् व्याप्त है उसे तू अवर्नािी सर्झ। इस अवर्नािी आत्र्ा का वर्नाि करने र्ें कोई भी सर्थ वनहीं है।

अततर्तत इर्े देहा तनत्यस्योक्ताः िरीररिः ।

अनामिनोऽप्रर्ेयस्य तस्र्ाद्युध्यस् भारत ।।१८ ।।

१८. उस िरीरधारी आत्र्ा के, जो तनत्य, अवर्नािी और अपररर्ेय है, ये सर्स्त िरीर अंतर्ंत अथावत ्वर्नािर्ान कहे गये हैं; इसमलये हे भारत (अजुनव) ! युद्ध कर।

य एनं र्ेवत्त हततारं यश्चैनं र्तयते हतर् ्।

उभौ तौ न वर्जानीतो नायं हजतत न हतयते ।१९।।

१९. जो र्नुष्य इसे (आत्र्ा को) हत्या करने र्ाला सर्झता है और जो इसे र्रा हुआ र्ानता है र्े दोनों ही सत्य को नहीं देख पाते। न यह ककसी की हत्या करता है न हत ही होता है।

न जायते तनयते र्ा कदाधचतनायं भूत्र्ा भवर्ता र्ा न भूयः ।

अजो तनत्यः िाश्र्तोऽयं पुरािो न हतयतेहतयर्ाने िरीरे ।।२०।।

२०. यह (आत्र्ा) कभी उत्पतन नहींहोता और न र्रता ही है, और न यह कोई ऐसा पदाथ वही है जो एक बार अजस्तत्र् धारि कर के (चले जानेपर) किर कभी भी अजस्तत्र् न धारि कर सकता हो। यह अजतर्ा, तनत्य, सनातन, पुरातन है, िरीर की हत्या होने के साथ यह हत नहींहोता।

रे्दावर्नामिनंतनत्यं य एनर्जर्व्ययर् ्।

कथंस पुरुषः पाथ वकं घातयतत हजतत कर् ्।।२१।।

२१. हे पाथ व! जो र्नुष्य इस (आत्र्ा) को अजतर्ा, अव्यय, तनत्य, अवर्निाी जानता है र्ह र्नुष्य ककस प्रकार ककसी की हत्या करता है अथर्ा ककसी की हत्या का कारि बनता है?

र्ासांमस जीितवन यथा वर्हायनर्ातन गृह्िातत नरोऽपराणि ।

तथा िरीराणि वर्हाय जीितवयतयातन संयातत नर्ातन देही ॥२२॥

२२. जजस प्रकार र्नुष्य पुराने र्स्त्रों का पररत्याग कर के दूसूरे नर्ीन र्स्त्रों को ग्रहि करता है र्ैसे ही आत्र्ा पुराने िरीरों का पररत्याग कर के दूसूरे नर्ीन िरीरों को धारि करता है।

नैनंतछतदजतत िस्त्राणि नैनं दहतत पार्कः ।

न चैनंक्लेदयतत्यापो न िोषयतत र्ारुतः ।॥२३॥

२३. इस आत्र्ा को िस्त्र काट नहीं सकते, न ही अजग्न जला सकती है, और न इसे जल गीला कर सकतेहैं, और न हर्ा इसे सुखा सकती है।

अच्छेद्यो ऽयर्दाह्यो ऽयक्लेद्योऽिोष्य एर् च ।

तनत्यः सर्गवतः स्थािुरचलोऽयं सनातनः ।।२४।।

२४. यह आत्र्ा कभी भी न कट सकनेर्ाला, न जल सकने योग्य, न गीला हो सकने र्ाला और कभी भी न सुखाया जा सकने र्ाला है; यह िाश्र्त रूप से तनत्य, अचल, सर्व्यापी और सनातन है।

अव्यक्तोऽयर्धचतत्यो ऽयर्वर्कायो ऽयर्ुच्यते ।

तस्र्ादेर्ं वर्ददत्र्ैनंनानुिोधचतुर्हवमस ।।२५।।

२५. यह आत्र्ा अव्यक्त, अधचतत्य, अवर्कारी है, ऐसा (श्रुततयों द्र्ारा) इसका र्िनव है; इसमलये इस आत्र्ा को इस प्रकार के स्र्रूप र्ाला जानकर तुझेिोक नहींकरना चादहये।

अथ चैनं तनत्यजातं तनत्यं र्ा र्तयसे र्ृतर् ्।

तथावप त्र्ं र्हाबाहो नैर्ंिोधचतुर्हवमस ।।२६।।

२६. और यदद तू इस आत्र्ा को सदा जतर् ग्रहि करने र्ाला और तनरंतर र्रिील (ही) र्ानता है तब भी हे र्हाबाहो अजुनव ! तेरा इसके वर्षय र्ें िोक करना उधचत नहींहै।

जातस्य दह रुरो रृत्युरुर्ंजतर् रृतृस्य च ।

तस्र्ादपररहायेऽथे न त्रं ्ंिोधचतुर्हवमस ।।२७॥

२७. क्योंकक पैदा हुए का रिं तनजश्चत है और रृतृ का किर जतर् ग्रहि करना तनजश्चत है; इसमलये जो अपररहाय व है उसके वर्षय र्ें तेरा िोक करना उधचत नहीं है।

अव्यक्तादीतन भूतातन व्यक्तर्ध्यातन भारत ।

अव्यक्ततनधनातयेर् तत्र का पररदेर्ना । ॥२८॥

२८. हे भारत! सर्स्त प्रािी आदद र्ें अव्यक्त होते हैं, र्ध्य र्ें व्यक्त होतेहैं, तनधनोपरातत र्े किर अव्यक्त हो जाते हैं, इसमलये इसर्ें िोक करने ेकी क्या बात है?

भौनतक मन और इजन्रयों द्वारा मृमृयु के ववषय में तथा मृमृयु के भय में, चिो वि मृमृयु रोग-शय्या पर िो या रणक्षेत्र में, जो रोना-पीटना िोता िै वि प्राण की चीमकारों में सबसे अधधक अज्ञानमय िै। मनुष्यों की मृमृयु के प्रनत िमारा शोक उन लोगों के शलये अज्ञानी रूप से दुःख करना िै जजनके शलये दुःख करने ेका कोई कारण निीं,ं कयोंकक न तो वे अजस्तमव से बािर गये िैं न उनकी अवस्था में कोई दुःखद या भयानक पररवतनि िी िुआ िै कयोंकक मृमृयु के परे वे कोई कम सर्तृ में निीं ंिैं और उस अवस्था में जीवन की अपेक्षा कोई अधधक दुःखी निीं ंिैं।

आश्चयर्वत्पश्यतत कजश्चदेनर्ाश्चयर्वद्वदतत तथैर् चातयः ।

आश्चयर्वच्चैनर्तयः िृिोतत श्रुत्र्ाप्येनं र्ेद न चैर् कजश्चत् ्।।२९।।

२९. कोई र्नुष्य इसे (आत्र्ा को) आश्चयर्वय रूप र्ें देखता है, कोई दूसूरा र्नुष्य आश्चयर्वत् ्इसका र्िनव करता है; और कोई दूसूरा आश्चयर्वय रूप र्ें इसका श्रर्ि करता है और सुननेके पश्चात् ्भी इसे (आत्र्ा को) कोई नहीं जानता।

देही तनत्यर्र्ध्योऽयं देहे सर्स्वय भारत ।

तस्र्ात्सर्ाणवि भूतातन न त्रं िोधचतुर्हवमस ।।३०।।

३०. हे भारत! सबकी देहों र्ें यह आत्र्ा तनत्य है और अर्ध्य है; इसमलये तुझे ेककसी भी प्रािी के मलए िोक नहीं करना चादहए।

केवल एक िी चीज समय िै जजसमें िमें रिना िोगा, (वि िै) अपनी यात्रा के मिान् ्चि में मानव-आममा (जीव) के रूप में उस शाश्वत पुरुष का स्वयं को प्रकट करना, जजस यात्रा में जन्म और मृमृयुमाग िमें मील के पमथर िैं (मित्त्वपूण िघटनाएँ िैं), जिााँपरलोक ववश्राम-स्थल-स्वरूप िैं, जजसमें जीवन की सारी अवस्थाएँ, चिो सुखद िों

या दु:खद, िमारी प्रगनत, संग्राम और ववजय के साधन िैं तथा अमरमव िमारा धाम िै जजसके शलये आममा यात्रा करती िै...

यि उच्च और मिान् ्ज्ञान, मन और आममा का यि कठोर स्व-अनुशासन जजसके द्वारा उसे भावावेगों की चीमकार और इजन्रयों के धोखों के परे सच्चेआममज्ञान में ऊपर उठना िै, जो िमें शोक और भ्म से मुकत कर सकता िै...िमें भली प्रकार जीवन के भयंकर थपेड़ों को अक्षुब्ध अथवा अववचल भाव से देखना और शरीर की मृमयु को एक तुच्छ या नगण्य घटना के तौर पर देखना शसखा सकता िै... परंतु इससे अजुनि से जजस कम िकी मागँ की जा रिी िै, तथा कुरुक्षेत्र का जो संिारिकम िैि, उसे कैसे न्यायोधचत ठिराया जा सकता िै? इसका उर्त्र यि िै कक अजुनि को जजस पथ पर चलना िै वि पथ इस कम िकी मागँ करता िै; यि कम िउसके अपने स्वधम िसामाजजक कतव्यि, जीवनधम िऔर अपनी सर्त्ा के धम िद्वारा अपेक्षक्षत कर्त्व्यि के ननवाि में अपररिाय िरूप से आ पड़ा िै।

रुधर्वमवप चावेक्ष्य न वर्कजम्पतुर्हवमस ।

धर्याद्धधध युद्धाच्रेयोऽतयत्क्षत्रत्रयस्य न वद्यते ।।३१।।

३१. और किर, अपनेरुधर् वको देखतेहुए भी तुम्हें (अपनेयुद्धरूप कर् वसे) वर्चमलत नहीं ंहोना चादहये; क्योंकक क्षत्रत्रय के मलये धर्युवद्ध से बढ़कर अतय कोई चीज श्रेेष्ठ नहींहै।

इसके बाद गुरु क्षण भर के शलये ववषय से अलग िटकर आममीय-स्वजनों की मृमयु से िोनेवाले उस दु:ख संबंधी ववलाप का एक और उर्त्र देते िैं, (अजुनि के अनुसार) जजनकी मृमयुउसके जीवन को जीनेके कारणों और िेतुओंसे िी ररकत कर देगी। क्षत्रत्रय के जीवन का सच्चा उद्देश्य कया िै और उसका सच्चा सुख कया िै? यि अपने-आपको खुश करना, पाररवाररक सुख देखना और शमत्रों और सगे-संबंधधयों के साथ सुखकर और शांत ष्पिपूण िजीवन व्यतीत करना निीं ंिै अवपतु धम िके शलये लड़ना िी उसके जीवन का सच्चा उद्देश्य िै, और उसका मिर्त्म सुख िोगा कोई ऐसा मित्–काय िया उद्देश्य खोज ननकालना जजसके शलए वि अपना जीवन उमसग िकर सके या कफर ववजयी िोकर राज्य तथा वीरोधचत जीवन का यश और गौरव प्राप्त करे।

यदृच्छया चोपपतनं ंस्गद्वर्ारपार्वृतर् ्।

सुणखनः क्षत्रत्रयाः पाथ वलभतते युद्धर्ीदृर् ्।।३२॥

३२. हे पाथ।व र्े क्षत्रत्रय सुखी (भाग्यिाली) होतेहैं जब ऐसा युद्ध स्र्यं उनके पास स्ग वके खुले हुए द्र्ार के सर्ान चला आता है।

अथ चेत्मर्र् धम्यैसंग्रार्ं न कररष्यमस ।

ततः रुधर् वकीतत वच दहत्र्ा पापर्ाप्स्यमस ।। ३३ ।।

३३. ककततुयदद तू इस युद्ध को धर् वके हेतु ुनहीं ंकरेगा, तो रुधर् वको और अपनी कीतत वको खो बैठेगा और पाप का भागी बनेगा।

अकीततं ंचावप भूतातन कथतयष्यजतत तेऽव्ययार् ्।
सम्भावर्तस्य चाकीततर्वरविादततररच्यते ॥३४॥
३४. इसके अततररक्त, र्नुष्य तेरी दीघ वकाल तक रहने राली अपकीतत वको भी कहेंगे, और र्दहरा्जतर्त र्नुष्य के मलये अपकीतत वर्रनेसे भी अधधक बुरी है।

भयाद्रिादुपुरतं ंर्ंस्यतते त्रां र्हारथाः ।
येषां च त्रं ंबहुर्तो भूत्रा यास्यमस लाघर्ं ्।।३५।।
३५. र्हारथी लोग तुझेभय के कारि युद्ध से भागा हुआ रा्नेंगे और तू जो अभी तक उनकी दृजष्ट र्ें बहुत अधधक रा्ननीय रहा है अब उनकी दृजष्ट र्ें लघुता को प्राप्त हो जाएगा।

अरा्च्यरा्दांश्च बहूतर्ददष्यजतत तरा्दहताः।
तनतदततस्तर् सार्थ्यं ंततो दुःखतरं नु ककर् ्।।३६।।
३६. तेरे ित्रु ुतेरे बल की तनंदा करते हुए बहुत से न कहनेयोग्य र्चनों को कहेंगे; इससे अधधक दुःखदायी और क्या हो सकता है?

हतो रा् प्राप्स्यमस स्र्गं ंजजत्रा रा् भोक्ष्यसे र्हीर् ्।
तस्र्ादुवुत्तष्ठ कौततेय युद्धाय कृततनश्चयः ।॥३७॥
३७. यदद तू र्ारा जाता है तो स्र्ग वको प्राप्त करेगा; यदद वर्जयी होता है तो पृथ्र्री का भोग करेगा; इसमलये हे कुततीपुत्र (अजुनव)! युद्ध करनेका तनश्चय कर के ख़िा हो।

यि वीरोधचत आग्रि इससे पूव िचचािकी गई ननस्पृि आध्याजममकता से तथा आगे आने वाली गंभीरतर आध्याजममकता से ननचले स्तर का प्रतीत िो सकता िै; कयोंकक अगले िी श्लोक में श्रीगुरु अजुनि को सुख-दुःख, लाभ-अलाभ और जय-पराजय में समता बनाये रखकर युद्ध करने का ननदेश देते िैं और यिी गीता का वास्तववक उपदेश िै। परन्तु भारतीय नीनतशास्त्र ने मनुष्य के ववकासोन्मुख नैनतक और आध्याजममक जीवन के शलए िमोन्नत आदशों की व्याविाररक आवश्यकता को सदा िी अनुभव ककया िै। यि ाँक्षत्रत्रय का जो आदश ि सामने रखा गया िै वि चातुवण्यि िके अनुसार सामाजजक दृजष्ट से रखा गया िै, इसकी जो आध्याजममक दृजष्ट आगे चलकर हदखायी गयी िै उस दृजष्ट से निीं। श्रीकृष्ण यि ाँअजुनि से वास्तव में यिी कि रिे िैं कक 'यहद तू सुख और दुःख और कम िके पररणाम को िी अपने कम िके िेतु ुके रूप में माननेपर आग्रि रखता िै तो मेरा तुझे ेयिी उत्र्र िै।

म ैंपिले िी हदखा चुका िूँ कक आममा और जगत् ्का जो उच्चतर ज्ञान िै वि तुझे ेककस हदशा में प्रवृत्त् करता िै; और अब मनैं ेयि भी हदखाया िै कक तेरा सामाजजक कर्त्वयि और तेरी जानत या वण िका अपना नैनतक आदश ितुझे ेककस हदशा में प्रवृत्त् करता िै; **'स्वधर्मवप चारेक्ष्य।'** तू ूजजस ककसी भी पिलू से देख, पररणाम एक िी िै। परन्तु, यहद तू अपनेसामाजजक कतव्यि और वणधिम िसे संतुष्ट न िोता िो, और समझता िो कक उससे तू दु:ख और पाप का भागी बनेगा तो मेरा आदेश िै कक ककसी िीन आदश िकी ओर नीचे धगरने की अपेक्षा ककसी ऊँचेआदश िकी ओर ऊपर उठ ।'

इसमें श्रीअरववन्द ने अपनी टीका में जो तकि हदया िै उसमें तीन बातें िैं। इसके अंदर अजुनि यि तकि देता िै कक 'माना कक ववरोधी पक्ष के लोग तो भ्रमत िैं, मूढ़ िैं, परन्तुिमें तो समझ िै। आखखर इस युद्ध से कया िोगा? सभी लोग नष्ट िो जाएँगे। मेरे गुरुजन और वपतामि, जजन्िोंने मुझे इतनी शशक्षा, इतना ज्ञान हदया िै, उनके प्रनत युद्ध करके तो मुझे ेरकत में सने िुए भोगों के अनतररकत और कया शमलनेवाला िै? तीनों लोकों के राज्य के शलए भी म ैंइन्िें निीं मारना चािता। तो कफर ये सुख-भोग तो तुच्छ-सी चीजें िैं, इनके शलए तो मेरा इन्िें मारनेका प्रश्न िी निीं ंउठता। इससे िमारा कुलधम िनष्ट िो जाएगा, िमारे वपतरों का तपणि निीं ंिोगा और सब अननष्ट िो जाएगा।' इस सब तकि पर श्रीकृष्ण ने जो उत्र्र हदया उसे किते िैं 'आयर्–क्षत्रत्रय का धमममत।' जजस रूप में हिन्दुस्तान के घर-घर में वेदान्त के ववचार प्रचशलत िैं कक भगवान् ्सब जगि िैं, आममा सवत्रि व्याप्त िै, वि अमर िै, आहद-आहद, ऐसे िी प्रचशलत ववचारों के सिारे उसे उत्र्र हदया जा रिा िै कक 'वि बातें तो पजण्डतों के समान करता िै कक िमें यि करना चाहिये अथवा यि निींकरना चाहिये, परन्तु पजण्डत-जन तो जो जीववत िैं या जो मर गए िैं, उनमें से ककसी के शलए शोक निीं करते। उनकी दृजष्ट में जीववत और मृत् के बीच में कोई अन्तर निीं िोता। आममा तो अमर िै, न कभी ये मरती िै, न कभी इसका कुछ त्रबगड़ सकता िै। संसार तो अननमय िै और ऐसा निीं ंिै कक ये लोग पिले निींथे ेऔर मिाभारत के बाद निीं ंरिेंगे, इसशलए वि ककसके शलए शोक करता िै।' िालाँकक अजुनि अपने मुँि से यि प्रश्न निींकरता, ककन्तुयिा ँप्रश्न उठता िै कक माना कक ये सब अननमय िैं, इनकी मृमयु तो िोनी िी िै और आममा अमर िै, परन्तु इसका यि अथ ितो निीं ंकक इन सब को वि मार िाले। यि बात तो आध्याजममकता निीं किती कक चूंकक शरीर अननमय िै इसशलए इन्िें मार िालना चाहिये। आय िक्षत्रत्रयों के धम िकी बात तो उधचत िै परन्तुसंिार-कम िको यिा ँउधचत कैसे ठिराया जाए? इसका उत्र्र यि िै कक भले आध्याजममकता के अनुसार तो जन्म और मृमयु समान िी िैं, इसशलए मारो या निीं ंमारो इससे कोई अंतर निीं ं पड़ता, परंतुचूँकक यि पररजस्थनत उसके सामने उपजस्थत िुई िै इसशलए उसे अपने क्षात्र-धम िका पालन करना चाहिये कयोंकक क्षत्रत्रय अपने ननजी सुख-दु:ख से प्रेररत िोकर कम िनिीं करता। उसे तो सदा िी सिी के शलए लड़ना चाहिए और समय के शलए अपनेजीवन को न्यौछावर कर देना चाहिये। और ऐसा िी एक अवसर आज उसके सामने उपजस्थत िै। ऐसे युद्ध में यहद वि जीतता िै तो राज्य करेगा और मृमयुको प्राप्त िोता िै तो स्वग िको प्राप्त करेगा। और यहद वि इस युद्ध में प्रवृत्त् निीं ंिोता िै तो यि उसके क्षत्रत्रय धम िके अनुरूप कम िनिीं ंिोगा। इसशलये यहद वि यि तकि देता िै कक युद्ध करने ेसे उसे तकलीफ िोगी, तो उसे यि भी ववचार करना चाहिये कक युद्ध से परे िटनेके कारण लोग उसे कायर किेंगे और उससे जो उसकी अपकीनत िोगी वि तो उसके शलए मृमयु से भी अधधक पीड़ादायक िोगी। इससे तो वि वीरतापूवकि युद्ध करके वीरगनत को प्राप्त िो तो ज्यादा अच्छा िै।

और यहद वि आध्याजममकता की बात करता ि, कक आममा अमर ि, शरीर अननमय ि, तो भी उसके शलए यिी कम ि करना सिी ि। ककसी भी तरि से उसके पास दूसूरा कोई रास्ता निीं ि। इसशलए उसे जय-पराजय को समान मानकर युद्ध करना चाहिये। परंतु अजुनि किता ि कक 'यहद म ैंइन्र्ें समान िी मानूाँ, और इनसे अप्रभाववत रिूाँ तो कफर म ैंलिूं ंिी कयों? आखखर मुझेलिना िी कयों चाहिये?' और सिी तौर पर इस तकि का कया समाधान िो सकता ि? भगवान् ्इसका त्रबल्कुल सीधा उर्त्र देते िैं कक कयोंकक 'म ैंऐसा करने ेको कि रि ि ूाँ और ऐसी मेरी इच्छा िै और 'म ैंिी एकमात्र िूाँ जजसका कक अजस्तमव ि इसशलए मेरी इच्छा पूरी करना िी तेरा काम ि, अतः यज्ञ के रूप में कम िकर।' वास्तव में इसके अनतररकत और कोई उर्त्र िो भी निींसकता। श्रीअरववन्द ने अपनी टीका में जजस तरीके से इस तकि को ववकशसत ककया ि वैसा िमें सामान्यतः देखने को निीं शमलता। उसके त्रबना तो िम इससे चूक िी जाते िैं कक इसमें तीन तरीके के तकि भी िैं। अब अजुनि ननरुर्त्र िो जाता ि। पर वि पूछता ि कक जय-पराजय, सुख-दुःख सबको समान मानकर ननष्काम कम िकरना संभव िी कैसे ि? त्रबना ककसी कामना के या ऐसा भाव अपनाकर व्यजकत ककस आधार पर कम िका चुनाव कर सकता ि? उसी के उर्त्रस्वरूप श्रीकृष्ण किते िैं कक 'यज्ञ के रूप में और मेरी प्रसन्नता के ननशमर्त् कम िकर।' तब कफर अजुनि पूछता ि कक 'आप कौन िैं।' और इसी का उर्त्र उन्िोंने नौवें, दसवें और ग्यारिवें अध्याय में दे हदया कक वे कौन िैं, उनका स्वरूप कया ि। यिी गीता का इस सारी समस्या का समाधान ि, कक समस्या कतव्यि या अकर्त्वयि की निीं, सारी बात तो यि ि कक भगवान् ्िी सब कुछ िैं, और वे जो किें विी सिी ि। इसमें व्यजकत के तकि, उसके धमि–अधम,ि दशनि आहद के शसद्धांतों को उधचत-अनुधचत की कया समझ ि? इसकी वास्तववक समझ तो केवल भगवान् ्को िी ि।

सुखदु:खे सरे् कृत्र्ा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युजयस्र् नैरं् पापर्ाप्स्यमस ।। ३८ ।।

३८. सुख-दु:ख, लाभ-अलाभ और जय-पराजय र्ें सर्ता रख और तब युद्ध कर; इससे तू पाप को प्राप्त नहीं होगा।

इस प्रकार अजुनि की जो ववषादजननत दलीलें थीं, संारिकम िसे पीछे िटनेकी जो दलीले थीं, पापबोधजन्य दलीलें तथा कम िके दुष्पपररणाम की आशंका की दलीलें थीं उन सबका उर्त्र, अजुनि की जानत और युग के उच्चतम ज्ञान और श्रेष्ठ नैनतक आदश िके अनुसार हदया जा चुका ि।

अब िमें देखना ि कक अजुनि की कहठनाई और इन्कार के मूल में जो समस्या ि उसके दृजष्टकोण से तथा अमयंत स्पष्ट और ननश्चयाममक शब्दों में इस समाधान का कया अशभप्राय ि। एक मनुष्य तथा सामाजजक प्राणी के रूप में उसका कर्त्वयि क्षत्रत्रय के उच्च धम िका पालन करना ि जजसके त्रबना समाज के ढाचोँ की रक्षा निीं की जा सकती, जानत के आदशों को न्यायसंगत शसद्ध निीं ंककया जा सकता, और अमयाचार, पाप और अन्याय के अराजक उमपात के ववरुद्ध धम िऔर न्याय की सुसमंजस व्यवस्था को धारण निीं ंककया जा सकता। और कफर भी कतव्यि का आह्वान अपने-आप में युद्ध के नायक को अब पिले की तरि संतुष्ट निींकर सकता कयोंकक कुरुक्षेत्र की भीषण यथाथिता के बीच वि आह्वान अपने-आप को अनत कठोर, ववमूढ़कारी और अस्पष्ट रूप में प्रस्तुत करता

ीं। अपने सामाजजक कर्त्व्यि का ननविा उसके शलए सिसा िी उस अथ िका द्योतक िो गया िै कक वि अपररशमत पाप तथा दु:ख-कष्टरूपी पररणाम के शलए अपनी सिमनत दे, सामाजजक व्यवस्था और न्याय को बनाए रखनेके परंपरागत साधन उल्टे ब्रिी भारी अव्यवस्था और अराजकता की ओर ले जानेवाले िो रिे िैं। न्यायोधचत दावों और अधधकार का ननयम, जजसे न्याय्य अधधकार किते िैं, यिा ाँउसकी कोई सिायता निीं ंकरेगा; कयोंकक जो राज्य उसे अपनेशलए, अपने बंधु-बांधवों तथा युद्ध में अपनेपक्ष के लोगों के शलए जीतना िै उस पर वास्तव में न्यायपूवकि उन्िींका अधधकार िै तथा उस अधधकार की बलपूवकि स्थापना करने ेका अथ िआसुरी अमयाचार का उन्मूलन और न्याय का प्रनतष्ठापन करना िै, परंतुवि न्याय रकत-रंजजत न्याय िोगा और वि राज्य एक ऐसा राज्य िोगा जो शोकाकुल हृदय के साथ अधधकृत िोगा जजस पर एक मिापाप, समाज की भयंकर िानन और जानत के प्रनत ज्वलंत अपराध का कलंक िोगा। और न िी धम,ि अथात्ि्नैनतक धम,ि का ववधान िी कोई सिायता करने वाला िै; कयोंकक यिा ाँधमों का परस्पर ववरोध उपजस्थत िै। इस समस्या के समाधान के शलए एक नवीन तथा मिन्न परंतु अब तक के ककसी भी अनुमान से परे के ववधान की आवश्यकता िै, परन्तु वि ववधान िै कया?

कयोंकक अपनेकम िसे अलग िट जाना, साधुओंके जैसी अकमण्यिता का सिारा ले लेना तथा असंतोषकर तरीकों और िेतुओंसे युकत इस अपूण िसंसार को उसके अपनिी साधनों के भरोसे मयाग देना इस समस्या का एक सिज िी कल्पनीय संभव समाधान िै, जजसे लागू करना भी आसान िै परंतु यि तो ठीक उस ग्रंधथमात्र को िी काट देना िोगा जजसकी श्रीगुरु ने बलपूवकि मनािी की िै। ककन्तु इस जगत् ्के स्वामी, जो मनुष्य के सब कममों के स्वामी िैं और यि जगत् ्जजनकी एक कमभिूशम िै, द्वारा मनुष्य से कम िकी मागाँ की जाती िै, भले वि कम ि अििाव के द्वारा तथा सीशमत मानव बुद्धध के अज्ञान या आंशशक प्रकाश में ककया जाए या कफर यि अंतदिशनि तथा पे्रेरणा के एक अधधक उच्च तथा अधधक व्यापक दृजष्ट वाले स्तर से प्रवनततिि िो। और कफर, इस (संिार) कम ि

ववशेषे को अमंगलकारी बताकर इसका पररमयाग कर देना एक दूसूरे प्रकार का समाधान िोगा जो कक अदूरूदशी नैनतकतावादी अथवा उपदेशाममक मन का बना-बनाया उपाय िै, परंतुइस प्रकार की टाल-मटोल के शलए भी श्रीगुरु अपनी सिमनत अस्वीकार कर देते िैं। अजुनि की कम िसे ननवृवृर्त् एक और अधधक ब्रिे ेपाप और बुराई का कारण बनेगी: यहद इसका कुछ पररणाम िुआ भी तो वि िोगा अन्याय और अनाचार की ववजय तथा भगवमकायों के यंत्ररूप बनेरिने ेके उसके अपनिी मिाव्रत का पररमयाग। जानत की भववतव्यताओं में जो प्रचंि संकट उमपन्न िो गया िै वि शजकतयों की कोई अंध गनत या मात्र मानवीय ववचारों, स्वाथों, आवेगों तथा ववकारों के अस्तव्यस्त संघष िके कारण निीं उमपन्न िुआ िै अवपतु एक भगवहदच्छा द्वारा लाया गया िै जो इन बाह्य प्रतीनतयों के पीछे काय िकर रिी िै। अजुनि को अवश्य िी इस समय का साक्षामकार करा देना िोगा; उसे अपनी क्षुर व्यजकतगत कामनाओं तथा दुबुलि मानवीय जुगुप्साओं के यंत्र के रूप में निींअवपतु एक बृित्र तथा अधधक ज्योनतमयिी शजकत, एक मिन्र सवज्ञि, हदव्य और वैश्व संकल्प के यंत्र के रूप में, ननवैयजकतक तथा अववचशलत भाव से कम ि करना सीखना िोगा।

आय ियोद्धा का यिी धम ििै। यि किता िै कक "ईश्वर को जान, अपने-आपको जान, मनुष्य की सिायता कर; धम िकी रक्षा कर, त्रबना भय, दुबुलिता और हिचककचािट के संसार में अपना युद्ध-कम िकर। तू शाश्वत

अववनाशी आममा िै, तेरी आममा अमृतृमव के ऊध्वगिामी माग िपर चलती िुई इस संसार में आयी िै; जीवन और मरण कुछ भी निीं ंिै, दुुःख और कलेश और कष्ट कुछ भी निीं ंिै, इन सबको जीतना और वश में करना िोगा। अपनिी सुख, प्राजप्त और लाभ की ओर मत देख, अवपतु ुऊपर की ओर और चारों ओर देख, ऊपर उस प्रकाशमय शशखर को देख जजसकी ओर तू चढ़ रिा िै, और अपनेचारों ओर इस संग्राममय और संकटपूण िजगत् ्को देख जजसमें शुभु और अशुभु, उन्ननत और अवननत परस्पर घोर संघष िमें जकिे िुए िैं। लोग तुझे ेसिायता के शलये पुकारते िैं, तू उनका लिौ पुरुष िै, लोकनायक िै; तो सिायता कर, युद्ध कर। संिार कर यहद संिार के द्वारा िी जगत् ्की प्रगनत िो, ककन्तु जजसका संिार करे उससे घृणा न कर और न उन सब मरे िुए लोगों के शलये शोक िी कर। सवत्रि उस एक िी आममा को जान, सब प्राखणयों को अमर आममाएँ समझ और शरीर को तो और कुछ निीं बस शमट्टी समझ । अपना कम िजस्थर, दृढ़ और सम भाव से कर, लि और शान से वीरगनत को प्राप्त िो, या कफर परिामी रूप से ववजयी िो। कयोंकक भगवान् ्ने और तेरे स्वभाव ने तुझे यिी काम पूरा करनेके शलये हदया िै।"

यिा ाँिम देखते िैं कक आय िपद्धनत में ककस प्रकार क्षत्रत्रयों के अनत उच्च आदश िस्थावपत ककये जाते थे, और इसी प्रकार ब्राह्मण, वैश्य और शूर के शलए भी उनके अपने-अपने उच्च आदश िस्थावपत ककये जाते थे, उन्िें उन आदशों में ढाला जाता था ताकक ननमन प्रकृनत ककसी िद तक उन आदशों के अनुरूप वश में रिे। अपनेशरीर के सुख-आराम के शलए जीना तो आय िपद्धनत के आदश िमें था िी निीं।

परंतु प्रस्तुत प्रसंग में, जजन शभन्न-शभन्न आदशौं से व्यजकत स्वयं को संचाशलत करता िै वे एक दूसूरे के अंतववरोध में आ खिे िुए िैं, और भयानक बन गए िैं। ऐसे में जिा ाँतक अपनेकतव्यि ननवाि का प्रश्न उठता िै, तो समझ निीं आता कक गुरु के प्रनत कतव्यि, वपतामि के प्रनत कतव्यि, अपनेभाई-बंधुओं के प्रनत कतव्यि, या कफर अपनेक्षत्रत्रय धम िके कतव्यि में से कौनसे का ननवाि ककया जाए कयोंकक ये सभी कतव्यि तो परस्पर ववरोध में आ खिे िुए िैं तथा ककसी के भी ननवाि करने से तो अवश्य िी कष्ट िोने वाला िै। और आखखर इस सबका पररणाम कया िोगा? यहद क्षत्रत्रय धम िका पालन करे तो मिाववनाश ननजश्चत िै, सारी जानत िी नष्ट िो जाएगी और जो राज्य भोगने को शमलेगा वि खून से रंगा िोगा। विीं, यहद युद्ध न करे तो अधम िकी ववजय िोगी और यि तो उससे भी बुरी बात िोगी। इसशलए इसमें से बचाव का कोई रास्ता िी निीं। और कफर इस आध्याजममक मनोभाव से भी, कक आममा अमर िै और सभी में एक िी िै, करना कया चाहिये इसकी स्पष्टता निींिोती। ऐसी जस्थनत में कोई भी नैनतक युजकत, या आदश िया क्षत्रत्रय धम िके पालन की युजकत इसका कोई ऐसा उत्तर निीं ंदे सकतेजो कक उसकी आममा को संतुष्ट कर सके। कयोंकक यहद इसका समाधान इसी स्तर पर िो पाता तब तो गीता को और आगे ववकशसत करने ेकी आवश्यकता िी निींथी। यि एक ऐसी पररजस्थनत िै जिा ाँव्यजकत जीवन के मूल पर िी प्रश्न खिा कर देता िै कक स्वयंइन नैनतक आधारों, मूल्यों में कोई न कोई मूलभूत त्रुहट िै। इसीशलए गीता इस सारी समस्या को एक दूसूरे िी स्तर पर ले जाकर इसका समाधान करती िै जो कक ननचले स्तर पर करना संभव निीं ंिै अन्यथा गीता के आगे के अध्यायों के ननरूपण की आवश्यकता िी निीं ं8 hat pi साथ िी, श्रीअरववन्द का स्पश िपाकर इन सारी िी समस्याओंका समाधान एक भव्य स्वरूप ग्रिण कर लेता िै और इसी कारण श्रीमाताजी

किती ि ैं कक श्रीअरववन्द की टीका के कारण गीता का संदेश त्रबल्कुल ननश्चयाममक बन गया ि ै और वि सारी मनुष्यजानत का उद्धार कर सकता ि ै। श्रीअरववन्द तो इसे अनतमानस के छोर तक ले जाते ि ैं।

II. सांख्य और योग

अजुनि की समस्याओं के इस प्रथम और संक्षक्षप्त उर्त्र से (दूसूरे उर्त्र की ओर) मुिते ेक्षण तथा अपने प्रारंशभक शब्दों में ि ी जो एक आध्याजममक समाधान के प्रधान त्रबन्दु ुका संकेत करते ि ैं, श्रीगुरु एकाएक एक ऐसा भेद सांख्य और योग का भेद- प्रस्तुत कर देते ि ैं जो गीता को समझने ि ेतु चरम मित्त्व का ि ै।

एषा तेऽमभदहता सांख्ये बुद्धधयोंगे जत्त्रृं ि ्ृ ।
बुद्धया युक्तो यया पाथ वकर्बवतधंप्रहास्यमस ॥३९॥
३९. हे पाथी यह तुझेसांख्यिास्त्र के अनुसार बुद्धध (स्र्तुओंका बुद्धधयुक्त ज्ञान तथा इच्छिाजक्त) कही गयी है, अब तू योगवर्षतयी इस बुद्धध को सुन, कारि इस बुद्धध के द्र्ारा योगयुक्त हो जानेपर तू कर्ों के बंधन को छोि़ देगा।

गीता के प्रथम छः अध्यायों का संपूण ि उद्देश्य सांख्य और योग, इन दो प्रणाशलयों को, जजन्ि ें सामान्यतः एक-दूसूरे से शभन्न और यिााँ तक कक ववरोधी समझा जाता ि ै, वेदांनतक समय की ववशाल रूपरेखा में समजन्वत करना ि ै। सांख्य को ि ी आरंभत्रबंदु ुऔर आधार के रूप में शलया गया ि ै; परंतु ुइसे आरंभ से ि ी, और उर्त्रोर्त्र बढ़ते

ुए बल अथवा प्रभाव के साथ योग के भावों और प्रणाशलयों से व्याप्त अथवा पररपूण ि ककया गया ि ै और उसे योग के ि ी भाव में एक नया रूप दे हदया गया ि ै। सांख्य और योग में जो वास्तववक भेद था, जजस प्रकार से प्रतीत ि ोता ै ककि उस समय की धमि–बुद्धध के समक्ष इसने अपने-आप को प्रस्तुत ककया था, वि प्रथमतः यि था कक सांख्य अग्रसर ुआ ज्ञान के द्वारा तथा बुद्धधयोग द्वारा जबकक योग अग्रसर ि ुआ कम ि द्वारा तथा कियाशील चेतना के रूपांतर के द्वारा। दूसूरा भेद – जो प्रथम भेद का ि ी स्वाभाववक पररणाम 41 - 45 था कक, सांख्य पूण ि ननजष्ियता और संन्यास की ओर ले जानेवाला माना जाता था जब कक योग को पयाप्ति रूप से कामना का आंतररक मयाग, आममगत तत्त्वों का पववत्रीकरण माना जाता था जो कक कम ि की ओर और कमों को भगवान् ् की ओर मोि़ कर हदव्य अजस्तमव और मुजकत की ओर ले जाता था। कफर भी दोनों का उद्देश्य एक समान ि ी था, जन्म और इस पाधथवि अजस्तमव का अनतिमण तथा मानव-आममा का परमाममा के साथ ऐकय। तो कम-से-कम सांख्य और योग के बीच यि भेद तो ि ै जैसा कक गीता उसे ि मारे समक्ष प्रस्तुत करती ि ै।

गीता अपनेमूल में एक वेदांनतक-ग्रंथ ि ै; वेदांत के जो तीन सवमिान्य प्रमाणग्रंथ ि ैं उनमें यि भी एक ि ै।.. परन्तु कफर भी इसके वेदांनतक ववचार सवत्रि ि ी और पूण ि रूप से सांख्य और योग की धचंतंन पद्धनत द्वारा रंगे ि ुए

ीैं, प्रभाववत िै और इस रंग या प्रभाव के कारण इसका दशनि एक ववशशष्ट समन्वयाममक स्वरूप ग्रिण कर लेता ीैं।.....

तब कफर, गीता द्वारा किे गये ये सांख्य और योग कया िैं? ये अवश्य िी वे प्रणाशलयााँ निींीं जो िमें इन नामों से यथिाम ईश्वरकृष्ण की सांख्यकाररका और पतंजशल के योगसूत्रों में ननरूवपत िुई प्राप्त िोती िैं। यि सांख्यकाररका का सांख्य निीं 3 - 34 - 7 -कम सांख्य शब्द से जो सामान्य धारणा िोती िै, वि निीं ंिै; कयोंकक गीता किींभी क्षण भर के शलये भी सर्त्ा के मूल समय के रूप में पुरुषों की अनेकता को स्वीकार निीं ंकरती, अवपतु सांख्य-परंपरा जजसका जोरदार शब्दों में इन्कार करती िै उसी 'एक' को गीता दृढ़ता के साथ 'आममा' और 'पुरुष', कफर उसी 'एक' को 'परमेश्वर', 'ईश्वर' या 'पुरुषोर्त्म' तथा 'ईश्वर' को जगत् ्का आहद कारण घोवषत करती िै। आधुननक पररभाषा में किें तो, परंपरागत सांख्य अनीश्वरवादी िै, पर गीता का सांख्य जगत्−्ववषयक ईश्वरवादी, बिुदेववादी और अद्वैतवादी मतों को स्वीकार करता िै और सूक्ष्मतया समजन्वत करता िै।

न िी यि योग पतंजशल की योग-प्रणाली िी िै; कयोंकक वि (पतंजशल का योगदशनि) तो राजयोग की केवल एक शुद्ध रूप से आममननष्ठ प्रणाली िै, एक आंतररक अनुशासन िै, जो सीशमत, अनमय रूप से ननधारिरत, कठोर और शास्त्रीय अथवा वैज्ञाननक रीनत से िमबद्ध िै, जजसके द्वारा मन को उर्त्रोर्त्र जस्थर-ननस्तब्ध कर के समाधध में पिुाँचाया जाता िै जजससे िम आमम-अनतिमण के लौककक और पारलौककक, दोनों फल प्राप्त कर सकें; लौककक, आममा के ज्ञान और शजकतयों के मिान् ्ववस्तार द्वारा और पारलौककक, भगवान् ्के साथ गए पारंपररक शब्दों के प्रयोग से िमें भ्शमत निीं ंिोना चाहिए। इसी तरि से योग के ववषय में िै। पतंजशल का योग तो एक ववशशष्ट पद्धनत िै जजससे मन को शुद्ुध करनेसे उसके अंदर शजकतयााँ जागृत िोती िैं, अनुभूनतया ंाँप्राप्त िोती िैं और समाधध की अवस्था प्राप्त िोती िै। योग का अथ िोता िै भगवान् ्के साथ युकत िोना। आजकल आम तौर पर योग का अथ ििठयोग या पतंजशल के योग से िी लगाया जाता िै, और वि भी बिे िी सीशमत रूप में। परन्तु गीता का योग तो बिुत ववशाल एवं ंव्यापक िै, जजसमें िजारों तरीकों से परमाममा से एकमव प्राप्त ककया जा सकता िै। तो इस प्रकार, गीता का योग उस ववशाल दृजष्टकोण से योग िै और उसी लचीले दृजष्टकोण से इसका सांख्य िै।

पर सांख्य के समय कया िैं? इस दशनि ने अपना यि नाम अपनी ववश्लेषणाममक पद्धनत के कारण प्राप्त ककया िै। सांख्य िमारी सर्त्ा के तत्त्वों का ववश्लेषण, गणना, ववभाजन और वववेचनाममक ववन्यास िै, जजनके संयोजनों तथा उन संयोजनों के पररणामों को िी मनुष्य की साधारण बुद्धध देख पाती िै। सांख्य दशनि ने समन्वय साधन की कोई चेष्टा निीं ंकी। इस दशनि का मूलभूत शसद्धांत वस्तुतः द्वैतवादी िै, ठीक वेदांनतक मतों का वि सापेक्षक्षक (relative) द्वैत निीं जो वे अपने-आप को उस 'द्वैत' नाम से पुकारते िैं, अवपतु एक परम ननरपेक्ष और तीक्ष्ण अथवा सुस्पष्ट रीनत का द्वैत िै। कयोंकक यि अजस्तमव या सर्त्ा का वणनि केवल एक मूल तत्त्व के द्वारा निीं ंअवपतु दो मूल तत्त्वों के द्वारा करता िै जजनका संयोग िी इस जगत् ्का कारण िै- एक िै पुरुष जो अकतिा (ननजष्िय तत्त्व) िै और दूसरी िै प्रकृनत जो कीं (सकिय तत्त्व) िै। पुरुष आममा िै, आममा शब्द के साधारण और प्रचशलत अथ िमें निीं,ं अवपतु उस ववशुद्ध सचेतन सर्त्ा (पुरुष) के अथ िमें जो अचल, अक्षर और

स्वयं-प्रकाशमान ◌ि◌ै। प्रकृनत ◌ि◌ै ऊजिा और उसकी प्रकिया। पुरुष स्वयं कुछ निीं ◌ंकरता, पर वि प्रकृनत और उसकी प्रकियाओं को प्रनतत्रबंत्रबत करता ◌ि◌ै; प्रकृनत ज़ि-यांत्रत्रक ◌ि◌ै परंतु पुरुष में प्रनतत्रबंत्रबत ◌ि◌ोकर वि अपनेकम ◌िमें चेतना का रूप धारण कर लेती ◌ि◌ै और इस प्रकार सृजृष्ट, जस्थनत और संिार अथात् ◌्जन्म, जीवन और मरण, चेतना और अवचेतना, इजन्द्रयगमय ज्ञान और बुद्धधगमय ज्ञान तथा अज्ञान, कम ◌िऔर अकम,◌ि सुख और दुःख, ये सब ववषय उमपन्न ◌ि◌ोते ◌ि◌ैं और पुरुष प्रकृनत के प्रभाव में आकर इन सबको अपने ऊपर आरोवपत कर लेता ◌ि◌ै जबकक वास्तव में ये त्रबल्कुल भी उससे संबद्ध निीं ◌ं◌ि◌ैं अवपतु एकमात्र प्रकृनत की किया अथवा उसकी गनत से संबंधधत ◌ि◌ैं।

चूंकक प्रकृनत तीन गुणों अथात् ◌्ऊजिा की तीन मूलभूत अवस्थाओं से ननशमति ◌ि◌ै; सत्त्व, जो ज्ञान का मूल ◌ि◌ै, ऊजिा की कियाओंकी जस्थनत बनाए रखता ◌ि◌ै; रजस्, ◌् जो शजकत और कम ◌िका मूल ◌ि◌ै, ऊजिाकी कियाओं की सृजृष्ट करता ◌ि◌ै; तमस्, ◌् जो ज़िता और अज्ञान का मूल ◌ि◌ै, और जो सत्त्व और रजस् ◌्का ननषेध या ववपयिय ◌ि◌ै, उस सबका संिार या ववध्वंस करता ◌ि◌ै जजसकी वे सृजृष्ट करते तथा जस्थनत रखते ◌ि◌ैं। प्रकृनत के ये तीन गुण जब सामयावस्था में ◌ि◌ोतिें तब सब कुछ ठिरा ◌ि◌ुआ जस्थर पि़ा रिता ◌ि◌ै, कोई गनत, कम ◌िया सृजृष्ट निीं ◌ं◌ि◌ोती और इसशलए चेतन 'आममा' की अक्षर ज्योनतमियी सर्त्ा में आभाशसत या प्रनतत्रबंत्रबत ◌ि◌ोनेवाली भी कोई वस्तु निीं ◌ं◌ि◌ोती। परंतुजब इस सामयावस्था में भंग ◌ि◌ोता ◌ि◌ै तब तीनों गुण ववषमता की अवस्था को प्राप्त ◌ि◌ो जाते ◌ि◌ैं जजसमें कक वे एक-दूसरे से संघष ◌िकरते और एक-दूसूरे पर अपना प्रभाव जमाने का प्रयमन करते ◌ि◌ैं, और उसी से ववश्व को प्रकट करने ◌ेवाला यि सृजृष्ट, जस्थनत और संिार का ववरामरहित व्यापार आरमभ ◌ि◌ोता ◌ि◌ै। ऐसा तब तक चलता रिता ◌ि◌ै जब तक पुरुष अपने अन्दर इस वैषमय को, जो उसके सनातन स्वभाव को ढक देता और उस पर प्रकृनत' के स्वभाव को आरोवपत करता ◌ि◌ै, प्रनतभाशसत ◌ि◌ोने ◌ेदेता ◌ि◌ै।

• जगत् ◌्के ◌िमववकास के मूल में प्रकृनत अपने तीनों गुणों सहित पदाथों के मूलूतत्त्व के रूप में अव्यकत अचेतन अवस्था में रिती ◌ि◌ै, जजसमें से ◌िमशः ऊजा ◌िया ज़ितत्त्व की पाचाँ मूलभूतू अवस्थाओं ◌ंका ववकास ◌ि◌ोता ◌ि◌ै... प्राचीन शास्त्रानुसार पंचमिाभूत ◌ि◌ैं आकाश, वायु, अजग्न, जल और पृथ्वी पर यि स्मरण रखना ◌ि◌ोगा कक ये आधुननक ववज्ञान के अथ ◌िमें ईमें मूलतत्त्व निीं ◌ि◌ैं, अवपतु ये भौनतक ऊजिाकी ऐसी अनत सूक्ष्म अवस्थाएँ ◌ि◌ैं जजनका ववशुद्ध स्वरूप इस स्थूल जगत् ◌्में कििंभी प्राप्य निीं ◌ि◌ै। सभी पदाथ ◌िइन्िीं ◌ंपाचाँ सूक्ष्म अवस्थाओं ◌ंया तत्त्वों के संयोगों से सृषृट ◌ि◌ोते ◌ि◌ैं। और कफर, इन पाचौंँ मिाभूतों में से, प्रमयेक मिाभूत ऊजा ◌िया ज़ितत्त्व के पाचाँ सूक्ष्म लक्षणों में से ककसी एक लक्षण (तन्मात्रा) का आधार ◌ि◌ोता ◌ि◌ै। ये पंचतन्मात्राएँ ◌ि◌ैं शब्द, स्पश,◌ि रूप, रस और गन्ध। इन्िीं के द्वारा ज्ञानेजन्द्रयों को ववषयों का ज्ञान ◌ि◌ोता ◌ि◌ै। इस प्रकार मूलू प्रकृनत से उमपन्न इन पंचमिाभूतों और उनकी इन पंचतन्मात्राओं ◌ंसे, जजनके द्वारा स्थूल का बोध ◌ि◌ोता ◌ि◌ै, उसका ववकास िोता ◌ि◌ै जजससे आधुननक भाषा में ववश्व-सर्त्ा का वस्तुननष्ठ पक्ष कितिें।

तेरि तत्त्व और ◌ि◌ैं जजनसेववश्व ऊजा ◌िका आममननष्ठ पक्ष ननशमति ◌ि◌ोता ◌ि◌ै- बुद्धध या मित्, ◌् अिंकार, मनस् ◌्और उसकी दस इजन्द्रया ◌ाँ(पाचाँ ज्ञानेजन्द्रया ◌ाँऔर पाचाँ कमेजन्द्रया)◌ाँ। मन मूल इजन्द्रय ◌ि◌ै जो सभी बाह्य पदाथों का बोध करता और उन पर प्रनतकिया करता ◌ि◌ै; कयोंकक इसमें अंतमुखिी (अनुमान, ननष्कष,◌ि आकलन आहद आममपरक किया) और बहिमुखिी (स्नायुओंकी संवेंदनाहद किया) दोनों कियाएँ साथ-साथ ◌ि◌ोती रिती ◌ि◌ैं: इजन्द्रयानुभव के द्वारा यि उन ववषयों को ग्रिण करता ◌ि◌ै जजन्िें गीता 'बाह्य स्पश'◌ि किती ◌ि◌ै और उनके द्वारा जगत् ◌्के ववषय में अपना ववचार बनाता ◌ि◌ै और सकिय प्राणशजकत द्वारा उस पर अपनी प्रनतकियाएँ करता ◌ि◌ै। परन्तु पाचाँ ज्ञानेजन्द्रयों की सियता से, शब्द, स्पश,◌ि रूप, रस और गंध (पंच तन्मात्राएँ) जजनके ववषय ◌ि◌ैं यि अपनी ग्रिण करनेकी अनत सामान्य कियाओं ◌ंमें ववशशष्टता या समुन्नतता प्राप्त

करता ि (अथात् ्उर्न्भिली भानाँत चलाता ि। इसी प्रकार पाचाँ कमेजन्र्यों की सियता से वाणी, गनत, वस्तुओं के ग्रिण, ववसजनि और प्रजनन के द्वारा यि प्रनतकिया करनेवाली प्राणी की कुछ अमयावश्यक मूलभूत कियाओंको ववशेष रूप से चलाता ि। बुद्धध जो वववेक-तत्त्व ि, वि साथ–ी-साथ बोध और संकल्प दोनों ि, यि प्रकृनत की वि शजकत ि जो वववेक के द्वारा पदार्थों में (उनके गुणधमानिुसार) भेद करती ि और समन्वय साधधत करती ि। अिंकार, अिं-बोध, बुद्धध में ननहित

आममपरक तत्त्व ि जजससे पुरुष प्रकृनत और उसकी कियाओंके साथ अपने-आप को तदामम करने के शलए प्ेरेररत िोता ि। परन्तु ये आममननष्ठ तत्त्व स्वयं ंउतने िी ज़ि, ननश्चेतन प्रकृनत के उतने िो अंश ि जजतने कक वे तत्त्व जो उसकी वस्तुननष्ठ कियाओंका गठन करतिं। यहद यि समझनेमें ि म कहठनाई अनुभव करते िों कक ककस प्रकार बुद्धध और मन ज़ि ननश्चेतन प्रकृनत के िी गुण या लक्षण तथा स्वयं ंभी ज़ि िो सकते ि तो िमें इतना भर स्मरण रखना चाहिये कक स्वयं ं

आधुननक ववज्ञान भी (अपने सभी ववश्लेषणों के पश्चात्) ् इसी ननष्कष िपर पुिँचा ि। यिाँ तक कक परमाणु की अचेतन ज़ि किया में भी एक शजकत िोती ि जजसे ननश्चेतन इच्छाशजकत िी कि सकते ि तथा प्रकृनत के सभी कायों में यिी व्यापक इच्छाशजकत ननश्चेतन रूप से बुद्धध के काय िकरती ि। जजसे िम मानशसक बुद्धध किते ि वि तत्त्वतः ठीक विी चीज ि जो

इस ज़ि-भौनतक ववश्व को सभी कियाओं ंमें अवचेतन रूप से वववेक (गुणधमानिुसार भेद) करने और समजन्वत करने का काम करती ि, और आधुननक ववज्ञान यि हदखलाने का यमन करता ि कक स्वयं ंसचेतन मन भी ननश्चेतन प्रकृनत को ज़ि किया का िी पिररणाम और प्रनतशलवप ि। परन्तु आधुननक ववज्ञान जजस ववषय को अ ंाँधेरे में छोि़ देता ि अथात् ्ककस प्रकार ज़ि और

ननश्चेतन सचेतन का रूप धारण करता ि, सांख्यशास्त्र उसको भी व्याख्या कर देता ि।

सारी प्रकृनत वस्तुतः आममगत (subjective) अथात् ्चेतना-संबंधी ि। यि आममगत दृजष्ट से िी ववकशसत िोती ि। कयोंकक दो तरि के ववभाजन ि - एक ि मूल प्रकृनत और दूसूरा ि पुरुष, अथात् ्एक तो ि मूल तत्त्व जजसका साक्षक्षमव ककया जाता ि और दूसूरा ि साक्षी तत्त्व या रष्टा जो उसे देखता ि। इन दोनों के त्रबना सृजष्ट िी िी निंसकती। यहद ऐसी कोई सृजष्ट ि जजसका कभी ककसी नेसाक्षक्षमव या अवलोकन न ककया िो तो उसके अजस्तमव का कोई अथ िी निंि। और यहद साक्षी पक्ष तो ि पर कोई सृजष्ट निं तो इसका भी कोई अथ िनिं ननकलता। सृजष्ट िोने ेके शलए दोनों का समामेलन आवश्यक ि। सृजष्ट की जो यि सारी प्रतीनत या प्रकटन ि वि मूल प्रकृनत से आरमभ िोता ि। मूल प्रकृनत के अन्दर परमाममा की सारी संभावनाएँ ननहित ि। वतमिान सृजष्ट का सारा प्रयास एकमेवाद्ववतीय के सूत्र को - जो कक सभी कुछ के मूल में अंतननहिित ि - बिुलता में प्रकट करना ि। इस बिुलता को प्रकट करने ेके शलए जब तक पृथृकता का भान न िो तब तक बिुलता का बोध निं ंिोता। इसशलए इसमें 'अिं' सबसे पिले आता ि - पुरुष, मूल प्रकृनत और अिंकार। अिंकार आने ेके बाद समस्या यि आती ि कक व्यजकत दूसूरों के साथ, अथित् ्जो ननज-सर्त्ा से पृथृक् ि उनके साथ ककस प्रकार किया-व्यापार करे कयोंकक जब व्यजकत एकमेव िी रिता ि तब तक तब स्वयं और दूसूरे जैसा कोई भेद िी निं ंिोता, परन्तु पृथृकता के बोध के साथ परस्पर किया-व्यापार का बोध भी आता ि। इसके शलए कफर आती ि 'बुद्धध' - वववेक या भेद दृजष्ट - जो यि पता लगाती ि कक कया करना चाहिये और कैसे करना चाहिये। यहद 'अिंकार' िोगा तो वि 'बुद्धध' को प्रक्षक्षप्त करेगा। 'अिंकार' मूल प्रकृनत से प्रक्षक्षप्त िोता ि। अब जब बुद्धध इस पररदृश्य में शाशमल िो जाती ि तो उसे

ननरंतर सूचना की आवश्यकता िोती ि ै जजसके आधार पर वि सिी-गलत, उधचत-अनुधचत का ननणयि कर सके, और जब उसे सूचना के घटकों का पता चल जाए तब यि ननणयि करे सके कक उनके साथ कैसा व्यविार करे। इस ेतु के शलए बुद्धध अपने-आप को प्रक्षक्षप्त करती ि ै मनस् ् के रूप में। वस्तुतः मनस् ् िी एक मौशलक इंहरय ि ै बाकी तो सब भौनतक ज़ि सृजृष्ट ि ै। मनस् ् में यि क्षमता िोती ि ै कक वि देश-काल की सीमा से परे भी जान सकता ि ै, भूत, वतमिान और भववष्य तीनों जान सकता ि ै और वि देश से भी सीशमत निीं ं िोता, वि ककतनी भी दूरी की चीजों को जान सकता ि ै। ये सारी क्षमताएँ मनस् ् में ननहित ि ैं। यहद मानव मनस् ् की ये सारी क्षमताएँ काम में लेते तो सारी सृजृष्ट त्रबल्कुल शभन्न प्रकार की िोती और जैसा भौनतक ननमिाण िमें गोचर िोता ि ै वैसा कदाधचत् ् िी मिें हदखाई देता कयोंकक मनस् ् में तो देश और काल की सीमाएँ भी लचीली िोती ि ैं। परंतुइस सृजृष्ट को बनाने के शलए मनस् ् के पंख काट हदये गये, या यों किें कक उन्ें कुछ िद तक बाधाँ हदया गया। इसशलए ककन्िीं मनुष्यों में वि अपनी क्षमताओं को अधधक काम में लेता ि ै जबकक दूसूरों में अपनी क्षमताओंको उतना काम में निींलेता। उदिारण के शलए समान िी दृश्य को देखकर शभन्न-शभन्न व्यजकत शभन्न-शभन्न ननष्कष िननकालते ि ैं कयोंकक उनमें मनस् ् की योग्यता में अन्तर िोता ि ै। भले िी उन सब में इजन्रयाँ तो लगभग समान िी सूचना दे रिी िोती ि ैं परन्तु वि सूचना जाती ि ै मनस् ् के पास जो कक उस अनुपात में और उस तरीके से उन सूचनाओं ं की शभन्न-शभन्न व्याख्या करता ि ै जैसी उसकी शभन्न-शभन्न क्षमताएँ या शजकत-सामथ्य िोतीं। उदिारण के शलए एक सामान्य मनुष्य की अपेक्षा एक कलाकार की क्षमताएँ अधधक ववकशसत िोती ि ैं इसशलए वि इंहरयों से शमली सूचना के आधार पर सामान्य मनुष्य से सवथिा शभन्न तरीके से ननष्कष िननकालता ि ै। इस प्रकार मनस् ् एक बिुत िी मित्त्वपूण ितत्त्व ि ै। वास्तव में तो केवल मनस् ् िी एकमात्र इंहरय ि ै बाकी तो सब उसके अधीनस्थ सियक ि ैं। परंतु इंहरयों के कारण मनस् ् की क्षमताओंपर तथा उसकी किया पर अंकुश लग जाता ि ै। इन इंहरयों की सियता से वि कुछ चीजें तो स्पष्ट रूप से जान लेता ि ै परंतु अधधकांश चीजों में ये इंहरयाँ उसकी सिज शजकत को सीशमत कर देती ि ैं। ये उसे इस रूप में सीशमत कर देती ि ैं कक स्वयंअपने-आप में पयाप्ति िोतेिुए भी वि अपने-आप को पाचाँ ज्ञानेंहरयों और पाचाँ कमेजन्रयों में प्रक्षक्षप्त करता ि ै और उनकी सियता से किया करता ि ै। ज्ञानेजन्रयाँ बुद्धध को सूचना देती ि ैं। बुद्धध ननणयि करती ि ै और साथ िी अपना स्वयंका मंतव्य भी जोिती ि ै और तब जो कुछ करना ि ै उस बारे में सूचना कमेजन्रयों तक पिुँचा दी जाती ि ै। इस प्रकार मनस् ् ने पाचाँ ज्ञानेजन्रयों और पाचाँ कमेजन्रयों में अपना पसारा कर रखा ि ै। अब, ज्ञानेजन्रयों को ज्ञान प्राप्त करने के शलए तन्मात्राओं की आवश्यकता िोती ि ै। आखाँों को दृजष्ट की, कानों को श्रवण शजकत की आवश्यकता िोती ि ै। इस प्रकार शब्द, स्पश,ि रूप, रस और गन्ध, ये पाचाँ तन्मात्राएँ ि ैं। इन पाचाँ तन्मात्राओं के माध्यम से इजन्रयाँजानने े का प्रयास करती ि ैं। ये पाचाँ तन्मात्राएँ पंच मिाभूतों को जन्म देती ि ैं। वास्तव में, अपने-आप में कोई ज़ि-तत्त्व निीं ं ि ै परंतु जो कुछ भी ि ै उसे ये तन्मात्राएँ अपनेअनुसार पररवनतति कर के पाचाँ मिाभूतों के रूप में प्रकट करती ि ैं। इसीशलए श्रीअरववन्द कितेिैं कक ववज्ञान जजतना िी अधधक आगे जाएगा उतना िी उसे यि पता लग जाएगा कक ज़ि-तत्त्व जैसी कोई चीज ि ै िी निीं,ं और यिी बात तो िमारा सांख्य-शास्त्र पिले िी घोवषत कर चुका ि ै। सभी कुछ केवल ऊजिा िी ि ै। ये तन्मात्राएँ भी एक सूक्ष्म ऊजिा का रूप ि ैं जो कक पंचमिाभूतों के हदखावे को प्रकट करती ि ैं। इन पंच मिाभूतों का बोध इंहरयाँ पंच तन्मात्राओं के माध्यम से करती ि ैं। इजन्रयाँ मनस् ् का िी ववस्तार, उसी का प्रक्षेपण

ि। मिनस् ्इनकी सूचना को बुद्धध के पास भेजता ि‍ै जजसका कक वववेक-बुद्धध ववश्लेषण करती ि‍ै। परंतु इसमें समस्या यि ि‍ै कक ि‍मारा कियाशील मन किया-प्रनतकिया करने के शलए बिुत उतावला रिता ि‍ै जजससे प्राय: बुद्धध को वववेक के शलए पयाप्ति समय निीं ंशमल पाता। बुद्धध के काय ि‍करने ‍ेसे पिले ि‍ी वि ि‍स्तक्षेप कर बैठता

ि। इजन्रयों से शमली सूचनाओं ंपर वि बीच में ि‍ी तुरंत किया करना आरमभ कर देता ि‍ै। त्रबना सोचे-ववचारे ि‍ी वि लि़ाई-झगि़े ‍ेमें, गाली-गलौच तक में संलग्न ि‍ो जाता ि‍ै। इसीशलए श्रीमाताजी किती ि‍ैं कक थोि़ा पीछे ि‍टो, और वववेकपूवकि ववचार करो और तब काय ि‍करो। यहद ि‍म पीछे ि‍टकर कुछ ववचार करेंगे तो बुद्धध को ि‍स्तक्षेप करने

का कुछ मौका शमलेगा और इससे कफर एक ि‍द से अधधक मूखतिापूण ि‍प्रनतकिया पर कुछ अंकुश लग जाएगा। और

ज्यों ि‍ी बुद्धध से वववेक आएगा, वि व्यजकत की कमेजन्रयों को काम में लेगा। उस वववेक की अशभव्यजकत के शलए जजस ककसी भी कमेजन्रय की आवश्यकता ि‍ोगी वैसी काम में ले ली जाएगी - जैसे कक वाणी की आवश्यकता ि‍ोगी तो बोल कर किया ि‍ोगी, ि‍ाथों से किया की आवश्यकता ि‍ोगी तो तदनुरूप किया ि‍ोगी। इस तरि से सृजृष्ट का यि सारा ि‍ी व्यापार चालू ि‍ो जाता ि‍ै। ि‍मारे लगभग सभी शास्त्र इस बात को स्वीकार करते ि‍ैं कक जिाँ तक सृजृष्ट की

प्रतीनत की व्याख्या की बात ि‍ै, इसके तत्त्वों के पररगणन की बात ि‍ै, तो सांख्य का वणनि लगभग सिी ि‍ै। तो इस

अपनी एकमेव की चेतना के अंदर यि अिकार या कफर पृथकता का बोध तब आएगा जब मूल प्रकृनत के

प्रकार ये चौबीस तत्त्व ि‍ुए और पच्चीसवाँ तत्त्व ि‍ै अवलोकन करने वाला साक्षी तत्त्व। यहद वि न ि‍ो तो ककसी चीज

अंदर कोई क्षोभ उमपन्न ि‍ोगा। यहद वि सामयावस्था में ि‍ी रिे, तो पुरुष और प्रकृनत दोनों एक ि‍ी ि‍ोंगे और इस

का कोई अथ ि‍ि न ि‍ोगा, उसके अवलोकन से ि‍ी सारी सृजृष्ट का अथ ि‍ै।

कारण सृजृष्ट–म निीं ंि‍ोगा। परन्तुउसमें यहद क्षोभ ि‍ोगा तो उनमें ववच्छेद उमपन्न ि‍ो जाएगा। सामयावस्था में

तीन गुणों का क्षोभ प्रकट निीं ि‍ोता। अिकार भी तीन प्रकार का ि‍ै - साजत्त्वक, राजशसक, तामशसक । यहद ये तीनों

निीं ंि‍ोंगे तो अिकार रिेगा ि‍ी निीं, ं सृजृष्ट का ननमाणि ि‍ी निींिोगा। अब चूँकक ि़ि-तत्त्व जैसी कोई चीज निीं

और सब कुछ केवल आममपरक चेतना के अनुसार हदखाई देता ि‍ै इसीशलये इसे 'लोक' किते ि‍ैं, अथाित् ्

अवलोकनकारी चेतना के अनुसार ि‍ी प्रतीनत ि‍ोती ि‍ै। यहद इजन्रयों की संरचना दूसूरे ि‍ी तरीके की ि‍ोगी तो ि‍में त्रबल्कुल शभन्न प्रतीनत ि‍ोगी। इसीशलए यहद ि‍म सूक्ष्म दृजष्ट से देखें तो सूक्ष्म जगतों में ि‍म पाएँगे कक विाँचीजें बिुत अधधक सुन्दर ि‍ैं, कयोंकक यिाँ भौनतक स्तर तक आते-आते बिुत प्रनतरोध उमपन्न ि‍ो जाता ि‍ै और उनका उतना सौंदय ि‍अशभव्यकत निींि पाता ि‍ै। विाँवे अपने अधधक सच्चे रूप में ववद्यमान ि‍ैं। इसशलए जो यिाँभद्दा हदखाई देता ि‍ै उसी का रूप विाँबिुत सुन्दर ि‍ै, और जो कुछ यिाँसुन्दर हदखाई देता ि‍ै उसका मूल रूप तो विाँ हदव्य ि‍ै, अपूव ि‍ै। अत: ये सभी 'लोक' ि‍ैं अथाित् ्जजस चेतना के स्तर से ि‍म देखतेि ये वैसे ि‍ी हदखाई देते ि‍ैं। सारे लोकों में ि‍ी पुरुष और प्रकृनत का खेल ि‍ै। जजस तरि की ि‍मारी इजन्रयाँ ि‍ोंगी उसी तरीके का ि‍में अनुभव ि‍ोगा। और वास्तव में तो कया ि‍ै या कया निीं ंइस ववषय में कुछ भी कि निीं जा सकता। आखखर परमाममा को जाना ि‍ी कैसे जा सकता ि‍ै। यि तो ि‍मारा केवल देखनेका एक तरीका-मात्र ि‍ै। सब कुछ इस पर ननभरि करता ि‍ै कक ि‍मारी चेतना कैसी ि‍ै। वि जजस प्रकार की ि‍ोगी उसी प्रकार के जगत् ्का अनुभव ि‍में ि‍ोगा। पशुओंमें भी कुछ को मनुष्यों से अधधक रंग हदखाई देते ि‍ैं, कुछ को रंग हदखते ि‍ी निीं। मनुष्यों की अपेक्षा कुत्तों में घ्राण-शजकत बिुत अधधक ववकशसत ि‍ोती ि‍ै। इस प्रकार इजन्रयों के ववकास का कोई अन्त निींि। अत: जगत् ्ि‍में ककस रूप में

हदखाई देगा यि इस पर ननभरि करेगा कक इंहरयों ने अपना केंर ककस चेतना पर स्थावपत कर रखा ि ै। ये सारा जगत् ्एक 'लोक' ि ै, परमाममा को देखने का एक तरीका ि ै। चूंकक अपने-आप में उस एक ि ी सद्वस्तुके अनतररकत और कुछ भी निीं ि ै अतः कसी ननजश्चत स्तर से देखने पर ि ी ज़ि-तत्त्व नजर आता ि ै, अन्यथा निीं। बिुत-सी ऐसी सृजृष्टया ॉ ँि ैं जजनर्ें ज़ि-तत्त्व का आभास तक निीं ि ै। भौनतक जगत् ्में ि में बीच में ररकतता या शूनूयता नजर आती ि ै, परंतु श्रीमाॉ ँकिती ि ैं कक किीं ंकोई ररकतता ि ै ि ी निीं, सभी कुछ में प्रचुर रूप से सृजृष्ट भरी िुई ि ै, बस केवल ि मारी चेतना को, ि मारी इंहरयों को वि गोचर निीं ि ोती।

श्रीअरववन्द यिाॉ ँयि स्पष्ट कर रिे ि ैं कक गीता ने सांख्य को ककस प्रकार अपनाया ि ै जजससे कक ि म उसे एक उधचत पररपे्रेक्ष्य में समझ सकतें ि ैं और ककसी अनावश्यक भ्ांनत से बच सकतें ि ैं।

परंतु जब वि अपनी इस अनुमनत को ि टा लेता ि ै तब तीनों गुण कफर सामयावस्था को प्राप्त ि ो जाते ि ैं और पुरुष अपनेसनातन अववकाय ि अचल स्वरूप में लौट आता ि ै; वि ववश्व-प्रपंच से मुकत ि ो जाता ि ै। ऐसा लगता ि ै कक अपनेअन्दर प्रकृनत को आभाशसत ि ोने ्देना और यि अनुमनत देना या लौटा लेना ि ी पुरुष के एकमात्र अधधकार ि ैं; प्रकृनत को अपनेअन्दर आभाशसत देखने के नाते पुरुष गीता की भाषा में साक्षी और अनुमनत देनेके नाते अनुमंता ि ै, परंतु सकिय या प्रभावी रूप से ईश्वर निीं ंि ै। यिाॉ ँतक कक उसका अनुमनत देना भी ननजष्िय ि ै। कममिात्र ि ी, चािे वि आममननष्ठ ि ो या वस्तुननष्ठ, आममा का स्वधम ि निीं,ं उसके शलए ववजातीय ि ै, उसमें न कोई सकिय संकल्प ि ै न कोई सकिय बुद्धध अथवा ज्ञान...

सांख्य के अनुसार यि बुद्धध और संकल्प सवथिा प्रकृनत की यांत्रत्रक ऊजिाके अंग ि ैं, पुरुष के गुणधम ि निीं ंि ैं; ये दोनों ि ी बुद्धध-तत्त्व ि ैं जो कक जगत् ्के चौबीस तत्त्वों में से एक तत्त्व ि ै।... बुद्धध जो वववेक तत्त्व ि ै, वि एक ि ी साथ बोध और संकल्प दोनों ि ै, यि प्रकृनत की वि शजकत ि ै जो वववेक के द्वारा पदाथों को उनके गुणधमानिुसार पृथृक् करती और उनमें संगनत बैठाती ि ै। अिंकार बुद्धध का आममगत या अिंगत वि तत्त्व ि ै जजससे पुरुष प्रकृनत और उसकी कियाओं के साथ तादाममय को प्राप्त ि ोता ि ै।...

अवश्य ि ी ि मारे इस जगत् ्में बिुत-सी चीजें ि ैं जजनर्ें सांख्यशास्त्र त्रबल्कुल भी ननरूवपत निीं ंकरता और करता भी ि ै तो संतोषप्रद रूप से निीं,ं परन्तु यहद ि में उसके तत्त्वों में वैजश्वक प्रकियाओं की केवल एक बौद्धधक या तकिसंगत व्याख्या ि ी चाहिए जो कक सभी प्राचीन दशनिों के समान ि ी लक्ष्य - लक्ष्य ि ै ववश्व-प्रकृनत से ग्रशसत आममा की मुजकत की ओर अग्रसर ि ोने में एक आधार के रूप में ि ो, तब तो सांख्य का जगत्−्ननरूपण और मुजकत का माग ि उतना ि ी उत्म और प्रभाषकारी ि ै जजतना कक अन्य कोई माग।ि यिा ॉ ँजो बात पिले समझ में निीं ंआती वि यि ि ै कक सांख्यदशनि प्रकृनत को एक, और पुरुष को अनेक बताकर अपनेद्वैत शसद्धांत में बिुमव के तत्त्व का प्रवेश कयों कराता ि ै।... परन्तु पदाथों के मूल तत्त्वों के ननरीक्षण की कठोर ववश्लेषण-पद्धनत के फलस्वरूप पुरुष-बिुमव के शसद्धांत का प्रनतपादन करना सांख्य के शलये अननवाय ि था।... ववश्व और उसकी प्रकिया को एक पुरुष और एक प्रकृनत के व्यापार के रूप में समझाया जा सकता ि ै, ककन्तु इससे ववश्व में सचेतन जीवों की बिुलता का समाधान निीं ंि ोता।

कफर इतनी िी ववकट एक और कहठनाई िै। अन्य दशनिों की िी तरि सांख्य ने भी 'मोक्ष' को अपना लक्ष्य रखा िै। यि मोक्ष... पुरुष द्वारा प्रकृनत के कमों से अपनी अनुमनत िटा लेनेसे प्राप्त िोता िै... तब अवश्य िी उसके गुणों को सामयावस्था में आना िी िोगा, ववश्व-प्रपंच अवश्य िी बंद िो जाएगा और पुरुष को अपनी अचल शांनत में लौट जाना िोगा। परन्तु यहद पुरुष एक िी िोता और वववेक तत्त्व (बुद्धध और संकल्प) अपनेभ्म से ननवृत्त् िो जाता तो सारा ववश्व-प्रपंच िी बन्द िो जाता। परंतु जैसा यि िै, इसमें िम देखते िैं कक ऐसा निींिोता। असंख्य प्राखणयों में से कुछ िी मोक्ष को प्राप्त िोतेया इसकी ओर अग्रसर िोतेिैं; शेष सब इससे ककसी भी प्रकार प्रभाववत निीं िोते, और न िी ववश्व प्रकृनत की जो ििीा उनके साथ िो रिी िै उसमें इस छोटे-मोटे मयाग से रत्ती भर भी असुववधा िी िोती िै जब कक उसकी सारी प्रकियाओंका िी अंत िो जाना चाहिये था। केवल अनेक स्वतंत्र पुरुषों के शसद्धांत द्वारा िी इस तथ्य की व्याख्या की जा सकती िै। वेदांनतक अद्वैतवाद के दृजष्टकोण से यहद इसकी कोई न्याय-संगत व्याख्या िो सकती िै तो वि िै मायावाद। परंतु मायावाद को मान लेनेपर तो यि सारा प्रपंच एक स्वप्नमात्र िो जाता िै, तब बंधन और मुजकत दोनों िी अवास्तववकता (अथवा माया) की अवस्थाएँ, माया की अनुभवजन्य भ्ांनतमात्र िो जाती िैं; वास्तववकता में न कोई मुकत िै, न कोई बद्ध। वस्तुओं का अधधक यथाथविादी सांख्य दृजष्टकोण सृजृष्ट-ववषयक इस भ्ांनतजनक ववचार को स्वीकार निीं ंकरता (कक यि सब दृजष्टभ्म िै) और इसशलए वि वेदांत के इस समाधान को ग्रिण निींकर सकता। इस प्रकार यिा ँभी िम देखेंगे कक जगत् ्के सांख्य ववश्लेषण से प्राप्त तथ्यों का बिु पुरुष का शसद्धांत एक अपररिाय िननष्कष ििै।

गीता सांख्य के इस ववश्लेषण से आरंभ करती िै और जिाँ वि योग का ननरूपण कर रिी िोती िै विाँभी पिले तो सांख्य के इस ववचार को िी लगभग पूणतिया स्वीकार करती प्रतीत िोती िै। वि प्रकृनत, उसके तीन गुणों और चौबीस तत्त्वों को स्वीकार करती िै; प्रकृनत पर समस्त कमों के आरोपण को और पुरुष के अकतापिन को भी गीता स्वीकार करती िै; ववश्व में सचेतन प्राखणयों की बिुलता िोनेको भी स्वीकार करती िै, तादाममयकारी अिं-भाव के तथा बुद्धध की भेदभाव करनेवाली किया के लय को और प्रकृनत के तीनों गुणों की किया के अनतिमण को मोक्ष के साधन के रूप में स्वीकार करती िै। आरंभ से िी अजुनि से जजस योग की साधना करने ेको किा जा रिा िै, वि बुद्धध द्वारा योग िै। परन्तुइसमें एक मित्त्वपूण िशभन्नता या भेद िै, - यिाँ पुरुष को एक माना गया िै, अनेक निीं।... इससे वि बड़ी कहठनाई उपजस्थत िोती िै जजसको सांख्य का बिुपुरुषवाद टाल जाता िै, और ककसी सवथिा नये समाधान की आवश्यकता खड़ी िो जाती िै। गीता यि समाधान, अपनेवेदांनतक सांख्य में वेदांनतक योग के शसद्धांतों और तत्त्वों को लाकर करती िै।

जो पिला मित्त्वपूण िनया शसद्धांत िमें देखनेको शमलता िै वि स्वयंपुरुषसंबंधी धारणा में िै।... कठोर सांख्य-ववश्लेषण में... 'पुरुष' साक्षी िै, अनुमनत का स्रोत िै, आभास या प्रनतत्रबंबन के द्वारा प्रकृनत के कम िको धारण करनेवाला िै, - साक्षी, अनुमंता और भतिा िै, इसके अनतररकत और अधधक कुछ निीं। परन्तु गीता-प्रनतपाहदत पुरुष प्रकृनत का प्रभुभी िै, वि ईश्वर िै।... जिाँ'संकल्पाममक' बुद्धध की किया प्रकृनत की किया िै (के िथि में िै), विाँ बुद्धध को आधार और प्रकाश पुरुष द्वारा सकिय रूप से प्रदान ककये जाते िैं, वि केवल साक्षी िी

निीं,ं अवपतुज्ञाता और ईश्वर भी िै, ज्ञान और संकल्प का स्वामी भी िै। प्रकृनत की कम िमें प्रवृर्त् का विी परम कारण िै और विी उसकी कम िसे ननवृर्त् का भी परम कारण िै। सांख्य-ववश्लेषण में पुरुष और प्रकृनत अपनेद्वैत भाव में ववश्व (उमपवर्त्) के कारण िैं; और इस समन्वयाममक सांख्य में पुरुष, अपनी प्रकृनत के द्वारा, ववश्व का एकमात्र कारण िै। एकाएक िम देख सकतेिैं कक सांख्य की कठोर अनतववशुद्धतावादी या कट्टरपंथी पारंपररक ववश्लेषण-प्रणाली से िम ककतनी दूरू ननकल आये िैं...

तो कफर ववश्व में जो अनेक सचेतन प्राणी िैं, उनका कया? वे तो ईश निीं प्रतीत िोते, उल्टे बिुत िद तक अनीश िी प्रतीत िोतेिैं, कयोंकक ये त्रत्रगुण की किया और अिं-भाव की भ्ांनत के अधीन िैं, और यहद ये सब एक िी आममा िैं, जैसा कक गीता का आशय प्रतीत िोता िै, तो यि प्रकृनत में लीनता, वश्यता और भ्ांनत किा ाँसे उमपन्न िो गई, अथवा इसका शसवाय यि किने के कक पुरुष सवथिा ननजष्िय िै, दूसूरा कया समाधान िै? और, कफर पुरुष का यि बिुमव किा ाँसे आया? अथवा यि कया बात िै कक जिााँउस एक, अद्ववतीय पुरुष की ककसी एक शरीर और मन में तो मुजकत िोती िै, विींअन्य शरीरों और मनों में वि बंधन के भ्म में बना रिता िै? ये ऐसी शंकाएाँ िैं जजनका समाधान ककये त्रबना यों िी आगे निींजाया जा सकता।

गीता अपनेबाद के अध्यायों में इन सब शंकाओं का प्रकृनत और पुरुष के एक ववश्लेषण द्वारा उर्त्र देती िै, जो ववश्लेषण कुछ ऐसे नवीन तत्त्वों को सजममशलत कर लेता िै जो एक वेदांनतक योग के शलए तो त्रबल्कुल संगत िो िैं ककन्तु परंपरागत सांख्य के शलये ववजातीय िैं। यि तीन पुरुषों या यों किें एक पुरुष की तीन अवस्थाओं का उल्लेख करती िै.... क्षर, अक्षर और उर्त्म। क्षर िै प्रकृनत, 'स्वभाव', जो गनतशील, पररवतनिशील (क्षरणशील) िै, यि जीव (आममा) की बिुववध अशभव्यजकत या रूप धारण करना िै, यिााँ पर जो पुरुष िै वि हदव्य सर्त्ा (पुरुष) की बिुरूपता या ववववधता िै; यिी बिुपुरुष िै, यि पुरुष प्रकृनत से स्वतंत्र निीं िै, अवपतु ुयि 'प्रकृनतस्थ पुरुष' िै। अक्षर, कूटस्थ, अववकाय िपुरुष ननश्चल-नीरव और ननजष्िय आममा िै, यि हदव्य सर्त्ा (पुरुष) की एकरूपता या एकमवावस्था िै, यिााँपुरुष प्रकृनत का साक्षी िै, पर प्रकृनत के कायों में शलप्त निीं;ं यि प्रकृनत और उसके कमों से मुकत, अकतािपुरुष िै। उर्त्म पुरुष परमेश्वर, परंब्रह्म, परमाममा िै, जजसमें अक्षर का एकमव और क्षर का बिुमव, दोनों िी अवस्थाएाँ सजन्नववष्ट िैं। वि अपनी प्रकृनत की ववशाल गनतशीलता और कम िके द्वारा, अपनी (कती) शजकत, अपनेसंकल्प और सामथ्य िके द्वारा जगत् ्में अपने-आपको व्यकत करता िै, और अपनी सर्त्ा की मिर्त्र ननस्तब्धता और अचलता के द्वारा उससे अलग रिता िै; कफर भी वि अपनेपुरुषोर्त्म-रूप में, प्रकृनत से अलगाव और प्रकृनत से आसजकत, इन दोनों अवस्थाओं के िी परे िै। पुरुषोर्त्म की यि धारणा यद्यवप उपननषदों में ननरंतर िी अशभप्रेेत िै, तथावप इसे अलग कर के सुस्पष्ट और सुननजश्चत रूप से गीता द्वारा िी सामने रखा गया िै और इसने भारतीय धाशमकि चेतना के उर्त्रवती नए ववकासों पर बिुत भारी प्रभाव डाला िै। अद्वैतवाद की कठोर सूत्रबद्ध पररभाषाओं का अनतिम कर जाने का दावा करने वाले उच्चतम भजकतयोग का आधार यिी पुरुषोर्त्मसंबंधी धारणा िै और भजकत-प्रधान पुराणों के पीछे भी यिी िै।

यहद अनेक पुरुष निीं ंिोंगे और केवल एक िी पुरुष िोगा तो उसके लय के साथ िी सारी सृजृष्ट का भी अंत िो जाएगा। अतः, गीता किती कक पुरुष तो एक िी िै परन्तु उसकी तीन अवस्थाएँ िोती िैं। िमें जो बिुमव गोचर िोता िै वि तो अिं के कारण िै, वास्तव में बिुमव निीं िै। सारे जगत् ्के ननमाणि में पुरुष और प्रकृनत दोनों एक िी िैं, वे केवल रूप दो धारण करते िैं। इसमें जजसे िम पुरुष या ईश्वर पक्ष किते िैं वि सब कुछ का संचालन करता िै। और जो प्रकृनत पक्ष िै वि उस पुरुष की प्रसन्नता के ननशमर्त् िी सब कुछ करता िै। विी सभी कुछ का ननमाता िै। पुरुषोर्त्म िी सभी कुछ का ननयंता िै। इसशलए जब ककसी प्रकृनत के साथ तादाममय के अंदर वि एक केंर (क्षर-भाव) से िटकर अक्षर की ननशलप्ति अवस्था अपना लेता िै तब वि उसमें ननवास करने लगता िै, और ऐसा करने से अन्य ककसी चीज में कोई फकि निींपड़ता, अन्य सभी अपनेउसी क्षर भाव में चलते रिंगे। कयोंकक यि सब सृजृष्ट या ननमाणि कोई अकस्मात् ्संयोग के द्वारा निीं ंिुआ, यि तो पुरुष की सोची-समझी किया िै। वि स्वयं तो ईश्वर िै, इसशलए उसके द्वारा एक अिंकारमय चेतना के अंदर अपना क्षर से भाव बदलकर अक्षर अपना लेनेसे उसकी यि सोची-समझी किया कयों प्रभाववत िोगी? ककसी एक अिं चेतना में वि क्षर से मुकत िोकर अक्षर भाव में ननवास करनेलगेगा, कयोंकक पुरुषोर्त्म तो सदा िी क्षर और अक्षर दोनों िी िै और उनसे परे भी िै। इसशलए इस पद्धनत में अनेक पुरुषों की आवश्यकता निीं रिती। और कफर, शंकराचाय िआहद का एक अन्य मत भी िै जजसके अनुसार केवल दो िी भाव िैं - क्षर और अक्षर। या तो व्यजकत क्षर भाव में शलप्त रिता िै, या कफर उससे मुकत िोकर अक्षर भाव में चला जाता िै, और तब प्रकृनत शांत िो जाती िै और तब कोई प्रपंच निीं रिता। परंतुइसमें भजकत की तो कोई संभावना िी निीं ंरिती। आखखर अक्षर भाव में व्यजकत ककसकी भजकत करेगा? इसशलए जब िम पुरुषोर्त्म की बात करते िैं तो उनकी भजकत की जा सकती िै जो सारी सृजृष्ट के ननयामक िैं, सब कुछ को उमपन्न करने वाले िैं। तब भजकतयोग संभव िोता िै। गीता भी इस तत्त्व को ननणायिक रूप से पन्रिवें अध्याय में प्रनतपाहदत करती िै, उससे पिले तो वि 'अिम्' ्, 'माम्' ् आहद पदों का प्रयोग करती िै। पिले के अध्यायों में भगवान् ्यि किते ेअवश्य िैं कक 'म ैंयि िूँ' या कफर 'मेरे ननशमर्त् काय िकरो' आहद-आहदः परंतुइस बात का बौद्धधक प्रनतपादन तो वे पन्रिवें अध्याय में िी करते िैं कक उनका समस्वरूप कया िै, वे ेवास्तव में कौन िैं, और यि कक वे क्षर और अक्षर दोनों से परे िैं। और उन्िीं िके प्रनत भजकत को अवपति करना िोगा। गीता के इसी प्रकार के पुरुषोर्त्म तत्त्व के प्रनतपादन के कारण िी पुराणों आहद में भजकत की इतनी संभावना बनती िै। सांख्य में तो भजकत की कोई संभावना निीं ंिै, अद्वैतवाद में भी क्षर और अक्षर दो िी पुरुषों को माना गया िै, इसशलये उसमें भी भजकत के शलए कोई स्थान निीं िै। परंतु ुयिााँश्रीकृष्ण अवतार के रूप में किते िैं कक 'म ैंपुरुषोर्त्म िूँ। म ैंक्षर-अक्षर दोनों से परे िूँ। सब कुछ मेरी इच्छा से िी िोता िै।' इसशलए उनके प्रनत भजकत और एकमव प्राप्त करना उद्देश्य िो सकता िै। इस प्रकार पुरुषोर्त्म तत्त्व के प्रनतपादन से गीता इस समस्या का समाधान करती िै। प्रकृनत को भी यि दो प्रकार की मानती िै। यि जो गोचर िो रिी िै वि अपरा प्रकृनत िै, जो कक त्रत्रगुणमयी िै, जबकक एक उच्चतर, परा प्रकृनत भी िै जो इस अपरा से परे िै – 'परा प्रकृनतजीवभूता', जो कक जीव के रूप में भी प्रकट िोती िै, वि भगवान् ्की परा प्रकृनत िै। और जब भगवान् ्अवतार ग्रिण करते िैं, तब वे अपनी परा प्रकृनत को अधीन करके जन्म ग्रिण करते िैं। वे इस अपरा प्रकृनत के अधीन निीं ंिैं। उन्िें अपनेकाय िके शलए इसका जजतना अंश आवश्यक िोता िै उतनेअंश को वे स्वीकार करके धारण करते िैं बाकी को निीं।

इस प्रकार इन सभी चीजों का स्पष्टीकरण कर हदया गया ि◌ै कक गीता के सांख्य और योग आम तौर पर इन नामों से जो समझे ◌ेजाते ि◌ैं उनसे शभन्न ि◌ैं। इन चीजों को स्पष्टतः समझ लेना चाहिए ताकक कोई अयौजकतक, परस्पर ववरोधी तरीके की अदाशनिनक बातें न ि◌ों। वास्तव में देखा जाए तो, केवल परा प्रकृनत ि◌ी काय ि◌करती ि◌ै, अपरा प्रकृनत तो कुछ ि◌ै ि◌ी निीं, वि तो केवल ऊपरी हदखावा-मात्र ि◌ै वैसे ि◌ी जैसे कक परम् ◌्प्रभु ि◌ी सब कुछ करते ि◌ैं और उनके अनतररकत अन्य कुछ ि◌ै ि◌ी निीं परंतु कफर भी ि◌मारी चेतना पर इजन्रयों और मन की बेड़ियों के कारण मिें ऐसा जगत् ◌्हदखाई देता ि◌ै। जैसी ि◌मारी चेतना ि◌ोती ि◌ै, वैसा ि◌ी जगत् ◌्ि◌में हदखाई देता ि◌ै।

प्रश्न : सांख्य का जो वणनि ि◌ै वि कया अपरा प्रकृनत को लेकर ि◌ी ि◌ै?

उत्तर : सांख्य परा या अपरा प्रकृनत को निीं मानता। वि तो एक ि◌ी प्रकृनत को मानता ि◌ै, जजसमें पुरुष ि◌ै और बाकी उसकी ववषय-वस्तु ि◌ै जजसका वि साक्षक्षमव करता ि◌ै। उसके अनुसार ईश्वर नाम की कोई चीज ि◌ै ि◌ी निीं। बौद्ध धम ि◌भी यिी किता ि◌ै कक इस गोचर प्रकृनत को शमटा दो तो सब शून्य ि◌ी रि जाता ि◌ै। वि तो पुरुष को भी निीं मानता, उसे भी वि तो केवल प्रतीनत या भ्म ि◌ी बताता ि◌ै, बाकी तो सब शून्य ि◌ी ि◌ै। परंतु, ये सभी तो शभन्न-शभन्न प्रकार के अनुभव ि◌ैं, और इन्िें ि◌ी संपूण ि◌निीं मान बैठना चाहिये। श्रीअरववन्द अपने पत्रों में इसकी पुजष्ट करते ि◌ैं कक उन्िें स्वयं ये सभी और इनके अनतररकत भी अन्य उच्च अनुभव प्राप्त ि◌ुए, इसशलए उस समग्र समय को वे इन आंशशक अनुभवों से कैसे सीशमत कर सकतेिं। गीता के इसी समन्वयाममक स्वरूप के कारण श्रीअरववन्द ने इसे इतना मित्त्वपूण ि◌मानकर इस पर अपनी टीका शलखी ि◌ै। इसी कारण उन्िोंनेवेद और उपननषदों पर अपनी टीका शलखी ि◌ै। उनका अनुभव अनतशय रूप से ववशाल था। और सच किें तो, वेद, उपननषद् और गीता आहद में कया तत्त्व ननहित ि◌ै या उनका अपने-आप में कया मित्त्व ि◌ै, यि तो ि◌म निीं ◌ंजानते परंतुिमारे अपनेशलये इनका मित्त्व श्रीअरववन्द की दृजष्ट से इनकी झाकी ँप्राप्त करनेके कारण, उन्िीं ि◌के शब्दों से इनमें जो प्राण का संचार ि◌ुआ ि◌ै उसका रसास्वादन कर पाने के कारण ि◌ै।

गीता सांख्यशास्त्र के प्रकृनत-ववश्लेषण के ि◌ी अंतगति बनेरिनेसे संतुष्ट निीं ि◌ोती; कयोंकक यि ववश्लेषण तो प्रकृनत में केवल अिंभाव को ि◌ी स्थान देता ि◌ै, बिु-पुरुष को निीं- विााँवि प्रकृनत का कोई अंग निीं, अवपतु प्रकृनत से पृथक् ि◌ै। इसके ववपरीत गीता दृढ़तापूवकि ऐसा स्थावपत करती ि◌ै कक परमेश्वर ि◌ी अपनी प्रकृनत से जीव बनते ि◌ैं। यि कैसे संभव ि◌ै जब ववश्व-प्रकृनत के केवल चौबीस तत्त्व ि◌ैं, अन्य और निीं? ◌ं हदव्य गुरु किते ि◌ैं कक ि◌ा, ◌ाँ वैश्व त्रत्रगुणाजममका प्रकृनत के बाह्य कम ि◌का यिी सिी ववववरण ि◌ै और इस ववववरण में पुरुष और प्रकृनत का जैसा संबंध बताया गया ि◌ै, वि भी त्रबल्कुल प्रामाखणक ि◌ै और प्रववृत्् या ननववृत्् के व्यावििाररक प्रयोगों में भारी उपयोग का भी ि◌ै। परन्तुयि केवल त्रत्रगुणाजममका अपरा प्रकृनत ि◌ै जो अवचेतन और बाह्य ि◌ै; इसके परे एक उच्चतर, परम, चैतन्य तथा हदव्य परा प्रकृनत ि◌ै, यिी परा प्रकृनत व्यजष्टगत आममा, जीव, बनी ि◌ै। अपरा प्रकृनत में प्रमयेक जीव अिंभावापन्न प्रतीत ि◌ोता ि◌ै, परा प्रकृनत में प्रमयेक जीव व्यजष्टरूप पुरुष ि◌ै। दूसरे शब्दों में बिुमव उस 'एक' के ि◌ी आध्याजममक स्वभाव का एक अंग ि◌ै। यि व्यजष्ट-पुरुष, भगवान् ◌्किते ि◌ैं कक, स्वयंम ि◌ैूँ, इस सृजष्ट में मेरी ि◌ी आंशशक अशभव्यजकत ि◌ै, '**ि◌ैंरांि◌**' और इसमें मेरी सब शजकतयााँ ननहित ि◌ैं; यि साक्षी ि◌ै,

अनुमंता िै, भिता िै, ज्ञाता िै, ईश्वर िै। यि अपरा प्रकृनत में उतर आता िै और स्वयं को कम िसे बाँधा मान लेता िै, जजससे कक ननमन सर्त्ा को भोग सके : यि इससे ननवृर्त् िोकर अपने को सभी कमि–बंधन से सविथा ववननमुकित अकतािपुरुष जान सकता िै। यि तीनों गुणों से ऊपर उठ सकता िै और, कमि–बंधन से मुकत िुआ भी कम िकर सकता िै, जैसे भगवान् ्कििे िैं कक म ैंस्वयंकरता िूँ, और पुरुषोर्त्म की भजकत के द्वारा और उनसे युकत िोकर पूण िरूप से उनकी हदव्य प्रकृनत का आनन्द ले सकता िै।

xv.7 , xiii23

ऐसा िै गीता का ववश्लेषण जो अपने-आप को बाह्य (दृश्यमान) सृजृष्ट–म या वैश्व-प्रणाली से िी बद्ध न कर के परा प्रकृनत के **'उत्तरं् रहस्यं**' ं तक में भीतर प्रववष्ट िो जाता िै। उसी उर्त्म रिस्य के आधार पर गीता अपनेवेदांत, सांख्य और योग के समन्वय को, ज्ञान, कम िऔर भजकत के समन्वय को स्थावपत करती िै। एकमात्र शुद्ध सांख्य के द्वारा िी कम िऔर मुजकत का संयोजन परस्पर-ववरोधाममक िै और असंभव िै। एकमात्र शुद्ध अद्वैत के आधार पर योग के एक अंग के रूप से कमों की स्थायी ननरंतरता तथा पूण िज्ञान, मुजकत और सायुज्य प्राप्त िोनेके बाद भी भजकत में अनुरजकत असंभव िो जाती िै या कम-से-कम युजकत-ववरुद्ध और ननष्प्रयोजन िो जाती िै। गीता का सांख्य-ज्ञान इन सब बाधाओं को दूरू करता िै और गीता की योग-प्रणाली इन सब पर ववजय लाभ करती िै।

[उपयुकित चचािके प्रकाश में] िम इस बात को समझ सकते िैं कक गीता कयों उस ववशशष्ट प्रनतपादन-शैली का अनुसरण करती िै जो उसनेअपनायी िै। (वि शैली यि िै कक) पिले ककसी आंशशक समय का, उसके गंभीर अथ िके कुछ मृदु–मंद संकेतों के साथ, ननरूपण कर देना, और कफर आगे चलकर अपनेइन संकेतों की ओर लौटना और उनके मम िको अथवा गुढ़ाथ िको प्रकट करना, और ऐसा करते रिना जब तक कक वि इन सबके ऊपर उठकर अपने उस अंनतम मिान् ्संकेत में, अपनेउस परम रिस्य में निींपिुँच जाती जजसका वि स्वयं त्रबल्कुल भी ननरूपण निींकरती, अवपतुउसको मनुष्य जीवन में अनुभूत िोने के शलये छोड़ देती िै, जैसे कक भारतीय आध्याजममकता के उर्त्र युगों में प्रेम की, आममसमपणि की और आनन्द की मिान् ्लिरों में इसे अनुभूत करने का प्रयास ककया गया। गीता की दृजष्ट सदा अपनेसमन्वय पर िै और उसमें जो ववशभन्न ववचारधाराओं का वणनि िै वि मानव-मन की उस अजन्तम परम वचन के शलये िशमक या उर्त्रोर्त्र तैयारी िै।

यिा ाँजो मुख्य बात िै वि यि िै कक जो पच्चीसवाँ तत्त्व िै वि गीता में प्रकृनत के अंदर िी आ जाता िै। 'पराप्रकृनतजीवभूता' – एक िै ननमन प्रकृनत जो अपरा प्रकृनत िै, और दूसूरी िै परा प्रकृनत। यि परा प्रकृनत िी जीव बनती िै। परंतु परा प्रकृनत केवल जीव िी निीं, वि उससे भी अधधक बिुत कुछ िै, विी पुरुष का रूप भी धारण करती िै। ईश्वर की सारी अशभव्यजकत उनकी परा प्रकृनत में िी िै। जबकक सांख्य में तो 'अिंकार' को िी पुरुष का रूप दे देते िैं। 'पराप्रकृनतजीवभूता' के अंदर अिंभाव तो प्रकृनत का िी खेल िै, वि पुरुष का रूप निीं िै। सच्चा पुरुष तो केवल एक िी िै और वि कोई भी भाव ग्रिण कर सकता िै – क्षर, अक्षर और पुरुषोर्त्म। इसशलए पारंपररक सांख्य से अलग गीता ने एक के अंदर िी सारे को एकीभूत कर हदया िै। िमें मूलतः जो बात समझने की िै वि यि

ैकिक गीता का योग न तो पतंजशल के समान ि◌ी कोई पारंपररक योग ि◌ै और न ि◌ी उसका सांख्य आम तौर पर समझे ◌ेजाने वाला सांख्य ि◌ी ि◌ै। गीता की अपनी ि◌ी एक अनूठी पद्धनत ि◌ै जो कक आगे चलकर तो त्रबल्कुल स्पष्ट

िी ि◌ो जाएगी। कयोंकक पारंपररक सांख्य और योग के आधार पर तो ऐसे भजकत, कम ि◌तथा ज्ञानयोग संभव ि◌ो ि◌ी निीं ◌ं सकते जजनका प्रनतपादन गीता कर रिी ि◌ै। सांख्य-योग के अनुसार तो कमयिोग संभव निीं ◌ंि◌ै और भजकतयोग भी संभव निीं ◌ंि◌ै। अतः ज्ञान और भजकतयोग का समन्वय भी निींिि सकता। परन्तु गीता का जो सांख्य और योग ि◌ै वि इन सबका अनतिमण कर जाता ि◌ै। उस सब को पुरुषोत्र्म भगवान् ◌्श्रीकृष्ण में केंरीभूत कर हदया जाता ि◌ै। ये सभी एकीभूत ि◌ोकर उन्िीमें जा शमलतिैं।

III. बुद्धध योग

हदव्य गुरु अजुनि से किते ि◌ैं कक सांख्यों में आमम-मुजकतदायी बुद्धध की जो संतुशलत अवस्था ि◌ै वि, मनैं तुझे ◌ेबता दी ि◌ै। अब म ◌ैंयोग में जो दूसूरी संतुशलत अवस्था या जस्थनत ि◌ै उसका वणनि करूँगा। तू अपनेकमों के फलों से भयवश सकुचा रिा ि◌ै, तू कोई दूसूरे ि◌ी फल चािता ि◌ै और अपनेजीवन के सच्चेकमि–पथ से ि◌ट रिा ि◌ै कयोंकक यि पथ तुझे ◌ेतेरे वांनछत फलों की ओर निीं ले जाता। परन्तुकमों और उनके फल का ववचार, फल की कामना ि◌ी कम ि◌का ि◌ेतु ि◌ोना, कामना की पूनत ि◌के साधन के रूप में कम ि◌करना उन अज्ञाननयों का बंधन ि◌ै जो यि निीं ◌ंजानते कक कम ि◌कया ि◌ैं, न उनके सच्चेस्रोत को जानते ि◌ैं, न उनकी वास्तववक कायविवधध, और न उनकी श्रेष्ठ उपयोधगता को ि◌ी जानते ि◌ैं। मेरा योग तुझे ◌ेआममा के अपनेकमों के समस्त बंधनों से मुकत कर देगा.....

नेहामभक्रनिर्ोऽजस्त प्रत्यरा्यो न वर्द्यते ।

स्ल्पर्प्यस्य धर्स्वय त्रायतेर्हतो भयात् ◌्।।४०॥

४०. इस रा्ग वपर कोई भी प्रयास नष्ट नहीं होता, न ही कोई प्रत्यागर्न ही होता है, इस धर् वका थिो़ा-सा अनुष्ठान भी हर्ान् ◌्भय से रु्क्त कर देता है।

तू बिुत-सी चीजों से भयभीत ि◌ै, पाप से भयभीत ि◌ै, दुःख से भयभीत ि◌ै, नकि और दंिसे भयभीत ि◌ै, ईश्वर से भयभीत ि◌ै और इस लोक से और परलोक से भयभीत ि◌ै तथा अपने-आप से भयभीत ि◌ै। ऐसी कौन-सी चीज ि◌ै जजससे, ि◌े आय ि◌योद्धा, जगत् ◌्के वीरशशरोमखण, तू भयभीत निीिं? परन्तुयि मिाभय ि◌ी तो मानव जानत को घेरे रिता ि◌ै- लोक और परलोक में पाप और दुःख का भय, जजस संसार के समय स्वभाव को वि निीं जानती उस संसार में भय, उस ईश्वर का भय जजसकी समय सर्ता को भी उसनेनिींदेखा ि◌ै और न जजसकी ववश्वलीला के अशभप्राय को ि◌ी समझती ि◌ै। मेरा योग तुझे ◌ेइस मिाभय से तार देगा और इस योग का स्वल्प-सा साधन भी तुझेमुजकत हदला देगा। जब एक बार तूने इस माग ि◌पर यात्रा शुरू कर दी तो तू देखेगा कक कोई कदम व्यथ ि◌निीं रखा गया; प्रमयेक छोटी-से-छोटी गनत भी एक वृद्धध अथवा प्राजप्त ि◌ोगी; तुझे ◌ेऐसी कोई बाधा निीं

शमलेगी जो तेरी प्रगनत में रुकावट पैदा कर सके। ककतना ननभीक और ननरपेक्ष आश्वासन िै। परन्तु एक ऐसा वचन जजस पर आिांत और सभी मागों में लिखिाता भयभीत और शंकंकत मन सिसा िी अपना पूण िभरोसा निीं रख सकता; और न िी इस प्रनतज्ञा का व्यापक और पूण िसमय तब तक प्रमयक्ष िी िोता िै जब तक गीता के प्रारंशभक वचनों के साथ उसका यि अंनतम वचन शमलाकर न पढ़ा जाए:

सवधिमान्पिररमयज्य मामेकं शरणं व्रज।
अिं मवा सवपािपेभ्यो मोक्षनयष्याशम मा शुचः ।। xviii.66

'सभी धमों का पररमयाग कर के केवल एक मेरी िी शरण ग्रिण कर; म ैंतुझे ेसब पापों और अशुभुों से मुकत कर दूँगा, शोक मत कर।'

परन्तु भगवान् ्द्वारा मनुष्य को किे इस गंभीर और हृदयस्पशी शब्द के साथ गीता का प्रनतपादन आरमभ निींिोता, अवपतुआरंभ तो माग िपर चलनेके शलये प्राथशमक रूप से आवश्यक कुछ प्रकाश की ककरणों से िोता िै और वेभी आममा को लक्ष्य कर के ननदेशशत निीं ंकी गई िैं अवपतुबुद्धध को लक्ष्य कर के ननदेशशत की गई िैं। शुरू में मनुष्य के सुहृद् और प्ेरेमी भगवान् ्निीं ंबोलते िैं, अवपतुवे भगवान् ्बोलतिैं जो उसके पथ-प्रदशकि और गुरु िैं, जजनर्िें शशष्य से उसकी सच्ची आममा, जगत् ्के स्वभाव अथवा स्वरूप तथा उसके अपनेकम िके उद्गमों के ववषय में अज्ञान को दूरू करना िै। चूंकक मनुष्य अज्ञानपूवकि और अशुद्ध बुद्धध के साथ और इस (अशुद्ुध बुद्धध) के कारण से इन ववषयों में अशुद्ुध संकल्प के साथ कम िकरता िै इसशलए वि अपने कमों से बंध जाता िै या बद्ध प्रतीत िोता िै; अन्यथा मुकत आममा के शलए कम िकोई बंधन निीं िोते। इस अशुद्ध बुद्धध के कारण िी मनुष्य को आशा, भय, िोध और शोक तथा क्षखणक सुख िोता िै; अन्यथा पूण िशांनत और स्वतंत्रता के साथ भी कम िककये जा सकते िैं। इसशलए बुद्धध का योग िी िै जो अजुनि को बताया गया िै। शुद्ुध बुद्धध और फलतः शुद्ुध संकल्प के साथ उस एक परमाममा में जस्थत िोकर, सब में उस एक आममा को जानते िुए तथा उसको सम शांनत से काय िकरते िुए और सतिी मनोमय पुरुष की िजारों उमंगों के वश इधर-उधर भटके त्रबना कम िकरना िी बुद्धधयोग िै।

गीता ने एक ऐसी चीज का प्रनतपादन ककया िै जो सिज िी सामान्य बुद्धध की समझ में निीं आ सकती। िमारी बुद्धध जजस तरि का संसार देखती िै, जजस तरि के किया-कलाप देखती िै, उसमें सारे हदन अच्छी चीजों के बाद बुरे पररणाम आते हदखाई देते िैं, ऐसे में व्यजकत इस बात पर कैसे ववश्वास कर सकता िै कक वि िमेशा आगे िी बढ़ता जाएगा और कभी प्रमयावतनि निीं िोगा कयोंकक जजनर्िें शुभ या धाशमकि काय िकिा जाता िै उनमें भी बाधा आ जाती िै, ववनाश िो जाता िै, और तब उसके शलए इस कथन पर ववश्वास करना आसान निीं िै। िालाकाँक इस पर ववश्वास ककए त्रबना आगे चलनेका अन्य कोई रास्ता भी निीं ंिै। परंतु ुववश्वास करने ेमें समस्या यि िै कक भले िी िमारी आममा तो इस बात को जानती िै, ववश्वास कर सकती िै, पर अभी वि ऐसी बुद्धध द्वारा आच्छाहदत िोती िै जो अशुद्ुध िै और अशुद्ध बुद्धध के कारण आममा की किया भी दूवूषत िो जाती िै। इसशलए गीता उस बुद्धध के भ्म को दूरू करने के प्रयास से आरंभ करती िै जो बाह्य प्रतीनतयों से भ्शमत िो जाती िै और

उस कारण ववश्वास निीं ंकर पाती। बुद्धध के शलए कैसे संभव िै कक वि इस वाकय पर ववश्वास कर पाए कक 'इस माग िपर रखे कोई भी कदम व्यथ िनिींजाते और सदा उत्तरोत्तर वृद्धध िी िोती िै।' इसशलए गीता सवप्रिथम बुद्धध की गाठोँ को खोलना आरंभ करती िै, जो कक सिज निीं िै। दूसूरे अध्याय से ये गाठेँ खुलनी आरमभ िो जाती िै।

उसके बाद आगे से आगे प्रश्नों और शंकाओं का समाधान िोता जाएगा। एक पड़ाव पर आकर अजुनि बुद्धध से तो समझ जाता िै परंतु जब तक उस ज्ञान का उसे सजीव अनुभव न िो तब तक उसमें वि शजकत निीं ंआ पाती। तब कफर वि उसके अनुभव प्राप्त करने ेकी चाि करता िै। अब गीता बुद्धधयोग का ननरूपण करेगी कयोंकक ये संदेश केवल आममा िी समझ सकती िै। वास्तव में तो सारी गीता का चलन केवल इसी तरि िै कक एक गुरु के रूप में

शिष्य को हृदये को सुनिसंदेश की अपेक्षा एक प्ेरमी के रूप में हदये जाने वाले संदेश 'सवधिमान् के शलए और उसे आममसात् ्करने ेके शलए अजुनि को तैयार ककया जा सके। सारी गीता की तैयारी िी इस बात की िै कक अजुनि की बुद्धध को तथा अन्य अंगों को इतना तैयार कर हदया जाए कक और कोई आवरण न रि जाए और यि संदेश उसे हदया जा सके। अपने जीवन में भी िम यिी चीज देख सकते िैं। प्रभु ुकी लीला को िम समझ निीं सकते। िम कल्पना करते िैं कक िमें भली-भानाँत समझ में आ गया िै कक िमारे इष्ट के अनतररकत, श्रीमाँ-श्रीअरववन्द के अनतररकत सब कुछ व्यथ िै और उनका अनुकरण करना िी एकमात्र करनेयोग्य काय िै। िमारा नैनतकता का बोध भी इसे िी सिी ठिराता िै। परन्तु समस्या यि िै कक ये सभी भाव अधधकांशतः िमारे मानशसक रूपण मात्र िोते िैं। िालाकाँक आममा इन सबके द्वारा काय िकर री िोती िै, परंतु िमारे ववकास को तब तक गनत निीं ंशमलती जब तक कक िमें इसका जीवंत अनुभव निींआ जाता कक इसमें ककस प्रकार का आकषणि िै। जैसे पतंगा स्वयं जल भले िी जाए, कफर भी रुक निींसकता और आग की ओर अनायास िी चला जाता िै, वैसे िी मिारे अंदर इस प्रकार का प्रवाि आता िै कक िम उसे रोक िी निींसकते। परंतु परमाममा का प्ेरम तो इससे भी सवथिा शभन्न प्रकार का िोता िै। वि तो ननमय-ननरंतर िै, अिैतुक िै, जजसका कोई कारण निीं िै। विीं, यहद व्यजकत अपने ककन्िींभागों में तो कुछ-कुछ समझा िै कक उसे अपने इष्ट का अनुकरण करना िै, या कफर उसे ककसी उद्देश्य के प्रनत कोई आकषणि प्राप्त िुआ िै - िो सकता िै कक प्राण ज्वलंत रूप से ककसी उद्देश्य के शलए अशभप्ेरररत िो जाए, मन ककसी आदश िके प्रनत आकृष्ट िो जाए - तो भी इन सब में उस हदव्य प्ेरम के सिज आकषणि का गुण निीं ंिोता। और जब तक वि जागृत निीं िोता तब तक िमारे अिम् ्आहद सभी स्थूल या सूक्ष्म रूप से िावी रिते िैं, और परमाममा से सच्चा एकमव स्थावपत निीं िो सकता और न िी व्यजकत को अपनी सच्ची आंतररक शजकत का भान िो सकता िै। जब वि स्थावपत िो जाता िै तब कफर ववशेषे कुछ व्यजकतगत प्रयास की आवश्यकता निींरि जाती, वि तो स्वयंिी सभी प्रनतकूल चीजों को जला कर भस्म कर देता िै। गीता उसी की ओर ले जाती िै और विाँतक ले जाकर छोड़ देती िै। जब आममा की वि प्रवृवृत्् अन्दर जागृत िो गई तब कोई चीज मिें ववचशलत कर सके यि तो संभव िी निीं ंिै। िमारे ऋवष भी, जजन्िोंनेआध्याजममक जीवन का अनुभव ककया, यिी बात किते िैं कक साधना आहद तो सब तैयारी मात्र िैं। एक बार जब वि गनत आरंभ िो जाए तब कफर अन्य कोई पद्धनत या प्रणाली उसमें कुछ निीं कर सकती और उनकी उपयोधगता भी निीं ंरि जाती। जजस प्रकार चुंबक की प्रकृनत मात्र िी िै लोि को अपनी ओर आकृष्ट करना और लोि की प्रकृनत िै अनायास िी उसकी ओर खखंचेंचले जाना, इसमें ककसी पद्धनत की कोई आवश्यकता निीं िोती, उसी प्रकार आममा की वि गनत चालू िोनेके बाद तो

 अन्य ककन्िीं भी पद्धनतयों की कोई आवश्यकता ि़ी निींरि जाती। इसशलए वास्तव में तो गीता की सारी
व्यवस्था ि़ी पिले वचन से लेकर अन्ततः 'सवधिमान्पररमयज्य' तक ले जानेका आरिोणा–म मात्र िै। और वास्तववक काय ितो उसके बाद शुरू िोता िै। श्रीअरववन्द किते िैं कक सारी गीता मनुष्य की आममा को उसी के शलए तैयार करनेके शलए िै ताकक उस पर पिे ेबुद्धध के, भ्म के, अनुभवों के आवरणों को िटाकर उसे उस स्तर तक ले जाया जा सके। इस प्रकार गीता के पूरे िम को देखनेका यि एक दृजष्टकोण िै।

अब, बुद्धध के अंदर, इच्छा-शजकत के अंदर कुछ प्रवृत्याँ रिती िैं कक यि प्राप्त कर शलया जाए, वि प्राप्त कर शलया जाए। इन सबके ववषय में भगवान् ्अजुनि को समझाने वाले िैं, परंतु ये बातें सिज ि़ी उसे समझ में निीं ंआएँगी जजस कारण प्रश्न भी उठेंगे, कयोंकक केवल बताने भर से ि़ी ये बातें समझ में निीं आ जातीं। आध्याजममक जीवन में केवल पुस्तक पढ़नेसे और प्रवचन सुनने से बातें समझ में निींआ जातीं। िमारी बुद्धध में बिुत तरि की मानशसक संरचनाएँ तथा वृवृत्यां ाँजमी बैठी िोती िैं। इन सबको नष्ट करना िोगा। तब धीरे-धीरे अनुभव आता िै, और श्रद्धा ऊपर आती िै। साधना में इसीशलए इतना समय लगता िै। पर कुछ ऐसे पररपकव लोग भी िोतिैं जजनका वि भाव पिले से ि़ी तैयार िोता िै और जब उसे उद्घाहटत कर हदया जाता िै तब कफर उनकी साधना मवररत रूप से संपन्न िो जाती िै। वास्तववक समझ भी तभी आती िै।

व्यसार्याजत्का बुद्धधरेकेह कुरुनतदन ।

बह्रिुाखा ह्यनतताश्र् बुद्धयोऽव्यसार्तयनार् ्।।४१।।

४१. हे कुरुनतदन (अजुनव)! इस र्ाग वरें् तनश्चयाजत्का बुद्धध एकतनष्ठ होती है; परंतु अतनजश्चत धचत्तर्ाले र्नुष्यों की बुद्धध अनेक िाखाओं र्ाली और अनंत होती है।

गीता किती िै कक मनुष्य में दो प्रकार की बुद्धध िोती िै। पिली िोती िै एकाग्र, संतुशलत, एकननष्ठ, समरस, केवल परम समय की ओर ि़ी लक्षक्षत; एकमव उसकी ववशशष्टता िै और एकाग्र जस्थरता उसका स्वरूपमात्र। दूसरी में कोई एकननष्ठ संकल्प निीं िोता, कोई एकीकृत बुद्धध निीं,ं अवपतु केवल अनेक शाखा-प्रशाखायुकत असंख्य ववचार िैं जो भाग-दौ कर रि िैं, अथात्ि्जीवन और पररवेशजन्य इच्छाओंकी तुजष्ट के पीछे इधर-उधर भटक रि िैं। जजस बुद्धध शब्द का यिाँँप्रयोग िुआ िै, शुद्ध अथ िमें उसका आशय िै समझने–बूझने ेकी मानशसक शजकत, ककन्तु स्पष्ट रूप से गीता में बुद्धध शब्द का प्रयोग व्यापक दाशननिक अथ िमें उस मन की समस्त ववेकाममक और ननणयिकारी किया िेतु िुआ िै जो (मन) िमारे ववचारों की हदशा और उनके प्रयोग तथा िमारे कमों की हदशा और उनके प्रयोग, इन दोनों बातों का ननधािरण करता िै; ववचार, समझ-बूझ, ननणयि, बोधयुकत चयन और लक्ष्य-साधन ये सब बुद्धध की किया में सजममशलत िैं : कयोंकक एकीकृत बुद्धध का लक्षण केवल बोधयुकत मन का केंरीकरण ि़ी निीं ंिै, अवपतु उस मन का भी केंरीकरण िै जो ननणयि करने वाला और उस ननणयि अथात्ि्व्यवसाय पर अटल रिने वाला िै, दूसरी ओर अव्यवसायाजममका बुद्धध का लक्षण उसके ववचारों और बोधों की असंबद्धता या भटकाव उतना निीं िै जजतना उसके लक्ष्यों और उसकी इच्छाओं का और फलतः उसके संकल्प की असंबद्धता या इधर-उधर भटकाव िै। अतः संकल्प और ज्ञान, बुद्धध की ये दो कियाएँ िैं।

गीता यिा ाँदो भेदों का ननरूपण करती ि ै। बुद्धध सिी तभी ि ै जब उसने सोच-ववचार कर अपने वववेक से एक ननणयि कर शलया और उस पर चलती ि ै अन्यथा तो बुद्धध ि ै िी निीं, वि तो केवल एक भटकाव ि ै कयोंकक ककसी भी समय शभन्न-शभन्न इच्छाएँ और ववचार आकर उस पर अधधकार कर लेते िैं। ऐसे में यहद व्यजकत को यि बोध िो भी कक केवल श्रीमाताजी की सेवा िी करनी ि ै तो भी जो कोई भी अन्य भाव या प्रववृत् उठती ि ै विी उस पर अधधकार जमा लेती ि ै। इसशलए बोध तो सिी िोता ि ै परंतुइच्छा-शजकत में भटकाव रिता ि ै। यि ि ै अव्यवसायाजममका बुद्धध। उससे मनुष्य एक कदम भी आगे निीं ंचल सकता। कयोंकक उसका संकल्प ववचशलत िोता रिता ि ै, और ऐसे में जजतना वि आगे जाता ि ै उतना िी लौट कर पुनः पीछे आ जाता ि ै। बीच में िी संदेि घुस आता ि ै, कयोंकक माग िकोई भौनतक चीज तो ि ै निीं, ं यि तो श्रद्धा का ववषय ि ै। व्यजकत की श्रद्धा जजतनी िी अक्षुण्ण बने रिेगी उतना िी माग िपर आगे बढ़ा जा सकता ि ै। जब उसमें भटकाव आता ि ै तब कफर वि पथभ्रष्ट करके ककसी अन्य हदशा में ले जाता ि ै और ऐसे में व्यजकत कभी भी लक्ष्य तक निींपिुँच सकता। इसशलए अव्यवसायाजममका बुद्धध वि ि ै जो िमारी संकल्प-शजकत को एक स्थान पर ननयत निीं रख सकती। उधचत कया ि ै केवल इसका बोध िोना िी पयाप्ति निीं ि ै- िालाँकक बोध भी निीं िो तो इसका अथ िि ै कक व्यजकत माग िपर ि ै िी निीं ं- परन्तुबोध िोने ेपर भी यहद संकल्प-शजकत में भटकाव िो तो कुछ भी संशसद्ध निींककया जा सकता।

यामर्ीं पुजष्पतां ंर्ाचंप्रर्दतत्यवर्पजश्चतः ।

रे्दर्ादरताः पाथ वनातयदस्तीतत र्ाददनः ।।४२॥

कार्ात्र्ानः स्गपवरा जतर्कर्र्विलप्रदार् ्।

कक्रयावर्र्षेबहुलां भोगैश्र्यगवततं ंप्रतत ।।४३।।

४२-४३. हे पाथ!व अवर्ेकी, रे्द के तर्ाद र्ें रत, ऐसा र्ानने ेर्ाले कक इसके अततररक्त और कुछ भी नहीं ंहै, कार्नायुक्त धचत्तर्ाले, स्ग वको प्राप्त करनेके मलये परर्श्रर् करनेर्ाले र्नुष्य कर्ों के जतर्रूप िल को देनेर्ाली, भोग और ऐश्र्य वको लक्ष्य र्ें रखनेर्ाली, वर्मर्ष्ट प्रकार की बहुत-सी कक्रयाओं र्ाली इस प्रकार की सुनने ेर्ें रोचक र्ार्ी को कहते हैं।

भोगैश्र्यप्रवसक्तानां तयापहृतचेतसार् ्।

व्यर्सायाजत्र्का बुद्धधः सर्ाधौ न वर्धीयते ।।४४।॥

४४. इस र्ार्ी के द्र्ारा जजनका धचत्त हरा गया (भ्रांत कर ददया गया) है और जो भोग एर् ंऐश्र्य वर्ें आसक्त हैं, उनकी बुद्धध एकाग्रधचत्तता के साथ (सर्ाधधस्थ हो) आत्र्ा र्ें प्रततष्ठत नहींहोती।

त्रैगुण्यवर्षया रे्दा तनखैगुण्यो भर्ाजुनव ।

तनद्र्वतद्र्ो तनत्यसत्त्र्स्थो तनयोगक्षेर् आत्र्ान् ्।।४५।।

४५. हे अजुनव! सर्स्त ऱ्ेदों का वर्षय तीन गुिों का काय-वव्यर्हार है; परंतु तू तीन गुिों से रु्क्त (त्रत्रगुिातीत), द्र्तद्र्ों से रदहत (तनद्र्वतद्र्), सदा अपने सच्चे आत्र्ा ऱ्ें जस्थत, पदाथों की प्राजप्त और उतहें अधधकार ऱ्ें सुरक्षक्षत रखने की धचंतां से रदहत हो, आत्र्ा को प्राप्त कर।

----

* सांख्य प्रणाली में ये तीन जस्थनतयााँ अथवा गुण हदये गये िैं... ये तीन नाम िैं, सत्त्व, रजस्,् और तमस्।् तमस् ्ज़िमव अथवा ननजष्ियता का तत्त्व एवं उसकी शजकत िै, रजस् ्गनत अथवा किया, आवेश, प्रयमन, संघष िऔर आरमभ का तत्त्व िै; सत्त्व समावेशीकरण, सन्तुलन और सामंजस्य का तत्त्व िै। िमारे अन्दर िोनेवाले कम िऔर अनुभव का समस्त स्वरूप प्रकृनत के इन तीन गुगों या जस्थनत में से ककसी एक को प्रधानता एवं इनको आनुपानतक परस्पर प्रनतकिया के द्वारा ननधारिरत िोता िै। व्यजष्टभावापन्न आममा इनके साचोँमें ढलनेके शलये मानो बाध्य िोती िै; साथ िी इन पर ककसी प्रकार का स्वतन्त्र ननयन्त्रण रखने की अपेक्षा अधधकांशतः वि इनके ननयन्त्रण में िी रिती िै। वि मुकत तभी िो सकती िै जब वि इनकी ववषम किया तथा इनके अपयाप्ति मेल-शमलापों एवं ंअननजश्चत सामंजस्यों के कष्टप्रद कलि की जस्थनत से ऊपर उठकर उसका पररमयाग कर दे...

* ननमन प्रकृनत में द्वंद्व साजत्त्वक, राजशसक और तामशसक अिं की रचनाओं ंसे अशभभूत आममा पर गुणों की कििा का अननवाय िप्रभाव िैं। इस द्वंद्व को ग्रजन्थ िै अज्ञान जो पदाथों के आध्याजममक समय को पकि पाने में असमथ िै और अपूण िबाह्य रूपों पर अपना ध्यान केजन्रत करता िै, पर उनके आन्तररक समय पर प्रभुमव रखतेिुए उनका सामना या उनसे व्यविार निीं करता अवपतु आकषणि और ववकषणि, सामथ्य िऔर असामथ्य,ि राग और द्वेष, सुख और दुःख, िष िऔर शोक, स्वीकृनत और घृणा के बीच संघष िऔर एक-दूसरे में बदलते िुए सन्तुलन के साथ उनके समपकि में आता िै: समस्त जीवन िमारे सामने इन वस्तुओं अथात्िवप्रय और अवप्रय, सुन्दर और असुन्दर, समय और असमय, सौभाग्य और दुभाग्यि, सफलता और ववफलता, शुभ और अशुभ की ववषम ग्रजन्थ या प्रकृनत के दुिरे जहटल जाल के रूप में उपजस्थत िोता िै। अपनी रुधचयों और अरुधचयों के प्रनत आसजकत अन्तराममा को शुभ और अशुभ तथा िषों और शोकों के इस जाल में बाधोँ रखती िै। मुजकत का अन्वेषक अपने-आपको आसजकत से मुकत कर लेता िै, द्वंद्वों को अपनी अन्तःसत्ा से दूरू फेंक देता िै..

* कयोंकक मुकुत पुरुष के शलए (योगक्षेम) प्राजप्त और अधधकारोजकत कया िै? जिााँएकबार िम आममवान् ्िुए विीं सब कुछ तो प्राप्तिो जाता िै।

कम िऔर ज्ञान के समन्वय का लगभग पिला िी कथन, वेदवाद की एक कठोर, और प्रायः एक प्रचंि ननन्दा और खण्नि िै।.. यिााँतक कक गीता स्वयंवेद पर आिमण करती प्रतीत िोती िै, जजसका यद्यवप भारतीय समाज के व्यविार में इस समय लोप िी िो गया िै, तो भी भारतीय समाज की भावना में वेद अब भी समस्त भारतीय दशनि-शास्त्रों और धमों के अप्रमयक्ष, अनुल्लंघनीय, अमयंत पववत्र और स्वतःशसद्ध प्रमाण और मूल िैं।... सब वेद उस मनुष्य के शलये ननष्प्रयोजन बताये गये िैं जो ज्ञानी िै। यिा ाँवेदों, **'सर्ेषु ुऱ्ेदेषु',** में उपननषदों का भी समावेश माना जा सकता िै और कदाधचत् ्िै भी, कयोंकक आगे चलकर वेद और उपननषद्, दोनों के सामान्य वाचक श्रुनत शब्द का िी प्रयोग िुआ िै।

यिा ाँप्रश्न यि िै कक सत्त्व, रजस् ्और तमस् ्ककस तरीके से आममा को बाधाँते िैं, और अपने-आप में इनका स्वरूप कया िै? इसे देखने का एक दृजष्टकोण तो यि िै कक बद्ध जीव को, जो सारे हदन यंत्रवत् ्चाशलत िै, तो यि अंदेशा तक भी निीं िोता कक आममा जैसी ककसी चीज का अजस्तमव भी िै, तो बाँधे िोने ेके बोध की बात तो उठती िी निीं। पिले ऐसी ककसी ऐसी चीज का भान िोना आवश्यक िै जजसे कक सत्त्व, रजस् ्और तमस् ्तीनों ने बाधाँ रखा िो। एक ववशालतर पररपेेक्ष्य में देखें तो िम ककस िद तक बाँधे िुए िैं इस बात का पता तो इसी से लग जाता िै कक आममा के िोने के बावजूद भी िम वस्तुओं को उनके आमम-स्वरूप में न देखकर ककतने शभन्न या कफर उनके ववपरीत रूप में देख रिे िैं। यहद गुरु की कृपा िो या जीवन में कोई ऐसी घटना घहटत िो जो िमें इसका भान करा दे कक आममा जैसी ककसी चीज की सत्ता िै, और िम उसके संपकि में आ जाएँ तब यहद िम ध्यान से देखें तो पता चल सकता िै कक ककस प्रकार सारे किया-कलाप में तमस् ्अपना प्रभाव िालता िै, रजस् ्अपना रंग चढ़ा देता िै और सत्त्व अपना प्रभाव िाल देता िै। तमस् ्अपनी ननजष्ियता, भारीपन, ककसी काय िमें उमसाि के अभाव का रंग िाल देता िै। रजस् ्अपनी कियाशील प्रकृनत को, अपनी इच्छाओं, वासनाओं, अधधकार जमाने के रंगों को उसके अन्दर िाल देता िै। सत्त्व अपने ववचारों को और जैसा भी उसका अपना स्वरूप िै उस अनुसार सभी कुछ को रंग देता िै। ऐसे में िम वैसा आचरण करनेलगते िैं जो िमारे ननजस्वरूप से शभन्न या ववपरीत िोता िै। सारे समय िम अपनेशारीररक सुख-भोगों को भोगने का प्रयमन करते िैं, अपनी इच्छाओं, कामनाओंकी पूनत िकरने का प्रयमन करते िैं या कफर अपनेववचारों आहद को थोपने की तथा पोवषत करने की कोशशश करते िैं। तो यहद यि ववचार लें कक जीव इस अशभव्यजकत में शरीर धारण कर के आया िै, भले उसका जो भी गिरा कारण रिा िो, परंतु कफर भी वतमिान में जो प्रतीनत िै उसमें तो िम अपनेसच्चे स्वरूप से त्रबल्कुल ववपरीत िो गए िैं। और इसी को किा जा सकता िै कक सत्त्व, रजस् ्और तमस् ्ने िमें इससे बाधाँ हदया िै।

यि सब वणनि तो इस संबंध में िुआ कक ककस प्रकार ये िमारी आममा को बाधाँते िैं। अब जो दाशननिक प्रश्न रि जाता िै वि यि िै कक ये तीन गुण वास्तव में कया िैं? और अशभव्यजकत में ये आए कैसे? श्रीअरववन्द ने शलखा िै कक बिुत अधधक सूक्ष्म ननरीक्षण करने ेपर इनका बोध िोता िै, अन्यथा तो इनका बोध िी निीं िोता। तब कफर सत्त्व, रजस् ्और तमस् ्की पररकल्पना या यि ववचार आया किाँसे? इसके बारे में श्रीअरववन्द परोक्ष रूप से या किीं-किीं प्रसंगवश थोड़ा-सा संकेत करते िैं। परन्तु अपनेअनुभव से िम इनके स्वरूप को अधधक जान सकते िैं। समझनेके इस प्रयमन का लाभ इतना िी िै कक इस पूरी प्रकिया में िम इनके ववषय में कुछ अधधक सचेतन िोंगे और अधधक बेितर तरीके से इनके ऊपर ननयंत्रण और किया कर सकेंगे।

भगवान् ्के अनन्त गुण िैं, एक अनतमानशसक समय िै जो इस िमववकासमय अशभव्यजकत के अंदर अपनेको अशभव्यकत करना चाि रिे िैं। िालाकाँक िम तो भगवान् ्के केवल कुछ िी गुणों के ववषय में सचेतन िैं, परंतु प्रकृनत में तो अन्य सभी गुणों को भी अशभव्यकत करनेका प्रयास चल रिा िै। अंततः तो ये सारे िी गुण, जो कक इस जगत् ्के मूल में ननहित िैं, एक ननजश्चत संतुलन में इस जगत् ्में अशभव्यकत िोने िी चाहिये। दूसरे जगतों की या ब्रह्माण्िों की कया प्रणाली िोगी इस बारे में कुछ किा निीं जा सकता, कयोंकक इस व्यवस्था में गुणों का िमें इस प्रकार बोध िोता िै, अन्य व्यवस्थाओं में यि कैसा िोता िोगा यि िम निीं जानते। यहद अनन्त गुणों

को देखा जाए और यि देखा जाए कक कौन से मनुष्य में कौन से गुण प्रभावी िैं तो इतनी व्यापक दृजष्ट से देख पाना तो असंभव-सा िोगा। इसशलए इन गुणों के खेल को तीन श्रे्रेखणयों में बाटाँ हदया गया। अब ये श्रे्रेखणयााँ किा ाँसे आईं? भगवान् ्की चेतना मनुष्य में उन गुणों को लाकर उन्िें आववभूति करने का प्रयास करती िै। जब वि ज़ि-भौनतक तत्त्व में अपना प्रभाव िालती िै तब उसके प्रनत ज़ि-तत्त्व की प्रनतकिया अपनेतरीके की िोती िै। उसे तमस् ्की संज्ञा दे दी जाती िै। परंतु केवल ज़ि-तत्त्व में िी निीं, उस चेतना को तो मन, प्राण और शरीर तीनों के िी द्वारा अशभव्यकत िोना िोता िै। अतः जब वि प्राण के द्वारा अशभव्यकत िोती िै तो प्राण की प्रनतकिया से उसमें गनतशीलता या कियाशीलता का तत्त्व आ जाता िै। इसमें ज़िमव की जस्थरता का गुण कम रिता िै। जब वि चेतना मन में प्रभाव िालती िै तो मन चीजों में संतुलन को देखता िै। यि सत्त्व का तत्त्व िोता िै। पर ये सभी कोई ननयत-ननधािररत चीजें निीं िैं। ककसी एक व्यजकत का तमस् ्दूसूरे व्यजकत के तमस् ्से शभन्न िोता िै। िमारे कोष शभन्न-शभन्न िैं, क्षमताएाँ शभन्न-शभन्न िैं। कुछ में गुण इतने सकिय िोतेिैं कक उनके भौनतक में भी वे अशभव्यजकत पाते िैं जबकक दूसूरों में वे अंधकार में सुषुप्त रितेिैं। इसी प्रकार की बात मन पर भी लागू िोती िै। जैसी संरचना िोगी वैसा िी आधान या प्रनतत्रबंबं उस चेतना का या उस प्रकाश का िोगा। गुणों का परस्पर सजममश्रण भी उसी के अनुसार रिेगा। परंतु यि तो देखने और समझने का केवल एक तरीका मात्र िै। तो इन तीनों का कियाकलाप इस प्रकार का िै। इन सब गुणों का जजस प्रकार िमें बोध िोता िै, िमें ये जजस प्रकार या जजस रूप में हदखाई देते िैं वि केवल इसशलए िै कयोंकक िमारी चेतना मानशसक चेतना िै। वस्तुतः अपने-आप में तो ऐसी कोई चीज िै िी निीं। वास्तव में तो यि सारा परा-प्रकृनत का, हदव्य जननी का िी खेल िै, अपरा प्रकृनत िै िी निीं, ं अपरा प्रकृनत तो िमें िमारे वतमिान गठन के कारण प्रतीत िोती िै, अन्यथा गुणों का अजस्तमव िी निींिै। चूंकक परा-प्रकृनत की किया को िमारा मन और अधधक समझ निींसकता, वि उसे केवल अपरा प्रकृनत की प्रमयक्ष ििीी या कायि–व्यविार के रूप में िी देख सकता िै और उसका बोध प्राप्त कर सकता िै, वैसे िी जैसे कक ककसी बच्चे को किी ककसी बात का वास्तववक अथ िबच्चा कया समझता िै उससे सवथिा शभन्न िो सकता िै। वैसे िी यि सारा खेल परा प्रकृनत का िी िै परन्तुिमारे मन के अन्दर इसका जजस प्रकार का त्रबंबं बनता िै वैसा िी िमें यि समझ में आता िै। और चूंकक परा-प्रकृनत के पीछे तो स्वयंभगवान् ्की जो समस्त क्षमताएाँ िैं, उनका व्यजकतमव िै, अतः उनकी अशभव्यजकत को मनुष्य का मन समझ िी कया सकता िै, इसी कारण वि इस प्रकार के त्रबंबं, इस प्रकार के रूपण तैयार करता िै। परन्तु अपरा प्रकृनत के अन्दर िमारे शरीर, प्राण और मन के अपने-अपने जो गुण 3-79^ 4pi , कियाशीलता और समता या वववेक - वे भगवान् ्के सजच्चदानंद स्वरूप से िी आए िैं, सत् ्ज़ि-तत्त्व बन जाता िै, धचत् ्के अंदर धचत् ्और तापस दो पिलूिैं जजनमें तपस् ्प्राण बन जाता िै और चेतना या ज्ञान पक्ष मन बन जाता िै, आनंद आममा का गुण बन जाता िै। ये चारों िी अशभव्यकत िुए िैं। सजच्चदानंद के ये तीनों गुण अनतमानस में भी प्रक्षक्षप्त िोते िैं तो विााँ ये अलग-अलग रूप ले लेते िैं। जस्थरता का जो तत्त्व िै वि बन जाता िै 'समता'। प्राण बन जाता िै तपस् ्और तीसरा तत्त्व बन जाता िै ज्योनत। वे िी चीजें यिााँ मन, प्राण और शरीर में इस रूप में प्रनतत्रबंत्रबत िोती िैं। परंतु ्इन सब के पीछे अनन्त क्षमताएाँ िैं। और भगवान् ्के व्यजकतमव की, उनके समय की अशभव्यजकत शभन्न-शभन्न मनुष्यों में शभन्न-शभन्न तत्त्वों के अनुसार िोती िै। उसी के आधार पर उसकी कियाकलाप का आकलन ककया जा सकता िै।

परंतु अब प्रश्न यि िै कक ननसैगुण्य िोने की कया आवश्यकता िै? शंकराचाय िआहद का यि तकि िै कक यद्यवप भगवान् ्ननसैगुण्य िोनेके शलए उपदेश कर रिे िैं परंतु जब भगवान् ्स्वयंभी अवतररत िोतेिैं तब उनके कम िभी गुणों के अंतगति िी िोतेिैं, इसशलए मायावाद का ननष्कष िियी िै कक कम ितो तैयारी करने ्के साधन मात्र िैं। और जब वि तैयारी पूरी िो जाती िै तब उनकी उपयोधगता समाप्त िो जाती िै। परंतु जब तक ऐसा निीं ्िो जाता तब तक भगवान् ्को भी अवतार लेकर किया करने ्के शलये गुणों का, अज्ञान का बाना पिनना िी पड़ेगा।

परंतु इसमें श्रीअरववन्द का मत इससे शभन्न िै। भले िी िमें अवतार की कियाएँ भी त्रत्रगुणों से बद्ध नजर आएँगी, श्रीमाताजी की कियाएँ भी त्रत्रगुणों से बद्ध प्रतीत िोंगी परंतु ऐसा तो िमें िमारी इंहरयों के कारण प्रतीत िोता िै। वास्तव में तो उनमें हदव्य पराप्रकृनत िी किया कर रिी िोती िै। चूंकक िमारी आखोँ पर अज्ञान का आवरण चढ़ा िोता िै इसशलए िमें उनकी कियाएँ गुणों से बंधी िुई हदखाई देती िैं, जबकक वास्तव में ऐसा िै िी निीं। वैसे िी अवतारों का इन गुणों से कोई सरोकार निीं, भले उनकी कियाएँ गुणों की लीला के वशीभूत प्रतीत िोती िों। गुणों से अतीत िोने ्का अथ िि िै कक िम अपनी चेतना को इतनी ववकशसत कर लें कक िम समय को देख सकें। िम यि देख सकेंगे कक ये अनंत गुण ककस प्रकार अशभव्यकत िो रिे िैं और इनकी कया व्यवस्था िै, तब िम इनमें शलप्त निीं िोंगे कयोंकक िम सवत्र िी हदव्य परा-प्रकृनत की किया को िी देखेंगे। तब इन तीन गुणों का भ्म निीं ्रिेगा, कयोंकक वास्तव में तो गुणों का अजस्तमव िी निीं। यि तो हदव्य ऊजि की किया को बोध करने का िमारा एक तरीका मात्र िोता िै। अतः इस प्रकार के बोध को जाना चाहिये और इसके स्थान पर स्पष्ट रूप में िमें मिाशजकत की किया हदखाई देनी चाहिये। तब सारा पररदृश्य िी पूणतिः बदल जाता िै और एक नवीन रूप धारण कर लेता िै। तब कफर प्रकाश, तपस् ्और समता, ये तीनों िी िमारे अन्दर आ जाएँगी। भगवान् ्इनके द्वारा अपनी किया करेंगे। पर आखखर यि भी देखने का एक तरीका मात्र िी िै, कयोंकक वास्तव में तो वे इन सभी से सवथिा परे िैं।

दूसूरा, जब चेतना ववकशसत निींिोती तब िम द्वन्द्वों के द्वारा किया करते िैं। यहद पसंदीदा और नापसंदीदा, अच्छी-बुरी जैसी चीज न िो तो िमारे पास कम िके चयन का आधार निींरिता। कयोंकक सामान्यतः इन्िींके आधार पर तो िम चीजों का चयन करते िैं। जबकक चयन करने ्का आधार िोना चाहिए करणीय और अकरणीय का बोध। वि वववेक तो िमारे अंदर प्रायः िोता िी निीं और िम पसंद-नापसंद आहद द्वंद्वों के द्वारा िी प्रनतकिया करते िैं। एक पशु ुको भी िम अपनी सिजवृवत् के द्वारा अपने-आप को पीड़ा से बचातेिुए देखतेिैं और उसी के अनुसार वि अपनी प्रनतकियाएँ करता िै। परंतु इस प्रकार की प्रनतकिया िी अंनतम िो, या चरम िो ऐसा निीं ्िै। िमारी प्रनतकिया अज्ञानमय निींअवपतु सज्ञान िोनी चाहिये। उदािरण के शलये, यहद ककसी नाटक में िम अपना भाग ननभा रिे िैं तो िमारी कियाएँ तथा प्रनतकियाएँ वैसी िोनी चाहिये जैसी उस नाटक की कथावस्तु के अनुकूल िों। जब तक िम द्वंद्वों के वशीभूत िोकर कम िकरते िैं तब तक समुधचत रूप से कम िनिीं ्कर सकते। समुधचत रूप से कम ितभी िो सकता िै जब िम इन द्वंद्वों के प्रनत समान भाव रखें, और जजस समय जैसा आवश्यक िो वैसा कर पाय।ें मूलभूत रूप से तो यहद िम पसंद-नापसंद से ऊपर िों तभी सिी किया का चयन कर पाएँगे अन्यथा तो िम जो पसंदीदा िोगा वि करेंगे और जो नापसंद िोगा उसे निीं कर पाएँगे, और जो पसंदीदा िै उसे भी िम तटस्थ रूप से निीं ्ननभा पाएँगे। जगदमबा या हदव्य पराप्रकृनत की किया के प्रनत िमारी सच्ची

प्रनतकिया तभी िोगी जब िम इन द्वन्द्वों के बारे में उदासीन िों, द्वन्द्वातीत िों। यहद अवतार द्वन्द्वों से बाँधकर कम िकरे तब तो उसे िम प्रकृनत के अधीन की किेंगे, जबकक वास्तव में वि उससे ऊपर िोता िै।

यहद िमें भगवान् की ओर जाना िै तो वे कितेिैं कक म ैंइसशलए अवतार लेता िूँताकक मनुष्य मेरे उदािरण को देखें। और उदािरण यि िै कक वे द्वन्द्वातीत िैं और गुणातीत िैं। अतः िमें भी अपरा को छोड़ कर हदव्य परा प्रकृनत में किया करनेके शलए इनसे परे उठना पड़ेगा। अन्यथा काय िका चयन सुख-दुःख, अच्छा-बुरा, श्रेष्ठ-ननमन आहद द्वन्द्वों के अनुसार िोगा और ये सब मानदंड सीशमत िैं। यहद परम मानदंड से काय िकरना िो तो इन सब से ऊपर उठना आवश्यक िै। यि देखने का एक तरीका िै। और यि सारी गुण आहद की शब्दावली भारत ने िी उमपन्न की िै, अन्यत्र किीं तो यि िै िी निीं। िमारे ऋवषयों ने भगवान् के अनन्त गुणों का बोध ककया और देखा कक उसका वगीकरण, उसका प्रणालीकरण या उसका व्यवस्थापन ककस प्रकार ककया जाए। इसशलए सत्त्व, रजस् और तमस्, ये तीन मोटे ववभाग बाटँ हदये गये। उस चेतना के प्रनत भौनतक जजस प्रकार की प्रनतकिया करता िै उसे तमस् की, प्राण-शजकत जजस प्रकार की प्रनतकिया करती िै उसे रजस् की, और मन जजस प्रकार की प्रनतकिया देता िै उसे सत्त्व की संज्ञा दे दी गई। तीनों के अलग-अलग स्वरूप िैं। एक में जस्थरता या ननजष्ियता िै, दूसरे में गनतशीलता या सकियता िै और तीसरे में सामंजस्य का तत्त्व िै। सत्त्व के आववभािव से िम किया को व्यापक रूप से देख सकते िैं। इसी के अंदर तकिशजकत, बुद्धध आहद ननहित िैं। इसशलए यि एक ऐसी क्षमता िै जजसके माध्यम से कियाओं से दूर िटकर उन पर नजर डाली जा सकती िै और कफर उन पर किया की जा सकती िै।

यावानथ वउदपानेसर्वतः सम्प्लुतोदके ।

तावान्सवेषु वेदेषु ब्राह्मस्य ववजानतः ।।४६।।

४६. सब ओर से पानी की बाढ़ आ जाने पर कुएँ में जजतना प्रयोजन रह जाता है, उतना ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त ककये हुए मनुष्य का सर्व वेदों में रह जाता है।

यिी निीं, अवपतु शास्त्र-वचन तो बाधक भी िोतेिैं; कयोंकक शास्त्र के शब्द - कदाधचत् इसके मूलपाठों के बीच शभन्नता और उनकी ववववध और परस्पर ववसममत व्याख्याओं के कारण बुद्धध को भ्शमत कर देते िैं, जो केवल अंदर की ज्योनत से िी ननजश्चत मनत और एकाग्र धचत्त प्राप्त कर सकती िै।... यि सब परमपरागत धाशमकि भावना के शलये इतना अवप्रय या आपवत्तजनक िोता िै कक अपनी सुववधा देखनेवाली और अवसर से लाभ उठानेवाली मानव-प्रवृवत्त का गीता के कुछ श्लोकों के अथ िको तोड़-मरोड़ कर उनका कुछ और अथ िकरनेका प्रयास करना स्वाभाववक िी था, ककन्तु इन श्लोकों का अथ िअपने-आप में सुस्पष्ट िै और आद्योपांत सुसंबद्ध िै। शास्त्र-वचन-संबंधी यि भाव आगे चलकर एक और श्लोक में मंडित और सुननहदिष्ट िुआ िै जिाँ यि किा गया िै कक ज्ञानी का ज्ञान 'शब्दब्रह्म' को अथात् िवेद और उपननषद् को पार कर जाता िै, '**शब्दब्रह्मानतवततेते**।

vi. 44

जो भी ि◌ो, देखनिं कक इस सब का अथ ि◌कया ि◌ै; कयोंकक इस ववषय में तो ि◌म सुननजश्चत ि◌ो सकनिं कक गीता जैसे समन्वयाममक और उदार शास्त्र में आयि–संस्कृनत के इन मित्त्वपूण ि◌अंगों का ववचार केवल इन्िें अस्वीकार करनेया इनका खंडन करने ◌ेकी दृजष्ट से निंककया गया ि◌ै।*...इसशलए चलते-चलते यिााँ पर यि गौर ककया जा सकता ि◌ै कक, वेद और उपननषदों के मंत्र ि◌ी जजनके आधार ि◌ैं ऐसे इन नानाववध दाशननक संप्रदायों में जब इतना ववरोध ि◌ै तब गीता का यि किना कक श्रुनत बुद्धध को घबरा और चकरा देती ि◌ै, उसे कई हदशाओं ◌ंमें घुमा देती ि◌ै, **'श्रुनतवविप्रनतपन्ना',** कोई आश्चय ि◌की बात निीं। आज भी भारत के पंडितों और दाशननकों के बीच इन प्राचीन वचनों के अथों के संबंध में ककतनेबड़े–बड़े ◌ेशास्त्राथ ि◌और झगड़े ि◌ो जाते ि◌ैं और वे सभी ककतनेववशभन्न ननष्कषों तक पिुाँचते ि◌ैं! इनसे बुद्धध खखन्न और उदासीन ि◌ोकर, **'गनतामस ननवेदं'**, नवीन और प्राचीन शास्त्र वचनों को, **'श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च'**, सुनने ◌ेसे इन्कार कर के स्वयंिी गूढ़तर, आंतर और प्रमयक्ष अनुभव के सिारे समय का अन्वेषण करने ◌ेके शलये अपने अन्दर प्रवेश कर सकती ि◌ै।

ii .52 , ii.53

कर्मण्येवाधधकारस्ते र्ा ि◌लेषु कदाचन ।

र्ा कर्मिलहेतुभूर्मा ते ◌ेसङ्गोऽस्त्कर्मणि ।॥४७॥

४७. कर्म करने र्ें ही तेरा अधधकार है, परंतु केर्ल कर्म करनेका, कर्मिल का कभी भी नहीं ◌ंहै; कर्मों के ि◌लों को कर्मों का उद्देश्य न बना, अकर्म (कर्म पररत्याग) र्ें भी तेरी आसजक्त न हो।

कमिल तो अनन्य रूप से सभी कमों के स्वामी का ि◌ी ि◌ै; ि◌मारा इससे इतना ि◌ी प्रयोजन ि◌ै कक सच्चे और सावधान कम ि◌के द्वारा उसका फल तैयार करें और यहद यि प्राप्त ि◌ोता ि◌ै तो इसे इसके हदव्य स्वामी को सौंप दें। तमपश्चात् ◌्जैसे ि◌मनेफल के प्रनत आसजकत का मयाग ककया ि◌ै वैसे ि◌ी ि◌में कम ि◌के प्रनत आसजकत भी मयागनी िोगी। ककसी भी क्षण ि◌में ककसी काम, ककसी कायिम या ककसी कायक्षेत्र के स्थान पर दूसरे को ग्रिण करने अथवा, यहद प्रभु का स्पष्ट आदेश ि◌ो, तो सब कमों को छोड़ देनेके शलये भी तैयार रिना ि◌ोगा। अन्यथा ि◌म कम ि◌ प्रभु हिताथ ि◌निींकर रिे ि◌ोते, अवपतु कम ि◌से शमलनेवाली ननजी सन्तुजष्ट एवं प्रसन्नता के शलये अथवा राजशसक प्रकृनत को कम ि◌की आवश्यकता ि◌ोने के कारण या अपनी रुधचयों की पूनत ि◌के शलये कर रिे ि◌ोते ि◌ैं; परंतु ये सब तो अिं के प्रभाव और अड्डे ि◌ैं।.... अन्त में, जैसे कमिल तथा कम ि◌के प्रनत आसजकत को हृदय से बािर ननकाल हदया गया ि◌ै, वैसे ि◌ी अपनेकर्तृाि ि◌ोनेके ववचार तथा भाव के प्रनत अजन्तम दृढ़ आसजकत को भी छोड़ना ि◌ोता ि◌ै; भगवती शजकत को अपनेऊपर तथा भीतर सच्ची तथा एकमात्र कनी के रूप में जानना एवं अनुभव करना ि◌ोता ि◌ै।

'कर्मण्येवाधधकारस्ते' यि एक बिुत प्रशसद्ध श्लोक ि◌ै और सामान्यतया इसी को गीता का परम वचन मान शलया जाता ि◌ै। यिााँश्रीअरववन्द ने इसका संकेत कर ि◌ी हदया ि◌ै कक प्राखणक सर्दा कम ि◌के पीछे अपनेननहित िेतु रखती ि◌ै कक उससे उसे यि या वि अभीष्ट फल प्राप्त ि◌ोगा जबकक भगवान् ◌्कि रिे ि◌ैं कक फल की आशा का पररमयाग करके कम ि◌करो। परंतु सामान्य मनुष्य तो लाभ-अलाभ, सुख-दुःख आहद आधारों पर ि◌ी कम ि◌करता ि◌ै और इनके त्रबना तो उसके कम ि◌का आधार ि◌ी निीं रिेगा और वि कम ि◌करेगा ि◌ी निीं, कयोंकक मनुष्य के कम ि◌का आधार ि◌ै कामना, अन्य तो उसके शलए कोई आधार ि◌ी निीं। गीता सबसे पिले मनुष्य की प्राण शजकत के ऊपर

अंकुश लगाने का प्रयास करती ि◌ै कयोंकक उसकी अन्य सर्त्ाओं में वि◌ी सबसे अधधक प्रबल ि◌ै। दूसूरे श्लोक में भगवान् ◌्कित◌े ि◌ैं कक **करों के ि◌लों को करोाँ का उद्देश्य न बना, अकर् व(कर् वपररत्याग) र्ें भी तेरी आसजक्त न हो।**

"गीता बाद के अध्यायों में वेदों और उपननषदों की ब्ि◌ी भारी प्रशंसा करती ि◌ै। विाँ कि◌ा गया ि◌ै कक वे ईश्वर-प्रणीत शास्त्र ि◌ैं, शब्दब्रह्म ि◌ैं। स्वयं ◌ंभगवान् ◌्ि◌ी वेदों के ज्ञाता और वेदांत के प्रणेता ि◌ैं, **'र्ेदवद् र्ेदाततकृत'**। सब वेदों के वे ि◌ी एकमात्र ज्ञातव्य ववषय ि◌ैं, **'सर्:व र्ेदैः अहर्ेर् र्ेद्यः'**, इस भाषा का फशलताथ ि◌यि ि◌ोता ि◌ै कक वेद शब्द का अथ िि◌ै ज्ञान का ग्रंथ और इन ग्रंथों के नाम इनके उपयुकत ि◌ी ि◌ैं।

xv.15

अब यहद प्राखणक सर्त्ा को कम ि◌फल की चि◌ा न दी जाए तब भी वि सूक्ष्म रूप से स्वयंउस कम ि◌में ि◌ी रस लेने लग जाती ि◌ै और उसे ि◌ी ऊँचा कम ि◌बताने लगती ि◌ै। इस बात में ि◌ी प्राण ब्ि◌ुत रस लेने लगता ि◌ै कक उसे फल की परवि◌ा निीं और गववति ि◌ोकर कि◌ता ि◌ै कक वि लाभ–िानन निीं ◌ंदेखता, वि तो तटस्थ ि◌ै, श्रीमाताजी के प्रनत, अपनेइष्ट के प्रनत समवपति ि◌ै। इस प्रकार वि उसमें भी रस लेनेलग जाता ि◌ै। उसे तो जो कुछ भी शमलता ि◌ै वि उसी में रस लेनेलग जाता ि◌ै। इसशलए गीता कि◌ती ि◌ै कक कम ि◌करनेया न करने ◌ेमें भी रुधच न रखो, ककसी कम कि◌े प्रनत यहद आसजकत ि◌ै तो उसे तुरन्त ि◌ी छ्ि◌ोनेके शलए तैयार रि◌ो। इसके बाद, यि भाव कक म ◌ैंननष्काम कम कि◌रता ि◌ूँ, ककसी वासना से निीं ◌ंकरता, यि कर्त्ापिन का अशभमान बना रि◌ता ि◌ै। इसशलए वास्तव में तो प्राण के सारे प्रसार पर, उसके इस प्रकार के व्यापार पर ि◌ी लगाम लगानी ि◌ोगी, उसे बंद कर देना ि◌ोगा। इसीशलये गीता में भगवान् ◌् तीसरे अध्याय में कि◌ते ि◌ैं कक 'जो लोग समझते ि◌ैं कक वे स्वयं कमों के कि◌ता ि◌ैं वे मि◌ामूख ि◌ैं और यहद वे निीं समझ पाते तो उन्िें अपने ि◌ाल पर छ्ि◌ो दो। परन्तु वास्तव में कम ि◌तो मेरे अधीन ि◌ोकर मेरी प्रकृनत ि◌ी करती ि◌ै।' तब भी मनुष्य तो इन सब कमों को अपनी अि◌ं चेतना के कारण स्वयं पर आरोवपत करता ि◌ै और कफर उनका प्राण कम ि◌के फल की इच्छा करता ि◌ै। यिाँगीता का सारा प्रयास एक ऐसा मानशसक अंकुश तैयार करने ◌ेका ि◌ै जजसमें प्राण की सब वृवृर्त्यों के दरवाजे ◌ेबंद कर हदये जाएँ, ि◌ालाकाँक इस प्रयास में सफल ि◌ोने ◌ेकी तो लगभग कोई संभावना िी निीं ि◌ै परंतु कफर भी कोई संरचना तो ननशमति करनी ि◌ी ि◌ोगी जजसके सिारे व्यजकत आगे बढ़ सके अन्यथा गीता आगे ववकास करे ि◌ी कैसे। इसीशलए धीरे-धीरे ऐसी संरचनाएँ तैयार की जा रि◌ी ि◌ैं जजनके आधार पर बढ़ा जा सके और कफर यथासमय उन्िें उच्चतर ज्ञान के द्वारा अनतिम कर हदया जाए। केवल श्रीअरववन्द ने ि◌ी इस ओर ध्यान हदलाया ि◌ै कक गीता का यि एक ऐसे ननष्कष ि◌तक ले जाने का तरीका ि◌ै जिाँ यि समझ आ जाएगा कक समस्या का ऐसे ककन्िींभी तरीकों से समाधान निीं ◌ंककया जा सकता। कयोंकक यहद यिी बात ि◌ोती और इसी उपदेश से ननष्काम कम ि◌साधधत ि◌ो जाता तब तो कफर पूण ि◌शसद्धध पिले ि◌ी शसद्ध ि◌ो जाती और इससे आगे गीता का उपदेश करनेकी आवश्यकता ि◌ी निींथी। इसशलए, जब तक वतमान कम ि◌के ि◌ेतु की सारी ज़्ि◌, अि◌ं, को ि◌ी निीं ◌ंननकाल हदया जाता, जब तक दूसूरों से पृथक् ि◌ोने ◌ेका बोध रि◌ेगा, तब तक ननष्काम कम ि◌संभव ि◌ी निीं ि◌ै।

संशसद्धध या कफर भगवान् ्की प्राजप्त की अपनी आसजकत से तो ऊपर निीं ंउठ सकता कयोंकक इस अवस्था में व्यजकत का यिी ननहित िैतु िै कक ककस प्रकार उसे भगवान् ्की उपलजब्ध िो जाए। परंतु यि शसद्ध िो जाए ऐसा संभव निीीं और वतमान में गीता का यि उद्देश्य भी निीं ंिै। यि तो अजुनि की तैयारी चल रिी िै, धीरे-धीरे उसे संवधधति ककया जा रिा िै। इसीशलए सबसे पिले अजुनि को किा गया िै कक जय-पराजय को समान मानकर कम ि कर। पर अजुनि पूछता िै कक जब जय और पराजय मेरे शलए समान िी िों तो कफर कम िकरना िी कयों चाहिये। इसीशलए गीता किती िै कक भगवान् ्की प्रसन्नता के ननशमर्त् यज्ञ रूप से कम िकर। िालाकाँक यि निीं िै कक ऐसा कि देनेभर से िी वि ऐसा कम िकर सकता िै, परंतु इस प्रकार एक मानशसक ववचार तो आगे ववकशसत िोता िै। उदिारण के शलये, यहद यि बोध रखकर िम कम िकरें कक कौनसा कम िश्रीमाताजी को प्रसन्न करेगा और कौनसा निीं ंतो इससे िम बिुत से कमों से बच सकते िैं। और जो कम िकरेंगे उनमें भद्देपन से, ननमन वृवृत्यों आहद से कुछ िद तक बच जाएँगे। भगवान् ्की प्रसन्नता के ननशमर्त् यज्ञ रूप से कम िकरना ऐसी चीज निीं िै जो सोचने मात्र से िी साधधत िो जाए। यि यज्ञ का आरोिण तो जीवनपयतां का आरोिण िै। सारा वेद इसी यज्ञ के ववचार पर आधाररत िै कक एक बार जब यि भाव आ जाए कक समस्त कियाएँ आममा की प्रसन्नता के शलए की जानी चाहिये तब िमारी यात्रा भौनतक, प्राखणक तथा मानशसक स्तरों व उनके व्यवधानों से िोकर लक्ष्य की ओर आगे चलने लगती िै। िालाकाँक तीसरे अध्याय में तो ऐसा प्रतीत िोता िै कक गीता केवल बािरी यज्ञ की िी बात कर रिी िै। परंतु चौथे अध्याय में भगवान् ्स्पष्ट कर देते िैं कक कम िब्रह्म रूप िैं और इससे यि स्पष्ट िो जाता िै कक यि सब वणनि तो प्रतीकाममक था जबकक गीता का वास्तववक लक्ष्य तो इससे भी मिर्त्र िै। इस प्रकार गीता की सारी शशक्षा का आधार यिीं ंसे ननशमति िोना आरंभ िो गया िै और िमें इसी पररपे्रेक्ष्य में इसे समझना चाहिए। इस प्रकार सबसे पिले कमफिल के प्रनत आसजकत के मयाग, कफर कमों के प्रनत आसजकत के मयाग और तमपश्चात् ् कर्त्ापिन के अशभमान के मयाग का प्रनतपादन कर के कम-से-कम िमारी बुद्धध को तो इस ववषय पर स्पष्ट बोध प्रदान कर हदया गया िै। और इस प्रश्न के उर्त्र में कक ऐसा कम िसंभव िी कैसे िै, यज्ञ-रूप कम िकी बात बता दी गई िै कक सभी कमों को उर्त्रोर्त्र यज्ञ के रूप में ककया जाना िोगा।

योगस्थः कुरु कराणवि सङ्गंत्यक्त्रा धनञ्जय ।

मसद्धयमसद्धयोः सरो भूत्रा सर्त्रंयोग उच्यते।।४८।।

४८. हे धनञ्जय! आसजक्त का पररत्याग कर के, सिलता और असिलता रें सर्-भार् रखते हुए, योग रें जस्थत रहतेहुए अपने सर्स्त करों को कर; क्योंकक योग का अथ वइस सर्ता से ही है।

आममा, मन और हृदय में पूण िसमता प्राप्त कर के िम अपनी उस सच्ची एकाममय आममा को अनुभव कर लेते िैं जो सभी सर्त्ाओं के साथ एकीभूत िै, उसके साथ भी एकीभूत िै जो अपने-आपको इन सब सर्त्ाओं में तथा उस सब में प्रकट करता िै जजससे िम देखते और अनुभव करते िैं। यि समता और एकता एक अननवाय िदोिरी नींव िै जो िमें हदव्य सर्त्ा, हदव्य चेतना और हदव्य कम िके शलये स्थावपत करनी िोगी। यहद िम सबके साथ एकाकार निीं ंिैं तो आध्याजममक दृजष्ट से िम हदव्य निीं िैं। सब वस्तुओं, घटनाओं और प्राखणयों के प्रनत आजममक समता रखे

त्रबना िम दूसूरों को आध्याजममक रूप से निींदेख सकते, न िम उन्िेंहदव्य रूप से जान सकतिेंऔर न उनके प्रनत हदव्य रीनत से सिानुभूनत िी रख सकते िैं। एकमेव शाश्वत एवं ंअनन्त परम शजकत सब पदाथों और सब प्राखणयों के प्रनत 'सम' िै, और कयोंकक वि 'सम' िै, वि अपनेकमों और अपनी शजकत के समय के अनुसार और प्रमयेक पदाथ िऔर प्रमयेक प्राणी के समय के अनुसार पूण िज्ञान के साथ काय िकर सकती िै।

दूरेृ ह्यर्ं कर् वबुद्धधयोगाद्धनञ्जय ।
बुद्धौ िरिर्जतच्छ कृपिाः िलहेतर्ः ।।४९।।
४९. हे धनञ्जय! बुद्धधयोग की अपेक्षा (िलेच्छा से ककये जानेर्ाले) कर् वतनश्चय ही अत्यंत तनकृष्ट हैं; इसमलये तू इस बुद्धध का आश्रय ग्रहि करने ेकी कार्ना कर (इसे प्राप्त कर), जो र्नुष्य अपने कर्ों के िल को कर् वका उद्देश्य बनाते हैं र्े दीन-हीन, अधर् (कृपि) होतेहैं।

बुद्धधयुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्र्ाद्योगाय युजयस्र् योगः कर्सुव कौिलर् ्॥५०।।
५०. जजसने अपनी बुद्धध को भगर्ान् ्के साथ युक्त कर ददया है र्ह इस द्वंद्वर्य लोक र्ें ही िुभ कर् वऔर अिुभ कर् वइन दोनों का पररत्याग कर देता है; इसमलये योगस्थ होनेके मलये प्रयत्न कर; योग कर्ों र्ें कुिलता है।

गीता किती िै कक योग कमों में कुशलता िै, और इस उजकत से इस प्राचीन सद्ग्रंथ का अशभप्राय यि िै कक मन और सर्त्ा का रूपांतर, जजसे इसने योग की संज्ञा दी िै, अपने साथ एक पररपूण िआंतररक अवस्था तथा योग्यता लाता िै जजसमें से कम िका सिी ववधान और कमों का सिी आध्याजममक और हदव्य फल या पररणाम उसी प्रकार स्वाभाववक रूप से उमपन्न िोतिें जजस प्रकार अपनेबीज से वृक्ष उमपन्न िोता िै। ननश्चय िी इसका यि अथ िनिीं था कक कोई चतुर सेनानायक या राजनेता या वकील या मोची योगी के नाम का अधधकारी िै, इसका यि अशभप्राय निीं ंथा कक कमों में ककसी भी प्रकार की कुशलता योग थी, अवपतु योग से यि वैश्व सममव तथा भगवदैकय की एक आध्याजममक अवस्था द्योनतत करती थी और योगस्थ कायकिता की कुशलता से इसका अशभप्राय हदव्य और वैश्व प्रकृनत - जो कक अिंकार के बंधनों से तथा ऐंहरय-मन की सीमाओंसे मुकत िो - की लय के प्रनत आममा और उसके उपकरणों की पूण िअनुकूलनता से था।

...योगस्थ िोकर ककया जानेवाला कम िन केवल उच्चतम अवपतु अमयंत ज्ञानपूण,ि सांसाररक ववषयों के शलये भी अमयंत शजकतशाली और अमयंत अमोघ िोता िै...

इसमें प्रश्न यि उठता िै कक आखखर समता िमारे शलए कयों आवश्यक िै। इसे िम एक रूपक के माध्यम से समझ सकते िैं। मान लेते िैं कक भगवान् ्की अशभव्यजकत के शलए िम शमलकर कोई नाटक कर रिे िैं और उसमें सबकी शभन्न-शभन्न भूशमकाएँ िैं। अब यहद इसमें कोई कुछ दृश्यों को अच्छा और कुछ दृश्यों को बुरा

समझकर प्रभाववत िोता िो तो कफर वि अपना संवाद सिी ढंग से निींबोल पाएगा और अपनी भूशमका को अच्छी तरि निीं ननभा पाएगा। अतः उच्चतर चेतना में िोने पर िी व्यजकत में सच्ची समता आती िै। जब िम इस नाटक की पटकथा समझ जाएँगे और यि समझ जाएँगे कक यि वास्तव में एक नाटक िै और इसमें िम सभी अपनी-अपनी भूशमका ननभा रिे िैं तब ऐसा जानकर िम ववचशलत निीं ंिोंगे। इसशलए ब्रह्म चेतना से जुिने पर िी सच्ची समता आती िै। अथात्ि्जब िमें इन सारी बातों का ज्ञान िो जाएगा तभी समता आ सकती िै, इससे पिले निीं। कफर िम जान जाते िैं कक िम सब एक िी िैं और िमारा एक उद्देश्य िै जजसमें िम सब लोग शमलकर भाग ले रिे िैं इसशलए िमें ववचशलत िोनेकी आवश्यकता निीं ंिै। अतः समता आवश्यक िै। समझने ेके शलए यि एक दृजष्टकोण िै। यिी बात गुणों की थी और यिी बात समता की िै। यहद िम बािरी प्रतीनत से प्रभाववत िोते िैं तो िम समुधचत कम िनिीं ंकर सकते। परन्तु जजस प्रकार िमारा िमववकास िुआ िै उस गठन के कारण िम प्रभाववत िोतेिैं। इसीशलए आध्याजममक समय को पानेके शलए िमें उस स्तर तक जाना आवश्यक िै जिाँमि ब्रह्म चेतना को प्राप्त कर सकें। **'सर्त्र् योग उच्यते'**, समता िी योग िै। कयोंकक योग िोगा तभी समता आएगी। इसके त्रबना समता निींआ सकती। तो यि तो िुई समता की बात।

ि्योग दूसरा कमों में **योगः कमसु कौशलम्**, कमों में कुशलता योग िै।

उदािरण के शलए, यहद कोई व्यजकत िो तो बिुत कुशल परंतु त्रबना यि प्रश्न पूछे िी चल पिे ेकक उसे जाना किाँिै तो उसकी कुशलता का लाभ िी कया िुआ। योग िी वि सिी हदशाननदेश दे सकता िै। योग िी व्यजकत को बतलाएगा कक कया करने ेयोग्य िै और कया करने ेयोग्य निीं। इसशलए सच्ची कुशलता तो कम िमें योगयुकत िोने ेमें िी िै अन्यथा िमारे कम िअकुशल िैं, कयोंकक योगयुकत िुए त्रबना तो कमों का केंर अिं िी िोगा जजससे कक कोई भी काम पूरी कुशलता के साथ ककया िी निीं ंजा सकता। इसशलए योग-युकत िोना िी सभी चीजों में सच्ची कुशलता लाता िै।

कर्जं बुद्धधयुक्ता दह िलं त्यक्त्र्ा र्नीवषिः ।

जतर्बतधवर्तनर्ुक्वताः पदं गच्छतत्यनार्यर् ्।।५१।।

५१. जजन ज्ञानी र्नुष्यों ने अपनी बुद्धध को भगर्ान् ्के साथ युक्त कर ददया है र्े कर्् वसे उत्पतन होने र्ाले िल का त्याग कर देते हैं और जतर्रूप बंधन से र्ुक्त होकर र्े दुःख-ददव से परे उस परर् पद को प्राप्त हो जाते हैं।

परन्तु जीवन की ओर अशभलक्षक्षत समस्त कम ियोगी को उसके व्यापक ध्येय से दूरू ले जाता िै कयोंकक सवमान्य रूप से यि ध्येय इस दुःख-शोकमय मानव-जन्म के बन्धन से छुटकारा पाना िोता िै? निीं, ऐसा निीं िै... जो योगी कमफिल की इच्छा के त्रबना, भगवान् ्के साथ योग में युकत िोकर कम िकरते िैं, वे जन्म-बंधन से मुकत िो जाते िैं और उस परम्–्पद को प्राप्त िोतेिैं, जिाँ दुःखी मानव जानत के मन और प्राण को सतानेवाली कोई भी व्याधध निीं ंिोती।

यदा ते र्ोहकमललं बुद्धधव्यततवततररष्यतत ।

तदा गततामस तनरे्दं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥५२॥

५२. जब तेरी बुद्धध र्ोहजाल को पार कर जाएगी तब तू ाख के उन र्चनों के प्रतत, जो तूने सुने हैं या सुनने ेषे हैं, उदासीन हो जाएगा।

श्रुततवर्प्रततपतना ते यदा स्थास्यतत तनश्चला ।

सर्ाधार्चला बुद्धधस्तदा योगर्ाप्स्यमस ।।५३ ।।

५३. जब श्रुतत से ककंकतव्ययवर्ूढ़ हुई तेरी बुद्धध सर्ाधध र्ें तनश्चल और जस्थर हो जाएगी तब तू योग को प्राप्त करेगा।

...शास्त्र का शब्द बंधनकारी और भरमानेवाला ोता ै, जैसा कक ईसाइयत के दूत (ईसा) ने अपनेअनुयानययों को चेतावनी देते ुए किा था कक 'शब्द मारता ै जबकक उसका भाव या मम िै जो तारता ै और एक सीमा ै जजसके परे शाखों की भी कोई उपयोधगता निीं रिती। ज्ञान का वास्तववक स्रोत ै हृदय में ववराजमान ईश्वर; गीता में भगवान् ्कितेैं कक "म ै(ईश्वर) प्रमयेक मनुष्य के हृदय में जस्थत ूँ और मुझसे ी ज्ञान ननःसृत ोता ै।" शाख तो उस आंतर वेद (ज्ञान) का, उस स्वयंप्रकाश सत्–्तत्त्व का केवल शब्दमय ववग्रि ै, यि शब्द-ब्रह्म ैः वेद किता ै, मंत्र हृदय से ननकला ै, उस गुह्य स्थान से जो समय का सदन ै, **'सदनाद् ऋतस्य, गुहायां**' ं। वेद का यि मूलस्रोत ी उसका प्रमाण ै; कफर भी वि अनंत समय अपनेशब्द की अपेक्षा मित्र ै। और तुम ककसी भी सद्ग्रंथ के ववषय में ऐसा निीं ंकि सकतेकक विी एकमात्र सवथिा-पयाप्ति ै, इसके अनतररकत और कोई समय ग्राह्य निीं ि सकता, जैसा कक वेद के ववषय में वेदवादी किते ेथे, **'नातयदस्तीततर्ाददनः**'। यि बात (अनेक भ्माहद से) रक्षा vec 4h * 7 वाली और मुजकतदायी ै, और संसार के सभी सद्ग्रंथों के ववषय में किी जा सकती ै। बाइबल, कुरान, चीन के धमग्रंथि, वेद, उपननषद्, पुराण, तंत्र, शास्त्र और स्वयंगीता आहद सभी वतमिान में ववद्यमान या ककसी समय ववद्यमान रि सद्ग्रंथ ैं, उन सबमें जो समय ै उसे तथा जजतनेतत्त्ववेत्ा, साधु-संत, ईश्वरदूत और अवतारों की वाखणयााँ ैं, उन सबको एकत्र कर लें तो भी आप यि न कि सकेंगे कक जो कुछ ै बस यिी ै, इसके अलावा कुछ ै ी निीं ंया जजस समय को आपकी बुद्धध इनके अन्दर निीं ंदेख पाती वि समय ी निीं, ं कयोंकक वि इनके अन्दर निीं ंशमलता। यि तो सांप्रदानयकों की संकीण ि्बुद्धध ुई या कफर सब धमों से अच्छी-अच्छी बात चुननेवाले धाशमकि मनुष्य की शमधश्रत बुद्धध ुई, स्वतंत्र और प्रकाशमान मन का और ईश्वरानुभवप्राप्त जीव का अबाधधत या मुकत समयान्वेषण निीं। पिले श्रुत ो या अश्रुत, वि ी सदा समय ै जजसको मनुष्य अपनेहृदय की ज्योनतमयि गिराइयों में देखता या अखखल ज्ञान के स्वामी सनातन वेदववद् सवज्ञि परमेश्वर से अपनिेद्देश में श्रवण करता ै।

xv15

अब यि एक गिरा सूत्र बता हदया गया ै कक जजस समय को िम अपनेहृदय में देखते ैं उसके बारे में पिले ककसी ने बताया ै या निीं ंबताया ै, वेद, उपननषद् या अन्य कोई उसके पक्ष में बोलता ै या ववपक्ष में,

 इसका कोई मूल्य निीं। कयोंकक हृदय में ववराजमान समय तो सदा िी समय िै। और

भगवान् ्की लीला का कोई

अंत निीं िै। आज तक ककसी ने 'उनके' बारे में जो कुछ भी बताया िै वे ेतो केवल प्रारजमभक बातें िी िैं कयोंकक समय

का कोई अंत निीं ंिै। यि इस तरि की चीज िै जजसे केवल अनुभव िी ककया जा सकता िै, शब्दों में व्यकत निीं

ककया जा सकता। और वेद, उपननषद् आहद ग्रन्थों को ववद्वानों और मनीवषयों ने अपनेअनुभव के आधार पर

अपनी सामथ्य िके अनुसार अशभव्यकत ककया िै, इसशलये ये बिुत िी अच्छे िैं। और उनका अनुभव बिुत िी

ववशाल और बिुत िी गिरे स्तर से िै इसशलए वि िमारे शलए बिुत उपयोगी िै। पर जिाँ तक हृदय में ववराजमान

इस समय की बात िै, तो इसके सामने उनका कुछ मूल्य निीं ंिै। इसीशलये किा गया िै कक जजसे ज्ञान िो गया

िै

उसके शलए सारे वेदों का उतना िी अथ िरि जाता िै जजतना कक चारों ओर बाररश और बाढ़ की जस्थनत में कुएँ के

पानी का रि जाता िै। परंतु िमारे अनुभव का उतना िी मूल्य िै जजतना िमारा हृदय पववत्र िै, अन्यथा तो वि

ववकृत िो सकता िै। अपने-आप में उस अनुभव में कमी निीं ंिै, अनुभव तो त्रबल्कुल सिी िै, परन्तु िमारे द्वारा

उसकी अशभव्यजकत ववकृत िो जाएगी। यहद िमारे दपणि का केंर-त्रबन्दु ुसिी निीं िै तो िम अनुभव का सिी

अथ ि

लगा िी निीं सकेंगे। व्यजकत अपनेहृदय में जो देखता िै, अंततः तो विी समय िै, तथा अन्य ककसी समय का िमारे

शलए कोई मूल्य भी निीं ंिै। उदािरण के शलए यहद कोई व्यजकत रात-हदन ककसी ज्योनत को देख रिा िै, इससे

कोई

फकि निीं पिता कक व्यजकत आजस्तक िै या नाजस्तक, परंतुयहद कोई दसूरा व्यजकत यि किे कक जो वि अनुभव कर रिा िै वि समय निीं तो उसके किने ेसे कोई फकि निींपिता। तभी तो श्रीअरववन्द ने कुछ यों किा कक, 'मैं स्वयंभी नाजस्तक था, परंतु जब स्वयंभगवान ्िी मेरे पास चले आए और किा कक तुमिें लगता िै कक मैं निीं िूँ, तो कफर कैसे मैं उनकी सर्त्ा को नकार दूँ, भले लोग कुछ भी कयों न किते िों।' (CWSA 12 : 424)

इसी तरि की बात श्रीअरववन्द यिाँबता रि िै कक सारे उपननषद्, गीता, बाइबिल, पुराण आहद जजतने भी ग्रथ िै उनमें िुई अशभव्यजकत भी भगवान् ्के समस्वरूप को सीशमत निीं कर सकती। कयोंकक कब वे ककस समय और ककस क्षेत्र में वे ्कया कर दें इसके बारे में कुछ निीं किा जा सकता। चािे व्यजकत को ककतने भी ववशाल और उच्च अनुभव कयों न प्राप्त िो जाएँ, परंतु उनके बाद भी ककसी भी क्षण उसे एक ऐसा अप्रमेयशिशर्त अनुभव प्राप्त

िो सकता िै जो उसके पूव िके अनुभवों को सवथिा अनतिम कर सकता िै। और यि कोई असामान्य निींअवपतु

सदा िी िोनेवाली घटना िै। इससे िमें यि आभास िोता िै कक अपने-आप में वि परम तत्त्व ककतना अनंत और

ववशशष्ट िै जो सदा िी ननत-नूतन बना रिता िै। ऐसा निीं िै कक व्यजकत को यहद कोई अनुभव िो गया िो तो उसी

को अंनतम मानकर उसके आधार पर वि भगवान् ्के ववषय में अपनी मानशसक रचनाएँ तैयार कर सकता िै। 'वि'

तो ऐसा तत्त्व िै जो अधचंमंय िै। सदा िी 'वि' व्यजकत के अनुभव में इस रूप में आता िै कक व्यजकत को बिुत िी

अचंभा िोता िै कक यि कया िै। इस प्रकार धीरे-धीरे बिुत सारे अचंभों में से गुजरने ेपर व्यजकत को कुछ थोिा-सा

अधधक गिरा आभास प्राप्त िोता िै। परंतु वि भी केवल एक दृजष्टकोण मात्र िी िोता िै, और उससे 'वि' सीशमत

निीं ंिो जाता। परन्तु कफर भी वि अनुभव अपनेआप में समय िै, कारगर िै। इस तरि की बात का श्रीअरववन्द ने

गीता में वणनि ककया िै।

अजुनव उर्ाच

जस्थतप्रज्ञस्य का भाषा सर्ाधधस्थस्य किर् ।

जस्थतधीः ककं प्रभाषेत ककर्ासीत व्रजेत ककर् ्॥५४॥

५४. अजुनव ने कहाः हे किर्! जो र्नुष्य सर्ाधध र्ें जस्थत है, जजसकी बुद्धध जस्थत हो गयी है उसका क्या लक्षि होता है? जस्थतबुद्धध साधु ककस प्रकार बैठता है, ककस प्रकार चलता है?

अजुनि औसत मनुष्य के मन में उठनेवाले प्रश्न को प्रकट करते िुए इस मिान् ्समाधध के कुछ बाह्य, शारीररक और व्याविाररक रूप में पिचाने जा सकने योग्य लक्षणों के ववषय में पूछता िै... इस तरि के कोई लक्षण निीं बताये जा सकते और न श्रीगुरु बतलाने का प्रयास िी करते िैं; कयोंकक समाधध की केवल कोई संभवनीय कसौटी आंतररक िी िै और उसे लागू करने ्के शलए ववरोधी मनोगत शजकतयााँ बिुत िैं। मुकत पुरुष का मिान् ्लक्षण समता िै और समता की पिचान के शलये जो अनत स्पष्ट धचह्न िैं वे भी आंतररक िैं।

श्रीभगर्ान् ्उर्ाच

प्रजहातत यदा कार्ातसर्ातवपाथ वर्नोगतान् ्।

आत्र्तयेर्ात्र्ना तुष्टः जस्थतप्रज्ञस्तदोच्यते ॥५५॥

५५. श्रीभगर्ान् ्ने कहाः हे पाथ!व जब र्नुष्य र्न र्ें रहने ्र्ाली सर्स्त कार्नाओंका पररत्याग कर देता है और आत्र्ा के द्र्ारा आत्र्ा र्ें ही संतुष्ट रहता है तब र्ह जस्थतप्रज्ञ कहा जाता है।

समाधधस्थ मनुष्य का लक्षण यि निीं ्िै कक वि पदाथों और पररवेश का तथा अपने मन और दिे का संज्ञान िी खो बैठता िै और उसके शरीर को जलाने या पीड़ित करनेपर भी उसे इस चेतना में लौटाया न जा सके, जैसा कक साधारणतया लोग समाधध द्वारा समझतिैं; इस प्रकार की समाधध तो चेतना की एक ववशशष्ट प्रकार की प्रगाढ़ता िै, यि इसका कोई मूल लक्षण निीं ्िै। समाधध की कसौटी िै सब कामनाओंका बहिष्कार, ककसी भी कामना का मन तक न पिुाँच सकना, और आन्तररक अवस्था से िी यि स्वतंत्रता उमपन्न िोती िै, जजसमें आममा का आनन्द अपनिी भीतर केंरीभूत रिता िै, साथ िी मन सम, जस्थर तथा आकषणिों और ववकषणिों से तथा बाह्य जीवन के धूप, आाँधी तथा तनाव आहद फेर-बदलों से परे उच्चासीन रिता िै। बाह्य रूप hat H किया करते िुए भी यि भीतर की ओर िी आकृष्ट रिता िै; बाह्य पदाथों को देखते िुए भी यि आममा में िी एकाग्र रिता िै; दूसूरों की दृजष्ट में सांसाररक काम काज में व्यस्त और तल्लीन िोने पर भी वि सवथिा भगवान् ्की ओर लगा रिता िै।

समता का पता तो बािरी घटनाओं के प्रनत व्यजकत की प्रनतकिया से िी चल जाएगा। जजसे व्यजकत अपनी वप्रय चीजें बताता िै उनके साथ यहद कुछ दुःखद घहटत िोता िै तब समता िै या निीं ्इसका पता लग जाता िै। यहद जजससे व्यजकत का कोई सरोकार निीं ्उसके साथ कुछ अवप्रय घहटत िोता िै और व्यजकत अप्रभाववत रिे तो इससे समता का पता निीं लग सकता। पर यहद वप्रय से वप्रय व्यजकत की मृमृयु िो जाए, घर में आग लग जाए या अन्य कुछ दुःखद या अवप्रय घहटत िो जाए और तब भी व्यजकत ववचशलत न िो तो िम सोचते िैं कक ऐसी मनोदशा

के शलए उसे ककतना अभ्यास करना पड़ा िोगा, कयोंकक िमारा जजस प्रकार का वतमिान गठन िै उसमें यिी कर

पाना िमारे शलए तो एक मित् ्काय िििोता िै। इसके परे तो िम और कोई बात सोच िी निीं ंसकते। परंतुसममव की

जस्थनत तो एक ऐसी सिज-शसद्ध जस्थनत िोती िै जजसमें व्यजकत एक ऐसी चेतना में प्रनतजष्ठत िोता िै जिा

ाँइन बातों का उसके शलए कोई मित्त्व िी निीं िोता। जैसे कक यहद ककसी स्िक पर बिुत सारे फूल-परेते् त्रबखरे िों

और

यहद वे िवा से इधर-उधर िो जाएँ या कफर नष्ट भी िो जाएँ तो व्यजकत इससे ववचशलत निींिोता कयोंकक इन चीजों

का उसके शलए कोई मित्त्व िी निीं ंिोता। जब व्यजकत को परमाममा का अनुभव िो जाता िै तब उसके शलए

अन्य

चीजों का कोई मित्त्व िी निीं रि जाता, वे ेचािे इधर जाएँ या उधर जाएँ, कयोंकक व्यजकत सम-जस्थनत में िोता िै

और सम इसशलए िोता िै कयोंकक उसका इन घटनाओं से वास्तव में कुछ बनने-त्रबगड़ने वाला निीं। व्यजकत को

ऐसी चीज प्राप्त िो चुकी िोती िै जजसके सामने दुननया में जो कुछ भी िै या निीं ंिै, दुननया जो दे सकती िै या निीं ं

सकतीं परंतु स्वयंउसे तो वे धचत्र के अनुरूप स्वाभाववक िी प्रतीत िोंगे। इसी तरि, शरीर के आने ेया जानेपर

इससे भी अधधक सच्ची समता तब आती िै जब व्यजकत को पूण िज्ञान िो जाता िै। अब जब व्यजकत को

यि ज्ञान िो जाता िै कक वि धचत्रकार िै तो उसके शभन्न-शभन्न रंग ककसी दूसरे को तो सौभाग्य-दुभाग्यि प्रतीत िो

दे सकती, उस सबकी कुछ भी कीमत निींरि जाती। इसशलए ऐसे में समता तो अपने-आप िी आ जाती िै।

सामान्यतः िम ववचशलत िोते िैं, परंतु जजसे यि ज्ञान िो गया िै कक यि तो अपने पुराने ेकपड़े ेबदलने जैसी िी

किया िै वि व्यजकत उससे ववचशलत निींिो सकता। कयोंकक वि जानता िै कक ये सब चीजें भगवान् ्को

अशभव्यकत करनेके शलए िी इतनी सारी घटनाएँ मात्र िैं। जैसे कक जब नाटक की पूरी रूपरेखा व्यजकत को पता िो

तो वि उसे बखूबी ननभाता अवश्य िै परंतु ककन्िींदृश्यों से वास्तव में िर निीं ंजाता या ववचशलत निींिो जाता।

इसशलए जब व्यजकत को कोई ऐसी चीज प्राप्त िो जाती िै जजसके सामने अन्य सभी चीजों का कोई वास्तववक

मूल्य िी निींरि जाता तब कफर वि और अधधक ववचशलत निीं ंिोता।

परंतु जब मनुष्य धन-संपवत्, सुख, आमम-संतुजष्ट आहद चीजों में शलप्त रिता िै, तो यि एक बिुत भयंकर

और दयनीय जस्थनत िै। व्यजकत के अन्दर अनन्त खजाने ननहित िैं। यहद एक बार वि उन्िें थोड़ा-सा भी देख ले

तब कफर इन सब बािरी चीजों का उसके शलए कोई मित्त्व िी निीं रि जाता और वि सच्चेरूप से अपनेकम िकर

सकता िै कयोंकक तब उसके बािरी पररणाम के प्रनत वि अप्रभाववत रिता िै, इसशलए उसके शलए तो सब अच्छा िी

िोता िै। अतः अपनेभीतर वि आनन्द का अनुभव करता िै। तब कफर व्यजकत को सृजष्ट की बािरी घटनाओं से

कोई भय निींरि जाता, कयोंकक सभी कुछ केवल आमम-अशभव्यजकत का यंत्र बन जाता िै। इसशलए जब सच्चे

अनुभव के अंदर आनन्द का स्रोत खुल जाता िै तब कफर कोई समस्या निीं रिती, और समता अपने-आप िी

स्थावपत िो जाती िै। परंतु ऐसा निीं ंिै कक तब व्यजकत बािरी चीजों के प्रनत लापरवाि िो जाता िो, बजल्क वि सिी

दृजष्टकोण से अपनी भूशमका ननभा सकता िै। यि देखने का एक मनोवैज्ञाननक तरीका िै।

प्रश्न : िम कि रि िैं कक अपनेहृदय का समय िी सवोपरर िै। जब वेद में सभी मूलभूत समय और सभी मूलभूत अनुभव समाहित िैं तो िमारे हृदय के अनुभव के साथ वेद में ननहित अनुभवों का कोई ववरोध तो निीं िोना चाहिये?

उत्तर : स्वयंवेदों की वाणी तो सिी िै, उसमें तो पूण िसमय िै। पर व्यजकत का मन, उसकी बुद्धध उसका जो अथ िलगाते िैं वि संहदग्ध िो सकता िै। वे इसका दावा निीं ंकर सकते कक उन्िोंनेजो समझा िै विी समय िै। कयोंकक वेदों का समय तो यथाथ िऔर प्रामाखणक िै। योगी श्री कृष्णप्रेम किते िैं कक अनुभव पर संदेि निीं ककया जा सकता, िालाकाँक, उसकी मानशसक अशभव्यजकत पर अवश्य संदेि ककया जा सकता िै। व्यजकत उस अनुभव का कया अथ िलगाता िै उस पर संशय ककया जा सकता िै। उसमें तो सदा िी सुधार की संभांवना रिती िै। जैसे कक यहद व्यजकत को श्रीमाताजी का अनुभव िो और पूरी सत्ता आनंद से भर जाए तो इस पर संदेि निींककया जा सकता। सारा वेद भी यहद इसका खण्डन करे तो भी उसका कोई मित्त्व निीं ंिै। व्यजकत उसका अथ िकया लगाता िै, वि एक दूसूरी बात िै। परंतु स्वयंउस अनुभव पर संदेि निीं ंककया जा सकता।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु वर्गतस्पृहः ।
र्ीतरागभयक्रोधः जस्थतधीर्ुतवनरुच्यते ।।५६।।

५६. दुःखों र्ें जजसका र्न व्याकुल नहीं ंहोता और सुखों र्ें (उनसे भोगजतय सुख लेने की) कार्ना से रदहत होता है, जजससे राग, भय और क्रोध दूरू हो गये हैं, र्ह जस्थतप्रज्ञ र्ुतन है।

यः सर्त्रवानमभस्नेहस्तत्तत्प्राप्य िुभािुभर् ्।
नामभनतदतत न द्र्ेजष्ट तस्य प्रज्ञा प्रततजष्ठता ।।५७।।

५७. जो चाहे िुभ प्राप्त हो या अिुभ सभी र्ें अनुरागरदहत रहता है, िुभ के प्राप्त होने पर हवषतव नहींहोता और अिुभ से घृिा नहीं ंकरता उसकी बुद्धध ज्ञान र्ें दृढ़प्रततष्ठ होती है।

यदा संहरतेचायंकूर्ो ऽङ्गानीर् सर्वः ।
इजतद्रयािीजतद्रयाथेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रततजष्ठता ।।५८ ।।

५८. कछुआ जैसे अपनेअंगों को अपने खोल र्ें खींच लेता है, इस ही प्रकार जो र्नुष्य अपनी इजतद्रयों को इजतद्रयों के वर्षय से हटा लेता है तब उसकी बुद्धध दृढ़प्रततष्ठ होती है।

.....बुद्धध की किया की दो समभावनाएँ िैं। या तो वि अपना ननमनगामी और बहिमुखि रुख अपना कर प्रकृनत के तीनों गुणों की लीला में इजन्रयानुभवों और संकल्प की नछतरी िुई कियाओं में संलग्न रि सकती िै, या यि अपना ऊध्वगिामी और अंतमुखि रुख अपनाकर, अब और अधधक प्रकृनत के ववकषणिों के अधीन न रिकर, प्रशांत सचेतन आममा की जस्थरता और अववकार अडिग ववशुद्धता में धचरशांनत और समता की ओर गनत कर

सकती ि ै। पिले ववकल्प में आममननष्ठ आंतररक सर्त्ा इजन्रयों के ववषयों के अधीन रिती ि ै, वि वस्तुओंके बाह्य संपकि में ि ी ननवास करती ि ै।... अत:, जस्थर एकाग्रता तथा अध्यवसाय के साथ िमें बुद्धध की ऊध्वमिुख और अंतमुखि अशभमुखता को ि ो दृढ़प्रनतष्ठ भाव, व्यवसाय, से अपनाना ि ोगा; िमें इसे दृढ़तापूवकि पुरुष के प्रशांत आममज्ञान में जस्थत करना ि ोगा। इसमें नन:संदेि ि ी सबसे पिली गनत ि ोनी चाहिए कामना से छुटकारा पाना जो कक दु:खों और कष्टों का संपूण िमूल ि ै; और कामना से छुटकारा पाने के शलये कामना के मूलकारण का, अथाित् ् ववषयों को पाने और भोगने के शलए इजन्रयों के बहिगमिन का, अंत करना ि ोगा। जब वे इस प्रकार बािर दौ ड़ने में प्रवृर्त् ि ों तब उन्िें पीछे खींचना ि ोगा, उन्िें उनके ववषयों से ि टा लेना ि ोगा, जैसे कछुआ अपनेअंगों को अपने खोल के अन्दर खींच लेता ि ै, वैसे ि ी इजन्रयों को उनके मूल स्रोत मन में लाकर शांत करना ि ोगा, और मन को बुद्धध में और बुद्धध को आममा एवं उसके आममज्ञान में लाकर शांत करना ि ोगा जो कक प्रकृनत के कम िको देखता ि ै, उसमें फाँसता निीं; ं कयोंकक ऐसी ककसी चीज की वि कामना निीं ंकरता जो ववषयाधश्रत जीवन प्रदान कर सकता ि ै।

वर्षया वर्तनर्ततवतेतनराहारस्य देदहनः ।

रसरि् ंरसोऽप्यस्य परं दृष्ट्र् तनर्ततेव ।।५९।।

५९. वर्षयों का पररत्याग कर देनेर्ाले देही (र्नुष्य) के इजतद्रयों के वर्षय तो दूरू हो जाते हैं ककंतु रस्यंवर्षयों रें अनुराग, रस, बचा रहता है; परर्ात्र्ा के दिनव कर लेने पर रस भी दूरू हो जाता है।

यिा ँककसी प्रकार की भ्ांनत न उठ पाए उससे बचनेके शलए तमक्षण ि ी श्रीकृष्ण किते िैं कक म ैंककसी बाह्य वैराग्य या ववषयों के भौनतक संन्यास की शशक्षा निीं ंदे रिा। आममानुशासन या संयम आहद से मेरा अशभप्राय सांख्यों के संन्यास या कठोर तपजस्वयों के उपवासाहद तप, कायाकलेश या भोजन के मयाग की भी चेष्टा से निीं ि ै, कयोंकक म ैंतो एक आंतररक वैराग्य, कामना के पररमयाग की बात किता िूँ। देिमम शरीरधारी को अपनी देि को ननमय दैहिक कम िकरने के योग्य बनाए रखने के शलये आिार देना ि ोता ि ै; ननरािार ि ोने से देिी ववषयों के साथ अपने दैहिक संबंध को ि टा देता ि ै परंतु इससे उस आममननष्ठ संबंध से पीछा निीं छूटता जो उस संपकि को दु:खद बनाता ि ै। उसमें ववषयों का रस - रागऔर द्वेष जजसके दो पिलूिैं तो बना ि ी रिता ि ै। इसके ववपरीत देिी को, अवश्य ि ी राग-द्वेष से अशलप्त आंतररक रूप से त्रबना कोई कष्ट उठाए बाह्य स्पश िको सि सकनेमें समथ िि ोना चाहिए। अन्यथा ववषय की तो ननवृर्त् ि ो जाती ि ै, **'वर्षया वर्तनर्त्ततवते'**, परन्तु आंतररक ननवृर्त् निीं ि ोती, मन की ननवृर्त् निीं ंि ोती; और इजन्रयाँ मन की (आधश्रत) िैं, आममननष्ठ िैं, इसशलए रस की आंतररक (आममननष्ठ) ननवृर्त् ि ो प्रभुता का एकमात्र वास्तववक लक्षण ि ै। परन्तु ववषयों से इस प्रकार का ननष्काम संपकि, इजन्रयों का इस प्रकार ननशलप्ति प्रयोग कैसे संभव ि ै? यि संभव ि ै परम् ्के दशनि से **'परं दृष्ट्वा''** - परम अथात्ि् आममा, पुरुष - और बुद्धधयोग के द्वारा उसके साथ संपूण िआममननष्ठ सर्त्ा में युकत ि ोने ेसे, एकमव को प्राप्त ि ोने ेसे; कयोंकक वि 'एकननष्ठ' आममा शांत ि ै, अपनिी आनंद से संतुष्ट ि ै, और एक बार यहद िमने अपनेअन्दर रिनेवाले इस परम् ्पुरुष का दशनि कर शलया और अपने मन और संकल्प को उसके ऊपर स्थावपत

कर हदया तो यि द्वन्द्वशून्य आनन्द, इजन्रयों के ववषयों से पैदा िोनेवाले मानशसक सुख और दुःख का स्थान ग्रिण कर सकता िै। यिी मुजकत का सच्चा तरीका िै।

यहद इंहरयों को कामनाओंकी तृजृप्त की ओर खुली छूट दी जाती रिेगी तो कामनाएँ कभी समाप्त निीं िोंगी, और यहद इंहरयों पर ननग्रि, या उनका दमन कर भी शलया जाए तो भी मन में तो उनके प्रनत शलप्तता िोती िै इसशलए वि शांत निीं िोगा, और इस कारण उनकी तृजृप्त की ओर सदा िी दबाव बना रिेगा जजससे ल़िते-ल़िते व्यजकत की शजकत क्षीण िो जाएगी। यि िै ननग्रि और संयम में अन्तर। ननग्रि का अथ िै कक उन कायों का िठपूवकि दमन करना जबकक संयम का अथ िै कक न तो उन कायों को करना िी, बजल्क उनके ववषय में कोई ववचार तक निींआने देना। कयोंकक यहद मन में उसका ववचार तो आए पर िम उसकी तृजृप्त का दमन करें तो अन्दर िी अन्दर एक संघष िउमपन्न िो जाएगा और िमारी शजकत क्षीण िोने लगेगी। इसीशलए गीता संयम को श्रेष्ठ बताती िै।

िालाकाँक, जब श्रीमाताजी से पूछा गया कक संयम कैसे प्राप्त करें तो श्रीमाताजी ने ननग्रि करने के द्वारा िी उस तक पिुँचने का रास्ता बताया। ननग्रि को पूरे बल के साथ स्थावपत करो, पर उसी पर मत रुको, तब कफर संयम भी आ जायेगा। गीता के अनुसार संयम तब आता िै जब िम परम् प्रभु को देख लेते िैं, और कफर केवल देखने की िी बात निीं, व्यजकत को उसमें आनन्द आने लगता िै। उस आनन्द के सामने अन्य सभी ननमनतर सुख तुच्छ प्रतीत िोतेिैं। तब कफर व्यजकत केवल भगवान् के काय िेतु िी शरीर को बनाए रखनेके शलए भोजन आहद तथा अन्य सब कियाएँ करता िै, अंतर में प्रभु का जो स्पश िै उसकी अशभव्यजकत के शलए वि ये सब काय ि करता िै, अन्यथा उसे इन कामों में कोई रुधच निीं रि जाती और कफर वि इजन्रयों के सुख के साधन के रूप में उन्िें उपयोग में निीं लेता। अभी तो िम इजन्रयों को सुख के साधन के रूप में काम में लेते िैं जबकक इनमें अपने आप में सुख की कोई संभावना िी निींिै, बजल्क इनकी तुजष्ट तो बाद ये व्यजकत के मुँि में बुरा स्वाद छो़िती िैं।

श्रीमाताजी किती िैं कक सामान्य िम तो यि िै कक पिले मन से उस कामना को ननकाल दें और कफर उस कामना के वशीभूत िो कम िी भी न करें। परंतु यि तरीका अधधकांशतः सफल निीं िो पाता। कयोंकक ऐसी प्राखणक शजकतयाँ िैं जो व्यजकत को इन चीजों को करनेके शलए बाध्य करेंगी। परंतुजब उनके प्रलोभनों के बाद भी उन्िें संतुष्ट निीं ककया जाता तब कफर धीरे-धीरे वे उसमें अपनी रुधच छो़ि देती िैं, और उसके पीछे अपना समय और ऊजाि नष्ट निीं करतीं। यि एक मनोवैज्ञाननक अनुभव की बात िै। िालाकाँक यि काम िै बिुत कहठन। श्रीमाँ ने यि एक तरीका बताया िै, इसके अलावा और तरीके भी िो सकतेिैं। परन्तुयि ाँसबसे मित्त्वपूण िबात यि िै कक यहद व्यजकत इजन्रयों को अपनेतरीके से काम करने देता िै तो उनकी पक़ि उस पर बढ़ती जाएगी, इसशलए इनकी ननरंकुश िोिा को रोकना िी िोगा। अतः प्रथम आवश्यकता िै कक इंहरयों के वशीभूत िोकर कम िकरें िी निीं।

यततो ह्यवप कौततेय पुरुषस्य वर्पजश्चतः ।
इजतद्रयाणि प्रर्ाथीतन हरजतत प्रसभं र्नः ।।६०।।

६०. हे कौततेय! आत्र्संयर् के मलये सच्चेहृदय से प्रयत्न करनेर्ाले ज्ञानी, वर्ेकी पुरुष के भी र्न को उग्र हठर्ाली इजतद्रयााँ बलपूर्कव हर लेती हैं।

ननश्चय िी आमम-संयम, आमम-ननयंत्रण कभी सरल निीं िोता। सभी बुद्धधमान मनुष्य इस बात को जानते िैं कक उर्न्ें थििा-बिुत संयम करना चाहिए, अपनी इजन्रयों को वश में करने केी सलािा से अधधक सामान्य और कोई चीज निीं िै; परन्तु सामान्यतः यि उपदेश अपूण ि रूप से िी हदया जाता िै और इसका पालन भी अपूण ि रूप से और वि भी बिुत िी सीशमत और अपयाप्ति मात्रा में ककया जाता िै। कफर भी, पूण िआमम-प्रभुमव की प्राजप्त
के शलए घोर पररश्रम करनेवाला ज्ञानी, स्पष्टदृजष्ट-संपन्न, बुद्धधमान् और वववेकी पुरुष भी अपने-आप को इजन्रयों द्वारा वशवती कर के बिा शलया गया पाता िै। ऐसा इसशलए िोता िै कयोंकक मन स्वभावतः िी अपनेको इजन्रयों के वशीभूत कर देता िै, वि आंतररक रस के साथ इजन्रय-ववषयों को देखता िै, उनका धचंतंन या ववचार करता िै और उनको बुद्धध के शलए ववचारों की व्यस्तता का और संकल्प के शलये तीव्र रुधच का ववषय बना लेता िै।

तातन सर्ाणवि संयम्य युक्त आसीत र्त्परः ।
र्िे देह यस्येजतद्रयाणि तस्य प्रज्ञा प्रततजष्ठता ॥६१।।

६१. उन सर्त्त इजतद्रयों को संयत कर के, र्त्परायि होकर योग र्ें दृढ़तापूर्कव जस्थत हो; क्योंकक जजसकी इंदद्रया ाँर्ी्भूत होती हैं उसकी िांत और वर्ेककील बुद्धध अपने उधचत स्थान पर दृढ़तापूर्कव प्रततजष्ठत होती है।

इसशलए ऐसा न िोने देना चाहिए और सब इजन्रयों को पूरी तरि वश में ले आना चाहिए, कयोंकक इजन्रयों

के पूण िसंयम से िी ववज्ञ और जस्थर बुद्धध अपनेस्थान में दृढ़प्रनतष्ठ िो सकती िै।

केवल बुद्धध के अपनेप्रयमन से िी, केवल एक मानशसक संयम से िी यि काय िपूण िरूप से शसद्ध निीं िो सकता; यि केवल ऐसी वस्तु के साथ युकत िोने से िी िो सकता िै जो बुद्धध से ऊाँची िो और जस्थरता तथा आमम-प्रभुता जजसमें स्वभावशसद्ध िो। यि योग अपनी सफलता तक केवल समस्त सर्त्ा को भगवान् के प्रनत - श्रीकृष्ण कित े िैं 'मेरी ओर, ममपरः' - ननवेहदत करने, उमसग िकरनेऔर समवपति करने से िी पिुाँच सकता िै; कयोंकक 'मुजकतदाता' श्रीभगवान् िमारे अन्दर िैं, परंतु वे िमारा मन या िमारी बुद्धध या िमारी अपनी व्यजकतगत इच्छा निीं िैं, ये तो केवल उपकरण िैं। िमें, जैसा कक गीता के अंत में बताया गया िै, सवभािव से ईश्वर की िी शरण में जाना िोगा। और इसके शलए पिले उर्न्ें अपनी संपूण िसर्त्ा का ध्येय बनाना िोगा और उनसे आमम-संबंध बनाये रखना िोगा। 'सवथिा ममपरायण िोकर, मुझमें योगयुकत िोकर जस्थत रि' इस अंश का यिी अशभप्राय िै। पर अभी यि अमयंत क्षीण संकेतमात्र िै, जो गीता की प्रनतपादनशैली के अनुरूप िी िै। **'युक्त आसीत र्त्परः'** इन तीन शब्दों में वि परम रिस्य बीज-रूप से भर हदया गया िै जजसका ववस्तार आगे िोना िै।

ये तीन शब्द िी अंनतम चीज िैं और सारी समस्याओं का समाधान भी िैं। इजन्रयााँ अच्छे से अच्छे व्यजकत की बुद्धध को िर लेती िैं और वि भी कुछ निींकर पाता। िम मन को बुद्धध के दृजष्टकोण से संयम करने े का प्रयमन करते िैं परन्तु बुद्धध भी अपने-आप में सशकत निीं ंिै। इजन्रयों को संयम करने ेके शलए एक ऐसी चीज से जुिना िोगा जो सिज रूप से इन सब चीजों से ऊपर िै। परंतु उसके साथ युकत िोना िमारे शलए सिज निीं िै। परमाममा की कृपा से तो यि तमकाल शसद्ध िो सकता िै अन्यथा उसके शलए िमें प्रयमन िी करना िोगा। इसके शलए एक िी सूत्र िै – **'युक्त आसीत त्पर:'** - मेरे परायण िोकर, मेरे से जुिकर कम िकरो। ये चीजें एक क्षण में तो संशसद्ध निीं ंिो सकतीं परन्तु इनके शलए िमें प्रयमन तो करना िी िोगा और जब ये संशसद्ध िो जायें तब कफर प्रयास समाप्त। यहद िम 'उससे' जुि गये तो िम 'उसके' शलए स्वतः िी कम िकरेंगे। कफर यि समस्या िी निीं रिेगी। यिी अंनतम रिस्य िै। परंतु तीसरे अध्याय में गीता किती िै कक जब तक यि युकतता की जस्थनत निीं ंआ जाती तब तक 'मेरे परायण िोकर कम िकर।' श्रीमाताजी की प्रसन्नता के शलए जब िम कम िकरते िों तब िमारा रास्ता खुल जाता िै। कफर यांत्रत्रक प्रकृनत में भले िी दूसूरे काम चालूरिें परन्तु कामनाओंके दृजष्टकोण से तब िमारे जीवन में काय िनिींिोते। जब िम उनसे जुिे िों तो िमें सिज रूप से यि पता लगता िै कक वे िमसे कया चािती िैं और सिज रूप से िम सब कामों को करते िैं। दूसूरे को भले िी वे कम िकामना के वशीभूत लगें, परंतु ु वास्तव में ऐसा निीं ंिोता। इसशलए सभी कुछ की यिी कुंजी िै कक 'मेरे परायण िोकर कम िकर।'

ध्यायतो वर्षयातपुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।

सङ्गात्सञ्जायते कार्: कार्ात्क्रोधोऽमभजायते ॥६२।।

६२. इजतद्रयों के वर्षयों का प्रगाढ़ रुधच से ध्यान करने र्ाले र्नुष्ट्य की उन वर्षयों र्ें आसजक्त हो जाती है; आसजक्त से कार्ना उत्पतन हो जाती है; कार्ना से क्रोध उत्पतन हो जाता है।

क्रोधाद्भर्तत संर्ोहः संर्ोहात्स्र्ृतर्वभ्रर्: ।

स्र्ृतभ्रंशाद् बुद्धधनाशो बुद्धधनाशात्प्रणश्यतत ।।६३।।

६३. क्रोध से र्ोह उत्पतन होता है, र्ोह से स्र्ृतत वर्भ्रमर्त हो जाती है; स्र्ृतत के भ्रष्ट्ट होने ेसे बुद्धध का नाश हो जाता है और बुद्धध के नष्ट्ट होने ेसे र्ह (र्नुष्ट्य) नष्ट्ट हो जाता है।

रागद्वेषवर्युक्तैस्तु वर्षयातनजतद्रयैश्ररन् ्।

आत्र्वश्यैवर्धेवयात्र्ा प्रसादर्धधगच्छतत ।।६४।।

६४. परंतु (राग और द्वेष से र्ुक्त) आत्र्-संयमर्त र्नुष्ट्य, आकषिव-वर्कषिव से र्ुक्त हुई तथा आत्र्ा के र्शीभूत हुई इजतद्रयों के द्र्ारा वर्षयों के बीच वर्चरि करता हुआ परर्ानंद की अर्स्था को प्राप्त करता है।

प्रसादे सर्दुव:ुखानां ंहातनरस्योपजायते ।

प्रसतनचेतसो ह्याशु ुबुद्धधः पयर्वततष्ठते ।।६५।।

६५. उस आत्रप्रसाद (परर्ानंद) र्ें जीर् के सभी दु:खों का अंत हो जाता है; उस आत्रप्रसाद युक्त व्यजक्त र्ें उसकी बुद्धध िीघ्र ही आत्रप्रततष्ठ हो जाती है।

वि आममप्रसाद जीवन के परम सुख का स्रोत िै; प्रसादयुकत जीव को समस्त दु:ख स्पश िकरने ेकी सामथ्य िखोता जाता िै; बुद्धध शीघ्र िी आममा को शांनत में प्रनतजष्ठत िो जाती िै; दु:ख कष्ट नष्ट िो जाता िै। इसी आममावस्था और आममज्ञान में बुद्धध की जस्थर, ननष्काम, शोकरहित दृढ़जस्थनत को गीता समाधध की संज्ञा देती िै।

नाजस्त बुद्धधरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भार्ना ।
न चाभार्यतः िाजततरिततस्य कुतः सुखर् ्।।६६।।

६६. जो र्नुष्य (तनष्कार्योग से) युक्त नहीं ंहै उसके बुद्धध नहीं ंहोती, धचंतंन की एकाग्रता नहीं ंहोती; एकाग्रता-रदहत को िांतत नहीं ंमर्लती, और अिांत को सुख कैसे हो सकता है?

इजतद्रयािांदह चरतांयतर्नोऽनु वर्धीयते।
तदस्य हरतत प्रज्ञांर्ायुनार्वमर्ाम्भमस ।।६७।।
६७. क्योंकक वर्षयों के ग्रहि और भोग र्ें वर्चरती हुई इजतद्रयों के पीछे जो र्न अनुसरि करता है र्ह र्न र्नुष्य की बुद्धध को इस प्रकार वर्षयों र्ें खींच कर ले जाता है जजस प्रकार र्ायु नौका को जल के ऊपर बहा कर ले जाती है।

....इसमें इजन्रयााँववषयों से उर्त्ेजजत िोकर अशांत, बुिधा भीषण ववक्षोभ उमपन्न करती िैं, उन ववषयों को िधथयाने और उन्िें भोगनेके शलये एक प्रबल अथवा ियााँतक कक अननयंत्रत अंधाधुंध बहिमुखिी गनत करती िैं और वे अपने साथ इजन्रय-मन को वैसे िी खींच ले जाती िैं, 'जैसे समुर में वायु नौका को खींच ले जाती िै; कफर इजन्रयों की इस बहिमुखि गनत द्वारा जगाये िुए भावावेगों, आवेशों, लालसाओं और पे्रेरणाओं से पराभूत िुआ मन, उसी प्रकार, बुद्धध को खींच ले जाता िै जजससे बुद्धध अपना जस्थर वववेक और प्रभुता खो बैठती िै।

तस्र्ाद्यस्य र्हाबाहो तनगृहीतातन सर्वशः ।
इजतद्रयािीजतद्रयाथेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रततजष्ठता ।।६८।।
६८. इसमलये हे र्हाबाहो अजुनव! जजसने ेइजतद्रयों की सब ओर से उनके वर्षयों के प्रतत उत्तेजना का तनग्रह कर ददया है, उसकी बुद्धध (आत्र्ा र्ें) दृढ़प्रततष्ठ होती है।

या तनिा सर्वभूतानां ंतस्यां जागतत वसंयर्ी ।
यस्यांजाग्रतत भूतातन सा तनिा पश्यतो र्ुनेः ॥६९॥

६९. जो सभी प्राणियों के मलये रात्रत्र है उसर्ें आत्र्संयर्ी र्नुष्य जागता है; जजसर्ें सभी प्रिाी जागते हैं र्ह आत्र्दर्शी र्ुतन के मलये रात्रत्र होती है।

वि भी उन्िीं तिथ्यों को देखता िै जजन्िें िम देखते िैं, ककन्तु वि **'कृत्स्नवर्त्'** ् (समग्र समय को जानने वाले) की उच्चतर दृजष्ट से देखता िै जबकक िम सवथिा अपनेआंशशक ज्ञान, **'अकृत्स्नवर्त्'** ्, की अमयधधक सीशमत

मानशसकता से देखते िैं, जो कक एक अज्ञान िी िै। िम जजस स्वाधीनता पर गव िकरते िैं वि उसके शलए बंधन

िै।... जजसे िम अपनी साधारण मनोवृवृर्त् के अनुसार स्वाधीन इच्छा किते िैं, और ऐसा किने ेमें एक सीशमत िद तक औधचमय भी रखते िैं, वि उस योगी की दृजष्ट में, जो ऊपर उठ चुका िै और जजसके शलए िमारी रात तो हदन िै और िमारा हदन रात िै, यि कतई स्वाधीन इच्छा नि िं िै, अवपतु प्रकृतत के गुणों की अधीनता िै।

आपूर्यमार्णर्चलप्रततष्ठं सर्द्ुरर्ापः प्रवर्शजतत र्द्रत ्।
तद्र्त्कार्ा यं प्रवर्शजतत सर्े स िाजततर्ाप्नोतत न कार्कार्ी ।।७०।।

७०. जजस प्रकार सदा भरे जाते रहने ेपर भी सदा तनश्चल, (अपनी र्यादवा र्ें) जस्थर रहने र्ाले सर्ुद्र र्ें जल प्रर्ेश करते हैं उसी प्रकार जजसर्ें सर्स्त कार्नाएँ प्रर्ेश करती हैं र्ह शांतत को प्राप्त होता है, र्ह नहींजो काम्य पदाथों की कार्ना करनेर्ाला है।

वर्हाय कार्ातयः सर्ातवपुर्ांश्रचरतत तनःस्पृहः ।
तनर्र्वो तनरहंकारः स िाजततर्धधगच्छतत ।।७१।।

७१. जो र्नुष्य सर्स्त कार्नाओं का पररत्याग कर के 'र्'ैं या 'र्ेरे' की भार्ना से रदहत, स्पृहा-लालसा से रदहत होकर कर्वकरता है, व्यर्हार करता है र्ह र्नुष्य शांतत को प्राप्त होता है।

एषा ब्राह्मी जस्थततः पाथ वनैनां प्राप्य वर्ुह्यतत ।
जस्थत्र्ास्यार्ततकालेऽवप ब्रह्र्तनर्ावर्ण र्ृच्छतत ॥७२॥

७२. हे पाथ व! यह ब्राह्मी जस्थतत (ब्रह्र् र्ें दृढ़ प्रततष्ठा) है। इस अर्स्था को प्राप्त कर लेनेपर र्नुष्य और अधधक वर्ोदहत नहीं होता; अपने जीर्न के अंततर् सर्य र्ें भी इस अर्स्था र्ें जस्थत हो जाने पर र्नुष्य ब्रह्र् तनर्ावर्ण को प्राप्त हो जाता है।

यि ब्रह्मननविाण बौद्धों का अभावाममक आमम-ववध्वंस निीं, अवपतु पृथृक् वैयजकतक आममा का उस एक अनंत ननव्यजिकतक सर्त्ा के ववराट् समय में मिान् ्ननमज्जन या तल्लीन िोना िै।

मिारे जीवन के मानदण्ड और मूल्य िी ववपरीत िो जाते िैं। जो िमें हदन हदखता िै वि आममसंयमी मनुष्य के शलए रात्रत्र िोती िै और िमें जो रात हदखती िै वि उसे हदन हदखाई देता िै। रात और हदन का अथ िियि िै

कक जिाँमें लगता िै सब काम बुित िी अच्छा िो रिा िै वि उसके शलए अंधकार िो सकता िै और जिाँमि देखते िैं कक बुित बुरा िो गया वि उसके शलए बुित अनुकूल समय िो सकता िै। कयोंकक उसका दृजष्टकोण त्रबल्कुल बदल जाता िै और जजसे िम सफलता किते िैं वि उसके शलए असफलता िै, और जजसे िम असफलता किते िैं वि उसके शलए सफलता िै। परन्तु इस सबसे िमें यि अथ िनिीं ंलगा लेना चाहिए कक गीता में वि योग बता हदया गया िै जजससे कक यि काम शसद्ध िो सकता िै। यि तो केवल एक व्यापक धचत्रण ककया जा रिा िै कक ऐसी-ऐसी चीजें िोनी चाहिये। परंतु ये िम कैसे करेंगे वि तो अब शुरू िोगा। इस िम में पिले ननष्काम कम िबताएँगे। परंतु शुरू में तो ननष्काम कम ििो िी निीं ंसकते और न िी यि पता लगता कक कतव्यि-अकर्त्व्यि कया िै। इसशलए व्यजकत यज्ञ रूप से कम िकरना आरमभ करता तो िै परन्तु वि यज्ञ पिले तामशसक िोता िै, कफर राजशसक और कफर साजत्त्वक। व्यजकत श्रीमाताजी की प्रसन्नता के शलए भी यहद कम िकर रिा िो तब भी शुरू में उनमें शमलावट तो रिती िी िै। इस प्रकार यज्ञ का आरोिण चलता िै।

इस प्रकार दूसूरा अध्याय 'सांख्ययोग' सराप्त होता है।

तीसरा अध्याय

I.कमिऔरयज्ञ

बुद्धधयोग तथा ब्राह्मी जस्थनत में उसकी पररसमाजप्त, जो गीता के द्ववतीय अध्याय के अंनतम भाग का ववषय िै, उसमें गीता की बुित कुछ शशक्षा बीज-रूप में आ गयी िै इसका ननष्काम कम,ि सममव, बाह्य संन्यास का वजनि और भगवद्भजकत, ये सभी शसद्धांत इसमें आ गये िैं। परन्तु अभी ये सब बुित िी अल्प और अस्पष्ट रूप में िैं। जजस बात पर अभी तक सबसे अधधक बल हदया गया िै वि िै मानव कियाओं के सामान्य िेतु, कामना, से इच्छाशजकत को पीछे खींच लेना तथा आवेशों और अज्ञान के साथ इंहरयसुख के पीछे दौनेवाले ववचार और संकल्पमय उसके सामान्य प्राकृत स्वभाव से और अनेक शाखा-प्रशाखाओं से युकत संतप्त ववचारों और इच्छाओं में भटकते रिनेके उसके अभ्यास से मनुष्य की बुद्धध को िटा देना और ब्राह्मी जस्थनत की ननष्काम जस्थर एकता और ननववकािर प्रशाजन्त में पिुँच जाना। इतना अजुनि ने समझ शलया िै। वि इस सब से अपररधचत निीं िै; कयोंकक उस समय की प्रचशलत शशक्षा का यिी सार था जो मनुष्य को शसद्धध प्राप्त करनेके शलये ज्ञान का माग ितथा

जीवन और कम िसे संन्यास का माग िहदखा देता था। बुद्धध का इजन्रयबोध से, ववषय-वासनाओंसे तथा मानव-कम िसे िटकर उस परम् ्में, उस उच्चतम, एकमेवाद्ववतीय अकर्ताि पुरुष में, उस अचल ननराकार ब्रह्म की ओर अशभमुख िोना िी ज्ञान का सनातन बीज ि।ै यिााँ कमों के शलये कोई स्थान निीं, कयोंकक कम िअज्ञान से संबद्ध िोतेिैं; कम िज्ञान का ठीक ववलोम ि;ै इसका बीज ि ैकामना और उसका फल ि ैबंधन। यिी कट्टर दाशननिक मत िैऔर श्रीकृष्ण भी इसे सवथिा स्वीकार करते प्रतीत िोते िैं, जब वे किते िैं कक कम िबुद्धधयोग की अपेक्षा अमयधधक ननमन श्रेणी के िोते िैं। और कफर भी योग के अंग के रूप में कमों पर बल हदया जाता ि;ै इस तरि इस शशक्षा में एक मूलगत असंगतता प्रतीत िोती ि।ै इतना िी निीं;ं कयोंकक ननःसंदेि (ज्ञान की अवस्था में भी) कुछ काल तक ककसी प्रकार का कोई कम िबना रि सकता ि,ै ऐसा कम िजो अल्पतम तथा अमयंत ननरापद प्रकार का िो, पर यिााँ जो कम िबताया जा रिा ि ैवि तो ज्ञान के, सौमयता के और स्वांतःसुखी जीव की अचल शाजन्त के सवथिा ववरुद्ध ि,ै यि तो एक ऐसा कम िि ैजो भयानक, यिााँतक कक राक्षसी कम िि,ै रकतरंजजत संघष िि,ै एक ननममि संग्राम ि,ै एक दैमयाकार सामूहिक नरसंिार ि।ै कफर भी इसी कम िका यिााँआदेश ककया जा रिा ि ैऔर कफर इस कम िके औधचमय का समथनि ककया जा रिा ि ैअंतःस्थ शाजन्त और ननष्काम समता तथा ब्राह्मी जस्थनत की शशक्षा से! यि ऐसा ववरोधाभास ि ैजजसका अभी समाधान निीं ंिुआ ि।ै

अजुनव उराच

जयायसी चेत्करि्वस्ते र्ता बुद्धधजनवादवन ।
तजत्कं कर्णवि घोरे रां तनयोजयमस किर् ।। १।।

१. अजुनव ने कहाः हे जनादवन ! यदद कर्ााँ की अपेक्षा बुद्धधयोग या ज्ञान को आप श्रेष्ठ र्ानतेहो तो हे किर्! इस भीषि कर् वर्ें आप रु्झेक्यों तनयुक्त करते हो।

व्यामर्श्रेररे् र्ाक्येन बुद्धधं ंर्ोहयसीर् रे् ।
तदेकं र्द तनजश्रत्य येन श्रेयोऽहर्ाप्नुयार् ्।। २॥

२. मर्ले-जुले और जदटल र्चन से आप रे्री बुद्धध को र्ोदहत (संभ्रातत) कर रहे हो; जजससे र् ैंअपनेपरर् कल्याि को प्राप्त कर सकूाँ उस एक ही बात को तनजश्चत रूप रे्ं कदहये।

अजुनि शशकायत करता ि ैकक उसे परस्पर ववरोधी और भ्शमत करने ेवाली शशक्षा दी गई ि,ै ऐसा कोई स्पष्ट और सुननजश्चत सीधा माग िनिीं हदखाया गया जजससे मनुष्य की बुद्धध सीधे प्रभावी रूप से परम कल्याण तक पिुाँच जाए। इसी आपवर्त् का उर्त्र देनेमें गीता तुरंत िी अपने सुननजश्चत और अलंघनीय कम–िशसद्धांत का अधधक स्पष्ट प्रनतपादन आरमभ करती ि।ै

श्रीभगर्ान् ्उर्ाच

लोकेऽजस्तद्वर्वधा तनष्ठा पुरा प्रोक्ता र्यानघ ।

ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानांकर्यवोगेन योधगनार् ्।। ३॥

३. श्रीभगरान् ्ने कहाः हे अनघ (तनष्पाप) अजुनव ! इस लोक र्ें नैं े(ब्राह्मी जस्थतत र्ें प्ररर्ें करनेके मलए) द्वर्वध तनष्ठा और साधन र्ाग वपूर् वकाल र्ें कहे हैं; सांख्यों का ज्ञानयोग के द्वारा और योधगयों का कर्यवोग के द्वारा।

श्रीगुरु सवप्रिथम मोक्ष के उन दो साधनों में भेद करते िैं जजन पर इस लोक में मनुष्य अलग-अलग ध्यान दे सकते िैं, एक िै ज्ञानयोग और दूसूरा िै कमयिोग। साधारण मान्यता ऐसी िै कक ज्ञानयोग कमों को मुजकत का बाधक किकर मयाग देता िै और कमयिोग इनको मुजकत का साधन मानकर स्वीकार करता िै। वे ेअभी इन दोनों के संलयन पर, इन दोनों का ववभाजन करनेवाले ववचार में सामंजस्य स्थावपत करने पर बिुत अधधक बल निीं दे रिे िैं, अवपतुयि दशातिे िुए आरमभ करते िैं कक सांख्यों का संन्यास, भौनतक (कम)ि संन्यास न तो एकमात्र मोक्ष-माग िीि और न कमयिोग से उत्म िी िै। नैष्कमय िअथात्िकमि–रहित शान्त शून्यता अवश्य िी वि अवस्था िै जो पुरुष को प्राप्त करनी िै; कयोंकक कम िप्रकृनत के द्वारा िोता िै और पुरुष को सत्ा की कमण्यिताओं में शलप्त िोने की अवस्था से ऊपर उठकर उस शान्त कमि–रहित अवस्था और सम-जस्थनत में पिुाँचना िोगा जिा ाँसे वि प्रकृनत के कमों का अवलोकन तो कर सके, पर उनसे प्रभाववत न िो। यिी वास्तव में पुरुष के नैष्कमय िका अशभप्राय िै, न कक प्रकृनत के कम िका ववराम। इसशलए यि सोचना एक भूल िै कक ककसी प्रकार का कम िन करने से िी नैष्कमय ि अवस्था को पाया और भोगा जा सकता िै। मात्र कमों का संन्यास मुजकत का पयाप्ति, यिााँतक कक सवथिा उधचत साधन भी निीं िै।

न कर्वार्नारम्भात्रैष्ट्कम्यं पुरुषोऽश्नुते।

न च संतयसनादेर् मसद्धधं ंसर्धधगच्छतत ।। ४ ।।

४. र्नुष्य कर्ाँ के पररहार से तनष्कर्तवा को प्राप्त नहीं ंकरता और केर्ल (कर्ों का) संतयास कर देनेर्ात्र से अपनी मसद्धध को नहीं प्राप्त करता है।

पर यि (कमों का संन्यास) अन्य साधनों में से कम-से-कम एक आवश्यक, अननवाय िऔर अलंघनीय साधन तो िोगा िी? कयोंकक यहद प्रकृनत के कम िजारी रिें तो पुरुष के शलये यि कैसे संभव िै कक वि उनमें शलप्त न िो? यि कैसे संभव िै कक म ैंयुद्ध भी करूाँ और अपनेअन्दर यि न समझूाँ, यि न अनुभव करूाँ कक म,ैं अमुक व्यजकत युद्ध कर रिा िै, न तो ववजय-लाभ की कामना करूाँ और न िारनेपर अन्दर दु:खी िी िोऊाँ? यिी सांख्यों की शशक्षा िै कक जो मनुष्य प्रकृनत की कियाओं में संलग्न िोता िै उसकी बुद्धध अिंकार, अज्ञान और कामना में फाँस जाती िै और इसशलए वि कम िमें प्रवृत्् िोती िै; इसके ववपरीत, बुद्धध यहद ननवृत्् िो जाए, पीछे िट जाए, तो इच्छा और अज्ञान की समाजप्त के साथ कम िका भी अवश्य िी अंत िो जाता िै। इसशलए मोक्षमाग िकी ओर गनत में संसार और कम िका पररमयाग एक आवश्यक अंग, अपररिाय िअवस्था और अननवाय िअंनतम साधन िै। उस समय

की ववचार-पद्धनत का यि आक्षेप भगवान् ्गुरु तुरंत िी पूवाभिास कर लेते िैं - यद्यवप अजुनि के मुख से यि बात स्पष्टतः प्रकट निीं िुई िै, परंतु यि उसके मन में िै जैसा कक उसकी बाद की बातचीत से झलकता िै। वे किते िैं कक, निीं, इस प्रकार के संन्यास का अननवाय ििोना तो दूरू रिा, ऐसे संन्यास का िोना िी संभव निीं ंिै।

न दह कजश्र्क्षर्वप जातु ततष्ठत्यकर्कृवत् ्।
कायतेव ह्यरि: कर् वसर्:व प्रकृततजैगुिवः ।। ५।।
५. क्योंकक कोई भी पुरुष कभी क्षिभर के मलये भी त्रबना कर् वकक्ये नहीं रहता; प्रत्येक र्नुष्य प्रकृतत से उत्पतन गुिों द्रारा वर्र्ा हुआ कर् वकरने ेर्ं प्रर्ृत्त ककया जाता है।

इस मिान् ्ववश्वकम िका और ववश्वप्रकृनत की शाश्वत् ्कियाशीलता और शजकत का यि स्पष्ट और प्रबल अनुभव, जजस पर तांत्रत्रक शाकतों ने आगे चलकर बिुत बल हदया और यिााँतक कक प्रकृनत या शजकत को पुरुष से भी श्रेष्ठ बना हदया, गीता की एक बिी िी ववलक्षण ववशेषेता िै। यद्यवप यिा ाँइसका मृदु ्संकेतमात्र िै, कफर भी, इसके ववचार के उन तत्त्वों की शशक्षा के साथ, जजनर्ें िम ईश्वरवादी और भजकतवादी तत्त्व कि सकते िैं, शमलकर यि महिमा इतनी पयाप्ति सशकत िो गयी कक योगमाग िमें कम िकी सकियता या गनतशीलता को लागू कर के प्राचीन दाशननिक वेदांत की ननवृवृत्र्परक वृवृर्् का इसमें इतने प्रभावी रूप से रूप-पररवतनि कर हदया गया िै। प्राकृनतक जगत् ्में दिेधारी मनुष्य एक क्षण के शलए, एक पल के शलए भी कम िसे मुकत निीं ंिो सकता; यिााँ (पृथूवी पर) उसका अजस्तमवमात्र िी एक कम ििै, संपूण िब्रह्माण्ड्ईश्वर का एक कम ििै, केवल जीना भी उसी की एक गनत या किया िै।

मिारा दैहिक जीवन, उसका पालन, उसकी ननरंतरता एक यात्रा िै, एक शरीरयात्रा िै, और कम िके त्रबना वि पूरी निीं िो सकती। परन्तुयहद कदाधचत् ्कोई मनुष्य अपनेशरीर को देख-रेख से वंधचत भी रख सकता िो, यों िी बेकार छिो़ सकता िो, ककसी वृकूष की तरि सदा जस्थर खि़ा रि सकता िो या पमथर-सा अचल बैठा रि सकता िि,'नतष्ठनत' तो भी इस स्थावर या स्थूल अचलता द्वारा भी वि प्रकृनत के िाथ से निींबच सकता; प्रकृनत को कियाओं ंसे उसकी मुजकत निीं ंिो सकती। कयोंकक कम िका अशभप्राय केवल िमारी शारीररक गनतयों (चलना-कफरना आहद) और अन्य कियाओं से िो निीिं, िमारा मानशसक जीवन भी तो एक बिुत बिा जहटल कम ििै, अवपतु चंचला प्रकृनत के कमों का यिी अधधक ववशाल और अधधक मित्त्वपूण िअंग िै - िमारे बाह्य दैहिक (कम)ि का यिी आंतररक कारण और ननयामक िै। इससे कोई लाभ निींिनि वाला यहद िम फलस्वरूप िोनेवाले बाह्य प्रभाव का तो ननग्रि करें पर उसके आंतररक कारण की किया को जारी रखें। इजन्रयों के ववषय िमारे बंधन के केवल सिायक कारण िैं, मन का उन ववषयों पर आग्रि िी इस बंधन का माध्यम और मूल कारण िै।

अजुनि भगवान् ्को किता िै कक एक ओर तो वे उसे शांत बने रिने ेका उपदेश कर रिे िैं और दूसूरी ओर उसे घोर कम िमें लगा रिे िैं। वि शशकायत करता िै कक ये सब तो शमधश्रत बातें िैं। एक ओर वे कछुए का उदिारण देकर बता रिे िैं कक इजन्रयों को बािर जाने से रोकना िोगा, उन पर अंकुश लगाना िोगा और दूसूरी ओर युद्ध की

बात कर रि ि ैं। तो इस प्रकार का घोर कम िशांत भाव से कैसे संभव ि ै? इसशलए अजुनि किता ि ै कक 'आपकी बातें तो बुद्धध को भ्शमत करने वाली ि ैं। यहद आप मानतेि ैं कक बुद्धधयोग श्ेरेष्ठ ि ै तो इस प्रकार के घोर कम िमें लगाने की अपेक्षा मुझे ेउसी की शशक्षा दीजजये। मेरे शलए जो उपयोगी ि ो विी एक ननजश्चत बात बताइये।' तब भगवान् ् किते ि ैं कक आरंभ से ि ी 'मनैं ेदो रास्तेबताए ि ैं। सांख्य-योधगयों का ज्ञानमाग िऔर कमयोिधगयों का कममाग।ि' परंतु दोनों का ि ी तत्त्वतः ननरूपण करने ेके बाद भगवान् ्किते ि ैं कक ये दोनों ि ी माग िकेवल हदखने ेमें ि ी शभन्न प्रतीत ि ोते ि ैं, परंतु जो वास्तव में जानता और समझता ि ै उसके शलए ये एक ि ी ि ैं। सांख्य योग किता ि ै कक सभी कमों का मयाग कर दो। परंतु ुकम िककये त्रबना व्यजकत रि ि ी निीं सकता, चूंकक कम िकेवल शरीर के द्वारा ि ी निीं िोतेअवपतु बुद्धध से की जानेवाली कियाएँ, प्राण की सारी भावनाएँ, आवेग आहद, और यिाँतक कक श्वास-प्रश्वास भी कम िमें ि ी समाहित ि ोतेिैं। पमथर भी प्रमयक्ष या परोक्ष रूप से कम िकरता ि ै। कयोंकक जिाँभी वि ि ोगा विाँवि और जल के बिाव में बाधा उमपन्न करेगा। प्रश्न इतना ि ी ि ै कक कम िकी प्रनतष्ठा कि ाँ ि ै या कफर वे परमाममा के ननयत ककये जाते ि ैं। इसशलए गीता आगे चलकर सांख्य और कम िमें समन्वय साधेगी कक ककस प्रकार ये दोनों केवल हदखने में ि ी शभन्न-शभन्न ि ैं पर वास्तव में एक ि ी ि ैं। बुद्धध योग में व्यजकत बुद्धध के द्वारा कमों का ननयोजन करता ि ै और ननष्काम कम िमें व्यजकत को बुद्धध की सिायता लेनी ि ोगी, अपनेसमपणि की सिायता लेनी ि ोगी। वास्तव में तो व्यजकत को अपने कमों को परमाममा के ननशमत्त् करना आरंभ करना ि ोगा।

परंतु जब बात यि आती ि ै कक 'मेरी प्रसन्नता के ननशमत्त् कम िकरो' तो अजुनि पूछता ि ै कया आप इससे े प्रसन्न ि ोंगे कक 'म ैंइन सबको मार ि ालूँ? कया यि कोई अच्छा काम ि ोगा?' ऐसा प्रश्न स्वभावतः ि ी उठ खड़ा िोता ि ै जजसके उत्र् में भगवान् ्अपने-आप का काल-पुरुष के रूप में प्राकट्य करते ि ैं और किते ि ैं कक 'म ैंइनका ववनाश करने के शलए खड़ा ि ुआ ि ूँ, और तेरे चािनेया निीं चािनेसे कुछ निीं ंि ोगा, तू तो इसका बस ननशमत्त् बन, 'ननशमत्त् मात्रं ंभव सव्यसाधचन्'् कयोंकक इन सबका अन्त ि ोना तो ननजश्चत ि ै। इसशलए चूँकक यि मेरे द्वारा ननधारिरत की गई ननयनत ि ै इसशलए इसके शलए काम करनेमें ि ी मेरी प्रसन्नता ि ै।' अतः चूंकक भगवान् ्वि कम ि करवाना चािते ि ैं इसशलए विी करने ेयोग्य कम िि ै। कयोंकक बुद्धध योग से या अन्य ककसी भी योग के माध्यम से तो इस प्रकार के घोर कम िकी शशक्षा दी ि ी निीं ंजा सकती। यहद व्यजकत परमाममा के शलए जीना चािता ि ै तो परमाममा की जो इच्छा ि ोगी विी कम िवि करना चािेगा। परन्तु इस सारी चीज को गीता शनैः-शनैः ववकशसत करेगी।

कर्ेजतद्रयाणि संयम्य य आस्ते र्नसा स्र्रन् ्।
इजतद्रयाथाजवतर्ूढात्र्ा मर्थ्याचारः स उच्यते ।। ६।।

६. जो र्नुष्य अपनी कर्ेजतद्रयों का संयर् करता है परंतु र्न से वर्षयों का स्र्रि करता और उनर्ें रर्् करता रहता है र्ह र्ूढ़बुद्धध है और उसकी आत्र्संयर् की प्रिाली को मर्थ्याचार कहा जाता है।

संभव ि ै कक कोई व्यजकत कमेजन्रयों का ननयंत्रण कर उन्िें उनकी स्वाभाववक किया करने ेसे रोक दे, परंतु इससे उसका कोई लाभ निीं यहद उसका मन इजन्रयों के ववषयों का ि ी स्मरण और धचंतंन करना जारी रखे। ऐसे

मनुष्य ने तो आमम-संयम की शमथ्या धारणाओंसे स्वयंको भरमाया िुआ िी िै; उसने न तो संयम के उद्देश्य को न उसके मम िको समझा िै, न अपनेअंतःकरण के मूल तत्त्वों को िी समझा िै; इसशलए संयम के उसके सभी तरीके शमथ्या और व्यथ ििैं, शमथ्याचार' िैं। शरीर के कम,ि और मन से िोनेवाले कम िभी अपने-आप में कुछ निीं ंिैं, न वे बंधन िैं न बंधन के मूल कारण िी। मुख्य बात िै प्रकृनत की वि प्रबल शजकत जो मन, प्राण और शरीर के अपनेमिान् ्क्षेत्र में अपनी मनमजी व अपनी ििीा करेगी, उसमें खतरनाक चीज िै उसके त्रत्रगुण की वि शजकत जो बुद्धध को मोहित और भ्शमत कर देती िै और इस तरि आममा को आच्छाहदत कर देती िै। आगे चलकर िम देखेंगे कक कम िऔर मोक्ष के संबंध में गीता का सारा मम िया मित्त्वपूण ित्रबन्दु ुयिी िै। त्रत्रगुण के व्यामिो और व्याकुलता से मुकत िो जाओ, कफर कम िजारी रि सकता िै, कयोंकक वि तो िोता िी रिेगा; कफर वि कम िचािे जजतना भी ववशाल िो, समृद्ध िो या कैसा भी ववकट और भीषण िो, उसका कुछ मित्त्व निीं,ं कयोंकक तब पुरुष को उसकी कोई चीज छू निींसकती, जीव नैष्कमय िकी अवस्था को लाभ कर चुका िोता िै।

परन्तु इस बिृत्र त्रबन्दु ुतक गीता अभी निीं पिुाँची िै। चूंकक मन िी मूल कारण िै, चूंकक अकम िअसंभव िै, तब यिी युजकत-संगत, आवश्यक और उधचत िै कक आंतर और बाह्य कमों को संयशमत रूप से ककया जाए।

यिा ाँयि समस्या बिुी ववकट िै। अवश्य िी गीता में तो इस समस्या के बारे में ववस्तार से वणनि निीं कयोंकक ऐसा ककये जानेकी इससे आशा निींकी जा सकती। त्रत्रगुण कया िैं? उनकी काय िप्रणाली कया िै? ककस प्रकार से िम जो भी कम िकरते िैं उनमें ये व्याप्त रिते िैं? पिला ववषय तो यि िै कक ये िमारी कमेजन्द्रयों को वश में रखते िैं, और िम अपने ववषयों में ववचरण करने से अपनेको रोक निींपाते। यहद व्यजकत ऐसा करता िै तो गीता किती िै कक वि शमथ्याचारी िै। यहद वि सारे समय रिता तो ववषयों के धचंतंन में िै परंतुबािर अशभव्यकत िोने ेसे उन्िें रोकता िै तो वि एक बिुत िी संकटपूण िजस्थनत में िोगा और इससे तो उसकी अपनी सत्ता में िी अन्तवविरोध उमपन्न िो जाएगा। चौबीसों घण्टे उसे इस अन्तवविरोध का सामना करना िोगा। और ऐसे ननग्रि से वि अपनी सारी ऊजाओं को क्षय कर देगा, नष्ट कर देगा।

परंतु इससे श्रेष्ठतर िै संयम। व्यजकत न केवल कामनामय कमों को िी निींकरता अवपतु उससे संबंधधत ककसी प्रकार के ववचार को भी अपनेमन में प्रवेश निींकरने ेदेता। तब कफर सत्ता में कोई अन्तवविरोध निीं ंरिता। जब एक बार व्यजकत को गिराई से समझ में आ जाए कक ककसी काम को निीं ंकरना िै, तो उसे अपने मन को भी उससे मुकत रखनेकी सामथ्य ििोनी चाहिये, कयोंकक यहद ऐसा न ककया जाए तो यि स्वयं का िी ननषेध िोगा। जब भी कोई गलत ऊजाि या स्पंदन से आती चीज पता लग जाए तो अपना द्वार बंद कर लो और किो कक 'भाि में जाओ म ैंयि न तो करने वाला िूाँ न इसके बारे में सोचनेवाला िूाँ।' श्रीमाँ ने यिी समाधान बताया िै।

'मैंनिींसोच सकता ककशमथ्याचारी का अथ िपाखण्डी िोसकता िै।विव्यजकत पाखण्डीकैसेिोगा जोअपनेआपपरइतना

भारी कष्ट या अभाव लाद देता िै? वि भूल में िै और भ्म में िै, 'ववमूढामममा' िै और उसका आचार, अथात् ्आमम-संयम का लोकाचार द्वारा ननयमन का तरीका, शमथ्या और व्यथ ििै- अवश्य िी गीता का यिााँ यिी अशभप्राय िै।

यजस्त्र्जतद्रयाणि र्नसा तनयम्यारभतेऽजुनव ।
करे्जतद्रयैः कर्यवोगर्सक्तः स वर्मिष्यते ।। ७।।
७. हे अजुनव! जो र्नुष्य र्न के द्र्ारा इजतद्रयों को संयत कर के अनासक्त होकर करे्जतद्रयों के द्र्ारा कर्यवोग का अनुष्ठान करता है र्ह श्रे्ष्ठ है।

बुद्धध के यंत्र के रूप में मन को चाहिए कक वि इजन्रयों को अपने वश में करे और तमपश्चात् ्कमेजन्रयों को उनके उधचत कम िके अनुसार प्रयोग में ले, ऐसे कम िमें प्रयोग करे जो योगस्वरूप ककया जाता िै। पर इस आममसंयम का सच्चा आशय कया िै, कमयिोग का अशभप्राय कया िै? कमयिोग का अशभप्राय िै अनासजकत; मन से इजन्रयों के ववषयों से और कमों के फल से अशलप्त रिते िुए कम िकरना। संपूण िअकम िनिीं, संपूण िअकम ितो भूल िै, भ्रम िै, आमम-वंचना िै और असंभव िै, ककन्तु वि कम िजो पूण िऔर स्वतंत्र िो, इजन्रयों और आवेशों के वश िोकर न ककया गया िो ऐसा ननष्काम और आसजकत रहित कम िी शसद्धध का प्रथम रिस्य िै।

इन तीनों गुणों को िम आसानी से संभाल निीं ंसकते। इसके शलए यि आवश्यक िै कक इनसे ऊपर उठा जाए जो कक आसान निीं। परंतु कफर भी िमें यि शुरू तो करना िी िोगा। अब प्रश्न उठता िै कक िम शुरू कैसे करें? उसके शलए कि रिे िैं कक व्यजकत के कम िउसके सिी-गलत, उधचत-अनुधचत के बोध के द्वारा संचाशलत िोने चाहिए, भले वि बोध वतमिान में ककतना भी सीशमत कयों न िो। यि पिली चीज िै। व्यजकत के जो भी मापदंड िों, भले िी वेककतनेभी ऊँचेया नीचेिों, पर उन्िीं िके द्वारा उसे अपने कमों का संचालन करना सीखना िोगा। जैसे-जैसे उसकी समझ बढ़ती जाएगी वैसे-वैसे वि मित्र कम िकरता जायेगा। परंतु जब तक व्यजकत के कम िकामना या लालच आहद के द्वारा या कफर भौनतक आवेगों के द्वारा या कफर मन के नछछले ववचारों के द्वारा चाशलत िोंगे तब तक इनसे कोई मुजकत संभव निीं ंिै। परंतु यिा ंश्रीकृष्ण मागँ करते िैं कक अपनी बुद्धध को अपनी सत्ता की गिराई में ककसी चीज से युकत कर दो, "युकत आसीत ममपरः" और उस बुद्धध को अपनेकमों का ननदेशन करने दो। इस बुद्धध के अनुसार िम जजस चीज को अनुधचत मानते िैं, गलत मानतेिैं उसे करनेसे िमें पूणतिया ननषेध करना िोगा और ऐसा करने में िमें बिुत कहठनाई का सामना करना पड़ेगा। कयोंकक ऐसी सत्ताएँ और शजकतयाँ िैं जो िम पर ननयंत्रण कर लेती िैं और िमें इंहरयों के पीछे, कामनाओं और आवेगों के पीछे जानेको बाध्य कर देती िैं और उन सत्ताओं को 'ना' सुनने ेकी आदत निीं ंिै। कफर भी जो बुद्धध परमामम से युकत िै वि इन सब पर ननयंत्रण कर पायेगी कयोंकक जजतना िी व्यजकत भगवद्-परायण िोगा उतनी िी सिायता उसे सब ननमन शजकतयों पर ननयंत्रण िेतु प्राप्त िोती रिेगी। अतः प्रथमतः िमें उन पर युकत बुद्धध द्वारा ननयंत्रण करना सीखना िोगा। ऐसा करना िी िोगा। तब कफर अजुनि पूछता िै कक म ैंऐसा कैसे करूँ? इसके उत्तरस्वरूप भगवान् ्कित ेिैं 'मा फलेषु कदाचन', कक फल में कोई कामना निीं ंिोनी चाहिए। कोई भी कम िइसशलये निीं करना िै कक उससे कुछ प्राप्त िो जाए। अवपतु वि इसशलये करना िै कयोंकक वि करना उधचत िै। अब व्यजकत यि कैसे पता करे कक सिी और गलत कया िै? इसी के उत्तर में भगवान् ्आने वाले श्लोक में कितेिैं कक 'ननयत कम िकर।'

तनयतं ंकुरु कर् वत्रं ंकर् वजयायो ह्यकर्विः ।

रीरयात्रावप च ते न प्रमसद्धयेदकर्विः ।। ८।।

८. तू तनयत कर् वकर; क्योंकक अकर् वकी अपेक्षा कर् वश्रेेष्ठ होता है और कर् वत्रबना ककये तेरे िारीररक जीर्न का तनर्ाहव भी नहीं ंहो सकता।

----

* म ंैंननयतं ंकम िके इन हदनों लगाए जानेवाले अथ िको स्वीकार र्निीं कर सकता जो उसकी व्याख्या इस रूप में करता िै मानो इसका अथ िउन ननयत-ननधाररत तथा कमकिाण्पिरक औपचाररक कमों सिी और जो कम िवैहदक ननमयकम िके समरूप िी िो अर्थात् ननयशमत यज्ञ-अनुष्ठानाहद कम ितथा वैहदक जीवन के ननमय के ववधध-ववधान। ननश्चय िी वपछले श्लोक के 'ननयमय' शब्द का तामपय िलेकर िी इस लोक में 'ननयत' शब्द प्रयुकत िुआ िै।... ककसी बाह्य ववधान या ननयम द्वारा ननधाररत औपचारककम िनिींअवपतुमुकतबुद्धध द्वारा ननयत ककया िुआननष्कामकम िीगीताकीशशक्षा िै।

इस प्रकार भगवान् ्किते िैं कक ननयत कम िकरो, 'ननयतं ंकुरु कम िमवं,ं मनैं यि किा िै कक कम िकी अपेक्षा ज्ञान, बुद्धध श्रेष्ठ िै... पर मेरा आशय यि निींथा कक कम िसे अकम िश्रेष्ठ िै, समय इसके ववपरीत िै अथात् ्अकम िकी अपेक्षा कम िी श्रेष्ठ िै, 'कमज्यिायो ह्यकमणिः। कारण, ज्ञान का अथ िकम िका संन्यास निीं ंिै, इसका अथ िै समता, तथा कामना और इजन्रयों के ववषयों से अनासजकत; और इसका अथ िै बुद्धध का उस आममा में जस्थर-प्रनतष्ठ िोना जो स्वतंत्र िै, प्रकृनत के ननमन साधनों अथवा उपकरणों के बिुत ऊपर िै और विींसे मन, इजन्रयों और शरीर के कमों को आममज्ञान की तथा आध्याजममक अनुभूनत के ववशुद्ध ननववषयि आममानंद की शजकत द्वारा ननयत करता िै।...बुद्धधयोग कमयोिग द्वारा पररपूण िोता िै; आमम-मुजकत को देनेवाला बुद्धधयोग ननष्काम कमयोिग द्वारा अपनी पूण िसाथकिता प्राप्त करता िै। इस प्रकार गीता अपनी ननष्काम कम िकी आवश्यकता के शसद्धांत को स्थावपत करती िै, और सांख्यों की (आममननष्ठ) ज्ञान-साधना को - मात्र उनकी बाह्य ववधध का पररमयाग कर के योग की साधना के साथ एक करती िै।

परन्तु कफर भी एक मूल समस्या अभी तक त्रबना समाधान के बची रिती िै। कहठनाई यि िै कक िमारा वतमिान स्वभाव जैसा िै उसके रिते, और उसके कम िके सामान्य प्रेरक तत्त्व के रूप में कामना के रिते िुए एक यथाथतिः ननष्काम कम िकरना कैसे संभव िै?... एकमात्र यज्ञ को लक्षक्षत कर के सभी कमों का ननविन करने ेसे, यिी िै श्रीगुरु का उत्र्।

यि बिुत मित्त्वपूण िबात िै। सबसे पिले तो, िम ककसी कम िका कियान्वयन कैसे करते िैं? सामान्यतया िमें कुछ चीजें प्राप्त करने ेकी इच्छा िोती िै और कुछ चीजें निीं ंचाहिये िोती िैं, और इसी के अनुसार िम अपने कमों का ननधािरण करते िैं। जब तक िम इस प्रकार कम िकरते िैं तब तक िम प्रकृनत के दुश्चि में फंसे रिते िैं और कभी भी इससे ऊपर निीं उठ सकते। तब कफर इसके शलए कया ककया जाए? पिली चीज तो िै कक कामना के वशीभूत िोकर कम िन करना। तथा इस दृजष्टकोण से भी निीं ंकरना कक उस कम िका िमारे शलये कया पररणाम

गिा। सबसे पिले तो िमें कम िके फल के ववषय में उदासीन िोना िोगा। िमें यि देखना िोगा कक सिी या उधचत कम िकया िै और उसी अनुसार कम िकरना िोगा, भले उससे तथाकधथत सुख आता िै या दुुःख, व्यजकत को उससे उदासीन रिता िोता िै। तभी ननयत कम िककये जा सकते िैं। अब इसका पता कैसे लगाएँ कक सिी कम िकौन सा िै? कयोंकक जब िमारी बुद्धध आच्छाहदत िै, िमारा हृदय कामनाओं और आवेगों से प्रताड़ित िै और शरीर भी तम से आच्छाहदत िै, ऐसे में जब तक िमारी बुद्धध भगवान् ्से जुिी िुई निीं ंिै, तब तक वि िमें सिी सूचना निीं दे सकती। वास्तव में अजुनि प्रमयक्ष रूप से तो ऐसा निीं ंकिता परंतु उसके मन में तो यि अवश्य िै िी कक यहद फल के अनुसार कम िकरना िो तो व्यजकत ननधारिरत कर सकता िै कक अमुक कम िउसे करना िै और अमुक कम िसे बचना िै। व्यजकत को कोई चीज की इच्छा िै तो वि अमुक कम िकर सकता िै अन्यथा निीं,ं परंतु यहद कोई फल की आशा निीं रखनी िै, तब कफर वि ननणयि कैसे करे कक कया करना चाहिये और ककससे बचना चाहिये। अब इसका एक तकिसंगत उत्र आता िै कक 'यज्ञ के रूप में कम िकरो'। अथाित् ्'मेरी प्रसन्नता के ननशमत्त् कम िकरो'। और यि तो व्यजकत को िी कल्पना करनी िोगी कक भगवान् ्कया पसन्द करते िैं और कया नापसंद करते िैं। िा,ँ शुरू में तो यि कल्पना एकदम सिी तो निीं िोगी, परंतु कफर भी यि एक अच्छी शुरुआत िोगी। भगवान् ्किते िैं कक कममों का तुमिारा शसद्धांत िोना चाहिये कक 'मुझे ेकया पसंद आएगा और कया पसंद निीं ंआएगा।' और यि तो एक बिा भारी काम िै। इसमें व्यजकत अधधकाधधक यि पाता िै कक उसके ववचारों आहद में भारी शमश्रण िै। और शमलावट तब तक रिती िै जब तक कक वि अपनी गिनतम गिराइयों तक निींपिुँच जाता।

श्रीअरववन्द के अनतररकत गीता में यज्ञ के शसद्धांत के ननरूपण का कया औधचमय िै इस बात का स्पष्टीकरण कोई निींकरता। उन्िोंने इस यज्ञ के शसद्धांत को एक व्यापक स्वरूप प्रदान कर हदया िै, ककसी देश-काल तक िी सीशमत निीं ंरखा िै। यज्ञ वास्तव में एक परस्पर आदान-प्रदान िै। व्यजकत प्रकृनत से कुछ प्राप्त करता िै और स्वयं कुछ प्रनतदान करता िै। यि मनोवैज्ञाननक शसद्धान्त िै, ब्रह्माण्् का मूल शसद्धान्त िै। यिाँ तक कक ज़ितत्त्व भी ऊजाि का आदान-प्रदान करता िै। परमाणु स्तर पर भी सदा िी ऊजाि का आदान-प्रदान चलता रिता िै। इस शसद्धान्त के प्रकाश में श्रीअरववन्द बता रिे िैं कक व्यजकत कम िकैसे करे? जब व्यजकत प्रभु की प्रसन्नता के शलए कम िकरता िै तब उसे पता लगता जाता िै कक जजस भाव से वि कम िकरता िै वि भी अंनतम या ननणायिक निींि।और इसशलए यज्ञ का भी आरोिण िोता िै। भगवान् ्को, श्रीमाँ को कया पसंद िै, इस ववषय में उसकी समझ भी उत्रोत्र बढ़ती जाती िै। अध्याय तीन और चार में यज्ञ के शसद्धांत को व्यापक स्वरूप प्रदान करके उसकी व्याख्या की गई िै। िमारे सभी कम िककसी बिुत िी उच्च और गिरी सत्ा को समवपति िोने चाहिए न कक स्वाथपिरता और मात्र शरीर के भरण-पोषण के शलए। ननःसंदेि शरीर का भरण-पोषण तो स्वतः िो िी जाएगा, परन्तु केवल शरीर एवं ंजीवन की रक्षा के शलए िी निीं ंअवपतु इससे किीं अधधक िमारी सत्ा के समय के शलए, और इसशलए कक पूरे ब्रह्माण्् के साथ िमारा एकमव इसकी मागँ करता िै, अतः वि कम िभी िम करते िैं कयोंकक िम ब्रह्माण्् से शभन्न निीिं। सपूण िब्रह्माण्् में यहद शजकतयों का आदान-प्रदान निीिंता तो िम जीववत िी निीं ंरि सकते थे। इस बात को समझना िोगा और इसे उत्रोत्र ऊपर के स्तरों तक उठाते जाना िोगा। यि यज्ञ का शसद्धांत िै।

प्रश्न : शुरुआत में चूँकक िमें इस बात का भान निीं ंिोता कक कौनसी चीज माँको प्रसन्न करेगी या उन्िें पसंद आएगी, तो िमें आरंभ तो िमारी इस बुद्धध या समझ से िी करना िोगा कक अमुक चीज माँ को प्रसन्न करेगी?

उत्तर : त्रबल्कुल ! परंतु भले िी व्यजकत ककतना भी स्थूल चेतना में िी कयों न िो, कफर भी ककन्िीं चीजों को तो वि भी इस बिानेसे उधचत निीं ठिरा सकेगा कक वे काम श्रीमाँ को प्रसन्न करेंगे। ऐसा करना मुजश्कल िोगा। िालाकँक शुरू में तो ऐसे काम भी धोखे से घुस आएँगे, परंतुज्यों-ज्यों यज्ञ का आरोिण िोता जाएगा मयों-मयों अधधक प्रकाश आता जाएगा और ऐसे कामों पर अधधकाधधक अंकुश लगता जाएगा।

प्रश्न : कया ऐसा निीं ंिै कक प्रारजमभक अवस्था में तो सिी-गलत के जो मापदंड िमें शसखाए गए िैं उन्िीं के द्वारा मान कर चलना िोगा कक जो चीज मुझे ेसिी लगती िै वि श्रीमाँ को पसंद आएगी और जो चीज मुझेसिी निीं ंलगती वि माँको भी प्रसन्न निीं ंकरेगी?

उत्तर : िा,ँ ऐसा िो सकता िै। परंतु कफर भी समस्या यि िै कक इसे िमें अपनी सर्त् पर आरोवपत करना िोगा। ऐसे समय िोतेिैं जब िम जानते िैं कक अमुक चीज सिी निींिै परंतुिम उसे करनेको बाध्य िोतेिैं, और कभी-कभी िमें पता िोता िै कक अमुक काम करने ेके शलए अच्छा िै परंतु उसे करने के शलए आवश्यक शजकत-सामथ्य िमें निीं िोता। वि तो प्रकृनत की अपनी शजकत िै और इसका सामना िम कैसे करेंगे? जब तक िम यज्ञ निीं करते, जब तक आमम-उमसग िम निीं ंकरते, जब तक िम अपनी गिराइयों और ऊँचाइयों से शजकत तथा ऊजाि निीं प्राप्त करते, तब तक िम अपनी कामनाओंआहद पर प्रभुमव निीं प्राप्त कर सकते। इन सिज भावों पर प्रभुमव निीं ंकर सकते कक 'मुझेइस काम से कया शमलेगा, मुझे ेइससे कया लाभ िोने ेवाला िै', और ये िी चीजें िमारे अंदर प्रवेश करती रिेंगी। परंतु इसी जस्थनत से िमें आरंभ करना िोता िै। परंतु ुयहद सच्चा आममोमसग िो तो ऐसी शजकतयाँ इस प्रकिया के अंदर प्रवेश करती जाएँगी जो िमें अधधकाधधक ऊपर उठाती जाएँगी। यज्ञ के आरोिण में िम ऐसा भली-भानाँत देख सकते िैं कक व्यजकत किाँ जस्थत िै। जब व्यजकत सबसे नीचेके स्तर पर िो तब वि लोगों से, घटनाओं तथा पररजस्थनतयों से अधधकतम प्राप्त करना चािता िै और स्वयंन्यूनतम देना चािता िै। उसे ज़िमव का या कफर तमस् ्का स्तर किते िैं, जो कक ननमनतम स्तर िै। उसके बाद व्यजकत कुछ अधधक समझदार िो जाता िै। वि किता िै कक यहद दूसूरों के शलये वि दस काम करेगा तो वे भी बदले में उसके शलए दस काम करेंगे। यहद वि समाज का लाभ करेगा तो समाज भी उसके प्रनत अच्छा और उपकारी िोगा। इसशलये व्यजकत इस सोच के साथ काम करता िै कक जैसे काम वि करेगा वैसे िी प्रनतफल उसे प्राप्त िोंगे। यि राजशसक यज्ञ की अवस्था िै। इससे आगे की अवस्था में व्यजकत त्रबना ककसी प्रमयाशा के, कक कोई उसकी सिायता करता िै या निीं, लाभ शमलता िै या निीं, वि तो केवल सिी तरीके से सिी चीज िी करना चािता िै, भले उसका पररणाम जो भी कयों न िो। व्यजकत विी करता िै जो उसकी आममा में, उसके हृदय की गिराई में और चेतना के शशखर पर उसे मिसूस िोता िै कक विी करनेयोग्य काय िै। तब व्यजकत साजत्त्वक िोता िै। ये तीनों िी गुण पराधश्रत िैं। सत्त्व आधश्रत िै व्यजकत की मनस् ्शजकत पर, रजस् ्आधश्रत िै प्राण-शजकत पर और तमस् ्आधश्रत िै भौनतक शजकत पर।

जब व्यजकत अंनतम अवस्था, अथात्ि्सत्त्व, से भी मुकत िो जाता िै, और सिज रूप से जगदमबा की शजकत उसमें प्रवाहित िोने लगती िै, तब इसमें कफर सिी-गलत, उधचत-अनुधचत की बातें निीं रि जातीं, व्यजकत इतना पारदशी बन जाता िै कक वि शजकत उसके द्वारा प्रवाहित िोने लगती िै और दूसूरों तक भी प्रवाहित िोने लगती िै और सभी कुछ को भगवान् ्को अवपति कर देती िै। विी यज्ञ की चरम अवस्था िै। तब व्यजकत का जीवन धन्य िै। तब व्यजकत ननखैगुण्य िो जाता िै, त्रत्रगुणों से ऊपर उठ जाता िै। इस तरि िम समपूण िजीवन को यज्ञ के आरोिण के रूप में देख सकते िैं।

प्रश्न : जब िम श्रीमाँ की प्रसन्नता के शलए कम िकरना प्रारमभ करते िैं तो कया यि ननखैगुण्य की ओर बढ़ना िै?

उत्तर : अवश्य िी। समपूण िऋग्वेद मूलरूप में यज्ञ के आरोिण की साधना िै। िमारे सभी कमों, ववचारों, भावनाओं, सभी ऊजाओं , उनकी परस्पर कियाओं को इसमें बताया गया िै। साथ िी यि बताया गया िै कक ककस प्रकार उनका सिी व्यवस्थापन करना िै, कैसे वे भगवान् ्के साथ जुि जाते िैं, और इस सब को ववशभन्न देवताओं के प्रतीक के रूप में यज्ञ के रूप में, और भी बिुत से प्रतीकों और रूपकों के माध्यम से वेद में बताया गया िै। सारा वेद यज्ञ के आरोिण को हदखाता िै, कक िम सिी कम िकैसे करें, कयोंकक इसके अनतररकत अन्य कोई रास्ता िै िी निीं। जब तक िम परम प्रज्ञा से जुि िुए निीं िैं, और उसे िी अपनी सत्ता में काय िकरने ेका मौका निीं ंप्रदान करते, तब तक िम समुधचत कम िनिींकर रि िोते।

प्रश्न : कया यज्ञ के आरोिण के साथ-साथ िी आनंद का भी आरोिण िोता िै?

उत्तर : िा,ाँ यि तो एक पूण िगनत िै जजसमें ज्ञान, चेतना और आनंद तीनों िी साथ-साथ चलते िैं। इस यात्रा का व्यजकत इनमें से ककसी भी एक के दृजष्टकोण से वणनि कर सकता िै।

प्रश्न : यहद व्यजकत आनन्द मिसूस निीं कर रिा िो तो कया तब भी वि उस ओर बढ़ रिा िो सकता िै?

उत्तर : यि असमभव िै। यज्ञ एक बिुत िी आनन्ददायक ववषय िै। यि एक अनतशय आनन्द िै। यहद व्यजकत ऐसा मिसूस निीं ंकरता तो संभवतः वि केवल यज्ञ करने ेका प्रयास कर रिा िै, पर यज्ञ निीं कर रिा। यि उस अथ िमें यज्ञ निीं ंिै जैसा कक ककसी ने श्रीअरववन्द से पूछा कक प्रभु, ज्ञान के समपणि का अथ िकया िै। तो श्रीअरववन्द ने उत्तर हदया कक ननश्चय िी इसका अथ ियि निींकक व्यजकत ज्ञान को मयाग कर कष्टकर और दृढ़ रूप से भगवान् ्के शलए अपने को बेवकूफ बना ले। वि तो कदाधचत् ्िी कोई यज्ञ िोगा। ज्ञान के यज्ञ का अथ िै कक ज्ञान को भगवान् ्की सेवा में ननयुकत कर देना। बजाय इस क्षुर व्यजकतमव की, क्षुर अिं की या कफर अपने पररवार, देश, समाज आहद बृित्र अिं की सेवा करने ेके, अपनी बुद्धध हदव्य जननी की सेवा में लगा देना। कम िके समपणि का आशय यि निीं िै कक व्यजकत कोई कम िन करे। अवपतुइसका अथ िै कक सारे कमों का लक्ष्य हदव्य जननी िी िोना चाहिए। तब यि पूण ििोता िै। और इसके साथ–ी-साथ ज्ञान, पे्रम, शजकत, कम,ि आनन्द सभी का

एक साथ आरोिण िोता िै। और एक क्षुर संकीण िमनुष्यमव से छूटकर व्यजकत ऊपर उठ कर हदव्य स्तर तक पिुँच जाता िै। गुह्यवादी इसी साधना की दीक्षा देते थे।

िम एक छोटे से क्षुर शरीर में कैद िैं जो कक मानो एक बिुत छोटा-सा संकीण िवपंजरा िै, या कफर अपनी प्राखणक प्रकृनत में या कफर एक शभन्न व्यजकतमव के बोध में कैद िैं, या अधधक से अधधक इस भाव में सीशमत िो सकतिैं कक संपूण िपृथ्वी िमारा िी स्वरूप िै, परंतु एक ववशालतर चेतना में यि सब तो बिुत िी क्षुर िै। यिाँ तक कक पूरा ब्रह्माण्ि भी उस चेतना के शलए बिुत िी क्षुर िै। इस ब्रह्माण्ि के परे भी असंख्य अनंतताएँ िैं। परंतुकफर भी िम एक संकीण िचेतना में िी सीशमत और बद्ध रितिैं। अधधकांशतः तो िम अपने शरीर से िी बाँधे रिते िैं या कफर शरीर से संबंधधत ररश्तेदारों से या ककसी संकीण िधम,ि समाज, देश या मनुष्यजानत से संबद्ध रितिैं। ये सभी तो बिुत िी क्षुर िैं। िम अपनेसच्चे स्वरूप में इनसे अनन्त रूप से शिन्न िैं। सभी जगि यिी गुह्यवाहदयों की शशक्षा रिी िै। गीता व्यवजस्थत ढंग से इस की व्याख्या करेगी कक यहद ननयत कम िकरना िै तो कैसे ककया जाए। ववचार, भाव, कम िको शिज इस सीशमत व्यजकतमव की सेवा में ननयुकत करने ेकी बजाय कैसे इन्िें पूण िरूप से अवपति ककया जा सकता िै।

यज्ञाथात्वकर्िवोऽतयत्र लोकोऽयंकर्बवतधनः ।

तदथं ेकर् वकौततेय रुक्तसङ्गः सर्ाचर ।। ९।।

९. यज्ञ के मलये ककये जानेर्ाले कर् वसे अतयथा जो कर् वककये जाते हैं उनसे र्नुष्यों का यह लोक (र्नुष्य) कर्ों से बद्ध होता है; हे कुंतीपुत्र अजुनव! अनासक्त होकर यज्ञ के मलये (यज्ञ की भार्ना से) कर् वकर।

यि स्पष्ट िै कक न केवल यज्ञ-कम िऔर सामाजजक कतव्यि िी, अवपतु सभी कम िइसी भाव से ककये जा सकते िैं; कोई भी कम िसंकीण िया अशभवधधति अिंभाव से या कफर भगवान् ्के शलए ककया जा सकता िै। प्रकृनत की सारी सर्ता और सारे कम िका अजस्तमव केवल भगवान् ्के शलए िी िै; भगवान् ्से िी उसका उद्भव िोता िै, भगवान् ्से िी उसकी जस्थनत िै और भगवान् ्की और िी उसकी गनत िै। परंतु जब तक िम अिंभाव से शाशसत िैं तब तक िम इस समय का बोध प्राप्त निीं कर सकते, न इस समय के भाव में कम िकर सकते िैं, अवपतु िम अिं की तुजष्ट के शलए और अिंभाव से, यज्ञ के ववपरीत िेतु से कम िकरते िैं। अिंकार बंधन की गाठँ िै। अिंकार के ककसी ववचार के त्रबना, भगवत्–प्रीमयथ िकम िकरनेसे िम इस गाठँ को ढीली कर देते िैं और अंततः िम मुकत िो जाते िैं।

अब प्रश्न यि िै कक ककस प्रकार सभी कमों को यज्ञ-रूप में पररवनतति कर हदया जाए। यिी यज्ञ के आरोिण की केंरीय चीज िै। ककस प्रकार व्यजकत कोई भी कम िअिं के शलये कर सकता िै या कफर बुद्धध के ववचार के अनुसार, शिजवृवृत्यों के द्वारा, शरीर की वृवृत्यों के द्वारा, या अकस्मात् ्यांत्रत्रक रूप से िी कर सकता िै। आवश्यकता िै कक उपरोकत सभी कमों को यिाँ तक कक कुसी से उठने जैसे ककसी छोटे-से-छोटे कम िको भी भगवान् ्को अवपति ककया जाए। यि एक बिुत बड़ी मित् ्और उर्त्रोर्त्र वधमिान चीज िै। परंतु ्इसे लागू कैसे ककया जाए? इसे लागू तो जो भी शजकत िमें उपलब्ध िै उसी के द्वारा करना िोगा। िमारे अंदर जो भी शजकतयाँ िैं उन

सभी को भगवान् ्की शजकत के प्रनत उमसग िके रूप में मिो़कर यि लागू ककया जा सकता िै। िमारे ज्ञान के सभी कम,ि भजकत के सभी कम,ि और संकल्प अथवा इच्छा-शजकत के सभी कम,ि सभी को िी अवपति कर देना िोगा।

भिथ्रहि्िमारे समस्त ज्ञान को, सभी कुछ को उसी में लगा देना िोगा। इसे लागू करने में बिुत सारी दुववधाएँ िैं, उन सभी का िमें सामना करना िोगा, कयोंकक बुद्धध के अंदर इतने तरीके के जाल बने िुए िैं, इतनी प्रकार की ववषमताएँ िैं, संसार के ववषय में अपनेइतनेदृजष्टकोण िैं जजनमें से ककसी में भी िम फंसे िो सकतैं, और उसी के अनुसार कम िकरने ेलगते िैं। कयोंकक इन सभी ववषमताओं में प्रवृरूत् करने ेवाली शजकतयााँ िैं जो िमें इनमें लगाए रखती िैं। मन के अपनेसीधे-सादे सूत्र िैं जैसे कक 'कभी लालच लोभ मत करो', और यहद इन्िींसूत्रों में व्यजकत फंसा रिे तो पूरा आममोमसग िकभी िो िी निीं ंसकता। कयोंकक हदव्य जननी की मित् ्किया कभी ककसी भी सूत्र में सीशमत निीं ंिो सकती िै। परंतु व्यजकत शुरू में अपनेतरि-तरि के सूत्रों के दृजष्टकोण से िी आरंभ करता िै, परंतु यज्ञ के आरिोण में वि धीरे-धीरे सभी सूत्रों से परे ननकल जाता िै।

----

* चलो ग़ीता के ननयत कम िको वैहदक प्रणाली का ननमयकम िऔर उसके 'कतव्यिं ंकम'ि को आय िसामाजजक धम िके रूप में मान लेतैं और उसके 'यज्ञ रूप से ककए गए कम'ि को वैहदक यज्ञ, एवं ननःस्वाथ िभाव से तथा त्रबना ककसी वैयजकतक उद्देश्य के ककया िुआ बधााँ-बधााँया सामाजजक कर्त्व्यि मान लेतैं। प्रायः गीता के ननःस्वाथ िकम िकी इसी प्रकार व्याख्या की जाती िै। परन्तु मुझे लगता िै कक गीता की शशक्षा इतनी अनगढ़ और सिज निीं िै, इतनी देशकालमयाहिदत और लौककक तथा अनुदार निीं िै। यि तो उदार, स्वतंत्र, सूक्ूष्म और गंभीर िै; सब काल और सब मनुष्यों के शलये िै, ककसी काल ववशेषे और देश ववशेषे के शलये निीं। ववशेषतया, यि सदा बािरी रूपों, ब्यौरों और सांप्रदानयक धारणाओंके बंधनों को तोि़कर मूल शसद्धान्तों की ओर तथा िमारे स्वभाव और िमारी सर्त्ा के मिान् ्तथ्यों को और अपना रुख रखती िै। गीता व्यापक दाशननिक समय और आध्याजममक व्याविाररकता का ग्रंथ िै, अनुदार सांप्रदानयक और दाशननिक सूत्रों और बधोँ बधााँये मतवादों का ग्रंथ निीं।

गीता यज्ञ का ववस्तृत वणनि करेगी कक वास्तव में इसका स्वरूप कया िै, इसका अथ िकया िै। वि किेगी कक सृजष्ट के साथ–ी-साथ यज्ञ का ववधान उसमें ननहित िै। िर चीज में परस्पर आदान-प्रदान चल िी रिा िै और इसके द्वारा ववकास चल रिा िै। ऐसी कोई चीज निीं ंिै जो कुछ दे न रिी िो और जो स्वयं कुछ ग्रिण न कर रिी िो। यिी यज्ञ का साविभौम ववचार िै।

यद्यवप, आरमभ में, गीता यज्ञ के ववचार का वैहदक भाव िी लेती िै और उस समय की प्रचशलत वैहदक पररपाटी के अनुसार िी यज्ञ के ववधान का वणनि करती िै, परंतु ऐसा यि एक सुननजश्चत उद्देश्य से करती िै। िम लोग देख चुके िैं कक संन्यास और कम िमें जो झगि़ा िै उसके दो रूप िैं; एक िै सांख्य और योग का ववरोध जजसका शसद्धांततः समन्वय इससे पिले ककया जा चुका िै, और दूसरा िै वेदवाद और वेदांतवाद का ववरोध जजसका

समन्वय श्रीगुरु को अभी करना शेषे ि◌ै।.... वेदवाद यज्ञ के साथ देवताओं की पूजा करता और इन देवताओं को ऐसी शजकतयाँ मानता ि◌ै जो ि◌मारी मुजकत में सिायता करती ि◌ैं। वेदांतवाद इन देवताओं को मानशसक और ज़िप्राकृनतक जगत् ◌्की शजकतयों के रूप में मानने की ओर प्रवृत्त् ि◌ुआ जजसके अनुसार देवता ि◌मारी मुजकत के ववरोध में ि◌ैं (उपननषद् किते ि◌ैं कक मनुष्य देवताओं के पशु ि◌ैं, और देवता निीं ◌ंचािते कक मनुष्य ज्ञानी और मुकत िों), इसने भगवान् ◌्को अक्षर ब्रह्म के रूप में देखा ि◌ै जजसे यज्ञकमों और उपासना के द्वारा निीं,◌ं अवपतु ज्ञान के द्वारा ि◌ी प्राप्त करना ि◌ोता ि◌ै। (इसके अनुसार) कम ि◌तो केवल भौनतक फल और ननमन कोहट का स्वग ि◌देनेवाले ि◌ैं, इसशलए कमों का मयाग करना ि◌ी ि◌ोगा।

गीता इस ववरोध का समाधान इस शसद्धांत के प्रनतपादन से करती ि◌ै कक ये देवता एक ि◌ी परम् ◌्देव के, ईश्वर के, सब योगों, उपासनाओं, यज्ञों और तपों के परमेश्वर के ि◌ी केवल अनेक रूप ि◌ैं, और यहद यि सच ि◌ै कक देवताओं को अवपित ककया ि◌ुआ ि◌व्य केवल भौनतक फल और स्वग ि◌को देनेवाला ि◌ै, तो यि भी सच ि◌ै कक ईश्वरप्रीमयथ ि◌ककया ि◌ुआ यज्ञ इनसे परे मिान् ◌्मोक्ष तक ले जानेवाला ि◌ोता ि◌ै। कयोंकक परमेश्वर और अक्षर ब्रह्म दो शभन्न सत्ताएँ निीं ि◌ैं, अवपतु दोनों एक अशभन्न सत्ता ि◌ैं और इसशलए जो कोई इनमें से ककसी को भी साधनेका प्रयास करता ि◌ै वि उसी एक भागवत् ◌्सत्ता को साधनेका प्रयास करता ि◌ै। अपनी समग्रता में सभी कम ि◌भगवान् ◌् के ज्ञान में अपनी पराकाष्ठा तथा पररसमाजप्त पाति◌ें, 'सव ◌ांकमाखिखलं पाथ ि◌ज्ञानेपररसमाप्यते'। वे कोई बाधा निीं ◌ंि◌ैं, अवपतुपरम् ◌्ज्ञान के माग िि◌ैं। इस प्रकार इस ववरोध का भी यज्ञ शब्द के अथ ि◌को व्यापक दृजष्ट से सुस्पष्ट कर के समाधान ककया गया ि◌ै। वस्तुतः इसका ववरोध योग और सांख्य का जो बड़ा ववरोध ि◌ै उसी का संक्षक्षप्त रूप ि◌ै; वेदवाद योग का ि◌ी एक ववशशष्ट और संकीण ि◌रूप ि◌ै; और वेदांनतयों का शसद्धांत सांख्यों के शसद्धांत के तद्रूप िी ि◌ै, कयोंकक दोनों के शलए ि◌ी मोक्ष प्राप्त करने ◌ेकी साधना ि◌ै बुद्धध का प्रकृनत की भेदाममक शजकतयों से, अिंकार, मन और इजन्द्रयों से तथा आंतररक और बाह्य ववषयों से ननवृत्त् ि◌ोकर ननववशेषे और अक्षर पुरुष में वापस लौट आना। ववशभन्न मतों का समन्वय साधने की इस बात को ध्यान में रखकर ि◌ी श्रीगुरु ने यज्ञववषयक अपनेशसद्धांत के कथन का उपिम ककया ि◌ै; परन्तु इस समपूण ि◌कथन में सवत्र, यिाँ तक कक एकदम आरंभ से िी, उनका ध्यान यज्ञ और कम ि◌के मयाहिदत वैहदक अथ ि◌पर निीं,◌ं अवपतुउनकी उदार और व्यापक व्यवियािता पर रिा ि◌ै, गीता की पद्धनत सदा ि◌ी इन मतों की मयाहिदत और बाह्य धारणाओं को ववस्तृत करने ◌ेऔर इन्िेंननजजन मिान् ◌्बुद्धप्रचशलत समयों को सीशमत रूप दे रखा ि◌ै उन्िें उनके समय स्वरूप में प्रकट करनेकी रिी ि◌ै।

----

* आध्याजममक अथ ि◌में, 'सैकिफाइस' (मयाग, यज्ञ) का एक शभन्न अथ िि◌ै - यि अपनी ककसी वप्रय वस्तु के मयाग को उतना सूधचत निीं ◌ंकरता जजतना कक भगवान् ◌्के प्रनत स्वयं ◌ंअपने-आप के, अपनी सत्ता के, अपने मन, हृदय, संकल्प, शरीर, प्राण, कमाहिद के उमसग ि◌को सूधचत करता ि◌ै। इसका मूलू अथ िि◌ै 'पववत्र करना' और इसे 'यज्ञ' शब्द के पयायि के रूप में प्रयोग ककया गया ि◌ै। जब गीता 'ज्ञान-यज्ञ' की बात किती ि◌ै तब उसका अथ ि◌ककसी वस्तु का मयाग निीं ◌ंि◌ोता, अवपतु उसका अथ िि◌ोता ि◌ै ज्ञान को खोज में मन को भगवान् ◌्की ओर मोड़ देना और उसके द्वारा अपने-आप को उमसग ि◌कर देना। कफर इसी अथ ि◌में व्यजकत कमों के उमसग ि◌या यज्ञ की बात किता ि◌ै।... सैकिफाइस' शब्द का जो यूरोवपयन अथ िि◌ै वि 'यज्ञ' शब्द का अथ ि◌निीं ◌ं ि◌ै या 'सैकिफाइस ऑफ वकस'ि◌ जैसे पदों में 'सैकिफाइस' का अथ ि◌यि निीं ◌ंि◌ै। इसका तामपय ि◌यि निीं ि◌ै कक भगवान् ◌्के शलये

तुम सभी कमों का मयाग कर दो - कयोंकक इसमें कमों का यज्ञ तो त्रबल्कुल िोगा िी निीं। इसी तरि ज्ञान-यज्ञ का अशभप्राय यि निीं िै कक तुमिें कष्टपूवकि और दृढ़ता के साथ परम प्रभु के शलये अपने-आप को मूख िबना देना िोगा। 'सैकिफाइस' (यज्ञ) का तामपय ि िै भगवान् ्के प्रनत आंतररक दान, और एक यथाथ िआध्याजममक यज्ञ बिुत िी िषपूण िववषय िै। अन्यथा व्यजकत केवल अपने को योग्य बनाने का िी प्रयास कर रिा िोता िै और उसने अभी तक यथाथ ियज्ञ का प्रारंभ निीं ककया िै।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्रा पुरोर्ाच प्रजापततः ।

अनेन प्रसवर्ष्यध्रेष र्ोऽजस्त्र्ष्टकार्धुक् ।। १० ।।

१०. सृजृष्ट के प्रारम्भ र्ें जीर्ों के वपता ने यज्ञ के साथ जीर्ों की सृजृष्ट कर के उनसे कहा इस यज्ञ के द्र्ारा तुर् संतान या िलों को उत्पतन करो, यह यज्ञ तुम्हारी अभीष्ट कार्नाओं की पूतत वकरनेर्ाला हो।

यज्ञ अथात्ि्पारस्पररकता के ववधान के द्वारा भगवान् ्ने तुमिें सृष्ट ककया िै और इसी ववधान के द्वारा तुम स्वयं वधधति िोओ, चीजों की उमपवर्त् करो और अपनी पररपूनत िकरो। कयोंकक यहद पारस्पररकता का ववधान निीं ंिोता, तो कुछ भी निीं ंककया जा सकता था। प्रमयेक जीव, जजसे वि अपनेसे शभन्न मानता िै, उससे कुछ-न-कुछ ग्रिण करता िै और स्वयंभी समजष्ट में कुछ-न-कुछ योगदान देता िै। यिी एकमात्र तरीका िै जजससे कक कोई भी प्रगनत िो सकती िै। ऐसा कुछ भी निीं, चािे वि पमथर िो, पौधा िो, पशु िो या मनुष्य िो, प्रमयेक िी िर समय कोई न कोई योगदान करता िी रिता िै। भले व्यजकत कोई ववचार की धारा िी प्रदान कर रिा िो, पर तो भी समजष्ट के अंदर योगदान करता अवश्य िै। यि परस्परता यानन यज्ञ का ववधान अधधरोवपत ककया गया था। कयोंकक, जब अिं आ जाता िै, पृथृकता का बोध आ जाता िै, और तब यहद इस पारस्पररकता को उस पर न लादा गया िोता, तो व्यजकत कभी भूलकर भी इस ववचार तक न आ पाता कक कोई एकाममकता भी िै, इस ववचार तक कक ये सभी केवल बाह्य प्रतीनतयािैं, किक केवल एक िी परम् ्सर्त्ा, परमाममा, जगज्जननी सवत्रि िी व्याप्त िै। इसशलए चूंकक इस बिुलता का (जो कक बाह्य दृश्यमान यथाथति िै) सृजन िुआ, और कयोंकक एकता वस्तुओंका ननहित मूलभूत समय िै, इसशलये सिज रूप से पारस्पररकता या यज्ञ-ववधान दोनों में सामंजस्य स्थावपत करने े की ड़िी का काम करता िै। एकता और बिुलता दोनों िी पारस्पररकता के द्वारा जुिे िुए िैं। अब चूंकक वास्तव में तो एकता और बिुलता मूलभूत रूप से एक िी िैं इसशलये उनके बीच यज्ञ-ववधान तो अवश्यंभावी िो िी जाता िै। जजस प्रकार एक िी दिे में सवत्रि िी रकत का संचार िोता िै और अंगों में पारस्पररक आदान-प्रदान िोता िै उसी प्रकार यिााँभी िै। इस आदान-प्रदान से िम अपनी व्यजष्ट सर्त्ा, कफर वैजश्वक सर्त्ा और तब कफर परामपर सर्त्ा के, चेतना के इन तीनों स्तरों के ववषय में सचेतन िोतिैं।

देर्ातभार्यतानेन ते देर्ा भार्यततुर्ः ।

परस्परं भार्यततः श्रेेयः परर्ाप्स्यथ ।। ११ ।।

११. इस यज्ञ द्र्ारा तुर् देर्ों को पुष्ट करो, और र्े देर् तुम्हारा पोषि करें; इस प्रकार एक दूसूरे का पोषि-र्धनव करते हुए तुर् परर् कल्याि को प्राप्त कर लोगे।

इष्टातभोगाजतह र्ो देर्ा दास्यततेयज्ञभावर्ताः ।

तैदवत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते ेस्तेन एर् सः ।। १२ ।।

१२. यज्ञ से संपुष्ट हुए देर् तुम्हें तनश्चय ही अभीष्ट भोग्य पदाथों को प्रदान करेंगे; जो र्नुष्ट्य उनसे प्रदत्त भोग्य पदाथों को उतहें न देकर स्र्यंभोग करता है र्ह चोर है।

यज्ञमिष्टामिनः सततो र्ुच्यततेसर्कवकजल्बषैः ।

भुञ्जते ते त्र्षं पापा ये पचतत्यात्र्कारित् ्।। १३ ।।

१३. जो सत् ्पुरुष यज्ञ से बचे हुए अंि को खाते ेहैं र्े ेसर्स्त पापों से र्ुक्त हो जाते हैं; परंतु जो केर्ल अपनेमलये ही भोजन पकाते हैं र्े पापी होते हैं और पाप का भक्षि करते हैं।

अतनाद्भर्जतत भूतातन पजतवयादतनसम्भर्ः ।

यज्ञाद्भर्तत पजतवयो यज्ञः कर्सवर्ुद्भर्ः ।। १४ ।।

कर् वब्रह्मोद्भर्ं वर्द्धि ब्रह्माक्षरसर्ुद्भर्् ्।

तस्र्ात्सर्गवतं ब्रह्म तनत्यंयज्ञे प्रततजष्ठतर् ्।। १५।।

१४-१५. अतन से प्रािी उत्पतन होते हैं, र्ृजष्ट से अतन उत्पतन होता है, यज्ञ से र्ृजष्ट होती है, यज्ञ कर् वसे उत्पतन होता है; कर् वको ब्रह्म से उत्पतन हुआ जान, ब्रह्म अक्षर से उत्पतन होता है; इसमलये सर्वव्यापी ब्रह्म सदा ही यज्ञ र्ें प्रततजष्ठत होता है।

एर्ं प्रर्तततंव चक्रं नानुर्तयवतीह यः ।

अघायुररजतद्रयारार्ो र्ोघंपाथ वस जीर्तत ।। १६।।

१६. हे पाथ!व जो र्नुष्ट्य इस लोक र्ें इस प्रकार प्रर्ततृ ककये हुए चक्र का अनुसरि नहीं ंकरता र्ह पापर्य जीर्नर्ाला है, इजतद्रयों के वर्षयों र्ें रर्ि करता है, र्ह व्यथ वही जीता है।

यस्त्र्ात्र्रततरेर् स्यादात्र्तृपृतश्च र्ानर्ः ।

आत्र्तयेर् च सततुष्टस्तस्य कायं ंन वर्द्यते ।। १७।।

१७. परंतुजो र्नुष्ट्य आत्र्ा र्ें ही रर्ि करता है और आत्र्ा के स्र्रूपभूत आनंद र्ें तृपृत रहता है और आत्र्ा र्ें ही संतुष्ट रहता है, उसके मलये कोई कत्तव्वय कर् व(ऐसा कर् वजजसे करनेकी आर्श्यकता रह गयी हो अथर्ा जजसे करना आर्श्यक हो) नहीं रहता।

नैर् तस्य कृतेनाथो नाकृतेनेह कश्चन ।

न चास्य सर्भूवतेषु कजश्र्दथव्वयपाश्रयः ।।१८।।

१८. इस संसार रें् उसे कर् वकरनेसे कुछ भी प्रयोजन मसद्ध करना नहीं ्है और न ही न करनेसे कोई पदाथ वप्राप्त करना है; उसे इन सर्स्त भूतों पर ककसी प्राप्त होने ेयोग्य पदाथ वके मलये आधश्रत नहींहोना प़िता है।

उपरोकत सब के अंदर िमें इनके पीछे के रूपक को समझने का प्रयास करना चाहिये। गीता के अंदर िमें ववचारों को सतिी तौर पर न लेकर उन्िें उनकी चरम गिराइयों में देखना चाहिये। तब वे ेअपना सच्चा स्वरूप और औधचमय अपना लेते िैं कयोंकक विी उनका अशभपे्रेत अथ ििै, न कक सतिी। इसमें पिला श्लोक कक **'यज्ञ तुम्हारी अभीष्ट्ट कार्नाओं की पूतत वकरनेर्ाला हो'** इसमें यज्ञ का जो ववचार िै, उसके पीछे जो ननहित कारण िै वि कोई घिग्न्ह इसमें कोई चयन निर्ीं िै (अथाथत् ननहित निर्ीं किक व्यजकत अपनी इच्छा से यज्ञ के ववधान को अपना या नकार सकता िो) बजल्क यि तो सारे ब्रह्माण्ड् के एकमव की एक मूलभूत जस्थनत िै। केवल 'एकमेवाद्ववतीयम्' ् का िी अजस्तमव िै, उसी की सर्ता िै। यहद बिुलता का सृजन िुआ िै तो यि केवल एक प्रतीनत मात्र िै, वास्तव में तो कोई ववभाजन िै िी निींऔर ववभाजन संभव भी निर्ीं। प्रतीनत में भी जो बिुलता िै उसमें भी पारस्परिक आदान-प्रदान का ववधान ननहित िै। जैसे कक, यहद िम व्यजकत के शरीर में प्रमयेक कोशशका को अपने-आप में एक अलग इकाई मान लें, तो भी उनमें आपस में परस्पर आदान-प्रदान िोता िी िै, इसी कारण मनुष्य का शरीर बना रिता िै अन्यथा वि नष्ट िो जाएगा। उसी प्रकार ब्रह्माण्ड् में जो कुछ भी िै वि सभी भगवान् ्के हदव्य शरीर की कोशशकाएँ िैं और 'उनमें' वे सब एक िैं। इसशलए पारस्परिक आदान-प्रदान िोता िै। परन्तु वे कोशशकाएँ जो सदा प्राप्त िी करना चािती िैं, देना निीं ंचािती, वे शरीर में कैंसर की तरि िैं। तो पिली चीज िै ब्रह्माण्ड् का यि एकमव जो यज्ञ के शसद्धान्त को बाध्यकारी बना देता िै, इसमें कोई चयन का ववषय निीं रि जाता। यहद कोई इकाई अपनेको उस प्रवाि से अलग समझे, े कफर चािे वि व्यजकत िो, समुदाय िो, समाज िो, देश िो या कफर मानवजानत िी कयों न िो, तो वि कैंसर के समान िै। कयोंकक ये सभी तो उस एक िी सर्ता के शरीर की कोशशकाएँ िैं। इसशलए इसे स्वीकार करो या न करो, यि तो बाध्यकारी िै िी। यहद व्यजकत इसे स्वीकार निीं करता तो उसे इस सचेतन यज्ञ का मनोवैज्ञाननक लाभ प्राप्त निींिोता। प्रकृनत बाध्यकारी रूप से यि यज्ञ करवाती िी िै। भले कोई यज्ञ के शलये या कफर प्रदान करने ेके शलए ककतना भी अननच्छुक कयों न िो परन्तु उसे यज्ञ करना िी िोगा, शजकतयों का आदान-प्रदान करना िी िोगा।

तो इस श्लोक के प्रतीक में चलें कक 'यज्ञ के द्वारा संतान की या कफर अभीष्ट फलों की उमपवर्त् िोती िै।' जो व्यजकत आदान-प्रदान निीं करता वि कभी भी स्वयंको ननरंतर निींरख पाएगा, अपनेको बनाए निीं ंरख पाएगा, अथाथत् संतनत की उमपवर्त् निींकर सकता, कुछ भी उमपन्न निींकर सकता। केवल इसी के द्वारा व्यजकत अपने आप को संतनत के रूप में तथा अन्य चीजों के रूप में, प्रभावों और फलों के रूप में उमपन्न कर सकता िै।

दूसरा श्लोक ि◌ै कक '**इस यज्ञ द्वारा देर्ों को पुष्ट करो और देर् ही तुम्हारा पोषि करेंगे। और इसके द्वारा एक-दूसूरे का भरि पोषि करते हुए तुर् परर् कल्याि को प्राप्त कर लोगे।**' इसमें तो वेद का सारा सार ि◌ी आ गया कक ककस प्रकार परस्पर आदान-प्रदान करते ि◌ुए मनुष्य अपनी मनोवैज्ञाननक शजकतयों को अधधकाधधक पुष्ट करता जाता ि◌ै। इन मनोवैज्ञाननक शजकतयों के रूप में देवता अशभव्यकत ि◌ोते ि◌ैं और ये सारा ब्रह्माण्ि देवताओं के द्वारा ि◌ी ननशमति ि◌ै। मनुष्यों की सारी मनोवैज्ञाननक शजकतयों और इजन्रयों के पीछे देवता ि◌ी ि◌ैं। व्यजकत इजन्रयों के माध्यम से इस जगत् ्को देखता ि◌ै, कयोंकक वास्तव में तो कुछ ि◌ै ि◌ी निीं और कया ि◌ै या निीं ि◌ै उसके बारे में ि◌म कुछ निीं कि सकते। ि◌मारे शलए तो यि सब इंहरयों के द्वारा रचा जाता ि◌ै। व्यजकत का इंहरय बोध उसकी मानशसकता पर ननभरि करता ि◌ै। इंहरयााँवी ि◌ोतिुए भी यहद मानशसकता एक त्रबल्ली की ि◌ोगी तो व्यजकत कया बोध प्राप्त करेगा, और चिूे की ि◌ोगी तो और भी शभन्न बोध प्राप्त करेगा। इस प्रकार इस श्लोक में गीता कि रिी ि◌ै कक यहद व्यजकत ने पारस्पररक आदान-प्रदान के द्वारा अपनी मनोवैज्ञाननक शजकतयों और इजन्रयों की वृद्धध की हदशा में कुछ काम ककया ि◌ै तो अवश्य ि◌ी उन्िें पुष्ट कर सकता ि◌ै, अन्यथा निीं। यहद व्यजकत नेउस ओर ध्यान ि◌ी निीं ◌ंहदया ि◌ै तो वि असंस्कृत रि जाएगा। मनुष्यों में तो यि संवधधति करने ◌ेकी संभावना ि◌ोती ि◌ै अन्यथा संस्काररत करने का कोई अथ िि◌ी निीं ◌ंि◌ै। इसके त्रबना तो मनुष्य अपनी इजन्रयों को ि◌ी संतुष्ट करने में लगा रिता ि◌ै जैसे कक एक पशु ◌ुइसमें लगा रिता ि◌ै। तो इसमें तो कोई नयी रचना ि◌ोगी निीं। मनुष्य में यि संभावना ि◌ै कक वि आदान-प्रदान के द्वारा अपनी मनोवैज्ञाननक शजकतयों को ववकशसत करे तो इससे एक नयी रचना ि◌ोगी। यहद मनुष्य में ये शजकतयााँ ववकशसत निीं ि◌ुई ि◌ोतीं तो भौनतक जगत् ्की भी दशा, उसकी जस्थनत जैसी आज ि◌ै वैसी निीं ◌ंि◌ोती। इससे व्यजकत आगे बढ़ता जाता ि◌ै और ज्यों-ज्यों व्यजकत आदान-प्रदान करेगा मयोंि-ि◌ी-मयों अंततः वि चरम जस्थनत तक पिुाँच जाएगा। मनुष्य तो अभी बिुी ि◌ी असंस्कृत अवस्था में ि◌ै जिााँवि केवल अपनी इजन्रयों के ववषयों आहद के आदान-प्रदान पर ि◌ी केंहरत ि◌ै।

इसके बाद जब व्यजकत के अंदर ववचार उठते ि◌ैं, तो ये ि◌ैं मरुद्गण। व्यजकत की भावनाओं से जब ववचार पैदा ि◌ोतिें कक 'ऐसा करना चाहिये, यि सिी ि◌ै, यि गलत ि◌ै' या कफर यहद ककसी के समझ में आ गया ि◌ो कक यि सब तो बेकार ि◌ै, तब वि अपनेसारे जीवन में अनुशासन लाकर उससे परे ननकल जाता ि◌ै। यि मरुद्गणों की किया का प्रभाव ि◌ै। उसके बाद जब वि और आगे चलता ि◌ै तो उसकी और शजकतयााँ भी ववकशसत ि◌ोती जाती ि◌ैं। कफर वि परमामममा के साथ जिुु जाता ि◌ै और उसमें इतनी शजकतयााँ आ जाती ि◌ैं कक वि उन्िें ग्रिण कर के मित् ् सृजन कर सकता ि◌ै कयोंकक अन्दर ननहित शजकतयों का कोई अंत निीं ◌ंि◌ोता। यिी वेदों का रिस्य ि◌ै, कक व्यजकत अपनी मनोवैज्ञाननक अथवा अध्याममपरक शजकतयों को पुष्ट करे और तब कफर वि उन शजकतयों के द्वारा शजकतशाली रूप से किया कर सकता ि◌ै। ि◌मारी मनोवैज्ञाननक शजकतयााँ यहद शजकतशाली ि◌ों तो ि◌म बिुि ि◌ी सशकत रूप से किया कर सकते ि◌ैं। ि◌म देख सकतिें कक ि◌मारे ऋवष ककतनी शजकतशाली रूप से किया कर सकते थे। इस प्रकार व्यजकत यि काय ि◌कर के अपनेजीवन को, अशभव्यजकत को बिुत अधधक प्रचुर और समृद्ध बना सकता ि◌ै। यिी इन सब बातों का अथ िि◌ै। इसमें वेदों की सारी कुंजी ि◌ी ननहित ि◌ै। मनुष्य के मनोववज्ञान के पीछे भी देवता ि◌ैं और उससे स्वतंत्र भी ि◌ैं। और जब व्यजकत उन तक पिुाँच जाएगा तब ये मनोवैज्ञाननक शजकतयााँ भी अपनेपूरे वैभव को प्राप्त कर लेंगी। पिले तो ये देवता मनुष्य की सीशमत मानशसकता में सीशमत किया ि◌ी करते

ीं। परन्तु जब व्यजकत ककसी एक स्तर-ववशेषे से ऊपर उठ जाता ि◌ै, जब मरुद्गणों के बाद इन्र की किया शुरू ि◌ो जाती ि◌ै तब मनुष्य के अनचेिो प्राखणक और भौनतक ि◌स्तक्षेप समाप्त ि◌ो जाते ि◌ैं और इसके बाद वि बिुत ववशाल ननमाणि कर सकने ◌े की जस्थनत में ि◌ोता ि◌ै। जब वि और ऊपर उठता ि◌ै तो देवताओं की खुले तौर पर किया प्रारमभ ि◌ो जाती ि◌ै और उससे तो भगवद्-प्रे्रेरत ननमाणि कर सकने की शजकत प्राप्त ि◌ो जाती ि◌ै। जजन्िोंनेभी कोई

मिान् ◌्काय ि◌ककए ि◌ैं उन्िोंने इसी प्रकार से एक-एक क्षेत्र में अद्भुत ननमाणि ककया ि◌ै। श्रीअरववन्द के अनुसार वेदव्यास, वाल्मीकक और कालीदास, इन तीनों ने तो सारे भारतवष ि◌का ि◌ी ननमाणि कर हदया। उन्िोंनेउन चीजों को अशभव्यजकत प्रदान की जजनसे सब चीजों का ननमाणि ि◌ुआ और आज भी ि◌मारी सारी संस्कृनत उनसे प्रे्रेरत ि◌ै। इससे ननमाणि बिुत ि◌ी ववशाल बन गया, इसी को सूत्र रूप में अगले श्लोक में बताया गया ि◌ै।

"यज्ञ से संपुष्ट हुए देर् तुम्हें तनश्चय ही अभीष्ट भोग्य पदाथों को प्रदान करेंगे; जो र्नुष्य उनसे प्रदत्त भोग्य पदाथों को उतहें न देकर स्र्यं भोग करता है र्ह चोर है।" इस परस्पर आदान-प्रदान की प्रकिया में जब मनुष्य अपने जीवन में देवों को उतरनेदेता ि◌ै और उनसे जो शजकत-सामथ्य ि◌ववकशसत ि◌ोतीं तो उससे ज़ितत्त्व पर अधधक ननयंत्रण करने की शजकतयााँ आ जाती ि◌ैं, परंतु जब व्यजकत इन्िें अपनेअिं की तुजष्ट के शलए उपयोग करता ि◌ै, इन शजकतयों को और ऊपर उठनेका एक माध्यम न बनाकर अिं की तुजष्ट में लग जाता ि◌ै तो इसका अथ िि◌ै कक उसनेयज्ञ माग ि◌को छोि़ हदया ि◌ै और पथ से भ्ष्ट ि◌ो गया ि◌ै। कयोंकक जो भी शजकत उसनेउस प्रकिया के द्वारा प्राप्त की उसे उसनेननमन प्रकृनत को अपणि कर हदया ि◌ै तो इसका अथ िि◌ै कक वि आगे न जाकर रास्तेसे भटक गया। अतः इससे व्यजकत को बचना चाहिए।

"जो सत् ◌्पुरुष यज्ञ से बचे ◌े हुए अंश को खाते ◌े हैं, र्े सर्स्त पापों से र्ुक्त हो जाते हैं। परंतु जो केर्ल अपने मलए ही भोजन पकातेहैं, र्े पापी होतेहैं, और पाप का भक्षि करते हैं।" इस श्लोक में गीता इसी बात को और अधधक बल के साथ कि रिी ि◌ै कक यज्ञ करने में मनुष्य ने जो प्रयमन लगाए उन्िोंनेउसे पववत्र बना हदया। यज्ञ के बाद बचा ि◌ुआ भाग भगवान् ◌्शंकर का भाग बताया जाता ि◌ै जो कक परामपर भगवान् ◌्ि◌ैं। वे ◌े सारे ब्रह्माण्ि से परे ि◌ैं, यज्ञ के बाद बचा ि◌ुआ भाग उन्िीं ि◌का ि◌ै। किने ◌े का वास्तव में अथ ि◌यि ि◌ै कक यज्ञ में अवपति करनेके बाद भी व्यजकत में इतनी शजकतयााँ कफर भी बची रि जाती ि◌ैं जजनसे वि स्वयं में जस्थत परामपर को अवपति करता ि◌ै।

"अतन से प्रािी उत्पतन होतेहैं, र्ृजष्ट से अतन उत्पतन होता है, यज्ञ से र्ृजष्ट होती है। यज्ञ कर् वसे उत्पतन होता है। कर् वको ब्रह्र् से उत्पतन हुआ जान, ब्रह्र् अक्षर से उत्पतन होता है, इसमलए सर्व्यापी ब्रह्र्, सदा ही यज्ञ र्ें प्रततजष्ठत होता है।" इसमें भौनतक रूप से तो वृजष्ट का अथ ि◌स्पष्ट ि◌ी ि◌ै परन्तु वैहदक प्रतीक के अनुसार वृजष्ट का अथ िि◌ै भागवत् ◌्कृपा का अवतरण जजसके द्वारा व्यजकत को जो चीजें पिले स्पष्ट निीं ◌ं थींवे स्पष्ट ि◌ो जाती ि◌ैं और जो काम वि पिले निींकर पाता था उन कामों को करने ◌े में वि सक्षम ि◌ो जाता ि◌ै। इस कृपा से मनुष्य के (सभी अन्नमय, प्राणमय और मनोमय कोष) अथात् ◌्शरीर, प्राण और मन पुष्ट ि◌ो जाते ि◌ैं। व्यजकत को अपनी सारी सत्ता का आधार उसमें शमल जाता ि◌ै। इस प्रकार कृपा के रूप में वृजष्ट आती ि◌ै। वृजष्ट यज्ञ का पररणाम ि◌ै। जब व्यजकत यज्ञ करता ि◌ै तो प्रसन्न ि◌ोकर देवता वृजष्ट (कृपा) करते ि◌ैं। वेदों में इस प्रतीक का बार-

बार में वणनि ि◌ै कक स्वग ि◌के जलों का अवतरण ि◌ोता ि◌ै। और यज्ञ कम ि◌से उमपन्न ि◌ोता ि◌ै। यहद मनुष्य कम ि◌र्निीं करता तो यज्ञ ि◌ो ि◌ो र्निीं ◌ंसकता। जब ि◌म ि◌मारे मन, प्राण शरीर के समस्त कमों को अजग्न को समवपति करते ि◌ैं तब वि यज्ञ ि◌ोता ि◌ै और ि◌मारे समस्त कम,ि◌ ववचार, भावनाएँ ि◌मारे भीतर जस्थत ब्रह्म से, अन्तराममा से उमपन्न ि◌ोतीं, यि सारी प्रतीनत ब्रिा ि◌ै जो अक्षर ब्रह्म से उमपन्न ि◌ोती ि◌ै और इसशलए सवव्यािपी ब्रह्म सदा ि◌ी यज्ञ में प्रनतजष्ठत ि◌ै। कयोंकक सभी कुछ का आरमभ र्विीं से ि◌ोता ि◌ै। भगवान् ◌्स्वयं ि◌ी यज्ञ करते ि◌ैं, स्वयं ि◌ी यज्ञ ि◌ैं और स्वयंिी यज्ञ को ग्रिण करते ि◌ैं। इसका चतुथ ि◌अध्याय में ननरूपण ि◌ोगा। अतएव मनुष्य के यज्ञ कम ि◌में परमाममा सदा ि◌ी सजममशलत ि◌ैं। कयोंकक उन्िीं से समस्त कम ि◌उमपन्न ि◌ोते ि◌ैं, कमों से यज्ञ और कफर यज्ञ से वृजष्ट, भागवत् ◌् कृपा, अवतीण ि◌ोती ि◌ै जजससे सभी कुछ फलीभूत ि◌ोता ि◌ै।

हे पाथ!व जो र्नुष्य इस लोक र्ें इस प्रकार प्रर्तृत ककये हुए चक्र का अनुसरि नहीं करता र्ह पापर्य जीर्न र्ाला है, इजतद्रयों के वर्षयों र्ें रर्ि करता है, र्ह व्यथ वही जीता है। जो मनुष्य इस आदान-प्रदान की किया को अथात् ि◌्यज्ञ को न कर के, भगवद्-संकल्प अथात् ि◌्अजग्न के अन्दर कोई ि◌ोम र्निीं करता और केवल पखणयों और वृतूरों को ि◌ी भेंट करता ि◌ै, वि पापमय जीवन ि◌ी जीता ि◌ै। इस दृजष्टकोण से अधधकांश मनुष्यों का जीवन पापमय ि◌ी ि◌ै इसशलए इसके पररणाम भी पापमय ि◌ी ि◌ैं कयोंकक आममोमसग ि◌तो ि◌ै ि◌ी र्निीं। इसी को पापमय जीवन बताया गया ि◌ै। कयोंकक यिाँजो कुछ भागवत् ◌्कृपा के पररणाम से शमलता ि◌ै, उसको मनुष्य ववराधी शजकतयों को (अथात् ि◌्पखणयों को या वृतूरों को, अपनेअि की शजकतयों को) भेंट कर देता ि◌ै।

"परंतु जो र्नुष्य आत्र्ा र्ें ही रर्ि करता है और आत्र्ा के स्र्रूपभूत आनंद र्ें तृप्त रहता है, और आत्र्ा र्ें ही संतुष्ट रहता है, उसके मलए कोई कत्तव्य कर् वनहीं ◌ंरहता।" अब यिा ◌ाँकतव्यिं कम ि◌किा गया ि◌ै, तो यि कतव्यिंकम ि◌व्यजकत के मनोवैज्ञाननक गठन से ननधारिरत ि◌ोता ि◌ै कक कौनसा कम ि◌करना चाहिये और कौनसा र्निीं करना चाहिये। जो मनुष्य परमाममा से एकमय ि◌ो गया ि◌ै उसे ककन्िीं बािरी मापदण्िों की आवश्यकता र्निीं रिती। वि तो ि◌मेशा ि◌ी आनन्द में रिता ि◌ै। उसे कम ि◌करने से कोई प्रयोजन र्निीं ◌ंि◌ै और कम ि◌न करने ◌ेसे भी कोई प्रयोजन र्निीं ◌ंि◌ै। वि तो केवल भागवत्–संकल्प अथवा भगवद्-इच्छा के अनुसार कम ि◌करता ि◌ै और प्रायः बिुत घोर कम ि◌करता ि◌ै, अकम ि◌का तो प्रश्न ि◌ी र्निीं उठता। अतः, जो व्यजकत ब्रह्म से जुि जाता ि◌ै उस पर कम ि◌करने के या न करने के कोई बािरी मापदण्ि र्निीं ◌ंलगाए जा सकते और न ि◌ी उनका कोई अथ ि◌ै। इस रूप में ि◌म इसे देख सकते ि◌ैं। वेद के इस रूपक में और अधधक गिराई में जाया जा सकता ि◌ै परंतु ◌ुवतमिान के शलये इतना समझ लेना पयाप्ति ि◌ोगा।

जो मनुष्य जगदमबा से युकत ि◌ो जाता ि◌ै उस पर कोई बािरी मापदण्ि लागू र्निीं ◌ंि◌ोते। ननष्काम कम ि◌ आहद के मापदण्ि तो ववकशसत ि◌ोतेजीव पर ि◌ी लागू ि◌ोते ि◌ैं। जो भागवत् ◌्संकल्प से जुि गया ि◌ै, जो श्रीमाताजी के साथ जुि गया ि◌ै उसके कम ि◌तो उन्िीं से ननदेशशत ि◌ोते ि◌ैं, इसशलए उस पर कम–अकम ि◌के कोई भी मानवीय मापदण्ि लागू र्निीं ◌ंि◌ोते।

"इस संसार र्ें उसे कर् वकरने से कुछ भी प्रयोजन मसद्ध करना नहींहै और न ही न करनेसे कोई पदाथ व प्राप्त करना है। उसे इन सर्स्त भूतों पर ककसी प्राप्त होनेयोग्य पदाथ वके मलए आधश्रत नहीं होना प़िता।" कमि–अकम िसे ऐसे मनुष्य को कोई लेना देना निीं। वि तो इस सब से ऊपर उठ जाता िै।

यिा ाँदो शभन्न आदश,ि - वेदवादी और वेदांतवादी - उपजस्थत िैं मानो दोनों अपनेमूलगत परस्पर-पाथकिय और ववरोध को शलये िुए खिे िैं। एक ओर िै वेदवादी का यज्ञ के द्वारा और मनुष्यों तथा देवताओं के परस्पर-आश्रय के द्वारा इिलोक में सांसाररक भोगों और परलोक में परम कल्याण की प्राजप्त का सकिय आदश,ि और उसी के सामने दूसूरा िै उस मुकत पुरुष का कठोरतर (वेदांतवादी) आदश िजजसका आममा के स्वातंत्र्य में जस्थत िोने के कारण भोग से या कमों से अथवा मानव-जगत् ्से या हदव्य जगतों से कोई लेना-देना निीं,ं जो केवल परम् ्आममा की शांनत में ननवास करता िै और ब्रह्म के प्रशांत आनन्द में आनंहदत िोता िै। इसके आगे के श्लोक इन दो चरम पंथों के बीच समन्वय साधनेके शलये भूशमका तैयार करते िैं; इस समन्वय का रिस्य यि िै कक उच्चतर समय की ओर अशभमुख िोती अकम िनिीं, अवपतु ननष्काम कम िै जो उस समय की उपलजब्ध के पिले और पीछे भी वांछनीय िै। मुकत पुरुष को कम िके द्वारा कोई लाभ अजजति निीं करना, परंतु अकम िसे भी उसे कोई लाभ निीं ंउठाना; और उसे जो अपना चयन करना िै वि त्रबल्कुल भी ककसी व्यजकतगत उद्देश्य के अनुसार निीं िोता ।...

इस शशक्षा का संपूण िअथ िऔर भाव व स्वरूप िम यज्ञ, कम िऔर ब्रि, इन मित्त्वपूण िशब्दों की जैसी व्याख्या करते िैं उसी के अनुरूप िो जाता िै। यहद यज्ञ का अथ िकेवल वैहदक यज्ञ िी िो, यहद जजस कम सिे यि यज्ञ उमपन्न िोता िै वि वैहदक कमववधध िी िो और यहद वि ब्रह्म जजससे समस्त कमों का उद्भव िोता िै वि वेदों की शब्दराशशरूप शब्दब्रह्म िी िो तो वेदवाहदयों के शसद्धान्त की सब बातें स्वीकृत िो जाती िैं और कुछ निीं रि जाता। आनुष्ठाननक यज्ञ संतनत, संपवर्त् और भोग की प्राजप्त का उधचत साधन िै... यिााँ तक कक मोक्ष भी, परम कल्याण भी, आनुष्ठाननक यज्ञ से प्राप्त िोना िै। इसका कभी पररमयाग निीं ंकरना चाहिये। यिााँतक कक मुमुक्षु ुको भी आनुष्ठाननक यज्ञ करते रिना िोता िै, यद्यवप आसजकत-रहित िोकर; आनुष्ठाननक यज्ञों और शास्त्रोकत कमकाण्ड िकमों को ननशलप्ति भाव से करने ेसे िी जनक जैसों को आध्याजममक पूणता िऔर मुजकत प्राप्त िुई। स्पष्टत: िी, गीता का यि अशभप्राय निीं िो सकता; कयोंकक यि ग्रंथ की शेषे सारी शशक्षा के ववपरीत िोगा। चौथे अध्याय में यज्ञ की दी गई जो उद्बोधक व्याख्या िै उसके त्रबना भी, इस वतमान भाग में िी िमें पिले िी इसके व्यापक अथ िका संकेत प्राप्त िोता िै जिााँ यि किा गया िै कक यज्ञ कम िसे उमपन्न िोता िै, कम िब्रह्मसे ब्रह्म अक्षर से, और इसशलए सवगित ब्रह्म यज्ञ में प्रनतजष्ठत िै। यिााँ पर 'इसशलए' शब्द का संयोजक संबंध और 'ब्रह्म' शब्द की पुनरुजकत का ववशेषे अथ िै; इससे यि स्पष्ट िो जाता िै कक जजस ब्रह्म से सब कम िउमपन्न िोते िैं उस ब्रह्म को िमें प्रचशलत वेदवाहदयों के शब्दब्रह्म के अथ िमें निीं,ं अवपतु ुवेद का रूपकाममक अथ िकर के सजनिकारी शब्द को सवगित ब्रह्म के साथ, शाश्वत पुरुष के साथ, सब भूतों में जो एक आममा िै उसके साथ तथा

समस्त भूतों की कियाओं के अन्दर प्रनतजष्ठत जो ब्रह्म ि◌ै उसके साथ, एक समझना ि◌ोगा।... प्रकृनत की समस्त किया ि◌ी, अपनेवास्तववक स्वरूप में एक यज्ञ ि◌ै जजसमें हदव्य पुरुष सभी तपों, कमों और यज्ञ के भोकता ि◌ैं और सभी प्राखणयों के ईश्वर ि◌ैं, **'भोक्तारं यज्ञतपसां सर्लवोकर्हेश्रर्**'◌्**।** और, इन भगवान् ◌्को, जो सवगित ि◌ैं तथा यज्ञ में प्रनतजष्ठत ि◌ैं, 'सवगितंयज्ञे प्रनतजष्ठतं', जानना ि◌ी सच्चा ज्ञान ि◌ै, वैहदक ज्ञान ि◌ै।

iii. 20, v.29

यि एक मूलभूत तथ्य ि◌ै। यिाँइस ब्रह्माण्ड्में (The Two who are one are the might and right in things. - Savitri, p. 63) परम प्रभु स्वयं ि◌ी अपने दो रूपों में ववद्यमान ि◌ैं - परम प्रभु स्वयं और उनकी धचत्−्शजकत। तीसरा कोई ि◌ै ि◌ी निीं। ये जो भी रूप ि◌ैं वे ◌ेसारे ब्रह्म के ि◌ी रूप ि◌ैं। उन्िीं ि◌ंकी चेतना उन सब के साथ कायि−व्यविार करती ि◌ै। परमाममा के आनन्द के शलए ि◌ी यि सारा काम ि◌ो रिा ि◌ै। इस दृजष्टकोण के अनतररकत अन्य ककसी दृजष्टकोण से तो ि◌म सच्चेरूप में आगे बढ़ ि◌ी निीं ◌ंसकते। जब व्यजकत चेतना के इस प्रवाि में अि◌ं का कोई स्पंदन पैदा करता ि◌ै, अपनेशरीराहद के आनंद के शलए कोई अि◌ंपरक स्पंदन पैदा करता ि◌ै तब वि यि भूल जाता ि◌ै कक परा-प्रकृनत यि सारा व्यापार उसके अि◌ं के शलए निींबजल्क परमाममा के आनंद के शलये करती ि◌ै, और इसी कारण व्यजकत को थपेड़े ◌ेपड़ते ि◌ैं। इसशलए जो भी व्यजकत स्वयं की तुजष्ट के शलए काम करेगा, उसकी दुगुनित ि◌ोगी ऐसा ि◌ो ि◌ी निीं सकता कक न ि◌ो कयोंकक वि ऐसे बिाव को मोड़ने का प्रयास कर रिा ि◌ोता ि◌ै जजसे मोड़ने ◌ेकी सामथ्य ि◌ उसमें निीं ◌ंि◌ै। कयोंकक वि तो पराशजकत ि◌ै। परन्तु वि शजकत साथ−ि◌ी-साथ ि◌मारी चेतना को बढ़ानेका काम भी करती ि◌ै इसशलए वि ि◌मारी इन सब चीजों को अपनी लिरों के उतार-चढ़ावों में सिन करती ि◌ै। परंतु इस भागवत्−्संकल्प के ववरुद्ध जाकर ि◌म कभी भी कोई कल्याणकारी चीज निींप्राप्त कर सकतेकयोंकक इस भागवत्−्संकल्प का काय ि◌ि◌ै सभी कुछ को यज्ञ रूप में परम प्रभु को समवपति करना।

परन्तु इन भगवान् ◌्को देवताओं, अथात्◌्प्रकृनतस्थ हदव्य पुरुष को शजकतयों, के द्वारा ि◌ोती इससे एक ननमनतर कोहट की किया में तथा इन शजकतयों के मानव की आममा के साथ ि◌ोने ◌ेवाले शाश्वत संसग ि◌में जाना जा सकता ि◌ै जजसमें ये देवता और मानव आममा परस्पर एक दूसूरे को दान देते ि◌ैं और प्रनतदान में प्राप्त करते ि◌ैं, एक दूसूरे की सिायता और संवधनि करते ि◌ैं, और एक दूसूरे की किया और तुजष्ट को बढ़ाते ि◌ैं, यि एक ऐसा दान-प्रनतदान ि◌ै जजसमें मनुष्य परम कल्याण का अधधकाधधक अधधकारी ि◌ोता जाता ि◌ै। वि यि अनुभव कर लेता ि◌ै कक उसका जीवन प्रकृनत में इस परम् ◌्पुरुष की हदव्य किया का एक अंग ि◌ै, न कक इससे कोई पृथक् चीज ि◌ै जजसको कक उसकी अपनी तुजष्ट के शलए ि◌ी धारण करना या ननवाि करना ि◌ो। वि अपने भोगों को और कामनाओं की तुजष्टयों को यज्ञ के फल और हदव्य वैजश्वक कियाओं में रत देवताओं की देन के रूप में मानता ि◌ै। और, वि पापमय अि◌ंकारपूण ि◌स्वाथपिरता - जजसके अनुसार इन भोगों और तुजष्टयों को (देवताओं की सिायता के त्रबना) स्वयंअपने बल पर ि◌ी छीना जा सकता ि◌ै और जजनका प्रनतदान या आभार व्यकत करनेकी आवश्यकता निीं− के शमथ्या और दुष्ुट भाव से प्रेररत ि◌ोकर उन भोगों का पीछा करना छोड़ देता ि◌ै। ज्यों-ज्यों यि भाव उसमें बढ़ता जाता ि◌ै, मयों-मयों वि अपनी इच्छाओं को गौण व अधीन करता जाता ि◌ै, जीवन और कमों के ववधान के रूप में यज्ञ को जानकर संतुष्ट ि◌ो जाता ि◌ै और यज्ञावशेषे को ि◌ी पाकर पररतृपूत ि◌ो जाता ि◌ै, शेषे सब कुछ को अपने

जीवन और जगत्–्जीवन के बीच परस्पर िोने ेवाले मिान् ्और परम हितकर आदान-प्रदान पर मुकत रूप से न्यौछावर कर देता िै। जो कोई कम िके इस ववधान के ववरुद्ध जाता िै और अपने िी पृथृक् व्यजकतगत स्वाथ िके शलए कमों और भोगों में शलप्त रिता िै वि व्यथ िी जीता िै; वि जीवन के वास्तववक अथ िऔर उसके उद्देश्य और उसकी उपयोधगता से तथा जीव की ऊध्वगिनत से वंधचत रिता िै; वि उस माग िपर निीं ंिै जो परम कल्याण की ओर ले जाता िै। परन्तु परम पद की प्राजप्त तब िोती िै जब यज्ञ देवताओं के शलए निीं,ं अवपतु उन सविगत परमेश्वर के शलए ककया जाता िै जो यज्ञ में प्रनतजष्ठत िैं, देवता जजनके कननष्ठ रूप और शजकतयााँ िैं, और जब व्यजकत अपने ननमनतर स्वमव को छोड़कर, जो कामना और भोग में रत िै, स्वयं के कतिा िोने ेके बोध को मयाग देता िै और सभी कमों की वास्तववक कती, प्रकृनत, को मानने ेलगता िै तथा अपने स्वयंभोकता िोने के भाव को हदव्य पुरुष को, उस उच्चतर और ववश्वाममा को सौंप देता िै जो कक प्रकृनत की कियाओं ंका वास्तववक भोकता िै। उसी आममा में, न कक ककसी व्यजकतगत भोग में, उसे अपना एकमात्र संतोष, पूण ितृजृप्त और ववशुद्ध आनन्द प्राप्त िोता िै; उसे अब कम िया अकम िसे कोई लाभ निीं,ं वि ककसी भी चीज के शलए न देवताओं पर आधश्रत िै न मनुष्यों पर, ककसी से ककसी लाभ की अशभलाषा निीं ंरखता; कयोंकक स्वाममानन्द िी उसके शलए सवथा पयाप्ति िै; परन्तु कफर भी वि केवल भगवान् ्के शलए, आसजकत या कामना से रहित िोकर शुद्ध यज्ञरूप से कम िकरता िै। इस प्रकार वि सममव को प्राप्त िोता और प्रकृनत के त्रत्रगुण से मुकत िो ननत्रैगुण्य िो जाता िै; जब उसके कम ि प्रकृनत की कमधिारा में जारी भी रिते िैं तब भी उसकी आममा प्रकृनत की अननजश्चतता में निीं,ं अवपतु अक्षर ब्रह्म की शांनत में जस्थत िोती िै। इस प्रकार यज्ञ परमपद की प्राजप्त में उसका साधन-माग ििोता िै।

यज्ञसंबंधी इस प्रकरण का यिी अशभप्राय िै ऐसा इसके आगे जो कुछ किा गया िै उससे स्पष्ट िो जाता िै, अथात् ि्लोक-संग्रि को कमों के ध्येय के रूप में स्थावपत कर के, प्रकृनत को िी कमों की एकमात्र कमी बताकर और हदव्य पुरुष को उन सब कमों का समान भर्त्ाि बताकर, जजससे कक सभी कम,ि उन कमों के िोते समय भी, अपणि करने िोते िैं- यि आंतररक रूप से सब कमों का मयाग करना और कफर भी भौनतक रूप से कम िको करते रिना िी यज्ञ की पररसमाजप्त िै, तथा यिी अशभप्राय िै ऐसा इस अशभपुजष्ट से भी स्पष्ट िो जाता िै कक सम और ननष्काम बुद्धध से इस प्रकार जो कममिय यज्ञ ककया जाता िै उसका फल कमों के बंधनों से मुकत िोना िै।

iii 27, iii. 30, iv. 23

इसमें मुख्य बात िै मनुष्यों और देवताओं के बीच िोने ेवाला आदान-प्रदान। परन्तु देवताओं से अशभप्राय प्रचशलत तौर पर िम जजन्िें देवता किते िैं उनसे निीं ंिै और आदान-प्रदान का अथ िि यि निीं ंकक कोई मनोकामना पूनत िके शलए पूजा-पाठ करने ेया प्रसाद आहद चढ़ानेकी बात िो। इस प्रकार के आदान-प्रदान को सच्चा यज्ञ निीं किा जा सकता। कयोंकक देवता तो व्यजकत के अंदर उसकी ववशभन्न मनोवैज्ञाननक शजकत-सामथ्य िके रूप में प्रकट रिते िैं, वे अध्याममपरक शजकतयााँ िैं। जब व्यजकत अपने-आप को इन शजकतयों के अधीन रखकर उनके अंतगति काम करता िै तब इसका अथ िै कक वि उन देवताओं को भेंट अवपति कर रिा िै। जब व्यजकत मानशसक या प्राखणक आदश िके शलए काम करता िै तब उनके पीछे जस्थत मनोवैज्ञाननक या कफर अध्याममपरक देवताओं को वि अपनी शजकत-सामथ्य िभेंट करके पुष्ट करता िै। इस प्रकार व्यजकत अपनेजीवन को ककसी आदश िया मत-ववशेषे के शलए समवपति कर देता िै। जैसे गीता में भगवान् ्किते िैं कक जो मनुष्य भूतों के शलए यज्ञ करते िैं वे भूतों को प्राप्त िोते

ीं, यक्षों की पूजा करने वाले यक्षों को, वपतरों को पूजा करने वाले वपतरों को, देवताओं की पूजा करनेवाले देवताओं को और मेरी पूजा करने वाले मेरे को प्राप्त करते िैं। व्यजकत के अंदर भौनतक, प्राखणक, मानशसक जो ववशभन्न प्रकार की वृवृत्यां ॉिोती िैं उनके पीछे सूक्ष्म सत्ताएँ िोती िैं। जब व्यजकत अपनी प्राखणक इच्छाओं, कामनाओं और

भौनतक आवश्यकताओं की पूनत िकी चेष्टा करता िै तब इसका अथ िै कक वि केवल उन प्राखणक सत्ताओं के शलए

ी किम िकरता िै जजन्िें यक्ष, गन्धव,ि राक्षस आहद की संज्ञा दी गई िै और उनसे व्यजकत को जीवन में जो शमलता िै

वि तो स्पष्ट िी िै। और जब व्यजकत उन सत्ताओं को जीवन में और अधधक स्थान देता िै तो, धीरे-धीरे वे व्यजकत के जीवन पर अधधकार कर लेते िैं जजससे जीवन में और कुछ निीं ंबचता। तो मनुष्य धीरे-धीरे यि सीखता िै कक ये सिी चीजें निीं। यहद मनुष्य या समाज का कोई आदश िनिीं तो ऐसा मनुष्य या ऐसा समाज पशुतुल्य िी

ी। कयोंकक इस तरीके के काम तो पशु भी करते िैं। जब व्यजकत ककसी आदश िके शलए प्रयमन करता िै- कफर वि

चािे बिुत ननमन कोहट का िी कयों न िो - तो वि कुछ अधधक ऊपर के देवताओं का अनुसरण कर रिा िोता िै और तब भौनतक कामनाओं और वासनाओंमें िी घोर रूप से शलप्त रिनेकी बजाय उसमें कुछ सुधार आता िै। ऐसा कौन मनुष्य िोगा जो थोड़ा-बिुत सुसंस्कृत िो पर यि न सोचे कक यि घोर शलप्तता तो ठीक निीं ंिै? इस संस्कार के त्रबना तो मनुष्य केवल ननमन सुख की िी लालसा करता िै और ककन्िीं श्रेष्ठतर चीजों से उसे कोई मतलब निीं िोता। जब व्यजकत अपने-आप को ववशभन्न प्रेरणाओं के प्रनत या ववशभन्न देवताओं (अथात् िववशभन्न मनोवैज्ञाननक शजकतयों) के प्रनत समवपति करता िै - कयोंकक िर एक का अपना-अपना आदश िोता िै - और उन्िें अपनेजीवन में प्रयुकत करता िै तब वि उस शजकत की अशभव्यजकत प्रदान करता िै।

----

* कमणीकम िको सधचत करने के शलये गीता में जो शब्द प्रयुकत िुआ िै उसकी व्याख्या अवश्य िी इस अथ िमें की गई िै कक िमें फल का ववचार ककये त्रबना अपना कतव्यि कम िकरना चाहिये। ककन्तु यि एक ऐसी धारणा िै जो यूरोपीय संस्कृनत की उपज िै जो आध्याजममक की

अपेक्षा किीं अधधक नैनतक िै और अपनी अवधारणा में आंतंररक रूप से गंभीर िोने की अपेक्षा किींअधधक बाह्य िै। कर्त्व्यि जैसी ककसी सामान्य बाह्य वस्तु ुका अजस्तमव िी निीं ंिै; िमारे सामने तो केवल कर्त्व्यि िोतिैं जो प्रायः परस्पर ववरोधी िोते िैं। ये कतव्यि िमारे

पररवेश, िमारे सामाजजक समबन्धों और िमारी बाह्य जीवन-जस्थनत से ननधाररत िोते िैं। अपररपकव नैनतक प्रकृनत को सुधारने तथा स्वाथपूण िकामना के कम िको ननरुमसाहित करने वाले प्रनतमान की स्थापना करने में ये भारी मित्त्व के िैं। यि पिले िी किा जा चुका िै कक

जब तक अभीप्सु ुके पास कोई आन्तररक प्रकाश निीं ंिोता तब तक उसे उस सवोर्त्म प्रकाश के अनुसार िी चलना िोगा जो उसे उपलब्ध िै;

और इसमें कतव्यि, कोई शसद्धान्त, कोई ननशमर्त् या ध्येय उन प्रनतमानों में से िैं जजनकी वि कुछ काल के शलए स्थापना तथा अनुसरण कर सकता िै। परन्तु यि सब िोते िुए भी, कतव्यि कम िबाह्य चीजें िैं, आममा की वस्तुनिीं ंऔर ये इस पथ में कम िके चरम मानक निीं िो

सकते। यि सैननक का कर्त्व्यि िै कक जब उसे आह्वान प्राप्त िो तो वि युद्ध करे, यिा ंँतक कक अपने बंधु-बांधवों पर भी गोली चलावे। परन्तु ऐसा या इससे शमलता-जुलता और कोई मानदण्ड मुकत पुरुष पर लागूनिीं ंककया जा सकता। विीं ंदूसरी ओर, प्रेम या करुणा रखना, िमारी सर्त्ा के उच्चतम समय का अनुसरण करना और भगवान् ्के आदेश का पालन करना कोई कतव्यि निीं ंिैं। ये चीजें तो जब प्रकृनत भगवान् ्की ओर ऊपर चढ़ती िै वैसे-वैसे उसके धम िैं, एक आमम-जस्थनत से कम िका प्रवाि िै, आममा का उच्च समय िै। कमों के मुकत कता िका कम िआममा से नन:सृत इस प्रकार का प्रवाि िी िोना चाहिये। यि भगवान् ्के साथ उसके आध्याजममक शमलन के स्वाभाववक पररणाम के रूप में उसे प्राप्त िोना चाहिये अथवा उसके अन्दर प्रकट िोना चाहिये, न कक मानशसक ववचार एवंसंकल्प और व्याविाररक बुद्धध या

तस्र्ादसक्तः सततं ंकायं ंकर् वसर्ाचर ।

असक्तो ह्याचरतकर् वपरर्ाप्नोतत पूरुषः ।। १९।।

१९. इसमलये अनासक्त होकर सर्दवा ककये जानेयोग्य कर्"व को कर; क्योंकक अनासक्त होकर कर् वकरने ेसे र्नुष्य परर् ्पद को प्राप्त कर लेता है।

...तीन प्रकार के कम िोतें; एक वि जो वैयजकतक सुख-भोग के शलए यज्ञ के त्रबना ककया जाता ि, जो सवथा स्वाथी और अिंकारपूण िोता ि और जीवन के यथाथ िधम,ि ध्येय और उपयोधगता से वंधचत रिता ि, 'मोघं पाथ िस जीवनत'; दूसूरा वि कम िजो िोता तो ि कामना से िी ि पर यज्ञ के साथ, और इसका भोग केवल यज्ञ के फल के रूप में िी िोता ि, इसशलए उस िद तक यि कम िसमवपति और पववत्रीकृत िोता ि; तीसरा वि कम िजो ककसी प्रकार की कोई कामना या आसजकत से रहित िोकर ककया जाता ि। यि अंनतम प्रकार का कम ििी जीव को परम् ्पद प्राप्त कराता ि, 'परमाप्नोनत पूरुषः'।

इसमें श्रीअरववन्द अनासकत कम,ि कतव्यि कम िकी व्याख्या कर रि ि कक कतव्यि कम िकया ि। इसमें कर्त्व्यि कम िकी उच्चतर व्याख्या भी की गई ि और ननमनतर भी। उच्चतर व्याख्या में तो व्यजकत का ककसी सामाजजक मानदण्ि से कोई लेना-देना निंिता। उसका अपना िी ववधान िोता ि। वववेकानंद जी ने किा कक जब व्यजकत ककसी कतव्यि के रूप में कम िकरता ि तो वि अपनी आममा के ऊपर सााँकलें िालकर सारे जीवन भर तकलीफ पाता रिता ि। परन्तु संसार में इस बात का बोध कैसे िो कयोंकक समाज में तो कतव्यि का बुित ब्रिा अंकुश ि, और सभी मनुष्यों को उसका िवाला हदया जाता ि। ऐसा इसशलए आवश्यक ि कयोंकक अधधकांश मनुष्य अपनेजीवन में केवल अपने सुख, आराम, पसंद, नापसंद आहद चीजों के अनतररकत और कुछ सोचते िी निं ंि। व्यजकत अपने-आप से और कोई प्रश्न पूछता िी निं ि। उसे तो यि पता िी निं ंिोता कक इन चीजों के अनतररकत जीवन में अन्य भी कोई प्रश्न िो सकता ि। उसके जीवन का तो यिी उद्देश्य िोता ि कक अच्छे मकान में रि गए, अच्छा खाना खा शलया, जो पसंद िों उन दोस्तों के साथ बैठ गए, जजससे मन प्रसन्न िो वि काम कर शलया, नौकरी में उन्ननत शमल गई, आहद-आहद। इस प्रकार अधधकांश मनुष्य तो पशु ुसरीखा जीवन व्यतीत करते िं। इस दायरे में लगभग ननन्यानवे प्रनतशत मानवजानत आ जाती ि। तो ऐसे में कतव्यि बोध की तो परम आवश्यकता ि। कयोंकक मनुष्य इतना स्वाथी िोता ि कक उसके शलए समाज का उस पर दबाव िोता ि, कतव्यि का यि जुआ िोता ि कक उसे अपने बच्चों, माता-वपता, भाई-बिनों आहद का ध्यान रखना चाहिये। पजश्चम में तो कतव्यि कम िका अधधक दबाव निं रिा, वािाँपररवार के प्रनत कतव्यि कम िको समाप्त िी कर हदया गया ि। कतव्यि जैसी कोई चीज ि िी निं। वािाँ कतव्यि का बोध एक नागररक के रूप में अपनेदेश के प्रनत तो ि, अन्य कोई निं।

परंतु इसकी उपयोधगता यिी ि ै कक यहद इसके अनुसार लोगों पर अंकुश न लगाया जाए तो वे घोर रूप से स्वाथी िी रिंगे। इसशलए विााँ इस अंकुश का उपयोग ि ै। परंतु जो व्यजकत सन्माग िमें चलना चािता ि ै उसके शलए कतव्यि का कोई उपयोग निींिै। ऐसे व्यजकत को तो भीतर से यि बोध िोना चाहिए कक उसे कौनसा कम िकरना चाहिये। यिााँश्री अरववन्द किते िैं कक यि कतव्यि कम िकी अवधारणा यूरोपीय ि ै अन्यथा जब व्यजकत आगे बढ़ता ि ै तब सभी जीवों से प्रेम करना, भगवान् के प्रनत ननष्ठा रखना कोई कत्र्तव्य निीं िैं। ये तो आध्याजममक जीवन के ववधान िैं। जब व्यजकत आगे बढ़ेगा तो सिज रूप से ये उसके अंदर प्रकट िोंगे िी। ऐसे में व्यजकत ककसी के साथ दुवुयविार कर िी निीं सकता। चेतना की ऐसी जस्थनत में व्यजकत की ऐसी सोच निीं रिती कक सबके साथ प्रेम रखना उसका कतव्यि ि ै। सभी के साथ प्रेम रखना तब उसका सिज स्वभाव िो जाता ि ै और इससे शभन्न तो वि कर िी निीं सकता। सामने आए ककसी व्यजकत के प्रनत उसमें जो सद्भाव आ जाता ि ै उसी के अनुसार वि कम ि कर देता ि ै, कयोंकक यिी उसका सिज स्वभाव िोता ि ै। ऐसी जस्थनत में कर्त्व्यि के ववचार की कोई उपयोधगता िी निीं ि ै। कतव्यि बोध की उपयोधगता तो पाशववक मनुष्य के शलए ि ै जजससे कक व्यविार के शलए बािरी ननयम-ववधान और अंकुश की आवश्यकता िोती ि ै। आध्याजममक वपपासुके शलए तो इसकी कोई उपयोधगता निीं ि ै। उसका तो एक िी ध्येय िोता ि ै कक अपनेउद्देश्य को पूरा करने के शलए जो काय िउसके शलए आवश्यक ि ै वि करे। उसके शलए कतव्यिों के लबादे को ओढ़ने की कोई बाध्यता निीं िोती। और कफर सबका सच्चा सममान करना, सबके प्रनत करुणा रखना, प्रेम करना, जीवमात्र के प्रनत सिानुभूनत रखना, इन्िें कतव्यि निीं किा जा सकता। ये सब तो उस प्रकृनत के ववधान िो जाते िैं जो परमामा की ओर चलती िैं। ये उसमें सिज रूप से आववभूति िोंगे।

॥. हदव्य कमों का शसद्धान्त

तो यि ि ै गीता की यज्ञववषयक शशक्षा का अशभप्राय। इसका पूण िमम िपुरुषोर्त्म-तत्त्व के ववचार पर ननभरि करता ि ै, जजसका वववेचन अभी तक अच्छी तरि निींिुआ ि ै गीता के अठारि अध्यायों में बिुत बाद में िी इस तत्त्व का स्पष्ट ननरूपण िुआ ि ै, और इसीशलए िमें गीता की प्रगनतशील वणनि-शैली की मयादिा का अनतिमण कर के भी इस केन्द्रीभूत शशक्षा की चचािपिले से िी करनी पिी। अभी श्रीगुरु... पुरुषोर्त्म भाव की स्पष्ट भाषा में निीं बोल रिे, अवपतु 'म'ैं, कृष्ण, नारायण, अवतार-रूप से बोल रिे िैं उन्िोंनेपुरुषोर्त्म की परम सर्त्ा का तथा अक्षर ब्रह्म के साथ - जजनमें ब्राह्मी जस्थनत को प्राप्त कर पूण िशाजन्त और समता की अवस्था में अपने-आपको जस्थर करना पिला काम ि ै और िमारी अनत आवश्यक आध्याजममक मागाँ ि ै उसका कया संबंध ि ै इसका एक संकेतमात्र हदया ि ै, एक िल्की-सी झलक भर हदखायी ि ै।... परन्तु यिााँ दो कहठनाइयााँ उपजस्थत िोती िैं। प्रथम यि कक इस प्रशान्त-जस्थर अक्षर आममा और प्रकृनत के कम िमें एक ववरोध प्रतीत िोता ि ै। जब िम इस अक्षर आममसर्त्ा में एक बार प्रवेश कर चुके तब कफर कम िका अजस्तमव िी कैसे रि सकता ि ै और वि जारी कैसे रि सकता ि ै.?... परमेश्वर यहद केवल यिी अक्षर पुरुष िैं और व्यजष्ट-पुरुष केवल कोई ऐसी चीज ि ै जो उसमें से ननकलकर उस शजकत के साथ इस सृजृष्ट में आया ि ै, तो जजस क्षण व्यजष्ट-पुरुष लौटकर आममा में जस्थत िोगा उसी क्षण सारी सृजृष्टकिया बन्द िो जाएगी और रि जाएगी केवल परम एकता और परम ननस्तब्धता। दूसूरी बात

यि ◌ै कक यहद अब भी ककसी रिस्यमय रूप से कम ◌ जारी रिे तो भी आममा जब सब पदाथों के शलए सम ◌ै तब कम ◌ ◌ीं िया न ◌ों और ◌ों तो चािे जैसे भी ◌ों, इसका कोई मित्त्व निीं। ऐसी अवस्था में यि भीषण और ववनाशकारी प्रकार का कम ◌ कयों, यि रथ, यि युद्ध, यि योद्धा, यि हदव्य सारथी ककसशलए?

गीता इसके उर्त्र में परमेश्वर को इस रूप में प्रस्तुत करती ◌ै कक वे अक्षर पुरुष से भी मिान् ◌् ◌ैं, अधधक व्यापक ◌ैं, जो एक ◌ी साथ यि आममा भी ◌ैं और प्रकृनत में ◌ोनेवाले कम ◌के अधीश्वर भी। परन्तु वे अक्षर ब्रह्म की सनातन अचलता, समता, कम ◌और व्यजष्टभाव से अधधक श्रेष्ठता से प्रकृनत के कमों का संचालन करते ◌ैं। मि कि सकते ◌ैं कक यिी सर्त्ा की वि जस्थनत ◌ै जजससे वे ◌कमसंचालन करते ◌ैं, और इस जस्थनत में संवद्धिधत ◌ोने ◌से ◌म उन्◌ीकी सर्त्ा और हदव्य कमों की जस्थनत में संवद्धिधत ◌ो रिे ◌ोते ◌ैं।... इसशलए पुरुषोर्त्म की धारणा,

जो कक यिााँ अवतीण ◌ नारायण, कृष्णरूप में हदखायी देते ◌ैं, इसकी कुंजी ◌ै। इसके त्रबना ननमन प्रकृनत से ननवृर्त्

िोकर ब्राह्मी जस्थनत में चले जानेका पररणाम ◌ोगा मुकत पुरुष का ननजष्िय, और जगत् ◌के कमों से उदासीन ◌ो जाना; और इसके ◌ोने से यिी ननवृर्त् एक ऐसा उपाय ◌ो जाती ◌ै जजससे जगत् ◌के कमों को भगवान् ◌के ◌ी 'भाव,

उन्◌ीं ◌के स्वभाव, और उन्◌ीं ◌की स्वतंत्रता के साथ शलया (ककया) जाता ◌ै। शान्त ब्रह्म को अपनेलक्ष्य के रूप में देखो तो संसार और उसके समस्त कमों का मयाग करना ◌ी ◌ोगा; और उन ईश्वर, भगवान्, ◌् पुरुषोर्त्म को अपने लक्ष्य के रूप में देखो, जो कम ◌के परे ◌ोने ◌पर भी कम ◌के आंतररक आध्याजममक कारण और ध्येय तथा मूल संकल्प ◌ैं, तो संसार अपने सारे कमों के साथ जीत शलया जाता ◌ै और जगत् ◌की हदव्य परामपरता में (अथवा उसका अनतिमण करते ◌ुए) उसे अधधकृत कर लेता ◌ै। तब वि कारागार निीं ◌अवपतु ◌एक 'राज्यंसमृद्ध' बन जाता ◌ै जजसे ◌मनेननरंकुश अिकार की सीमा का नाश कर, कामनारूपी जेलर के बंधन को काटकर और अपनी वैयजकतक अधधकार-संपवर्त् और भोग के कैदखाने को तोड़कर, आध्याजममक जीवन के शलये जीता ◌ै। तब मुक्त33 ववश्वाममभूत अंतराममा ◌ी स्वराट्-सम्राट् ◌ो जाती ◌ै।

यहद एकमात्र वास्तववक चीज अक्षर पुरुष ◌ी ◌ो तो कफर कम ◌करनेका कोई उपयोग ◌ी निीं ◌ै, उसकी कोई उपयोधगता ◌ी निीं ◌रिती। भगवान् ◌श्रीकृष्ण, जो कक पुरुषोर्त्म ◌ैं, कि रिे ◌ैं कक वे अक्षर पुरुष से श्रेष्ठ ◌ैं इसीशलए हदव्य कम ◌का अजस्तमव ◌ै। यहद ऐसा निीं ◌◌ोता तो अजुनि को सारी शशक्षा देकर वे ◌युद्ध का आदेश कैसे कर सकते थे। उन लोगों की बुद्धध का यि हदवाशलयापन ◌ी ◌ै जो किते ◌ैं कक गीता ननष्काम कम ◌करके सब कुछ छोड़ देने की, संसार को मयाग देनेकी शशक्षा देती ◌ै। भला गीता ऐसा कैसे कि सकती ◌ै कयोंकक अजुनि को तो उसे घोर युद्ध कम ◌में ननयोजजत करना ◌ै, और संसार को शमथ्या-माया बताकर तो ऐसा ककया निीं जा सकता। इसशलए पुरुषोर्त्म की बात ◌ी गीता का सार ◌ै और कफर उन्◌ें समवपति करके जो कम ◌ककए जाते ◌ैं वे हदव्य कम ◌ ◌ोते ◌ैं। आजकल की आधुननक धाशमकि शशक्षा के अनुसार ननष्काम कम ◌◌ी हदव्य कम ◌ैं। अब गीता इन ववषयों से ननकलकर अधधक जहटल और साधना के अधधक गिन ववषयों में प्रवेश करती जाएगी, अधधक गिरी ◌ोती जाएगी।

यिा ाँगीता में वखणति कुछ बातें मानशसक ि़ैं तथा कुछ मिसूस करने ेकी ि़ैं। मानशसक बात तो सरल ि़ै। गीता आरमभ में केवल दो जस्थनतयों की बात करती ि़ै। एक जस्थनत में तो पुरुष प्रकृनत के चंगुल में ि़ै, उसकी कैद में ि़ै। ठीक-ठीक ककस प्रकार की कैद में ि़ै वि तो ि़र पुरुष की जस्थनत के अनुसार शभन्न-शभन्न ि़ै। पर इसमें सविसामान्य कैद ि़ै ज़ि प्रकृनत के, मानशसकता के, भावना आहद के ववशभन्न ननयम जजनके अधीन रिकर वि जो कुछ भी उसे शमल जाता ि़ै उतना भर ले लेता ि़ै अन्यथा उस कैद में तकलीफ पाता रिता ि़ै। इस प्रकार व्यजकत अपनेसच्चे स्वरूप को भूलकर ननरंतर अपनी कामनाओं, इच्छाओं, लोभ लालच से कुछ प्राप्त करके सुख पाने का प्रयमन करता रिता ि़ै। परन्तु वि यि निीं ंसमझता कक इन प्रकृनत के ननयमों में कोई सार निीं ंि़ै और इनसे उसे कभी कुछ निींशमल सकता। और इनके अंतगति रिति़ुए जो भी ननमन सुख-भोग उसे ेप्राप्त िो रिा ि़ै वि भी अंततः उसे निींप्राप्त िोने वाला और उनका नाश िोने वाला ि़ै। इस प्रकार मनुष्य अपना सच्चा स्व खो बैठता ि़ै और जीवन भर सारी चीजों में यि व्यवस्था करने ेका प्रयास करता ि़ै कक ककस प्रकार थोि़ा-सा आराम शमल जाए, थोि़ ेसे साधन िों तो उर्न्ीं धचन्ता न रिे जजससे कक यहद काम न भी करना पि़े ेतो भूखे न मरे, मकान िो जाए तो रिने का साधन िो जाये, कुछ इस तरि के शमत्र िों, जानकार िों कक कभी उसे ककसी प्रकार की कोई असुववधा न िो। यिी अधधकांशतः कम या अधधक िम सबकी जस्थनत िोती ि़ै और इसमें रिने ेवाला व्यजकत इन्िीं चीजों को पाने का प्रयमन करता रिता ि़ै। इसे किति़ैं क्षर पुरुष, अथाित् ्वि जो नष्ट िोने ेवाला ि़ै। इस प्रकार के जीवन में कोई सार निीं ंि़ै। मनुष्य प्रकृनत के सत्त्व, रज, तम में फंसा रिता ि़ै और द्वन्द्व - सफलता-असफलता, सुख-दुःख, िानन-लाभ, शीत-उष्ण- आहद चलते रिते ि़ैं और इनमें मनुष्य किि़ी ेकी तरि त्रबलत्रबलाता रिता ि़ै।

गीता आरमभ में िी किती ि़ै कक यि कोई अच्छी जस्थनत निीं ि़ै। कयोंकक व्यजकत के अन्दर प्रभु ुका एक ऐसा रूप ि़ै जो इस प्रकृनत से त्रबल्कुल भी प्रभाववत निीं ि़ै, वि शांत ि़ै, सवित्र व्याप्त ि़ै, प्रकृनत की ककसी भी किया से ववचशलत निींिोता। उसका अपना जो आनन्द ि़ै, जो सुख ि़ै, जो समता ि़ै वि अक्षुण्ण ि़ै, संसार में चािे कुछ भी िो जाए परन्तु प्रकृनत उसका कुछ त्रबगाि़ निीं ंसकती। अतः मनुष्य को सविप्रथम साक्षी िोकर उस जस्थनत में जाना िोगा। और साक्षी रूप से प्रकृनत के सारे किया-कलापों का अवलोकन करना िोगा तब व्यजकत समझेगा कक यि सब कया िो रिा ि़ै। आरमभ में गीता इस स्तर तक आरोिण करने के शलए सांख्य शास्त्र का वणिन करती ि़ै, जजसमें व्यजकत को आमम-वववेचन द्वारा, ज्ञान द्वारा इसके वववववध सोपानों पर आरोिण करते िुए साक्षी भाव तक उठने का प्रयास करना िोता ि़ै। जैसा कक रमण मिवषि ने बताया कक िमें आमम-वववेचन द्वारा यि जानने ेका प्रयमन करना चाहिए कक 'म ैंकौन ि़ूाँ"? 'म ैंइजन्रयााँ निींि़ूाँ, म ैंमन निीं ि़ूाँ, म ैंबुद्धध निीं ि़ूाँ, तब कफर 'म ैंकौन ि़ूाँ। यि एक जस्थनत ि़ै। जैसे िी व्यजकत इस जस्थनत से तादाममय स्थावपत कर लेता ि़ै वैसे िी वि प्रकृनत के कियाकलापों से ऊपर उठ जाता ि़ै और उसे जीवन में समझ में आने लगता ि़ै कक व्यथि िी वि अभी तक ववचशलत िो रिा था। तो यि एक अक्षर ब्रह्म में जस्थनत की अवस्था ि़ै। गीता अभी तक इससे आगे निीं गई ि़ै। इसीशलए श्रीअरववन्द कि रिे ि़ैं कक कफर हदव्य कमों के संपादन की समस्या का िल कया िोगा? हदव्य कम िोंगे िी कैसे? कयोंकक क्षर की जस्थनत में तो मूखिता के कम िी िोंगे जजसमें व्यजकत केवल सुख की िी लालसा करता रिता ि़ै और सुख-भोगों की परछाइयों का पीछा करता रिता ि़ै।

इसके समाधान के रूप में कुछ लोगों ने दूसरी जस्थनत अक्षर पुरुष में अकम िकी बताई िै। जिााँपूण िशांनत ैं, प्रशांनत िै, समता िै। कम िििोने ेया निीं िोनेसे कोई सरोकार निींिता। इस जस्थनत में आकर कम िको शलप्सा और जजस उद्देश्य से कम िककए जाते िैं वि सारा आधार िी समाप्त िो जाता िै और व्यजकत मुकत िो जाता िै। परंतु इस जस्थनत में तो कम िकी कोई संभावना निीं िै। इस जस्थनत में रिकर व्यजकत कम िकयों करेगा, कम िकरने का िेतु िी कया िोगा? अतः, क्षर पुरुष की जस्थनत में तो अज्ञानपूवकि कम िककए जाते िैं और दूसरी अक्षर की जस्थनत में, जिााँ शांनत िै, प्रशांनत िै, विााँसंस्कारवश या इजन्रयों के कम िकरने के अभ्यास के कारण यहद कम ि जारी रिते िैं तो भी व्यजकत उनको ननशलप्ति भाव से वैसे िी देखता रिता िै जैसे अपने से शभन्न दूसरे लोगों को देखता िै और ऐसे में यि मनोभाव रिता िै कक जब भी शरीर छूट जाये तब उसके परे चले जाओ। यि बुद्धधमाधगयों का, शंकराचाय िआहद ज्ञानमाधगयों का, सांख्य-शास्त्र का एक पारमपररक समाधान िै। इसके अनतररकत, वेदवाद किता िै कक अमुक कम िकरने ेसे अमुक फल की प्राजप्त िोगी। इन्िींसिब दृजष्टकोणों के कारण िी श्रीअरववन्द किते िैं कक ऐसे में तो कफर हदव्य कम िकी तो कोई संभावना िी निीं ंिै, और ऐसे में जजस प्रकार के भयंकर कम िका गीता आदेश कर रिी िै उसका तो कोई अथ ििी निींननकलता।

इसशलए, वे किते िैं कक हदव्य कम िका समाधान िोता िै नारायण के भाव में। श्रीकृष्ण शुरू में क्षर और अक्षर पुरुष की चचाकरते िैं परन्तु उसके बाद में 'म'ैं, 'अिं', 'माम्'ं, किकर गीता का रिस्य बताते िैं। यिी िै वि रिस्य जो केवल गीता का िी निींअवपतु िमारे सारे जीवन का भी रिस्य िै। और वि िै भगवान् ्का स्वयं का व्यजकतमव, उनका समस्वरूप जजसके अनतररकत कुछ और िै िी निीं। केवल वे िी अकेले ववद्यमान िैं और कोई निीं ंिै। बाकी सारे उन्िीं के रूप िैं। यहद व्यजकत एक बार उनकी झलक पा ले तो कफर सब कुछ उसके और उनके बीच का खेल और लीला बन जाता िै। तब ऐसा छोटे-से-छोटा और बिे–से-बिा कोई कम िनिीं ंरि जाता जो उनके द्वारा समधथति निीं िो, उनके द्वारा न ककया जाता िो। इस प्रकार कमों का जो दुःखमय स्वरूप िै, जो अच्छा-बुरा स्वरूप िै वि समाप्त िो जाता िै। कफर तो सब केवल हदव्य लीला बन जाती िै। व्यजकत और भगवान् ्के बीच प्रेम का आदान-प्रदान बन जाता िै और इसी के शलए तो उन्िोंने सृजष्ट की िै। यि सृजष्ट वि शाश्वत वृंदावन िै जजसमें शाश्वत बालक शाश्वत लीला कर रिा िै। यि उसका वृंदावन िै और इसमें उसकी लीला चल रिी िै। इस पररदृश्य में तो सब रूप िी बदल जाता िै और ऐसे में कम–अकम िआहद सब ववचारणाएँ िी बदल जाती िैं। यहद इस खेल में कोई वृतूरासुर या कोई अघासुर आ जाता िै तो उसे तो वे िीिा के भाव में िी नष्ट कर देते िैं। वैसे िी यि कुरुक्षेत्र भी एक प्रसंग स्वरूप सामने आ गया िै और भगवान् ्किते िैं कक **'तनमत्त रात्रं ंभर् सव्यसाधचन्'ं,** तू तो बस ननशमत् बन कर इन्िें नष्ट कर दे। ज्यों िी व्यजकत परमाममा के उस अजस्तमव की, उस व्यजकतमव की, जो कक उसके जीवन का सार िै, एक बार जरा सी झलक भी पा लेता िै तो समपूण िसृत्ि में रसकिया िोनी आरंभ िो जाती िै और तभी सच्चेकम िका रिस्य पता चलता िै अन्यथा तो कम िएक रोग समान िै। वास्तव में ककन्िींननिमन िेतुओंकी प्राजप्त के शलए, ककसी कामना की पूनत िके शलए संसार में कम िकरनेसे अधम तो कुछ िै िी निीं। पर यहद िीिा या लीला के भाव से कर रिा िो तो व्यजकत कुछ भी कर सकता िै। तो यि िै गीता के पुरुषोत्तम का रिस्य जो क्षर और अक्षर दोनों से बिुत मिान् ्िैं। और ये दोनों तो उनकी दो जस्थनतयााँ मात्र िैं जजनसे वे स्वयं परे िैं।

xi.33

वास्तव में तो केवल वे ि ी अजस्तमवमान िैं, बाकी तो प्रतीनतयाँ मात्र िैं। और यि सब भी आखखर बुद्धध का एक जंजाल ि ी िै, अन्यथा वास्तव में तो न क्षर िै और न अक्षर। पुरुषोर्त्म के अनतररकत यिाँ और कुछ िै ि ी निीं। यि सब तो उनकी ि ी ला मात्र िै। गीता की शशक्षा को व्यजकत सच्चे रूप में तभी समझ सकता िै जब उसे परमामा की झलक शमल जाए और वि उनकी चेतना में प्रवेश कर जाए। यि बड़ी ववलक्षण चीज िै। वास्तव में उन्िीं का खेल िै, उन्िीं का वृंदावन िै, उन्िीं की प्रकृनत िै, उन्िीं का सब कुछ िै और वे ि ी लीला कर रिे िैं। इस चेतना में तो सारे कम ि हदव्य िैं, जजनमें बड़ा आनन्द िै। तभी तो भगवान् स्वयं किते िैं कक मुझे त्रत्रलोकी में ककसी चीज की कोई आवश्यकता निीं किर भी म ैं कम ि करता िूँ। ये सब बातें 'हदव्य कम ि के शसद्धान्त' में आने वाली िैं।

भगवान् द्वारा स्वयं का उदािरण हदये जाना बिुत ि ी मित्त्वपूण ि िै। कम ि कया िै? भगवान् का खेल िै, आनन्द नृमृय चल रिा िै। यहद व्यजकत जरा-सा भी उनके साथ समपकि में आ जाए तो उसके सारे जीवन का सारा समीकरण त्रबल्कुल बदल जाता िै। अब तो वे श्रीमाँ-श्रीअरववन्द के रूप में यिाँ आ चुके िैं। पुरुषोर्त्म ने स्वयं को दो शरीरों में िमारे सामने प्रकट ककया िै जजनसे िम समपकि कर सकते िैं, समपकि िोता िै, कर लेते िैं, तब कफर व्यजकत को अधधक-से-अधधक और घोर से घोर कम ि करने में भी कोई संकोच निीं िो सकता। कयोंकक उनके अनतररकत और कोई तो िै ि ी निीं। सवत्र वे स्वयं िी तो ववद्यमान िैं और दूसरे उन्िीं के रूप िैं और वे परस्पर खेल कर रिे िैं। गीता का रिस्य तो यिी िै। **'सर्धवर्ान्व परररत्यजय र्ार्ेकं ि रिंव्रज'**, वे आममा को किते िैं कक इन सबको छोड़ कर मेरी शरण में आ जा। ये ब्रह्म, ईश्वर आहद सब भ्रम िैं। श्रीकृष्ण पिले तो अजुनि को किते िैं कक 'तू उसकी शरण ले जो समपूण ि सृजष्ट को चलाता िै' परंतु बाद में उससे किते िैं कक सब छोड़ कर मेरी शरण में आ जा। 'अिं मवा सवपािपेभ्यो मोक्षनयष्याशम मा शुचः' म ैं तुझे सभी पापों से मुकत कर दूँगा, धचंता ि ी मत कर।

iii.62

श्रीअरववन्द के अनुसार संपूण ि गीता केवल उन दो श्लोकों को बताने के शलए, आममा को अपनी प्राकृत जस्थनत से उठा कर इस जस्थनत तक ले आने के शलए तैयारी मात्र िै। भगवान् ने एक गुरु के रूप में उपदेश आरंभ ककया जब अजुनि ने किा कक म ैं आपका शशष्य िूँ और आपकी शरण आया िूँ, मुझे समझाइये, और अंत में एक प्रेमी के रूप में उन्िोंने अपनी बात का समापन कर हदया। यिाँ सच्चा व्यविार तो प्रेम का ि ी िै। प्रेम के अनतररकत और िै ि ी कया। साधना, कमयोग, ज्ञानयोग और भजकतयोग सब बताकर अन्त में भगवान् किते िैं कक मेरी शरण में आ। इसके बाद पुरुषोर्त्म की किया आरमभ िोती िै। यहद व्यजकत अपने जीवन में यि अभीप्सा जगा सके, यि ववचार जगा सके कक उसे केवल भगवान् की ओर ि ी जाना िै तो मानो कक उसका सब कुछ िो चुका अन्यथा तो अभी कुछ भी निीं िुआ िै। अन्यथा जीवन एक दुःखद ववडमबना िै। त्रबना प्रभु के स्पश ि के जीवन एकदम बेकार िै।

कर्िवर् दह संमसद्धधर्ाजस्थता जनकादयः ।

लोकसंग्रहरे्रावप सम्पश्यतकतुर्वहवमस ।। २० ।।

२०. कर् वके ही द्रारा जनक आदद पूि वमसद्धध को प्राप्त हुए थे। लोकसंग्रह को दृजष्ट र्े रखते हुए भी तुझे ेकर् वही करना चादहये।

यद्यदाचरतत श्रे्रेष्ठस्तत्तदेरे्तरो जनः ।
स यत्प्रर्ािंकुरुते ेलोकस्तदनुर्ततेव ।। २१।।

२१. श्रे्रेष्ठ र्नुष्य जैसा-जैसा आचरि करता है दूसूरे र्नुष्य भी र्ैसा-र्ैसा ही आचरि करते हैं; र्ह (श्रे्रेष्ठ र्नुष्य) जजस आदि वया र्ानक को रचता है दूसूरे साधारि र्नुष्य उसका अनुसरि करते हैं।

न र्े पाथाजवस्त कतव्वयंत्रत्रषु लोकेषु ककंचन ।
नानर्ाप्तर्ाप्तव्यं र्त वएर् च कर्णवि ।। २२।।

२२. हे पाथ!व तीनों लोकों (भौततक, प्राणिक, र्ानमसक) र्ें रे्रे मलये कोई भी ऐसा कर् वनहींहै जजसके करनेकी रुझे आर्श्यकता हो, कोई भी ऐसा पदाथ वनहीं ंहै जो रुझे ेप्राप्त न हो और जजसे प्राप्त करना िेषे हो, ककंतु किर भी र् ैं कर् वके र्ागों र्ें ही रत रहता हूाँ।

यदद ह्यहं न र्तेयं ंजातु कर्णवयतजतद्रतः ।
र्र् र्ानुवर्ततवते र्नुष्याः पाथ वसर्वशः ।। २३ ।।
उत्सीदेयुररे् लोका न कुयां ंकर् वचेदहर् ्।
सङ्करस्य च कताव स्यारुपहतयामर्ाः प्रजाः ।। २४।।

२३-२४. क्योंकक हे पृथापुत्र अजुनव ! र्नुष्य हर प्रकार से रे्रे र्ाग वका अनुसरि करते हैं, इसमलये जो र् ैंकभी आलस्यरदहत होकर कर्ों के र्ाग वर्ें न रहूाँ, यदद र् ैंकर् वन करूाँ तो ये र्नुष्य नष्ट हो जाएाँ और र् ैंसंभ्रर् का स्रष्टा और इन जीर्ों की हत्या करनेर्ाला (वर्नाि करनेर्ाला) होऊाँगा।

सक्ताः कर्णवयवर्द्वांसो यथा कुर्जवतत भारत ।
कुयाद्धवर्द्वांस्तथासक्तजश्चकीषुलवोकसंग्रहर् ्।। २५।।

२५. हे भारत! अज्ञानी र्नुष्य कर् वर्ें आसक्त होकर जजस प्रकार कर् वकरते हैं, ज्ञानी र्नुष्य को अनासक्त होकर लोकसंग्रह को लक्ष्य र्ें रखते हुए उसी प्रकार कर् वकरने चादहये।

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ।। २६।।

२६. ज्ञानी मनुष्य को चाहिये कि वह अपने कर्मों में आसक्त रखनेवाले अज्ञानी मनुष्यों की बुद्धि में भेद न उत्पन्न करे; योगयुक्त रहतेहुए और ज्ञानपूर्वक संसार के लिये आवश्यक समस्त कर्मों को स्वयं करते हुए उन्हें उन कर्मों में प्रवृत्त करे।

इन सात अद्भुत श्लोकों से अधिक महत्त्वपूर्ण श्लोक गीता में कुछ ही और हैं।

परन्तु हम इस बात को अच्छी तरह समझ लें कि इन श्लोकों का आधुनिक व्यवहारवादी वृत्तियों की तरह अर्थ लगानेका प्रयास नहीं करना चाहिए, जो किसी उच्च और दूरस्थ आध्यात्मिक संभावना की अपेक्षा जगत् की वर्तमान अवस्था से ही मतलब रखते हैं, और इन श्लोकों का उपयोग समाज-सेवा, देश-सेवा, जगत्–सेवा, मानव-सेवा तथा आधुनिक बुद्धि को आकर्षित करनेवाली सैकड़ों प्रकार की समाज-सुधार की योजनाओं और स्वप्नों का दार्शनिक और धार्मिक समर्थन करने में करते हैं। यहाँइन श्लोकों में जिस विधान की घोषणा की गयी है वह किसी व्यापक नैतिक और बौद्धिक परोपकारिता का नियम नहीं, अपितु ईश्वर के साथ और जो ईश्वर में रहतेतथा जिनमें ईश्वर रहता है उन प्राणियों के इस जगत् के साथ आध्यात्मिक एकता का विधान है। यह विधान व्यक्ति को समाज और मानव-जाति के अधीन बना देनेया मानव-समष्टि की वेदी पर व्यक्ति के अहंकार की बलि देनेका आदेश नहीं, अपितु व्यक्ति को ईश्वर में परिपूर्ण करने और अहंकार को सर्वविनाशलंगंनकारी भगवत्ता की एकमात्र सच्ची वेदी पर बलि चढ़ानेकी आज्ञा है। गीता विचारों और अनुभूतियों की एक ऐसी भूमिका पर विचरण करती है जो आधुनिक मन के विचारों और अनुभूतियों की भूमिका से ऊँची है। आधुनिक मन वस्तुतः अभी अहंकार की कुंडलियों को काटनेके लिए संघर्ष करनेकी अवस्था में है; परन्तु अब भी अपनी दृष्टि में संसारबद्ध है और अपनी मनोवृत्ति में आध्यात्मिक की अपेक्षा बौद्धिक और नैतिक है। देश-प्रेम, विश्वबंधुत्व, समाज-सेवा, समष्टि-सेवा, मानव-सेवा, मानव-जाति का आदर्श या धर्म, ये सब व्यष्टिगत, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय अहंकाररूपी पहली अवस्था से निकलकर दूसरी अवस्था में जाने के लिए सराहनीय साधन हैं, इस अवस्था में पहुँचकर व्यक्ति, जहाँ तक कि बौद्धिक, नैतिक और भावावेगमय स्तर पर संभव है, यह अनुभव करता है कि उसका अस्तित्व दूसरे सब प्राणियों के अस्तित्व के साथ एक है- यद्यपि उस स्तर पर ऐसा अनुभव वह सर्वथा उचित रूप से और पूर्ण तरीके से, अपनी सत्ता के पूर्ण समय के अनुसार प्राप्त नहींकर सकता। परन्तु गीता का चिंतन इस दूसरी अवस्था के भी परे जाकर हमारी विकसनशील आत्म-चेतना की एक तीसरी अवस्था में पहुँच जाता है जिसमें पहुँचने के लिये दूसरी अवस्था केवल आंशिक प्रगति है।... गीता द्वारा यहाँ दिया विधान मानवश्रेष्ठ, अतिमानव, आध्यात्मिकृत मनुष्य या सर्वश्रेष्ठ का विधान है, परंतु यह कोई नीत्शे के अर्थ में एक एकांगी तथा बेढंगे अतिमानव का विधान नहीं है, कोई यूनानी ओलिम्पस, अपोलो या डायोनीशियस जैसी अथवा देवदूत और दैत्य के जैसी अतिमानवता का विधान नहीं है, अपितु गीता का अतिमानव वह मनुष्य है जिसका सारा व्यक्तित्व एकमेव परात्पर और विश्वव्यापी भगवान् की सत्ता, प्रकृति और

चेतना के प्रनत उमसग ि़ो गया ि़ै और जजसने अपनेक्षुर स्वमव को खोकर अपनेमित्र आममतत्त्व को पा शलया ि़ै, जो हदव्यीकृत ि़ो चुका ि़ै।

----

*...ि़मारी मानशसक चेतना का ववस्तार कर के अिंकारमय द्वंद्वों के अनुभव से बिार ननकलकर समग्र चेतना के साथ एक अननयशमत एकता साधधत करनेसे सिज ि़ी जगत् ्की सापेक्षताओं की सुपुरनतजष्ठत व्यवस्था में व्यवजस्थत मानवजानत के सकिय जीवन में असमथतिा और संभ्म (बुद्धधभेद) की जस्थनत उमपन्न ि़ो सकती ि़ै। गीता में जो ज्ञानी मनुष्य को यि आदेश हदया गया ि़ै कक वि अज्ञानी मनुष्य के जीवन के आधार और ववचार के आधार को ववचशलत न करे, उसका यिी मूल कारण ि़ै। कयोंकक उसके उदिारण से प्रेररत ि़ोकर ककन्तु उसके कम ि़के शसद्धांत या आधार को समझने में असमथ ि़ोने के कारण ,वे ककसीउच्चतर आधारको प्राप्तन कर के स्वयंअपने ज़ीवन(औरकम ि़के मूल्यों की व्यवस्था को भीखोबैठेंगे।

बंककमचन्र सरीखे आजकल के बिुत से टीकाकारों ने गीता पर जो टीकाएँ की ि़ैं कक और इस पर बल हदया ि़ै कक 'कतव्यिंकम ि़करो, समाज की सेवा करो, देश की सेवा करो, सबका भला करो, मनुष्यजानत का भला करो, दुुःख-ददि शमटाओ, अस्पताल खोलो, स्कूल खोलो, शशक्षा दो', आहद-आहद, परंतु गीता ऐसी सांसाररक शशक्षाओं के स्तर पर व्यविार निीं करती। गीता में ऐसी बातें निीं। गीता एक सवथिा शभन्न और अनत उच्च स्तर पर व्यविार करती ि़ै। ि़म जजस स्तर पर ि़ैं, जजतनी ि़मारी समझ ि़ै ि़म केवल उतना ि़ी समझ सकतेि़ैं। मिारे स्तर के अनुसार ि़मारे शभन्न-शभन्न स्तर के दृजष्टकोण ि़ोते ि़ैं। पिला यि ि़ै जजयमें मनुष्य इस धरती पर केवल अपने अिं के जीवन में, सुख, समपवर्त्, पररवार, बिाई आहद ि़जार तरीके की चीजों में कीड़े ़ेकी तरि त्रबलत्रबलाते रिते ि़ैं। इससे ऊपर का दृजष्टकोण यि ि़ै जब व्यजकत किता ि़ै कक 'ि़म लोग तो सब एक ि़ी ि़ैं, सवत्रि परमाममा व्याप्त ि़ै, सारा राष्ट्र भी परमाममा का ि़ी स्वरूप ि़ै, सारी मनुष्यजानत एक ि़ै इसशलए मनुष्यजानत की सेवा करो, देश की सेवा करो, देश को ऊपर उठाओ, सबकी भलाई करो, इस तरि से करो कक मनुष्य सब अपने गन्तव्य स्थान में अच्छे कम ि़कर के जाएँ, इससे आगे आज का सांसाररक ववचार जा ि़ी निीं ंसकता। परंतु गीता इस स्तर पर व्यविार निीं करती। गीता की दृजष्ट केवल परम प्रभु, पुरुषोत्र्म पर ि़ै। यिाँ जजन कमों की चचाि़ो रिी ि़ै वि तो उन्िीं ि़की प्रसन्नता के ननशमर्त् हदव्य कमों की बात ि़ै। उन कमों का इन कमों के साथ कोई अधधक संबंध निीं। ि़र जगि, ि़र चीज में केवल पुरुषोत्र्म ि़ी ि़ैं, उन्िीं ि़के साथ ि़मारा खेल ि़ै। इस दृजष्टकोण से जब ि़म कम ि़करेंगे तो सारा मापदण्ि, कम ि़का स्तर, भावना, सिी-गलत का ननणयि त्रबल्कुल शभन्न तरि का ि़ोगा। परन्तु जब व्यजकत अपनेअिं पर केजन्रत ि़ोकर सबकी भलाई करनेके शलए किता ि़ै तो वि केवल अपनेअिं के शलए ि़ी सोचता ि़ै। यहद ि़म किते ि़ैं कक 'मेरा देश' तो यि भाव भी इसशलये ि़ोता ि़ै कयोंकक यि 'मेरा' देश ि़ै, या कफर मनुष्य-जानत के शलए भाव ि़ो तो वि भी इसशलये कयोंकक 'म'ि़ैं मनुष्य ि़ूँ। इस दृजष्टकोण में ि़म ननचले से बस कुछ थोड़े ़ेसे ववशालतर अिं की सेवा ि़ी कर रिे ि़ोते ि़ैं, इससे अधधक और कुछ निीं। परन्तु 'सवत्रि पुरुषोत्र्म की लीला िो ि़ै' इस दृजष्टकोण में तो अिं रिता ि़ी निीं ंि़ै। इस भाव में तो केवल एक 'वे' ि़ी ि़ैं जो ि़मारा सच्चा सार-तत्त्व िोतेि़ैं। कफर 'वे' ि़में मानशसकता के, मनुष्य के स्तर के बिुत परे ले जाते ि़ैं। तब ि़म प्रकृनत के दास निीं रि जाते। विाँप्रकृनत के ननयम-ववधान लागू ़ूनिीं ंि़ोते। प्रकृनत के ननयम तो केवल ऐसे अभ्यास मात्र ि़ैं जो प्रकृनत उनकी

सेवा के शलए, उनके काय िके शलए बनाती िै। प्रकृनत जो कुछ भी करती िै केवल 'उनकी' प्रसन्नता के ननशमर्त् िी करती िै।

गीता पुरातन संस्कृनत की पाँच िजार वष िपुरानी पुस्तक िै। इसमें जो संदेश िै वि यि िै कक भगवान् ्को कुछ भी निीं चाहिए कफर भी वे कम िमें रत रिते िैं। यि एक ब़िी ववलक्षण और मित्त्वपूण िबात िै कक यिाँसब कुछ उनका आनन्द-नृमृय िै। ककसी प्रकार के फल के शलए वे कम िनिीं ्करते। प्रकृनत तो उनके अधीन िै। यि सब तो प्रभु का खेल मात्र िै और इस खेल में िमें भाग लेना िै। ज्यों िी अि खमम िुआ तो िम उस चेतना में चले जाते िैं जजसमें उनके समपकि मात्र से सारा जीवन िी बदल जाता िै। गीता िमें उसी की ओर ले जा रिी िै। अजुनि की आममा को तैयार कर रिी िै कक उसके भाव जगे और वि पूछे कक 'प्रभु आप कौन िैं, मुझे ्अपनेसच्चे स्वरूप के दशनि कराएँ।' परन्तु उस रूप को देखने के बाद वि भ्शमत िो जाता िै और बिुत सारे नए प्रश्न उसके मन में आते िैं। उसे सब समझाने के बाद अन्त में भगवान् ्कििे िैं कक सभी धमों का पररमयाग कर के बस केवल मेरी शरण ग्रिण कर।

यिी गीता की मूल बात िै, बाकी सब तो सिायक किानी मात्र िी िै। स्वयं भगवान् ्के मुख से यि प्रस्फुहटत िुई िै, पुरुषोर्त्म स्वयं बोल रिे िैं। मनुष्य जब हदग्भ्शमत िो, उसके मन में जो ववकार आते िैं, उसके मन और प्राण में जो पिेशलयाँ आती िैं उन सबका भगवान् ्ने मनुष्य के स्तर पर िी समाधान ककया और कफर अजुनि को समझाया कक तू इन सबकी धचंतां मत कर और केवल मेरी शरण में आ। इस प्रकार यि हदव्य कम िका शसद्धांत पुरुषोर्त्म के दशनि पर आधाररत िै।

ii23

यिा ्ँएक श्लोक और आता िै जजसके बारे में श्रीअरववन्द किते िैं कक यि िी िमारे जीवन का सार िै। वि िै -'**र्् ्न्त्र्ावनुर्ततवते र्नुष्र्ाः पाथ वसर्वि:'**। 'सब मनुष्य सब तरीके से मेरे िी रास्ते पर चलते िैं। आखखर इसके अनतररकत और िो भी कया सकता िै? संसर में और कुछ िै िी निीं। मनुष्य को केवल उन्िीं िके रास्तेपर चलना िोगा। और उनकी लीला को समझनेके शलए व्यजकत को उनकी चेतना में जाना िोगा। यहद िम जादूगर की लीला को समझना चािते िैं तो िमें जादूगर के मजस्तष्क में प्रवेश करना िोगा। जीवन का यि सबसे ब़िा रिस्य िै। सभी कोई िर तरीके से, चािे ककसी भी रास्तेसे कयों न जा रिे िों ककन्तुसब जा उसी की ओर रिे िैं, अन्य कोई गन्तव्य स्थान ककसी भी मनुष्य का निीं।

गीता ननश्चयाममक रूप से किती िै कक मुकत मनुष्य का कम िकामना से पररचाशलत निीं ्िोना चाहिये, अवपतु लोक के संग्रि, उसके शासन, मागदिशनि तथा प्रचालन तथा इसे इसके ननयत पथ पर बनाए रखने की हदशा में िोना चाहिए। इस उपदेश का यि अथ िककया गया िै कक कयोंकक संसार एक ऐसा भ्म अथवा माया िै जजसमें अधधकतर मनुष्यों को रखना िी िोता िै - चूंकक वे मुजकत के अयोग्य िोते3 -3 hat H बािरी रूप से इस प्रकार काय ि करना चाहिये कक वि सामाजजक ननयम द्वारा उनके शलये ननहदिष्ट आचाररक कमों में उनकी आसजकत को दृढ़

बनाये रखे। यहद ऐसा िी िो तो यि एक िीन और तुच्छ ननयम िोगा और प्रमयेक उदार्त-हृदय व्यजकत इसका मयाग कर अशमताभ बुद्ध के हदव्य व्रत, भागवत' की उमकृष्ट प्राथनिा और वववेकानन्द' की उमकट अभीप्सा का िी अनुसरण करना चािेगा।

परंतु, यहद िम इस भाव को स्वीकार करें कक यि संसार प्रकृनत की एक हदव्य रूप से पररचाशलत गनत िै, जो मनुष्य के अन्दर उमपन्न िोकर ईश्वर की ओर ईश्वरोन्मुख गनत करती िै और इसी काय िमें, गीता के ईश्वर किते िैं कक वे ननरन्तर रत िैं, चािे स्वयंउनके शलये ऐसी कोई अप्राप्त वस्तु निीं ंिै जो उन्िें अभी प्राप्त करनी िो, - तो इस मिान् ्उपदेश का गंभीर और समय आशय िमारे सामने प्रकट िो जायेगा। उस हदव्य कम िमें भाग लेना और संसार में ईश्वर के शलये जोना िी कमयोिगी का ववधान िोगा; और संसार में ईश्वर के शलये जीना और इसशलए इस प्रकार कम िकरना कक भगवान् ्अपने-आप को अधधकाधधक प्रकट कर सकें और संसार अपनी अज्ञात यात्रा के चािे जजस भी माग िसे िो, आगे बढ़ता िुआ हदव्य आदश िके अधधक ननकट पिुाँच सके।

गीता के संदेश को तीन दृजष्टकोणों से देखा जा सकता िै। पिला तो यि कक जैसा लोग किते िैं और स्वयं भगवान् ्नेभी किा िै कक मुझेकुछ निीं ंचाहिए कफर भी म ैंकम िकरता रिता िूाँ। चूाँकक संसार इसी तरीके का िै कक यहद लोगों को यि बात निीं ंबताई जाए तो वे ेननष्कमणि्य िो जायगें। इसशलए उन मूढ़ जनों को किो कक शास्त्रों में ऐसा िी किा गया िै। इस तरि उनको कम िमें लगाये रखो जजससे वे बोझा ढोते रिें और भगवान् ्का संसार चलता रिे। और जजस व्यजकत की आममा पववत्र िै, जजसने श्रेष्ठ कुल में जन्म शलया िै और जो वास्तव में इस योग्य िै वि भगवान् ्की ओर बढ़ कर इससे ननकल जायेगा, बाकी सब इस साचेंमें वपसते रिेंगे।

परन्तु श्रीअरववन्द कि रिे िैं कक यि तो बिुत तुच्छ बात िै। इससे श्रेष्ठ तो दूसूरा दृजष्टकोण अशमताभ बुद्ध का िै जो किते िैं कक 'जब तक एक भी आममा ऐसी िै जो कष्ट में िै तब तक म ैंननवाणि में निीं ंजाना चािूाँगा। म ैंउसकी सिायता करूंगा, उसकी प्रतीक्षा करूंगा।' भागवत् ्के अनुसार 'मुझे ेन तो अष्ट शसद्धध चाहिए, न ननवाणि चाहिए, न मुजकत चाहिए। म ैंतो चािता िूाँ कक सारे जीवों की सेवा करूाँ, उनका दु:ख म ैंस्वयंसिन करता रिूाँ और उनको आगे बढ़ाऊाँ।' या कफर वववेकानन्द जी जैसा किते िैं वि भी िमनेपढ़ िी शलया िै। पिले दृजष्टकोण से तो यि दूसूरा दृजष्टकोण – अशमताभ की प्राथनिा, भागवत् ्के और वववेकानन्द जी के उद्गार - िी श्रेष्ठ िै। परन्तु गीता का संदेश इन ककन्िीं भी दृजष्टकोणों से सीशमत निीं ंिोता।

----

* अशमताभ बुद्ध... जब उनकी आममा ननवाणि की ड्योढ़ी पर पिुाँची तो वे वापस मुिे ेऔर प्रनतज्ञा की कक जब तक एक भी जीव दु:ख और अज्ञान में रिेगा तब तक वे इसे कभी निीं लाधेंगे।

* "मुझे ेन तो आठों शसद्धधयों से युकत परम पद की कामना िै और न पुनजन्मि से छुटकारे को। म ैंचािता िूाँ कक सभी संतंप्त प्राखणयों का दु:ख अपने ऊपर ले लूाँ और उनके अन्दर प्रववष्ट िो जाऊाँ जजससे वे कष्ट से मुकुत िो जाय।ें"

* उस मिान् ्वेदान्ती ने शलखा "मुझेअपनी मुजकत की कोई इच्छा निीं रिी ि ै। म ैंचािता िूँ कक म ैंकफर-कफर पैदा िोऊँ और िजारों कष्ट भोगूँ जजससे म ैंउस एकमात्र ईश्वर को पूजा कर सकूँ जो वस्तुतः सत् ्ि ै: उस एकमात्र ईश्वर की जजसे म ैंमानता
िूँ, जो सब आममाओं ंका अंनतम पररणाम अथवा कुल योग ि ै, और इससे भी बढ़कर वि ईश्वर जो सब जानतयों और उपजानतयों के दुष्ट जनों में ि ै, मेरा वि ईश्वर जो सब दीन-दुःखखयों में ि ै, वि दररर्नारायण िी मेरा ववशेष पूजापात्र ि ै। जो उच्च और नीच, सन्त और पापी, देवता और कृशम ि ै, उसकी पूजा करो, दृश्य, ज्ञेये, वास्तववक और सवव्यापक की पूजा करो; अन्य सभी मूनतयिाँितोफेंको।"

गीता लोकसंग्रि की बात करती ि ै। लोकसंग्रि कया ि ै? यि तो प्रभु ुकी लीला ि ै। ऐसी लीला ि ै जजसमें प्रभु अपनी अन्तरंग चीजें, अपनी अन्तर की बातें, अपने समय, अपना प्रेम उजागर कर सबके सामने ला रिे िैं और अधधकाधधक रूप से ला रिे िैं। इसमें बिा भारी आनन्द ि ै। उनको प्रकट करनेके शलए इस तरि की चीजें, इस तरि के साचोँ की आवश्यकता ि ै जजनर्िें िमारी बुद्धध समझ निीं ंसकती। प्रभु ुको प्रकट करनेकी जो लीला चल रिी ि ै ये सब उनके वधधति िोते दृश्य िैं, इसमें जैसे नाटक की सब चीजों को, सामान को, पदों को ठीक रखा जाता ि ै जजससे कक अन्य दृश्य बखूबी सामने आ सकें, उसी प्रकार इस तरीके के काम लोकसंग्रि िैं जजनमें व्यजकत यहद लगा रिता ि ै तो प्रभु की लीला के और अधधक अंतरंग दृश्य प्रकट िोते िैं। िम उनके और अधधक ननकट आ सकते िैं और स्वयं को जान सकते िैं। उन समयों को प्रकट कर सकतेिैं जो आज तक कभी ककसी ने प्रकट निीं ककए। इसशलए मनुष्य कम िकरता ि ै। विाँ कोई कामना पूनत िका प्रश्न निीं ि ै, वि तो आनन्द के शलए करता ि ै कयोंकक वि तो स्वयं प्रभु का रूप ि ै, उनका सखा ि ै, उनका प्रेमी ि ै। उनकी लीला में उनको प्रकट करने में प्राप्त िोने वाले आनन्द के शलये वि कम िकरता ि ै। यिी कमयोगी के कम िका उद्देश्य िो सकता ि ै, अन्य कोई उद्देश्य उसके शलये निीं रिता।

पिले दो दृजष्टकोण तो मनुष्य पर केजन्रत िैं जबकक यि तीसरा दृजष्टकोण पुरुषोत्म पर केजन्रत ि ै। गीता का जो संदेश ि ै वि पुरुषोत्म पर केजन्रत ि ै। पिले दृजष्टकोण के अनुसार माया का काम चलता रिेगा और जो उसमें से बच सके, वि बच कर ननकल जाये। दूसरे दृजष्टकोण में अन्य लोगों, देश अथवा समाज की भलाई करने की बात ि ै। तीसरा दृजष्टकोण ि ै प्रभु के आनन्द का। इसमें ककसी प्रकार की कोई भलाई करने जैसी कोई बात निीं ंि ै अवपतु हदव्य ववधान में जो आवश्यक ि ै विी करने की बात ि ै। अजुनि को तो भगवान् ्ककसी भलाई के काम में निीं ंलगा रिे, उसे तो युद्ध करने ेके शलए कि रिे िैं। ऐसे में अशमताभ बुद्ध की बात किा ंँलागू िोती ि ै? परंतु कयोंकक लोकसंग्रि के अंदर इतनी ये बाधाएँ आ खिी िुई िैं इसशलए यि संिारकम िआवश्यक ि ै। यि तो वैसा िी ि ै जैसे मानो वपछले दृश्य में बिुत अधधक सामान मंच पर आ गया था, इसशलये अब दूसरे दृश्य के शलए मंच को साफ करना आवश्यक ि ै ताकक मुरली बजाई जा सके और गोवपयों का नृमृय िो सके। यिाँ कोई मानवीय दृजष्टकोण से भलाई की बात निीं ंि ै। इस प्रकार यिा ंँतीन प्रकार के दृजष्टकोण िैं। इसमें तो िमें प्रेम का नाटक िी वास्तव में भाता ि ै। आनंद िी सभी कुछ का सच्चा िेतु ि ै बाकी सब तो बुद्धध की व्याधधयाँ िैं। और ये तभी तक चलती िैं जब तक िमारा प्रभु से समपकि निीं ंिो जाता। जैसे कक श्री कृष्णप्रेम किते ेथे कक जिाँ'वे' छू देते िैं विीं मदोन्मत्् कर देते िैं। यि सौमय चाल तभी तक रिती ि ै जब तक 'उनकी' झलक निीं शमल जाती। वि शमलने के बाद तो व्यजकत सब कुछ भूल जाता ि ै। तो गीता िमसे इस प्रकार के हदव्य कमों की माँग करती ि ै।

मानव-कमों का संपूण िववस्तार क्षेत्र वि िोना चाहिए जजसमें ईश्वरवेत्ा ववचरण करेगा। उसकी सारी व्यजकतगत और सामाजजक किया, उसकी बुद्धध, हृदय और शरीर के सारे कम िअब भी उसी के िोंगे, पर अपने पृथक् व्यजकतगत ितु के शलए निीं िोंगे अवपतु संसार में जस्थत ईश्वर के शलए, सब प्राखणयों में ववराज रिे ईश्वर के शलए, और इसशलए कक वे सब प्राणी, स्वयंउसकी तरि िी, कममिाग िद्वारा स्वयंअपनेअन्दर ववराजमान भगवान् ् की खोज की ओर आगे बढ़ें। संभवतः बाह्य रूप से उसके कम िअन्य मनुष्यों के कमों से कोई मूल रूप से शभन्न प्रतीत न िों; युद्ध व शासन, शशक्षादान, और धचंतंन, मनुष्य के मनुष्य के साथ जजतने ेववशभन्न प्रकार के आदान-प्रदान िो सकते िैं वे सभी उसके कायक्षेित्र में िो सकते िैं, परंतुजजस भाव से वि इन कमों को करेगा वि अवश्य िी सवथिा शभन्न िोगा, और उसका वि भाव िी िोगा जो अपनेप्रभाव के कारण एक ऐसा मिान् ्आकषणि िोगा जो लोगों को उसके अपनेस्तर तक ऊपर खींचेगा, एक ऐसा मिान् ्उत्ालक (Lever) िोगा जो मानवसमिू को उनके आरोिण में ऊँचा उठाएगा।

मुकत मनुष्य के शलये भगवान् ्ने जो स्वयंका दृष्टांत रखा वि गंभीर रूप से सारगशभति िै; कयोंकक यि दृष्टांत हदव्य कमों के समबन्ध में गीता के शसद्धांत के समपूण िआधार को प्रकट कर देता िै। मुकत पुरुष विी िै जजसने ेअपने-आपको हदव्य प्रकृनत में उठा शलया िै और उसी हदव्य प्रकृनत के अनुसार सब कम िकरता िै।..न तो कमप्रिधान मनुष्य की कमण्यिता और न संन्यासी, वैरागी या ननवृवृत्मािगी की कमविविीन ज्योनत, न तो कमी मनुष्य का प्रचंव्यिजकतमव और न तत्त्वज्ञानी ऋवष का उदासीन ननव्यजिकतमव, इनमें से कोई भी संपूण िभागवत् ् आदश िनिीं िै। ये संसारी जन के तथा संन्यासी, या ननवृवृत्मािगी दाशननिक के दो परस्पर ववरोधी मानदण्ड िैं, जजनमें एक क्षर के कम िमें िूबे रिता िै और दूसरा सवथिा अक्षर की शाजन्त में ननवास करने ेका प्रयास करता िै; परन्तु पूण िभागवत् ्आदश िका उद्गम पुरुषोत्म की उस प्रकृनत से िै जो इस परस्पर- ववरोध के परे िै और जो सभी भागवत् ्संभावनाओं में समन्वय साध देती िै।

कमप्रिधान मनुष्य ककसी ऐसे आदश िसे संतुष्ट निींिोता जो इस ववश्वप्रकृनत की, उस प्रकृनत की त्रत्रगुणमयी िीिा की, मन-हृदय-शरीर के इस मानव-कम िकी पररपूणतिा पर अवलजमबत न िो।... कयोंकक यिी उसकी प्रकृनत, उसका धम िि और वि ककसी ऐसी चीज से ककस प्रकार पररपूण ििो सकता िै जो उसकी प्रकृनत के शलए ववजातीय िो? कयोंकक प्रमयेक जीव अपनी प्रकृनत से बाँधा िै और इस दायरे के अन्दर िी उसे अपनी पूणतिा को ढूँढ़ना िोगा। िमारी मानव-प्रकृनत के अनुसार िी िमारी मानव-पूणतिा िो सकती िै; और इसशलए प्रमयेक मनुष्य को उसके शलए अपनेव्यजष्टधम िअथात्ि्स्वधम िके अनुसार अपनेजीवन और कम िमें यमन करना चाहिए, जीवन और कम िके बिार निीं। इस बात का गीता यि उत्र देती िै कक िा, ँ इसमें भी एक समय िै; मनुष्य के अन्दर ईश्वर की चररताथतिा, जीवन में भगवान् ्की लीला अवश्य िी आदश िशसद्धध का एक अंग िै। परन्तु यहद तुम उसे केवल बिार िी ढूँढ़ो, जीवन में और कम िके शसद्धान्त में, तो तुम उसे कभी निींपाओगे, कयोंकक तब तुम न केवल अपनी प्रकृनत के अनुसार िी कम िकरोगे, जो अपने-आप में शसद्धध या पूणतिा का िी एक ववधान िै, परंतु सदा उसके गुणों के अधीन रिोगे - और यि अशसद्धध का एक ववधान िै - सदा राग-द्वेष और सुख-दुःख के द्वंद्वों के अधीन रिोगे, ववशेषेतः प्रकृनत के राजशसक गुण के वश िो जाओगे, कामना जजसका एक तत्त्व िै और िोध, शोक और लालसा

जजसके जाल िैं. - इजन्रयााँ, मन और बुद्धध अपूणतिा के इस अनाहद कारण के अधधष्ठान िैं और कफर भी तुम इस इजन्रय-बोध, मन और बुद्धध में, ननमन प्रकृनत की इस िीिा के दायरे में िी पूणतिा की खोज को रखना चािते िो! यि प्रयास व्यथ िै। तुमिारी प्रकृनत के कियाममक पक्ष को पिले ननवृवृर्त् की शाजन्त को अपनेअन्दर ले आना चाहिए; तुमिें अपने-आपको इस ननमन प्रकृनत से परे उठाकर उस तक ले जाना िोगा जो तीनों गुणों से ऊपर िै, जो परमतत्त्व में, आममा में प्रनतजष्ठत िै। केवल तभी जब कक तुमिें वि आममप्रसाद लाभ िोगा तुम एक मुकत और भागवत् ्कम िकरने ेमें समथ िबन सकोगे।

इसमें बात एक िी िै कक ककसी भी मानशसक सूत्र से, या कफर ककसी भी सूत्रबद्ध तरीके से, कोई भी योजना बनाकर, साधना का कोई भी कायिम बनाकर व्यजकत हदव्य कम िनिीं ंकर सकता। हदव्य कम ितो तभी िोंगे जब व्यजकत भागवत् ्चेतना, पुरुषोर्त्म की चेतना में ननवास करेगा। कयोंकक अक्षर की चेतना में तो कम िीि निीं ंिोंगे। जब व्यजकत पुरुषोर्त्म की चेतना से जुि जाएगा केवल तभी हदव्य कम िोंगे। हदव्य कमों का अन्य कोई बािरी मानदण्ि या कसौटी ननधारिरत निींकी जा सकती। कयोंकक उसमें तो व्यजकत गुणों के अधीन िी रिता िै। **भगरान् ्की प्रेररा से जो चीज आती है ई गिुों के अधीन नहीं ंहै।** वे ेतो गुणों के स्वामी िैं। बाकी तो शरीर की, प्राण की, मन की सभी चीजें, इच्छाएाँ आहद सब तीनों गुणों के अधीन िोती िैं, केवल भगवान् ्िी इनसे परे, इनसे मुकत व इनके ननयामक िैं। ककन्तु जब व्यजकत भगवान् ्से प्रेरणा प्राप्त कर उनकी ओर खुल जाता िै तभी उसके कम िहदव्य िोंगे अन्यथा निीं।

इसके ववपरीत ननवृवृर्त्मागी अथवा शाजन्तमागी, संन्यासी ऐसी ककसी शसद्धध की समभावना निीं ंदेखते जजसमें जीवन और कम िका प्रवेश िो। (वे कितें) कया जीवन और कममात्र िी बंधन और अपूणतिा का गढ़ निीं ीं? कया कम िके स्वभावमात्र में अपूणतिा निीं ंिै जैसे अजग्न के साथ धुआाँ पैदा करना जुिा िै? कया कम िका शसद्धान्त िी अपने-आप में राजशसक निीं िै, कामना का जनक निीं िै, जो अपने-आप में ऐसा कारण िै जजसके अवश्यंभावी पररणाम िोते िैं ज्ञान का आच्छादन, उमकट कामना तथा सफलता और ववफलता के दौर, िष िऔर शोक में िोलते रिना, पुण्य और पाप के द्वन्द्व में फंसे रिना? परमेश्वर संसार में िो सकतें, पर वे संसार (तत्त्व) के निीं िैं; वे मयाग के या ननवृवृर्त्परायण ईश्वर िैं, िमारे कमों के प्रभुया कारण निीं;ं िमारे कममों का स्वामी तो कामना िै और कमों का कारण िै अज्ञान। यहद यि जगत्,् यि क्षर सृजष्ट ककसी अथ िमें भगवान् ्की अशभव्यजकत या लीला किी भी जाए तो यि अज्ञ मूढ़ प्रकृनत के साथ उनकी अशसद्ध िीिा िै, यि उनकी अशभव्यजकत निीं ं अवपतु उनका तमाच्छादन िी िै। और ननश्चय िी संसार के स्वरूप पर प्रथम दृजष्टपात में िी यि बात स्पष्ट िो जाती िै और कया जगत् ्का पूण िअनुभव िमें सदा िी इसी समय की शशक्षा निीं ंदेता? कया यि अज्ञान का वि चि निीं ंिै जो जीव को कामना और कम िकी प्रेरणा के द्वारा तब तक बार-बार जन्मग्रिण के शलए बाधाँता िै जब तक कक अंत में इस प्रेरणा का क्षय न िो जाए या कफर इसे मयाग िी न हदया जाए? न केवल कामना िी, अवपतु ्कम िभी दूरू िटा देना िोता िै; तभी ननश्चल आममा में प्रनतजष्ठत िोकर जीव गनतिीन, कमिीन, क्षोभिीन, केवल परंब्रह्म में जा सकेगा। गीता संसारी मनुष्य, कियाशील व्यजकत की आपवर्त्यों की अपेक्षा ननगुणि ब्रह्मवादी, ननवृवृर्त्मागी की आपवर्त्यों का उर्त्र देनेपर अधधक ध्यान देती िै। कयोंकक इस ननवृवृर्त्माग िके पास एक उच्चतर और बलवर्त्र

समय िोनेपरंतु कफर भी वि समय समग्र या परम समय न िोने ेके कारण, इसका मनुष्य जीवन के ववश्वव्यापी, पूण िऔर उच्चतम आदश िके रूप में प्रचार पररणामतः अधधक संभाववत रूप से मानव-जानत के अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़नेमें एकांगी रूप से कमविाद के अनुसरण की भूल से उमपन्न पररणामों की अपेक्षा किीं ंअधधक भ्ामक और अननष्ट करनेवाला िो सकता िै। जब ककसी प्रबल एकांगी समय को पूण िसमय के रूप में स्थावपत ककया जाता िै तो उसका प्रकाश बिुत तीव्र िोता िै, पर साथ िी उससे बिुत तीव्र संकर या ववभ्म भी िोता िै; कयोंकक उसमें जो समयांश िै उसकी तीव्रता िी उसके त्रुहट के तत्त्व को बढ़ानेवाली िोती िै। कमविादी आदश िकी त्रुहट मानवजानत को एक ऐसी हदशा में पूणति के अनुसंधान के शलए प्रवृत्त् कर सकती िै जिाँ पूणति निींप्राप्त िो सकती और इस प्रकार अज्ञान की अवधध को केवल लंबा कर देती िै और मानव प्रगनत में गनतरोध पैदा कर देती िै; परन्तु ननवृत्तमाग िके आदश िमें जो भूल िै उसमें तो संसार के ववध्वंस का िी तत्त्व ननहित िै। श्रीकृष्ण किते िैं कक यहद इस आदश िको सामने रखकर म ैंकम िकरूँ तो म ैंइन सब प्राखणयों को नष्ट करने वाला और ववभ्म का कारण बनूँगा। यद्यवप ककसी व्यजष्ट-पुरुष की मूल, चािे वि देवतुल्य पुरुष िी कयों न िो, सारी मानवजानत को नष्ट निीं कर सकती तथावप उससे कोई ऐसा ववस्तृत संभ्म पैदा िो सकता िै जो अपनेस्वभाव से िी मानवजीवन के आधार को नष्ट करने वाला और उसकी उन्ननत के सुननजश्चत िम को त्रबगाड़नेवाला िो।

इसशलए मनुष्य के अन्दर जो ननवृत्त्पिरक झुकाव िै उसे अपनी अपूणति का भान िोना चाहिए और प्रवृत्त्पिरक झुकाव के पीछे जो समय िै, - वि समय िै मनुष्य के अन्दर भगवान् ्की चररताथति और मानवजानत की सभी कियाओंमें भगवान् ्की उपजस्थनत - उसे भी स्वीकार कर अपनी बराबरी का स्थान देना िोगा। भगवान् ् केवल नीरवता में िी निीं, कम िमें भी िैं। प्रकृनत से अप्रभाववत उदासीन (ननष्कम)ि पुरुष की ननवृत्त्, और कमप्रिधान पुरुष की प्रवृत्त्, जो अपने-आपको प्रकृनत के िवाले कर देता िै ताकक यि मिान् ्ववश्व-यज्ञ, पुरुष-यज्ञ संपन्न िो सके ये दोनों ननवृत्त् और प्रवृत्त् - कोई ऐसी चीजें निीं ंिैं मानो सतत् ्संग्रामरत यथाथति और शमथ्यामव िों, अथवा यि भी निीं ंिै कक ये दोनों परस्पर ववरोधी यथाथतिाएँ िों, जजनमें से एक श्रेष्ठ और दूसरी कननष्ठ िै और दोनों एक-दूसरे के शलये घातक िों; अवपतु ये तो भागवत् ्अशभव्यजकत की द्ववववध शत ेिैं। अक्षर अकेला िी इनकी पररपूणति की कुंजी या परम रिस्य निीं। इन दोनों की पररपूणति को, इनके समन्वय को पुरुषोत्तम भाव में खोजना िोगा जो यिा ँश्रीकृष्णरूप से उपजस्थत िैं, जो एक िी साथ परमपुरुष, जगदीश्वर तथा अवतार िैं। भगवान् ्की प्रकृनत में प्रवेश कर के हदव्यीकृत मानव उसी तरि कम िकरेगा जैसे वे करते िैं; वि अपने को अकम िमें निीं ंछोड़ देगा। भगवान् ्अज्ञानमय व्यजकत और ज्ञानी पुरुष दोनों िी में कायरित िैं... कयोंकक वे िी अपनी शजकत के तरीकों और मानदण्डों में कम िकरते िैं; प्रकृनत की प्रमयेक गनत, जजस प्राणीजगत् ्को वे रचते िैं उसका प्रमयेक अणु उन्िीं की उपजस्थनत से व्याप्त िै, उन्िीं की चेतना से पररपूण िै, उन्िीं के संकल्प से प्रेररत िै, उन्िीं के ज्ञान से रूपानयत िै।

यिा ँमुख्य बात यि िै कक दो परस्पर ववरोधी मत िैं। एक साधारण मत तो यि िै कक यहद व्यजकत कम ि निीं ंकरेगा तो उसका काम िी निींचलेगा कयोंकक त्रबना कम िककये उसकी कामनाओं, इच्छाओं की पूनत िककस प्रकार िोगी। इसशलए व्यजकत को कम ितो करना िी पड़ेगा, अपनी कामना-पूनत िकरनी िी पड़ेगी। कयोंकक इच्छाओं

और कामनाओं से िी सारा संसार चल रि िै और इसी तरि चलेगा कयोंकक त्रबना इच्छाओं और कामनाओंके मनुष्य कैसे रि सकतिें। इसशलए अधधकांश लोग इनकी पूनत िके शलए िी कम िकरते िैं। आदश िके शलए कम िकरने वाले मनुष्य तो बिुत िी कम शमलेंगे। और इससे भी कम इस जस्थनत पर पिुँचने ेवाले लोग शमलेंगे जो किते िैं कक वे भगवान् ्की प्रसन्नता के शलए कम िकरते िैं। अधधकांश मनुष्य तो कामना पूनत िके शलए िी कम िकरते िैं। इससे अलग एक दूसूरा मत ननवृत्र्माधगयों का िै जो किते िैं कक साधारणतया अधधकांश मनुष्य माया के िी चककर में फंसे रिेंगे, द्वंद्वों में िी रिेंगे और तीनों गुणों से प्रभाववत िोतेरिेंगे। उसका कोई ओर-छोर निीिं कयोंकक वे अज्ञानमय जीव िैं और अज्ञान में िी जीवन व्यतीत करते रिेंगे। ककन्तु परमाममा की ओर जानेवाला व्यजकत कामनाओं और इच्छाओंके द्वारा कोई कम िनिीं ंकरता। परन्तु इसमें सबसे बिी समस्या यि िै कक व्यजकत चािे जजतना भी प्रयमन कर ले, ककतना भी संकल्प कर ले कक वि त्रबना कामना के कम िकरेगा, तो भी कम िके अंदर कामना तो ककसी प्रकार घुस िी जाती िै। इन द्वंद्वों से, गुणों से मुकत िोकर कम िकरना संभव िी निीिं।

इसशलये ननवृत्र्माधगयों का यि दृजष्टकोण िै कक त्रबना कामना के कम िोि िी निीं ंसकते, उनमें कामना तो घुस िी जाएगी। अतः भगवान् ्के साथ युकत िोने ेके शलए, ज्ञान में जानेके शलए, ब्रह्म को प्राप्त करनेके शलए एक िी रास्ता िै कक व्यजकत इन चीजों को कम-से-कम कर दे और अन्त में इन्िें समाप्त िी कर दे। इसशलए उनके द्वारा जो समाधान हदया गया िै वि िै अकम।ि उनके अनुसार व्यजकत अक्षर पुरुष की हदव्य चेतना में रिकर, सबसे अप्रभाववत िोकर समता में ननवास करे। जजसमें कम िकरने की कोई वृवृत् िै िी निींकयोंकक उनके अनुसार व्यजकत कम ितो ककसी फल की आशा से तथा अज्ञान के कारण करता िै। इस प्रकार ये दो मत िैं।

श्रीअरववन्द कि रिे िैं कक गीता के अनुसार साधारण सांसाररक मनुष्यों का मत तो इतना मूढ़ता और अज्ञान का िै कक उसकी समस्या तो स्पष्ट िी हदखाई देती िै, उसे अधधक समझानेकी आवश्यकता निीिं। पर जो इन ननवृत्र्माधगयों, ज्ञाननयों, संन्याशसयों का मत िै गीता उसे िी अधधक संबोधधत करती िै। कयोंकक वि िी घातक दृजष्टकोण िै। उसमें सांसाररक मत से बिा एक समय िै। मनुष्य देखता िै कक वि भगवान् ्की ओर अग्रसर िो रिा िै, और इस उद्देश्य के सामने वि अन्य सभी चीजों को अनदेखा कर देता िै, उन्िें गौण मित्त्व प्रदान करता िै। इससे ऊपर उठना बिुत िी मुजश्कल िै। इसीशलए गीता इसे अधधक संबोधधत करती िै।

तब कफर इसका उपाय कया िै? इसके शलए गीता में भगवान् ्ने स्वयं का उदािरण हदया िै। वे किते िैं कक ननवृत्र्मागी कितिें कक त्रबना कामना के कम िनिीं ंिो सकता जबकक तीनों लोकों में ऐसा कुछ भी निीिं जो मुझे प्राप्त निीं िै और मुझे ेकोई भी कामना निीिं कफर भी म ैंकम िकरता िूँ कयोंकक यहद म ैंकम िनिींकरूँगा तो लोक-संग्रि निीिंिोगा और लोग नष्ट िो जाएँगे। यहद व्यजकत यि मान ले कक यि जो अशभव्यजकत िै वि भगवान् ्की भूल या बेवकूफी मात्र निीिं बजल्क यि उनकी पररकल्पना िै, उन्िीिं का नकशा िै और वे इसके पीछे उनका कोई मित् ्उद्देश्य िै जजससे िम निींसमझ पा रिे िैं, और वे जो कुछ करना चाि रिे िैं वि अभी तक संशसद्ध निीिंिुआ िै। यहद िम इस प्रकार सोचें तो कफर एक दूसूरा दृजष्टकोण प्राप्त िोता िै। उसी उद्देश्य को संशसद्ध करनेके शलए भगवान् ्संत के रूप में, मिाममा के रूप में, ववभूनत के रूप में, अवतार के रूप में प्रकट िोते िैं। और यिाँ गीता स्वयं उसकी घोषणा कर रिी िै कक उनके कम िककस प्रकार के िैं। प्रतीनत में लगता िै कक भगवान् ्के कम िभी तीनों गुणों

से शलप्त िैं, परन्तु वास्तव में वे गुणों से शलप्त निीं ंिैं। िमारी संस्कृनत में परंपरा से यि मान्यता िै कक भगवान्

धचन्मय िैं। गुण उन्िें छू भी निीं ंसकते। प्रतीनत में िमें उनके कम िगुणों के अधीन लग सकतेिैं क्योंकक िमें इस सब के पीछे के उद्देश्य का पता निीं ंिोता। परन्तु वास्तव में बात ऐसी निीं ंिै। अगर कोई व्यजकत अपनी मानशसक, प्राखणक, भौनतक प्रकृनत के अधीन िोकर और उसी के द्वारा प्रेरणा प्राप्त कर के कम िकरता िै तो उसके कम ित्रत्रगुणमय िी िोंगे। इनसे बचा िी निीं ंजा सकता। परन्तु जब इनसे परे आममा की सत्ता, जो कक तीनों गुणों से परे िै, जो प्रकृनत की चीज निीं िै, से प्रभाववत िोकर अथवा उससे प्रेररत िोकर व्यजकत कम िकरता िै तो ऐसे में भले िी ककसी दूसरे को ऐसा लग सकता िै कक वि सत्त्व, रज या तम से प्रभाववत िै और उसमें आवश्यकतानुसार परवतनि आ सकतेिैं, परन्तु सब कुछ के बावजूद वि रिता तो गुणों से ऊपर िी िै। वि उनसे प्रभाववत निीं ंिै। न तो वि द्वंद्वों से प्रभाववत िोता िै और न िी गुणों से। वास्तव में तो किीं भी गुण तो िैं िी निीं,ं केवल प्रतीनत िी िै

क्योंकक भगवान् ्की परा प्रकृनत िी सब कुछ करती िै। गुण तो िमें केवल िमारी मानशसक चेतना के वतमान गठन के कारण हदखाई देते िैं। इसशलए जब कोई अवतार या कफर भगवान् ्को समवपति कोई व्यजकत कम किरता िै तो भले िी िमें हदखाई न पडे,़ परन्तु उसके कम िमुकत और हदव्य िोते िैं। तो कफर हदव्य कम िका आधार क्या िै?

वास्तव में इसका आधार िै व्यजकत का परमेश्वर, पुरुषोत्तम के साथ जुड़ाव िोना। इसीशलए भगवान् ्श्रीकृष्ण अब
अब आगे जानेंसे पिले गीता ने पिले बात की कक तुझे ेकम िका अधधकार िै, कमफल का निीं ्
सतत ्रूप से, अधधक से अधधक यि किते जाएँगे कक 'मेरी' ओर मुि, 'अिम'् , 'मम'्। क्योंकक इसके त्रबना कम
'कमण्येवाधधकारस्ते मा फलेषु कदाचन'। इसशलए व्यजकत यि सोचतािै कक कम िोता वि कर िी सकता िै। यिाँ
पिले तो यि बता हदया गया कक िमें कम िसे आसजकत निीं ंिोनी चाहिए। परन्तु अब आगे गीता यि बताने वाली िै
करने ेका तो कोई सच्चा आधार िी निीं। यहद पुरुषोत्तम की जस्थनत न िो तो हदव्य कम िसंपाहदत िो िी निीं
कक कम िोता व्यजकत कर िी निीं सकता। कम ितो भगवान् ्की प्रकृनत िी करती िै। मनुष्य तो अपने अिम् ्के कारण
सकते। या तो कम िोंगे इच्छाओं से, अज्ञान से, कामनाओं से, अिम ्से, या कफर व्यजकत की जस्थनत मुजकत की या
कतत्तापन की अपने ऊपर आरोवपत करता िै कक मैं कर रिा िूँ। परन्तु वास्तव में तो कम िोती प्रकृनत िी कर रिी िै।
अकम िकी िोगी। अक्षर ब्रह्म से एक िोने ेके बाद कम िन्यूनतम िी िोंगे और जब शरीर छूट जायेगा तो वे बचे–खुचे ेकम िभी छूट जायगें, जैसी कक ज्ञानमाधगयिों की शशक्षा िै। गीता इस रिस्य को अब ववकशसत करेगी।

III. प्रकृनत का ननयनतवाद

कुछ लोगों द्वारा उन श्लोकों को, जजनमें गीता ने अिमाममक जीव के प्रकृनत के वशीभूत िोने पर बल हदया िै, इस प्रकार समझा गया िै मानो वे ेएक ऐसे ननरपेक्ष-ननरंकुश और यांत्रत्रक ननयनतवाद का प्रनतपादन िैं जो वैजश्वक अजस्तमव में ककसी भी प्रकार की स्वतंत्रता के शलए कोई स्थान निींछोडता। ननश्चय िी उन श्लोकों की भाषा बिुत िी प्रभावशाली िै, और सुननजश्चत अथवा ननरपेक्ष प्रकार की प्रतीनत िोती िै। परन्तु अन्य स्थानों की तरि यिाँ भी, गीता के ववचार को उसके समग्र रूप में ग्रिण करना चाहिए और ककसी एक अशभपुजष्ट या कथन को, अन्य कथनों के साथ के संबंध से सवथिा अलग कर के, अपने-आप में सब कुछ निीं मान लेना चाहिए। जैसा कक,

वास्तव में प्रमयेक समय, भले वि अपने-आप में ककतना िी यथाथ िकयों न िो, अन्य समयों से, जो उसे मयाहिदत करते िुए भी पररपूण िकरते िैं, अलग कर हदया जाए तो बुद्धध को फाँसानेवाला एक फंदा और मन के शलए भ्ामक मत बन जाता िै; कयोंकक वास्तव में प्रमयेक समय एक जहटल ताने-बाने का एक सूत्र िै (उसका एक अंग िै) और ककसी भी सूत्र को उस समग्र ताने-बाने से अलग कर के निीं ंशलया जा सकता। इसी प्रकार गीता में सभी कुछ आपस में एक-दूसूरे से इस प्रकार गिनता से गुंथा िुआ िै कक उसको िर बात को संपूण िकलेवर के साथ शमलाकर िी समझना चाहिए... िमारी जहटल सत्ता के एक छोर पर प्रकृनत के साथ जीव के समबन्ध का एक ऐसा पिलू िै जजसमें जीव एक प्रकार से पूण िस्वतंत्र िै; दूसूरे छोर पर दूसूरा पिलू िै जजसमें एक प्रकार से प्रकृनत का कठोर ननयनतवाद िै; इसके अनतररकत स्वतंत्रता का एक आंशशक और हदखावटी, और इसशलए एक अवास्तववक आभास भी िोता िै जजसे जीव अपने ववकसनशील मन के अन्दर इन दो ववरोधी छोरों के ववकृत प्रनतत्रबंब के द्वारा ग्रिण करता िै। िम स्वतंत्रता के इस आभास को िी न्यूनाधधक भूल के साथ, स्वतंत्र-इच्छा किा करते िैं; परन्तु गीता पूण िमुजकत और प्रभुमव को छोड़कर और ककसी चीज को स्वतंत्रता निींमानती।

मिं यिा ाँएक सावधानी रखने ेकी हिदायत दी गई िै कक गीता के श्लोकों को उसके पूण िस्वरूप से अलग-थलग कर के एकांगी रूप से निीं ंलेना चाहिए। इसके श्लोकों से यि अथ िनिीं ंननकाल लेना चाहिये कक केवल प्रकृनत का अंकुश या ननयम चलता िै और स्वतंत्र इच्छा का कोई स्थान निीं। यि तो गीता के श्लोकों का अनतशय अथ िलगाना िुआ।

अब, दो मत प्रचशलत िैं। एक मत यि िै कक सब कुछ पूवननिधारिरत िै और जैसा भाग्य में शलखा िोता िै वैसा िी िोता िै। दूसूरा मत िै कक व्यजकत पूण िरूप से स्वतंत्र िै और चिो जैसे भी कर सकता िै। व्याविाररक रूप में व्यजकत देखता िै कक ककसी-ककसी ववशशष्ट क्षण में प्रमयक्ष रूप से यि मिसूस िोता िै कक वि पूण िरूप से स्वतंत्र िै, वि यि भी कर सकता िै, वि भी कर सकता िै, कयोंकक ऐसा कोई भी कारण निीं ंिै कक वि ऐसा न कर सके। उदािरण के शलए िम इस पेंशसल को इधर भी रख सकते िैं और उधर भी रख सकते िैं। यहद इस तरीके से देखा जाए तो स्वतंत्रता तो िै िी। परन्तु जब व्यजकत अपनेअंदर अवलोकन करता िै तो वि देखता िै कक यि स्वतंत्रता की प्रतीनत मात्र िै, वास्तव में सब कुछ पिले से ननधारिरत िोता िै। व्यजकत के अंदर जो ववचार आते िैं, उमपे्रेरणाएँ आहद आती िैं, वे ेककसी उच्चतर स्थान से पूवननिधारिरत िोती िैं। वास्तव में जब व्यजकत अपनी अंतराममा से, अपनेब्रह्म रूप से तादाममय में िोता िै तभी वि यथाथतिः स्वतंत्र िै। परन्तु जब व्यजकत भौनतक तत्त्व से, ज़ितत्त्व से तादाममय में िै तब वि पूण िरूप से उसका दास िोता िै। कयोंकक कफर एक ननजश्चत ननयमों के आधीन रिकर िी काम िोगा। बीच की जस्थनत में व्यजकत को स्वतंत्रता का भान िोता िै। इसको मानने ेवाले लोग कि देते िैं की स्वतंत्रता का आभास केवल एक बोध िै अन्यथा तो भगवान् ्ने सब कुछ ननधारिरत िी कर रखा िै। श्रीअरववन्द का किना िै कक स्वतंत्रता का यि भान भ्म निीं िै। वास्तव में व्यजकत को स्वतंत्रता तो िै, परंतु स्वतंत्रता के इस भाव को िम गलत स्थान पर अथात् ्िअिं पर आरोवपत कर देते िैं। अपने-आप का अथ िजब व्यजकत अपनेबािरी व्यजकतमव से मान बैठता िै, अपनेशरीर, ववचार तथा भावनाओंआहद से मान बैठता िै, तो उस भाग को स्वतंत्रता

निीं ंिै। व्यजकत के अन्दर कोई ऐसी चीज िै जो पूण िरूप से स्वतंत्र िै। उसके कारण िी व्यजकत को स्वतंत्रता का आभास िोता िै जजसे वि गलती से अपने अिं पर, बािरी व्यजकतमव पर अध्यारोवपत करने ेकी भूल करता िै।

वास्तव में, स्वतंत्रता और ननयनत एक िी वस्तु के केवल दो पक्ष िैं कयोंकक मूलभूत समय िै ववश्व का आममननधारिण तथा उसके अंदर व्यजकत का गुह्य आममननधारिण। कहठनाई इस बात से उठती िै कक िम अज्ञान के ऊपरी मन में ननवास करते िैं, यि निीं ंजानते कक पीछे की ओर कया िो रिा िै और प्रकृनत के केवल बाह्य किया-व्यापार की प्रकिया को देखतिैं। यिाँप्रमयक्ष दृजष्टगोचर िोता तथ्य िै प्रकृनत की एक अदमय ननयनत और चूंकक िमारी सतिी चेतना उस प्रकिया का अंग िोती िै, इसशलए िम उस द्ववपक्षीय समय के दूसूरे पक्ष को देखने में असमथ िािोते िैं। व्याविाररक उद्देश्यों के शलये, ऊपरी तल पर ज़ितत्त्व के अंदर एक प्रकार की पूण िननयनत िै - यद्यवप ववज्ञान की नवीनतम शाखा द्वारा अब इस पर आपवर्त् जताई जाती िै। जब प्राण का प्रादुभुावि िोता िै तो एक प्रकार की नमनीयता का भी प्रवेश िोता िै और इसके कारण ठीक-ठीक उसी तरि ककसी चीज का पूवानुिमान कर पाना कहठन िो जाता िै जजस तरि िम एक कठोर ननयम का अनुसरण करने ेवाली भौनतक ज़िवस्तुओंके ववषय में पूवकिथन करते िैं। यि नमनीयता मन के ववकास के साथ और बढ़ जाती िै और इस कारण मनुष्य को कम-से-कम स्वतंत्र-इच्छा का, अपनेकम िके चुनाव का तथा स्वेच्छापूवकि गनत करने का एक प्रकार का भान िो सकता िै जो कम-से-कम पररजस्थनतयों को ननधाररित करनेमें सिायक िोता िै। परंतु यि स्वतंत्रता संदिेास्पद िै, कयोंकक इसे एक प्रकार का भ्म, प्रकृनत का एक उपाय, उसके ननयनत-रूपी यंत्र का िी एक अंग घोवषत ककया जा सकता िै, यि केवल प्रतीत िोती स्वतंत्रता िै या कफर अधधक-से-अधधक एक सीशमत, सापेक्ष और अधीनस्थ स्वतंत्रता िै। जब मनुष्य पीछे की ओर, प्रकृनत से दूरू, पुरुष के समीप जाता िै और ऊपर की ओर, मन से दूरू, आध्याजममक आममतत्त्व तक चला जाता िै केवल तभी स्वतंत्रता का पक्ष सवप्रिथम प्रमयक्ष िोता िै और कफर, उस हदव्य संकल्प के साथ, जो कक प्रकृनत से ऊपर िै, एकमव िोने पर, पूण िािोता िै।

यहद व्यजकत श्रीमाँ की इच्छा के साथ एक िो जाता िै तो पूण िस्वतंत्रता िै। यहद ज़ितत्त्व के साथ एक िोता िै तो पूण िदासता िै। बीच-बीच में दोनों का शमश्रण िै। यिी जीवन का सार िै। वास्तव में मोटा-मोटा रूप तो यिी िै कक िमें स्वतंत्रता का आभास िो सकता िै परन्तु वास्तववक स्वतंत्रता तो श्रीमाँ के साथ एक िोनेपर िी आ सकती िै।

यिा ाँइस जगत् ्की सभी वस्तुएँ एक एवं अखंिननमय ववश्वातीत और ववश्वमय ब्रह्म िैं जो कक हदखने में ववशभन्न वस्तुओंऔर प्राखणयों के रूप में ववभकत िुआ प्रतीत िोता िै; परंतु ऐसा केवल प्रतीनत में िी िै, कयोंकक वास्तव में वि सभी पदाथों और प्राखणयों में सदा िी एक तथा 'सम' िै और शभन्नता तो केवल ऊपरी दृजष्टगोचर वस्तु िै। जब तक िम अज्ञानमय प्रतीनत में रिते िैं तब तक िम 'अिं' िैं और प्रकृनत के गुणों के अधीन िैं। बाह्य प्रतीनतयों के दास बने िुए, द्वंद्वों से बाँधे िुए और शुभु-अशुभु, पाप-पुण्य, िषि–शोक, सुख-दुुःख, सौभाग्य-दुभुाग्यि एवं जय-पराजय के बीच ठोकरें खाते िुए िम लाचार िो माया के पहिये के लिोमय या स्वणिलिोमय घेरे पर चककर काटते रितिैं। अधधक-से-अधधक िमारे पास केवल अमयन्त तुच्छ और सापेक्ष स्वतंत्रता िी िोती िै जजससे

कक िमारे द्वारा अज्ञानपूवकि अपनी स्वतन्त्र इच्छा किा जाता िै। पर मूलतः वि शमथ्या िोती िै, कयोंकक प्रकृनत के गुण िी िमारी व्यजकतगत इच्छा में से अपने-आपको व्यकत करते िैं; प्रकृनत की शजकत िी िमें वश में रखती िुई, पर िमारी समझ और पक्ि से बिार रिकर यि ननधिाररत करती िै कक िम कया इच्छा करेंगे और वि इच्छा ककस प्रकार करेंगे। िमारा स्वतन्त्र अिं निीं, अवपतु प्रकृनत यि चुनाव करती िै कक अपनेजीवन की ककसी भी घ़िी में िम, भले िी एक युजकतयुकत संकल्प द्वारा या ववचाररहित आवेग के द्वारा, ककस पदाथ िया िेतु की अशभलाषा करेंगे।.... सवदिा िो इस ननमन प्रकृनत के जाल में पि़े िोने पर भी स्वतंत्रता की शमथ्या धारणा के अज्ञान का बोध िी वि दृजष्टत्रबंदु िै जो गीता का ननष्कष िै और इस अज्ञान का खण्डन करने के शलए िी गीता अिमाममक जीव की इस जगत् में गुणों के प्रनत पूण िवश्यता बताती िै।

प्रकृतेः कक्रयर्ािातन गुिैः कर्ाणवि सर्विः ।

अहंकारवर्ूढात्र्ा कताहवमर्तत र्यते ।। २७।।

२७. जबकक कर् वपूितवया प्रकृतत के गुिों के द्रारा ककये जाते हैं, जजसका र्न अहंकार से वर्ूढ़ हो गया है ई र्ानता है कक र् ैंही उनका करनेर्ाला हूँ।

....व्यजष्टगत जीव के रूप में मनुष्य, कम िऔर भूतभाव (अपनिोने के भाव) के साथ अपनेअज्ञानवश तादाममय के कारण मानो वे ेकम िऔर उसका भूतभाव उसकी संपूण िआममा िी िैं न कक ये केवल उसकी आममा की एक शजकत िैं - अिंकार-ववमूढ़ िो जाता िै। वि सोचता िै कक स्वयंवि और दूसूरे लोग िी सब कुछ कर रिे िैं; वि यि निींदेख पाता कक प्रकृनत िी सब कुछ कर रिी िै और यि कक अज्ञान तथा आसजकत के कारण वि प्रकृनत के कमों को अपने शलए गलत ढंग से प्रस्तुत करता िै और ववकृत करता िै। वि गुणों द्वारा दास बनाकर रखा िुआ िै, कभी वि तमोगुण की ज़िता में फाँस जाता िै, कभी रजोगुण की प्रचंिआधाँधयों में ज़िा शलया जाता िै और कभी सत्त्वगुण के आंशशक प्रकाशों में उसे सीशमत कर हदया जाता िै और वि अपने-आप को त्रबल्कुल भी अपनेप्राकृत मन से अलग निीं ंदेख पाता जजसमें गुणों द्वारा फेर-बदल िोता रिता िै। इसीशलए वि सुख और दुुःख, िष िऔर शोक, काम और आवेग, आसजकत और जुगुप्सा द्वारा वशीभूत कर शलया जाता िै, उसे जरा भी स्वतंत्रता निीं ं रिती।

यिा ाँमूलभूत बात यि िै कक इस ब्रह्माण्ि में परमाममा की आद्याशजकत के संकल्प के अनतररकत और कुछ निीं िोता। यहद यि बात न िो तो सारी अशभव्यजकत, सारा ब्रह्माण्ि ननरथकि िी िो जाएगा। वास्तव में उस आद्याशजकत के अनतररकत कोई भी कुछ भी निीं ंकरता, केवल विी कजी िै। इसके अनतररकत यहद िमें और कुछ हदखाई देता िै तो वि घोर अंधकार िै, कयोंकक यि तो एक परम समय िै कक विी एकमात्र कीिा। यहद िमें यि समय निीं ंहदखाई देता तो िम मूढ़ िैं। व्यजकत को जो ननमन प्रकृनत और गुण हदखाई देते िैं वि तो केवल एक देखने का तरीका मात्र िै। वास्तव में तो केवल एक िी प्रकृनत िै जो किया करती िै। श्रीमाँ की चेतना पर िमारा जो प्रनतत्रबंबंन (reflection) िै वि िमें ननमन प्रकृनत और गुणों का आभास कराता िै। अब गीता इसी में जा रिी िै कक व्यजकत को ननमन प्रकृनत और गुणों का आभास कयों िोता िै? यि इसशलए िोता िै कक िमने अपने-आप को एक अिम् ्पर

केजन्रत कर रखा िै और इस तरि से िम एक कारागार में बंद िैं और उसी के दृजष्टकोण से सारे ब्रह्माण्ि को देखते िैं। और इसी कारण िमें दूसूरे व्यजकत, जीव, चीजें आहद नजर आते िैं। वास्तव में तो यिा ऊँपर सवत्रि केवल एक आममा िी िै और कुछ िै िी निीं। अिम् ्में भी िमारी चेतना के तीन पदे िैं - मन, प्राण और शरीर। चेतना का प्रनतत्रबंबं (reflection) जजस पदे पर जजतना प्रिेगा उसके अनुसार िमारा कम िसाजत्त्वक, राजशसक या तामशसक िोगा। कयोंकक कियाएँ और प्रनतकियाएँ तो सारी विंसे िी ननधारिरत िोती िैं, िमें तो केवल उनका अिसास िोगा।

जजस व्यजकत को थोिा बोध िोगा वि बता सकेगा कक साजत्त्वक, राजशसक और तामशसक में से वि ककस रूप में काय िकर रिा िै। परन्तु यि आवश्यक निीं कक व्यजकत को यि पता िो कक कौनसा कम िप्रधानतः साजत्त्वक िै,

कौनसा राजशसक और कौनसा तामशसक। कयोंकक साजत्त्वक, राजशसक अथवा तामशसक का अिसास िमें इसशलए

िोता िै कयोंकक िम सभी चीजों को उस प्रनतत्रबंबंन (reflection) से देखतिैं और इसी कारण िमें किया-प्रनतकिया और कायि–कारण की कड़ियाँ नजर आती िैं। जबकक यि तो केवल व्यजकत का एक बोध िोता िै। गीता किती िै कक

व्यजकत का इस तरीके का बोध मूढ़ता का िै कक वि कोई कम िकर रिा िै अथवा कोई गुण काय िकर रिे िैं, यि तो

उसका कोई ववषय िी निीं िै कयोंकक ये सब तो केवल प्रकृनत िी करती िै। यहद िम परमाममा के साथ तदामम िैं तो

प्रकृनत िमारी इच्छा के अनुसार काय िकरती िै अन्यथा िम प्रकृनत के िाथों में एक खखलौनेके अनतररकत और कुछ

निीं िोते। इसी बात को गीता ननणायिक रूप में किती िै। यहद िम यि सोचते िैं कक िमें पूरी स्वतंत्रता िै और िम

स्वतंत्र रूप से कुछ कर सकतिैं अथवा चयन कर सकतिैं तो यि केवल िमारा भ्म िै। कयोंकक िम अपनेववचारों में, भावनाओं में, आवेगों में अथवा अवचेतना से जो कुछ उठता िै उसके अनुसार काय िकरने को बाध्य िोतिैं। 'हदव्य संकल्प' को जो काम कराना िोता िै वि उसी प्रकार की उमप्रेरणाएँ, ववचार, कामनाएँ, प्राखणक आवेग आहद

िमारे अवचेतन में से उमपन्न कर लेता िै और उसी के अनुसार िम किया करने को बाध्य िोतिैं। भय, उमकण्ठा, कामना, भावनाममकता, अभीप्सा आहद जजसकी जब जजतनी आवश्यकता िोती िै वे उतनी उठ जाते िैं और िम विी काय िकरनेलगते िैं, इसी प्रकार विंसे सभी कुछ ननधारिरत िोता िै। और िमें यि लगता िै कक िम कुछ कर

रिे िैं, सोच रिे िैं, ननणयि कर रिे िैं, जबकक िम स्वयं वास्तव में कुछ निीं कर रिे िोते। िम तो प्रकृनत के िाथों में

केवल एक यंत्र िोतिैं। इस सारी प्रकिया का उद्देश्य िै कक प्रकृनत िमववकास के माध्यम से धीरे-धीरे भगवान् को िमारे भीतर जागृत् करना चािती िै। इसीशलए गीता किती िै कक साक्षी, अनुमता, भिता, भोकता, ज्ञाता और ईश्वर - उत्तरोत्तर बढ़ते िुए ये छः भाव व्यजकत प्रकृनत के प्रनत अपना सकता िै। सबसे पिले व्यजकत अिं से बद्ध िोता िै जजसमें वि संसार के चि में, सुख-दुःख, िानन-लाभ, शोक–िष,ि सफलता-असफलता आहद नाना प्रकार के द्वंद्वों में अथवा इसमें कक मेरी अमुक क्षमताएँ िैं और मैं कुछ कर सकूँगा, फंसा रिता िै जबकक ये सब व्यजकत की प्रनतकियाएँ िैं, जजनसे कुछ निीं िि सकता। कयोंकक जो जैसे िोना िै, वि वैसे िी िोता िै। व्यजकत की

 कक कोई खेल चल रिा िो तो उसमें भाग लेनेवाला व्यजकत वि सब चीज निीं देख पाएगा जो अलग ख़िा व्यजकत

देख सकेगा। इसशलये पिला िै साक्षी भाव। कफर जैसे-जैसे यि भाव ववकशसत िोगा और ज्यों-ज्यों िम ऊपर उठेंगे मयों-मयों िम देखेंगे कक प्रकृनत का जो यि सारा कायि–व्यापार चल रिा िै उसमें व्यजकत की भीतर से कोई-न-कोई अनुमनत अवश्य िै अन्यथा ये सब काम चल िी निींसकते थे। यि आभास व्यजकत को िोने ेलगता िै। तो यि िै अनुमंता का स्तर। और उसके बाद में कफर अनुभव िोगा कक इन सब कमों के शलए प्रकृनत अपनी सारी ऊजाि भी मि से िी प्राप्त कर री िै अन्यथा तो वि किया कर िी निीं ंसकती, िम िी अनुमंता और भताि िैं। इससे और अधधक गिराई में जानेपर िम यि पाएँगे कक प्रकृनत यि सब िमारी अपनी प्रसन्नता, िमारे भोग के शलये कर री ै, यि सब समीकरण तो िमारे अपनेभोग के शलए िी बनाया गया िै। िम िी इसके भोकता िैं। इससे और आगे जानेपर जब व्यजकत अपनी सतिी प्रकृनत से िटकर अपनेसच्चे स्वरूप पर पिुँच जाता िै तो सब कुछ का उद्देश्य समझ में आ जाता िै कक यि सब कयों िो रिा िै, और इस सारे खेल का कथानक समझ में आ जाता िै। यि ै

ज्ञाता का स्तर । उससे और भीतर जानेपर ईश्वर भाव प्राप्त िोता िै और व्यजकत को यि प्रमयक्ष िो जाता िै कक प्रकृनत यि सब कायि–व्यापार करती िी केवल उसकी प्रसन्नता के शलये िै। इसके अनतररकत वि और कुछ करती िी निीं। परंतु प्रकृनत जजस 'म'ै की प्रसन्नता के शलये काम करती िै वि वि सतिी प्रकृनत का 'म'ै निीं जो िम अपनेको सामान्यतया मानते िैं। यि तो केवल एक ऊपर का आवरण-मात्र िै। इस प्रकार ये छः स्तर िैं। ईश्वर का भाव तो जीव के शलये ग्रिण करना मुजश्कल िै। वि तो अवतारों में िी आता िै। परन्तु बिुत िद तक व्यजकत इसके ननकट जा सकता िै। गीता यि घोषणा करती िै कक जो भी व्यजकत यि सोचता िै कक वि कोई कम िकरता िै और
वि कुछ चयन कर सकता िै तो यि सब उसकी मूखिता िै। समस्त कम ितो भगवान् ्की प्रकृनत िी करती िै।

[प्रकृनत के ननयनतवाद का अथ ििै]...कक जजस अिंकार के द्वारा िम किया करते िैं वि स्वयंभी प्रकृनत की किया का एक यंत्र िै और इसशलए प्रकृनत के ननयंत्रण से मुकत निींिो सकता; अिंकार की इच्छा प्रकृनत द्वारा ननधाररत इच्छा िै, यि उस प्रकृनत का एक अंग िै जो अपनेपूव िकमों और पररवतनिों के द्वारा िमारे अन्दर गहठत िुई िै और इस प्रकार गहठत प्रकृनत में जो इच्छा िै विी िमारे वतिमान कम िका ननधािरण करती िै।... िम ऐसे बोलते और किया करते िैं मानो ककसी भी क्षण ववशेषे में िम अपनेसाथ जो चािें वैसा करने ेमें एक पूण िआंतररक चयन की स्वच्छंदता रखते िों। परन्तु ऐसी कोई पूण िस्वतंत्रता निीं ंिोती िै, िमारे चयन के शलए ऐसी कोई स्वतंत्रता निीं ंिै।

ननश्चय िी िमारी इच्छा को सदा िी ककन्िींप्रस्तुत संभावनाओं में से कुछ चुनाव करना प़िता िै, कयोंकक इसी तरीके से प्रकृनत सवदिा किया करती िै; यिाँ तक कक िमारी ननश्चेष्टता, ककसी प्रकार की इच्छा करने से मिारी अस्वीकृनत भी एक चुनाव िै, प्रकृनत की िममें जो इच्छा-शजकत िै वि उसी की एक किया िै; परमाणु तक में भी एक इच्छा-शजकत सदा अपनी किया करती रिती िै। सारा अन्तर केवल इसमें िै कक ककस िद तक िम प्रकृनत की इस इच्छा-शजकत की किया के साथ अपनेस्वमव के या स्वयंके कतृिमव के भाव को जो़िते िैं। जब िम इस प्रकार अपने-आपको उसके साथ जो़ि लेते िैं तब यि सोचनेलगते िैं कक यि इच्छा िमारी िै और यि किने ेलगते ैं कक यि एक स्वाधीन इच्छा िै, िम िी कताि िैं....

[तो भी स्वतंत्र-इच्छा का बोध....ननरा भ्म नििं ंिै, यि केवल दृजष्टकोण और ननयोजन की िी भूल िै।
अिंकार समझता िै कक विी सच्ची आममा या मूलतत्त्व िै और इस प्रकार कम िकरता िै मानो विी कम िका वास्तववक केन्द्र िो और मानो सब कुछ उसी की तुजष्ट के शलए िै और यिीं वि दृजष्टकोण और ननयोजन की भूल करता िै। ऐसा सोचना गलत नििं ंिै कक िमारे अन्दर, िमारी प्रकृनत की इस किया में कोई चीज या कोई पुरुष ऐसा िै जो िमारी प्रकृनत के कम िका वास्तववक केन्द्र िै और सब कुछ उसी के शलये िै; परन्तु वि केन्द्र अिंकार नििं ंिै, अवपतु हृदयों में ननगूढ़ ईश्वर िै और वि हदव्य पुरुष और जीव िै जो अिंकार से पृथक् हदव्य पुरुष की सर्ता का िी एक अंश िै। अिं-बोध का स्वाग्रि िमारे मन पर उस समय की एक टूटी-फूटी और ववकृत छाया िै जजसके अनुसार मिारे अन्दर एक सदाममा िै जो सबका स्वामी िै और जजसके शलए तथा जजसके आदेश से िी प्रकृनत अपनेकम िमें लगी रिती िै। इसी प्रकार अिंकार की अपनी स्वाधीन इच्छा की धारणा भी उस समय का एक ववकृत और स्थानभ्ष्ट अनुपयुकत भाव िै जजसके अनुसार िमारे अन्दर एक स्वाधीन आममा िै और प्रकृनत की इच्छा उसी की इच्छा का पररवनततत (modified) और आंशशक प्रनतत्रबमब िै, पररवनततत और आंशशक इसशलए कक यि इच्छा क्षण-प्रनतक्षण पररवनततत िोनेवाले काल में रिती और सतत् ्नये-नये ऐसे रूप धारण कर के काम करती िै जो अपने पूवरूिपों को बिुत कुछ भूले रिते िैं और स्वयं अपनी परणामों और लक्ष्यों को पूरा-पूरा नििं ंजानते। परन्तु ु अन्दर की संकल्पशजकत क्षण-क्षण पररवनततत िोनेवाले काल के परे िै, वि इन सबको जानती िै, और िम कि सकते िैं कक, प्रकृनत का जो कम िमारे अन्दर िोता िै वि, इसी बात का प्रयास िै कक अंतःजस्थत संकल्प और ज्ञान के द्वारा अनतमानस-प्रकाश में जो कुछ पिले से देखा जा चुका िै उसी को, प्राकृत और अिंभावापन्न अज्ञान की बिुी कहठन अवस्थाओं में से िोकर, काय–रूप में पररणत ककया जाए।

यिा ंाँचिा यि िै कक िमारा स्वतंत्र इच्छा-शजकत का जो भान िै वि एकदम गलत तो नििं िै कयोंकक िमारे भीतर एक ऐसा तत्त्व िै जो पूणतिः स्वतंत्र िै और वि िै िमारी अन्तराममा, िमारा आमम-रूप। प्रकृनत इसी के संकल्प को साधधत करती िै। इसशलए स्वतंत्र इच्छा का भान अपने-आप में सिी िै, परंतु आममा की बजाय उसे अिं के शलए मान बैठना गलत िै। स्वतंत्रता िमारे सच्चेआमम-रूप को िै और इसी के संकल्प को प्रकृनत साधधत करती िै। उदािरण के शलये यहद िमने एक ववशाल नाटक करनेका ववचार ककया और उसकी मोटी-मोटी रूपरेखा बनाई, कफर ववस्तार से उसका कथानक शलखा और कफर उसके अनुसार अलग-अलग पात्रों का चयन करके उन्िें उनकी भूशमकाएँ सौंपी और उसका संचालन प्रारमभ ककया। नाटक के संचालन में सभी पात्र अपनी-अपनी भूशमका अदा करते िैं। अब इसमें यि आवश्यक नििं िै कक सभी पात्रों को एक-दूसूरे की भूशमका का और समपूण िनाटक की ववषय-वस्तु का पता िो अथवा वे ेउन सब चीजों को अपनी भूशमका में रितेसमय याद िी रखें। नाटक खेलते समय िर पात्र का अपनी-अपनी भूशमका से तादाममय िै। कयोंकक यहद यि तादाममय न िो तो इस प्रकृनत को रूपांतररत नििं कर सकते। यहद व्यजकत एक अमुक भूशमका से तदामम नििं ंिोगा तो आममा की शजकत से उसे रूपांतररत कैसे कर सकेगा। इसशलये यि तादाममय आवश्यक िो जाता िै। यहद िम अपनी भूशमका में सच्चेरूप से तदामम नििं िै तो कफर िम नाटक में अपनी भूशमका को सच्चेरूप से नििं ननभा सकते।

तो इस उदिारण के माध्यम से िम समझ सकतें कक नाटक तो िमारा बनाया िुआ िी खेला जा रिा िै। मि िी इसके रचनयता और अशभनेता िैं। पर चूंकक िमने अपनी भूशमका से अपने को तदामम कर शलया िै इसशलये मिारे द्वारा िी रचे ेगये इस नाटक की ववषय-वस्तु को िम भूल गये िैं। और ऐसा इसशलये कयोंकक यहद िम इससे तदामम न िों तो इस प्रकार का नाटक चल निींसकता, रूपांतर साधधत निीं िो सकता। यि एक देखने का तरीका िै। अतः गीता अलग-अलग बातें सामने लाकर िमें शसखा रिी िै कक 'कमणयेवाधधकारस्ते....' से िमें यि निीं समझ लेना चाहिये कक वास्तव में िम स्वयंकोई कम िकर रिे िैं। कयोंकक कफर आगे वि किती िै कक 'ननशमत्मात्रं ं

भिन्न् सिव्यसाधधचमिले् अिथित्ि्ो चुका िै तू, तो केवल ननशमर्त् मात्र बन। ये सब काय ितो िोने िी िैं। कयोंकक सवत्रि केवल म ैंिी िूँ और म ैंतेरी आममा िूँ और तुझ से एक िूँ। समपूण िब्रह्माण्ि में मेरे संकल्प के अलावा और कुछ निीं ंिोता। म ैंिी माता, म ैंिी वपता, म ैंिी देश, म ैंिी धान्य, म ैंिी समपवर्त् िूँ। यि भगवान् ्ने आगे अध्याय में बता हदया िै। हदव्य गुरु अजुनि को केवल इसी ओर उर्त्रोर्त्र ववकशसत कर रिे िैं।

तत्ववर्त्ु ुर्हाबाहो गुिकर्वभागयोः ।
गुिा गुिेषुर्ततवत इतत र्त्ा न सजजते ।। २८ ।।

२८. ककततुहे र्हाबाहो अजुनव! गुिों के वर्भाग और कर्ों के वर्भाग के तत्त्् को जाननेर्ाला र्नुष्य, गुि परस्पर र्ें एक-दूसूरे पर कक्रया-प्रततकक्रया ककया करते हैं, ऐसा जानकर आसजक्त कर के उनके जाल र्ें नहीं ंिँसता ।

....िमारी प्रगनत में एक समय अवश्य िी ऐसा आयेगा जब िम अपनी आखाँ को अपनी सर्त्ा के वास्तववक समय को देखने के शलए खोलने को तैयार िोंगे और तब अिंभावापन्न स्वतंत्र इच्छा का भ्म अवश्य दूरू िो जाएगा... परन्तु स्वतंत्र इच्छा का मयाग ककसी रूप में अपनी वास्तववक आममा का आभास पाये त्रबना, केवल भाग्यवाद को मानकर या प्रकृनत की ननयनत को मानकर िी निीं ंिोना चाहिए; कयोंकक उस जस्थनत में भी एकमात्र अिंकार को िी सच्ची आममा मानतेरिेंगे और, चूँकक अिंकार सदा िी प्रकृनत का उपकरण िोता िै, अतः िम कफर भी अिं के द्वारा िी किया करते रिेंगे और िमारी इच्छा उसका यंत्र िोती िै, और इस प्रकार सच्ची आममा का ववचार िमारे अंदर कोई वास्तववक पररवतनि साधधत निीं करता, केवल िमारे बौद्धधक भाव में कुछ फेर-बदल कर देता िै। तब िमने अपनी अिंमाममक सर्त्ा और कम िके प्रकृनत द्वारा ननयंत्रत्रत िोने का व्याविाररक समय तो स्वीकार कर शलया िोगा, अपनी अधीनता को भी देख शलया िोगा, ककन्तुिमारे अन्दर जो अजन्मा आममा िै, जो गुणों के कम िसे परे िै, उसे िम न देख पाए िोंगे, यि न देख पाए िोंगे कक िमारी मुजकत का द्वार किा ँिै। प्रकृनत और अिंकार िी िमारी सर्त्ा का सवस्वि निीं, मुकत पुरुष भी िै।... इस पुरुष की हदव्य सर्त्ा और स्वभाव को जानना, उसके अनुकूल िोना और उसमें ननवास करना िी अिंकार और उसके कम िसे ननवृर्त् िोने ेका िेतु िै। इससे मनुष्य गुणों की ननमन प्रकृनत से ऊपर उठकर उच्चतर हदव्य प्रकृनत को प्राप्त िोता िै।

प्रकृतेगुिवसम्र्ूढाः सजजतते गुिकर्सुव ।
तानकृत्स्नवदो र्तदातकृत्स्नवर्तन वर्चालयेत् ्।। २९।।

२९. जो नुष्ट्य प्रकृतत के गुिों के द्वारा रूढ़ बना ददये गये हैं और गुिों की कक्रयाओं ्रें् आसक्त हो जाते हैं, ऐसे अपूि वज्ञानी नुष्ट्यों के नोंभार् को पूि वज्ञानी नुष्ट्य वर्चमलत न करे।

...'अपनी' इच्छा, 'अपने' कम िका यि ववचार सवथिा ननरथकि या ननरुपयोगी निीं िै; कयोंकक प्रकृनत के अन्दर प्रमयेक चीज को एक साथकिता और उपयोधगता िै। यि िमारी सचेतन सर्त्ा की वि प्रकिया िै जजसके द्वारा िमारे अन्दर जो प्रकृनत िै वि अपने अंतःजस्थत ननगूढ़ पुरुष की उपजस्थनत को अधधकाधधक जान लेती और उसके अनुकूल िोती जाती िै और इस ज्ञान-वृद्धध के द्वारा कम िकी एक मित्र संभावना की ओर उद्घाहटत िोती ै; इस अिभाव और व्यजकतगत इच्छा की सियता से िी वि अपने-आपको अपनी उच्चतर संभावनाओं की ओर उठाती िै, तामसी प्रकृनत की ननरी या कफर अधधक प्रबल ननश्चेष्टता से ननकलकर राजसी प्रकृनत के आवेग और संघष िको प्राप्त िोती िै और कफर राजसी प्रकृनत के आवेग और संघष िसे ननकलकर साजत्त्वक प्रकृनत के मित्र प्रकाश, सुख और पववत्रता को प्राप्त िोती िै। प्राकृत मनुष्य द्वारा स्वयंके ऊपर जो आंशशक आममप्रभुमव प्राप्त ककया गया िै वि उसकी प्रकृनत की उच्चतर संभावनाओं द्वारा ननमनतर संभावनाओं पर प्राप्त ककया गया प्रभुमव ै, और ऐसा उसके अन्दर तब िोता िै जब वि ननमनतर गुण पर संघष िकर के प्रभुता पाने के शलए, उसे अपने अधधकार में करनेके शलए उच्चतर गुण के साथ अपने-आपको जोड़ लेता िै। स्वाधीन इच्छा का बोध चािे भ्रम िो या न िो, पर िै प्रकृनत के कम िका एक आवश्यक यंत्र। मनुष्य के शलए उसके प्रगनत-काल में यि आवश्यक िोता ै, तथा उच्चतर समय ग्रिण करनेके शलए उपयुकत िोने के पूव ििी उसे खो देना उसके शलए अमयंत घातक िोगा... (इसीशलए गीता आदेश करती िै) "...जो इन गुणों के द्वारा ववमूढ़ िो जाता िै...उसके मनोभाव को पूण िज्ञानी ववचशलत न करे।"

यि एक अमयंत गिन और सुन्दर चीज िै। जैसा ववशद वणनि इसका श्रीअरववन्द ने अपने'साववत्री' ग्रंथ में ककया िै वैसे वणनि की गीता की टीका में िम उनसे अपेक्षा निींरख सकते। सूक्ष्म रूप में, सारे ब्रह्माण्ड् की अशभव्यजकत में िम देखतिैं कक अवचेतन से लेकर अचेतन और ननश्चेतन तक के ननचले स्तरों में जो अशभव्यजकत िुई िै वि परमाममा के गुणों से अमयंत ववपरीत चीज िै। वास्तव में वि अशभव्यजकत कया िै या कैसी ै यि तो िम निींजानते पर मनुष्य को ऐसी प्रतीत िोती िै।

मनुष्यों को जब ज्ञान िोता िै तब उन्िें ऐसा प्रतीत िोता िै कक परमाममा उस ननश्चेतन से अवचेतन, अवचेतन से चेतन और कफर अनतचेतन की ओर ऊपर उठते िैं। वतमिान सृजष्ट में यिी प्रकिया गोचर िोती िै। यि प्रकिया कैसे िोती िै मोटे तौर पर यहद िम इसे समझें तो िम देखेंगे कक अधधकांश समय तो ननश्चेतन से जड़- भौनतक तक के ववकास में िी लग जाता िै। जड़-तत्त्व भी एक बिुत िी लमबे समय के बाद उमपन्न िोता िै। ववज्ञान इसका ववकास अपने अलग ढंग से बताता िै। जड़-तत्त्व के उमपन्न िोने के बाद उसमें जीवन का अभ्युदय िोने मेें भी अरबों वष िलग जाते िैं। आरमभ में अमीबा जैसे जीवाणुओं से जीवन आरंभ िोता िै। कफर प्रारजमभक जीव-रूप आते िैं जो कक अधधक समय तक जीववत निींरि पाते। उसके बाद प्रकृनत ऐसे जीव-रूपों को लानेका प्रयास करती िै जो अधधक व्यवजस्थत और सुरक्षक्षत िों। अन्यथा वेजीव-रूप तो प्रकृनत के थपेड़ों के कारण शीघ्र

ीि नष्ट ि◌ो जाते थे। तब ि◌जारों-लाखों वषों के बाद समुर में जीवन का आरंभ ि◌ुआ, जजसके बाद जलथलचर जीव आए। और कफर इस क्रि◌ी के चलते पशु ◌ुआए। पशुओंुमें चेतना का इतना आधार तैयार निीं ◌ंि◌ोता कक वे सचेतन रूप से बोध कर सकें। साथ ि◌ी उनका जीवन सदा ि◌ी अमयंत संहदग्ध व संकटपूण ीि◌ोता ि◌ै चूंकक एक जीव दूसूरे जीव का भोजन ि◌ोता ि◌ै। इसशलए यहद पशुओं को उन्ीिं की वृवृर्त् के सिारे छिो़ हदया जाता तो वे बिुत पिले ि◌ी नष्ट ि◌ो जाते। इसशलए प्रकृनत उन्िें एक सामूहिक सिजवृवृर्त् (instinct) प्रदान करती ि◌ै। उन्िेंअपनी इजन्रयों के माध्यम से सिज रूप से पता रिता ि◌ै कक कया उनके उपयोग का ि◌ै और कया ि◌ाननकारक ि◌ै। वे अपनेसिजबोध से जीवनचयिा करते ि◌ैं। इस प्रकार लाखों-करिो़ीं वष ि◌गुजर जानेके बाद मानशसक चेतना का उदय ि◌ोता ि◌ै। ि◌ालाकाँक पशु ◌ुचेतना के अधधक ननकट ि◌ोने ◌ेके कारण आहदम मानवों में मानशसकता का उदय अधधक निीं ◌ंथा, वे सिजवृवृर्त् के द्वारा ि◌ी काय ि◌करते थे। इसके बाद धीरे-धीरे एक बिे़ ◌ेलंबे समय के बाद ि◌मशः मानशसक चेतना का ववकास ुिआ जजसमें मनुष्य को इजन्रयों के द्वारा जो कोई सूचना प्राप्त ि◌ोती ि◌ै मनस् ◌्उसका ननरीक्षण करता ि◌ै और कफर उस पर प्रनतकिया करता ि◌ै। आरमभ में पशु ◌ुऔर मनुष्य दोनों को ि◌ी पररचाशलत करनेके शलए उनमें भय और कामना लगा दी गई कयोंकक इन दो के त्रबना तामशसक आवरण को हिलाया निीं जा सकता था, उसे कम ि◌में प्रवृर्त्ू निीं ◌ंककया जा सकता था। इसशलये कैसे मनुष्य अपनी लालसा, कामना या आकांक्षा को पूरा करेगा और कैसे अपनेभय से दूरू भागेगा? इसके शलए मनुष्य स्वतः ि◌ी अपनी इजन्रयों को और अपने अधववकशसत मन को काम में लेता ि◌ै जजससे उसे थिो़ा-बिुत बोध प्राप्त ि◌ोता ि◌ै। परन्तु ये बोध बिुत धीरे-धीरे आते ि◌ैं और इनमें बिुत अननजश्चतता ि◌ोती ि◌ै, जबकक सिजवृवृर्त् सुननजश्चत थी। इसी कारण आरंभ में सिजवृवृर्त् लुप्त निींिोती। धीरे-धीरे लाखों वषों के सुधार के बाद तकि-बुद्धध ववकशसत ि◌ुई और सिजवृवृर्त् के द्वारा ननणयि कम ि◌ोते गए कयोंकक यि सिजवृवृर्त् चेतना के एक ननजश्चत दायरे में ि◌ी काम करती ि◌ै, उसके बाद निीं। तकि-बुद्धध में अधधक संभावनाएँ खुल जाती ि◌ैं और व्यजकत अपना थिो़ा-बिुत योगदान भी देना आरंभ कर देता ि◌ै। इस तकि-बुद्धध को ववकशसत करना अननवाय ीि◌ी था अन्यथा ईश्वर के रूप और उनके समय को कैसे अशभव्यकत ककया जा सकता था? िालाकाँक सिजवृवृर्त् में ननजश्चतता ि◌ोती ि◌ै जबकक तकि-बुद्धध की किया में त्रुहट ि◌ो सकती ि◌ै, परंतु एक अधधक समृदृ्ध अशभव्यजकत के शलए उसे ववकशसत ककया गया। यहद मनुष्य को यि मिसूस न ि◌ो कक वि एक पृथक् व्यजकतमव ि◌ै, तो उसमें अपने से शभन्न वस्तुओंको प्राप्त करने ◌ेकी, उनका उपभोग करनेकी लालसा या आकांक्षा ीि निीं ◌ंि◌ोगी और वि उनको पूरा करने ◌ेकी चेष्टा ि◌ी निींकरेगा और यहद वि अपने-आप को असुरक्षक्षत अनुभव निीं ◌ंकरेगा तो वि कोई काम भी निीं ◌ंकरेगा। इसशलए इस सबके शलए उसके अंदर यि अिंभाव ननहित ककया गया ै। कयोंकक "ego is the helper, ego is the bar" अथात् ि◌्अिं सियक ि◌ै और अिं बाधक ि◌ै। व्यजकतमव के ननमाणि में अिं सियक था। उसी के आधार पर मनुष्य के ववशभन्न हिस्सों का ववकास ि◌ुआ। ि◌म देखेंगे कक जब अिंभाव िोता ि◌ै तो वि अपने शलये चीजों को आयर्त् कर लेता ि◌ै जबकक यहद यि भाव न ि◌ो तो वि ऐसा निींकर पाता। इसशलए आरंभ में तो उसे केवल भौनतक चीजों का ि◌ी बोध ि◌ोता ि◌ै और सबसे पिले उसकी सिजवृवृर्त् अपने-आप को ककसी तरि से सुरक्षक्षत बचाए रखनेकी ि◌ोती ि◌ै। पर जैसे-जैसे उसका थिो़ा ववकास ि◌ोता ि◌ै तो वि जान जाता ि◌ै कक ककस प्रकार उसे अधधक लाभ प्राप्त ि◌ो सकता ि◌ै, और वि उसी प्रकार आचरण करने ◌ेलगता ि◌ै। इन सब अिं और अज्ञान के रूपों से ि◌ोते ि◌ुए भी प्रकृनत उसे आगे की ओर शलये जा रिी ि◌ोती ि◌ै और अज्ञान के पदों को कम

करती जाती ि और थोिा-थोिा करके प्रकाश फैलाती जाती ि। इस प्रकार प्रकृनत बुद्धध का ववकास करके अपने ऊपर और अंध वृवृत्यों के ऊपर अंकुश लगाती जाती ि। पशु ुऐसा निीं ंकर सकता, उसे तो अपनी सिजवृवृत् के अनुसार िी चलना पिता ि। मनुष्य को कुछ स्वतंत्रता प्राप्त िोती ि और वि चीजों में फेरबदल कर सकता ि। और जब साजत्त्वक प्रकृनत ववकशसत िोती ि तब व्यजकत उधचत-अनुधचत का ननणयि करनेमें सक्षम िोता ि। वि सिजवृवृत्यों को, भय आहद को अनदेखा कर सकता ि। तब प्रकृनत में अधधक लचीलापन आ जाता ि और वि एक अधधक ववशाल स्तर की चीज व्यजकत के साथ कर सकती ि। इस तरि का िमववकास िमारा चलता आ रिा ि।

श्रीअरववन्द का किना ि कक गीता यि कि रिी ि कक िमारा अि बोध, स्वतंत्र रूप से बुद्धध के माध्यम से सिी-गलत का ननणयि करने ेका िमारा बोध प्रकृनत का एक शजकतशाली यंत्र ि जजसके द्वारा वि हदनोंहदन अधधक चेतन िोती जाती ि, और तब मनुष्य अधधकाधधक सचेतन रूप से किया करनेलगता ि और सचेतन िोकर अपनी ननचले स्तर की चीजों को सुधारता ि। कौन ऐसा मनुष्य ि जो अपनी पुरानी चीजों के प्रनत सचेतन िोकर उनमें सुधार निीं कर लेता। इस तरीके से िमारे अंदर बुद्धध के अधधकाधधक ववकास के साथ िी प्रकृनत अधधकाधधक कुशल िोती जाती ि। जजस व्यजकत को अध्याामम ज्ञान आ गया, जजसने आममा का ज्ञान कर शलया, जजसने यि जान शलया कक 'सारे कम ितो प्रकृनत करती ि, म ंतो इससे ऊपर िूँ', तब प्रकृनत उसे इस स्तर पर ले आती ि और अन्त में वि यि समझा देती ि कक इस सारी प्रकिया से वि व्यजकत का उमथान कर रिी थी। वास्तव में मनुष्य के अन्दर जो चीज ि वि केवल इस मानशसक प्रकृनत तक िी सीशमत निीं। भगवान् ्की परा प्रकृनत ि, जजसके अंदर आध्याजममक जगत् ्ि। इसशलये व्यजकत इन सब ननमन स्तरों से ऊपर उठ सकता ि, वि इस सब से बाँधा िुआ निीं ि, कोई कायि–कारण निीं ंि। िम प्रकृनत के सारे ननयम खोजते ि, बुद्धध के द्वारा तुलना करते ि, वस्तुओंतथा ववशभन्न ननयमों में भेद करते ि। और कफर एक हदन िमें समझ में आता ि कक ये सब बाध्यकारी निीं। वास्तव में प्रकृनत तो िमारा िी दूसूरा रूप ि, िम स्वयंपुरुषोत्म ि, िमारे संकल्प मात्र से सारा ब्रह्माण् चलता ि। यि एक बिी ववधचत्र बात ि। और प्रकृनत िमें उस स्तर तक ले जाएगी कयोंकक प्रकृनत का तो काय िी यिी ि कक आमम-सचेतन िोकर अपनी पूण िचेतना में िमें पुनः ले जाना। जब िम यि जान जाते ि कक सारे काम भगवान् ्की प्रकृनत िी करती ि और िम चािे जो कर सकत, और इस बात को िम उस मनुष्य को समझानेका प्रयास करें जो इस स्तर पर निीं जिाँ प्रकृनत उसे गुणों के द्वारा ऊपर उठा रिी ि, तो वि असमंजस में पि जायेगा और ऐसे में वि न तो अपना कम िकर पायेगा और न िी िमारी बताई बात का ननविन कर पाएगा। इसशलए ऐसे व्यजकत को ववचशलत करके उसके संतुलन को भंग निीं करना चाहिये कयोंकक उसे तो अपनेअि के कारण यिी हदखाई देता ि कक कमों का कति वि स्वयं ि, और उसी की प्रकृनत काम कर रिी ि। सारे संसार में अधधकतर लोग ऐसे िी ि। बिा ववरला िी कोई व्यजकत ऐसा शमलेगा जजसे बोध िो कक गुण आहद की किया तो अपनी जगि ि परन्तु वि चािे जो कर सकता ि। ऐसी बात तो कदाधचत् ्िी ककसी के समझ में आती ि।

इसशलये गीता यि किती ि कक पूण िज्ञानी मनुष्य को अपूण िज्ञानी मनुष्य के संतुलन को भंग निीं ंकरना चाहिये। जब प्रकृनत एक सीमा तक ववकशसत िो जाएगी तब वि ऐसा प्रकट कर देगी कक व्यजकत यि ननमन व्यजकतमव निीं। वि तो पुरुषोत्म ि, परमामम ि। और प्रकृनत उसे ऊपर उठाती ि। तब कफर आध्याजममक

प्रकृनत काय िकरनेलगती िै। भगवान् ्की हदव्य पराप्रकृनत िी िै जो व्यजकत की साधना कराती िै। साधना कोई व्यजकतगत प्रयमन से निीं िोती। परन्तु यहद ककसी व्यजकत के मन में उमसिा िै और वि परमामा को प्राप्त करने के शलए मेिनत करता िै, कभी ध्यान करता िै, कभी ककसी तरीके का अभ्यास करता िै, कभी ककसी अन्य के कि अनुसार अभ्यास करने लगता िै जैसे कक श्री रामकृष्ण जी करते थे, तो ऐसा व्यजकत जल्दी िी आध्याजममकता में आगे बढ़ जाता िै और जो व्यजकत कुछ निींकरता वि ज्यों का मयों िी रि जाता िै। अब इन दोनों बातों में तालमेल कैसे बैठाया जाए? इसका कारण िै कक यहद व्यजकत वास्तव में सच्चा िै, अपनेउद्देश्य के प्रनत कृतसंकल्प िै और परमामा को पाना चािता िै तो उसे पानेके शलए वि सारे िथकंडेिो प्रयोग में लाएगा िी कक कौनसे तीथ िमें चला जाए, कौनसी साधना करे, कौनसी पुस्तक पढ़े, आहद-आहद। ये सब तो व्यजकत की सच्चाई की ननशाननयाँ िैं। परंतु जो पररणाम व्यजकत को प्राप्त िोतेिैं वे उन कायों को करने के कारण निीं ंअवपतु उनके बावजूद केवल उस सच्चाई के कारण उसे प्राप्त िोतेिैं जजसके कारण ये कम िउमपन्न िोते िैं। परंतुयहद सच्चाई और तीव्रता के साथ–ी-साथ व्यजकत इन सूत्रों में निीं ंबाँधता तो काय िऔर भी अधधक शीघ्रता से िो सकता था। यि बात व्यजकत को सिज िी समझाई निीं ंजा सकती। तभी तो श्रीअरववन्द किते िैं कक एक समय आता िै जब साधना में िमें पता िोता िै कक िमारी साधना इतने ेप्रयमनों के कारण निीं ंबजल्क उनके बावजूद भी िो गई, कयोंकक परमामा कोई बािरी अभ्यासों, ध्यान आहद करनेसे पकड़ में निीं आ जाते। वे तो आपकी सच्चाई देखते िैं, और चूंकक आप में सच्चाई िै इसीशलए आप ध्यान आहद करते िैं। आप में यि तीव्र उमकंठा िोती िै कक ककसी तरीके से भी मुझे ेभगवान् ्शमल जाएँ। यिी सच्चाई और तीव्रता आपको परमामा की ओर ले जाती िै। यहद ऐसी सच्चाई िो तो ध्यान िी कयों, अन्य कोई भी चीज प्रभावी िो जाएगी। जो भी योग पद्धनत व्यजकत अपनाएगा विी प्रभावी बन जाएगी, कयोंकक उसके मूल में सच्चाई िोगी। विींयहद कोई व्यजकत इस नीयत से गिन ध्यान आहद भी करने लगे कक उसके द्वारा उसे कुछ प्राप्त िो जाएगा तो ऐसे मनोभाव में उसे कुछ भी निीं शमलनेवाला, इसकी बजाय िो सकता िै कक वि ककसी गलत चीज के चंगुल में फँस जाए। इसशलए, गीता में भगवान् ्ने किा कक गुणों की यि किया अनुपयोगी निीं ंिै। परन्तु यि ऐसी चीज भी निींिै जजससे व्यजकत बाँधा रिे, यि ऐसी चीज िै जजससे ऊपर उठा जाना चाहिये।

र्तय सर्ाणवि कर्ाणवि संतयस्याध्यात्र्चेतसा ।

तनरीीतनर्वर्ो भूत्र्ा युध्यस्र् वर्गतजर्रः ।। ३०।।

३०. अपनी चेतना (धचत्त) को आत्र्ा के साथ युक्त कर के सर्स्त कर्ों को र्ुझर्ें अपिव कर के व्यजक्तगत आिा और अहंकार (र्ैं एर्ं र्ेरेपन) के भार् को छोड़ कर अपने आत्र्ा के जर्र से र्ुक्त होकर युद्ध कर।

ये र्े र्तमर्दं तनत्यर्नुततष्ठजतत र्ानर्ाः ।

श्रद्धार्ततोऽनसूयततो र्ुच्यतते तेऽवप कर्वभभः ।। 31 ।।

ये त्र्ेतदभ्यसूयततो नानुततष्ठजतत र्े र्तर्् ।

सर्ज्ञवानर्र्ूढांस्ताजतर्द्धध नष्टानचेतसः ।। 3211

३१-३२. जो श्रद्धायुक्त रहते हुए और दोष-दृजष्ट से रदहत हो र्ेरी इस मिक्षा का सर्दवा अनुष्ठान करते हैं र्े ◌ेभी कर्ों के बंधन से र्ुक्त हो जाते हैं। परंतु ◌ुजो दोष देखतेहुए र्ेरी इस मिक्षा का अनुसरि नहीं ◌ंकरते उतहें तू र्ंदबुद्धध (अज्ञ), संपूि वज्ञानों र्ें वभ्रांत, और उनका नष्ट होना तनयत जान।

सदृिं ◌ंचेष्टते स्र्स्याः प्रकृतेज्ञानवर्ानवप ।

प्रकृततं ◌ंयाजतत भूतातन तनग्रहः ककं कररष्यतत ।। ३३ ।।

३३. ज्ञानर्ान् ◌्व्यजक्त भी अपनी प्रकृतत के अनुसार कर् वकरता है, सर्स्त प्रािी अपनी-अपनी प्रकृतत का अनुसरि करते हैं, हठपूर्कव दर्न करने से क्या लाभ होगा?

अपनी चेतना (धचत्त) को आत्र्ा के साथ युक्त कर के सर्स्त कर्ाँ को र्ुझर्ें अपिव कर के व्यजक्तगत आिा और अहंकार (र् ◌ैंएर्ं र्ेरेपन) के भार् को छोड़ कर अपनेआत्र्ा के जर्र से र्ुक्त होकर युद्ध कर। इस बात में सब कुछ आ गया। आममा का ज्वर कया ि◌ै? म,◌ैं मेरा शरीर, मेरा पररवार, मेरा देश, मेरा ववचार, मेरी भावना, मेरी साधना, मेरी भजकत और न जानेकया कया। अगर आपकी चेतना आममा के साथ युकत निीं ◌ंि◌ै तो समस्त कम ि◌कभी अपणि निीं ◌ंि◌ो सकते। कयोंकक आपकी बिारी प्रकृनत कभी कुछ अपणि निींकरना चािती। यहद वि अपणि करेगी भी तो यि सोच कर कक अपणि करने ◌ेसे कुछ लाभ ि◌ो जायेगा। उदािरण के शलए व्यजकत भगवान् ◌्को यि सोच कर प्रसाद चढ़ाता ि◌ै कक इसके बदले में वे उसका कुछ लाभ कर देंगे। इसके अनतररकत तो बािरी प्रकृनत का कोई और ि◌ेतु ि◌ी निीं ि◌ोता। इसशलए भगवान् ◌्कि रिे ि◌ैं कक **अपनी चेतना (धचत्त) को आत्र्ा के साथ युक्त कर के सर्स्त कर्ाँको र्ुझर्ें अपिव कर के व्यजक्तगत आिा और अहंकार (र् ◌ैंएर्ं र्ेरेपन) के भार् को छोड़ कर अपनेआत्र्ा के जर्र से र्ुक्त होकर युद्ध कर।** युद्ध कया ि◌ै, सारा जीवन ि◌ी तो कुरुक्षेत्र ि◌ै इसशलए अपनेअिम् ◌् और अपनी आसुरी वृवृत्यों के ववरुद्ध और देवमव स्थावपत करने ◌ेके शलए युद्ध कर - म ◌ैंऔर मेरेपन के भाव को छोड़कर मुझसे जुड़कर सारा जीवन मुझेसमवपति कर दे जजससे कक म ◌ैंतेरे संपूण ि◌जीवन को अपना लूँगा, उस पर अधधकार कर लूंगा और तुझे ◌ेमुकत कर दूँगा। यि जीवन का एक अटल समय ि◌ै। इसकी उपेक्षा कर ि◌म जीवन में कभी ककसी अच्छी चीज की आशा कर ि◌ी निींसकते। अन्यथा तो संपूण ि◌जीवन ि◌ी दुःख-ददि से भरा ि◌ै। इसके बाद, **जो श्रद्धायुक्त रहतेहुए और दोष-दृजष्ट से रदहत हो र्ेरी इस मिक्षा का सर्दवा अनुष्ठान करते हैं र्े भी कर्ों के बंधन से र्ुक्त हो जाते हैं। परंतु जो दोष देखते हुए र्ेरी इस मिक्षा का अनुसरि नहीं करते उतहें तू र्ंदबुद्धध (अज्ञ), संपूि वज्ञानों र्ें वभ्रांत, और उनका नष्ट होना तनयत जान।** जो व्यजकत श्रद्धायुकत ि◌ोकर भगवान् ◌्की शशक्षा का पालन करते ि◌ैं, उसके संपादन का प्रयमन करते ि◌ैं, वे मुकत ि◌ो जाते ि◌ैं। इसे वे ककतना कर पातिें या उनमें ककतनी योग्यता ि◌ै, यि मित्त्वपूण ि◌निीं। कयोंकक प्रयमन करने का अथ िि◌ै कक उनकी नीयत साफ ि◌ै और अंदर ववश्वास भी ि◌ै, और इसशलए वे मुकत ि◌ो जाते ि◌ैं। परंतु **जो दोष देखते हुए र्ेरी इस मिक्षा का अनुसरि नहीं ◌ं करते उतहें तू र्ंदबुद्धध (अज्ञ), संपूि वज्ञानों र्ें वर्भ्रांत, और उनका नष्ट होना तनयत जान।** ऐसे मनुष्य नष्ट ि◌ोंगे िी कयोंकक नष्ट ि◌ोने ◌ेके अनतररकत तो उनकी और कोई ननयनत ि◌ी निीं ◌ंि◌ै। जब व्यजकत की आममा, जजसके शलए यि शरीर बना ि◌ै और वि ि◌ी सब चीजों को सिारा दे रिी ि◌ै, उसकी तो उसे कोई परवाि ि◌ी निीं ि◌ै तब तो शरीर

संकट में आयेगा िी, जैसे एक घिोा जो अपनेमाशलक की बात निीं मानता या ध्यान निीं ंरखता उसका संकट की जस्थनत में आना ननजश्चत िी िै।

...यहद िम इस वचन को जैसा यि हदखता िै उसी स्वरूप में ले लें तो प्रतीत िोगा मानो प्रकृनत की सवशिजकतमर्ता का पुरुष पर असमभव रूप से पूण िआधधपमय िै।... परन्तुअन्य स्थानों की तरि यिा ंँभी, गीता के ववचार को उसके समग्र रूप में ग्रिण करना चाहिए और उसके ककसी अशभकथन को, अन्य वाकयों के साथ के संबंध से सवथिा अलग कर के, एकांनतक रूप से सब कुछ निीं मान लेना चाहिए।

इस ववषय में एक अंतर करना िोगा कक प्रकृनत में वि कौन-सी चीज िै जो उसका सारभूत तत्त्व, उसका मूल और अननवाय िकाय ििै जजसे रोकना, दमन करना या ननग्रि करना त्रबल्कुल हितकारी निीं और कफर वि कौन सी चीज िै जो उसके मूल स्वभाव से संबद्ध न िोकर अनावश्यक िो, जो प्रकृनत का ववचलन, वव्भ्म और ववकार िैजिस पर िमें अवश्य िी ननयंत्रण पाना चाहिए। ननग्रि और संयम (संयम अथात्ि्मयाहिदत प्रयोग और उधचत मागदिशनि) में भी भेद बताया गया िै। इनमें से पिला, ननग्रि, प्रकृनत पर अपने संकल्प का तीक्ष्ण बल प्रयोग या हिंसा िै जजससे अंततः सर्ता की स्वाभाववक शजकतयाँ अवसाद को प्राप्त िोती िैं, आममानमवसादयेत्;् और दूसरा, संयम, उच्चतर सर्ता का ननमनतर सर्ता को संयशमत करना िै जजससे जीव की स्वाभाववक शजकतयों को अपना स्वभावननयत कम िऔर उसे करने ेका परम कौशल प्राप्त िोता िै, **योगः कर्सुव कौैलर्**।्

vis, ii.50

इजतद्रयस्येजतद्रयस्याथे रागद्वेषौ व्यर्जस्थतौ ।
तयोन वर्ि्ागच्छेत्तौ ह्यस्य पररपजतथनौ ।। ३४।।

३४. प्रत्येक इजतद्रय के वर्षय र्ें राग और द्वेष घात लगाये बैठे हैं। उनके रि्भूत न हो क्योंकक र्े दोनों आत्र्ा की यात्रा या पथ र्ें उसके ित्रु (या लुटेरे) हैं।

यिा ंँसमझने ेकी बात यि िै कक ककस प्रकार राग और द्वेष आममा के शत्रुऔर लुटेरे िोते िैं और आममा को अपने पथ से ववचशलत कर देते िैं। इसे समझ लेना आवश्यक िै।

इसे समझने ेके शलए एक सरल उदािरण लेते िैं। भगवान् ्धरती पर अशभव्यकत िो रिे िैं। यि एक प्रकार की पिेली िै या कि सकतेिैं कक िम जगदमबा के शलखे िुए नाटक का मंचन कर रिे िैं। जजसके द्वारा भगवान् ्के चररत्र, उनके ववशेषे गुण और शजकतयाँ आहद अशभव्यकत िो सकें। इसमें िम सबको अपनी-अपनी भूशमका ननभानी िै। जजसमें कुछ चीजों को िमें स्वीकार करना िै और कुछ चीजों को अस्वीकार करना िै। कयोंकक ऐसा करना नाटक का िी हिस्सा िै। जैसे कक ककसी स्थान पर पिुँचने ेके शलए िम अमुक स्रिक लेते िैं और दूसरी को छोि देते िैं, इसमें कोई राग-द्वेष का प्रश्न निीं ंिै। और यहद िमने स्रिक से िी राग-द्वेष कर शलया तो जब उसे उपयोग में लानेका समय िोगा तब तो कहठनाई खिी िो जाएगी। इस प्रकार जब तक िमारी चेतना का ववकास

निीं ◌ं◌ि◌ो जाता और जब तक वि इस स्तर पर निींपुिुँच जाती कक ◌िम आममा के रास्ते पर सिज रूप से चल सकें तब तक प्रकृनत ◌िमसे दुुःख और प्रसन्नता, राग और द्वेष आहद के द्वारा काय ◌िकरवाती रिती ◌िै। परन्तु राग और द्वेष के आधार पर ककया गया व्यविार एक बार यहद सिी ◌िो भी जाता ◌िै तो पचास बार गलत ◌िोता ◌िै। कयोंकक यहद ◌िमने ककसी व्यजकत, वस्तु या घटना आहद के ववषय में कोई पूवधािरणा जमा रखी ◌िै तो ◌िम उससे सिज रूप से निीं ◌ंशमल पाएँगे, सिज रूप से उसके साथ व्यविार निींकर पाएँगे और केवल अपनी पूवधािरणा के दृजष्टकोण से ◌िी उसे देखेंगे, और नाटक में अपना भाग सिी रूप से अदा निीं ◌ंकर पाएँगे। जैसे कक नाटक के एक दृश्य में ◌िमें एक व्यजकत से शत्रुता का व्यविार करना ◌िै और दूसूरे दृश्य में उसी व्यजकत से प्ेरेम करना ◌िै तो यहद ◌िम पूवाग्रिों से ग्रशसत ◌िैं तो ◌िम अपनी भूशमका भली प्रकार निीं ◌ंननभा पाएँगे।

इसशलए गलत-सिी या राग-द्वेष के दृजष्टकोण के आधार पर लोगों से व्यविार करना गलत ◌िै। कया श्ेरेष्ठ ◌िै, और कया निीं ◌ंइसी आधार पर लोगों से व्यविार करना ◌िोगा। इसीशलए भगवान् ◌्ने गीता में अजुनि को किा कक 'यहद तू इस दृजष्टकोण से युद्ध करेगा कक ये लोग गलत ◌िैं और इन्िोंनेतेरे साथ अन्याय ककया ◌िै तो तू पाप को प्राप्त ◌िोगा और यहद इस दृजष्टकोण से युद्ध करता ◌िै कयोंकक म ◌ैंतुझे ◌ेकि रिा ◌िूँ तो सारी सृजृष्ट का संिार करने ◌ेपर भी तू पाप का भागीदार निीं ◌िोगा। कयोंकक ऐसा करने ◌ेमें तू गलत निीं ◌ं◌िोगा।' कयोंकक ऐसा करनेमें ◌िम तो नाटक के कथानक का ◌िी अनुसरण कर रिे ◌िोते ◌िैं। और यहद ◌िम अपनेसाथी अशभनेताओं के साथ राग-द्वेष, अच्छे-बुरे के आधार पर व्यविार करते ◌िैं तो वि नाटक कभी भी भली प्रकार से निीं ककया जा सकता और अधधकांश दृश्यों में ◌िम ववचशलत ◌िो जाएँगे। इसी प्रकार राग-द्वेष से ग्रशसत ◌िोकर व्यविार करने ◌ेके कारण ◌िी धरती पर सारी गड़बड़ी पैदा ◌िोती ◌िै। लमबे समय तक स्वयं को संस्काररत करते ◌िुए जब ◌िम सीखतेिैं तब जाकर मिारे समक्ष थोड़ ◌ेसे समय का ननरूपण ◌िोता ◌िै, परन्तु थोड़ा-सा ◌िम सीखतेिैं तो अगले दृश्य में कफर गड़बड़ कर देते ◌िैं। और इस प्रकार के उतार-चढ़ावों से गुजरते ◌िुए ◌िम आगे बढ़ते ◌िैं। इस राग-द्वेष के पूरे प्रकरण को ◌िम इस दृजष्टकोण से देख सकतेिैं। इसे समझने ◌ेके अन्य बिुत से तरीके ◌िो सकते ◌िैं।

----

* ननग्रि और आममसंयम में अंतर यि ◌िै कक एक किता ◌िै "म ◌ैंकामना करना तो निीं बन्द कर सकता पर म ◌ैंअपनी कामना को तृप्त निीं करूँगा", जबकक दूसूरा किता ◌िै कक "म ◌ैंकामना और साथ ◌िी कामना की तृजृप्त दोनों को ◌िी अस्वीकार करता ◌िूँ।"

वास्तव में तो इसके पीछे के समय को उस गिरे दृजष्टकोण से देखना ◌िोगा जि ◌ाँकक उसका ववधान ननहित िै। इसमें राग-द्वेष करने का कोई प्रश्न ◌िी निींउठता कयोंकक जजस प्रकार पिेली के सभी टुकड़ों का अपना मित्त्व िोता ◌िै उसी प्रकार धरती पर कोई भी चीज गलत या सिी निीं ◌ं◌िै, ककसी भी चीज को अच्छा या बुरा निींकिा जा सकता, सभी का अपना-अपना मित्त्व ◌िै। बात बस यि ◌िै कक पिेली के टुकड़ों की ◌िी तरि चीजों का भी अपना उधचत स्थान ◌िै, और जब वे अपनेउधचत स्थान पर ◌िों तो ठीक ◌िैं और यहद निीं,◌ं तो निीं ◌ं◌िैं। इनमें से ककसी भी रूपक के माध्यम से ◌िम इसे समझ सकतेिैं।

प्रमयेक क्षण मनुष्य को सिज और तटस्थ बनेरिना चाहिए, और स्वतंत्र रूप से भगवान् ्को ि ी उसके अंदर चयन करनेदेना चाहिये। चुनाव तो करना ि ी ि ोगा। जैसे कक रास्ते में जाते समय ि म यहद दाएँ मिु गये, तो बायाँा मिो बुरा थिो ि ी ि ो गया। यहद ि में कोई कि कक बायाँा मिो बुरा ि ै, तब कफर तो किीं ंपिुँचा ि ी निींजा सकेगा। इसी प्रकार यहद ि म ककसी जानत के आधार पर संकुधचत दृजष्टकोण अपना कर उसके मापदंि से लोगों के साथ व्यविार करते ि ैं तो ि म जीवन में अमयंत अमूल्य व्यजकतयों से शमलने का सुअवसर ि ी खो बैठेंगे। इसमें केन्द्रीय बात यि ि ै कक जब तक ि म अपनेपूवााग्रिों से ग्रशसत रिेंगे तब तक ि म सिी व्यविार तथा प्रनतकिया निीं कर पाएँगे।

श्रेेयातस्धर्मो विगुिः परधर्मात्वस्नुजष्ठतात् ्।

स्धर्मे तनधनं श्रेेयः परधर्मो भयार्हः ।। ३५।।

३५. भली प्रकार अनुजष्ठत ककये गये दूसूरे के धर् वकी तुलना र्े दोषपू वहोने ेपर भी अपना धर् वश्रेष्ठ होता है; अपनेधर् वर्े र्ना श्रेष्ठ होता है, परधर् वका अनुसरि करना वर्निाकारी होता है।

इस स्वधम िका वास्तववक अथ िजानने ेके शलए ि में तब तक ठिरना ि ोगा जब तक गीता के बाद के अध्यायों में ककए गए पुरुष, प्रकृनत और गुणों के ववस्तृत वववेचन तक न पिुँच जाएँ, परन्तु ननश्चय ि ी इसका यि अथ ि निीं ि ै कक जजससे ि म प्रकृनत कििैं उसकी जो कोई भी प्रेेरणा ि ो, चिो वि अशुभ ि ी कयों न ि ो, उसका पालन करना ि ोगा।... गीता किती ि ै, पापकम िसे ननवृर्त् अथवा उसका मयाग मुजकत की पिली शत िि ै और सवत्रि गीता आममप्रभुमव और आममसंयम का तथा मन, इजन्द्रयों और समपूण िननमन सर्त्ा के संयम का उपदेश करती ि ै।

इसमें सबसे पिले तो श्रीअरववन्द यि समझाते ि ैं कक इस बात के कया-कया गलत अथ िलगाए जा सकते ि ैं। जैसे कक, अलग-अलग धम िके व्यजकत अपने-अपनेधम िको श्रेेष्ठ बताएँगे, जबकक इस उजकत का उस धम िके सामान्य अथ िसे कोई लेना-देना निीं ि ै। यिाँमत-समप्रदायों के बारे में बात निीं ि ो रिी ि ै। दूसूरा गलत अथ ि लगानेका तरीका ि ै, जैसे कक रववन्द्रनाथ टैगोर (जो कक स्वयं भी आध्याजममक रास्ते पर आगे बढ़े ि ुए व्यजकत थे) ने हदलीप कुमार रॉय को किा कक 'हदलीप तुम और म ैंयोगी निीं ंि ैं, ि म तो अपनी प्रकृनत से कलाकार ि ैं। इसशलए योग करना तुमिारा काम निीं ि ै।* जब हदलीप कुमार रॉय ने इसके बारे में श्रीअरववन्द को शलखा तो श्रीअरववन्द ने इसे शसरे से खाररज करते ि ुए कुछ इस प्रकार किा कक "ये सब बातें ननरथकि ि ैं। और इन सब संदिे के अंतरालों को व्यजकत को सिन करना ि ी ि ोगा और तब तक ि टे रिना ि ोगा जब तक उषा निीं ंआ जाती।" इसमें समझनेकी बात यि ि ै कक अधधकांश लोग अपने धम िका अथ िउनकी अपनी प्रकृनत के गठन के अनुसार लगाते ि ुए किते ि ैं कक 'ि म तो व्यापारी ि ैं, यि ये ि ैं, ि म वो ि ैं और ि मारी प्रकृनत तो ऐसी ि ी बनी ि ुई ि ै, ि मने तो सदा ि ी इसी तरीके से कम िककया ि ै और ि मारा धम ितो यिी ि ै कक ि म इस प्रकार से चलें', आहद-आहद। परन्तुइन सब बातों का गीता के धम िसे कोई संबंध निीं ंि ै, ये तो दुराग्रि ि ैं, मूखताएँ ि ैं, एक प्रकार की बेड़ियाँ ि ैं।

गीता जजस धम िकी बात कर री ि वि न तो कोई मत-समप्रदाय ि और न िी यि कक आपकी प्रकृनत इसी प्रकार की री ि कक आप ककसी समुदाय में पैदा िुए िैं या ककसी पररवार में पैदा िुए िैं इसशलए उसके ननयम या व्यविार आहद का आँख मूँदकर अनुसरण करते जाएँ। गीता यिा ँइस प्रकार की बात निंकर री ि।

----

* **योगी श्रीकृ ष्ट्प्रेर्** पृष्ठ ३९ श्रीअरववन्द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट

रुधर् वर्स्तर् र्ें ई र्ग वहै जो आपकी आत्र् अपने-आप को अमभव्यक्त करने के मलए अपनाए।

इसीशलए 'स्वभाव ननयत कम'ि की बात गीता में किी गई ि। और इसमें व्यजकत को अपने सतिी भाव से वास्तववक और सच्चेस्वभाव में जाना िोता ि और कफर स्वभाव से सभी धमों का पररमयाग करके भगवान् के मद्भाव में। इसशलए जो आपका सिज आन्तररक स्वभाव ि, और जजसकी ओर जाना आपका काम ि उसमें जो आपकी मदद करता ि वि आपका स्वधम ि। आपके स्वभाव की अशभव्यजकत िोगी तो वि स्वधम ि, अन्यथा वि स्वधम िनिं ि। गीता में इस बात को आगे पूरी तरि से स्पष्ट कर हदया जाएगा।

प्रश्न : यिाँजो उदािरण हदया ि, कक िम सब की नाटक में अलग-अलग भूशमकाएँ िैं, तो कया िम इस तरीके से देख सकतिैं कक िम वि भूशमका छोड़ कर दूसरे की भूशमका ननभानेलगते िैं?

उत्तर : वास्तव में स्वभाव कया ि? श्रीमाताजी की अनन्त शजकतयाँ और ववभूनतया ँिैं। श्रीअरववन्द का किना ि कक उन अनंत शजकतयों में से धरती पर उनकी केवल चार िी शजकतयाँ मुख्य रूप से कायरित िैं, अतः व्यजकत के अन्दर जजस शजकत की किया की प्रधानता िोगी व्यजकत को उसी के अनुरूप कम िकरने में सुववधा िोगी। जैसे कक व्यजकत में मिाकाली की किया की प्रधानता िो पर उसे सेवा करने के शलए कि हदया जाए तो वि कया सच्ची सेवा कर पाएगा? या कफर यहद व्यजकत के अन्दर ज्ञान पक्ष प्रवल ि और ज्ञान की वपपासा ि तब सेवा कम िवि उतनी भली प्रकार निंननभा पाएगा। इसे समझने के शलए चािे िम इसे नाटक में शभन्न-शभन्न भूशमका बोल सकते िैं या कफर इन शजकतयों की शभन्न-शभन्न किया के अनुसार इसे समझ सकते िैं, िालाकाँक इन शजकतयों के अनुसार इसे समझना अधधक सरल ि। स्वभाव के आधार पर िी वण िव्यवस्था की गई थी। परन्तु वास्तव में तो व्यजकत स्वभाव से बाँधा िुआ निं ि। व्यजकत तो श्रीमाताजी से बाँधा िुआ ि। वि इन शजकतयों से भी बाँधा िुआ निं ि और इन शजकतयों की प्रमुखता व्यजकत के जीवन में एक सीमा से अधधक निंिोती। कयोंकक ये शजकतयाँ तो भगवान् की आद्याशजकत, जो कक जगदमबा िैं, की अशभव्यजकतयाँ िैं। इसशलए व्यजकत को अपने स्वभाव-ननयत कम िकरते-करते श्रीमाँ की ओर चलना िोता ि और कफर स्वभाव से ऊपर उठकर (मद्भावमागता) पुरुषोत्म के, अथवा जगदमबा के मद्भाव की ओर जाना िोता ि। उसी के शलए सारी साधनाएँ और उनके बाद **'सर्धवर्ान्व ्पररत्यजय'** आहद सब बताए गए िैं। हिन्दुसुतान में यि व्यवस्था थी कक जब सारे समाज को, सारी मनुष्यजानत को परमाममा की ओर ले जाना ि, तब कौन-सा व्यजकत कौन-सा काम करके उस ओर जा सकता ि यि उसके आन्तररक स्वभाव पर ननभरि करेगा, न कक उसकी बािरी प्रकृनत पर। एक िी पररवार में अलग-अलग

स्वभाव के लोग ि◌ो सकतेिं और उन सबको एक ि◌ी प्रकार की प्रकृनत से ईश्वर की ओर ले जानेका प्रयमन ककया जाए तो सब अनथ िि◌ो जायेगा कयोंकक ि◌र व्यजकत का स्वभाव अलग-अलग ि◌ोता ि◌ै। और जो उस स्वभाव के अनुसार ि◌ै विी 'स्वभाव ननयत कम'ि◌ ि◌ै।

अजुनव उराच

अथ केन प्रयुक्तोऽयं ◌ंपापंचरतत पूरुषः ।
अतनच्छतनवप राष्र्णेय बलाददर् तनयोजजतः ।। ३६।।

३६. अजुनव ने कहाः हे राष्र्णेय श्रीकृष्ि! यदद अपनी प्रकृतत के अनुसार कर् वकरनेर्ं कोई दोष नहींहै तो हर्ारे भीतर यह क्या है जो र्नुष्य को पाप कर् वकी ओर र्ानो बलपूर्कव प्रर्ृत्त करता है, यहा ◌ँतक कक अपनी संघष वकरती हुई इच्छा के वर्रुद्ध भी?

श्रीभगर्ान् ◌्उराच

कार् एष क्रोध एष रजोगुिसर्ुद्भर्ः ।
र्हाशनो र्हापाप्र्ा वर्द्धयेनमह र्ैररिर् ◌्।। ३७।।

३७. श्रीभगर्ान् ◌्ने कहाः रजोगुि से उत्पतन होनेर्ाला यह कार्" है, यह (उसका) साथी क्रोध है; यह कार् सर्भवक्षी, र्हापापी है; इस संसार र्ें इस कार् को र्ानर् आत्र्ा का ित्रु सर्झ ।

यिा ◌ाँपर यि वणनि ि◌ै कक कामना बिुत ि◌ी खराब ि◌ै। परन्तुइसका कया कारण ि◌ै, इसे समझ लेना आवश्यक ि◌ै।

यिा ◌ाँजो वणनि ि◌ै वि यि ि◌ै कक कामनाओं का एक समुर ि◌ै। व्यजकत मिसूस करता ि◌ै कक कामना उसकी अपनी ि◌ोती ि◌ै या उसके अपनेअंदर से उमपन्न ि◌ोती ि◌ै। जबकक वास्तव में वि बािर से आती ि◌ै। कामना एक सिती चीज ि◌ै। उदिारण के शलए व्यजकत के मन में खाने-पीने की या अपनी मित्त्वाकांक्षाओं को पूरा करनेकी चिा उठती ि◌ै। इस काम का मूल स्रोत किाँ ि◌ै, ये कामनाएँ उठती किाँ से ि◌ैं? मनुष्य का ववकृत या ि◌मववकास से आया प्राण ि◌ी इन भावों के प्रनत प्रमयुत्र देता ि◌ै। और विी मनुष्य की सारी सत्ता को भी आच्छाहदत करता ि◌ै और व्यजकत के मन व शरीर को भी प्रभाववत करता ि◌ै। इसकी ववकृनत के पीछे वेदों में वखणति वृत्र, पखण आहद आसुररक शजकतयााँ और प्राखणक जगत् ◌्की सत्ताएँ ि◌ोती ि◌ैं। इस ववकृत प्राण के द्वारा ये शजकतयााँ मनुष्य के ऊपर अपना प्रभाव ि◌ालती ि◌ैं जजससे व्यजकत संतुजष्ट और अपने क्षखणक आवेग में सुख का अनुभव करता ि◌ै, जबकक वास्तव में तो व्यजकत का सब कुछ छीन शलया जाता ि◌ै। इस प्रकार की इसकी प्रकृनत ि◌ै।

अब प्रश्न यि ि ै कक जब व्यजकत ककसी बदमाश आदमी के कि अनुसार कोई काम कर रिा ि ै और उसके अनुसार चल रिा ि ै तब वि अपनेगन्तव्य स्थान तक कैसे पिुँच पाएगा? ऐसी जस्थनत में वि आममा का कोई सच्चा काम तो कर िी निीं सकता कयोंकक यि तो सारी ब्रिी व्यवजस्थत ढंग से की गई बदमाशी ि ै। और कोई भी व्यजकत इसे मिसूस तक निींकर पाता कयोंकक सारे समाज में ऐसी पररपाटी बन चुकी ि ै, सभी इसके इतने ि अभ्यस्त िो चुके िैं कक इस पर कभी कोई संदेि तक भी निीं िकरता कक िमारे साथ ऐसी कोई बदमाशी या जालसाजी चल रिी ि ै। श्रीमाँ ने इस बारे में किा कक कामनाओंका समुर ि ै, जो भी बािर से कामना आती ि ै वि पिले अवचेतन में प्रवेश कर जाती ि ै और विाँसे धचर्त् के द्वारा ऊपर उठती ि ै और तब व्यजकत में यि कामना सति पर इस आवेग के रूप में उठती ि ै कक अमुक काम कर लें, यि चीज खा लें या यिाँ-विाँघूम आएँ, आहद-आहद।

अब इसमें समस्या यि आती ि ै कक कामनाओंके पीछे और भी बिुत सी चीजें िोती िैं जैसे, इच्छा-शजकत, संकल्प-शजकत, आहद-आहद। इन चीजों में भेद कर पाना आसान निींिोता और न िी इस स्तर पर व्यजकत इन चीजों से सामना या मुकाबला िी कर सकता ि ै। कयोंकक ये सारे भाव सति पर तो कामनाओंके रूप में िी ऊपर उठते िैं और यहद व्यजकत इनका ववरोध करता रिे तो जीववत िी निींरि सकेगा। इस तरीके के व्याविाररक अनुभव की बातों का सामान्यतया पुस्तकों में वणनि निीं िशमलता, कयोंकक ऐसा करना आसान निीं िि ै। अब जहटल समस्या यि ि ै कक कामनाओंपर काबू कैसे ककया जाए, उन पर लगाम कैसे लगाई जाए।

"कामनाननमन प्रकृनत की सबसे अधधक अंधकारमय और सबसे अधधक अंधकारमय बनाने वाली गनत ि ै। कामनाएँ दुबुलिता और अज्ञान की गनतयााँ और वे तुमिें अपनी दुबुलिता तथा अज्ञान से बाधेँ रखती िैं। लोगों की धारणा ि ै कक उनकी कामनाएँ उनके अपनेअन्दर उमपन्न िोती िैं, उन्िें लगता ि ै कक ये या तो उनके अपने-आप में से पैदा िोती िैं या उनके अपने अन्दर से उठती िैं; ककन्तु यि एक शमथ्या धारणा ि ै। कामनाएँ अंधकारमय ननमन प्रकृनत के ववशाल समुर की लिरें िैं और वे एक व्यजकत से दूसूरे व्यजकत में पिुँचती रिती िैं। मनुष्य कामना को अपने-आप में उमपन्न निीं करते, ि अवपतु इन लिरों द्वारा आिांत िोते िैं, जो कोई इनके शलये खुला िोता ि ै या जो सुरक्षारहित िोता ि ै वि इनकी पकि में आ जाता ि ै और इनके थपेिों को खाता िुआ इधर-से-उधर िोलता रिता ि ै। उसे अशभभूत कर के और उस पर अधधकार कर के कामना उसे ककसी भी प्रकार का वववेक करने में असमथ िबना देती ि ै और उसमें ऐसी धारणा जमा देती ि ै कक इस (कामना) को चररताथ िकरना भी उसके अपने स्वभाव का एक अंग िी ि ै। परंतु वस्तुतः इसका मनुष्य के सच्चे स्वभाव के साथ कोई समबन्ध निीं। ईष्या,ि िेि, घृणा और हिंसा आहद सभी ननमनतर आवेगों के समबन्ध में यिी बात ि ै। ये भी ऐसी गनतयााँ जो तुमिें पकि लेती िैं, ऐसी लिरें िैं जो तुम पर चढ़ आती िैं और आिांत करती िैं; इनका सच्चे चररत्र या सच्चे स्वभाव से कोई समबन्ध निीं, ये तो उन्िें ववरूप बनाती िैं। ये तुमिारा कोई नैसधगकि या अववभाज्य अंग निीं ििैं, अवपतु इदि-धगदि के उस अन्धकारमय समुर से आती िैं जजनमें ननमन प्रकृनत की शजकतयाँ ववचरण करती िैं। इन कामनाओं, इन आवेशों का कोई व्यजकतमव अथवा ववशशष्ट स्वरूप निीं ि िोता... ये इसी रूप में सभी के अन्दर अशभव्यकत िोती िैं।

इसीशलए भले िी इस पर काबू करने ेकी या इस पर लगाम कसनेकी शशक्षा तो बिुत दी जाती िै, परन्तु उसका अनुसरण कदाधचत् ्िी कोई कर पाता िै कयोंकक अधधकांशतः शशक्षा देनेवाला और पाने वाला दोनों िी इस बात को निीं ंसमझते िैं। अतः यि पूरा ववषय बिुत िी जहटल िै।

अब प्रश्न यि िै कक यि कैसे पता चले कक अमुक भाव कामना िै या इच्छा-शजकत िै, या कफर आंतररक संकल्प िै, या कफर अभीप्सा का िी कोई रूप िै या कफर कुछ और िै। कयोंकक यहद सारी उमपे्रेरणाओं को कामना िी मान शलया जाए और सभी को कामना कि कर मयाग हदया जाए तब तो व्यजकत जीववत िी निीं रि पाएगा, कयोंकक कफर न वि कुछ खा सकेगा, न पी सकेगा और न कुछ कर सकेगा। इस समस्या को कैसे िल ककया जाए। मि पिले यि चचािकर चुके िैं कक कामना की कया प्रकृनत िै, कैसे वि बािर से आती िै, ककस प्रकार वि िमारी आममा को आच्छाहदत करती िै। तो कया िमारी सर्त्ा में कामनाएँ िी िैं इसके अनतररकत और कुछ निीं, और इसके पीछे कया-कया चीजें िैं?

एक साधक : एक तो जजसकी कक िम पिले चचािकर चुके िैं कक िमारे अन्दर कोई ऐसी चीज िै जजसे ककसी चीज की चाि िै, और कामनाएँ इस चीज से ऊजाि लेकर स्वयं को अशभव्यकत करती िैं। और दूसूरी बात िै कक प्राखणक जगत् ्की सर्त्ाएँ िोती िैं जो कक कई चीजों में संलग्न रिती िैं और अपनी संतुजष्ट के शलए मनुष्यों को इस्तेमाल करती िैं और िमें लगता िै कक ये िमारी अपनी कामनाएँ िैं और िम उन्िें पूरा करने ेका प्रयमन करते िैं।

प्रश्न : परन्तु प्रश्न यि िै कक यहद व्यजकत अपने-आप को अनुशाशसत कर आगे बढ़ना चािे तो व्याविाररक रूप में उसे कया करना चाहिये?

एक साधक : शायद इसमें िम अपनी सामथ्य िसे तो बिुत िी कम कर सकते िैं। िम तो केवल श्रीमाताजी से प्राथिना िी कर सकतिे और उनके प्रनत अपनेको खोल सकतिे। केवल वे िी िमें रास्ता हदखा सकती िैं कक सच्ची चीज कया िै और िमें उसका अनुसरण कैसे करना िै।

उत्तर : गीता यिााँजो समाधान बता रिी िै वि त्रबल्कुल व्याविाररक और करने योग्य िै। इसमें पिले तो भगवान् ्नेकि हदया कक **कर्णवयेराधधकारस्ते रा िलेषु कदाचन।** त्रबना फल की इच्छा के कम िकर। परन्तु इसमें समस्या यि आती िै कक ननणयि कैसे करें कक कया कम िकरने ेका िै और कया करनेका निीं। इस बात का समाधान करते िुए भगवान् ्ने किा कक 'यज्ञ के रूप में कम िकर।' मेरी प्रसन्नता के ननशमर्त् कम िकर। और यहद भगवान् ्की प्रसन्नता के ननशमर्त् कम िकरेंगे तो उसमें िमारा अनुमान कक भगवान् ्की प्रसन्नता कौनसे काम में िै, वि तो सदा िी बिा सापेक्ष या अननजश्चत प्रकार का िोगा। कयोंकक यज्ञ पिले तामशसक, िोता िै, कफर राजशसक और उसके बाद साजत्त्वक। व्यजकत को इससे िोकर गुजरना िी पिेगा। वेदों में साधनाभ्यास में तो बिी जबरदस्त बातें िैं जो कक देश, काल, पात्र के अनुसार िैं। व्यजकत यहद इनका अध्ययन आहद करके इनसे जुि सके तो वि कुछ कर पाएगा। परन्तु इसके साथ-साथ व्यजकत को उधचत मागदिशनि शमलना आवश्यक िै। और उसके शलए व्यजकत को अंदर से जुिना पिेगा।

िलाकाँक इसके अंदर बौद्धधक ज्ञान आहद भी सवथिा ननरथकि निीं ंिैं। भले िी अपनेआप में वे ककतनेभी सीशमत कयों न िों, पर उनकी अपनी उपयोधगता िै कयोंकक ये आधार को तैयार करने ेका काम करते िैं। इसशलए यहद कुछ बौद्धधक आधार तैयार िो तो जब व्यजकत को प्ेरेरणा शमलती िै तो आरमभ में वि बुद्धध में बनिुए आधार को िी काम में लेती िै और ववशभन्न हिस्सों को अनुशाशसत करती िै। कफर जब धीरे-धीरे व्यजकत को आभास िोता िै कक उसकी बुद्धध भी ववश्वसनीय निीं िै तब धीरे-धीरे उसे और गिरा अंतभासि या अंतःप्रज्ञा प्राप्त िोगी। परन्तु यहद व्यजकत में कोई भी आधार तैयार निीं िै तो उसके शलए ववशभन्न उमपे्रेरणाओं तथा ववशभन्न कियाओं ंके बीच में भेद करना कहठन िो जाएगा। ऐसा निीं ंिै कक इस आधार के त्रबना वि अंतभासि निीं ंआ सकता, परंतुवि और अधधक कहठन िो जाएगा। इसके अंदर िमारे शास्त्र, जो कक आरिोणशील यज्ञ की चचाि करते िैं, उपयोगी िैं। कयोंकक यि बात तो ननजश्चत िै कक कामना को ननयंत्रत्रत करना कोई आसान चीज निीं ंिै। भागवत् ्संकल्प अधधकांशतः िमारे अंदर कामना के रूप में िी कायाजन्वित िोता िै। िालाकाँक यि किया ब़िी अपररष्कृत या भद्दी िै, परंतु सामान्यतः िम इसी किया के प्रनत खुले िुए िोतेिैं, इसशलए भागवत् ्संकल्प इसी प्रकिया के द्वारा अपना काम कर लेता िै। चूंकक वि अवचेतन से िोकर अपना काम करता िै, इसशलये कामना आहद उससे धचपक जाते िैं, और उस शजकत का दुरुपयोग करते िैं। परंतु हदव्य ववधान को उस दुरुपयोग का पता िोता िै और वि उसकी गुंजाइश रखता िै। इसशलए यि ऐसी चीज निीं िै कक व्यजकत मन में सोच ले और कर ले।

दुननया में ककसी भी मित्त्वपूण िचीज की स्थापना के शलये पूरी ताकत लगानी प़िती िै कयोंकक व्यजकत की सर्त्ा ब़िी जहटल िै। इसमें बिुत तरीके के समीकरण िैं, शभन्न-शभन्न सर्त्ाएँ का इसमें प्रवेश िै और उन सबका अपना-अपना प्रभाव िोता िै। िालाकाँक इन सबका अपना औधचमय तो िै परन्तु वतमिान में ये अपने यथास्थान पर

न िोकर स्थानभ्ष्ट िैं। इसशलए उस मित्त्वपूण िचीज को स्थावपत करनेके शलए व्यजकत को आश्रय लेना िोगा परमामम़ा की ओर अभीप्सा का, इच्छा-शजकत, संकल्प आहद का, और इन सब को काम में लेकर व्यजकत उस ओर अग्रसर िोता िै और तब जाकर इस ववकट समस्या का समाधान ककया जा सकता िै। ककसी अन्य तरीके से यि निीं ंिो सकता। ककसी एक िी ऐसे सूत्र से यि निीं िो सकता कक : कामना निींिोनी चाहिये, या यि निींिोना चाहिये या वि निीं ंिोना चाहिये। िा,ँ व्यजकत कोई व्याविाररक परामश ितो दे सकता िै कक लालच से खाना निीं

खाना चाहिए, केवल शरीर की आवश्यकता के अनुसार िी खाना चाहिए। िालाकाँक कामना तो उसके पीछे भी नछप जाएगी, बस उसका भोंिापन कुछ कम हदखाई प़िेगा। परंतु केवल समझाने से ऐसी चीजें समझ आनी मुजश्कल िैं कयोंकक कामना आहद की सर्त्ाओं ने मनुष्य पर अपना कब्जा जमा रखा िै और जब तक कोई गिरी चीज निींआ जाती तब तक केवल समझाने से यि निींिो सकता। कयोंकक जीभ के स्वाद जैसी िी अनेकानेक चीजों के प्रनत

अनतशय आसजकत से ऊपर उठ पाना संभव निीं ंिै कक केवल समझाने मात्र से िी व्यजकत इन पर ववजय पा सके।
यि बात मोि के बारे में ि। मोि तो अंधा िोता ि। जब यहद ककसी को यि समझा हदया जाए कक आपको अपनेदोस्त, अपनेपररवार के सदस्य या ककसी से भी मोि निीं ंरखना चाहिए तो कया यि व्यजकत के वश में िै कक वि मोि न रखे? इसशलए वास्तव में लाख दुःखों की एक िी दवा िै और वि िै श्रीमाँ की ओर मु़ि जाना और तब

कफर धीरे-धीरे ये सभी व्याधधयााँ अपने-आप िी झि जाएाँगी। जैसे गंगा जी में एक बार स्नान करने ेसे कुछ पाप झि जाते िैं, और यहद बार-बार स्नान करेंगे तो सब झि जाएाँगे। इसी प्रकार श्रीमााँ की ओर चलेंगे तो रास्तेमें कुछ-न-कुछ व्याधधयााँ तो झिेंगी िी। चलने का सारा माग ििी तो गीता बता रिी िै - और वि िै उत्र्ोत्र्र 'यज्ञ का आरिोण'। धीरे-धीरे यज्ञ भी िमशः ऊपर चढ़ता जाता िै। और यहद िमें वास्तव में यि करना िै, और मन में यि इच्छा आ जाए, उसके शलए संकल्प आ जाए तो भगवान् ्की सिज व्यवस्था ऐसी िै कक वे िमारा मागदशनि ककसी पुस्तक के माध्यम से, जीवन के थपेिों के रूप में, ककसी शमत्र की अच्छी सलाि के रूप में या कफर अंततः सद्गुरु के रूप में करेंगे। इस व्यवस्था का ववधान तो पिले से िी भगवान् ्के द्वारा ककया गया िै, इसशलये इसके बारे में धचन्ता करनेकी आवश्यकता निीं ंिै। सभी आवश्यक चीजों की व्यवस्था स्वयंिी िो जाएगी, बस आवश्यकता एक िी बात की िै कक ककसी तरि से िमारे अन्दर यि जाग्रनत आ जाए कक िमारे साथ जो ननमन प्रकृनत का अनाचार चल रिा िै उसे िम और अधधक सिन निींकरने वाले िैं। यहद यि संकल्प आ जाए कक भले िी अभी िम कमजोर िैं, कफर भी िम उन रास्तों का पता लगाएाँगे, वे उद्योग करेंगे, वे िधथयार अपनाएगोँ जजससे िमें इन चीजों से छुटकारा शमले, तब कफर वि प्रभावी िोता िै। इसमें व्यजकत के गठन के अनुसार समय कम या अधधक लग सकता िै परन्तु यि काम िोगा अवश्य, यि रुक निींसकता कयोंकक परमाममा की ऐसी ननदिय व्यवस्था निीं िै कक िम वास्तव में करना चािें और वि काम न िो।

यि केवल एक आसुररक सुझाव िै कक आखखर व्यजकत के चािने भर से िी कया िो जाएगा। वास्तव में तो चािनेसे िी सब कुछ िोता िै। प्रकृनत व्यजकत की सच्ची चाि के प्रनत प्रमयुत्र्र देती िै, उसे कोई रोक निींसकता। िालााँकक, उसका अपना ववधान िै। इसमें यहद व्यजकत यि सोचेकक उसनेतो चाि कर ली िै इसशलए अब तो वैसा िी िी जाना चाहिये, तो इससे काम निींिोनेवाला। जैसे कक यहद व्यजकत यि चाि कर ले कक उसके माता-वपता उसके शलए कोई अच्छा मिल बना दें, तो चूंकक यि स्थूल जगत् ्िै, इसशलए यहद वे कोई मिल बनानेको तैयार भी िों तो भी उसकी अपनी एक प्रकिया िै, अपना तरीका िै, जजसमें आवश्यक समय, ऊजाि और संसाधन लगेंगे। उसे े बनानेके शलए न जानेकया-कया पापि बेलने पिेंगे। विींयहद िम अपनेअन्दर परमाममा के मजन्दर का ननमाणि करना चािते िैं, परमाममा से एक िोना चािते िैं तो उसमें िमें थोिा धीरज और ववश्वास तो रखना िी पिेगा। इसका और कोई सरल उपाय निीं ंिै। और यहद िमें इसमें भेद जानना िै कक अमुक चीज कामना िै या निीं तो इसके लक्षण िैं। िम यि इससे परख सकते िैं कक कामना का आवेग िमको एकाएक िी पकि लेता िै। दूसूरे यहद ककसी चीज के शलए कोई आवेग उठे तो उसमें िम यि प्रश्न करें कक कया वि वस्तु िमारे शलये आवश्यक िै या निीं। इसी प्रकार भोजन की कामना भी बिे ेतीव्र रूप से उठती िै। उसके अनुशासन के शलए िमारी संस्कृनत में संयम के अनेकों तरीके बतलाए गए िैं कक साजत्त्वक भोजन करना चाहिए, जजतना आवश्यक िो उससे अधधक भोजन निीं करना चाहिए, जीभ के स्वाद के शलए निीं खाना चाहिए। व्याविाररक तौर पर तो इसी प्रकार के अंकुश और अनुशासन लागू ूककये जा सकतेिैं।

काम-प्रववृत्र् पर अंकुश लगानेके शलए, उसे संयशमत करने के शलए भी कई उपाय ककये गए। यि किा गया कक केवल संतान उमपवत्र् के शलए यि किया की जा सकती िै। इसके पीछे ननरंकुश भोगेच्छा की बजाय इसके

साथ एक कतव्यि बोध जिो़ हदया गया। और उसके ऊपर बिे ़प्रनतबन्ध लगा हदए गए। इन सब ननयमों का मूल उद्देश्य यिी था कक व्यजकत की आममा को सासाँ लेनेका थोिा़ मौका शमल सके अन्यथा तो सारे हदन िी अपनी इंहरयों की तृजृप्त में, जीभ के स्वाद में, लोभ-लालच आहद में िी लगा रिेगा।

ऐसे िी आसजकत की बात िै। यहद व्यजकत आसजकत को रोक निीं सके तो कम-से-कम उसके दुष्प्रभाव को यि सोच कर कम तो कर िी सकता िै कक ये सब भगवान् ्के िी रूप िैं। इतना तो ककया जा िी सकता िै। जैसे यहद आपको अपने शमत्र में बिुत आसजकत िै और यहद आप यि सोचो कक यि तो मेरा सावाँररया िी िै और उसी से मेरी दोस्ती िै तो आपका बिुत बचाव िो जाएगा। इन सारे बचाव के रास्तों के शलए िी तो धम िमें ये सब बातें बताई गई िैं। ये सभी अपूण िोतेिुए भी िैं बिे ़कारगर व्याविाररक समाधान। सच्चा समाधान तो यिी िै कक व्यजकत अपने जीवन को यज्ञमय बना दे और उत्तरोत्तर भगवान् ्की ओर आरोिण करे अन्यथा कोई भी समस्या यों िल निींिोने ़ वाली। सारी समस्याओंके शलए व्यजकत को कृतसंकल्प िोना िोगा कक ककसी भी कीमत पर वि उन सभी की सफाई करेगा। और उसके शलए इतना संकल्प िो कक जो कुछ भी उसके शलए आवश्यक िो विी वि करनेके शलए तैयार रिे। ऐसा व्यजकत अवश्य सफल िोगा।

जो ववकृनत भीतर प्रवेश कर के शुद्धता अथवा पववत्रता में बाधा िालती िै वि एक प्रकार की प्राखणक लालसा िै; अतीजन्रय सूक्ष्म-प्राण (psychic prana) िमारी सत्ता में जो सबसे बिी़ ववकृनत ले आता िै वि िै कामना। कामना का मूल िै जजस वस्तु का िम अभाव अनुभव करते िैं उसे अधधकृत करने की प्राखणक लालसा, यि िै अधधकृत करने ़और तुजष्ट प्राप्त करने के शलये िमारे सीशमत प्राण की सिज प्रववृत्त।् यि अभाव के बोध को जन्म देती िै, - पिले तो क्षुधा, वपपासा, काम-वासना जैसी अधधक सीधी-सादी प्राखणक लालसाओं को और कफर मन की इन सूक्ष्म-अतीजन्रय क्षुधाओं, वपपासाओं और कामववृत्तयों को जन्म देती िै जो कक िमारी सत्ता में अधधक शीघ्रता से उमपन्न िोने वाली तथा पूरी सत्ता को व्याप्त करनेवाली अधधक भीषण वेदनाएाँ िैं, (कामनाजन्य) एक ऐसी क्षुधा जो अनन्त िोती िै, कयोंकक यि एक अनन्त सत्ता की क्षुधा िोती िै, यि वपपासा भी तृजृप्त के द्वारा केवल कुछ समय के शलये िी शान्त िो सकती िै, पर अपनेस्वभाव में यि अतृप्य िी िोती िै।... कामना समस्त दुःख, ननराशा और वेदना की मूल िोती िै; कयोंकक, यद्यवप इसमें ववषयों के पीछे दौिने ़तथा उनसे तुजष्ट प्राप्त करने ़का उत्तेजनाममक िष िोता िै, पर, कयोंकक यि सदा िी सत्ता पर तनाव िालती िै, यि अपनी भागदौि़ तथा प्राजप्त में श्रम, क्षुधा और संघष िको साथ शलये रिती िै, शीघ्र थक जाती िै, पररशमतता अनुभव करती िै, अपनी सभी प्राजप्तयों से असन्तुष्ट िोकर शीघ्र िी ननराश िो जाती िै, अववरत दूवूषत उत्तेजना, कलेश एवं अशाजन्त को अनुभव करती िै।

अब इसका वणनि दे हदया कक कामनाएाँ अशाजन्त पैदा करती िैं। इसमें भौनतक कामनाएाँ तो एक बार पूरी िोने ़के बाद कुछ समय के शलए रुक जाती िैं। जैसे कक खाने की ककतनी भी कामना कयों न िो पर उसे तृपूत करके एक बार पेट भरनेके बाद कुछ समय के शलये वि तुमिें छोि़ देगी। परन्तु जो मनोवैज्ञाननक क्षुधाएाँ-तृषूणाएाँ िैं,

जैसे कक संसार में ख्यानत प्राप्त करने,े ब़िा पद प्राप्त करनेकी क्षुधा, और न जानेअन्य ककतनी असंख्यों क्षुधाएँ ैं, वे कभी शान्त निीं ंिोतीं। वे तो बढ़ती िी जाती िैं।

इसके साथ िी दूसूरी आशंका यि भी बनी रिती िै कक किीं व्यजकत आसुररक प्रवृवृर्त् द्वारा अधधकृत न कर शलया जाए। उदािरण के शलए, व्यजकत के पास भले ककतना भी धन कयों न एकत्रत्रत िो जाए, परन्तु उसकी लालसा कभी शान्त निीं िोती। भोजन से तो पेट भर जाता िै परन्तुइससे कभी भी निीं ंभर सकता। कयोंकक पैसे े के पीछे ब़िी भद्दी आसुररक शजकतयाँ िैं। यिी नाम, पद, अधधकार आहद की भी बात िै। व्यजकत को ककतना भी अधधकार कयों न प्राप्त िो, कफर भी उसे और अधधक की लालसा रिती िै। इसमें केवल इतना बताया गया िै कक ये

चीजें व्यजकत के जीवन में बिुत अशाजन्त ले आती िैं और वि और कुछ न कर के केवल अपने आवेगों को िी पूरा कर रि िोता िै। और इसी के माध्यम से भागवत् ्इच्छा अपना थो़िा-बिुत काम करती िै और व्यजकत की सर्त्ा उन्िीं ंस्पंदनों में चलती रिती िै और उसकी दुगुनित िोती रिती िै। अधधकांशतः ननमन शजकतयाँ िी अपने-आप को अशभव्यकत करती िैं, कोई अच्छी चीज तो अपनेको अशभव्यकत कर िी निीं ंपाती। कोई आन्तराजममक चीज तो अशभव्यकत िो िी निीं पाती कयोंकक सामान्य व्यजकत की प्रकृनत िी इस प्रकार की िोती िै। इसशलए भारतीय

संस्कृनत में इस सब के संयमन की, इस सब के शमन की व्यवस्था अंतननहित थी। पजश्चम में इन चीजों को छूट दे दी गई और उसके दुष्पररणाम िम देख िी रिे िैं।

इसके ववपरीत, व्यजकत के मन में ज्यों िी ककसी के प्रनत सच्ची ननष्ठा का भाव आ गया, कोई सद्भाव आ गया, तो कफर कामनाओंआहद की प्रयोजनीय िो। इसशलए इन चीजों में िमें अपना हदमाग लगानेकी आवश्यकता निीं, इसकी अपेक्षा िमें तो ये चीजें श्रीमाताजी के िाथों में सौंप देनी चाहिए। अि को भी िम उनके िाथों में सौंप दें और जजतना वे उसे काम में लेना चािें उतना लें, िमें उससे कोई परिेज निीं ंिोना चाहिए। वैसे िी कामनाओं के बारे में तथा अन्य सभी चीजों के बारे में िै। सारी चीजों को श्रीमाताजी के प्रनत समवपित करना िोगा, और समपणि िोता िै प्ेरेम के द्वारा। प्ेरेम आता िै कामनाओंपर ननयंत्रण करने से और कामना ननयंत्रत्रत िोती िै प्ेरेम के आने से। तो यि कैसे िो? इसका िल भागवत् ्कृपा के िस्तक्षेप से िोता िै।

परंतु इसका एक िी परम समाधान िै कक सभी कुछ को श्रीमाँ के प्रनत समवपित कर हदया जाए। कयोंकक बाकी सभी सूत्र या तरीके जब तक व्यजकत साधना के माग िपर निींआता तब तक तो उपयोगी िो सकते िैं परन्तु जब व्यजकत साधना के माग िपर सचेतन रूप से आ जाता िै तब सब कुछ केवल श्रीमाँ के िाथ में छो़ि देना िी उधचत िै। इसके अनतररकत और कोई समाधान हदखाई निींदेता। वास्तव में, केवल वे िी जानती िैं कक कया मयागना िै और कया निीं,ं और साथ िी यि कक ककतना मयागना और ककतना रखना िै। और चूँकक िमें इस सब का पता निीं ंिोता इसशलये यहद िमने ब़िे ेसाधन से, ब़िे ेयमन से कामना को, या अन्य ककसी चीज को ककसी तरीके से िमारी समझ से शमटा भी हदया तो भी िम पायगें कक वास्तव में कामना शमटी निीं। यि बात बिुत िी जहटल और गिन िै। इसे वास्तव में समझ पाना सरल निीं ंिै। 'म ैंननखैयगुण िो जाऊँ, या अि से मुकत िो जाऊँ', ये बातें केवल सुनने में िी अच्छी लगती िैं, जबकक व्याविाररक तौर पर इनका वैसा स्वरूप िोता निीं ंिै।

यहद श्रीमााँ को ािमारे अि की उपयोधगता ाि तो ािमें उसे शमटाने पर आग्रि कयों ाोना चाहिये? श्रीमााँ के एजेंिा (खण्ि २) में २ अगस्त १९६१ की वातिा में ािम पातिे कक जब एक बार भगवान् ाशशव श्रीमााँ के कक्ष में आए और मानव दिे से स्वयं को बद्ध करने के शलए अपनी अस्वीकृनत व्यकत करने के बाद श्रीमााँ को किा, "ककन्तु आप जो कुछ भी चािेंगी वि म ैंआप को दे दूाँगा।" श्रीमााँ ने किा ािाँ(ाालाकााँक यि वातिाककसी प्रकार के उच्चाररत शब्द के त्रबना थी) "म ैंभौनतक अि से मुकत ाोना चािती ािूाँ।" इससे आगे श्रीमााँ किती ािैं, "...ऐसा ाो गया! यि अद्भुत था!... कुछ समय बाद म ैंश्रीअरववन्द को खोजती ािुई उनके पास गई और उनसे किा, 'देखखये कया ाो गया ाि! मुझे ाे कोशशकाओं के एक-दूसूरे से अब और अधधक जुि ाेन रिने का एक मजेदार संवेदन ाो रिा ाि (श्रीमााँ ािाँसती ािैं।) वे त्रबखरने वाली ािैं!' उन्िोंनेमेरी ओर देखा, मुस्कुराए और किा, अभी निीं। और वि प्रभाव समाप्त ाो गया।" चूाँकक श्रीअरववन्द आश्रम, पांडिचेरी के संचालन के शलए भौनतक अि आवश्यक था इसशलए श्रीअरववन्द ने इस प्रकार उसे समाप्त कर हदया। इसी प्रकार ािमें इस ववषय में समझ निींआती कक ािमारी कामना, अि आहद का श्रीमााँ के शलए कया उपयोग ाि। इसशलए ािमें न तो कामना से परिेज ाि और न ाी अि से। ािम तो चािते ािैं कक ािमसे इस तरि का काम न ाो जजसमें श्रीमााँ की प्रसन्नता न ाो। और यहद वे प्रसन्न ािों तो कफर इन कामना आहद से कोई समस्या रिती निीं। कयोंकक जजतना ाी अधधक ािम इन्िें संयशमत करनेका प्रयास करते ािैं उतने ाी अधधक ािम अपने-आप पर केंहरत ाोतेजाते ािैं। इन सब बातों का समाधान एक ाी ाि कक यहद भरसक प्रयमन करनेके बाद भी जस्थनत अपने वश में न ाो तो श्रीमााँ के ाथों में सौंप दो और वे स्वयं ाी जो आवश्यक ाि वैसा करा लेंगी। इसशलए पढ़ी-पढ़ाई बातों में फ़िकर कक, 'कामना निींिोनी चाहिये, लोभ निीं ाोना चाहिये, अि को खमम करना चाहिये', इनसे ािमारा कोई लाभ निीं ािि। करने ाेयोग्य काम तो एक ाी ाि कक श्रीमााँ को समपणि कर हदया जाए और जब, जिााँ और जैसा उन्िें उधचत लगे वैसा वे ाेस्वयंिी करा लें।

धूर्ेनावव्रयते ाेर्जह्नयथवादिो र्लेन च ।
यथोल्बेनार्ृतो गभस्वतथा तेनेदर्ार्ृतर् ्।। ३८।।

३८. जजस प्रकार धूर् से अजग्न, धूमल से दपिव ढका होता है और जैसे णझल्ली से गभ वढका होता है उसी प्रकार कार् से यह (ज्ञान) ढका होता है।

आर्ृतं ांज्ञानर्ेतेन ज्ञातननो तनत्यर्ैररिा ।
कार्रूपेि कौततेय दुषुट्पूरिेनलेन च ।। ३९।।

३९. और हे कौततेय! ज्ञानी के तनत्य ात्रु और कभी भी तृपृत न होनेर्ाले अजग्नरूप इस कार् से ज्ञान ढका हुआ है।

इजतद्रयाणि र्नो बुद्धधरस्याधधष्ठानर्ुच्यते।
एतैवर्र्र्ोहयत्येष ज्ञानर्ार्ृत्य देदहनर् ्।। ४०।।

४०. इजतद्रयाँ, र्न और बुद्धध इसके आश्रय-स्थान कहे जाते हैं; इतहें आश्रय बनाकर (इनर्ें जस्थत होकर) ज्ञान को आच्छाददत कर के यह देहधारी जीर् को भ्रांत कर देता है, र्ूढ़ बना देता है।

सूक्ष्म अतीजन्रय प्राण संवेदनाममक मन को आिांत कर के उसमें संवेदनों की अशाजन्त ले आते िैं, कियाशील मन को यि प्राण प्रभुमव, अधधकार, आधधपमय एवं ंसफलता की शलप्सा से तथा प्रमयेक आवेग की पररपूनत िकी कामना से आिांत करता िै, भावनाममक मन को यि प्राण रुधच और अरुधच तथा राग और द्वेष के भावों को तृप्त करने की कामना से भर देता िै, भयजननत जुगुप्साओं और आतंकों तथा आशाजननत आयासों और ननराशाओं को जन्म देता िै, शोक की यन्त्रणाओं तथा ि ष िके क्षणस्थायी ज्वरों एवं उसकी उर्ेतेजनाओं को मि

पर लाद देता िै, बुद्धध और उसके संकल्प को इन सब चीजों में सिापराधी बनाकर उन्िीं के ढंग से ववकृत एवं पंगु यन्त्रों में पररणत कर देता िै, अथात् संकल्प को लालसा की इच्छा में तथा बुद्धध को सीशमत, अधीर और कलिरत पूवनिनणयि एवं मत आहद ननमन रूपों के पक्षपातपूण,ि लिखिाििुए और एक आतुर अनुयायी में बदल िालता िै। यि बात स्पष्ट िै कक कामना केवल कोई सिती चीज निीं ि खाने-पीने या मौज-मस्ती आहद की इच्छा

िी कामना निीं। कामना तो बिुत िी गिरी चीज िै। **यह संर्ेदनात्र्क र्न को आक्रांत कर के उसर्ें संर्ेदनों की अिाजतत ले आती है।** संवेदन अथात् सुनना, देखना, स्वाद लेना, स्पश िकरना, सूँघना। इनकी अशांनत का अथ िि कक दृजष्ट संबंधी ववकृनतया,ाँ स्वाद संबंधी आवेग, स्पश िसे संबंधधत सभी प्रकार की भोग आहद की कामनाएँ। ये सारी ववकृनतयाँिमें सारे हदन ववचशलत करती रिती िैं। इस प्रकार कामना संवेदनों के द्वारा भी आती िैं। ये सारी इजन्रयाँन केवल सिती चीजों में बजल्क गिरी चीजों में भी सिभागी िोती िैं। जैसे सुनने की इंहरय - यि केवल कोई मधुर संगीत सुनने को िी निीं ंबजल्क अपनी प्रशंसा सुनने को भी लालानयत रिती िै, जब कोई िमारी बुराई करता िै तो बिुत बुरा लगता िै। और अपनी प्रशंसा सुनने के शलए तो व्यजकत ककतने–ककतनेसाधन कर लेता िै।

इसके शलए वि इतना लालानयत रिता िै कक इसके शलये वि ऐसी कोई बात करेगा, ऐसे शब्द बोलेगा, ऐसी चेष्टा करेगा जजससे कोई उसकी प्रशंसा करे। तो इसमें सुनने की इंहरय का प्रयोग केवल मधुर चीजें िी निीं ंअवपतु अपने-आप को सुिाती िुई चीजें सुनने के शलये भी िोता िै। इसी प्रकार सभी इंहरयों के साथ िै, कयोंकक सारी इजन्रयों का वणनि ककया िी निीं ंजा सकता, न िी जजस सूक्ष्म रूप से सभी चीजों में ये घुसी िुई िैं उसका िी कोई

वणनि ककया जा सकता िै। यि तो इतना ब़िा और इतने सूक्ष्म रूप से व्यवजस्थत प्रपंच चल रिा िै कक इसे पूरी तरि से समझा जा िी निींसकता। कयोंकक जब व्यजकत ववचशलत िो रिा िै, उस समय वववेकी रूप से सिी-गलत का ननणयि करनेका तो प्रश्न िी निींउठता। उस समय व्यजकत का वववेक, उसकी भेद करनेकी सामथ्य िइन सभी चीजों से आच्छाहदत िो जाती िै।

कक्रयािील र्न को यह प्रार् प्रभुत्र्, अधधकार, आधधपत्य एर्ंसिलता की मलप्सा से तथा प्रत्येक आर्ेग की पररपूतत वकी कार्ना से आक्रांत करता है।

कियाशील मन जो कक सारे हदन यिी सोचता िै कक म ैंकया खरीद लूँ, कया बेच दूँ, दुननया में कोई अच्छा काम कर दूँ, ककस तरीके से चीजों पर आधधपमय कर लूँ आहद-आहद। इस प्रकार यि कियाशील मन सूक्ष्म रूप से

कियाकलापों के अंदर प्रवेश कर जाता ि ै और उन्ें प्रभाववत करता ि,ै उन्ें यंत्रवत् ्चलाता रिता िै। जैसे व्यापारी यि सोचता ि ै कक ककस प्रकार से मेरा व्यापार और अधधक बढ़ सकता ि,ै िम कोई अस्पताल चला रि ेिों तो सोचते ैंकिक ककस प्रकार यि और भी ब्रिा िो जाए, यहद कोई शशक्षा क्षेत्र में िो तो उसके अपनेतरीके के मनसूबे िोते िैं। इस प्रकार व्यजकत अपने-अपनेतरीके के मनसूबों से भरा रिता िै। जब यि प्राण कियाशील मन को इतना अिांत कर लेता ि ै तो इस प्रकार के कियाकलापों के बीच व्यजकत को िा ँकोई अच्छी चीज सोचनेकी फुसति रिेगी? पिले तो वि आवेगों से नघरा रिता ि ै और उसके ऊपर कफर उसकी संतुजष्ट के शलए इस कियाशील मन की किया। यि सब कामनाओंका ज्वर िै।

भार्नात्रक र्न को यह प्रिा रुधच और अरुधच तथा राग और द्वेष के भार्ों को तृप्त करने ेकी कार्ना से भर देता है,

रुधच और अरुधच, राग-द्वेष के साथ–ी-साथ प्राण के षड् ररपुओं में से एक ररपुममसर भी लगा रिता िै। यि एक प्रकार की अिकारमय प्रनतकिया ि ै कक ककसी दूसूरे व्यजकत को कोई चीज कयों प्राप्त िो गई या कफर मुझसे बेितर कयों प्राप्त िो गई। उदिारण के शलए यहद कोई दूसूरा व्यजकत मकान खरीद लेता ि ै तो मन में भाव उठता ि ै यि मकान उसने कयों खरीद शलया यि तो मुझेखरीदना चाहिए था, यहद म ैंगिृी से किंजा रि ािूँ तो दूसूरा मेरे से आगे कैसे ननकल गया जबकक मेरी तो गिृी भी बिुत अच्छी िै। यहद मेरा दोस्त कक्षा में सबसे आगे रिता ि ै तो यि भाव कक उसे सबसे अधधक अंक कयों शमल गए, मुझे ेशमलने चाहिये थे। इस भाव से ग्रशसत िोकर तो लोग बिुत बार एक-दूसूरे की िमया तक कर िालतेिैं। वास्तव में, मन और प्राण के अन्दर रुधच-अरुधच तथा अपना अिं बोध भरा रिता िै। व्यजकत का भावाममक मन केवल इस दृजष्टकोण से देखता ि ै कक सामने वाले व्यजकत ने अच्छी बात किी या बुरी बात किी। उसे इसके अनतररकत अन्य ककसी चीज के शलए अवकाश िी निीं रिता। यिी भावाममक मन जो यहद गिराई में जाता तो व्यजकत को भगवान् ्से जोि़ सकता था परन्तु वि इन बािरी चीजों में इतना व्यस्त रिता ि ै कक इन गिरी चीजों के शलए उसे तो क्षण भर का अवकाश िी निींरिता। सारे हदन व्यजकत अपनी इच्छाओंकी पूनत िकरने ेऔर सुख बटोरनेमें लगा रिता िै। इसके अनतररकत तो उसे और कोई सरोकार रिता िी निीं। व्यजकत का प्राण एक ववशेषे प्रकार के लोगों से शमलने में, ववशेषे प्रकार की चीजों के स्पंदनों में रुधच लेता ि ै और वि उसी प्रकार के लोगों से शमलना और बातचीत करना पसंद करता ि,ै कफर वि चािे उसके पररवार का िो, शमत्र िो या ररश्तेदार िो। व्यजकत अपने-आप से यि प्रश्न तक भी निीं ंपूछता कक 'मुझेकया करना चाहिए, और करना चाहिये भी या निीं।'

भयजतनत जुगुप्साओं ंऔर आतंकों तथा ननराजतनत आयासों और तनरािाओं को जतर् देता है,

और ये सब भय, ननराशा, जुगुप्सा आहद अंदर धचर्त् से उठती िैं और व्यजकत का जीवन उनसे भरा रिता ै। यहद आपके मन में कोई इच्छा या कामना ि ै कक अमुक चीज या कोई अभीष्ट चीज िो जाए, तो स्वतः िी इसके साथ िी भय तो ननजश्चत रिेगा िी कक यहद वि अभीष्ट या वांनछत चीज न िुई तो? ये सारी चीजें व्यजकत को

धचन्ता, कफि से भर देती िैं। यहद उसके अन्दर कोई सफाई करने ेवाला तत्त्व न िो जो इन सब प्रभावों की शुद्धध करता िो, या इन सब चीजों को पररष्कृत करता िो तो व्यजकत इन्िीं से िी भरा रिेगा।

बुद्धध और उसके संकल्प को इन सब चीजों रें सहापराधी बनाकर उतहींके ढंग से वकृत एरं पंगु यतत्रों रें पररित कर देता है,

बुद्धध इस जिो-तिो से सोचती िै कक कैसे मेरी योजना पूरी िो जाए, कैसे म ैंअपने िेतु साध लूँ, ककस प्रकार को म ैंव्यवस्था करूँ कक मुझे ेरुधचकर चीज शमल जाए और इसके शलए कैसे म ैंककसी को पटा लूँ, बिला-फुसला लूँकक मेरा काय िशसद्ध िो जाए। और इस सबमें बुद्धध इन चीजों के शलए यन्त्र बन जाती िै। बुद्धध तो केवल प्राण की कामनाओं की पूनत िकरने का यंत्र बन जाती िै। उसका जो सिी उपयोग िै कक व्यजकत को भले-बुरे का बोध, उधचत-अनुधचत माग िहदखा दे, वि तो रिता िी निीं। वि तो पंगु िो जाती िै। ऐसी जस्थनत में व्यजकत कया करे? समय की तो पूरी तरि से िमया िी िो जाती िै। इसीशलए सारा जीवन यों िी इन सब चीजों में चलता रिता िै। सारा संसार इसी में लगा रिता िै।

अथात्व ्संकल्प को लालसा की इच्छा रें तथा बुद्धध को सीमर्त, अधीर और कलहरत पूर्तवनियव एरं र्त आदद तनम्न रूपों के पक्षपातपूि,व लिखिाते हुए और एक आतुर अनुयायी रें बदल डालता है।

व्यजकत की बुद्धध में एक ववचार या एक पूवधारणा िोती िै कक अमुक चीज सिी िै और अमुक गलत िै और उसी के ऊपर आग्रि कर के वि उसके शलए लिनेको तैयार िो जाता िै। विीं, व्यजकत की प्राण-शजकत किती िै 'म ैंसिी िूँ और यि बात म ैंदूसरे को समझा कर रिूँगा। और एक हदन वि भी यि देख लेगा और जान जाएगा और आकर किेगा कक आप सिी थे, म ैंतो गलत कर रिा था।' इन सब बातों से प्राण को बिा सन्तोष शमलता िै। अपार खुशी शमल जाती िै उसे इस सारे व्यविार में। 'मनैं तो पिले िी बता हदया था कक म ैंसिी िूँ'। ये सारी चीजें िमें भरे रखती िैं और अपनी धुन पर नचाती रिती िैं। कौन िै जजन्िें ये चीजें अछूता छोि देती िैं और समय से ववचशलत निीं ंकरतीं। िमारे साथ इन सब भागों की कया किया िो रिी िै, ककस प्रकार ये सभी समय िमें आिांत कर के अपनेिेतु शसद्ध करते िैं इसका यि बिा िी जीवंत वणनि श्रीमाँ व श्रीअरववन्द की कृनतयों में िै।

तस्मात्त्मर्जतद्रयाण्यादौ तनयम्य भरतषभव ।
पाप्मानं प्रजदह ह्येनं ज्ञानवर्ज्ञाननिानर् ्।। ४१।।

४१. इसमलये हे भरतरंमियों रें श्रेष्ठ अजुनव! तू पहले इजतद्रयों को तनयंत्रत्रत कर के ज्ञान और वर्ज्ञान का निा करनेराले इस पापी (दुष्ट) कार् को दृढ़तापूर्कव रार डाल।

कामना से छुटकारा पाने के शलए, जो कक अशुभ अथवा पाप और कष्ट का संपूण िमूल िै... िमें कामना के कारण का अन्त करना िोगा, ववषयों को पकिने ेऔर उन्िें भोगने िेतु बािर की ओर भागती इजन्द्रयों को रोकना िोगा। जब इस तरि से इजन्द्रयाँ दौि पिने ेमें प्रवृत्त् िों तब ववषयों से सवथा िटा कर उन्िें पीछे खींच लेना िोगा...

धरती पर सभी शजकतयााँ अपने-आपको प्रकट करने की प्रववृर्त् रखती िैं। ये शजकतयााँ अपने-आप को अशभव्यकत करनेके उद्देश्य से आती िैं और यहद तुम इनके बीच में कोई अवरोध खड़ा कर दो और प्रकट करने से इन्कार कर दो तो वे कुछ समय तक अवरोध के ववरुद्ध टकराने का प्रयास कर सकती िैं, परंतु अंत में वे स्वयं को थका लेंगी और अशभव्यजकत न शमलने के कारण वे लौट जाएँगी और तुमिें चैन में छोड़ देंगी।

अतः तुमिें ऐसा कभी न किना चाहिये: "पिले म ैंअपनेववचार की शुद्धध करूाँगा, अपनेशरीर की शुद्धध करूाँगा, अपने प्राण की शुद्धध करूाँगा, और बाद में अपनेकमों की शुद्धध करूाँगा।" यिी सामान्य िम िै, पर यि कभी सफल निींिोता। कारगर िम िै बिार से आरंभ करना: "सबसे पिली चीज िै कक म ैंऐसा निीं करूंगा, और उसके बाद, म ैंअब और इसकी इच्छा भी न करूाँगा, और उसके बाद म ैंअपनेसभी आवेगों के शलये अपनेदरवाजे पूण िरूप से बंद कर दूाँगा: मेरे शलये उनका अजस्तमव िी निीं, अब म ैंउनसे बिार िूाँ।" यिी सच्चा िम िै, ऐसा िम जो कारगर िै। पिले, उसे करो मत। और तब तुम और अधधक इच्छा न करोगे और उसके बाद वि तुमिारी चेतना से पूरी तरि से ननकल जायेगी।

प्रश्न : गीता ननग्रि और संयम की बात करती िै। उससे यि अथ िसमझ आता िै कक ननग्रि करने में व्यजकत उस किया को अशभव्यजकत तो प्रदान निीं ंकरता, पर उसके ववषय में अंदर कामना या इच्छा बनी रिती िै। जबकक संयम में व्यजकत न तो उसे बिार अशभव्यकत िी िोने देता िै और न िी उसके ववषय में सोचता िी िै। तो कया एक प्रकार से यि भी ननग्रि िी निीं िो गया? यहद इन्िें बौद्धधक रूप से देखा जाए तो इनके बीच का कया संबंध िै या कया भेद िै?

उत्तर : इस पूरे ववषय को िमें एक ववस्तृत पररप्रेक्ष्य में देखना िोगा। यहद कोई व्यजकत किता िै कक म ैं अमुक काम निींकरूाँगा जबकक उसके ननषेध के शलए उसके पास आवश्यक मनोवैज्ञाननक आधार निीं, तो उसे तो अवश रूप से उस काय िको करने को बाध्य िोना पड़ेगा। त्रबना इस मनोवैज्ञाननक आधार के वि इस ननषेध को शसद्ध कर िी निीं ंसकता। यहद व्यजकत में ननषेध करने की क्षमता िै और साथ िी बुद्धध में भी वि उससे कुछ दूर िटने की क्षमता रखता िै तो वि कुछ ननषेध करने में सफल िोगा, अन्यथा तो ननषेध के द्वारा वि अपने-आप को उस चीज से या कफर इंहरयों की तृजप्त से बलपूवकि वंधचत कर के अपने अंदर असंतुलन पैदा कर लेगा और जीवन में बड़ी भारी तकलीफ या संकट की जस्थनत पैदा िो जाएगी।

यिा ाँयि निीं ंकि रिे कक ननग्रि गलत िै। बजल्क यि कक संयम उसकी अपेक्षा श्रेष्ठ िै। अगर व्यजकत संयम निींकर सकता, अपनेमन को इंहरय ववषय से शलप्त िोने से दूर निीं ंरख सकता, तब बात अलग िै। यहद अंतराममा में इतनी ताकत िै कक जब उससे 'संकल्प' आता िै तो वि उस किया और मन की उस इंहरय ववषय से शलप्तता दोनों को िी संयशमत तथा ननयंत्रत्रत कर सकता िै तो कफर ककसी प्रकार की कोई समस्या निीं ंरिती। मन के ननरथकि ववचारों का वि ननषेध कर देगा और यहद वे आते भी रिें तो वि इतना समथ िोगा कक उसे इससे भी कोई फकि निीं ंपड़ेगा। उसे यि करने के शलए मन की सियता या उनके समथनि की आवश्यकता निीं ंिोती। उनके

त्रबना भी वि संकल्प यि संयम साधधत कर सकता िै। साथ िी, इस संकल्प के द्वारा जो किया िोगी उससे सर्त्ा में ऐसा कोई असंतुलन निीं ंआता जजससे कक व्यजकत के जीवन में कोई संकट की जस्थनत आए।

जब यि संकल्प या कफर यि गिरा हिस्सा प्रभावी निीं ंिो, तब केवल ननग्रि से तो व्यजकत बिी तकलीफ में पि जाता िै, कयोंकक उसके पास अपने सिारे या समथनि के शलए कुछ निीींिोता। इसशलए ऐसा ननग्रि अधधक समय तक हटक पाना मुजश्कल िै।

दूसूरे यहद व्यजकत में संयम करने ेकी क्षमता िै तो वि यि काम अधधक आसानी से कर सकता िै। पर बिुत से ऐसे लोग िैं जजनमें संभव िै कक मन-बुद्धध का संयम न भी िो पर आंतररक संकल्प इतना सुदृढ़ िो कक अंदर आममा से कोई बात आ जाती िै और मन-बुद्धध के ककसी प्रकार के सिारे के त्रबना िी यि काम साध देती िै। साथ िी, यि संयम आरंभ में सभी चीजों पर लागू करना तो मुजश्कल िै। इसे िमें कुछ चुननंदा चीजों के ऊपर लागू ू करना िोगा। कामना तो व्यजकत के रोम-रोम में घुसी िुई िै। इसशलए उसे आरंभ में िी व्यजकत पूरी तरि से कैसे ननकाल सकता िै। उसे तो इस तरि ककसी भी तरीके से ननकाला जा िी निीं सकता। पर इस सब में सब कुछ व्यजकत की सच्चाई पर ननभरि करता िै। कयोंकक जब यहद यि नजर आ जाए कक कोई किया गलत िै तब कफर उस पर ननयंत्रण या संयम कैसे ककया जाए? तो उसके शलए तो व्यजकत को कृतसंकल्प िोकर अपनी सारी शजकत लगानी िोगी और उसे रोकना िी िोगा। यहद व्यजकत की अंतराममा इतनी शजकतशाली िै तो वि उसे शमटा सकेगा। और यहद वि पयाप्ति शजकतशाली निीींतिब कफर उसके संयम की हदशा में कोई ननणायिक पग निींशलया जा सकेगा और कशमकश चलती रिेगी।

वास्तव में श्रीमाताजी जो कि रिी िैं वि शजकतशाली संकल्पशजकत के बारे में िै। और साथ िी, यि संकल्प ककन्िीं ववशशष्ट कियाओं पर लागू िो सकता िै, कयोंकक कामना का िमारी सर्त्ा में प्रवेश तो बिे ेसूक्ष्म रूप से भी िै इसशलए यि प्रकिया बिी िी जहटल िै और इसे समझनेमें और इसका समाधान करनेमें बिुत समय लगता िै। यहद ककसी की अंतराममा पयाप्ति ववकशसत िो चुकी िै तो यि काय िअपेक्षाकृत कम समय में ककया जा सकता िै, अन्यथा िो सकता िै कक इसमें बिुत लंबा समय लगे, संभव िै पूरा जीवन िी लग जाए और तब भी पूरा न िो। यि व्यजकत की अंतराममा की जस्थनत पर ननभरि करता िै। और इसके शलए व्यजकत को साधना पथ पर चलना िोगा।

व्यजकत कमयोिग, भजकतयोग, या ज्ञानयोग या कफर इनके ककसी शमले-जुले रूप में से कौनसा पथ अपनाता िै, या कफर केवल समपणि भाव िी अपनाता िै, यि व्यजकत के गठन पर ननभरि करता िै। परंतुयि संयम, यि शुद्धधकरण एक उर्त्रोर्त्र चलनेवाली प्रकिया िै। इसमें बिुत से धोखे, जाल-घात िैं। प्रमयेक कामना के पीछे िी ऐसा प्रतीत िोगा कक कोई अच्छी चीज िै। साथ िी भगवान् ्का संकल्प भी अपनेकाय िके शलए कामना के रूप में प्रकट िो सकता िै। इसशलए इस भगवद्-इच्छा में और कामना में भेद कर पाना बिा मुजश्कल िो जाता िै। सारा मामला िी जहटल िो जाता िै। इसमें कुछ चीजों पर तो व्यजकत अपनी संकल्प-शजकत लागू ूकर सकता िै जैसे कक उसे बीिी-शसगरेट का सेवन निीं ंकरना िै, या कोई नशा निीं ंकरना िै। परंतु यहद कोई किे कक एकाएक िी वि

अपनेअंदर की कामना को ननकाल बिार करेगा, तो ऐसा संभव निीं िै कयोंकक व्यजकत कामना के ववषय में सचेतन िी निीं िोता कक ककस प्रकार उसके रोम-रोम में वि घुसी िुई िै। इसके ववषय में सचेतन िोने में भी जीवन लग जाता िै कक ककस प्रकार कामना रोम-रोम में घुसी िुई िै।

दूसूरी बात यि िै, कक जब व्यजकत परम की ओर बढ़ रिा िोता िै तब यि समझ पाना और भेद कर पाना उसके शलए मुजश्कल िोता िै कक उसमें कैसी-कैसी कामनाएँ, इच्छाएँ और उनके शमश्रण भरे िुए िैं। मन-बुद्धध से कामनाओं आहद के ववषय में उसके द्वारा ऐसा कोई रुख अपनाए जाना और इस बारे में योजनाएँ बनाए जाना कक इन्िें िटानेका अमुक तरीका अच्छा िै, अमुक उतना प्रभावी निीं ंिै, अपनी जगि ठीक िै, पर अंततः गीता किती िै 'सिवधिमान्पिररमयज्य'। अतः सार यिी िै कक साधना के संबंध में िमारे के जजतने भी दृजष्टकोण, जजतनेभी मानदण्ि िैं उन सब को मयाग कर सीधे सभी कुछ श्रीमाताजी के िाथों में सौंप दें। केवल वे िी जानती िैं कक कौनसी चीज कि,ाँ कैसे और ककतनी बची रिनी चाहिये और कौनसी निीं। िमनेजजन्िें इच्छा, कामना, संकल्प, अभीप्सा आहद जो-जो मान रखा था उनके ववषय में सिी रूप में तो केवल वे िी जानती िैं कक वास्तव में कौनसा कया िै और ककसे रखना िै या मयाग देना िै। उनके िाथों में सौंप देने पर उनकी किया इन सभी कियाओं से परे चली जाती िै। वास्तव में यि समपिण का पथ िी राजमाग िै। परंतु इसका यि अथ िनिीं ंिै कक व्यजकत यथासमय आवश्यक उधचत कम िनिीं करेगा। कयोंकक ये सभी चीजें उसका अंग िी िैं। यहद व्यजकत को सच्चा शुद्धधकरण, सच्चा पररवतिन साधधत करना िै, परमोच्च की ओर जाना िै तो समपिण का राजमाग िअपनाना िोगा कयोंकक ककसी भी मापदण्ि के सिारे व्यजकत कोई आंशशक चीजें भले िी प्राप्त कर ले, परंतुअंततः तो ऐसा सवागीण समपिण करना िी िोगा जजसमें व्यजकत के अंदर और कोई दूसूरी प्रेरणा रिती िी निीं। इसी राजमाग िकी ओर चलना िोगा, इसके अनतररकत सच्ची संशसद्धध का और कोई माग िै िी निीं। बाकी तो ककसी-न-ककसी ननमन सूत्र में िी बाँध कर रि जाना िै। गीता का मूलभाव भी इसी समपिण का िै।

आरंभ में व्यजकत अपनेककसी एक मानदण्ि को अपनाकर कोई सामान्य कायिम के अनुसार आगे चल सकता िै जजसमें वि तय कर सकता िै कक अमुक काम उसे करने िैं और अमुक मयाग देनिं। िर व्यजकत का यि कायिम उसके गठन के अनुसार शभन्न-शभन्न िोगा। परंतु ुयहद व्यजकत का संतुलन इस प्रकार का िै, उसके अंदर की पुकार ऐसी िै कक उसे पूरी यात्रा तय करनी िै, तो वि समपिण के इस राजमाग िपर आ िी जाएगा और इसे अपना िी लेगा जजसमें कक अपनेसभी मापदण्ि, दृजष्टकोण, तौर-तरीके, अपनी सभी धारणाएँ, पूवाग्रि आहद सभी श्रीमाताजी के िाथों में सौंप हदये जाते िैं और उन्िें इनका जो उपयोग करना िै और व्यजकत से जो कराना िै वि वे स्वयंिी करा लेंगी। व्यजकत को इसके शलए तैयार रिना िोगा कक इस माग िमें वि धोखा खा सकता िै और ननजश्चत खाएगा िी। प्रायः व्यजकत इसका स्पजष्टकरण देता िै कक श्रीमाँ कक ऐसी इच्छा थी इसशलए ऐसा िो गया। िालाकाँक वि धोखा खाना भी साधना का िी अंग िै। परंतु इन सब के िोतिुए भी यहद व्यजकत में यि श्रद्धा आ गयी कक वास्तव में जो कुछ भी िोता िै, श्रीमाँ जैसा करती िैं या कराती िैं उनका अपना ववधान िै और िर एक बात में, िर एक चीज में श्रीमाँ का कोई न कोई प्रयोजन अवश्य ननहित िोता िै, तब कफर व्यजकत माग िपर अग्रसर िोता जाता िै।

अब गीता में भगवान् ्अजुनि को किते िैं कक इस काम रूपी शत्रु ुको मार, परंतु प्रश्न तो यि िै कक वि उसे मारेगा कैसे? उस प्रश्न का गीता अब उर्त्र देगी।

इजतद्रयाणि पराण्याहुररजतद्रयेभ्यः परं नःः ।
नसस्तु परा बुद्धधयो बुद्धेः परतस्तुसः ।। ४२।।
४२. रे् कहते हैं कक इजतद्रयााँ(उनके वर्षयों से) ऊपर (परं) होती हैं, इजतद्रयों से नं ऊाँचा होता है और नं से बुद्धध ऊाँची होती है; और जो बुद्धध से परे है र्ह है पुरुष।

मिें सांख्यों की उस मनोवैज्ञाननक िमव्यवस्था को याद रखना चाहिये जजसे गीता स्वीकार करती िै।
इस िमव्यवस्था में एक ओर पुरुष िै जो जस्थर, अकिता, अक्षर, एक और अववकसनशील या अपररवतनिशील िै; दूसूरी ओर प्रकृनत िै जो सचेतन पुरुष के त्रबना स्वयं ज़ि ननजष्यि िै, जो कीं तो िै परंतु इसका यि कतृमिव पुरुष की चेतना के साजन्नध्य से, उसके संपकि में आने ेसे िी िै, जैसा कक िम किेंगे, पिले एक निींअवपतु अपररशमत, त्रत्रगुणाजममका, ववस्तरण (evolution) एवं ंअंतवलियन (involution) में सक्षम िै। पुरुष और प्रकृनत का संपकि िी आममननष्ठता (subjectivity) और वस्तुननष्ठता (objectivity) के खेल को उमपन्न करता िै, जो कक िमारी सर्त्ा का अनुभव िै; जो िमारे शलए आममननष्ठ अथवा अंतरंग िै पिले वि ववकशसत िोता िै, कयोंकक पुरुष-चेतना अथवा आमम-चेतना िी प्रथम कारण िै, और ज़ि प्रकृनत-शजकत केवल द्ववतीय और पिले पर आधश्रत कारण िै; तथावप यि प्रकृनत िी िै, न कक पुरुष, जो िमारी आममननष्ठता या व्यजकतपरकता के उपकरणों की आपूनत िकरती ि।ै इस िम में सवप्रिथम िै बुद्धध अथात्िप्रकृनत-शजकत से ववकशसत िोती वववेकशील और ननणयिकारी शजकत, और बुद्धध के साथ ववकशसत िोती अपनेको दूसूरों से पृथृक् करनेवाले अिंकार की शजकत। तब इस ववकास के द्ववतीय िम में इन बुद्धध और अिंकार में से इंहरय-मन या मनस् ्की शजकत उमपन्न िोती िै जो ववषयों की पृथृक् पृथृक् पिचान करता िै। यिााँ िमें भारतीय नामों का प्रयोग करना चाहिए, कयोंकक उनके पयायिवाची अंग्रेजी शब्द सचमुच उनके पयायि निीं; इस ववकास के तीसरे िम में इंहरय-मन में से दस ववशशष्ट इंहरयााँप्राप्त िोती िैं, पाचाँ ज्ञानेजन्रयााँऔर पााँच कमेजन्रया,ाँ तदनंतर ज्ञानेजन्रयों की शजकतयााँ अथात्िशब्द, स्पश,ि रूप, रस, गंध उमपन्न िोते िैं, जो िमारे मन के शलये स्थूल ववषयों का मूल्य ननधारिरत करते िैं और िमारी आममननष्ठता में पदाथों की जो प्रतीनत िोती िै वि उन्िींके द्वारा िोती िै। इन्िीं पाचाँ ववषयों के उपादान-स्वरूप पंचमिाभूत उमपन्न िोते िैं, जजनके ववशभन्न सजममश्रणों से बाह्य जगत् ्के पदाथ िउमपन्न िोतेिैं।

प्रकृनत के गुणों की ये अवस्थाएाँ और शजकतयााँ पुरुष की ववशुदुध चेतना में प्रनतभाशसत िोकर िमारे अशुदुध अंतःकरण के उपादान बनती िैं, अशुदुध इसशलए कक इसका काय िबाह्य जगत् ्के अनुभवों और अंतःकरण पर िोनेवाली उनकी प्रनतकियाओं पर ननभरि िै। यिी बुद्धध- जो मात्र ननणायिक शजकत िै और जो अपनी अननजश्चत ननश्चेतन शजकत में से सब ज़िवत् ्ननणयि ककया करती िै - िमारे शलए मेधा और संकल्प का रूप ले लेती िै। मनस्,् जो एक ननश्चेतन शजकत िै, प्रकृनत के भेदों को बहिरंग किया और प्रनतकिया के द्वारा

ग्रिण करता और आकषणि के द्वारा उनसे संलग्न िोता िै, इजन्रयानुभव और कामना बनता िै जो बुद्धध और संकल्प के िी दो भौंिेया ववकृत रूप िैं, - यिी इंहरय-मन संवेदनाममक, भावावेगाममक और स्वैजच्छक या इच्छाप्रधान बनता िै, इच्छाप्रधान से यिााँअशभप्रेेत िै ननमनकोहट की इच्छा, आशा, उमकंठा, कामनामय आवेश, प्राखणक आवेग, और ये सबके सब संकल्प-शजकत के िी ववकार िैं। इजन्रयााँ इस इंहरय-मन का उपकरण बनती िैं, जजनमें इंहरयगमय-ज्ञान की पाचााँ ज्ञानेजन्रयााँ, और िमारे आवेगों और प्राखणक अभ्यासों की पाचााँ सकिय कमेजन्रयााँजो अंतरंग जगत् ्और बहिरंग जगत् ्के बीच मध्यस्थ का काम करती िैं; बाकी सब िमारी चेतना के ववषय, इजन्रयों के ववषय िैं।

स्थूल जगत् ्के ववकास का जैसा िम िम देखते िैं उससे यि िम ववपरीत प्रतीत िोता िै। परन्तु यहद िमें स्मरण िो कक स्वयं बुद्धध भी अपने-आप में ज़ि प्रकृनत की एक ज़ि किया िै और इस अथ िमें ननश्चय िी परमाणु में भी एक अचेतन संकल्प और प्रज्ञा, भेदकारी और ननश्चयकारी शजकत िोती िै, यहद िम यि देखें कक पौधों में भी, जीवन के इन अवचेतन रूपों में भी, संवेदन, भावावेग, स्मृनत और आवेगों के असंस्कृत अचेतन उपादान मौजूद िैं और कफर यि देखें कक प्रकृनत की ये शजकतयााँकिस प्रकार आगे चलकर पशु और मनुष्य की ववकासोन्मुख चेतना में अंतःकरण के रूप धारण करती िैं, तो िमें यि पता लगेगा कक आधुननक ववज्ञान ने ज़ि प्रकृनत के ननरीक्षण द्वारा जो कुछ तथ्य प्राप्त ककया िै, उसके साथ सांख्य प्रणाली का मेल शमल जाता िै। जीव के प्रकृनत से लौटकर पुनः अपने पुरुष-स्वरूप को प्राप्त करने के ववकासि–म में प्रकृनत-ववकास के मूल िम का उल्टा मि अपनाना पि़ता िै। उपननषदों ने तथा उपननषदों का िी अनुसरण कर के और लगभग उपननषदों के वचनों को िी उद्धृत कर के गीता ने िमारे अंतःकरण की शजकतयों का आरोिणिम इस प्रकार बतलाया िै- 'अपनेववषयों से इजन्रयााँपरे िैं, इजन्रयों से परे मन िै, मन से परे बुद्धध िै और बुद्धध से परे जो िै वि, 'वि' िै' - धचदाममा, परम् ्पुरुष। इसशलए गीता किती िै, इस पुरुष को, िमारे आममननष्ठ जीवन के इस परम् ्कारण को िमें बुद्धध के द्वारा समझना और जान लेना िोगा; उसी में अपनेसंकल्प को जस्थर करना िोगा। इस प्रकार िम प्रकृनतस्थ ननमनतर अंतरंग पुरुष को उस मिर्र चेतन पुरुष की सियता से सवथिा संतुशलत और जस्थर कर के अपनी शांनत और आमम-प्रभुमव के अशांत और सदा-चंचल रिनेवाले शत्रु,ु मन की 'कामना', को नष्ट कर सकेंगे।

भगवान् ्ने काम रूपी शत्रु को मार िालने का उपाय बता हदया िै। परंतु केवल ववचारों से संयशमत निीं करना िै, कयोंकक स्वयंववचारों को भी ननयंत्रत और संयशमत करना िोता िै। उन्िेंरोकने के शलए पीछे संकल्प की आवश्यकता िै। इसे संशसद्ध करने के शलए ककसी अधूरे तरीके से निीं बजल्क पूरी तरि से िी इसे करना िोगा। इसके शलए जो संकल्प िै वि यहद अक्षर पुरुष में प्रनतजष्ठत िो, तभी व्यजकत इस काय िको कर सकता िै अन्यथा निीं। अजुनि को भगवान् ्ने यिी उपाय बताया िै। पिले अजुनि को बताया कक ककस प्रकार से मन को सभी इंहरयों के ववषयों से िटाकर अक्षर पुरुष में जस्थत ककया जाए। गीता इस ववषय को अभी और भी आगे ववकशसत करेगी। इस प्रकार अजुनि को भगवान् ्ने यि एक माग िबताया िै। वास्तव में अजुनि को धीरे-धीरे यि समझाने का प्रयास िै कक इन सब चीजों का ककतना ववकट स्वरूप िै। और ककस प्रकार इन कामनाओं-इच्छाओंआहद को जो कक िमारी शत्रु िैं - रोकने के शलए व्यजकत को गिराई में ननहित जो समय िै विााँ जाना िोगा।

यिा ाँभगवान् ्अजुनि से कि रिे िैं कक गिराई में एक ऐसी चीज िै जजसमें यहद तुम संकल्प करोगे तभी इन काम आहद शत्रुओंको रोक सकतीेो, अन्यथा निीं। िालाकाँक ऐसा निीीं किक ऐसी शशक्षा देनेमात्र से िी अजुनि इन्िें रोक पाने में समथ िो जाएगा। और यिााँयि उद्देश्य भी निीीं। यिााँतो उसे वे एक बुद्धध को उद्धाशसत करने े वाली प्रकाशक और ऊपर उठानेवाली शशक्षा प्रदान कर रिे िैं जजससे कक उसे मनोवैज्ञाननक रूप से इस बात के शलए तैयार करें कक वि अधधक गंभीर चीजों के प्रनत खुल सके ताकक उसे वि परम वचन 'सवधिमान्पिररमयज्य' प्रभावी रूप से प्रदान ककया जा सके। उसी परम वचन के शलए यि सारी तैयारी िै। उससे पिले की जजतनी भी शशक्षा दी जा रिी िै वि तो गीता के उस परम रिस्य को हदये जानेकी योजना का िी अंग िै।

एरं ंबुद्धेः परं बुद्‌ध्रा संस्तभ्यात्रानरात्र्ना ।

जदह ित्रु र्हाबाहो कार्रूपं दुरासदर् ्।। 43 ।।

४३. हे र्हाबाहो अजुनव ! इस प्रकार बुद्धध से भी परे जो उच्चतर् तत्त्र् (पुरुष) है उसे (बुद्धध के द्रारा) जानकर, र्ईत्तर आत्रा के द्रारा तनम्नकोटट के स्र् को जस्थर तनश्चल कर के कदठनाई से पक़ि र्ें आने ेराले कार्नारूप त्रिु ुको र्ार डाल।

एक 'शजकत' जो ऊाँचाइयों पर रिती िै, उसे किया करनी िोगी, जीवन के बंद कक्ष में अववनाशी की श्वास लानी िोगी और सांत को 'अनंत' से परिपूररत करना िोगा। जो कुछ भी अस्वीकार करे उसे, ववदीण िकर नष्ट-भ्रष्ट कर देना िोगा, और उन अनेक लालसाओं को कुचल िालना िोगा जजनके िेतु िम उस एकमेव को गाँवा देते िैं जजसके शलए िमारा जीवन बना था।

ऐसा माना जाता िै कक कामना मानव-जीवन की वास्तववक प्रेरेरकशजकत िै और इसे ननकाल फेंकने ेका अथ ििोगा जीवन के स्रोतों को बन्द कर देना; कामना की तृजप्त िी मनुष्य का एकमात्र भोग िै और इसका उन्मूलन करने ेका अथ िननवृवृत्मागीय वैराग्य के द्वारा जीवन की उमंग को िी शान्त कर देना िोगा। परंतुआममा के जीवन की वास्तववक चालक-शजकत िै संकल्पशजकतः कामना तो केवल िावी िुए शारीररक जीवन और स्थूल मन में संकल्पशजकत की एक ववकृनत मात्र िै। जगत् ्पर स्वमव प्राप्त करने तथा उसका उपभोग 'करने की आममा की मूल प्रववृत् आनन्द प्राप्त करनेकी उसकी इच्छाशजकत में ननहित िै, और कामना की तृजप्त का भोग तो आनन्द-प्राजप्त की इच्छा का प्राखणक एवं ंशारीररक ववकृत-रूप िै। यि अनत आवश्यक िै कक िम शुद्‌ध इच्छाशजकत या संकल्प तथा कामना अथात्ि्आनन्द-प्राजप्त की आन्तररक इच्छा और मन तथा शरीर की बाह्य वासना एवं ं कामना में भेद को जानें। यहद िम अपनी सत्ता के अनुभव में व्याविाररक रूप से यि भेद करने ेमें असमथ िरितें तो िम या तो केवल एक जीवन-घाती वैराग्य में या जीनेकी स्थूल इच्छा में से ककसी एक का चयन िी कर सकते िैं या कफर इन दोनों में एक भद्दा, अननजश्चत और अजस्थर समझौता करने ेका यमन कर सकते िैं। वस्तुतः अधधकतर लोग यिी करते िैं; बिुत थोिे ेलोग जीवन की सिज-प्रववृत् को कुचलकर तपश्चयाममक पूणता के शलये यमन करते िैं; अधधकांश लोग जीने की स्थूल इच्छा का अनुसरण करते िैं, ऐसा वे कुछ ऐसे परिवतनों और

प्रनतबन्धों के साथ करते िैं जजन्िें समाज उन पर लागू करता िै या जजन्िें अपने-आप के मन तथा कायों पर लागू करने ेके शलए साधारण सामाजजक मनुष्य को शशक्षा दी गयी िै; अन्य लोग नैनतक आममसंयम तथा कामनामय मानशसक एवं प्राखणक सर्त्ा की संयशमत तृजृप्त के बीच एक प्रकार के संतुलन का आदश ि स्थावपत करते िैं और इस सन्तुलन में अववक्षक्षप्त मन तथा स्वस्थ मानव-जीवन के सुनिरे मध्यम माग िका दशनि करते िैं। परन्तु इनमें से कोई भी तरीका जजस पूणतिा - अथात् ि जीवन में संकल्पशजकत का भागवत् ्साम्राज्य - की िम खोज कर रिे िैं, वि निीं ंप्रदान करता। प्राण अथिात् ्प्राणमय सर्त्ा को सवथिा कुचल िालने का अथ िै जीवन की उस शजकत का िी उच्छेद कर िालना जजसके द्वारा मनुष्य में जस्थत देिधारी आममा का अधधकतर कायि–कलाप पोवषत िोता िै; जीनेकी स्थूल इच्छा को तृपूत करने ेका अथ िै अपूणतिा से तुष्ट बने रिना; इनमें समझौता करने ेका अथ िै आधे रास्तेमें िी रुक जाना और न तो भूतल पर अधधकार पाना न स्वग िपर। परंतु यहद िम कामना के द्वारा अववकृत शुद्ुध संकल्पशजकत को अधधकृत कर सकें - और िम पाएँगे कक वि कामना की भिक उठने वाली, धुएँ से दबी-घुटी, शीघ्र कलान्त एवं पराजजत िो जानेवाली ज्वाला से किीं अधधक स्वतन्त्र, शान्त, जस्थर और प्रभावपूण िशजकत ि,ै - और वासना के ककसी भी ववक्षोभ से पीड़ित या सीशमत न िोनेवाले आनन्द की शान्त आन्तररक इच्छा को अधधकृत कर सकें तो िम प्राण को मन पर अमयाचार तथा आिमण करनेवाले शत्रु से पररवनतति कर के एक आज्ञाकारी यन्त्र में बदल सकतिैं। इन मित्र शजकतयों को, भी िम चािें तो कामना के नाम से पुकार सकते िैं, पर तब िमें यि मानना िोगा कक एक हदव्य कामना भी िै जो प्राण की लालसा से शभन्न वस्तु िै, एक ईश्वर-कामना भी िै जजसकी यि अन्य एवं ननमनतर कामना एक अन्धकारमय छाया िै और जजसमें इसे रूपान्तररत करना िोगा। परंतु जो वस्तुएँ अपनेस्वरूप तथा आन्तररक किया में सवथिा शभन्न िैं उनके शलये शभन्न नाम रखना िी अधधक अच्छा िै।

अब इस समस्या को िल ककया गया िै कक आखखर कामनाएँ आती किााँसे िैं। वास्तव में, िमारे अंदर आममा कुछ अशभव्यकत करना चाि रिी िै, उसी से ये सारी चीजें उद्भूत िोती िैं, सति पर तो ये चीजें उमपन्न निीं ं िो सकतीं कयोंकक सभी चीजों के शलए ऊजाि और शजकत तो आममा से िी प्राप्त िोती िै। अतः, सभी चीजों का मूल स्रोत तो विी िै। पर जैसे िवा अपनेमाग िमें अच्छी या बुरी गंध साथ ले लेती िै, वैसे िी जब ये सभी भाव, उमप्रेरणाएँ आहद तथा अन्य बिुत सी चीजें व्यजकत के मन, प्राण तथा शरीर के माध्यम से आती िैं, और जैसा इन मन-प्राण-शरीराहद का गठन िै, वैसी छाप उन चीजों के ऊपर लग जाती िै। इसशलए वे िी चीजें जो मूल रूप से जजस स्वरूप और उद्देश्य को लेकर आममा से चलीं थीं, वे इन सब छापों के कारण अपना स्वरूप और उद्देश्य खो बैठती िैं। जजतनी इन बािरी हिस्सों में कम ववकृनत िोती िै उतनी कम ववकृत छाप लगती िै। परंतुचूंकक इन सभी भागों को भी रूपांतररत करना िै इसशलए इन सभी संभावनाओं को बािर आने ेका मौका प्रदान करना िी िोगा। वैसे िी जैसे ककसी बच्चे को कुछ शसखानेके शलए उसे त्रुहटयाँ करने की कुछ छूट देनी िी िोगी, उसी प्रकार इन यंत्रों को इस िमववकास में हदव्य ववधान के द्वारा छूट दी गई िै। अतः कामना मन, प्राण तथा शरीर में अपनी छाप लगा देती िै। शरीर में भोगेच्छा, प्राण में कामनाएँ-वासनाएँ, तथा इन्िीं के कुछ अन्य अधधक सूक्ष्म रूप भी िैं, मन के अंदर अपने ववचार िैं। ये सभी चीजें आममा से आते भावों, उमप्रेरणाओं, संकेतों आहद के साथ जुि जाती िैं और आममा से आती चीजों का जो प्रयोजन था वि आच्छाहदत िो जाता िै, ववकृत िो जाता िै, और इस सब का व्यजकत

को आभास तक भी निीिं पाता। तो इसका समाधान कया िै? यि सारा खेल इतना असुधाय िै, कामना आहद इतनी सूक्ष्म िोती िैं कक बुित अधधक प्रयमन करने ेपर भी ये व्यजकत को धोखा दे देती िैं। कयोंकक इन सबके साथ अिम् ्शमला िोता िै जो व्यजकत की सभी चीजों को सिी शसद्ध करने का काम करता िै। ककतने लोग िैं जजनका मानना िै कक वे तो गीता का कमियोग िी कर रिे िैं। दूसूरे लोगों को दूसूरा भ्रम िोता िै। जबकक वास्तववकता यि िै कक लगभग सभी पूरी तरि से धोखे में िोते िैं।

अतः कुछ ने यि दृजष्टकोण अपना शलया कक यि सब प्रपंच िी बेकार िै, और इसको सुधारना लगभग असंभव िै इसशलए अच्छा यि िै कक व्यजकत सब कमों का िी मयाग कर दे, ध्यान आहद तरीकों से केवल आममा में िी ननवास करे, भगवान् ्का साक्षामकार करे और अपने आममतत्त्व में िी रिे कयोंकक विीं सब सुख शमल सकते िैं। और केवल विी कम िकरे जो शरीरचयाि के शलए अपररिाय िैं, और जब शरीर छूट जाए तो व्यजकत इस प्रपंच में से छूट ननकले। पारंपररक आध्याजममकता में प्रनतपाहदत यि एक प्रचशलत समाधान िै, जो कक आममा के अपने-आप को इस पाधथवि जगत् ्में अशभव्यकत करनेके प्रयोजन को उधचत निीं ठिराता। िालाकाँक जजसकी आममा की यिी पुकार िो उसके शलए तो यि समाधान अनुकरणीय िो सकता िै परंतु अधधकतर के शलए यि समाधान लागू निीं िोता कयोंकक उनकी आममा तो यिा ाँककसी संशसद्धध के उद्देश्य से आई िोती िै।

कुछ दूसूरों ने यि दृजष्टकोण अपनाया कक यि प्रपंच जैसा िै वैसा िै। इसके ववषय में ववश्लेषण कर के व्यजकत ननरथिक िी परेशान भले िी िो सकता िै जबकक इसका कोई ननष्कष िनिीं ंननकलता। इसशलए ऐसे में तो
भगवान् ्से प्राथनिा करने का रुख अपनाना चाहिये और जैसे भी यि सब प्रपंच चलता िै वैसे चलता रिे, इससे कोई सरोकार न रखा जाए। जैसे-जैसे िमें अनुभव अजजित िोतेजाएँगे िम इसे कुछ थोडा-बुित समझ जाएँगे तो कफर समस्याएँ सूक्ष्म िोती जाएँगी। और इसी प्रकार यि प्रपंच चलता रिेगा। इसशलए अच्छा िो कक व्यजकत त्रबना बात िी परेशान न िो और सुख से जीए। यि एक दूसूरा समाधान िै।

तीसरा दृजष्टकोण यि िै कक कुछ चीजों का तो त्रबल्कुल स्पष्ट रूप से पता िै कक ये गलत िैं, ऐसी गलनतयों को तो व्यजकत अपनी इच्छाशजकत के दबाव से रोके। बाकी चीजों का पता लगता निीं ंिै इसशलये उन्िें चलनेहदया जा सकता िै। यि मध्य माग िै जजसमें व्यजकत कोई पापपूण िव्यविार निींकरता, समाज के नैनतक आदशों का सममान करता िै और उनके अनुसार चलता िै जजससे कक उसे सामाजजक जीवन में संतुलन बनाए रखनेकी और अपनी ननजी श्रेष्ठता के बोध की तृजप्त प्राप्त िो जाती िै। इनके अनतररकत इंहरयों की किया तो जैसा उनका प्रकृनतगत गठन िै उसके अनुसार चलती िी रिेगी, वि रुकेगी निीं। इसशलए अच्छा िै कक व्यजकत उसमें अपनी ऊजिा न गाँवाए और उसे अपनेतरीके से चलने हदया जाए। यि एक अलग समाधान िै।

परंतु श्रीअरववन्द का किना िै कक िम यिाँधरती पर भगवान् ्का शासन लाना चािते िैं इसशलए िमारे शलए इनमें से कोई भी समाधान उधचत निीं। िम यिाँ अपनी आममा की सत्ता स्थावपत करना चािते िैं। और इसका एक िी रास्ता िै - इसे करने का दृढ़-संकल्प और जिा ाँव्यजकत को व्यजकतगत पुरुषाथ िका स्थान हदखाई देता िै विाँ पूरे मनोयोग के साथ उसका प्रयोग करे और देखे कक वि किाँतक ले जाता िै। और वि भी करने ेके

साथ-साथ व्यजकत को श्रीमाँ के प्रनत खुलना चाहिये। धीरे-धीरे व्यजकत को बोध िोने ेलगता िै। धीरे-धीरे जो भागवत् ्संकल्प अशभव्यकत िोना चाि रिा िै उसमें मन-प्राण-शरीर की ववकृनत कम िोती जाएगी, इच्छाएँ-कामनाएँ तो आरंभ में रिेंगी पर जैसे-जैसे उस संकल्प का प्रभाव सर्त्ा में बढ़ता जाएगा वैसे-वैसे मन-प्राण-शरीर की ववकृनत कम िोती जाएगी। तब कफर व्यजकत अपनी कामना के ववपरीत भी काम कर पाएगा। पसंद-नापसंद से िट कर, लाभ–िानन के ववचार को अनदेखा कर भी काम कर सकेगा। यि सब किया िमश: िोने ेलगेगी। और जब समय आएगा तब व्यजकत श्रीमाँके, भगवान् ्के संकल्प से जुि जाएगा। और जब प्रभु के संकल्प से व्यजकत जुि जाएगा तभी वि हदव्य कम िकर सकेगा। यहद कमों का मयाग िी समाधान िोता और यहद हदव्य कम िसंभव िी निीं िोतेतब तो भगवान् ्कृष्ण अजुनि को इस घोर कम िमें ननयोजजत िी कयों करते? अजुनि तो आरंभ में िी उससे पलायन की वृवृर्त् रख रिा था। यहद वन में जाकर तपस्या करना, कमाँ को छोि देना, जीवन से पलायन करना िी गीता की शशक्षा िोती तो शेषे सभी अध्यायों का तो कोई अथ िीि निींथा जजनके बाद कक भगवान् ्उसे युद्ध करने का आदेश दे रिे िैं।

सारी गीता का ववकासिम इसी प्रयोजन से िै कक अजुनि इन सभी चीजों से ऊपर उठ जाए, भागवत् ्कम िकर सके। यिी सच्चा समाधान िै, कक सर्त्ा पर भागवत् ्शासन को लागू ककया जाए। ताकक त्रबना ववचशलत िुए, भगवद्-उद्देश्य से िी िम सभी कमों को कर सकें। कामना िमें ववचशलत करती िै। यहद िमारी कोई अपनी पसन्द या नापसन्द िै तो िम उसी के अनुसार कम िकरेंगे और इस कारण श्रीमाँ िमसे जो कराना चािेंगी वि तो िम कर िी निीं पाएँगे।

कामना आहद भगवान् ्के प्रनत द्वेष भाव रखते िैं और कोई भी भागवत् ्काय िनिींिोनेदेना चािते। इसशलये यहद िम उन्िें प्रश्रय प्रदान करते िैं तो भागवत् ्काय िकी आशा कैसे कर सकते िैं कयोंकक िमनेतो अपने शत्रु ुको अपने िी घर में आश्रय प्रदान ककया िोता िै। िमें यि संकल्प करना िोगा कक विी काय िकरेंगे जो श्रीमाँ िमसे कराना चािेंगी, भले िी वि काय िमें अच्छा लगे या न लगे। उस काय िमें यहद ककसी को कामना नजर आती िैतो उससे भी िमें कोई सरोकार निीं ंिै। इस प्रकार धीरे-धीरे माग िपर व्यजकत आगे बढ़ता रिता िै। यि कोई ऐसी चीज निीं जजससे व्यजकत कोई एक योजना बना कर, या कोई एक मानशसक सूत्र पकि कर संशसद्ध कर पाए। जब व्यजकत भागवत् ्शासन की स्थापना का तथा अपने-आप को श्रीमाताजी को समवपति करनेका संकल्प करता िै तब उस शासन की स्थापना के शलए जो आवश्यक िै उसे वि निीं ंसमझ सकता। परंतुश्रीमाताजी स्वयंिी अपने तरीकों से उसे उस ओर ले जाएँगी। इस सब प्रकिया में बीच में कामनाएँ भी 3pi उनका वजनि भी आएगा, शलप्तता भी आएगी, उससे दूरू िटनेकी किया भी आएगी, ननषेध, नकाराममकता आहद न जाने कया-कया आएँगे। इन सब से िोतेिुए श्रीमाँ िमारे गंतव्य की ओर िमें ले चलेंगी। और जब धीरे-धीरे व्यजकत इन सब चीजों से कुछ मुकत िोगा, तब हदव्य कम िसंपाहदत िोंगे, उससे पिले निीं। भगवान् ्किते िैं कक 'जन्म कम िच मे हदव्यं' अथात् भगवान् ्अवतार लेते िैं तो उनके जन्म और कम िसब हदव्य िोतेिैं, चािे बाह्य प्रतीनत में वे िमें कैसे भी कयों न लगते िों।

इस प्रकार तीसरा अध्याय 'कर्यवोग' सर्ाप्त होता है।

चौथा अध्याय

।.अवतार-तत्त्व की समभावनाउसकाउद्देश्य और उसकी प्रकिया

,

श्रीभगर्ान् ्उर्ाच

इर्ंवर्र्स्र्तेयोगंप्रोक्तर्ानहर्व्ययर् ्।

वर्र्स्र्ातनर्े प्राह र्नुररक्ष्र्ाकर्ेऽब्रर्ीत् ्।। १।।

१. श्रीभगर्ान् ्ने कहाः र्ैंने इस अवनर्ाी योग को वर्र्स्र्ान् ्को ददया था; वर्र्स्र्ान् ्ने र्नु (र्नुष्यों के वपता) को ददया, र्नु ने (सूयरर्ंवि के र्ुणखया) इक्ष्र्ाकु को ददया।

एर्ं ंपरम्पराप्राप्तमर्ें राजषयवो वर्दुः ।

स कालेनेह र्हता योगो नष्टः परंतप ।। २॥

२. हे परंतप! इस प्रकार परंपरा से एक से दूसूरे को प्राप्त होते हुए इस योग को राजऋवषयों ने तब तक जाना जब तक कक यह योग दीघकवाल बीतते-बीततेइस जगत् ्से लुप्त ही न हो गया।

स एर्ायंर्या तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।

भक्तोऽमस रे् सखा चेतत रहस्यंह्येतदुत्ुतर्् ् ।। ३।।

३. यही प्राचीन और आददर् योग जो कक सर्ोत्तर् रहस्य है, आज रे्रे द्र्ारा तुझेकहा गया है क्योंकक तू रे्रा भक्त और मर्त्र है।

जजस योग में कम िऔर ज्ञान एक िो जाते िैं, कमयिज्ञयोग ज्ञानयोग के साथ एक िो जाता िै, जजस योग में कम िकी पररपूणतिा ज्ञान में िोती िै और ज्ञान कम िको अवलंबन प्रदान करता िै, उसका स्वरूप बदल देता िै और उसे आलोककत कर देता िै और कफर ज्ञान और कम िदोनों िी उन परम भगवान् ्पुरुषोत्र्म को समवपति ककये जाते िैं जो िमारे अन्दर नारायण-रूप से अशभव्यकत िोतिं, जो ननमय िमारे हृदयों में गुप्त भाव से ववराजमान िमारी संपूण िसत्ा व कम िके ईश्वर िैं, जो मानव आकार में भी अवतार के रूप में, अथात्ि्िमारी मानवीयता को अधधकृत करने ेवाले हदव्य जन्म में, प्रकट िोतिं, उस योग का वणनि करते िुए श्रीकृष्ण बातों-बातों में यि कि गये कक यिी वि पुरातन आहदयोग िै जो उन्िोंने सूयदिेव वववस्वान् ्को प्रदान ककया और वववस्वान् ्ने जजसे मनुष्यों के जनक मनुको और मनु ने सूयवंशि के आहदपुरुष इक्ष्वाकु को हदया और इस प्रकार यि योग एक राजवष िसे दूसूरे राजवष ि को शमलता रिा और इसकी परंपरा चलती रिी जब तक कक कफर काल की गनत में यि खो िी न गया। आज विी योग भगवान् ्अजुनि को पुनः दे रिे िैं, कयोंकक वि अवतार श्रीकृष्ण का प्रे्रेमी, भकत, सखा और साथी िै। कयोंकक भगवान् ्किते िैं कक यि परम रिस्य िै, - और ऐसा किकर अन्य सब योगों से इसकी श्रे्रेष्ठता दृढ़तापूवकि बताते िैं, कियोंकक वे अन्य योग या तो ननगुणि ब्रह्म तक या सगुण साकार इष्टदेव तक िी ले जानेवाले िैं, या ननष्कम ि ज्ञानस्वरूप मोक्ष अथवा आनन्द ननमग्न मुजकत तक ले जानेवाले िैं, जबकक यि योग परम रिस्य और संपूण ि रिस्य उद्घाहटत कर देता िै; यि िमें हदव्य शांनत और हदव्य कम िको प्राप्त करानेवाला तथा पूण िस्वतंत्रता में एकीकृत िुए हदव्य ज्ञान, कम िऔर परमानन्द को देनेवाला िै। जजस प्रकार भगवान् ्की परम सत्ा अपनी अशभव्यकत सत्ा के सभी शभन्न और यिा ाँतक कक परस्पर ववरोधी शजकतयों और तत्त्वों का समन्वय कर उन्िें अपनेअन्दर एक कर लेती िै वैसे िी यि योग सभी योगमागों को अपने-आप में एकीभूत कर लेता िै। इसशलए गीता का यि योग केवल कमयिोग निीं ंिै जैसा कक कुछ लोगों का आग्रि िै और जजनके अनुसार यि तीनों मागों में से सबसे कननष्ठ माग ििै, अवपतुयि परम योग िै, जो पूण िसमन्वयाममक और अखंडिै जो िमारी सत्ा की सभी शजकतयों को भगवन्मुखी बना देता िै।

यि बात तो त्रबल्कुल स्पष्ट िै कक भगवान् ्ने बातों-बातों में यि कि हदया िै कक यि एक ववशेषे योग िै और सवोत्र्म रिस्य िै। इसके बारे में अजुनि को बताति्ुए वे किते िैं कक यि योग लुप्त िो गया था और इसके बारे में ऋवषयों को भी पता निीं ंथा। आरमभ में 'मनैं' े अथात्ि्स्वयं भगवान् ्ने इसे सूयदिेव को बताया था, उनके द्वारा कफर सूय िपुत्र मनु को यि प्राप्त िुआ, मनु से कफर इक्ष्वाकु को - जो कक सूयवंशि के मुखखया थे और उसके बाद में ऋवषयों-मुननयों को यि प्राप्त िुआ। इस प्रकार यि योग बिुत लमबे समय तक चलता रिा। परंतु धीरे-धीरे काल की गनत में यि इस जगत् ्से लुप्त िो गया। भगवान् ्किते िैं, 'परन्तु अब म ैंइस योग के बारे में तुझे ेदुबुारा बतला

रि िूँ जो कक ब्रि िी उत्र्म रिस्य िै।' इस योग को उत्र्म रिस्य कयों बताया गया िै? इसके बारे में श्रीअरववन्द कि रिे िैं कक कयोंकक यि ऐसा योग िै जजसमें व्यजकत कम िसे आरमभ करता िै, परंतु कम िके साथ-साथ ज्ञान भी चलता िै, और इस प्रकार एक दूसूरे को पररपूण िकरते िुए दोनों आगे बढ़ते िैं। उदिारण के शलए, व्यजकत अपनी समझ के अनुसार कोई कम िकरता िै। परंतु यहद वि कम िउसने बिुत सच्चाई के साथ, भावना के साथ, यज्ञ के रूप में करने ेका प्रयमन ककया िै, तो उसकी समझ में अशभवृद्धध िोगी। अशभवृद्धध के कारण अब उसे और अधधक समझ में आने लगेगा। और इसके कारण कम िपिले से बेितर रूप से िोने ेलगेंगे। और ज्यों-ज्यों वे ेबेितर िोते जाएँगे मयोंिी-मयों समझ में भी अशभवृद्धध िोती जाएगी। इस प्रकार ये परस्पर अशभवधधति करते चलेंगे। साथ िी, सच्चा कमयिोग सच्चेज्ञानयोग से अशभन्न िै। जो इन्िें शभन्न-शभन्न मानते िैं वे ेमूढ़ िैं। कयोंकक त्रबना पूण िरूप से ज्ञान िुए सच्चे रूप से कम िीो िी निीं ंसकते और इसीशलए त्रबना ज्ञान के कमयिोग तो शसद्ध िो िी निींसकता। ऊपरी दृजष्ट से िी ये शभन्न प्रतीत िोतेिैं पर वास्तव में तो दोनों आपस में गुँथे िुए िैं, अशभन्न िैं और साथ-साथ िी चलते िैं, और एक-दूसूरे के पररपूरक िैं। आरमभ में गीता इसी का समन्वय साधती िै। इसशलये भगवान् ्ने इसे बिुत उत्र्म रिस्य बताया िै। इस समन्वय का भान न िोनेके कारण िी कुछ मनुष्य मूखतिावश अपनेको केवल सांख्ययोगी किेंगे, जबकक अन्य दूसूरे स्वयं को कमयिोगी बताएँगे, परंतु वास्तव में तो ककसी एक के त्रबना दूसूरा अधूरा िी िै। त्रबना कमयिोग के सांख्ययोगी की अशभवृद्धध निीं ंिो सकती, और यहद अशभवृद्धध िो भी जाए तो यि ननजश्चत रूप से निीं ंकिा जा सकता कक वास्तव में वि ककतनी सिी िै। िो सकता िै कक वि अपनी िी भ्ांनतयों में, अपने मन की ननशमति संरचनाओं में िी रिने ेलग जाये। विीं, जो कमयिोगी केवल कम िसे िी सरोकार रखता िै और ज्ञान की उपेक्षा कर देता िै, वि अपनेअंदर मानो एक अवरोध पैदा कर लेता िै कयोंकक सच्चा ज्ञान निीं ंिोने के कारण वि कम िको यन्त्रवत् ्िी करता रिेगा, इसशलए ऐसे में सच्चा कम िभी निीं िो सकता। वि तो केवल अपने-आप को धोखा िी देता रिेगा। इस प्रकार एक-दूसूरे को साथ में लेकर चले त्रबना दोनों में से कोई भी अपने-आप में संशसद्ध निीं ंिो सकता। जब ये दोनों साथ-साथ चलेंगे तभी सच्ची किया संशसद्ध िो सकती िै।

आरमभ के छः अध्यायों में गीता इसी समन्वय को साधने का काय िकरती िै। केवल छठे अध्याय के अन्त में भगवान् ्किते िैं कक यों तो सभी योगी श्ेष्ठ िैं परंतु उन सभी योधगयों में भी मेरा भकत सवश्ेष्ठ िै। तब ज्ञान और कम िमें एक नए तमव-भजकत -का भी समावेश करा हदया जाता िै। इस तत्त्व पर बल देते िुए गीता बाद में इसका ननरूपण करती िै कक भजकत िी सवोच्च तत्त्व िै। और त्रबना भजकत के भगवान् ्को जाना निींजा सकता, कयोंकक केवल ज्ञान और कम िको लेकर चलनेपर एक सीमा के बाद वे रुक जाएँगे। और त्रबना भजकत के सच्चा कम ि िी िी निीं सकता। केवल ज्ञान के आधार पर एक सीमा तक िी कमों को ककया जा सकता िै। जब तक उनमें भजकत का समावेश निींिोता, भजकत का अवलंब प्राप्त निीं िोता तब तक योगिम आगे निीं ंबढ़ सकता।

यहद व्यजकत के अन्दर भगवान् ्के प्रनत भाव निीं ंिै तो कम िकरना ब्रि कहठन िो जाएगा और ऐसे में तो कम िएक ब्रिी भारी यंत्रणा बन जाएगा, पीिा बन जाएगा। जब व्यजकत ककसी से प्ेम करता िै तब उसके ननशमर्त् काय िकरने में, उसकी सेवा करनेमें उसे जरा भी असुववधा, तकलीफ या कहठनाई अनुभव निीं िोती। उस प्ेम के कारण व्यजकत अपनेप्ेमी के शलए काय िककये त्रबना रि िी निीं ंसकता। विींयहद वि भाव न िो तब कफर कम िमें

अन्यमनस्कता आने ेलगती िै, कम िमें सिज आनंद की बजाय बाध्यता का या कफर दबाव का अनुभव िोने ेलगता िै। ऐसे में यहद व्यजकत को सेवा करने को किा जाए तो उसके मन में अनेक तरीके के भाव उठ खड़े िोते िैं जैसे कक 'सेवा करते िुए तो िम सुबि से ना भी निीं पाए िैं, रात भर सो भी निीं पाए िैं, इसके कारण कुछ आवश्यक काय ि में भी व्यवधान आ गया िै, आहद-आहद' और कफर अंततः यि कक 'यि करने ेसे भी कया लाभ िै'। इस तरीके की बातें व्यजकत के मन में आने लगती िैं। यहद ककसी से आसजकत िो तब तो सारा भाव, सारे कियाकलाप िी बदल जाते िैं। और विींयहद व्यजकत को गिरा प्रेम िो तब तो सब कुछ िी बदल जाता िै। व्यजकत को यहद ककसी से लगाव िो, तो भी उसके शलए वि कुछ भी कर सकता िै, जैसे कक माता-वपता अपने बच्चों के शलए या कफर कोई व्यजकत अपने शमत्र के शलए या भाई अपनी बिन के शलए इस तरीके की बात सोचेंगे भी निींकक उनकी सेवा करने के कारण वे सो निीं ंपाए, या कफर उनका इसमें कया लाभ। यहद लगाव िो, संबंध िो, प्रेम िो तो कफर ऐसे भाव तो उठते िी निीं। इसी प्रकार भगवान् ्के प्रनत भी त्रबना प्रेम का भाव आए साधना निीं ंिो सकती। इसशलए गीता इस तत्त्व का समावेश करती िै और इसे पूण िरूप से ववकशसत करने के बाद ज्ञान, कम िऔर भजकत का समन्वय साधती िै। यिी गीता का पूरा ववकासिम िै। ऐसी इसकी संरचना िै।

गीता में यि पिले िी आ चुका िै कक भगवान् ्अजुनि को ननष्काम कम िकरने ेका उपदेश करते िैं। परंतु अजुनि का प्रश्न यि था कक 'म ैंननष्काम कम िकरूँ कैसे? कयोंकक यहद कम िका उमप्रेरण कामना से िो रिा िो तब तो किा जा सकता िै कक अमुक काम को करने से कामना की पूनत िोगी जबकक अमुक काम को करनेमें कोई लाभ निीं ंिै इसशलए उसे निीं करना चाहिए। अतः कामना के आधार पर तो यि ननणयि िो सकता िै, परन्तु जब कम ि को कामना के द्वारा निीं ंकरना िै तब यि ननधारिण कैसे िो कक कौन-सा कम िकरें और कौन-सा न करें? इसके समाधान के रूप में भगवान् ्यज्ञ रूप से कम िकरने ेका ननदेश करते िैं और किते िैं कक शुरू में मेरी प्रसन्नता के ननशमत्त् सभी कम िकरो। कयोंकक आरंभ में िी कम िननष्काम निीं ंिोंगे। ज्यों-ज्यों ज्ञान बढ़ेगा मयों िी मयों ननष्काम कम िबढ़ेगा। कयोंकक ननष्काम कम ितो उसकी पररणनत िी तो िै। इसशलए भगवान् ्किते िैं कक 'मेरी प्रसन्नता के शलए कम िकरना शुरू कर।' तब अजुनि पूछता िै कक 'आप कौन िैं?' जजनके शलए उसे कम िकरने को किा जा रिा िै वि उनका स्वरूप जानना चािता िै। यहद व्यजकत यि मानकर कम िकरे कक 'म ैंअपनेशमत्र के शलये, उसकी प्रसन्नता के शलये कम िकर रिा िूँ, तो यि तो एक व्यजकतगत बात िी िुई, एक व्यजकतगत समाधान िी िुआ। परन्तु चूँकक योग सभी के शलए िै, अतः एक व्यजकतगत समाधान के आधार पर सभी योग कैसे करेंगे, इसीशलये एक ऐसे तत्त्व का ननरूपण चाहिये जजस तक सभी पिुँच सकते िों।

तब कफर इस बात को प्रकट करनेके शलए कक भगवान् ्का स्वरूप कया िै, गीता श्रीकृष्ण के मुख से यि प्रकट करा देती िै कक िजारों-लाखों वष िपिले यि योग उन्िोंने िी सूयदिेव को हदया था। तब अजुनि ने प्रश्न उठाया कक 'वे' तो उसके समकालीन युग में िी पैदा िुए िैं इसशलए वे लाखों वष िपूव िउस योग को सूयदिेव को कैसे दे सके।

अब भगवान् ्उसे अवतार के रिस्य आहद के ववषय में और भजकत के ववषय में बतलाएँगे। इस प्रकार भजकतयोग का सारा आधार, उसकी सारी पृष्ठभूशम इसी अध्याय में तैयार िो जाएगी। इसके बाद बीच में योग-

साधना आहद के कुछ अन्य ववषयों पर प्रकाश िालने के बाद अन्त में भगवान् ्भजकत पर िी सारा बल देते िैं। इस प्रकार यि गीता का ववकासिम िै।

पर यिा ाँयि आवश्यक िै कक भगवान् ्अजुनि को यि प्रकट करें कक नारायण िैं कौन? यि एक ऐसा मित्त्वपूण ितत्त्व िै जजसके त्रबना कोई भी साधना िोती िी निीं। भारतीय संस्कृनत ने इस बात पर बिुत बल देकर किा िै कक भगवान् ्के व्यजकतमव की उपजस्थनत के त्रबना साधना निीं िो सकती, भले िी व्यजकत ककतना भी ध्यान और अभ्यास कयों न कर ले, कयोंकक ये सभी चीजें बिुत िी सीशमत िैं और इन पर ववश्वास भी निीं ंककया जा सकता। व्यजकत के पास िजारों–जार तरि की सूक्ष्म शजकतयााँ िो सकती िैं, उसे िजारों प्रकार के अनुभव प्राप्त िो सकतेिैं परन्तु भगवान् ्के व्यजकतमव की उपजस्थनत के त्रबना उसे कोई सच्चा आधार प्राप्त निीं िोता। इसीशलए गुरु परंपरा को इतना अधधक मित्त्व हदया जाता रिा िै। गुरु को नारायण मानकर व्यजकत उनके द्वारा भगवान् ् को प्राप्त कर सकता िै। भले िी स्वयं गुरु को अनुभव प्राप्त न िो तो भी शशष्य को तो उसकी आवश्यकतानुसार अवश्य िी अनुभव प्राप्त िो जाएाँगे। इस तरि की परंपरा भारतीय संस्कृनत में रिी िै, कयोंकक त्रबना भगवान् ्के व्यजकतमव के संपकि में आए व्यजकत माग िपर आगे निींजा सकता। यिााँ गीता इसी से आरमभ करती िै। इस सारी पृष्ठभूशम से िमें यि समझ आ जाएगा कक वास्तव में गीता का ववकास ककस प्रकार चल रिा िै।

अजुनव उर्ाच
अपरं भर्तो जतर् परं जतर् वर्स्र्तः ।
कथर्ेतद्वर्जानीयां त्र्ादौ प्रोक्तर्ातनतत ।। ४ ।।

४. अजुनव ने कहाः आपका जतर् तो अर्ाचवीन (अभी हाल ही का) है, वर्स्र्ान् ्(जो कक र्नुष्यों र्ें प्रथर् उत्पतन होनेर्ाला और सूयर्ंवि का पूर्जव है) का जतर् बहुत पहले हो चुका है; आपने इस योग को उसे पहले कहा था इसे र्ैं कैसे सर्झूं?

इस योग के एक से दूसूरे को सौंपे जानेके कथन को अजुनि इसके अमयंत स्थूल अथ िमें ग्रिण करता िै - दूसूरा भी अथ िै जजसमें इस बात को शलया जा सकता 3 - 3m पूछता िै कक सूयदिेव जो जीव-सृजष्ट में प्रथमोमपन्नों में से एक िैं, जो सूयवंशि के आहदपुरुष िैं, उन्िोंने मनुष्यरूप श्रीकृष्ण से, जो केवल अभी (िाल िी में) जगत् ्में उमपन्न िुए िैं, यि योग कैसे ग्रिण ककया। इस प्रश्न का उत्तर श्रीकृष्ण वैसा निींदेते जैसा उत्तर देने की िम उनसे आशा कर सकते थे,े कक उन्िोंने समपूण िज्ञान के स्रोत भगवान् ्के रूप में िी यि ज्ञान (हदव्य शब्द) उन सूयदिेव को हदया जो उन भगवान् ्के िी ज्ञान के स्वरूप िैं और जो समस्त अंतबाह्यि प्रकाश के देनेवाले िैं... इसकी अपेक्षा उन्िोंने ेअपनी प्रच्छन्न भगवत्ता को प्रकाशशत करने ेके शलए अजुनि द्वारा प्रदत्त इस सुअवसर को स्वीकार ककया, यि एक ऐसा प्रकाशन या उद्घोषणा थी जजसकी भूशमका वे तभी तैयार कर चुके थे जब उन्िोंने कम िकरते िुए भी कमों से न बाँधने ेवाले कमी के रूप में स्वयं का हदव्य दृष्टांत प्रस्तुत ककया था, परंतु जजस बात को उन्िोंनेअभी तक सवथिा स्पष्ट रूप से प्रकाशशत निीं ंककया था। अब वे अपने-आपको स्पष्ट शब्दों में अवतार' घोवषत करते िैं।

श्रीअरववन्द आगे इसे और अधधक ववस्तार से स्पष्ट करेंगे। जब िम यि मानते िैं कक सवत्रि प्रभु ववद्यमान िैं, उनके अनतररकत किंभी और ककसी दूसूरी चीज का अजस्तमव िी निीं, वे िी सभी जगि और सभी चीजों में अशभव्यकत िो रिे िैं तब कफर यि अवतार तत्त्व कया िै? और कफर मनुष्यों में और अवतार में इतना अन्तर कैसे िोता िै? जिा ाँसाधारण मनुष्य प्रकृनत की कियाओं में इतना अधधक फंसा िुआ रिता िै विींभनातार अपनी स्वतंत्र इच्छा-शजकत से प्रकृनत को कैसे प्रयोग में ला पाता िै? यि कैसी व्यवस्था िै?

...आधुननक मन के शलए अवतार-तत्त्व तकिबद्ध मानव-चेतना पर पूव िकी ओर से अंतप्रविाहित िोनेवाले ववचारों में से स्वीकार करने या समझने में सबसे अधधक दु:साध्य ववचार िै। यहद अच्छे से अच्छे रूप में ले तो यि (तकिबद्ध मानव-चेतना) अवतारतत्त्व को मानव शजकत का, चररत्र का, प्रनतभा का, जगत् ्के शलए अथवा जगत् ्में की गई ककसी मिान् ्अशभव्यजकत का मिज एक रूपक मानती िै, और यहद संकीणतिम भाव से ग्रिण करे तो इसे मिज एक अंधववश्वास मानती िै, एक काकफर या नाजस्तक के शलए यि एक मूखतिा िै और यूनाननयों के शलये माग िका रोिा िै। ज़िवादी तो इस ववचार की ओर देख भी निीं ं सकता, कयोंकक वि ईश्वर की सर्ता को िी निीं ंमानता; तकिवादी या देवतावादी (जो मानता िै कक ईश्वर ने इस सृजृष्ट की रचना कर इसे छोि़ हदया और जो ईश्वर के प्राकट्य को स्वीकार निीं ंकरता) के शलए यि मूखतिा और उपिास का ववषय िै; पकके द्वैतवादी के शलए, जो मानव और हदव्य प्रकृनत के बीच न शमट सकने वाला अंतर देखता िै, यि ईश्वर-ननन्दा का आभास देता िै। तकिवादी का पक्ष िै कक यहद ईश्वर ववद्यमान िै तो वि ववश्वातीत या अनतवैजश्वक िै और संसार के मामलों में स्तिक्षेप निीं करता, अवपतु उन्िें एक सुननजश्चत ववधान के तंत्र द्वारा चाशलत िोने देता िै, - वस्तुतः एक प्रकार से वि ववश्व से सुदूरू कोई संवैधाननक राजा या कोई ज़िवत् ्आध्याजममक राजा िै, अधधक-से-अधधक वि प्रकृनत की किया के पीछे रिनेवाला, सांख्यों द्वारा वखणति कोई व्यापक या अमूत िसाक्षी पुरुष के जैसा उदासीन अकता िआमम-तत्त्व िै; वि ववशुद्ध आममा िै और शरीर धारण निीं कर सकता: वि अनन्त िै और सीशमत निीं ंिो सकता जजस प्रकार मनुष्य सीशमत िै, वि धचर अजन्मा सृजृष्टकता ििै और संसार में उमपन्न कोई प्राणी निीं ंिो सकता, – ये बातें उसकी परम् ्ननरपेक्ष सवशिजकतमर्ता के शलए भी असंभव िैं। इन सभी आपवर्त्यों में द्वैतवादी यि भी जोि़ देगा कक ईश्वर अपने व्यजष्टभाव में िैं परंतु उनका काय िया भूशमका तथा उनकी प्रकृनत मनुष्य से शभन्न और प पृथक् िैं; पूण ि(भगवान् ्या पुरुष) मनुष्य की निीं धारण कर सकता: अजन्मा साकार परमेश्वर मनुष्य व्यजकतमव के रूप में निीं ंउमपन्न िो अपूणतिा को को अपने ऊपर सकताः सवलिोकमिेश्वर प्रकृनतबद्ध मानव किया में और एक नाशवान् ्मानव-शरीर में सीशमत निीं िो सकता। प्रतीत िोता िै कक तकि या बुद्धध की प्रथम दृजष्ट के शलए ब़िे ेववकट ये आक्षेप गीता के श्रीगुरु की दृजष्ट के सामने ववद्यमान रिे िोंगे जब वे किते िैं कक, सद्यवप भगवान् ्अपनी आमम-सर्ता में अज िैं, अव्यय िैं, भूतेश िैं, कफर भी वे अपनी प्रकृनत का अधधष्ठान कर के अपनी माया के द्वारा जन्म ग्रिण करते िैं; और वे, जजन्िें मूढ़ व्यजकत मनुष्य-शरीर में जस्थत िोने के कारण नतरस्कार की दृजष्ट से देखते िैं, अपनी परम सर्ता में। सबके स्वामी िैं... और गीता इन सभी ववरोधों को शांत कर पाती िै और इन सभी ववरोधाभासों में समन्वय साधने में समथ ििोती िै, कयोंकक यि अजस्तमव के, ईश्वर के और जगत् ्के ववषय में वेदाजन्तक दृजष्टकोण से आरमभ करती िै। कयोंकक वस्तुओंके वेदाजन्तक दृजष्टकोण से ये सभी बािर से हदखने में घोर आक्षेप आरमभ से िी ननस्सार और ननरथकि िैं। वेदान्त की योजना के शलए वस्तुतः अवतार का ववचार अननवाय िनिीं ंिै, परंतु कफर भी एक सवथिा युजकतसंगत और न्यायसंगत धारणा के रूप में यि ववचार स्वभावतया िी इसमें आ जाता िै।

इसमें श्रीअरववन्द गीता के ि ी उन श्लोकों को लेकर भेद बताते ि ैं जजनमें भगवान् ्सामान्य जीव के जन्म

ग्रिण में और स्वयंअपनेअवतार रूप से जन्म ग्रिण में भेद करते ि ैं। सामान्य सृजृष्ट रचना में भगवान् ्अपने गुणों और स्वभाव के अनुसार प्रकृनत के अधीन ि ो जाते ि ैं और उससे धोरे-धीरे ववकशसत ि ोतेरिते ैं। परंतुजब वे स्वयंअवतार लेते ि ैं तब प्रकृनत का अधधष्ठान कर के आववभूित ि ोते ि ैं। इसमें भगवान् ्किते ि ैं कक प्रकृनत के गुण
और स्वभाव तो वैसे ि ी रिते ि ैं परन्तु उनका उपयोग वे स्वतंत्र रूप से स्वेच्छापूवकि अपनी आवश्यकता के अनुसार और अपनेदृजष्टकोण से करते ि ैं। इसमें वे प्रकृनत के वशीभूत निीं ंि ोते। ऊपरी प्रकृनत में चिो वश्यता हदखाई दे सकती ि ै पर वास्तव में अवतार वशीभूत निीं ि ोते। यि एक ब्रि ि ी सूक्ष्म भेद ि ै। जीव प्रकृनत के वशीभूत ि ोता ि ै जबकक अवतार प्रकृनत के वशीभूत न ि ोकर उस पर अधधजष्ठत ि ोते ि ैं। वे ि में वशीभूत प्रतीत ि ो
सकतेि ैं पर ऐसा तो ऊपरी हदखावा मात्र ि ै, वास्तव में वे वशीभूत निीं अवपतु ्पूणतिः स्वतंत्र ि ोते ैं कयोंकक वे जानते ि ैं कक वे कया कर रिे ि ैं। ि ालाकाँक भगवान् ्की ववभूनत के अंदर उनका ववशेषे प्रकाश ि ोता ि ै, और उसे प्रकृनत के ववधान में स्वतंत्रता भी प्रदान की गई ि ै, पर वि स्वतंत्रता प्रकृनत के ववधान के अंदर ि ी ि ै। और ववभूनत को इस
संबंध में ज्ञान ि ो यि भी आवश्यक निीं ैं। अवतार में अंतर यि ि ै कक वे अपनेस्वरूप के ववषय में सचेतन ि ोते ैं। और वे प्रकृनत को अपने वश में रखकर किया करते ि ैं। प्रकृनत को वे अपनी इच्छा या आवश्यकतानुसार प्रयोग करते ि ैं। उनकी इस किया को ि म चममकार या अन्य कोई भी नाम दे सकते ि ैं। जीव और अवतार में यिी अन्तर ैं। ~~आगे अवतार~~ ववषय पर और अधधक गिराई से चचाि आएगी।

कयोंकक यिाँ सभी कुछ ईश्वर ि ै, आममा या स्वयं-सत् ्अथवा एकमेवाद्ववतीयं ब्रह्म ि ै, - इसके अनतररकत और कोई चीज निीं ै, इससे अलग तथा इससे शभन्न कुछ निीं ंि ै और इसके अनतररकत और कोई चीज ि ो ि ी निीं सकती जो उससे अलग और शभन्न ि ो; प्रकृनत भागवत् ्चेतना की ि ी एक शजकत ि ोने के अनतररकत न कुछ और ि ै न ि ो सकती ि ै; सभी प्राणी एक ि ी भागवत् ्सर्त्ा के आन्तर और बाह्य, आममननष्ठ और वस्तुननष्ठ, जीवरूप और देिरूप के अनतररकत न कुछ ि ैं न ि ो सकते ि ैं, जो कक उसी भागवत् ्चेतना की शजकत से उमपन्न ि ोतेऔर उसी में जस्थत रिते ि ैं। अनंत सर्त्ा सीशमतता धारण करने में असमथ िि ो यि तो दूर रि, अवपतु संपूण ि ब्रह्माण्उिसके अनतररकत और कुछ ि ै ि ी निीं; इस समग्र ववशाल जगत् ्में,
जिा ँि म रिते ि ैं, ि म जजधर दृजष्ट उठाकर देखें, चिो जैसे देखें, उसी को देख सकते ि ैं। आममा का साकार न ि ो सकना अथवा
स्वयं ंको अन्नमय या मनोमय रूप के साथ समबन्ध जोिने और एक पररसीशमत प्रकृनत या शरीर धारण करने से घृणा करना तो दूर रि, यिा ँतो जो कुछ ि ै वि ि ै, जगत् ्का अजस्तमव ि ो उसी के समबन्ध से, उसी के द्वारा पररसीशमत प्रकृनत और शरीर
अजन्मा जन्म ग्रिण कर सकने में असमथ िि ो यि बात तो दूर रिी, यिाँ तो प्रमयेक जीव अपने व्यजष्टभाव में रिते
को धारण ककये जानेके कारण ि ै।
ि ुए भी वि अजन्मा आममा ि ै, वि सनातन अनाहद अनंत ि ै और अपने सारभूत अजस्तमव और अपनी साविभौशमकता में
सभी जीव वि एक अजन्मा आममा ि ैं जजसकी जन्म और मृमयुकेवल आकार-ग्रिण और आकार-पररवतनि रूपी घटनाए ँमात्र ैं। पूण ि द्वारा अपूणति को धारण ककये जाना ि ी इस जगत् ्का संपूण ि गुह्य ववषय ि ै; परंतु यि अपूणति धारण ककए गये मन अथवा शरीर के रूप और कम ि में ि ी प्रकट ि ोती ि ै, यिाँ के बाह्य दृश्य जगत् ्में ि ी रिती ि ै, - जो इसे धारण करता ि ै, उसमें अपने-आप में कोई अपूणति निीं ंि ोती; वैसे ि ी जैसे सूय,ि जो सबको आलोककत करता ि ै, उसमें प्रकाश या दशनि-शजकत का

कोई दोष र्नीं िोता, कमी िोती िै केवल व्यजकतगत दशर्नेजन्रय की क्षमता में। और न िी ऐसा िै कक भगवान् ्ककसी सुदूरू स्वग िमें ववराजे इस जगत् ्पर शासन करतिीं, अवपतु यि शासन वे अंतरंग सवव्यािपकता से करतिें; शजकत की प्रमयेक सीशमत किया अनन्त शजकत की िी किया िोती िै, न कक अपने िी बल पर पररश्रम करती ककसी सीशमत पृथृक् स्वयंभू किया-शजकत की किया: संकल्प और ज्ञान की प्रमयेक सीशमत किया में िम उसे आश्रय प्रदान करती अनंत सवि–संकल्प और सवि–ज्ञान की ककसी किया को खोज सकते िैं।... इसशलए अवतार-तत्त्व की समभावना के ववरुद्ध िमारी तकि-बुद्धध द्वारा प्रस्तुत कोई भी आपवत्याँ शसद्धान्ततः हटक र्नीं ंसकतीं; कयोंकक यि बौद्धधक तकि द्वारा उपजस्थत एक ऐसा व्यथ िका ववभेद िै जजसे संपूण िदृश्य-जगत् ्और जगत् ्की सारी वास्तववकता दोनों िी प्रनतक्षण खंडित और अप्रमाखणत शसद्ध कर रि िैं।

श्रीभगर्ान् ्उर्ाच

बहूतन रे् व्यतीतातन जतर्ातन तर् चाजुनव ।

तातयहं रे्द सर्ाणवि न त्रं् ्रे्त्थ परंतप ।। |4|

५. श्रीभगर्ान् ्ने कहा: हे अजुनव ! रे्रे बहुत से जतर् बीत चुके हैं और तेरे भी बीत चुके हैं; उन सबको र् ैंजानता हूँ ककततु हे परततप, तू ूनहींजानता।

अजोऽवप सतनव्ययात्र्ा भूतानार्ीश्र्रोऽवप सन् ्।

प्रकृततं ंस्र्ार्धधष्ठाय सम्भर्ाम्यात्र्ायया ।। ६।।

६. यद्यवप र् ैंअजतर्ा हूँ, यद्यवप र् ैंअपनी आत्र्-सत्ता र्ें अवर्नािी हूँ, यद्यवप र् ैंसर्स्त भूतों का ईश्र्र हूँ, तथावप र् ैंअपनी प्रकृतत के ऊपर अधधजष्ठत होकर अपनी र्ाया के द्र्ारा जतर् ग्रहि करता हूँ।

अब यि बात ध्यान देनेयोग्य िै कक भाषा के एक िल्के से ककन्तु कफर भी बिे ेमित्त्वपूण िअंतर से गीता, समान िी रीनत से, प्राखणयों के सामान्य जन्म और एक अवतार के रूप में स्वयं**के जतर् ग्रहि र्ें भगर्ान् ्की कक्रया का र्िनव करती है। "अपनी प्रकृतत को र्ि र्ें कर के,** प्रकृनतं ंस्वामवष्टभ्य," यि बाद में किेगी, "म ैंइन प्राखणयों के समिू को जो प्रकृनत के वश में िैं **अर्िंप्रकृतेर्िवात्,** ् उमपन्न करता िूँ, **वर्सृजार्र्।"** और यिा ाँकितिें कक, "अपनी प्रकृनत के ऊपर अधधजष्ठत िोकर म ैंअपनी स्वयंकी माया से जन्म लेता िूँ, **प्रकृततं ंस्र्ार्धधष्ठाय... आत्र्ायया,** म ैंअपने-आपको उमपन्न करता िूँ, **आत्र्ानर् ्सृजार्र्।" अर्ष्टभ्य** शब्द से जो किया अशभप्रेत िै वि एक नीचे की ओर सशकत दबाव िै जजसके द्वारा वशीभूत पदाथ िको उसकी गनत और उसकी किया में वशीकृत (overcome), अनुबाधधत (oppressed), अवरुद्ध (blocked) या पररसीशमत (limited) ककया जाता िै जजसमें वशीभूत व्यजकत या पदाथ िअवश रूप से ननयामक सर्ा (वशी) के वश में िोता िै अवशंवशात्; ् इस किया में प्रकृनत ज़ि-यंत्रवत् ्बन जाती िै और इसके प्राणीसमिू उसकी इस यांत्रत्रकता में बेबस वशीभूत रितिें, न कक स्वयंअपने

कम िके स्वामी िोतिैं। इसके ववपरीत 'अधधष्ठाय' शब्द में जो किया (भाव) ननहित िै वि िै 'के अन्दर जस्थत िोना या ननवास करना', परंतु साथ िी यि 'प्रकृनत के ऊपर और परे जस्थत िोना' भी सूधचत करता िै, अथात्ि्अंतयामिी भगवान्,् अधधष्ठातृ–देवता, द्वारा एक सचेतन ननयंत्रण और शासन, जजसमें पुरुष अज्ञान में प्रकृनत द्वारा वववश रूप से निींचाशलत िोता, अवपतु प्रकृनत पुरुष के प्रकाश और संकल्प से पररपूण िोती िै।...

ix.8

अतः गीता की भाषा स्पष्टतः यि दशातिी िै कक हदव्य जन्म िमारी मानवीयता में चेतन भगवान् ्का जन्म िै और यि मूलतः सामान्य जन्म का ववपरीत िै भले िी (दोनों जस्थनतयों में) जन्मग्रिण में एक िी जैसे साधनों को प्रयोग में लाया जाता िै- कयोंकक यि अज्ञान में जन्म निीं िोता, अवपतु यि सज्ञान जन्म िोता िै, कोई भौनतक घटना निीं ंअवपतु यि आममा का जन्म िै।... सामान्य मानव-जन्म में मानवरूप धारण करनेवाले ववश्वेश्वर का प्रकृनतभाव िी प्रमुख िोता िै; अवतार के मानव-जन्म में उनका ईश्वरभाव प्रमुख िोता िै। एक में ईश्वर मानव-प्रकृनत को अपनी आंशशक सर्त्ा पर अधधकार जमा कर उस पर िावी िोने देते िैं; जबकक दूसूरे में वे अपनी अंशसर्त्ा और उसकी प्रकृनत को अपनेअधधकार में लेकर उस पर हदव्य रूप से शासन करते िैं। गीता िमें बतलाती प्रतीत िोती िै कक साधारण मनुष्य के समान िमववकास के द्वारा या आरोिण के द्वारा, अथवा हदव्य जन्म में ववकास के द्वारा यि (अवतार-तत्त्व) साधधत निीं िोता, अवपतु भगवान् ्द्वारा मानवीयता के उपादान में सीधे अवतरण कर के उसके स्वभाव को धारण करने से िोता िै... अतः अवतार िै हदव्य आममा श्रीकृष्ण द्वारा सर्त्ा की उस हदव्य जस्थनत की मानवता के अन्दर सीधी अशभव्यजकत, जजस जस्थनत तक ऊपर उठनेके शलए मानव-आममा, श्रेष्ठतम मानव प्रनतरूप, ववभूनत रूप अजुनि को श्रीगुरु द्वारा ननमंत्रत ककया जाता िै, और जजस जस्थनत तक वि अपनी सामान्य मानवता की अज्ञानता और सीशमतता को पार कर के िी उठ सकता िै। यि ऊपर से उसी तत्त्व की नीचे आकर अशभव्यजकत िै जजसे िमें नीचे से ऊपर की ओर ववकशसत करना िोगा; यि मानव-सर्त्ा के उस हदव्य जन्म में भगवान् ्का अवतरण िै जजसमें िम ममय िप्राखणयों को आरोिण करना िै; यि मानव-प्राणी के सममुख, मनुष्य के िी आकार और प्रकार के अन्दर तथा मानव जीवन के शसद्ध आदश िप्रमाण के अन्दर, भगवान् ्का एक आकषकि हदव्य उदािरण िै।

इसमें भगवान् ्ने सामान्य मानवों के जन्म और स्वयं अपने जन्म ग्रिण के बीच के भेद को बता हदया ै। सामान्य सृजृष्ट के ननमाणि में भगवान् ्अपनी प्रकृनत के वश में कर के जीवों को उमपन्न करते िैं। परंतु ्स्वयं अपनेजन्म ग्रिण में भगवान् ्प्रकृनत के वश में न िोकर उस पर अधधजष्ठत िोतिुए ननज माया से अपने-आप को उमपन्न करते िैं। इस प्रकार जन्म ग्रिण में भगवान् ्की ननज प्रकृनत या परा प्रकृनत, जो कक स्वयं जगदमबा िैं, के अनतररकत अन्य ककसी का कोई िस्तक्षेप निींिोता। कोई भी मनुष्य, ककतने भी आरोिण से, ककतनी भी साधना से, ककतने भी प्रकाश से उस जस्थनत को प्राप्त निीं कर सकता कयोंकक वि तो अनंत िै जबकक यि तो सीधा अवरोिण िै जो ऊपर से नीचेआ रिा िै। इसशलए यि एक शभन्न प्रकिया िै। इसीशलए श्रीरामकृष्णजी जीव-कोहट और ईश्वर-कोहट के बीच भेद करते थे। वे स्वामी वववेकानन्द को ईश्वर-कोहट बतातेथे। यि एक बिुत ववलक्षण बात िै। और िमारी संस्कृनत में तो सारा भागवत् ्धम िइसी पर आधाररत िै। भागवत् ्इसका और भी ववशशष्ट रूप

से वणनि करती ि ै कक जो सर्त्ा मनुष्य शरीर धारण करती ि ै वि कोई सामान्य सर्त्ा निीीं। जजन परम पुरुष पुरुषोर्त्म से असंख्यों ब्रह्माण्ि् बनते िैं, वे िी स्वयं शरीर धारण करते िैं। यि ब्रिी िी ववलक्षण बात िै। इसशलए इसका कोई ओर-छोर निीं िै। इसीशलए एक भजन में किते िैं कक 'ननराकार ब्रह्म रह्यो गोकुल में खेल, नंद यशोदा के द्वार, कौन पावे याको पार।' इसी प्रकार, जब उद्धव जी गोवपयों को ज्ञान देना चािते थे ेतो गोवपयों ने किा कक 'िमें साधना से, ज्ञान प्राप्त कर के ववष्णु ुका अनुभव प्राप्त करनेसे कया तामपय,ि इस तरीके की बातें आप िमें कयों समझाते िैं, िमारा तो श्रीकृष्ण से सतत् ्िी संपकि िै।' और उस सतत् ्संपकि से व्यजकत की आममा में जो किया िोती िै उसका तो कोई अन्त िी निीीं।

इसी चीज को श्रीअरववन्द ने अपनेआश्रम में व्याविाररक रूप से कियाजन्वत ककया। विााँजब जगदमबा स्वयंसशरीर मौजूद थीं, तो इससे ब्रिी बात कया िो सकती िै। और जब एक बार व्यजकत उनके साथ संपकि में आ जाता िै तब कफर साधना करनेकी बात तो त्रबल्कुल ननरथकि िै। इसकी बजाय कोई भी समझदार व्यजकत यिी चािेगा कक वि श्रीमााँ की ननजी सेवा करने का परम सौभाग्य पा सके, उनका कोई सेवाकाय िकर सके। अन्य कोई चीज से तो उसे कोई सरोकार िी निीं ंिोगा। यिी वास्तववकता िै कक श्रीमााँ के संपकि में आनेमात्र से सब साधना िो जाती िै। परन्तु जो व्यजकत इन सब चीजों को निींसमझ सकता वि तो यिी किेगा कक आश्रम में तो लोगों से साधना करवानी चाहिए जबकक यिा ाँतो कोई कसीदा कर रिा िै, कोई श्रीमााँके शलए सिाी बना रिा िै, कोई अन्य कुछ कर रिा िै। और कफर सभी लोग श्रीमााँ को प्रणाम करनेमें िी बिुत सा समय त्रबताते िैं। यिााँ तो सब लोग इन्िीं कामों में लगे िुए िैं। इन्िें तो साधना से कोई लेना-देना िी निीं लगता। ऐसा व्यजकत इन सब बातों को कैसे समझ सकता िै कक साधना का सार िी इन्िींचीजों को करने ेमें िै। और वास्तव में यि तत्त्व ऐसा िै कक यहद व्यजकत इसे एक बार देख ले तो उसे अनुभव िोगा कक दूसूरी और कोई चीज करने में तो सार िी निीं िै। और जिााँ श्रीमााँ व श्रीअरववन्द स्वयं मौजूद िैं विााँका सारा वातावरण तो हदव्य ऊजासे स्पंहदत िो उठता िै। अन्यथा तो व्यजकत अपने ननजी प्रयास से ब्रिी कहठनाई से साधना करता िै, उसके बल पर उसे कुछ अनुभव प्राप्त िोतेिैं, तब कफर ब्रह्म का अनुभव िोता िै, आहद-आहद। परंतुयिा ाँतो बात िी दूसूरी िै। जैसे कक, उद्धव जी जब गोवपयों को ब्रह्मज्ञान देनेगए तब उनसे शमलने पर उन्िें समझ आ गया कक भगवान् ्ने उन्िें ब्रह्मज्ञान देनेके शलए निीं अवपतु स्वयं यि समझने के शलए उनके पास भेजा िै कक ज्ञान के भ्म की इस मूखतिा से वे कैसे बािर ननकलें। जब उद्धव जी ने गोवपयों को ब्रह्म के धचंतंन आहद का ज्ञान देना चािा तो गोवपयों ने किा 'ऊधो मन न भये दस बीस, एक िुतो सो गयो श्याम संग, कौ अवराधे ईस'। अथात्ि्'िमारे पास तो एक िी मन था और वि तो श्याम के साथ चला गया, इसशलए अब दूसूरा मन िै निीं ंजो तुमिारे ब्रह्म में िम लगा सकें।' उसी प्रकार जो सच्चेभाव से श्रीमााँ की सेवा में आ गया िो उसे यहद किा जाए कक तू भगवान् ्की अनुभूनत या साक्षामकार कर, तो वि यिी किेगा कक उसके पास तो उस सब के शलए फुरसत िी निीीं।

यि कोई अताकककि निींबजल्क बिुत िी व्याविाररक बात िै। यि अवतार तत्त्व बिुत शजकतशाली िै। जब व्यजकत गुरु के रूप में, ववभूनत के रूप में उनकी सेवा करता िै, उनसे संपकि साधता िै, उनकी पूजा करता िै तभी उसका ननस्तारा िो सकता िै, अन्य ककसी साधना से वास्तव में कुछ निीं ंिो सकता। जब गीता में अजुनि ने

भगवान् ्से पूछा कक वि कौन-सा माग िअपनाए तब भगवान् ्ने ब्रिी िी स्पष्टता से कि हदया कक "जो लोग अपनी समस्त इजन्रयों को संयत कर के, सवत्रि समदृजष्ट िोकर अक्षर, अननदेश्य की उपासना करते िैं, वे ेभी मुझे िी प्राप्त िोते िैं परंतु जो लोग अपनेमन को मुझमें प्रनतजष्ठत करते िैं और परम श्रद्धा से युकत, ननरंतर मेरे साथ युकत रिते िुए मेरी उपासना करते िैं, उन्िें मै ंसवाधिधक पूणतिा से योग में युकत मानता िूाँ।" िालाकाँक जो अक्षर ब्रिा की साधना करते िैं वे अपनेलक्ष्य में गलत निीं ंिैं, परन्तु वे एक अधधक कहठन तथा कम पूण िऔर कम शसद्ध माग िका अनुसरण करते िैं।

xii.3-4

इसशलए भगवान् ्की व्यजकतगत उपजस्थनत का ब्रिा भारी मित्त्व िै। गीता का अजुनि को परम् ्वाकय भी यिी िै कक 'ककसी साधना आहद की आवश्यकता निीं ंिै, तू तो बस मेरी शरण में आ जा।' भगवान् ्ने पिले तो अजुनि से किा कक ईश्वर सभी भूतों के हृदय में जस्थत िैं और अपनी माया से यंत्र के रूप में सबको घुमाते िैं, तू उन्िीं की शरण ग्रिण कर जजससे कक तुझे ेपरा शांनत और शाश्वत पद प्राप्त िोगा। परंतु बाद में वे उसे सवगुिह्यतम् ्बात किते िैं कक तू सब कुछ छोड़ कर मेरी शरण में आ जा। इस प्रकार गीता में भी भगवान् ्की व्यजकतगत उपजस्थनत की परम् ्मित्ता पर बल हदया गया िै।

श्रीअरववन्द आश्रम का संपूण िआधार भी यिी िै। इसशलए यहद िम श्रीमााँ के ननशमत्त, उनके प्रनत भावना से काय िकरते िैं तो िमें साधना से कोई ववशेष तामपय िनिीं। साधना तो अिंकारमय िै। साधना में तो व्यजकत को स्वयंके ऊपर केजन्रत िोना पिता िै कयोंकक वि ननजी सामथ्य िके आधार पर सोचता िै कक उसे अमुक प्रयास करने िैं, ध्यान आहद की अमुक कियाएँ करनी िैं। इसीशलए भागवत् ्किती िै कक ब्रह्म की अनुभूनत, मुजकत, ब्रह्म का ज्ञान आहद सब तो साजत्त्वक बातें िैं, परन्तु ्मुकुन्द की सेवा, या िम कि सकते िैं कक श्रीमााँ की सेवा, ननस्त्रैगुण्य िै। साधना आहद के अंदर तो व्यजकत उसी फंदे में पिा रिता िै। फंदे से तो व्यजकत तभी ननकल सकता िै जब भगवान् ्के साथ, उनके व्यजकतमव के साथ उसका भौनतक संसग ििोगा। इसके त्रबना वास्तव में कोई रास्ता निीं ंिै। इस समय को भगवान् ्अनेक बार सामने लाएँगे। गीता का सार भी यिी िै। इसमें जब अजुनि पूछता िै कक 'मुझे ेयि युद्ध कयों करना चाहिए', तब भगवान् ्उसे समझाते िैं कक ऐसा उसे ककसी शसद्धांत के कारण या ककसी मत के कारण, या ककसी ब्रह्मज्ञान के कारण निीं अवपतु इस कारण करना िै कयोंकक ऐसी उनकी इच्छा िै। यिी तो गीता का उत्र्त िै कक यि पररणाम मेरे द्वारा ननयत-ननधारिरत िै, तू ्तो केवल ननशमत्मात्र बन जा।

प्रश्न : कया भगवान् ्श्रीराम को यि पता था कक वे अवतार िैं?

उत्तर : श्रीअरववन्द के अनुसार तो वे जानते थे ेकक वे अवतार िैं परन्तु उन्िोंनेऐसा प्रकट निींककया। प्रकट तो कोई करता भी निीं ंिै। और यि भी आवश्यक निीं िै कक भगवान् ्को कोई गुह्य ज्ञान िो। जब शबरी ने उन्िें बताया कक 'मेरे गुरुजी पिले िी आपके आगमन के बारे में बता गए थे'े, तब भगवान् ्श्रीराम ने ब्रिा आश्चय ि व्यकत ककया कयोंकक उन्िें तो पिले से इस बात का पता िी निीं ंथा। इसशलए, आवश्यक निीं ंिै कक अवतार की

सिती चेतना में उसे इस बात का भान िो। ववशशष्ट व्यजकतमवों को भी जन्म से िी अपनी ववशशष्टता का आभास िी इस बारे में कुछ कि निीं ंजा सकता। श्रीचैतन्य मिाप्रभु का िी उदािरण लें। वे तो जब आवेश आता था तभी अवतार भाव में जाते थे ंअन्यथा वे ंअपनेको एक भकत िी मानतेथे। संन्यास से पूव ितो वे ंअपनेको एक सामान्य पंडित िी मानते थे। गीता की जो पद्धनत िै उसमें तो बात कुछ शभन्न िै। उसके अनुसार तो अवतार अपनी योगमाया से स्वयं िी आववभूति िोतें, उन्िें प्रकृनत के तत्त्वों की आवश्यकता निीं ंिोती। परंतु स्वयं श्रीरामकृष्ण और श्रीअरववन्द को िी लें तो उन्िें इस बात का जरा भी आभास निीं था कक वे अवतार िैं। श्रीअरववन्द तो अपने ववषय में शलखते िैं कक उन्िें आरंभ में भगवान् ्की सत्ता मात्र में कोई ववश्वास निीं ंथा। इस प्रकार उनकी सिती प्रकृनत में तो उन्िें कुछ ववशेषे आभास निीं ंथा पर गिराई में कोई चीज ऐसी थी जो जानती थी। पर यि अंतननिहित चीज जीवन काल में पिले आ सकती िै, और यि बाद में भी आ सकती िै। इसके ववषय में कुछ कि निीं जा सकता। इन चीजों के कोई बाँधे-बाँधाए ननयम निीं ंिैं। पर इतना अवश्य िै कक अपनेभीतर वि जानता िै कक वि कया िै। इसी प्रकार श्रीमाताजी के स्वरूप के ववषय में तो श्रीअरववन्द ने िी स्पष्ट रूप से यि घोषणा की कक वे स्वयंजगदमबा िैं। चूंकक श्रीअरववन्द ने इस ववषय पर इतना कुछ शलखा िै इसशलए िम इस तत्त्व का कुछ अनुमान लगा सकतिैं अन्यथा केवल गीता में आए वणनि से तो अवतार तत्त्व का बिुत सीशमत ज्ञान िी िोता िै। श्रीअरववन्द ने तो श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीचैतन्य, श्रीरामकृष्ण, बुद्ध आहद ववशभन्न अवतारों के संबंध में अपनेपत्रों के माध्यम से अनेक रिस्यों को प्रकट ककया िै। और इस कारण उनकी कृपा से िमें इस तत्त्व के ववषय में कुछ जानकारी प्राप्त िो जाती िै।

यदा यदा दह धर्स्वय ग्लातनभर्वतत भारत ।

अभ्युत्थानर्धर्स्वय तदात्र्ानंसृजाम्यहर् ्।। ७।।

७. हे भारत! जब-जब धर् वक्षी हो जाता है और अधर् वऊपर को उठ जाता है (बढ़ जाता है) तब र् ैंस्र्यंको उत्पतन करता हूाँ।

पररत्रिाय साधूनां ंवर्नार्ाय च दुषुट्कृतार् ्।

धर्संवस्थापनाथायव सम्भर्ामर् युगे युगे ।।८।।

८. सत्पुरुषों के पररत्रा के मलये, दुषुट्कर् वकरनेर्ालों (दुषुट्ों) के वर्नार् के मलये, और धर् वकी स्थापना करने ेके मलये र् ैंयुग-युग र्ें उत्पतन होता हूाँ।

...यिााँिमें बिुत सावधानीपूवकि यि ध्यान देना िोगा कक अवतार का अवतरण – जो कक मानवजानत के अन्दर अशभव्यकत भगवान् ्का परम रिस्य िै – केवल धम िके संस्थापन के शलए िी निीं ंिोता; कयोंकक धमसंस्थािपन अपने-आप में कोई सवथिा पयाप्ति िेतु निीं िै, कोई ऐसा संभव परम् ्लक्ष्य निीं िै जो ईसा या कृष्ण या बुद्ध के आववभावि के शलए पयाप्ति िो, अवपतु धमसंस्थािपन तो ककसी मित्र उद्देश्य तथा एक अधधक परम् ् और हदव्य कायशिसद्धध की एक सामान्य अवस्थामात्र िै। कारण, हदव्य जन्म के दो पिलू िोतिैं; एक िै अवतरण,

मानव जानत में भगवान् ्का जन्मग्रिण, मानव आकृनत और प्रकृनत में भगवान् ्का स्वयं को अशभव्यकत करना, यि सनातन अवतार िै; दूसूरा िै एक आरोिण, भगवर्त्ा में मनुष्य का जन्मग्रिण, हदव्य प्रकृनत और चेतना में उसका उमथान **द्धर्रि्गत:;** यि आममा के द्ववतीय जन्म में सर्त्ा का नवजन्म िै। यि नवजन्म िी िै जजसकी चररताथतिा के शलए अवतार लेना और धमसंस्थिापन करना अशभप्रेेत िोते िैं। गीता के अवतार ववषयक शसद्धांत का यि द्वववववध पिलू प्राय: िी उस सरसरी तौरपर पढ़नेवाले पाठक से छूट जाता िै जो, अधधकांश पाठकों की तरि, इस ग्रंथ की गंभीर शशक्षा के एक सतिी अथ िको ग्रिण करनेभर से िी संतुष्ट िो जाता िै। और साथ िी सांप्रदानयक कठोरता में रूढ़ िुआ औपचाररक भाष्यकार भी इस पिलूसे चूक जाता िै। और कफर भी, ननश्चय िी, इस शसद्धांत के संपूण िआशय को समझने के शलए इसे समझना आवश्यक िै। अन्यथा अवतार का ववचार केवल एक मतववशेषे भर, एक प्रचशलत अंधववश्वास भर रि जाएगा, या कफर ऐनतिाशसक या पौराखणक अनतमानवों का काल्पननक या रिस्यमय तरीके से देवमवारोपण (deification) िोगा, न कक वि िोगा जो गीता अपनी संपूण िशशक्षा को बना देती िै - एक गंभीर दाशननक और धाशमकि समय तथा सभी कुछ के परम् ्रिस्य, 'रिस्यं उर्त्मं', को प्राप्त करने ेका एक आवश्यक अंग या उसकी ओर एक चरण।

यहद मानव का भगवर्त्ा में यि उमथान मानवता के अंदर भगवान् ्के अवतरण के द्वारा सिायता प्राप्त न िो तो केवल धमसंस्थिापन िेतुअवतार ग्रिण एक व्यथ िववषय िोगा कयोंकक केवल धम,ि न्याय या धमाचिरण के मानदणर्ों िको, ककसी अवतार के वास्तववक अवतरण के त्रबना भी, हदव्य सवशिजकतमर्त्ा द्वारा सदा िी अपने सामान्य माध्यमों के द्वारा – मिान् ्व्यजकतयों अथवा मिान् ्गनतयों या आंदोलनों द्वारा, साधु-संतों तथा राजाओंतथा धमगिुरुओं ्के जीवन व कम िके द्वारा भी बनाए रखा जा सकता िै... अवतार-तत्त्व के ववषय में यि दूसूरा और वास्तववक उद्देश्य िी गीता के समग्र प्रनतपादन का सारतत्त्व िै, यि बात इस श्लोक से िी, यहद इसका यथाथ िरूप से ववचार ककया जाए तो, प्रमयक्ष िै। परंतु इसे केवल अपने-आप में (एकांगी रूप से) लेकर िी निीं - जो कक गीता के श्लोकों के साथ व्यविार करने का सदा िी गलत तरीका िोता िै, अवपतु अन्य श्लोकों के साथ उसके सिी घननष्ठ समबन्ध को तथा (गीता की) संपूण िशशक्षा को ध्यान में रखते िुए इस पर ववचार ककया जाए तो यि बात और भी अच्छी तरि स्पष्ट िो जाती िै। िमें गीता के सबमें एक िी आममा के शसद्धांत को, प्रमयेक प्राणी के हृदय-प्रदेश में भगवान् ्के ववराजमान िोने के शसद्धांत को, सृजृष्टकतिा और उनकी सृजृष्ट के बीच समबन्ध के ववषय में इसकी शशक्षा को, इसके द्वारा ववभूनत-तत्त्व के ववचार पर हदये जोरदार आग्रि को ध्यान में रखना िोगा और इन सब को एक साथ ववचारना िोगा। साथ िी उस भाषा पर भी ध्यान देना िोगा जजसमें भगवान् ्स्वयं अपने ननष्काम कमों का हदव्य उदािरण देते िैं, जो मानव श्रीकृष्ण पर उतना िी प्रयुकत िोता िै जजतना सवलिोकमिेश्वर पर... और िमें इन ववचारों के प्रकाश में इस प्रस्तुत संदभ िका अशभप्राय ननकालना िोगा और (वैसे िी) इस उजकत का अथ िननकालना िोगा कक उनके हदव्य जन्म और हदव्य कम िके ववषय में ज्ञान द्वारा मनुष्य भगवान् ्के पास आते िैं और भगवान् ्से पररपूण िोिकर तथा यिा ँतक कक भगवन्मय िोकर तथा उनकी शरण ग्रिण कर के वे उनके स्वभाव और भाव, मद्भावम्,् को प्राप्त िोतिे। कयोंकक, तब िम हदव्य जन्म और उसके िेतु को समझ सकेंगे, ककसी अलग-थलग या एकाकी एवं चममकारपूण िघटना के रूप में निीं,ं अवपतु जगत्–्अशभव्यजकत की संपूण ियोजना में उसके उधचत स्थान के अनुसार समझ सकेंगे; त्रबना इसके िम अवतार के इस हदव्य रिस्य तक

निीं ंपिुाँच सकते, और तब कफर या तो िम इस पर सवथिा संदेि अथवा अववश्वास करेंगे या कफर, िो सकता िै कक, इसे त्रबना समझे िी अंधश्रद्धा के कारण स्वीकार कर लेंगे अथवा इसके बारे में आधुननक मन के उन क्षुर और बिारी ववचारों में जा फाँसगें जजनसे इसका समस्त आंतररक और लाभकारी अथ िनष्ट िो जाता िै।

iv.9-10

प्रश्न : ववभूनत तत्त्व का कया अथ िि?

उत्तर : गीता में ववभूनत योग के बारे में स्पष्ट करते िुए किा गया िै कक जो भी चीज ववशशष्ट िै, जजसमें भगवान् ्का ववशशष्ट प्रकाश िै उसे ववभूनत कितेिं। जैसे कक अजुनि भगवान् ्की ववभूनत था। श्रीकृष्ण स्वयं को भी ववभूनत बताते िैं। ववभूनत और अवतार में अन्तर यि िै कक अवतार को स्वयंके ववषय में पता रिता िै कक वि अवतार िै परन्तु ववभूनत को स्वयं के बारे में पता निीं ंरिता।

प्रश्न : अवतार के प्रमुख किया-कलाप तथा उद्देश्य कया िोते िैं?

उत्तर : गीता के श्लोकों से तो इसका अथ ियि लगता िै कक -

यदा यदा दह धर्स्वय ग्लातनभर्वतत भारत।
अभ्युत्थानर्धर्स्वय तदात्र्ानंसृजाम्यहर्।्

जब-जब धम िक्षीण िो जाता िै और अधम िऊपर को उठ जाता िै (बढ़ जाता िै) तब म ैंस्वयंको उमपन्न करता िूाँ।

पररत्रिााय साधूनां ंवनिार्ाय च दुषुट्कृतार्।्
धर्संवस्थापनाथायव सम्भर्ामर् युगे युगे ।।

साधुओंके पररत्राण के शलए, दुषुटों के ववनाश के शलए और धम िकी स्थापना करने ेके शलए म ैंयुग-युग में जन्म लेता िूाँ।

श्रीअरववन्द का किना िै कक अवतार के जन्म ग्रिण के शलये ये कोई भी पयाप्ति उद्देश्य निीं ंिैं। और यहद िम गीता की शशक्षा को व्यापक रूप में लें तो इसका अधधक गिरा अथ िननकल कर आता िै। ककसी भी धम िकी संस्थापना के शलए, साधु-पुरुषों की रक्षा करनेके शलए या दुषुटों के ववनाश के शलए स्वयंभगवान् ्को आने की आवश्यकता निीिं। कयोंकक ये काय ितो वे अपनी ककसी ववभूनत के द्वारा या पररजस्थनतयों के जिरे भी साधधत करा सकते िैं। इसशलये इनमें से कोई भी प्रयोजन अवतार के आनेके औधचमय को शसद्ध करने ेके शलए पयाप्ति निीं ंिै। कयोंकक इस तरीके से तो यहद पिले ककसी भी व्यजकत ने कोई मिान् ्काम ककया िो तो उसे अवतार बता हदया जाएगा। गीता में इस तरीके की कोई बात निीं ंिै। गीता के अन्दर तो इसका बिुत गिरा और हदव्य रिस्य िै।

इसमें गीता किती ि कक भगवान् ्की अशभव्यजकत जो अवतार के द्वारा िोती ि उसके दो पिलू िैं। एक पिलू यि ि कक भगवान् ्स्वयंधरती पर अवतार लेकर साधारण मानवीय मन, प्राण, शरीर को धारण करते िैं। यि तो भगवान् ्का शाश्वत अवतार ि। दूसूरे पिलू में जब मनुष्य स्वयं ववकशसत िोकर बािरी प्रकृनत की पाश में न रिकर आममा में नवजन्म ग्रिण करता ि, उसे द्ववज किते िैं। और इससे वि भगवान् ्की चेतना के ननकट पिुाँचता ि। श्रीअरववन्द का किना ि कक गीता में मनुष्य का जो दूसूरा जन्म बताया गया ि, जो कक भगवान् ्की ओर आरोिण ि और जो सारी सृजष्ट का उद्देश्य ि, उसमें सिायता करनेके शलए िी अवतार आते िैं कयोंकक भगवान् ्की ओर आरोिण का उद्देश्य अन्य ककसी तरीके से इतनी आसानी से पूरा निीं िो सकता। उस आरोिण के शलए मनुष्य को जीवंत उदािरण की, भगवान् ्के प्रकाश की आवश्यकता िोती ि, तभी वि इसे कर पाता ि। और आवश्यकता की पूनत िके शलए अवतार की अशभव्यजकत िोती ि। श्रीमाताजी ने भी अवतारों के उद्देश्य के ववषय में बताया ि। उसकी चचा बाद में आएगी।

केवल इन दो श्लोकों से यि बात स्पष्टतया सामने निीं आती इसशलए श्रीअरववन्द कि रिे िैं कक केवल सतिी तौर पर पढ़नेसे निींअवपतु गिराई से पढ़नेपर िी यि बात समझ में आ सकती ि।

अवतार तत्त्व का रिस्य बिा िी गिरा ि। जब स्वयंभगवान् ्िी किते िैं कक 'जन्म कम िच मे हदव्यं', मेरे जन्म और कम िहदव्य िैं और जो इस को जान लेता ि वि कफर दुबारा जन्म निीं लेता, तो अवश्य िी यि एक ऐसा ववलक्षण रिस्य िोना चाहिये जजससे जानकर व्यजकत पुनः जन्म निीं लेता, कयोंकक केवल यि जान लेनेभर से कक भगवान् ्श्रीकृष्ण, श्रीराम आहद अवतार िैं, ककसी का कल्याण निीं िो जाता और न िी व्यजकत को मुजकत िी शमल सकती ि। इसशलये ये सारी बातें रिस्यमयी िैं। इस रिस्य को श्रीअरववन्द धीरे-धीरे खोलने का प्रयास कर रिे िैं।

प्रश्न : कया इस बात को साववत्री की इन पंजकतयों के साथ जोिा जा सकता ि कक :

'िम भगवान् ्के पुत्र िैं और अवश्य िी उनके सदृश िोना िोगा: उनके मानवीय अंश िम, िमें हदव्य बनना िै।' (Savitri, p.67)

उत्तर : इस िमववकास को तो श्रीअरववन्द मान िी रिे िैं। परंतु साववत्री में अवतार के अवतरण की बात निीं ि। वि तो िमववकास की बात ि। जब भगवान् ्स्वयंचेतना के अंतवलियन (involution) के द्वारा ये सब ज़िपदाथ िऔर जीव जगत् ्बन गए िैं तो वे यिीनिीरुकेंगे, चेतना के ववकास के द्वारा वे पुनः अपनेननज-स्वरूप की ओर जाएाँगे। परंतु अवतार के आववभावि की बात ववशेषे ि। 'वि' जो एक असीम चेतना ि वि मनुष्य शरीर धारण कर के प्रकट िो जाती ि। रामायण, भागवत् ्आहद िमारे सभी सद्ग्रंथों का यिी किना ि कक अवतार का ववद्यमान िोना तो स्वयं परम् ्पुरुष परमेश्वर का उपजस्थत िोना ि। यि कोई आंशशक या धुधाँली-सी उपजस्थनत निीं ि। यि तो परमोच्च प्रभु की पूण िववद्यमानता ि। तुलसीदास जी भी भगवान् ्श्रीराम को चरम-परम बताते िैं। अवतार भगवान् ्की भौनतक उपजस्थनत, उनकी सशरीर ववद्यमानता ि। श्रीअरववन्द ने भी इसी बात की संपुजष्ट की ि। वे श्रीमाताजी को परम् ्हदव्य जननी जगदमबा बताते िैं। उनके अनुसार, "वे 'एक' जजन्िें िम

श्रीमाताजी के रूप में पूजर्तिं, भागवती धचत्–शजकत िैं जो अखखल अजस्तमव का शासन करती िैं, जो एक िोतिुए भी इतनी बिुमुखी िैं कक उनकी गनत का अनुसरण कर पाना तीव्रतम मन और मुकततम तथा अमयंत ववशाल बुद्धध तक के शलए भी असंभव िै। श्रीमाताजी परमोच्च की चेतना और शजकत िैं और जो कुछ वे सृषूट करती िैं स्वयंउससे बिुत ऊपर िैं।" (CWSA 32, p.2)

यिी भागवत् ्का वचन िै कक परामपर, पुरुषोर्त्म, परमामा, परंब्रह्म, परमेश्वर ने स्वयं मानव शरीर धारण ककया िै। यि तो बिी िी ववलक्षण बात िै जो बुद्धध के शलए समझ पाना बिुत िी भारी िै। जो इस रिस्य को जान लेता िै वि जन्म-मरण के बंधन से मुकत िो जाता िै। िमारे पुराणों में भी इस तरीके के संकेत िैं। यिा ाँभी श्रीअरववन्द इस बात का लगभग समथनि करते प्रतीत िोर्तिं। और इस अवतार तत्त्व से िमववकास में तो सिायता शमलती िी िै। यहद श्रीमाताजी का आववभावि न िुआ िोता तो पृथ्वी पर उनके आगमन से जो इतना मित् ्काय िसंशसद्ध िुआ और जो अब भी िो रिा िै तथा आगे भी िोगा, वि न िो पाता। उनके आगमन से मिान् ् अभ्युदय िुआ, साधना का अमयंत ववशाल माग िउद्घाहटत िुआ। वेकोई दुषुटों का संिारि करने थोिे िी आईं थीं। इस तरीके की तो कोई बात थी िी निीं। इसी प्रकार श्रीरामकृष्ण, श्रीचैतन्य मिाप्रभु आहद सभी ने िमववकास को आगे बढ़ाने में मित् ्योगदान ककया व अब भी अभूतपूव िरूप में कर रिे िैं।

अवतार मानव-प्रकृनत में भागवत् ्प्रकृनत के आववभावि के रूप में आता िै, अपने ईसा, कृष्ण और बुद्ध तत्त्व को प्रकट करने ेके शलए, जजससे कक मानव-प्रकृनत अपनेशसद्धांत, ववचार, अनुभव, कम िऔर सर्त्ा को ईसा, कृष्ण और बुद्ध के भाव में ढालकर स्वयंको भागवत् ्प्रकृनत में रूपांतररत कर4. अवतार-तत्त्व की संभावना सके।... िम कि सकर्तिं कक मानव के रूप में भगवान् ्के प्राकट्य की समभावना को दृष्टांतरूप से सामने रखने के शलए अवतार िोता िै, ताकक मनुष्य देख सके कक यि कया तत्त्व िै और उस तत्त्व के स्वरूप में ववकशसत िोने ेका सािस कर सके। और यि (अवतार ग्रिण) इसशलए भी िोता िै कक इसके बाद इसके आववभावि या प्राकट्य के प्रभाव को पाधथवि-प्रकृनत में स्पंहदत रखा जा सके और पाधथवि-प्रकृनत के ऊध्वमिुख पररश्रम का उस आववभावि के सारतत्त्व द्वारा संचालन ककया जा सके। यि मानव की जजज्ञासुआममा को हदव्य मानवता का आध्याजममक साचाँा प्रदान करनेके शलए िोता िै जजसमें कक वि अपने-आप को ढाल सके। यि जन्म एक धम िप्रदान करने के शलए - केवल कोई संप्रदाय या मतववशेषेमात्र निीं,ं अवपतु आंतर और बाह्य जीवनयापन की प्रणाली प्रदान करने ेके शलए - आमम-संस्कारक माग,ि ननयम और ववधान प्रदान करने के शलए िोता िै जजसके द्वारा मनुष्य हदव्यता की ओर बढ़ सके। चूंकक यि ववकास, यि आरोिण कोई अलग-थलग और वैयजकतक ववषय या किया निीिं, अवपतु भगवान् ्की समस्त जगत्–कियाओंकी भााँनत िी एक सामूहिक किया-व्यापार िै, मानवजानत के शलये ककया गया कम िै, अतः अवतार मानव-यात्रा में सिायता करने ेके शलए, मिान् ्संकट-काल के समय इसे थामे रखने के शलए, अधोगामी शजकतयााँ जब बिुत अधधक बढ़ जायें तो उन्िें नछन्न-शभन्न करने के शलए, मनुष्य के अन्दर जो भगवन्मुखी मिान् ्धम िै उसकी स्थापना या रक्षा करने के शलए, भगवान् ्के साम्राज्य की (कफर चािे वि ककतना िी सुदूर कयों न िो) प्रनतष्ठा के शलए, प्रकाश और पूणतिा के साधकों **(साधूनां)**ं को ववजय हदलाने और जो अशुभ और अंधकार को बनाये रखनेके शलए संघष िकरते िैं उनका ववनाश करनेके शलए िोता िै। अवतार के ये िेतु

सवमिान्य िैं और प्रायः उसके कम िको देख कर िी जनसमुदाय उन्िें ववशशष्ट पुरुष के रूप में जानता और पूजने को तैयार िोता िै। केवल आध्याजममक जन िी िैं जो यि देख पाते िैं कक एक मानव जीवन के प्रतीक के रूप में यि बाह्य अवतारमव उस शाश्वत आंतररक देवमव का धचह्न िै जो उनकी (मनुष्यों की) अपनी मानशसकता और भौनतकता के क्षेत्र में स्वयंको अशभव्यकत करता िै जजससे कक वे उसके साथ अधधकाधधक एकमवमय िो सकें और उसके द्वारा अधधकृत िो जाएँ। बाह्य मानवरूप में ईसा, बुद्ध या कृष्ण का जो हदव्य प्राकट्य िोता िै उसके अंदर आंतररक समय के रूप में ननगूढ़ सनातन अवतार की विी अशभव्यजकत िोती िै, जो िमारी अपनी आंतररक मानवीयता में भी िोती िै। जो कुछ अवतारों के द्वारा इस पृथ्वी के बाह्य मानव-जीवन में ककया गया िै वि समस्त मानव-प्राखणयों के अन्दर दोिराया जा सकता िै।

इसमें अवतार के जन्म ग्रिण के सारे िेतु बता हदए गए िैं। जैसे कक, साधुओंकी रक्षा, अशुभ आहद बाधाओं को दूरू करना, दुष्टों का ववनाश करना और एक ऐसा उदािरण प्रस्तुत करना जजससे मनुष्य प्रेररत िोकर उस रास्ते पर चल सकें। इसमें सबसे मित्त्वपूण िबात यि िै कक जब धरती पर अवतार का आववभािव िोता िै तब उनकी उपजस्थनत धरती के सूक्ष्म वातावरण पर भी इस तरि अपनी छाप छोड़ती िै, मनुष्यों के हृदय और बुद्धध में इतनी जगि बना लेती िै कक उसको उपयोग में लेकर मनुष्य के जीवन में सतत् ्रूप से हदव्य, आध्याजममक प्रभाव प्रवेश कर सकता िै। श्रीराम, श्रीकृष्ण, ईसा और बुद्ध का प्रभाव आज भी पृथ्वी के सूक्ष्म वातावरण में ववद्यमान िै। यहद उनका प्रभाव केवल उनके आववभािव के समय िी िोता और बाद में न रिता तब तो अवतार का आना ननष्फल िी िोता कयोंकक जब वे आववभूित िों तब उस समय ववशेष के शलये तो पृथ्वी का वातावरण प्रभाववत िोगा परंतु उनके नतरोहित िोनेके बाद वि यथावत् ्िी िो जाएगा। इसमें सबसे मित्त्वपूण िबात यि िै कक उनकी भौनतक उपजस्थनत निीं रिने पर भी वे स्वयं सूक्ष्म भौनतक जगत् ्में ववद्यमान रिते िैं। उदािरण के शलए आज के समय में भी श्रीरामजी, श्रीकृष्ण, बुद्ध, ईसा का बिुत भारी प्रभाव िै, जजनसे मनुष्यों को सतत् ्रूप से प्रेरणा शमलती रिती िै और वे भगवान् ्की ओर आकृष्ट िोते करते िैं।

श्रीमाताजी अवतार के बारे में जो बताती िैं वि बात और भी ववलक्षण िै जजसका िमारे पुराणों में भी संकेत शमलता िै, कक जब भगवान् ्का अवतरण िुआ तो उनके संपकि मात्र में आने से गोवपयों का तथा अन्यान्य लोगों का परम् ्कल्याण िो गया। इसशलए भगवान् ्के साथ संपकि िोना िी बिुत बड़ी बात िै। इसके अनतररकत अन्य ककसी चीज की आवश्यकता निीं। िमारे अपने शलये तो यि एक प्रमयक्ष उदािरण िै। श्रीमाताजी के संपकि मात्र में आने से लोगों का सारा जीवन िी बदल गया, जबकक जजसे लोग साधना या योग किते िैं ऐसा तो उन्िोंने कुछ भी निीं ककया था। ऐसे लोग जो कभी भगवान् ्की ओर चल िी निीं सकते थे, े जजनके जीवन में साधना से कोई सरोकार िी निीं था, उन लोगों का भी केवल श्रीमाताजी के संपकि में आने से और उनकी सेवा करनेसे सारा जीवन िी बदल गया। इसशलए उनके संपकि में आने ेऔर उनसे संबंध रखनेका बड़ा भारी मित्त्व िै। आज भी श्रीअरववन्द आश्रम का सारा काम श्रीमाताजी के सूक्ष्म संपकि और उनके प्रनत भजकत से िी चल रिा िै अन्यथा आश्रम की इतनी ववशाल व्यवस्था सुचारू रूप से चल िी निीं ंसकती थी। इसशलए यि तो िमारे सामने प्रमयक्ष उदािरण िै कक अवतार की कया मित्ता िै। उनकी उपजस्थनत सदा बनी रिती िै, संचालन करती िै और जिा ँजजस

व्यजकत में जजस प्रकार की पुकार िोती ि ै, उसमें जजस प्रकार का खुलाव िोता ि ै, जैसा उसका गठन िोता ि ै, उसी प्रकार उसकी सियता करती ि ै। जजतने भी प्रमुख अवतार िुए ि ैं उनकी सूक्ष्म उपजस्थनत मात्र से लाखों-करोड़ों व्यजकत परमामम के रास्ते पर लगे िुए ि ैं। यि एक प्रकार का राजमाग ि ै जजस पर चलकर व्यजकत भगवान् ्तक पिुँचता ि ै।

सबसे ववलक्षण बात यि ि ै जो िमारे पुराण बार-बार में समझाने का प्रयास करते ि ैं कक भगवान् ्के श्रीववग्रि से ककसी भी तरि से संपकि में आ जाना। यहद उनकी उपजस्थनत सूक्ष्म भौनतक जगत् ्में ि ै और वे सशरीर [illegible] चचाओंि

मित्त्वपूण ि ै। इसी प्रकार तीथस्थिलों का भी बिुत भारी मित्त्व ि ै कयोंकक वे बार-बार िमें भगवान् ्के श्रीववग्रि की, उनकी लीलाओं की याद हदलाते ि ैं कक भगवान् ्ने अमुक स्थान पर रास ककया था, अमुक लीला की थी। अमुक स्थान पर भगवान् ्शशव प्रकट िुए, अमुक स्थान पर सती जी ने अपने शरीर को भस्म ककया था। इसी प्रकार सभी शजकतपीठ िमें देवी की लीलाओं-कथाओंका स्मरण करातीं। इससे उनके साथ कुछ-न-कुछ संपकि अवश्य साधधत िो जाता ि ै। इसीशलए िमारी संस्कृनत में तीथस्थिलों को, सभी अनुष्ठानों आहद को इतना अधधक मित्त्व हदया जाता था और पूरा जीवन िी इन अनुष्ठानों आहद से रंग हदया जाता था।

िमारे ऋवषयों को यि गिरा बोध था कक यहद व्यजकत को भगवान् ्के सशरीर ववग्रि के दशनि न भी िो रिे िों तो कम-से-कम उनकी लीला-कथा सुन कर भावामक रूप से उनके साथ जुड़ सकता ि ै। िम उनकी वृंदावन की लीलाएँ सुन सकते ि ैं, माखन चोरी की कथाएँ, शभन्न-शभन्न दुष्टों के संिार की लीलाएँ, गोवधनि पवति को उठाने की कथाएँ सुनकर गद्गद् िो सकते ि ैं। इसीशलए पूरे भारत में सप्ताि श्रवण आहद अनेकों प्रकार के अनुष्ठान आज भी प्रचशलत ि ैं जजसमें लाखों लोग प्रनतहदन कथाओंका श्रवण कर के भगवान् ्के संपकि में आते ि ैं।

जप, तप और ध्यान आहद अभ्यासों को करनेसे तो व्यजकत अिं से भर सकता ि ै परन्तु भगवान् ्की हदव्य कथाओं को सुनने में तो अिं को अपनी तुजष्ट का अवसर िी निीं शमलता। उनकी लीलाएँ सुनने ्में तो केवल आनन्द िी आनन्द ि ै। इसमें अिं के शलए किाँ स्थान ि ै, इसमें तो िमारा हृदय भगवान् ्की ओर खखंचता ि ै और केवल उन्िीं की स्मृनत बनी रिती ि ै। तो इस सब के पीछे यि परम् ्रिस्य ि ै।

इन सभी चीजों के पीछे केवल एक िी उद्देश्य ि ै कक ककसी भी तरीके से भगवान् ्के श्रीववग्रि के साथ जुड़ाव। वि जजस ककसी तरीके से िो, पर मित्त्वपूण िचीज ि ै उनके संपकि में आ जाना। िमारे तंत्रों ने तो भगवान् ्का मूनतकिरण कर हदया। उनकी भावना कर के व्यजकत उनकी सेवा कर सकता ि ै, भोग अवपति कर सकता ि ै। यि तो उनसे संपकि साधने का अमयंत शजकतशाली तरीका ि ै। श्रीअरववन्द आश्रम में भी यिी बात थी कक ककसी भी तरीके से श्रीमाताजी के साथ संपकि में आ जाना। उन्िीं के शलए काम करना, उन्िीं के ननशमत्त् अपनी सारी चेष्टाएँ करना। विाँसाधना का सारा आधार िी यिी था और आज भी यिी ि ै। आश्रम में कोई व्यजकत खेती में व्यस्त ि ै, कोई खाना पकाने में व्यस्त ि ै, कोई पुस्तकें छापने में व्यस्त ि ै तो अन्य कोई ककसी दूसूरे काय िमें व्यस्त ि ै। कुछ को तो ककसी प्रकार के ध्यान या अन्य ककसी प्रकार की ककसी साधना के शलए कोई समय िी निीं।

अवतार-तत्त्व का यिी गिरा औधचमय िै कक जजस भी तरीके से िो भगवान् ्के साथ भौनतक संपकि में आ जाना। िमारा भौनतक रूप से, व्यजकतगत रूप से भगवान् ्के साथ संपकि ब्रिी मित्त्वपूण िचीज िै। जब हदलीप कुमार रॉय ने श्रीअरववन्द को शलखा कक कृष्ण-चेतना तो अवश्य िी ब्रिी मिान् ्चीज िै पर कृष्ण का वास्तव में कया अथ िििै। तो श्रीअरववन्द ने उत्र हदया कक त्रबना कृष्ण के कृष्ण की चेतना कैसे िो सकती िै। भगवान् ्श्रीकृष्ण तो स्वयंसूय िके समान िैं और उनके सामने ब्रह्म, सजच्चदानंद आहद तो ऐसे िैं जैसे कक सूय िका प्रकाश। त्रबना सूय ि के उसका प्रकाश किााँ से आएगा। जो चीज वास्तववक िै और जजससे सारी चीज प्रस्फुहटत िोती िै उसकी उपेक्षा कैसे की जा सकती िै। इसी तत्त्व को सवगुिह्यतम् ्बतातिुए भगवान् ्गीता में अजुनि को किते िैं कक मेरी शरण में आ जा। इसी से भगवान् ्की व्यजकतगत उपजस्थनत का, उनके साथ संपकि का मित्त्व पता चल जाता िै।

... प्रमयेक जीव अपने नव जन्म में एक नवीन मन, प्राण और शरीर तैयार करता िै - अन्यथा जॉन जस्मथ सदा जॉन जस्मथ िी बना रिेगा और उसे कभी पीयूषकांनत घोष बननेका सुयोग निीं प्राप्त िोगा। ननःसन्दिे, भीतर पुराने व्यजकतमव बने रिते िैं जो नये जीवन में अपना योगदान करतिैं- परंतु म ैंनवीन प्रमयक्ष व्यजकतमव को, मन, प्राण और शरीरमय बाह्य मनुष्य को बात कर रि िूाँ। यि चैमय पुरुष िी िै जो एक जन्म से दूसरे जन्म की क्रिी को बनाये रखता िै और उस एक व्यजकत की समस्त अशभव्यजकतयों को संशसद्ध करता िै। इसशलये यि अपेक्षक्षत िी िै कक अवतार प्रमयेक बार एक नया व्यजकतमव ग्रिण कर सकता िै, एक ऐसा व्यजकतमव जो नये समय, काय िऔर पररजस्थनतयों के अनुकूल िो। िालाकाँक वस्तुओंके मेरे अपने दृजष्टकोण के अनुसार इस नये व्यजकतमव के पीछे अवतार के जन्मों की एक श्रृंखला िोती िै, ऐसे जन्म जजनमें मध्यवती ववकासिम का अनुसरण ककया गयािोता िै औरयुगयुगमें सिायता दी गई िोती िै।

-

प्रश्न: कथा आहद में तो िम देखते िैं कक आजकल केवल पैसे का िी लेनदेन िो गया िै, तो इसमें कया कोई सच्चा संपकि िो सकता िै?

उत्तर: अवश्य िी इतने ेसारे लोगों के बीच कुछ ऐसे भी िोते िैं जजन्िें उससे कुछ-न-कुछ भगवान् ्से संपकि साधनेमें सिायता शमलती िै। साथ िी, इस ववषय में िम बिारी रूप से तय निीं कर सकते। िो सकता िै कक सतिी रूप से तो व्यजकत समझ न रिा िो, परंतु चैमय को उसमें रस आ रिा िो। इसशलए ये ब्रिी िी जहटल चीजें िैं जजनके ववषय में कोई सीधा सरल ननष्कष िनिीं ेननकाला जा सकता। अब जैसे गंगा स्नान का अपना मित्त्व िै। भले िम ववश्वास करें या न करें पर जब भी िम उसमें स्नान करते िैं तो अवश्य िी िमारे पाप क्षय िोतिैं और चेतना उद्बुद्ध और ववकशसत िोती िै। यि तो उन लोगों द्वारा प्रमाखणत ककया गया तथ्य िै जो इसमें पिले तो ववश्वास निीं ेकरते थे ेपरंतु जब उन्िोंने स्वयं इसे परखा तब जाकर इसमें ववश्वास करना आरंभ ककया। ये सभी सजीव उपजस्थनतयााँ िैं जजनसे व्यजकत संपकि में आ सकता िै और यहद वि थोिा-बिुत भी आंतररक रूप से ववकशसत िो, तब तो उसे **अवतार जीवन का मुख्य उद्देश्य** िो सकता, परंतु इसकी प्रकिया कया िै? सवप्रिथम, अवतार के ववषय में एक तकिसंगत या संकीण िववचार िै जो इसमें ऐसे नैनतक, बौद्धधक और कियाममक हदव्यतर गुणों की केवल एक असाधारण अशभव्यजकतमात्र देखता िै, जो गुण औसत मानवजानत का अनतिम कर जाते िैं। इस ववचार में कुछ

समय ि◌ै। अवतार साथ–ि◌ी-साथ ववभूनत भी तो ि◌ै।... गीता में भगवान् ◌्किते ि◌ैं, "वृजृष्णयों में म ◌ैंवासुदेव (श्रीकृष्ण) ि◌ूँ, पांिवों में धनञ्जय (अजुनि) ि◌ूँ, मुननयों में व्यास और रष्टा कववयों में उशना कवव ि◌ूँ", प्रमयेक कोहट में सवश्रेि◌ष्ठ, प्रमयेक वग ि◌में मिर्म, अथाित् ◌्ववभूनत उन गुणों और कमों की अमयंत शजकतशाली प्रनतननधध ि◌ोती ि◌ै जजनसे वि वगाविवशेष स्वयंकी ववशशष्ट आममशजकत को प्रकट करता ि◌ै। सर्त्ा की शजकतयों का यि उमकष ि◌भागवत् ◌्प्राकट्य के ि◌म में अमयंत आवश्यक चरण ि◌ै। प्रमयेक मिापुरुष जो ि◌मारे औसत स्तर से ऊपर उठ जाता ि◌ै, वि इसी कारण ि◌मारी सामान्य मानवीयता को ऊपर उठा देता ि◌ै; वि ि◌मारी हदव्य संभावनाओं का एक जीवंत दृढ़ आश्वासन, परमेश्वर का एक वचन, हदव्य ज्योनत की एक प्रभा तथा हदव्य शजकत का एक उच्वास ि◌ोता ि◌ै।

व्यजक्त का जतर् कैसे होता है? अर्तार कैसे जतर् ग्रहि करता है? अवतार का अथ ि◌ै वि जजसमें ववशेष प्रनतभा ि◌ो, ववशेष गुण ि◌ों, ववशेष चीजें ि◌ों। जो ववशेष गुण ववभूनत में ि◌ोते ि◌ैं वे ◌ेअवतार में और भी अधधक ववशेष रूप से ि◌ोते ि◌ैं, कयोंकक अवतार साथ–ि◌ी-साथ ववभूनत भी तो ि◌ै। यि अवतार के ववषय में एक मूलभूत बात ि◌ै। गीता के दृजष्टकोण पर ि◌म बाद में आयगें। यि एक बात ि◌ो गयी। एक दूसूरी बात यिा ◌ँयि आई ि◌ै कक व्यजकत अलग-अलग जन्म कैसे ग्रिण करता ि◌ै? और अवतार तथा व्यजकत के जन्म के बीच कया अंतर ि◌ै? जिाँतक व्यजकत के जन्म की बात ि◌ै, श्रीअरववन्द किते ि◌ैं कक कोई ऐसी गिरी चीज, ि◌मारी चैमय सर्त्ा, ि◌ोती ि◌ै जो ववशभन्न जन्मों की श्रृंखला के अंदर ववकशसत ि◌ोती ि◌ै। उदािरण के शलये व्यजकत एक जन्म में कुछ प्राप्त करता ि◌ै, कुछ गिरे अनुभव अजजति करता ि◌ै, इन सब में जो सच्ची चीज ि◌ोती ि◌ै, वि कुछ ि◌द तक बची रि जाती ि◌ै, शेष बािरी आवरण पंचभूतों में ववलीन ि◌ो जाता ि◌ै। जब ि◌म शरीर छोड़ते ि◌ैं तो साधारणः पिले भौनतक दे छूट जाती ि◌ै, कफर प्राखणक दे, कफर मानशसक दे और तब ि◌मारा चैमय पुरुष चैमय जगत् ◌्में लौट जाता ि◌ै। जन्म के दौरान जो चैमय क्षण मिनेजीये, जजनमें कक चैमय भाग को अनुभव प्राप्त ि◌ुए, वे ◌ेसुरक्षक्षत रि जाते ि◌ैं। जब ि◌म नया जन्म लेते ि◌ैं, तो उस अमुक जन्म में चैमय की अशभव्यजकत ककस प्रकार की ि◌ोनी ि◌ै उसके अनुसार ि◌में नया मन-प्राण-शरीर प्राप्त िोता ि◌ै। इसशलये साधारणतः ि◌में पुरानी कोई स्मृनत निींरिती। और चूंकक ि◌म अधधकांशतः अपनेमन, प्राण और शरीर की चेतना में ि◌ी ननवास करते ि◌ैं इसशलये उनके ववलोप के साथ ि◌ी सब कुछ लुप्त ि◌ो जाता ि◌ै। परंतुजो चैमय क्षण ि◌मनेउस वपछले जन्म में आरक्षक्षत कर शलये थे ◌ेऔर जो उपयोगी थे ◌ेवे वतमान व्यजकतमव में भी मौजूद रिते ि◌ैं और काम कर रि ि◌ोते ि◌ैं। ि◌म यहद उस भाग में जा सकें तो ि◌में वे क्षण और उनके साथ जुड़ी चीजें कुछ याद आ सकती ि◌ैं। ठीक-ठीक घटनाओंकी तो स्मृनत निीं ◌ंपरन्तुव्यजकत को मिसूस ि◌ो जाता ि◌ै कक वे ◌ेऐसे थे, ये ऐसा था। ऐसी कुछ चीजें याद आ सकती ि◌ैं। त्रबल्कुल सभी घटनाएँ भी याद आ सकती ि◌ैं परंतु वि एक अलग चीज ि◌ै। वि स्मृनत तो पृथ्वी की गुह्य-स्मृनत में प्रवेश करनेपर ि◌ी पुनः प्राप्त ि◌ो सकती ि◌ै। परंतुइसकी चचाि ववषयांतर ि◌ोगी।

मिारे पिले के जजतने ◌ेभी जन्म ि◌ैं, उनके व्यजकतमवों में से जो चैमय-तत्त्व आरक्षक्षत रि गये ि◌ैं वे सभी वतमान में कियारत ि◌ैं। इसीशलए अपने वतमान जन्म में ि◌म कभी तो कया कर बैठते ि◌ैं, और कभी कुछ और; कभी ि◌में कोई अप्रमयाशशत अनुभव प्राप्त ि◌ो जाता ि◌ै, कभी कोई ववधचत्र चीज आ उपजस्थत ि◌ोती ि◌ै। इस प्रकार मि केवल इस जन्म से ि◌ी चाशलत निीं ◌ंि◌ैं कयोंकक वे सारे तत्त्व पृष्ठभूशम में काम कर रि ि◌ोतिें और व्यजकत तो

मुखौटा मात्र िी िै। साधारण रूप से यि तो जीवनों की श्रृंखला से िोते िुए एक व्यजकत के चैमय पुरुष के ववकास की बात िो गयी।

अब अवतार के बारे में श्रीअरववन्द का दृजष्टकोण िै कक, "...यि अपेक्षक्षत िी िै कक अवतार प्रमयेक बार एक नया व्यजकतमव ग्रिण कर सकता िै, एक ऐसा व्यजकतमव जो नये समय, काय िऔर पररजस्थनतयों के अनुकूल िो।" अवतार एक नया व्यजकतमव लेगा, उसका पिले का िी व्यजकतमव निीं िोगा, “...िालाँकक वस्तुओंके मेरे अपनेदृजष्टकोण के अनुसार इस नये व्यजकतमव के पीछे अवतार के जन्मों की एक श्रृंखला िोती िै, ऐसे जन्म जजनमें मध्यवती ववकासिम का अनुसरण ककया गया िोता िै और युग-युग में सियता दी गई िोती िै।" जैसा कक श्रीमाताजी एक स्थान पर कुछ यूूँ किती िैं, 'म ैंऔर श्रीअरववन्द सदा िी मौजूद रिे िैं। िर युग में िमने सियता दी िै।' परन्तु वे सदा िी अवतार के रूप में मौजूद निीं ंथे। जन्मों की एक श्रृंखला िोती िै, परन्तु व्यजकत का सभी जन्मों में अवतार िोना आवश्यक निीं ंिै। जिाँ-जिा ँभी उनके िस्तक्षेप की आवश्यकता थी विींश्रीमाँ व श्रीअरववन्द ने सियता प्रदान की थी, िालाकँक अवतार के रूप में निीं। अवतार में तो उन सभी जन्मों की पराकाष्ठा िो जाती िै। उसके पूव िके जो जन्म िोतेिैं उनमें अवतार के गुण निीं ंिोते जैसे कक किा जाता िै कक श्रीमाताजी पूव िजन्म में कैथरीन द ग्रेट थीं, श्रीअरववन्द पूवजिन्म में अगस्तस सीज़ थे। उन जन्मों में वे अवतार रूप में निीं थे। इसशलए पूवजिन्मों की श्रृंखला में समय-समय पर अपना योगदान देनेऔर िमववकास में सियता प्रदान करने ेपर भी आवश्यक निींिैकक उन जन्मों में उनमें अवतार तत्त्व िो। इसशलए अवतार नया व्यजकतमव ग्रिण करते िैं, पिले के व्यजकतमवों को दोिरातेनिीं। िमारे हिन्दु–धम िमें यि मान्यता िै कक श्रीराम िी श्रीकृष्ण के रूप में आये थे। परन्तु िम देख सकते िैं कक उनके गुणों में एक दूसूरे से ककतनी शभन्नता थी, बिारी व्यजकतमव सवथिा शभन्न थे।

वैसे िी भगवान् ्बुद्ध से पिले अनेक बोधधसत्त्व िुए थे। इसमें ववचारनेयोग्य बात यि निीं िै कक भगवान् ्बुद्ध से पिले बोधधसत्त्व िुए थे ेया निीं,ं अवपतु यि िै कक अवतार की जो कथाएँ िैं, जो लीलाएँ िैं, उनके पीछे एक बिा भारी औधचमय िै, उनका मित्त्व िै। जजन लोगों को इन चीजों का थोिा-सा भी आभास िै वे एक ऐसे प्रतीक के रूप में ऐसी चीज प्रकट करना चािते िैं, जो समय िै। चिो वे चीजें भौनतक जगत् ्में उस तरि से घहटत िुई िों या निीं, उसका मित्त्व निीं ंिै कयोंकक अवतार अपनी भौनतक अशभव्यजकत से सीशमत निीं ंिै। उसकी किया तो बिुत ववशाल िै। अन्यथा तो उसका मित्त्व केवल उसके जीवन काल तक िी सीशमत रिता और उससे अधधक उसका कोई प्रभाव निीं ंरिता। एक बार भौनतक जगत् ्से प्रयाण के बाद उसका प्रभाव समाप्त िो जाता। तो अवतार की जो बातें िैं, उनका जो समय िै, उन्िें ऐसे रूपकों में, कथाओं में, प्रतीकों में इस तरि प्रकट ककया जाता िै कक वि मनुष्य की आममा में प्रवेश कर जाता िै और विाँअपना प्रभाव फैलाता िै। मूलतः िमें यि समझना िोगा कक अवतार भगवान् ्का सव्यजकतक या साकार पिलू िै। योगी श्री कृष्णप्रेम पुस्तक में इस ववषय पर श्रीअरववन्द के पत्र िैं। अवतार में जो मित्त्वपूण ितत्त्व िै, वि उनकी शशक्षा, उनके कियाकलाप आहद निीं ंिै, अवपतु वि िै उनके अंदर अशभव्यकत िोता परमाममा का व्यजकतमव, उस व्यजकतमव की सुंदरता, उस व्यजकतमव के ववशभन्न कियाकलाप जजन्िें प्रतीकों में अशभव्यकत तो ककया जा सकता िै परन्तु उनके बारे में कुछ किा निींजा सकता। वे

अवणनीय चीजें िैं। वे प्रतीकों के माध्यम से प्रमयक्ष अथवा अप्रमयक्ष रूप से अशभव्यकत िो जाती िैं। और ये प्रतीक भी इस तरि बनाये जाते िैं जजससे कक मनुष्य अपनेहृदय, प्राण, मन में उन्िें पकड़ सके। अतः अवतार की मित्ता उनकी शशक्षा अथवा उन्िोंनेयहद कोई साधना की िै तो उसमें निीं, उनकी मित्ता तो उनके अंदर के उस परमामम तत्त्व में िै जो उनमें अशभव्यकत िो रिा िै और जो इस भौनतक और सूक्ष्म भौनतक जगत् ्तक पर अपनी इतनी भारी अशमट छाप छोड़ता िै। उनकी शशक्षा तो आखखर में उसी परमामम तत्त्व की ओर चलनेके शलए और उसे अशभव्यकत करने के शलए िोती िै। सारी आध्याजममक शसद्धध, साधना आहद उनकी ओर चलने वाली गनतयााँ मात्र िैं जो वास्तव में तो उन्िें भी प्राप्त निींकरतीं, जबकक स्वयं अवतार में तो परमाममा का व्यजकतमव िोता िै और यिी ववलक्षण चीज िै। इसकी मित्ता की िम कल्पना तक निींकर सकते। हदलीप कुमार रॉय को शलखे अपने पत्र में श्रीअरववन्द शलखते िैं कक, "मुझे ेलगता िै कक आधुननक लोग जो अवतार की जीवन-चररतसंबंधी और ऐनतिाशसक बातों पर अथात्ि्उनके जीवन के बािरी तथ्यों पर, उनके बािरी जीवन की घटनाओं पर जोर देते िैं उनमें एक मौशलक भूल िै। मित्त्वपूण िचीज िै वि आध्याजममक समय, शजकत और प्रभाव जो उनके साथ आते िैं अथवा जजन्िें वे अपनेकम िऔर जीवन के द्वारा नीचेउतार लाते िैं।... उसका आंतररक जीवन िी उसके बािरी जीवन को कुछ मित्त्व प्रदान करता िै। उसका आंतररक जीवन िी उसके बािरी जीवन को शजकत देता िै जो उसमें िो सकती िै और आध्याजममक मनुष्य का आंतररक जीवन एक ववशाल और पूण िवस्तु िोता िै और, कम-से-कम मिान् ्पुरुषों में, अथपूिण िचीजों से इतना अधधक पररपूण,ि इतने घने रूप में भरा िोता िै कक कोई भी जीवनी-लेखक या इनतिास लेखक उन सब को पकड़ पाने और कि पाने की कभी आशा भी निीं कर सकता। उसके बािरी जीवन में जो कुछ मित्त्वपूण िोता िै वि इसशलये िोता िै कक वि उस चीज का प्रतीक िोता िै जजसे उसने स्वयं अपने भीतर उपलब्ध ककया िै और िम और भी आगे बढ़कर कि सकते िैं कक उसका आंतररक जीवन भी उसके पीछे ववद्यमान भगवत्त्त्व की किया की एक अशभव्यजकत, एक जीवंत प्रनतमूनत िके रूप में िी मित्त्वपूण िोता िै। यिी कारण िै कक िमें यि खोज करनेकी आवश्यकता निीं ंिै कक कया श्रीकृष्ण-संबंधी कि‍ाननयााँपृथ्वी पर ककये गये उनके कायों का, चािे जजतना भी अपूण,ि वणनि िै अथवा जो कुछ श्रीकृष्ण मनुष्यों के शलये थे या िैं उसका, तथा श्रीकृष्ण के रूप में अशभव्यकत भगवान् ्का प्रतीकाममक धचत्रण िै।... ईसा और बुद्ध के ववषय में जो कुछ बािरी तथ्य वखणति िैं वे अन्य बिुत से लोगों के जीवन में घहटत तथ्यों से बिुत अधधक निीं िैं - कफर भला वि कौन सी चीज िै जो बुद्ध या ईसा को आध्याजममक जगत् ्में बिुत ऊाँचा स्थान प्रदान करती िै? उन्िें जो यि स्थान शमला उसका कारण यि था कक उनके द्वारा कुछ ऐसी चीज अशभव्यकत िुई जो ककसी भी बािरी घटना या ककसी भी शशक्षा से बिुत अधधक थी।" (योगी श्रीकृष्णप्रेम, पृष्ठ १९१-९२)

इसशलए अवतार का व्यजकतमव ऐसी मित्त्वपूण िचीजों से लबालब िोता िै जजन्िें कदाधचत् ्िी कोई देख सकता िो परंतु कफर भी वे इस पाधथवि प्रकृनत में अशभव्यकत िो जाती िैं। और वे इस तरि से अशभव्यकत िो जाती िैं कक कथा, कि‍ाननयों, रूपकों आहद के माध्यम से जैसे िी िमें उनका संकेत प्राप्त िोता िै वैसे िी उनसे एक संपकि साधधत िो जाता िै। और जरा से समपकि का भी बिुत गिरा प्रभाव िोता िै। यहद िमारा उनके साथ व्यजकतगत संपकि साधधत िो जाएगा, हदल से हदल शमल जाएगा, तब तो उसके प्रभाव का तो किना िी कया िै।

सोधचये कक िमारे पास यहद श्रीमााँव श्रीअरववन्द की केवल शशक्षा िी िोती, या कोई िमें उनकी शशक्षा बता देता या सुना देता परंतु स्वयंश्रीमााँ की जीवंत उपजस्थनत िमारे पास न िोती तब तो सब कुछ वीरान िी िोता। तब कफर िमारे शलए उनकी सारी शशक्षा आहद का ववशेषे कोई अथ िीि निीं रि जाता। उस व्यजकतमव के त्रबना केवल उस शशक्षा का कोई मित्त्व निीं। इस सब का मित्त्व तो केवल इस बात से िै कक स्वयंजगदंबा ने शरीर धारण ककया था, और यि एक ऐसी ववलक्षण बात िै जो िमारी सोच-समझ से सवथिा परे िै। यिी मुख्य चीज िै, यिी बात इस अवतार तत्त्व को धरती के शलये परम मित्त्व की बना देती िै। अवतार तत्त्व के साथ ऐसी चीजें आ जाती िैं जजनकी कोई अशभव्यजकत निीं िो सकती, ककसी भी आध्याजममकता में, कैसे भी बिे े- से - बिे ेअनुभव में उनको पकिा निीं ंजा सकता। कयोंकक िमारी आध्याजममकता आहद से तो परमोच्च सर्त्ा किीं ंपरे िै। वि तो बिुत ऊाँचा स्तर िै। और जब अवतार उस परम के व्यजकतमव को अशभव्यकत कर रिा िो तब कफर उसके संबंध में तो कुछ किा िी कया जा सकता िै। भले िी भगवान् ्वरिा के रूप में िी कयों न िों तो भी उनके सामने अनतमानशसक सर्त्ा की भी कया मिर्त्ा िै। नृशृसंिभगवान् ्ने प्रह्लाद के शसर पर िाथ रख कर किा कक 'बेटा तू तो बिुत पववत्र िै परन्तु अब मेरे स्पश िसे तेरे बचे-खुचे ेखराब संस्कार भी नष्ट िो गये िैं।' तब प्रह्लाद ने पूछा कक उसके वपता हिरण्यकश्यपु के पापों का कया? तब भगवान् ्ने बतलाया कक जब उसे उनके िाथों का स्पश िप्राप्त िो गया िै तब पाप तो बच िी कैसे सकतेिैं। उसका तो परम् ्कल्याण िो िी गया। यि एक प्रतीकाममक कथा के रूप में समझानेका प्रयास िै कक भगवान् ्के कर कमलों का स्पश िप्राप्त िो जानेपर कफर कया बाकी रि गया? िमारी भारतीय पौराखणक परंपरा में भगवान् ्के स्पश िको बिा भारी मित्त्व प्रदान ककया जाता िै। उनके स्पश िमात्र से दुष्ुट से दुष्ुट पावपयों और असुरों का भी तमक्षण कल्याण िो जाता िै। और वास्तव में बात ऐसी िी िै।

यिी श्रीमाताजी ने श्रीअरववन्द के ववषय में किा था कक "ववश्व के इनतिास में श्रीअरववन्द जजस चीज का प्रनतननधधमव करते िैं वि कोई शशक्षा निीं िै, कोई अंत:प्रकटन भी निीं िै, वि तो परमोच्च से आती एक ननणाियक किया िै।"* और वि किया ननष्फल निीं िो सकती। इस बात का िमें अब पूरा आभास और आश्वासन िै कक वे अपनेकाय िको अधूरा निीं ंछोिेंगे अवपतु अवश्य िी उसे उसकी पूणिुनत तक पिुाँचाएाँगे। इस पृथ्वी की लाखों वषों से चली आ रिी जो पीिाएाँ िैं उनका ननणाियक रूप से समाधान ककया जाएगा। इस काय िमें सारे देवता आहद सभी सियोग के शलये तैयार िैं। पर जजतना काय िश्रीमाताजी ने कर शलया उससे आगे बढ़नेपर िी यि संशसद्ध िो सकता िै अन्यथा निीं। और यि काय िस्वयं श्रीमाताजी िी कर सकती िैं, उनके अनतररकत और कौन कर सकता िै? परंतु यि ननजश्चत िै कक वे ेअपनी किया करेंगी और अपनेकाय िको संशसद्ध करेंगी। िालााँकक ककन साधनों से और ककस तरीके से वे ऐसा करेंगी ये सब चीजें तो संकीण िमानवीय बुद्धध की समझ से परे िैं।

शसस्टर ननवेहदता ने एक स्थान पर शलखा िै कक जब शारदा मााँके पास बैठ कर वे ेध्यान कर रिी थींतब एकाएक िी उन्िें अपनी मूखिता का भान िुआ कक जब स्वयंजगदंबा उनके ननकट बैठी िैं तो वे अन्य ककसका ध्यान लगा रिी िैं। उस समय शारदानंद जी और ब्रिमानंद जी िी आश्रम की व्यवस्था समभालनेवाले मुख्य व्यजकतयों में से थे। शारदानंदजी बिे िी समझदार व्यजकत थे। उन्िोंने शारदा मााँकी ड्योढ़ी समभालनेका काय िशलया। वास्तव में करने ेका काम तो केवल यिी िै। भगवान् ्की पादुका साफ करनेसे, उनकी सेवा करनेसे िी व्यजकत का रास्ता

सच्चेरूप में बैठ सकता िै। पर यि बात तो ककसी समझदार व्यजकत को िी समझ में आ सकती िै जैसे कक शारदानंद जी को समझ में आ गई। शारदा माँऔर श्रीरामकृष्ण परमिंस अभी भी ववद्यमान िैं और पूरी तरि सकिय िैं। और श्रीअरववन्द ने किा िै कक श्रीरामकृष्ण परमिंस ने स्वयंसूक्ष्म शरीर में आकर उन्िें योग साधना में दीक्षक्षत ककया था।

* (CWM * 13, 4)

प्रश्न : अवतार जो बिारी यंत्र काम में लेते िैं कया उसका कोई अंश जैसे मन, प्राण अथवा शरीर का कोई भाग आगे भी बचा रिता िै?

उत्तर : उनकी दिे तो धचन्मय िै। उनकी पूरी सत्ता चैमयमय िै

इसशलए वि नाशवान् ्निीं िोती। भौनतक शरीर के अनतररकत अन्य सभी भाग तो रूपांतररत रिते िैं। इसशलये वे नष्ट निीं िोते। इसीशलये वे इस पाधथवि जगत् ्के ननकट रि कर अपनी किया कर सकतेिैं। श्रीअरववन्द तो िमारे इस जगत् ्के त्रबल्कुल ननकट सूक्ष्म भौनतक जगत् ्में िी ववद्यमान िैं। और शारदा माँऔर श्री रामकृष्ण जी भी यिींिैं। श्रीरामकृष्णजी के बारे में तो श्रीअरववन्द ने किा था कक उनमें इतनी पववत्रता थी कक उन्िें तो रूपांतरण की भी आवश्यकता निींथी। िम देख सकतेिैं कक श्री चैतन्य मिाप्रभु का भी जगत् ्में ककतना भारी प्रभाव िै।

प्रश्न : अवतार रूप में जन्म से पूव िअवतारों की पूवजिन्मों में तैयारी िुई िोती िै?

उत्तर : िो सकता िै कक तैयारी िो, और संभव िै कक न भी िो। इसका कोई तय ननयम निीं ्िै। श्रीमाताजी की सत्ता की तो बिुत तैयाररयाँ की गईं थीं। श्रीअरववन्द ने किा कक उनकी िजारों वषों से तैयारी िुई िै। और वे ऐसे ववशेषे तत्त्वों को लेकर आववभूति िुईं थींकक वे जन्म से िी मुकत थीं और मनुष्यता से ऊपर थीं। श्रीमाताजी को सुदीघ िकाल से ववकशसत सत्ता प्राप्त िुई थी अन्यथा यहद बिारी सत्ता की तैयारी में उनका समय लग जाता तब कफर जो ववशेषे काय िपृथ्वी पर उन्िें करना था वि तो उनके शलए संभव िी निीं िो पाता। इन रिस्यों का श्रीअरववन्द व श्रीमाँ ने अपनेपत्रों के माध्यम से उद्घाटन ककया िै जजस कारण इनके ववषय में िमें इतनी जानकारी प्राप्त िो सकी िै।

मिामनस्वी और वीरतापूण िव्यजकतमवों को देवतातुल्य बनाने की स्वाभाववक मानव प्रववृत्त् के मूल में यिी समय िै। यि प्रववृत्त् भारतीय मन की इस आदत से पयाप्ति सुस्पष्टता से सामने आती िै जो सिज िी मिान् ् संत-मिाममाओं, आचायों और पंथ-प्रवतकिों में अंश-अवतार देखती िै, या कफर यि प्रववृत्त् दक्षक्षण के वैष्णवों के इस दृढ़ ववश्वास में अमयंत प्रमयक्ष रूप से प्रकट िोती िै कक उनके कुछ संत भगवान् ्ववष्णु ुके प्रतीकाममक सचेतन आयुधों के अवतार िैं, कयोंकक सचमुच सभी मिान् ्आममाएँ यिी तो िैं- भगवान् ्की सचेतन शजकतयाँ और आयुध, जजन्िें ऊध्वगिामी प्रयाण में और (उसमें प्रस्तुत िोने वाली ववघ्न-बाधाओं से) संग्राम में युद्ध करने के काम में शलया जाता िै। यि भाव जीवन के ववषय में ककसी भी रिस्यवादी या आध्याजममक दृजष्ट के शलए - जो भगवान् ्की

सत्ा और उनकी प्रकृनत तथा मानवसत्ा और उसकी प्रकृनत के बीच अशमट रेखा निीं खींचती सिज और अपररिाय िै, यि मानवता में भगवान् का बोध िै। परन्तु कफर भी ववभूनत अवतार निीं िैं, अन्यथा अजुनि, व्यास, उशना भी सब वैसे िी अवतार िोतेजैसे श्रीकृष्ण थे, चािे उनमें अवतारपन की शजकत इनसे कुछ कम िी िोती। केवल हदव्य गुण का िोना िी पयाप्ति निीं िै; उन परमेश्वर और परमाममा की आंतररक चेतना का िोना भी आवश्यक िै जो अपनी हदव्य उपजस्थनत से मानव-प्रकृनत का संचालन करते िैं। गुणों की शजकत का उन्नयन अशभव्यजकत (भूतग्राम) का िी ix8 अंग िै, सामान्य अशभव्यजकत में यि ऊध्व–आरोिण िै। परंतु अवतार में एक ववशेष अशभव्यजकत िोती िै, यि हदव्य जन्म ऊपर से िोता िै, सनातन ववश्वव्यापक देव व्यजष्टगत मानवता के एक आकार में उतर आते िैं **'आत्ानंसृजाम्यिम्'** और वे प्रच्छन्न रूप से ननज-स्वरूप के ववषय में सचेतन आवरण के पीछे िी निीं िोते, अवपतु बाह्य प्रकृनत में भी उन्िें अपने स्वरूप का ज्ञान रिता िै।

ववभूनत को अपनेववषय में ज्ञान िो यि आवश्यक निीं िै, परन्तु अवतार को अपनेस्वरूप का ज्ञान िोता िै। भगवान् और उनकी जो शजकतयााँ िैं, उनके जो आयुध िैं वे भी अवतार तथा अंशावतार के रूप में आववभूति िोते िैं जिनमें इतनी शजकत िोती िै जो बाधाओं को दूर कर के पाधथवि अशभव्यजकत को आगे बढ़ाती िैं। दक्षक्षण भारत में रामानुजाचायि जी लक्ष्मणजी के तथा यमुनाचायि जी भगवान् के शसंिासन के अवतार मानेजाते िैं। ववशभन्न आळ्वार भगवान् के शंख, चक्र, गदा, खड्ग, आहद के अवतारों के रूप में आववभूति िुए िैं। आण्डाळ को मिालक्ष्मी का अवतार मानते िैं। ऐसे िी ककसी को कौस्तुभ मखण का तो अन्य ककसी को ककसी अन्य आयुध का अवतार माना जाता िै। दक्षक्षण में िी निीं अवपतु संपूणि भारत में िी िम भगवान् के ऐसे ववशशष्ट आववभाविों, ववशशष्ट शजकतयों और ववशशष्ट ववभूनतयों के आववभावि का वणनि पाते िैं। इन लोगों के आववभावि में ऐसी शजकत िोती िै कक ये जीवन को त्रबल्कुल मोड़ कर, उसकी हदशा सवथिा बदल कर चले जाते िैं। अन्यथा तो मनुष्य अपनी िी प्रकृनत से जीवन भर संघषि करता रिता िै और इससे अधधक कुछ कर िी निीं पाता। अतः इन ववभूनतयों आहद के रूप में भगवान् की ववशशष्ट शजकत आववभूति िोती िै, और उस ववशशष्ट शजकत के कारण िी वे पाधथवि प्रकृनत और चेतना पर अपना आधधपमय जमा पाते िैं अन्यथा सामान्य मानव चेतना से तो ऐसा करना संभव िी निीं िै।

िालााँकक ये सब ववशशष्ट अशभव्यजकतयााँ भी आवश्यक रूप से अवतार के लक्षण निीं िैं। अवतार के शलए तो मूलभूत रूप से यि सज्ञानता और चेतना िोनी आवश्यक िै कक वि स्वयंभगवान् िी िै। िालााँकक भगवान् का अंश तो सभी में िोता िै परन्तु अवतार को अपनी बािरी प्रकृनत में भी इस बात का बोध और पूरा ज्ञान िोता िै कक वि स्वयं परमाममा िी िै। भगवान् श्रीराम को भी अपने अवतार िोनेका पूरा ज्ञान था िालााँकक उन्िोंनेकभी ऐसा प्रकट निीं ककया। वाल्मीकक रामायण में भी िमें यि पता चलता िै कक भगवान् श्रीराम अपनेइस तत्त्व को जानते थे। अध्यामम रामायण में तो प्रकट रूप से िै िी कक वे अवतार थे। श्रीकृष्ण ने भी उधचत समय पर िी अजुनि के समक्ष अपना ननज-स्वरूप प्रकट ककया। अतः अवतार का यि एक ववशशष्ट लक्षण िै कक उसे अपने अवतार िोने का आभास आरंभ से िी िोता िै, और धीरे-धीरे यि आभास अधधक स्पष्ट िोता जाता िै और त्रबल्कुल ननजश्चत िो जाता िै। परंतु अपनेववषय में श्रीअरववन्द ने किा कक उन्िें इसका कोई स्पष्ट भान निीं था, बस इतना अवश्य आभास था कक उन्िें इस राष्ट्र के शलए कुछ ववशेष कायि करना िै।

प्रश्न : श्रीअरववन्द को यि अिसास कब िुआ कक वे अवतार िैं?

उत्तर : उन्िोंने कभी ऐसी घोषणा निीं की और न स्वयं को अवतार बताया। परन्तु श्रीमााँ ने श्रीअरववन्द के ववषय में भी अवतार िोने ेकी बात किी थी और स्वयं के ववषय में भी यि किा कक वे स्वयंजगदमबा िैं जो सचेतन रूप से भागवत् ्काय िेतु अवतररत िुईं िैं। श्रीअरववन्द आश्रम पांडिचेरी की िी एक साधधका सिाना देवी अपनी पुस्तक में शलखती िैं कक आश्रम में आने के कुछ मिीनों बाद िी जब उन्िें इस बात को लेकर गिरी बेचैनी िुई कक जजन श्रीकृष्ण के नाम और भजनों को लेकर वे पिले रववत िो जाया करती थींऔर उनके प्रेमाश्रु बिने लगते ेथे वि जस्थनत अब धीरे-धीरे लुप्त िोती जा रिी थी और उनके स्थान पर उनके हृदय में भावनाएाँ श्रीमााँ व श्रीअरववन्द के चारों ओर केंहरत िोती जा रिी थीं। जब वे इस बात को लेकर लंबे समय तक गिरी कशमकश में थींतब एक हदन उन्िें एक गिरा अनुभव िुआ जजसमें श्रीकृष्ण ने आकर उनसे किा कक, "यि उदासी कयों? म ैंश्रीअरववन्द के साथ संयुकत िूाँ।" जब उन्िोंने अपनेइस अनुभव को श्रीअरववन्द को शलखकर बताया और इसका अथ िपूछा तो श्रीअरववन्द ने इस बात की पुजष्ट की कक "श्रीकृष्ण के अनतररकत मेरे साथ और कौन संयुकत िो सकता िै?"*

इसी प्रकार २ माच ि१९३२ को जब एक साधक ने अपनेपत्र में शलखा कक, "अब से पिले तक मनैं ेश्रीकृष्ण के अनतररकत ककसी की भी भगवर्त्ा को स्वीकार निींककया था। मनैं श्रीमााँ को एक गुरु के रूप में देखा िै जो मुझे उन तक ले जा सकती िैं।

At the feet of the Mother and Sri Aurobindo by Sahana, (ed. 1985) p. 230

परंतु अब मेरे अंदर एक ऐसी चीज िै जो श्रीमााँको दृढ़ रूप से भगवत् ्शजकत के रूप में मानना चािती िै। म ैंउन्िें मन से दूरू निीं रख पाता और न िी श्रीकृष्ण को अस्वीकार कर पाता िूाँ। जजतना िी म ैंइस ववषय में सोचता िूाँ उतना िी असमंजस में पड़ता जाता िूाँ। म ैंआपकी सिायता की प्राथनि करता िूाँ।" तो इसके उर्त्र में श्रीअरववन्द ने शलखा कक, "तुमिारे अंदर का यि संघष िसवथिा अनावश्यक िै; कयोंकक दोनों चीजें एक िी िैं और त्रबल्कुल समुधचत रूप से एक-दूसूरे के साथ सुसमंजस िैं। वे िी तुमिें श्रीमााँ के पास लाए िैं और श्रीमााँ की पूजा-भजकत के द्वारा तुम उनका (श्रीकृष्ण का) साक्षामकार कर सकते िो। वे (श्रीकृष्ण) यिााँ आश्रम में िैं और उन्िीं का काय िियि ााँककया जा रिा िै।" (CWSA 32, p.337)

प्रश्न : यों तो श्रीमााँ ने श्रीअरववन्द से २९ माच ि१९१४ को िुई भेंट के बाद िी घोषणा कर दी थी कक "जजन्िें मिनेकल देखा था वे पृथ्वी पर ववद्यमान िैं।" (CWM 13, p.3)

उत्तर : उस समय उन्िोंनेश्रीअरववन्द को अवतार के रूप में घोवषत निींककया था। उन्िोंनेकेवल यिी किा कक उनकी उपजस्थनत से पृथ्वी पर कुछ ननणायिक िोने ेवाला िै।

एक मध्यवती ववचार भी ि◌ै, अवतार के ववषय में एक अधधक रिस्यवारी दृजष्टकोण जजसके अनुसार एक मानव-आममा अपनेअन्दर भगवान् ◌्का आदान कर के यि अवतरण साधधत कराती ि◌ै और तब वि भागवत् ◌् चेतना के अधधकार में ि◌ो जाती ि◌ै अथवा उसका प्रभावशाली प्रनतत्रबंब या माध्यम बन जाती ि◌ै। यि दृजष्टकोण आध्याजममक अनुभव के कुछ ववशशष्ट समयों पर आधश्रत ि◌ै। मनुष्य में हदव्य जन्म, मनुष्य का आरोिण अपने-आप में मानव-चेतना का भागवत् ◌्चेतना में संवद्धिन ि◌ै, और अपनी प्रगाढ़तम पररणनत में पृथक् आममा का उस भागवत् ◌्चेतना में लय ि◌ो जाना ि◌ै.. स्वयं गीता जीव के ब्रह्मभूत ि◌ो जाने और उसी कारण भगवान् ◌्में, श्रीकृष्ण में ननवास करनेकी बात किती ि◌ै, परंतु यि ध्यान में रि कक गीता इस जीव के भगवान या पुरुषोत्तम ि◌ो जानेके बारे में किीं निीं किती। भले ि◌ी, जीव के संबंध में गीता इतना अवश्य किती ि◌ै कक जीव सदा ि◌ी ईश्वर ि◌ै, भगवान् ◌्की अंशसता ि◌ै, **ईंर्ांि:** कयोंकक यि मिानतम शमलन, यि उच्चतम पररणनत भी आरोिण का ि◌ी एक अंग ि◌ै; और यद्यवप यि वि हदव्य जन्म ि◌ै जजस तक प्रमयेक जीव पिुँचता ि◌ै, परंतु यि परमेश्वर का नीचे उतरना निीं ि◌ै, यि अवतार निीं, अवपतु अधधक-से-अधधक, बौद्ध मत के अनुसार इसे ि◌म बुद्धमव की प्राजप्त कि सकतेिैं, यि जीव का अपने वतमिान साधारण लौककक व्यजष्टभाव से जागृत ि◌ोकर अनंत परम्–चेतना को प्राप्त ि◌ोना ि◌ै। इसमें अवतार की आंतररक चेतना अथवा उसकी ववशशष्ट किया ि◌ो यि आवश्यक निीं।

xvi.54

दूसरी ओर, भागवत् ◌्चेतना में इस प्रवेश की प्रनतकियास्वरूप भगवान् ◌्का ि◌मारी सत्ता के मानव-अंगों में प्रवेश या उन अंगों में (सममुख आकर) प्राकट्य ि◌ो सकता ि◌ै और मनुष्य की प्रकृनत, उसके कियाकलाप, उसको मानशसकता और यिा ◌ाँतक कक भौनतकता में भी वे स्वयंको उँड़ेल सकते ि◌ैं; और तब वि कम-से-कम एक आंशशक अवतार ि◌ो सकता ि◌ै...

अब यि एक दूसरी बात ि◌ै। यि आवश्यक निीं ◌ंि◌ै कक जन्म से ि◌ी व्यजकत अवतार रूप में जन्म ग्रिण करे। श्रीअरववन्द के अनुसार यहद ककसी मनुष्य की अन्तराममा बिुत ववकशसत ि◌ो और वि साधना में आरोिण करते ि◌ुए भागवत्–चेतना तक पिुँच जाए और उससे एक ि◌ो जाए तो उसे अवतार निीं ◌ंकिेंगे। कयोंकक वि अवतरण निीं ि◌ोता बजल्क वि तो नीचेसे आरोिण ि◌ी ि◌ोता ि◌ै। उसे कुछ ि◌द तक भगवान् ◌्का अंश कि सकते ि◌ैं 'मम अंश सनातन:। परन्तु ऐसा भी संभव ि◌ै कक उसके एक ननजश्चत ववकास के फलस्वरूप भगवान् ◌्स्वयं उसमें अवतररत ि◌ो जाएँ और उसके कुछ हिस्सों में स्वयं को अशभव्यकत कर दें। इसे आंशशक अवतार किेंगे। यि तो ऊपर से अवतररत ि◌ोती चेतना ि◌ै जो व्यजकत को अधधग्रिीत कर लेती ि◌ै। वि अधधग्रिण ि◌ोने ◌ेपर कम-से-कम आंशशक अवतार तो ि◌ो ि◌ी गया। ऐसा भी ि◌ो सकता ि◌ै कक वि चेतना कुछ समय के शलये अधधग्रिीत कर ले और कफर लौट जाये। श्रीचैतन्य मिाप्रभुके साथ यिी ि◌ोता था। जब उन्िें भगवद् आवेश ने अधधग्रिीत कर शलया तब सात प्रिर तक वे उसी भाव में थे। जब वि भाव शांत ि◌ुआ तब जाकर वे पुन: अपनी सामान्य अवस्था में लौटे। अवतार में गनत ऊपर से नीचे की ओर ि◌ोती ि◌ै, नीचेसे ऊपर की ओर निीं। साधना में आरोिण द्वारा व्यजकत बुद्ध जैसी जस्थनत तो प्राप्त कर सकता ि◌ै, परन्तु ◌ुगीता जजस अवतार की बात करती ि◌ै वि शभन्न ि◌ै। गीता इनमें से ककन्िीं भी ववकल्पों के अंदर निीं ◌ंजाती। वि तो दूसरी ि◌ी बात करती ि◌ै जो बिुत ि◌ी ववलक्षण ि◌ै।

परन्तु यि भी संभव ि कक पुरुषोर्त्म की उच्चतर हदव्य चेतना मनुष्य के अन्दर उर्त्र आये और जीव-चेतना का उसमें लय िो जाए। उनके समकालीन लोग बतलाते िैं कक यिी बात श्रीचैतन्य के समय-समय पर देवभावारूढ़ िोनेमें िुई, जो कक अपनी सामान्य चेतना में भगवान् ्के केवल एक प्रेमी और भकत िोते थे ेऔर स्वयं के सभी प्रकार के दैवीकरण को अस्वीकार करते थे, परंतु वे िी इन ववलक्षण क्षणों में स्वयंभगवान् ्िो जाते थे और भागवत्–्सर्त्ा के उमिते िुए प्रकाश, प्रेम और शजकत से संपन्न िोकर उसी भगवद्भाव में बोलते और कमाचिरण करते थे। इसी को यहद जीवन की सामान्य अवस्था मान लें, अथात्ि्मनुष्य सतत् ्िी अन्य और कुछ न रिकर इस भागवत् ्सर्त्ा और भागवत् ्चेतना का एक पात्र िी बन जाए तो अवतार संबंधी इस मध्यवती ववचार के अनुसार यि एक अवतार िी िोगा। िमारी मानवीय धारणाओं को यि सिज िी संभव प्रतीत िोता िै; कारण, यहद मानव अपनी प्रकृनत को इतना उन्नत कर सके कक उसे भगवान् ्की सर्त्ा के साथ एकमव अनुभव िो और वि स्वयं उस भागवत्–्सर्त्ा की चेतना, प्रकाश, शजकत और प्रेम का मात्र एक विाक बन जाए, और उसका अपना संकल्प और व्यजकतमव भगवान् ्के संकल्प और उनकी सर्त्ा में लय िो जाए और यि एक मानी िुई आध्याजममक जस्थनत िै, - तो इसमें कोई मूलभूत असंभाव्यता निीं िै कक इसकी प्रनतकिया के रूप में वि हदव्य संकल्प, सर्त्ा, शजकत, प्रेम, प्रकाश और चेतना मानव-जीव के संपूण िव्यजकतमव को अधधकृत कर ले। और, यि िमारे मनुष्यमव का एक हदव्य जन्म और हदव्य स्वभाव में कोई आरोिण मात्र िी निींिोगा अवपतुहदव्य पुरुष का मानव में अवतरण, एक अवतार, भी िोगा।

यिा ाँश्री चैतन्य मिाप्रभु का चररत्र बता रिे िैं कक ऐसा निीं लगता कक श्री चैतन्य मिाप्रभु अपने भगवद्-भाव के प्रनत सचेतन निींथे। उस चेतना के चले जाने पर, उस भाव की अशभव्यजकत निीं रिने पर भी उनके अंदर एक चेतना बनी रिती थी जो जानती थी कक वे कौन िैं। उन्िोंने भकतों को भी उनकी अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार उनके आराध्य देव को अपनेअंदर प्रकट ककया। उनमें लोगों को भगवान् ्श्रीराम, श्रीकृष्ण तथा अन्य रूपों के दशनि िुए। इसका अथ िै कक यि तत्त्व उनके अंदर प्रकट था, पर आवश्यक निींकक वे प्रमयक्ष रूप से उसे अशभव्यकत करते। श्रीराम ने भी तो प्रकट निीं ंककया। श्री चैतन्य मिाप्रभु का तो बिुत ववशशष्ट प्राकट्य था जो नछपा निीं रि सकता था। तो यि एक बीच के भाव की तरि िै कक भगवान् ्कभी भी अवतररत िो सकतेिैं। अवतरण कभी भी िो सकता िै। पर गीता इन सब की बात निीं ंकरती, वि ककसी मनुष्य की, जीव की बातें निीं ं करती। यिााँ तो जीव की कोई चचाि िी निीं। भगवान् ्कृष्ण किते िैं कक म ैंऔर मेरी पराप्रकृनत का िी सारा काय ि व्यापार िै।

िालााँकक गीता और भी बिुत आगे ननकल जाती िै। वि स्पष्ट रूप से भगवान् ्के स्वयं जन्म लेने की बात करती िै; श्रीकृष्ण अपने उन बिुत से बीते िुए जन्मों के बारे में किते िैं और अपनी भाषा से यि स्पष्ट कर देते िैं कक वे केवल ग्रिणशील मानव-प्राणी में उतर आने ेकी बात निीं ंकि रिे िैं, अवपतु भगवान् ्के िी बिुत से जन्म ग्रिण करने की बात कि रिे िैं, कयोंकक यिा ाँवे ठीक सृजृष्टकता िकी भाषा में बोल रिे िैं, इसी भाषा का प्रयोग वे ेवािााँ करेंगे जिााँ अपनी जगत्–्सृजृष्ट की बात किेंगे। "यद्यवप म ैंप्राखणयों का अजन्मा ईश्वर िूाँ तो भी म ैंअपनी माया से अपने-आपको सृषूट करता िूाँ" – अपनी प्रकृनत के कायों का अधधष्ठाता िोकर। यिााँईश्वर और मानव-जीव का

अथवा वपता या पुत्र का, हदव्य मनुष्य का कोई प्रश्न िी निीं ंिै, केवल भगवान् ्और उनकी प्रकृनत की बात िै। भगवान् ्ननज-प्रकृनत के द्वारा मानव-आकार और प्रकार में उतरकर जन्म लेते िैं और भले िी वे स्वेच्छा से मनुष्य के आकार, प्रकार और साचेँके अन्दर रिकर कम िकरना स्वीकार करते िैं, तो भी उसके अन्दर भागवत् ् चेतना और भागवत् ्शजकत को ले आते िैं और शरीर के अन्दर प्रकृनत के कमों का ननयमन वे उसकी अंतःजस्थत और ऊध्वि–जस्थत आममा के रूप में करते िैं, **अधधष्ठाय** । ऊपर से वेसदा िी शासन करते िैं, कयोंकक इसी प्रकार वे समस्त प्रकृनत का शासन चलाते िैं, जजसमें मनुष्य-प्रकृनत भी सजममशलत िै; अन्दर से भी वे समस्त प्रकृनत का शासन करते िैं, ककन्तु प्रच्छन्न रितेिुए; अंतर यि िै कक अवतार में वे प्रकट या अशभव्यकत रिते िैं, और यि कक प्रकृनत ईश्वर, अंतयािमी पुरुष, के रूप में भागवत् ्उपजस्थनत के ववषय में सचेतन रिती िै, और यिााँ प्रकृनत का संचालन ऊपर से उनकी गुप्त इच्छा के द्वारा 'स्वग िमें जस्थत वपता के संकल्प के द्वारा' निीं िोता, अवपतु भगवान् ्अपने सवथिा सीधे और प्रकट संकल्प के द्वारा प्रकृनत का संचालन करते िैं। यिा ंाँककसी मानव मध्यस्थ के शलये कोई स्थान निीं ंहदखाई देता; कयोंकक यिा ंाँ'भूतानां ंईश्वर' स्वयंअपनी प्रकृनत, प्रकृनतं ंस्वां, का आश्रय लेकर, न कक ककसी जीव की ववशशष्ट प्रकृनत का आश्रय लेकर, इस प्रकार मानव-जन्म धारण कर लेते िैं।

यि शसद्धांत बिा िी मुजश्कल िै, मनुष्य की तकिबुद्धध के शलए इसे स्वीकार कर लेना कहठन िै; जजसका कारण भी स्पष्ट िै, वि िै प्रमयक्षतः अवतार का मनुष्य-सदृश हदखाई देना। अवतार सदा िी भगवर्त्ा और मनुष्यता का द्वववववध ववषय िोता िै; भगवान् ्मानव प्रकृनत को, उसकी सभी बिारी सीमाओंसहित अपनेऊपर धारण करते िैं और उन सीमाओंको भागवत् ्चेतना और भागवत् ्शजकत की अवस्थाएँ, उसके साधन और उपकरण तथा हदव्य जन्म और हदव्य कम िका एक पात्र बना लेते िैं। परंतु ऐसा िी िोना भी चाहिए; कयोंकक अन्यथा अवतार के अवतरण का उद्देश्य िी पूण िनिीं िोता; कयोंकक वि उद्देश्य यिी हदखलाना िै कक अपनी सभी सीमाओंके रिते भी मानव-जन्म हदव्य जन्म और हदव्य कम िका ऐसा िी एक साधन और उपकरण बनाया जा सकता िै, ठीक यि हदखलानेके शलए कक मूनतमिान या अशभव्यकत चेतना के हदव्य सारतत्त्व के साथ मानव-चेतना का मेल बैठाया जा सकता िै, मानव चेतना को हदव्य चेतना के पात्र में बदला जा सकता िै, और उसके साचेँ को रूपांतररत कर के उसकी प्रकाश, पे्रम, सामथ्य िऔर पववत्रता की शजकतयों को ऊपर उठाकर उसे हदव्य चेतना के घननष्ठ रूप से सदृश बनाया जा सकता िै; और यि हदखानेके शलए भी कक यि कैसे ककया जा सकता िै। यहद अवतार को सवथिा अलौकिक रूप से काय िकरना िोता, तो इससे इस उद्देश्य की पूनत िनिीं ंिोती। एक मिज अलौकिक और चममकारपूण िअवतार तो एक ननरथकि ववसंगनत िोगी; ऐसा निीं ंिै कक अलौकिक शजकतयों के प्रयोग का सवथिा अभाव िो जैसे कक ईसा द्वारा रोधगयों को स्वस्थ कर देनेवाले तथाकधथत चममकार रिे िैं, कयोंकक अलौकिक शजकतयों का प्रयोग मानव-प्रकृनत के शलए बिुत कुछ संभव िै; परन्तु अवतार में इन अलौकिक शजकतयों का लेशमात्र भी िो यि आवश्यक निीं,ं और न िी यि ककसी भी िाल में पूरे ववषय का कोई मूल तत्त्व िी ै, और इससे भी कुछ शसद्ध निीं िोगा यहद अवतार का जीवन और कुछ निीं ंकेवल ववलक्षण आनतशबाजजयों का प्रदशनिमात्र िो। अवतार कोई ऐंरजाशलक जादूगर के रूप में निीं आते, अवपतु ्मनुष्य-जानत के हदव्य नेता और हदव्य मनुष्यमव के प्रनतमान या दृष्टांत के रूप में आते िैं। यिा ंतक कक उन्िेंमानवीय शोक और भौनतक यंत्रणा भी अवश्य िी झेलेनी पिती िैं और उनसे काम लेना पिता िै, ताकक यि हदखला सकें कक, सवप्रिथम, ककस प्रकार

वि शोक और यंत्रणा आममोद्धार का एक साधन िो सकता िै, जैसा कक ईसा ने ककया, और, दूसूरे, यि हदखानेके शलए कक मानव-प्रकृनत में अवतररत हदव्य आममा द्वारा इस शोक और यंत्रणा को स्वीकार कर के उसी प्रकृनत में उसे जीता भी जा सकता िै - जैसा कक बुद्ध ने ककया।

----

* यहद भगवान् ्मूलतः सवशिजकतमान् ्न िोते तो वे किींभी सवशिजकतमान् ्न िोते... चूंकक वे अपने काय िको अवस्थाओंके द्वारा सीशमत या ननधाररत करना पसंद करतिें तो इससे वे कुछ कम सवशिजकतशाली निीं ंबन जाते।े स्वयं ंउनका आमम-सीमन भी सवशिजकतमर्ता का िी एक कृमय िै....

भला भगवान् ्को अपनी सभी कियाओं ंमें सफल िोने के शलये िी कयों बधेँ रिना चाहिये? यहद ववफलता उन्िें अधधक अनुकूल प्रिती िो और उनके अंनतम िेतु को शसद्ध करने में अधधक सिायक िोती िो तो? भगवान् ्के ववषय में कैसे सख्त अशशष्ट ववचार िैं ये! लीला के शलये कुछ ववशशष्ट शत ेंननधाररत की गई िैं और जबतक वे अवस्थाएँ अपररवनतति बनी रिती िैं, कुछ चीजें निीं की जा सकतीं,ं इसशलए िम किते िैं कक वे असंभव िैं, निीं ंकी जा सकतीं। यहद अवस्थाओं ंको बदल हदया जाए तो वे िी (असंभव प्रतीत िोने वाली) चीजें की जाती िैं या कम-से-कम करनेयोग्य बन जाती िैं - प्रकृनत के तथाकधथत ननयमों के अनुसार न्यायसंगत, स्वीकाय िबन जाती िैं और तब िम किते िैं कक वे की जा सकती िैं। भगवान् ्भी लीला की शतों के अनुसार काय िकरतिें। वे उन्िें बदल सकते िैं, परंतु पिले उन्िें उन शतों या ननयमों को बदलना िोता िै, न कक उन ननयमों को बनाये रखतिेुए िी चममकारों की एक श्रृंखला के द्वारा काय िकरने में प्रवृत्त् िो जाते िैं।

एक अवतार या ववभूनत को उतना ज्ञान िोता िै जजतना उनके काय िके शलए आवश्यक िो, उससे अधधक िोना उनके शलए आवश्यक निीं। इस बात का सवथिा कोई कारण निीं कक बुद्ध को यि कयों जानना चाहिए कक रोम में कया चल रिा िै। यिाँ तक कक एक अवतार भगवान् ्की संपूण िसवज्ञिता तथा सवशिजकतमर्ता भी अशभव्यकत निीं करता; वि ऐसे कोई अनावश्यक प्रदशनि के शलए निीं आता; यि सब उसको चेतना में ननहित अवश्य िोता िै परंतु उसकी चेतना के अग्रभाग में निीं िोता। जिा ंाँतक ववभूनत की बात िै, उसेतो संभवतः यि भी पता न िो कक वि भगवान् ्की एक शजकत िै।

जतर् कर् वच रे् ददव्यरेर्ं यो रे्वत्त तत्त्तः ।

त्यक्त्ा देहं पुनजतवर् नैतत रा्रे्तत सोऽजुनव ।। ९।।

९. हे अजुनव ! जो र्नुष्य रे्रे इस प्रकार के ददव्य जतर् और कर् वको यथाथ वरूप रे्ं जानता है र्ह र्नुष्य देह पररत्याग करनेपर दूसूरी बार जतर् को नहींप्राप्त होता अवपतु ुरु्झे ेप्राप्त होता है।

जजस कम िके शलए अवतार अवतररत िोता ि ै उसका भी उसके जन्म की िी भानाँत द्वववववध भाव और द्वववववध रूप िोता िै। किया और प्रनतकिया के जजस ववधान के द्वारा, उमथान और पतनरूपी जजस व्यवस्था के द्वारा प्रकृनत अग्रसर िोती िै, उस ववधान और व्यवस्था के िोतेिुए भी हदव्य ववधान की रक्षा और पुनगठिन के शलए इस बाह्य जगत् ्पर भागवत् ्शजकत की जो किया िोती िै, विी हदव्य कम िका बाह्य पिलू िै, और इस हदव्य ववधान द्वारा िो मानव जानत के भगवन्मुख प्रयास की ककसी भयंकर प्रमयावतनि से रक्षा की जाती िै, अवपतु उसकी अपेक्षा उसे ननणायिक रूप से आगे की ओर ले जाया जाता िै। इसका एक आंतररक पिलू ि ै जजसमें भगवन्मुख चेतना की हदव्य शजकत व्यजकत और जानत की आममा पर किया करती ि ै ताकक वि मानवरूप में अवतररत भगवान् ्के प्रकटन के नवीन रूपों को ग्रिण कर सके और अपनेऊध्वमिुखी आमम-ववकास या आममोद्घाटन की शजकत को बनाये रख सके, उसमें एक नवजीवन ला सके और उसे समृद्ृध कर सके। अवतार मात्र ककसी मिान् ्बाह्य कम िके शलए अवतररत निीं ंिोता, जैसा कक मनुष्य की कमि–प्रवण बुद्धध प्रायः िी मानने को उद्यत रिती िै।...

जजस संकटकाल में अवतार का आववभावि िोता िै, जो यद्यवप बहिमुखिी दृजष्ट को मिज घटनाओं और भीषण भौनतक पररवतनिों के संकट के रूप में गोचर िोता िै, परंतु वि सदा िी अपनेमूलस्रोत और यथाथ िअथ िमें मानवजानत की चेतना के ऐसे दौर में उपजस्थत िुआ एक संकटकाल िोता ि ै जब उसे ककसी अनतववशाल रूपांतर से गुजरना िोता ि ै और कोई नवीन ववकास चररताथ िकरना िोता िै। इस पररवतनि की किया के शलये ककसी हदव्य शजकत की आवश्यकता िोती िै; परन्तु वि शजकत जजस चेतना को धारण करती ि ै सदा उसके बल के अनुरूप ननधारिरत िोती िै; इसीशलए मानवजानत के मन और अंतराममा में भागवत् ्चेतना के आववभावि की आवश्यकता िोती िै। अवश्य िी, जिााँपररवतनि मुख्यतः बौद्धधक और व्याविाररक िो, विााँ अवतार के िस्तक्षेप की आवश्यकता निींिोती; मानव-चेतना का एक मित् ्उमथान िोता िै, शजकत की एक मिान् ्अशभव्यजकत िोती

----

* जो स्वगों को इस धरा पर लाएगा, उसे स्वयं ंउतरना िोगा पंक भीतर और िोगा झेलना पाधथवि प्रकृनत के बोझ को, और चलना िोगा कष्टपूण िपथ ऊपर ।। अपने देवमव को दबाकर, आया म,ैं नीचे इस पनतत घरा ऊपर

अज्ञानमय, श्रमरत, मानव बना, मृमृयु व जन्म के द्वारों के मध्य िोकर।। खोद रिा म ैंलंबी-गिरी, मशलनता और दलदल के भीतर

स्वखणमि सररता के गान को एक निर, अमर ज्वाला िेतु एक घर ।।

ज़िता की रात्रत्र में मनैं श्रम ककया िै, दुःख सिा िै, लाने को अजग्न मनुष्य के पास पर नरक की घृणा और मानव ववद्वेष, जगत् ्के आरंभ से रिे मेरे पुरस्कार।।

...खुले पड़े ेमेरे घाव सिस्र, और असुर राजा करते ेवार पर रुक न सकता म ैंपररणनत तक, जबतक न िो जाता शाश्वत संकल्प साकार।।

एक िताश पथ पर पड़े िैं मेरे चरण, ननःसीम शांनत से ढके िुए देव वैभव की अजग्नयों को, जो ले आते ेमानव रसातल में ।।
-भगवान् ्का श्रम

*** पीछे पररमिष्ट देखें**

ैं जिजसके फलस्वरूप कुछ समय के शलए मनुष्य अपनी साधारण अवस्था से ऊपर उठ जाते िैं, और चेतना और शजकत की यि तरंग ककन्िीं िंअसाधारण व्यजकतयों, ववभूनतयों, में अपना चरम उमकष िपाती िै जजनकी किया द्वारा सामान्य मानव जानत के कम िका नेतृमृव ककया जाना िी अभीष्ट पररवतनि के शलये पयाप्ति िोता िै। यूरोप में पुनननमिाणि और फ्ांसीसी िांनत इसी प्रकार के संकटकाल थे.े.. परंतु जब ककसी संकट के मूल में कोई आध्याजममक बीज या िेतु ननहित िोता िै तब भागवत्–्चेतना के प्रवतकि या नेता के रूप में एक मानव-मन और आममा में देव-चेतना का एक पूण िया आंशशक प्रादुभुावि िोता िै। यिी अवतार िै..."

अवतार के आनेका मुख्य कारण िै कक समय-समय पर मनुष्य अपनी सीमाओंमें बंध जाते िैं और उन्िीं घेरों में चककर काटते रिते िैं और भगवान् ्की उर्त्रोर्त्र िोती आमम-अशभव्यजकत को आसानी से अशभव्यकत निीं ं कर पाते, इसशलए अवतार अपनी उपजस्थनत की शजकत द्वारा पूरे समीकरण में अंतर ले आते िैं और मनुष्य को इन सीमाओं से ननकालने में सियता करते िैं ताकक वे उर्त्रोर्त्र िोती आमम-अशभव्यजकत में आगे बढ़ सकें। उदािरण के शलए जब भगवान् ्श्रीराम का प्रादुभुावि िुआ उस समय बिुत अराजकता फैली िुई थी। धम िका पालन भी समुधचत रूप से निीं िो रिा था। ऐसे में भगवान् ्ने अवतार लेकर यि स्थावपत ककया कक यि अराजकता उधचत निीं ंिै। इसकी बजाय नैनतकता के ववधान का पृथ्वी पर राज्य िोना चाहिये कयोंकक प्राण की अराजकता भगवान् ् की अशभव्यजकत में बाधक िै। उन्िोंने लक्ष्मणजी, भरतजी, सीताजी आहद के आदश िको सबके सममुख प्रस्तुत ककया ताकक मनुष्य उनसे प्रेरणा लेकर केवल घोर स्वाथ िमें िी न िूबे रिें बजल्क आपसी प्रेम और समपणि का भाव अपना सकें और पृथ्वी पर धम िके अनुसार जीवन यापन कर सकें।

परन्तु ये सब चीजें भगवान् ्की अशभव्यजकत की कोई चरम चीजें निीं ंिैं। इसशलए उनके बाद श्रीकृष्ण आए और उन्िोंने नैनतक आदशों के उस पूरे दायरे को तोड़ हदया और कयोंकक वे तो हदव्य िैं और उनकी लीलाएँ हदव्य िैं इसशलए उन्िें मानशसक आदशों से बाँधने ेकी आवश्यकता निीं। उन्िोंने भगवान् ्और उनके अंतरंग लोगों के बीच प्रेम-संबंध को स्थावपत ककया। इसमें मानवीय आदशों का और उसकी नैनतकता का कोई ववषय िी निीं ंिै। आदश िआहद सब चीजें तो अपनेस्थान पर सिी िैं परन्तु प्रेम का यि ववधान उससे भी अधधक उच्च तत्त्व िै। इसीशलए भागवत् ्धम,ि वृन्दावन का धम ितो अयोध्या के धम िसे मेल निीं ंखाता। ऐसा निीं ंिै कक वृंदावन की अशभव्यजकत के समय अयोध्या के समय के वे सब तत्त्व ववलुप्त िो गए िों बजल्क उनमें एक नया तत्त्व और जुड़ गया और मनुष्य के शलए एक नया आयाम और खोल हदया गया।

----

* मोटे तौर पर किें तो, अवतार वि िै जो अपने अंदर जन्म ग्रिण ककये िुए या अपने अंदर अवतररत िुए तथा भीतर से अपने संकल्प, जीवन और कम िको संचांशलत करतेिुए भगवान् ्की उपजस्थनत और शजकत के ववषय में सचेतन िोता िै, वि अपने
भीतर इस भागवत् ्उपजस्थनत और शजकत के साथ तादाममय अनुभव करता िै। ववभूनत के ववषय में यि माना जाता िै कक वि
भगवान् ्की ककसी शजकत को अशभव्यकत करता िै और उसके द्वारा जगत् ्में प्रचण्ड शजकत-प्रभाव के साथ काय िकरने में समथ ििोता िै; पर इतना िी उसे ववभूनत बनानेके शलये आवश्यक िोता िैः उसको शजकत अमयधधक मिान् ्िो सकती िै, पर
उसमें एक सिज या अंतःस्थ देवमव की चेतना निीं िोती। यिी भेद िम गीता से प्राप्त कर सकते िैं जो कक इस ववषय पर प्रमुख प्रामाखणक ग्रंथ िै। यहद िम इस भेद को स्वीकार करें तो िम दृढ़तापूवकि यि कि सकते िैं कक उनका जो कुछ वणनि मिें
प्राप्त िै उसके आधार पर राम और कृष्ण को अवतार माना जा सकता िै। बुद्ध भी वैसे िी प्रतीत िोते िैं यद्यवप उनके अंदर शजकत की किीं ंअधधक ननव्यजिकतक चेतना िी ववद्यमान थी। रामकृष्ण ने भी उसी चेतना को अशभव्यजकत दी थी जब उन्िोंने
स्वयं ंअपनेअंदर उसी 'हदव्य पुरुष' की ववद्यमानता के बारे में किा जो 'हदव्य पुरुष' राम और कृष्ण बना था। परंतु चैतन्य का प्रकरण तो ववलक्षण िै; कयोंकक उपलब्ध वणनिों के अनुसार वे साधारणतया अपने को कृष्ण का एक भकत अनुभव करते और यिी बताते थे, उससे अधधक कुछ निीं, परंतु मिान् ्क्षणों में वे कृष्ण को अशभव्यकत करतेथे, अपने मन और शरीर में ज्योनतमयि िो उठते थे तथा स्वयं ्कृष्ण बन जातेथे, भगवान् ्की तरि िी बोलते और काय िकरते ्थे। उनके समसामनयक लोगों ने उनके अंदर कृष्ण के अवतार को, भागवत् ्प्रेम की अशभव्यजकत को अनुभव ककया।

शंकर और वववेकानंद, ननश्चय िी केवल ववभूनत िी थे; उन्हें इससे अधधक कुछ निीं माना जा सकता, यद्यवप ववभूनतयोंकेरूप में वे बितमिान्थे।

अब िमारे समय में श्रीमाँ व श्रीअरववन्द आए िैं और उन्िोंने एक और भी मित ्आयाम जो हदया िै कक भगवान् ्की लीला केवल मानशसक चेतना में िी अनुभव निींकी जा सकती अवपतु मानशसक चेतना से ऊपर की चेतना में भी मनुष्य जा सकता िै और मृमयु और अज्ञान को समाप्त कर सकता िै। ऐसा निीं िै कक भगवान् ् श्रीराम और श्रीकृष्ण इस आयाम को निीं ंखोल सकतेथे। परंतु यि इस पर ननभरि करता िै कक मनुष्य का तामकाशलक ववकास ककस स्तर तक का िै उसी के अनुसार उसके समक्ष कोई नया आयाम या उसकी प्रगनत में एक नया अध्याय जोड़ा जाता िै। इसशलए श्रीराम एक पिलूको सामने लाए, श्रीकृष्ण दूसरे पिलू ूको सामने लाए और श्रीअरववन्द व श्रीमाँ ने इस ववकासिम में अनतमानस के तत्त्व को जोड़ हदया। श्रीमाताजी के अनुसार अनतमानशसक चेतना के आनेके बाद कफर शायद अवतारों की आवश्यकता निीं ंरिेगी। अतः इस पूरी अवतार श्रृंखला से यि तो स्पष्ट िै कक ककस प्रकार इन्िोंनेववकास के अंदर सदा िी नए आयाम जोड़े िैं। ये नये आयाम ककसी मिापुरुष या मिानायक के आने से निीं ंजुड़ सकते। शजकत-सामथ्य ितो बिुतों में िो सकती िै परंतु ुजो काय ि श्रीकृष्ण ने ककया वि तो कोई सोच भी निींसकता भले वि ककतना भी सामथ्यिवान कयों न िो। यि तो केवल भगवान् ्का व्यजकतमव िी िै जो इन नए तत्त्वों को अशभव्यजकत में ला सकता िै। यहद श्रीअरववन्द मौजूद निीं ंिोते े तो कोरे शसद्धान्तों से अनतमानशसक चेतना को तथा पाधथवि प्रकृनत में िुए मित् ्पररवतनि को निीं ंलाया जा सकता था। कोरी दाशननिक बातों से यि निीं ंिो सकता। इसीशलए श्रीअरववन्द ने स्वयंप्रकट िोकर अपनी उपजस्थनत से इस काम को ककया और दूसरों को इसकी ओर जानेका माग िहदखाया। साथ िी धरती पर एक ऐसी

हदव्य चीज को प्रकट ककया और उसे मनुष्यजानत की आममा में स्थावपत कर हदया जजसकी कक कल्पना तक निीं की जा सकती।

इस तरि यि स्पष्ट िै कक अवतार पृथ्वी पर उत्तरोत्तर प्रगनतशील अशभव्यजकत में नवीन तत्त्व जोड़ते िैं। श्रीकृष्ण ने उस समय मनुष्य की आममा में जो चीज स्थावपत की वि ककतने वर्षों बाद जाकर भागवत् ्धम िके रूप में ववकशसत िुई। वैसे िी श्रीअरववन्द ने तो इस नवीन तत्त्व को मानवजानत की आममा में अभी िाल में िी रखा िै। जब यि अपने पूण िप्रकाश में आएगा तभी िम इसके वास्तववक मित्त्व को समझ पाएँगे। परन्तु अवश्य िी ये चीजें मानवजानत की आममा में स्थावपत कर दी गई िैं और इनका प्रभाव और किया अमोघ िै, वि रुक निीं सकती, इसशलए ननजश्चत रूप से इसकी अशभव्यजकत िोगी। चूंकक भगवान् ्के द्वारा िी यि नवीन अशभव्यजकत अशभप्रेरेत थी इसशलए इसे कोई निींरोक सकता।

यहद इस तरीके से िम देखेंगे तो िमें लगेगा कक भगवान् ्तो अनंत िैं, असीम िैं। इसीशलए अवतार शरीर धारण कर के वे िमें उन अनंत की झलक प्रदान करते िैं ताकक िम चेतना के जजन ककन्िीं स्तरों पर फँस जाते िैं, रूढ़ िो जाते िैं विाँसे अपनी यात्रा को आगे की ओर ले जा सकें। चेतना के ककसी स्तर पर फँस जाने को िी चेतना की संकटावस्था कित्ते िैं। मनुष्य चेतना के अमुक स्तर पर बंध जाता िै, उसके आगे की सोच निीं सकता, समझ निीं ंसकता और अपने-आप को ननस्सिाय अनुभव करता िै। सभी पुराणों की रचना के बाद भी जब वेदव्यास जी को असंतोष िो रिा था तब उन्िें यि पता चला कक वास्तववक चीज तो अभी करनी बाकी िी िै। यहद श्रीकृष्ण की लीला को केंर में रखकर कोई कृनत की जाएगी तब यि नई संभावना जन्म लेगी कक ककस प्रकार मनुष्य अपने हदल से भगवान् ्की ओर जा सकता िै, ककस प्रकार व्यजकत सारे ववधानों से और सारे साधनों के ननयमों से ऊपर उठकर सीधे और शजकतशाली तरीके से आगे जा सकता िै, और तभी उन्िें सच्ची संतुजष्ट प्राप्त िो सकती िै। और इसके आगे कफर श्रीराधा शजकत का ननरूपण िोना तो मनुष्यजानत की आममा के शलए बिुत शजकतशाली चीजें प्रकट करना था। मनुष्य के अन्दर परमाममा की अनन्त भववतव्यताएँ िैं। और समय-समय पर अवतार इन भववतव्यताओं को उद्घाहटत करने ेके शलए तथा आगे का माग िहदखाने के शलए आते रिते िैं। अवतार को िम इस दृजष्टकोण से देख सकते िैं। और उनके काम को पूरा करने ेके शलए जजतने ज्ञान और शजकत की उन्िें आवश्यकता िै वे उतनी िी शजकत-सामथ्य िधारण करते िैं, उससे कम या अधधक निीं। भगवान् ्को अपनी शजकत-सामथ्य िका अनावश्यक प्रदशनि निींकरना िोता। सवशिजकतमान् ्िोते िुए भी उन्िें मनुष्य को ऐसा दशानिेकी कोई आवश्यकता निीं। यहद िम समझ सकें तो, अपने-आप को सीशमत कर लेना उनकी सवशिजकतमत्ता का िी सूचक िै। जब भगवान् ्स्वयंअचेतन जड़तत्त्व बन जाते िैं तो यि उनकी मित्ति भगवत्ता की ननशानी िै। वस्तुतः जो

सवज्ञि िै विी मूढ़ बन सकता िै। ये सभी सीशमतताएँ भगवान् ्की सवशिजकतमत्ता को कुछ कम निीं ंकरतीं अवपतु उनकी मित्ति शजकतमत्ता की प्रमयक्ष सूचक िैं।

इस प्रकार मानवजानत की अंतराममा में सद्गुरुओं, ं मिाममाओं और संतों के द्वारा भगवान् ्के नए-नए रूप प्रकट िोते रिते िैं और नई-नई चीजें आती रिती िैं। परन्तु वे भी एक ननजश्चत सीमा में बाँधे रिते िैं। पर

भगवान् ्का व्यजकतमव जब स्वयंप्रकट िोता िै तो एक बिुत ब़िा उमथान िोता िै, एक नया दृजष्टकोण सामने आता िै, जो पिले कभी निीं था। जैसे, श्रीचैतन्य मिाप्रभु अपनेप्राकट्य के साथ एक नवीन चीज लाए। िालाकाँक उनके आववभावि से पूव िभी वैष्णव थे,े और भगवान् ्के प्रनत भजकत भी थी परन्तु श्रीचैतन्य मिाप्रभु जजस तरीके से संकीतनि को उजागर ककया और भगवान् ्के प्रनत प्ेरेम की जैसी पराकाष्ठा को अशभव्यकत ककया और उसकी जैसी अशभव्यजकत उनके जीवन में िुई वि बिुत ववलक्षण चीज थी और इससे एक नई चीज ज़ुिी जो पिले कभी निीं िुई थी। वैसे िी, जब श्रीमाँ व श्रीअरववन्द आए तो उन्िोंने चेतना के ववकास में एक नई चीज को जो़िा। इस प्रकार यिी मिारे शलए अवतार की सबसे ब़िी व्याविाररक बात िै। अवतारों को कोई अपनेचममकार या जादूगूरी हदखानेकी कोई बाध्यता निीं ंिोती, उन्िें जो उपयुकत लगता िै वि िोता िै और बाकी ककसी चीज की कोई आवश्यकता भी निीं ंिै। और ऐसा भी निीं िै कक वे उन दुष्ुटों का ववनाश न करें जो भागवत् ्काय िमें बाधा ख़िी कर रिे िों। उनका ववनाश तो श्रीराम ने भी ककया और श्रीकृष्ण ने भी ककया। परन्तु यि भी कोई आवश्यक चीज निीं। आवश्यक तो िै मनुष्यजानत की चेतना में जो संकटावस्था उपजस्थत िो जाती िै उसे िल करना। यहद वि िल उसे कोई नया प्रकाश हदखाने से, कोई नया आयाम जो़िने से िोता िो तो वैसा ककया जाएगा और यहद उसमें कोई भौनतक बाधाएँ या संकट उपजस्थत िों तो उन्िें दूरू कर के ककया जाएगा।

वतमान समय में जो संकटावस्था उपजस्थत िै उसमें भगवान् ्की अशभव्यजकत बिुत आवश्यक िै कयोंकक यि अवस्था केवल मानशसक ववचारों से टूटने ेवाली निीं िै। इसके शलए एक ऐसी शजकत की आवश्यकता िै जजसके सामने शमथ्यामव आहद सभी चीजें त्रस्त, ध्वस्त िो जाएँ। इसके शलए आवश्यक िै कक एक नया अंत:प्रकाश, एक नया अंत:प्रकटन आए जो वतमान समस्याओं को ववजयी रूप से संभाल सके। आज ववज्ञान, तकनीकी आहद क्षेत्रों में मनुष्य ने बिुत अधधक वृद्ूधध कर ली िै जबकक उसका उपयोग करने वाली चेतना में कोई सच्ची वृद्ूधध निींिुई ै। इसशलए इन सभी शजकतशाली साधनों को उसकी स्वाथमिय और अिमाममक चेतना िी उपयोग में लेती िै और इससे मनुष्यजानत के सामने एक ब़िा भारी संकट पैदा िो गया िै। इसशलये एक ऐसी चेतना की आवश्यकता िै जो इन सभी चीजों को अपनेउधचत स्थान में रख सके और इनके साथ यथोधचत व्यविार कर सके।

वतमान समय में तो मनुष्यजानत ववज्ञान की तरजककयों से चकाचौंध िो रिी िै। ऐसे में जजन लोगों में कुछ आंतररक समझ िै, उनके शलए भी यि देख पाना कहठन िो गया िै कक आखखर आध्याजममकता और ववज्ञान का भववष्य में कया समीकरण िोगा। इसशलए आवश्यकता िै कक भगवान् ्का एक ऐसा व्यजकतमव प्रकट िो जो इन सभी चीजों को समजन्वत करने ेऔर मनुष्यजानत के शलए आगे का माग िप्रशस्त करने ेकी सामथ्य िरखता िो। श्रीमाँ व श्रीअरववन्द मोटे रूप में तो सारा प्रारूप िमें दे िी चुके िैं। यहद वे िी पुनः आकर इन सारी बाधाओं को दूरू कर माग िप्रशस्त करते िैं तो यि कोई अनिोनी बात निीं ंिै और ऐसा िोना िी चाहिए। यहद वे प्रकट िोकर यि काम करें तभी चेतना की इस संकटावस्था से मनुष्यजानत ननकल सकती िै अन्यथा हदव्य जीवन के संदेश को मनुष्यजानत के शलए आममसात् ्करना आसान निीं। श्रीकृष्ण-भजकत के संदेश को श्रीचैतन्य मिाप्रभु ने िी शजकतशाली रूप से अशभव्यकत ककया। इसशलए कयों ऐसा संभव निीं कक श्रीअरववन्द व श्रीमाँ िी अपनेकाय िकी

पूणिुनत के शलए पुनः स्वयं िी आ जाएँ। कयोंकक यि काम परमाममा स्वयं िी कर सकतिें, अन्य ककसी में इसे करने ेका सामथ्य िनिीिं।

अवतार एक मिान् ्आध्याजममक गुरु या पररत्राता के रूप में, बुद्ध और ईसा के रूप में अवतररत िो
सकतिें ककन्तु उनकी पाधथवि अशभव्यजकत की समाजप्त के बाद सदा िी उनके कम िके फलस्वरूप जानत के केवल
नैनतक जीवन में िी निींअवपतु उसके सामाजजक और बाह्य जीवन और आदशों में भी एक गंभीर और
शजकतशाली पररवतनि आता िै। दूसूरी ओर, वे हदव्य जीवन, हदव्य व्यजकतमव और हदव्य शजकत की ववशशष्ट किया
के अवतार के रूप में, ककसी ऐसे काय िया शमशन के शलए अवतररत िो सकतिें जो बाह्य रूप से सामाजजक, नैनतक
और राजनैनतक हदखायी देता िो; जैसा कक राम और कृष्ण की कथाओं में दशायिा गया िै; परंतु सदा िी यि
अवतरण जानत की आममा में उसके आंतररक जीवन के शलए और उसके आध्याजममक नवजन्म के शलए एक
स्थायी शजकत का काम करता िै। सचमुच िी यि एक अनोखी बात िै कक बौद्ध और ईसाई धमों का स्थायी, जीवंत
तथा व्यापक फल यि िुआ कक जजन मनुष्यों तथा कालों नेइनके धाशमकि और आध्याजममक मतों, रूपों
और साधनाओं का पररमयाग कर हदया, उन पर भी इन धमों के नैनतक, सामाजजक और व्याविाररक आदशों का
शजकतशाली प्रभाव पड़ा।... विींदूसूरी ओर, राम और कृष्ण की जीवनलीला ऐनतिाशसक काल के पूव िकी िै, जो
काव्य और कथा के रूप में िमें प्राप्त िुई िै और इसे िम केवल काल्पननक किानी भी कि सकतिें; परंतु इन्िें िम
काल्पननक किानी मानें या ऐनतिाशसक तथ्य, यि सवथिा मित्त्विीन िै; कयोंकक उनका शाश्वत समय और मित्त्व तो जानत
की आंतररक चेतना और मानव-आममा के जीवन में सतत् ्एक आध्याजममक रूप, उपजस्थनत और प्रभाव के रूप में
बने रिने में ननहित िै। अवतार हदव्य जीवन और चेतना का एक तथ्य िैं जो अपने-आप को ककसी बाह्य कम िमें भी
चररताथ िकर सकतिें, परंतु जो अवश्य िी उस कम िके संपन्न िो जानेके बाद भी एक आध्याजममक
प्रभाव के रूप में बनेरितिें; अथवा वे अपने-आप को ककसी आध्याजममक प्रभाव या शशक्षा में संशसद्ध या चररताथ ि
कर सकते िैं, ककन्तु उस नये धम िया साधना के क्षीण िो जानेपर भी, मानवजानत के ववचार, उसकी मनोवृर्त् और
उसके बाह्य जीवन पर उनका स्थायी प्रभाव अवश्य बना रिता िै।
यिा ॉश्रीअरववन्द ने बुद्ध का, ईसा का, श्रीराम का और श्रीकृष्ण का उदािरण हदया िै। िमने पिले भी यि
चचािकी थी कक अवतार के पाधथवि जगत् ्से चले जानेके बाद भी उनका प्रभाव बना रिता िै। उनकी उपजस्थनत
सूक्ष्म जगत् ्में बनी रिती िै और वे ्जजसमें भी ग्रिणशीलता पातिें विीं उनके शलये संकल्प और सिायता करते े
रितिें। इसीशलये न तो श्रीराम का काय िऔर प्रभाव रुका िै और न श्रीकृष्ण का। ये अवतार ऐनतिाशसक थे या निीं
थे ेउससे फकि निीं ंपड़ता। मित्त्व इस बात का िै कक वे आज भी मौजूद िैं और सकिय िैं। िम उनसे आज भी
समपकि कर सकतिें। उनके अजस्तमव के ननजश्चत प्रमाण भी शमल रिे िैं पर ये सभी कथाएँ ऐनतिाशसक
व्यजकतमवों के आधार पर रूपक के रूप में ननशमति की गई िैं। परन्तुअभी वि चचाि का ववषय निीं। मुख्य बात िै
कक अवतारों का प्रभाव सदा बना रिता िै।

दूसूरी बात यि ि ै कक, िमारे सामनेएक उदिारण गौतम बुद्ध, ईसा मसीि का ि ै। इनका जीवन पूरी तरि आध्याजममक था। इनका सामाजजक, राजनैनतक अथवा आधथकि जीवन से कोई संबंध निींथा। इनका संदेश आध्याजममक था। उसे िम चािो धाशमकि अथवा नैनतक कोई भी नाम दे दें। परन्तु जजन व्यजकतयों ने इनके आध्याजममक अथवा धाशमकि संदेश को चािो माना या निीं माना, उनके भी सामाजजक, राजनैनतक और नैनतक जीवन पर इन अवतारों का बिुत गंभीर प्रभाव पिा। इनका प्रभाव केवल आध्याजममक पक्ष तक िी सीशमत निीं ं था। इनका मनुष्यजानत के सामाजजक, आधथकि, राजनैनतक और बािरी जीवन पर बिुत भारी प्रभाव पिा ि ै, जजन व्यजकतयों ने इनको माना उन पर भी और जजन्िोंने निींमाना उन पर भी। केवल एक आममा के उमथान में िी निीं अवपतु साथ–ि–साथ समजष्ट में भी कोई नयी चीज भगवान् ्के व्यजकतमव के कारण िी आती ि ै। दूसूरी तरफ श्रीराम और श्रीकृष्ण का उदिारण ि ै। इनके जीवन को यहद िम देखें तो लगता ि ै कक इन्िें पारंपररक आध्याजममकता, योग-साधना आहद से तो कोई ववशेष सरोकार िी निीं था। श्रीकृष्ण के जीवन को तो िम गीता में उनके संदेश के कारण आध्याजममकता से जोि़ सकते िैं परन्तुश्रीराम के जीवन से तो अधधक ऐसा प्रकट निीं िोता कक प्रचशलत आध्याजममकता से उनका ववशेष कोई संबंध रिा िो। वि तो प्रकट रूप से पूणतिः नैनतक, राजनैनतक व्यवस्था, समाज की व्यवस्था से संबंधधत हदखता ि ै। भगवान् ्श्रीकृष्ण का जन्म भी असुरों और अनाचार के नाश के शलए िी िुआ था। परंतु उनका प्रभाव जानत के बाह्य जीवन में िी धम िकी स्थापना के शलए उतना निीं िोता जजतना कक आध्याजममक माग िखोलने के शलए िोता ि ै। श्रीराम से, श्रीकृष्ण से जुि़ कर ककतने िी लोग अध्यामम माग िपर अग्रसर िुए िैं। उनका जीवन के सामाजजक, आधथकि आहद पिलुओंपर उतना प्रभाव निीं ंि ै जजतना कक आध्याजममकता पर ि ै, जो कक प्रमयक्षतः उन्िोंने िी निींकी। अतः अवतार अपनी लौककक अशभव्यजकत में कया करता ि ै उसी से वि सीशमत निीं ंिोता। उसके व्यजकतमव में जो चीजें ि ै वे िमें बाद में भी शमलती रिती िैं। आज श्रीकृष्ण प्रधान रूप से अध्यामम की ओर ले जानेवाले व्यजकतमव िैं। श्रीराम जी भी उसी ओर ले जानेवाले व्यजकतमव िैं। आज उनका प्रभाव प्रमयक्षतः सामाजजक व्यवस्था आहद पर उतना न िोकर अध्यामम पर अधधक ि ै। और यि बिी ववलक्षण बात ि ै। अथात् ्अवतार अपनेजीवन में कया अशभव्यकत करते िैं और कया निीं, ं उससे अधधक फकि निींपिता। परंतु मुख्य बात तो उनके पीछे जो तत्त्व ववद्यमान ि ै उसकी ि ै। इसीशलए श्रीमााँ व श्रीअरववन्द ने अपनी शशक्षा में जो कुछ भी बताया ि ै उनका प्रभाव और प्रकाश उतने भर तक िी सीशमत निीं ि ै, वि तो उनके पूण िप्रकाश का एक क्षुर अंश िी ि ै, और उसके पीछे और भी अनंत संभावनाएाँ ननहित िैं। इसशलए श्रीमााँ व श्रीअरववन्द का जो अपना सच्चा स्वरूप था वि भी ववद्यमान ि ै और वि भी मनुष्यजानत में उाँिेली जा रिी ि ै। उसका प्रभाव यथासमय प्रकट िोगा, उसे रोका निीं ंजा सकता। उसकी किया अमोघ ि ै और उसका प्रभाव अवश्य िोगा कयोंकक यि वस्तुओंकी गनत में अवश्यंभावी ि ै। श्रीकृष्ण के जाने के ककतने वषों बाद में ये चीजें आरमभ िुईं। उसकी तुलना में अब तो प्रकिया बिी िी तीव्र गनत से चल रिी ि ै। िम यि कि सकतेिैं कक श्रीमााँ व श्रीअरववन्द ने यिा ंाँजो कुछ प्रमयक्षतः ककया, जो कुछ संभावनाएाँ वेलेकर आए, या जो कुछ उन्िोंनेबताया वि तो उनको वास्तववकता का बिुत थोि़ा-सा िी अंश ि ै। श्रीकृष्ण के जीवन को िी लें तो िम किेंगे कक उनके बािरी जीवन में तो वैसी कोई बातें थी िी निींजजस प्रकार के तत्त्व का भागवत् ्में ननरूपण िुआ ि ै। वैसे िी श्रीमााँ व श्रीअरववन्द जो चीजें लाए उनमें से कुछ तो अशभव्यकत िुई िैं परन्तुशेष सारी तो अशभव्यकत िोनी अभी बाकी िैं,

जो कक ननजश्चत रूप से अशभव्यकत िोंगी िी। उनकी उपजस्थनत पाधथवि वातावरण को छोड़नेवाली निीं ंिै। श्रीमाताजी ने साफ-साफ िी यि किा िै कक श्रीअरववन्द धरती को छोड़ कर दूर निीं जाएँगे जब तक कक अनतमानशसक रूपांतरण का उनका काय िसंपन्न निींिो जाता। इसशलये िमें ककसी भी तरि से ननराश िोने की आवश्यकता निीं। िमारे भाग में िमारे शलए यि बड़ी िी शशमदांगी की बात िै कक िम इस बात पर सच्चे रूप में ववश्वास न कर के सतिी चीजों से और भौनतक ववज्ञान आहद की बािरी प्रतीनतयों की चकाचौंध से प्रभाववत िो जाते िैं। इसशलए इस अवतार तत्त्व को लेकर यहद िम इसे वतमान पर लागू ूकर के इसे न समझें तो केवल अतीत की िी बातें करनेसे कोई लाभ निीं ंिै। उनकी उपजस्थनत िमारा मागदशनि करेगी और यि काम ककये त्रबना छोड़ेगी

निीं। परन्तुइसका यि अथ िभी निीं ंिै कक िम ननजश्चंत िोकर सो जाएँ, और अपना प्रयास करना बंद कर दें। िमारी भावना िोनी चाहिये कक िम उनके काय िमें सियोग करें। भले िी उसका अपने-आप में ककतना भी मित्त्व िो

या न िो। परंतु कम-से-कम उन ग्वाल बालों की तरि िम अपना प्रयास तो कर िी सकते िैं जजन्िें यि भ्रम था कक गोवधनि को उन्िोंनेअपनी लाहठयों के सिारे रोके रखा िै। इतना तो िम अवश्य िी कर सकते िैं।
इसशलए अवतार के काय िके ववषय में गीता के वणनि को ठीक तरि से समझने के शलए िमें धम िशब्द को अवश्य िी इसके पररपूणतिम, गंभीरतम और ववस्तृततम अथ िमें ग्रिण करना चाहिए, उस आंतर और बाह्य ववधान के रूप में समझना चाहिए जजसके द्वारा हदव्य संकल्प और प्रज्ञा मानवजानत के आध्याजममक ववकास को साधनेका काम करते और जानत के जीवन में उसकी ववशशष्ट पररजस्थनतयों और उनके पररणामों को ननशमति करते िैं।

गीता उस संघष िपर बल देती िै जजसका कक यि जगत् ्रंगमंच िै, अपनेदो पिलुओंमें यि िै एक आंतररक संघष िऔर दूसरा बाह्य युद्ध। आंतररक संघष िमें शत्रु अन्दर, व्यजकत के अपनेअन्दर िैं, और इसमें कामना, अज्ञान और अिंकार को मारना िी ववजय िै। परंतुमानव-समजष्ट के अन्दर धम िऔर अधम िकी शजकतयों के बीच एक बाह्य युद्ध भी चल रिा िै.... इस बाह्य संग्राम में भी प्रमयक्ष या अप्रमयक्ष रूप से सिायता करने,े असुरों अथात्िदुष्टों के राज्य को नष्ट करने,े वे जजस (आसुरी) शजकत का प्रनतननधधमव करते िैं उसका दमन करने े और उनके द्वारा उमपीड़ित धम िके आदशों को पुनः स्थावपत करने ेके शलए अवतार आते िैं। वे व्यजष्टगत मानव-आममा के अंदर स्वगरिाज्य का ननमाणि करनेके शलए आते िैं और साथ िी मानव-समजष्ट के शलए भी स्वगरिाज्य को पृथ्वी के ननकटतर ले आने के शलए आते िैं।

यिा ंयि स्पष्ट िी िै कक अवतार धरती पर धम िकी स्थापना के शलये आते िैं। पर अपनेववस्तीणतिम अथ ि में धम िका अशभप्राय िै व्यजष्ट और समजष्ट को भागवत् ्संकल्प एवं ंभागवत् ्ज्ञान द्वारा भागवत् ्पथ पर ननदेशशत करना। और इस धम िकी रक्षा करनेतथा इसे और अधधक समृद्ध बनानेके शलये भगवान् ्अवतार लेते े िैं। अवतार इसी की तैयारी करातेिैं और इस उद्देश्य में बाधक सभी बािरी बाधाओं को, सभी आसुररक ताकतों को, जो समजष्टगत जीवन को ननयंत्रण में रखना और पथ पर बढ़ने से रोकना और भ्शमत करना चािती िैं, नष्ट करते िैं। तो इस प्रकार अवतार-संबंध में सारी बातों का स्पष्टीकरण िो गया कक वे ककस उद्देश्य से आते िैं, धरती

पर उनका कया-कया प्रभाव िोता िै और उनके बाद भी ककस प्रकार उनकी उपजस्थनत सूक्ष्म रूप से सदा िी बनी रिती िै। इसके अनतररकत अवतार तत्त्व से संबंधधत अन्य अनेक पिलुओं की िम चचाकर चुके िैं।

श्रीअरववन्द के अनुसार अवतार को जो ववशशष्ट काय िकरना िोता िै उसकी वे अपनेपूव िके जन्मों में तैयारी करते िैं। गीता में भी भगवान् ्कृष्ण कि रिे िैं कक उनके इस जन्म से पूव िभी अनेकों जन्म िो चुके िैं। परंतु यि आवश्यक निीं ंिै कक वे सभी अवतारी जन्म िी िों। उसी प्रकार श्रीमाताजी व श्रीअरववन्द भी सदा िी मौजूद रिे िैं, परन्तु अवतार के रूप में निीं। और पूवजिन्मों में उनके उस तत्त्व की तैयारी चलती रिती िै जजसकी उन्िोंने अवतार के रूप में जन्म ग्रिण कर के अशभव्यजकत की। इसशलए भगवान् ्का जन्म कोई आकजस्मक प्रकटन िी िो ऐसा आवश्यक निीं िै। उसके पीछे िजारों वषों की तैयारी िो सकती िै जजससे कक जो संदेश उन्िें देना िै वि मनुष्यजानत द्वारा ग्रिण ककया जा सके। और इस दौरान मनुष्यजानत की भी तैयारी िोती िै कक उस तत्त्व को वि ग्रिण कर सके। तभी तो गीता में भगवान् ्कििते िैं कक 'जन्म कम िच मे हदव्यं' और जो इसको तत्त्वतः जान लेता िै वि पुनः जन्मबंधन में निीं पड़ता। यि बिुत िी गिरी बात िै जजसे समझना आसान निीं ंिै। श्रीअरववन्द इतना कुछ इस ववषय में बता गए िैं तभी िमें इसके ववषय में कुछ प्रकाश प्राप्त िोता िै अन्यथा तो िम इसकी कल्पना भी निीं कर सकतेथे। इसे समझने के शलए व्यजकत को स्वयं इसका व्यजकतगत अनुभव िोना आवश्यक िै अन्यथा इसे समझने ेका कोई दूसूरा उपाय निीं ंिै। और चूंकक श्रीअरववन्द को इसका ननजी अनुभव था और साथ िी उनकी अशभव्यजकत की क्षमता भी अद्ववतीय थी, इसशलए िमारे शलए इस तत्त्व के संबंध में कुछ समझ पाना सुगम िो गया िै।

ग्रीतरागभयक्रोधा र्त्या ग्राुपाधश्रताः ।
बहर्ो ज्ञानतपसा पूता द्भार्गताः ।। १० ।।

१०. राग, भय और क्रोध से ुक्त, अपनी चेतना (धचत्त) के भीतर ुझ से पररपू वहुुए अपनी संपू वसत्ता के साथ ेरा आश्रय ग्रहि ककये हुए बहुत से र्नुष्य ज्ञानरूपी तप से पवत्र होकर ेरे भार् को प्राप्त हो गये हैं।

अवतार के आनेका आंतररक फल उन लोगों द्वारा लाभ ककया जाता िै जो इस किया से हदव्य जन्म और हदव्य कम िके वास्तववक मम िको जान लेते िैं, और जो अपनी चेतना में भगवान् ्से पररपूण ििोकर, अपनी संपूण ि सर्ता सहित उनमें आधश्रत िोकर **(र्त्या ग्राुपाधश्रताः)** रिते िैं और अपनेज्ञान की तपःशजकत से पववत्र िोकर **(ज्ञानतपसा पूताः)** ननमन (अपरा) प्रकृनत से मुकत िोकर भगवान् ्के स्वरूप और स्वभाव **(द्भार्)** ् को प्राप्त िोते िैं। मनुष्य के अन्दर इस अपरा प्रकृनत के ऊपर जो हदव्य प्रकृनत िै उसे प्रकटानेके शलए तथा यि हदखानेके शलए कक मुकत, ननरिंकार, ननष्काम, नैयजकतक, ववश्वव्यापक, हदव्य-ज्योनत, हदव्य-शजकत और हदव्य-प्रेम से पररपूण िहदव्य कम िकया िोते िैं, अवतार का आगमन िोता िै। वे उस हदव्य व्यजकतमव के रूप में आते िैं जो मनुष्य की चेतना को पररपूण िकर देगा और उसके अिभावापत्र पररसीशमत व्यजकतमव की जगि ले लेगा जजससे कक वि अिंकार से मुकत िोकर अनन्तता और ववश्वव्यापकता में फैल जाए, जन्म (बंधन) से मुकत िोकर अमरमव में पिुँच जाए। भगवान् ्उस हदव्य शजकत और प्रेम के रूप में आते िैं, जो मनुष्यों को अपनी ओर बुलाते िैं ताकक

मनुष्य उन्हीं का आश्रय लें तथा अब और अधधक अपने मानवसंकल्पों की अपयाप्तिता का तथा अपनेकामि–ोध और भय के द्वन्द्वों का आश्रय न लें, और इस सब अशांनत और दु:ख से मुकत िोकर भगवान् ्की शाजन्त और आनन्द में ननवास करें।

अवतार के जीवन से, उसकी घटनाओंसे, उसकी हदव्य कथाओं से, लीलाओंसे पररपूण ििोकर जो ज्ञान प्राप्त िो उसे प्रयोग में लाकर उससे पववत्र िोकर (**द्भार्ई् ्आगताः**) भगवान् ्के स्वभाव और स्वरूप को प्राप्त िोना िोता िै। सबसे पिले व्यजकत अपनेसतिी भाव में रिता िै, उससे आरोिण कर के उसे अपनेस्वभाव की ओर जाना िोता िै और कफर उस स्वभाव से 'मद्भाव' अथात्ि्भगवान् ्के भाव को प्राप्त करना िोता िै। अवतार इस प्रकिया में सिायता प्रदान करते िैं। जैसे श्रीमााँ व श्रीअरववन्द के आनेसे ककतने िी लोग भगवान् ्के माग िपर चल पड़े ेजबकक अपने-आप से कदाधचत् ्िी वे कभी इस पथ को अपनाते या इस पर अधधक दूरी तक जा पाते। कयोंकक जब तक मनुष्य के हृदय का भगवान् ्से जीवंत संपकि न िो तब तक केवल बुद्धध और सीशमत इच्छा-शजकत के बल पर व्यजकतगत गठन को और इसके चककरों को, इसी के अंदर व्यजकत की तल्लीनता को तोड़ पाना बिुत कहठन िै। और यहद कोई व्यजकत अपनेसामथ्य िसे कुछ ग्रिण कर भी लेता िै तो वि आंशशक प्रकाश िोता िै, पूरा प्रकाश उसके जीवन में मुजश्कल से िी आता िै। और अधधकांश लोगों के जीवन में तो प्रकाश की वि ककरण भी निीं आती। इसशलए भगवान् ्की सशरीर उपजस्थनत बिुत मित्त्वपूण िऔर आवश्यक िै। उनकी वि सशरीर उपजस्थनत नतरोहित िोने ेके बाद भी बिुत से लोग उस ओर प्रेररत िोते िैं, जजससे उनके जीवन में भगवान् ्का बिुत बड़ा प्रवेश िोता िै।

----

* एक पारस्पररक ऋण मानव को परम् ्सेबाधाँता िै:

उसकी प्रकृनत को िमें वैसी ी धारण करना िोगा जैसे उसने िमारी धारण की िै;

मि भगवान् ्के पुत्र िैं और अवश्य िी उनके सदृश िोना िोगा:

उसके मानवीय अंश, िमें हदव्य बनना िै।

मिारा जीवन एक पिेली िै जजसकी कुंजी िै भगवान्।्

जजन लोगों को कभी श्रीमााँ व श्रीअरववन्द का भौनतक समपकि निीं शमला वे भी उनकी सूक्ष्म उपजस्थनत के कारण इस ओर मुड़ जाते िैं और उनके जीवन में भी उनका प्रकाश प्रवेश कर जाता िै कयोंकक वे सूक्ष्म वातावरण में सारी आवश्यक सामग्री छोड़ कर गये िोते िैं जजसे िम आममसात् ्कर सकते िैं। अतः भगवान् ्का अवतार लेना एक बिुत िी ववशशष्ट किया िै जजसमें भगवान् ्के व्यजकतमव के नए-नए आयाम प्रकट िोते िैं। अन्यथा व्यजकत जजस साधारण चेतना में ननवास करता िै उससे परम् ्चेतना की ओर जाना संभव िी निीं िोता। यि सब हदव्य चेतना, हदव्य शजकत, हदव्य ज्ञान की व्यवस्था िै कक ककस प्रकार मनुष्यजानत में भगवान् ्का पूण िप्राकट्य शसद्ध िो। और इसी उद्देश्य की पूनत िके शलये सन्त, मिापुरुष, देवता और अवतार आहद आते रिते िैं ताकक यि िम ननबाधि और अटूट रूप से चलता रिे। यि अवतार के आनेका मूलभूत उद्देश्य िै। इसशलए ऐसा िो िी निीं ंसकता कक पृथ्वी पर

हदव्य जीवन का काय िसंपन्न न िो। हिन्दुसुतान तो ववशेषेकर परमाममा की एक चुनी िुई भूशम िै, उनका कायक्षेत्र ि। इसशलए यिाँ तो यि काय िोना िी िै।

ये यथा रा्ंप्रपद्यतते ेतांस्तथैर् भजाम्यहर् ्।

र् र्ानुवर्ततवते र्नुष्याः पाथ वसर्वः ।। ११ ।।

११. हे पाथ व! र्नुष्य जजस ककसी भी रूप से रे्रे सर्ीप आते हैं उतहें र् ैंउस ही रूप र्ें प्रे्रपूर्वक स्वीकार करता हूाँ, र्नुष्य हर प्रकार से रे्रे द्वारा तनधारवरत ककये हुए र्ाग वका अनुसरि करते हैं।

यि ब्रिी मित्त्वपूण िबात िै कक िम भगवान् ्से जैसी आशा करते िैं वे वैसे िी बन जाते िैं। जजस रूप में िम उनकी चिा करते िैं वे उसी रूप को धारण कर लेते िैं कयोंकक उनके अनन्त रूप िैं पर अपनेककसी भी रूप से वे सीशमत निीं िैं। सारे रूप उन्िीं के िैं पर कफर भी कोई भी रूप उनका निीं। जैसे-जैसे मनुष्य की चेतना ववकशसत िोती िै वैसे-वैसे उसके शलए उनका रूप भी बदलता जाता िै। पशु ुकी चेतना के शलए मनुष्य िी भगवान् ्िैं, वैसे िी शुरू में मनुष्यों के शलए देवता भगवान् ्की तरि िोतेिैं। और ज्यों-ज्यों मनुष्य की चेतना ववकशसत िोगी मयों-मयों उसके सामने भगवान् ्का और अधधक ववशाल रूप प्रकट िोता जाएगा। सारे रूप भगवान् ्के िी िैं परन्तु मनुष्य अपनी क्षमता के अनुसार उन्िें मिसूस करता िै। तभी तो भगवान् ्किते िैं कक जो मनुष्य मुझेजैसे भजता िै म ैं भी उसको वैसे िी भजता िूाँ। सभी लोग सभी तरीके से मेरे िी माग िपर चल रिे िैं। 'ये यथा मांप्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजामयिम्।् मम वमानुिवतन्तेिमनुष्याः पाथ िसवशिः'। इसी की पुजष्ट करते िुए श्रीमाताजी ने यिाँ अपना ननजी अनुभव भी बता हदया।

----

*भगवान् ्िर एक व्यजकत को ठीक विी देते िैं जजसकी वि उनसे आशा करता िै। यहद तुम यि मानतेिो कक भगवान् ्बिुत दूरू और िूर िैं, तो वे दूरू और िूर िोंगे, कयोंकक ऐसा तुमिारे परम कल्याण के शलये आवश्यक िोगा कक तुम भगवान् ्के कोप

का अनुभव करो; काली के उपासकों के शलये वे काली िोंगे और भकत के शलये 'परमानन्द'। और वे ज्ञान के जजज्ञासु ुके 'सवज्ञािन' िोंगे, मायावाहदयों के परामपर 'ननगुणि ब्रह्म'; नाजस्तक के साथ वे नाजस्तक िोंगे और प्रे्रमी के प्रे्रम... वस्तुतः भगवान् ्विी िैं जजसकी तुम उनसे अपनी गिरी-से-गिरी अभीप्सा में आशा करते िो।

और जब तुम उस चेतना में प्रवेश करतेिो जिाँ तुम सभी चीजों को एक िी दृजष्ट में देखते िो, मनुष्य और भगवान् ् के बीच संबन्धों की अनंत बिुलता को देखते िो, तो तुम देखते िो कक अपने सभी ब्यौरों सहित यि कैसा अद्भुत िै। तुम मनुष्यजानत के इनतिास पर दृजष्टपात कर सकते िो और यि देख सकते िो कक मनुष्य जो समझें, उन्िोंने जजसकी इच्छा और आशा की िै, जजसके स्वप्न देखे िैं, उसके अनुसार भगवान् ्ककतने ववकशसत िुए िैं। और ककस प्रकार वे ज़िवादी के साथ ज़िवादी रिे िैं और ककस प्रकार वे प्रनतहदन ववकशसत िोते जातेिैं और जैसे-जैसे मानव चेतना अपने-आपको ववस्तृत करती जाती िै वैसे िी वे भी हदन-प्रनतहदन ननकटतर तथा और अधधक प्रकाशमान िोते ेजाते िैं....

भगवान् ्तुमिारी अभीप्सा के अनुसार तुमिारे साथ िैं। स्वभावतः इसका यि अथ िनिीं िै कक वे तुमिारी बाह्य प्रकृनत की सनकों के आगे झुकु जाते िैं, - यिााँ म ैंतुमिारी सर्त्ा के समय की बात कि रिी िूाँ। और कफर भी, कभी-कभी भगवान् ् अपने-आपको तुमिारी बाह्य अभीप्साओं के अनुसार भी गढ़तिैं... इस प्रकार मनोभाव, यिााँ तक कक बिारी मनोवृत्त् भी, बिुत मित्त्वपूण ििै। लोग निीं जानते ेकक श्रद्धा ककतनी मित्त्वपूण ििै, ककस प्रकार श्रद्धा चममकार िै, चममकारों की सजकि ैं। यहद तुम प्रनतक्षण ऊपर उठाए जाने और भगवान् ्की ओर खींचें जानेकी आशा करो, तो वे तुमिें उठाने आएाँगेऔर वे विााँ उपजस्थतिोंगेबिुत ननकट ननक्टतर अधध्काधधकननकट िोंगे।

प्रश्न : 'कभी-कभी भगवान् ्अपने-आप को तुमिारी बाह्य अभीप्साओं के अनुसार भी गढ़तिैं... इस प्रकार मनोभाव, यिा ाँतक कक बिारी मनोवृत्त् भी, बिुत मित्त्वपूण ििै।' इसका कया तामपय ििै?

उत्तर : एक स्त्री ने श्रीमाताजी से पूछा कक म ैंतो भगवान् ्के शलए िी सब काम करना चािती िूाँ। परन्तु ु इसमें एक समस्या यि आती िै कक जब म ैंचाय बनाती िूाँ तो मुझे ेयि कैसे पता चले कक उनको चीनी ककतनी पसन्द िै। इसके उर्त्र में श्रीमाताजी ने किा कक भगवान् ्के यिा ाँइन चीजों का कोई मित्त्व निीं ंिै, मित्त्व तो केवल उस भाव का िै जजससे वि काय िककया जाता िै। परन्तु बाद में इसी संदभ िमें श्रीमााँ ने संशोधन करते िुए किा कक भगवान् ्को चाय में ककतनी चीनी पसंद िै यि जानना भी बिुत मित्त्वपूण ििै कयोंकक उनका अपना स्वाद िोता िै। और यहद िम उनसे सिी रूप से पूछेंगे तो वे ेअवश्य िी बता देंगे कक उन्िें कौनसी चीज ककतनी मात्रा में पसंद िै। मिें जो और जजतना जानना आवश्यक िोता िै उतना सिज रूप से िी वे िमें अवश्य बता देते िैं। िालाकाँक सभी के शलए उनके मापदण्ड एक समान निीं ंिोंगे परंतुव्यजकत-ववशेष के शलए उनका ववशशष्ट मापदण्ड िोगा। और वास्तव में वे कया चािते िैं वि उसे अवश्य िी बता देते िैं। यि बिुत ववधचत्र चीज िै। इसमें श्रीमाताजी ने एक और सूत्र बताया कक जैसे, व्यजकत के मन में बिुत इच्छा िोती िै कक वि भगवान् ्के अनुसार काम करे, मन शुद्ध िो, कोई गलत काम निीं ंिो परन्तुअपनी इच्छाओंऔर कामनाओं को पूरा करने ेके शलए उससे गलत काम तो चौबीसों घंटे िोतिैं, तो ऐसे में कया ककया जाए। तब श्रीमाताजी ने किा कक इसका तो एक िी तरीका िै कक जैसे िी मिें याद आये कक िम गलती पर िैं उसी क्षण उनसे (श्रीमााँ) से प्राथनिा करनी चाहिए कक 'मेरी इच्छाएाँ और कामनाएाँ मेरे वश में निींिैं इसशलए आप मुझे ेइनसे छुटकारा हदलाए।ं' तो श्रीमाताजी िमारे अन्दर से इन चीजों को समाप्त करना आरमभ कर देंगी। यि तरीका तो बिुत अच्छा िै कक केवल श्रीमाताजी को बोलने भर से िी काम िो जाएगा। इसमें अपना हदमाग लगानेकी आवश्यकता िी निीं िै। श्रीअरववन्द ने किा कक म ैंअपने ननजी सामथ्य िकी बजाय भागवत् ्शजकत से िी काय िसाधधत करवाना पसन्द करता िूाँ। यि तो बिुत िी कारगर सूत्र िै। परन्तु िम लोग अिं से इतने भरे रितिैं कक न िमें यि याद िी रिता और न िी यि सोच िी सकते िैं कक भगवान् ् को किें कक ये सब चीजें ठीक निीं ंिैं। परन्तु यहद व्यजकत भगवान् ्को उस समस्या के ववषय में बोलता िै तो उसी समय वि भागवत् ्शजकत की ओर खुल जाता िै और भगवान् ्की शजकत उसके अन्दर काय िकरने ेलगती िै। इस तरीके से िम देखेंगे कक धीरे-धीरे ननमन प्रकृनत की ये चीजें बदलती चली जाएाँगी, पररजस्थनतयााँबदलती जाएाँगी और िम उनसे ऊपर उठ जाएाँगे। इसशलए व्याविाररक तरीका िै कक कोई समस्या िो तो श्रीमाताजी को बोल दो और ववश्वास रखो कक यहद मााँग उधचत िोगी तो वि ननजश्चत रूप से पूरी िोगी। श्रीमाताजी से कुछ मााँगने से िम उनके प्रनत खुल जाते िैं। इस दृजष्टकोण की बजाय कक 'म ैंश्रीमााँ से कया मागूाँ कयोंकक म ैंतो स्वाथी निीं ंिोना

चिाता', जबकक वास्तव में तो िम स्वाथ िसे तो पूरी तरि भरे रितें, अच्छा िो कक श्रीमााँसे आदान-प्रदान का एक संबंध स्थावपत िो जाए तो सारा जीवन िी बदल जाता िै।

प्रश्न : यहद तुम यि मानतिो कक भगवान् ्बिुत दूरू और िूर िैं, तो वे दूरू और िूर िोंगे, कयोंकक ऐसा तुमिारे परम कल्याण के शलये आवश्यक िोगा कक तुम भगवान् ्के कोप का अनुभव करो;" कफर आगे किा िै कक "भगवान् ्तुमिारी अभीप्सा के अनुसार तुमिारे साथ िैं। स्वभावतः इसका यि अथ िनिीं िै कक वे तुमिारी बाह्य प्रकृनत की सनकों के आगे झुक जाते िैं," तो कफर इन दोनों बातों में समन्वय कैसे िोगा?

उत्तर : यहद िम उनको दूरू और िूर मानेंगे तो िम अपनी ककसी भी आवश्यकता की उनसे मागााँ िी निीं करेंगे। वि तो असंगत बात िोगी। जो व्यजकत अपनी बिारी प्रकृनत के अनुसार भगवान् ्से कुछ करवाना चािता िै इसका अथ िििै कक पिले िी वि बिुत कुछ भगवान् ्के प्रनत खुल चुका िै। अन्यथा िमारी बिारी प्रकृनत में तो भगवान् ्पर ववश्वास िोता िी निीं ्िै। लोग प्राथनिा करते िुए भी भीतर से यि जानते िैं कक प्राथनिा करनेसे कया लाभ िोगा कयोंकक आखखर सभी काम तो स्वयंिीकिरने िोंगे। गीता में आगे आयेगा कक ककस प्रकार व्यजकत शभन्न-शभन्न देवताओं, गंधवों, राक्षसों आहद की पूजा करते िैं और उन्िेंउसी के अनुसार फल प्राप्त िो जाते िैं। भगवान् ्किते िैं कक यि सब तो केवल इसी लोक से संबद्ध िै और बिुत आसान िै और इनके पररणाम भी शीघ्र िीशमल जाते िैं। परंतु भगवान् ्के ननकट जाना कहठन िै। िालाकाँक बाह्य प्रकृनत के अनुसार भी भगवान् ्बिुत बार काम कर जाते िैं। यि बिी िी ववलक्षण बात िै। िमारा सारा तंत्र ऐसे अनेकों उदिारणों से भरा िुआ िै कक ककस प्रकार लोग भगवान् ्के साथ संपकि में आ जाते िैं। उनके साथ अनेकों प्रकार की लीलाएाँ करते िैं, हदन-प्रनतहदन का संबंध स्थावपत कर लेते िैं। उदिारण के शलए, श्री कृष्णप्रेम जब भगवान् ्को भोग लगाते थे ेतब भगवान् ्स्वयं आकर उस भोग को ग्रिण करते थे। ऐसी ववलक्षण घटनाओंकी समयता के ववषय में पूछे जाने पर श्रीअरववन्द ने किा कक ऐसी चीजें िो सकती िैं और इस मामले में ऐसा िुआ िै। इन सब चीजों से व्यजकत के जीवन में भगवान् ्का प्रवेश िोता िै, परन्तु व्यजकत शुद्ध िोना चाहिए। ककतने-ककतनेउदिारण िमें शमलतिैं जजनमें भगवान् ्अपने भकतों से ककस प्रकार भोग ग्रिण करते िैं, उनकी संकटपूण िजस्थनतयों से उन्िेंउबारते िैं, उनके सखा बनकर उनके साथ खेलते िैं और न जाने और ककतने िी प्रकार के संबंध स्थावपत कर लेते िैं। सारा तंत्र मनुष्य के सभी हिस्सों को भगवान् ्से जोिने ेका काय िकरता िै।

...मनुष्य चिो जजस ककसी तरि भगवान् ्को अपनाते, उनसे प्रेम करते और उनमें आनन्द लेते िों, भगवान् ्उन्िेंउसी तरि से अपनाते, उनसे प्रेम करते और उनमें आनन्द लेते िैं... कयोंकक मनुष्यों की शभन्न-शभन्न प्रकृनत के अनुसार जजतने भी ववशभन्न माग िििैं उन सभी में मनुष्य भगवान् ्के द्वारा अपनेशलए ननयत माग िपर चल रिे िैं, जो अन्त में उन्िेंभगवान् ्के समीप ले जाएगा। भगवान् ्का विी पिलू मनुष्यों की प्रकृनत के अनुकूल िोता िै जजसका वे उस समय सबसे अच्छी तरि अनुसरण कर सकतिैं जब भगवान् ्नेतृमृव करनेआएाँ...

काङ्क्षततः कर्िवांमसद्धधं ्यजतत इह देर्ताः ।

क्षक्षप्रं दह र्ानुषे ेलोके मसद्धधभर्वतत कर्जवा ।। १२ ।।

१२. जो र्नुष्ट्य इस पृथ्र्ी लोक र्ें कर्ाँ के िल की कार्ना करते हैं र्े देर्ताओं के तनदहत यज्ञ ककया करते हैं, क्योंकक र्नुष्ट्यलोक र्ें कर् वसे जतनत सिलता बहुत िीघ्र और सरलता से प्राप्त हो जाती है।

...अधधकांश मनुष्य... अपनेकमों की शसद्धध की कामना से, देवताओं के अथात्ि्एकमेव परमेश्वर के वववववध रूपों और व्यजकतमवों के प्रीमयथ ियज्ञ करते िैं, कयोंकक कमों से ज्ञानरहित कमों से िोनेवाली शसद्धध मानव-जगत् ्में बिुत शीघ्र और सुगमता से प्राप्त िोती िै; अवश्य िी वि शसद्धध केवल उसी जगत् ्की िोती िै। परन्तु दूसरी ओर शसद्धध के प्रीमयथ िककये जानेवाले ज्ञानयुकत यज्ञ के द्वारा मनुष्य की हदव्य आममपररपूणतिा, उसकी अपेक्षा अधधक कहठनता से प्राप्त िोती िै; इस यज्ञ के फल सर्ता के एक उच्चतर जगत् ्के ीितिं और कम सुगमता से पक़ि में आते िैं।

यहद व्यजकत को ककसी भी कम िका फल चाहिए तो - जजस प्रकार का कम िै, उसे करने ्के पीछे जैसी भावना िै, जजस उद्देश्य से कम िककया जा रिा िै - उसके अनुसार व्यजकत को उस कम िके पीछे ननहित यक्ष, गंधव,ि राक्षस, देवता आहद शजकतयों के संपकि में आना प़िता िै जजनके द्वारा वि काय िशसद्ध ककया जाता िै। और जो कम िउनके साथ आदान-प्रदान से शसद्ध िोते िैं उर्न्िें करना तथा उनके फलों को प्राप्त करना संसार में अपेक्षाकृत सरल िोता िै। उदािरण के शलए यहद ककसी व्यजकत के मन में आ जाए कक उसे पैसे कमाने िैं तो वि तरि-तरि की चीजों के संपकि में आता िै और अपनी इस कामना की पूनत िके शलए वि उसमें अपनी एकाग्रता, अपनी मेिनत, अपनी भावना, अपनी इच्छा-शजकत तथा अपनी संकल्प-शजकत लगाता िै। इस तरीके से व्यजकत कम िके पीछे ननहित शजकतयों को ये सब चीजें अवपति करता िै तो वे शजकतयाँ भी व्यजकत को इसका प्रनतफल देती िैं। और यहद व्यजकत अमुक कम िको पूण िकरने ्का प्रयास करता रिता िै तो धीरे-धीरे उसका रास्ता खुलता जाता िै। इसी प्रणाली से पूरे ववश्व में काम िोता िै। कयोंकक यहद व्यजकत ककसी प्रयोजन से कोई कम िकरे पर उसे उसका प्रनतफल न शमले तब तो सब कुछ नष्ट िो जाएगा और संसार में कोई काम िी निीं िोगा। यि तो ईश्वर का िी बनाया िुआ ववधान िै। इस श्लोक में इसी के बारे में बता रिे िैं कक इस प्रकार का लेन-देन, इस प्रकार का प्रनतफल प्राप्त करना अपेक्षाकृत सरल िै, परंतु यि आदान-प्रदान उस प्रनतफल ववशेषे तक िी सीशमत रिता िै। और व्यजकत अपनी इस लेन-देन की क्षमता से कभी ऊपर निीं उठ सकता। इस जस्थनत में जो सफलता शमलती िै वि यिीं ्संसार में रि जाती िै और व्यजकत का अंत समय आने पर वि मृमयुको प्राप्त िो जाता िै। इस तरीके से व्यजकत का आन्तररक ववकास बिुत िी कम िो पाता िै। कुछ व्यजकत तामशसक प्रकार के िोते िैं। उनकी मानशसकता भी बिी िी तामशसक और संकीण िोती िै। उनके कमों के पीछे के िेतु बिे िी तुच्छ िोतिें, उनका आदान-प्रदान भूतों और वपशाचों से िोता िै और बिुत श्रम करने ्पर भी उर्न्िें बिुत िी कम फल शमल पाता िै जैसे कक पशु ्बिुत श्रम करने पर भी कहठनाई से िी अपना जीवन यापन कर पाता िै। यहद व्यजकत तामशसक मनोजस्थनत में िै और केवल अपनिी ऊपर केजन्रत रिता िै तो वि बिुत कहठनाई से िी अपना गुजारा कर पाता िै। विीं, यहद कोई दूसूरा व्यजकत तामशसक जस्थनत की बजाय कुछ अधधक सुसंस्कृत िै, जो अनतशय रूप से केवल अपनिी ऊपर केजन्रत न रिकर दूसूरों के बारे में तथा आपसी तालमेल के बारे में भी सोचता िै वि कुछ अधधक

श्ेरेष्ठ शजकतयों के समपकि में िोता िै और कम मेिनत में िी उसे अधधक फल शमल जाता िै। यहद व्यजकत इससे भी अधधक उच्च जस्थनत में िो तो वि और अधधक उच्च शजकतयों के संपकि में िोता िै और उसे उसका प्रनतफल और अधधक अच्छा शमल जाता िै। इस तरि यि प्रगनतशील िै। जैसे पशु ुको बिुत मेिनत करनेपर भी फल की प्राजप्त में अननजश्चतता िी रिती िै। उसी प्रकार वि व्यजकत जजसके अंदर भौंिापिन िै, बिुत मेिनत करने ेपर भी उसे बिुत थोिा िी प्रनतफल शमल पाता िै कयोंकक उसका आदान-प्रदान वैसी िी शजकतयों के साथ िोता िै। इसी तरीके से संसार चलता िै। भगवान् ्कि रिे िैं कक इस प्रकार की व्यवस्था िै और भूतों, वपशाचों आहद के ननशमत्त् ककये कायों के पररणाम व्यजकत को आगे बढ़नेमें मदद निीं ंकरते, वि जिा ंिै, उसे विींरोके रखते िैं। और जो कम िभगवान् ् के ननशमत्त् ककये जाते िैं - जो कक ववरले िी देखने को शमलते िैं- वे व्यजकत को आगे ले जाते िैं। यहद मनुष्य के अन्दर श्रद्धा जागृत िो जाए तो वि पुरुषोत्तम के शलए काय िकरना आरमभ कर देता िै कफर चािे उसके बािरी प्रतीक बिुत सीशमत, दोषपूण िऔर अपूण ििी कयों न िों, कयोंकक आरमभ में पूणतिा आना तो कहठन िै। पर यहद व्यजकत की भावना में, उसके ववचारों या ककसी एक हिस्से में शुद्धध िै तो कफर सच्चा यज्ञ आरमभ िो जाता िै और इसके उत्तर में आती परमाममा की चेतना व्यजकत को इन चीजों से ऊपर उठा देती िै। जो प्रनतफल देवताओं से प्राप्त िोते िैं वे तो उस व्यजकत के शलए बिुत िी सिज सुलभ िो जाते िैं और उनका उसके शलये अधधक कोई मूल्य भी निीं रि जाता। कयोंकक जब व्यजकत में वि दूसूरी चीज सकिय िो जाती िै तब वि उस व्यजकत की दृजष्ट को इन सभी ननमन चीजों से बिुत ऊपर उठा ले जाती िै, उसे अज्ञान से, ममृयु से और संसार के बंधन से ऊपर उठा ले जाती िै। कफर व्यजकत ननमन आदान-प्रदान में शलप्त निीं िोता।

परन्तु यि प्राप्त करना सरल निीं ंिै। इसीशलए भगवान् ्सातवें अध्याय में किते िैं कक जो लोग वपतरों, गंधवो, यक्षों, देवताओं आहद की पूजा करते िैं वे उनके पास जाते िैं परन्तु जो मुझेपूजते िैं ऐसे मेरे भकत मुझे प्राप्त िोते िैं। यहद व्यजकत इस जस्थनत तक पिुँच चुका िै कक वि पुरुषोत्तम के प्रनत, भगवान् ्के समग्र व्यजकतमव के प्रनत अभीप्सा कर सके, उनके शलए कम िकर सके, तो जजतना िी अधधक कुशलता से वि यि कर सकेगा उतना िी अधधक उसका अभ्युदय िोगा। इस पूरे प्रकरण का िम यि अथ िलगा सकतेिैं। अन्यथा तो सामान्यतया व्यजकत अपने-अपनेतरीके से कम िकरते िी िैं और तदनुसार उन्िेंउसका प्रनतफल भी प्राप्त िोता िै। जजतना िी अधधक कोई व्यजकत असंस्कृत िोगा, असभ्य िोगा, जजसके िेतु गलत िोंगे, भावनाएँ अशुद्ध िोंगी उसी hat vec m अनुसार उसके कम िऔर प्रनतफल िोंगे। इस प्रकार से िम इसे देख सकते िैं। ये सभी देखने के तरीके मात्र िी िैं, इससे अधधक कुछ किा निींजा सकता। यिाँगीता का जो संदेश िै वि गूढ़ िै, और सतिी तौर पर वि सिज िी प्रकट निीं िोता।

चातुर्ण्वयं ंर्या सृष्टूं गुिकर्वर्भागिः ।

तस्य कतारवर्वप र्ांवर्द्धयकतारवर्व्ययर् ्।। १३ ।।

१३. गुिों के और कर्ों के वर्भाग के अनुसार चातुर्ण्वय वव्यस्थ्रा र्ेरे द्र्रारा सृषृ्ट की गई है; यद्यवप र् ंैइन (चतुर्व वववर्धान) की सृजृष्ट करनेर्ाला हूाँ तथावप रुझे ेअकताव अवर्निाी जान।

केवल इसी उजकत के बल पर ि◌ी सवथिा यि ननष्कष ि◌निीं ननकाला जा सकता कक गीता इस प्रणाली को एक सनातन एवंसावभिौम सामाजजक व्यवस्था के रूप में मानती थी। अन्य प्राचीन प्रामाखणक ग्रंथ इसे इस प्रकार निीं ◌ंमानते थे,◌े उल्टे वे स्पष्ट रूप से कितिे ◌ैं कक आहदकाल में इसका अजस्तमव निीं◌था तथा ववकास के उत्र काल में इसका अंत ि◌ो जाएगा। तथावप इस उजकत से ि◌म यि समझ सकते ि◌ैं कक सामाजजक मनुष्य के चतुववधि किया-व्यविार को प्राय: प्रमयेक समाज की मनोवैज्ञाननक और आधथकि आवश्यकताओं में सामान्य रूप से अंतननहिित ि◌ी माना जाता था और अतएव इसे परमाममा का ववधान समझा जाता था जो कक मानव के समजष्टगत एवं व्यजष्टगत जीवन में अपने-आप को अशभव्यकत करता ि◌ै।

....समाज की चातुवण्यि ि◌व्यवस्था ककसी ऐसे आध्याजममक समय का एक स्थूल या मूत ि◌रूप मात्र ि◌ै, जो स्वयंउस स्थूल रूप से स्वतंत्र ि◌ै। यि इस अवधारणा पर आधाररत ि◌ै कक जजसके द्वारा कम ि◌ककया जाता ि◌ै उस कता के स्वभाव की समयक् रूप से सुव्यवजस्थत अशभव्यजकत के रूप में उधचत कम ि◌संपाहदत ि◌ों और वि स्वभाव कर्ता कै सिज गुण और आमम-प्रकटनकारी वृवृर्त् के अनुसार उसके जीवन की धारा और क्षेत्र को ननधाररत करे।

VII

श्रीअरववन्द ने गुणों और कमों के ववषय में 'स्वभाव और स्वधम'ि◌ के अध्याय में बिुत ववस्तार से वणनि ककया ि◌ै। वे बता रिे ि◌ैं कक न ि◌ी ये ि◌मेशा थे ◌ेऔर न ि◌ी ि◌मेशा रिने वाले ि◌ैं। ककसी एक समय में ये उपयुकत बन जाते ि◌ैं और ककसी दूसूरे समय में अप्रासंधगक। अब प्रश्न यि ि◌ै कक ये चातुवण्यि ि◌व्यवस्था कया ि◌ै और इसका औधचमय कया ि◌ै? पुराणों में यि वणनि शमलता ि◌ै कक सतयुग में ऐसी कोई व्यवस्था निीं थी। सभी एक समान ि◌ी वण ि◌के लोग थे ◌ेजो परमाममा की ओर अशभमुख थे। उन्ेंि◌म द्ववज, ब्राह्मण आहद कोई भी संज्ञा दे सकतिे। अन्य कोई दूसूरा वण ि◌निीं ◌ंथा। सतयुग एक ऐसा ि◌ी आदश ि◌समय था। तब कफर इन वणों की उमपवर्त् कैसे ि◌ुई? जगदमबा की जब इस पृथूवी पर अशभव्यजकत ि◌ुई तो यद्यवप उनकी अनन्त शजकतयााँ और असंख्य व्यजकतमव ि◌ैं, पर उनमें से उनकी चार मिाशजकतयााँ - मिेश्वरी, मिाकाली, मिालक्ष्मी और मिासरस्वती - ि◌ी प्रधान रूप से अशभव्यकत ि◌ुईं ि◌ैं और काय ि◌कर रिी ि◌ैं। व्यजकत जब जन्म लेता ि◌ै तब वि अज्ञान से ढका ि◌ोता ि◌ै, और ज्यों-ज्यों वि ववकशसत ि◌ोता ि◌ै मयों-मयों ि◌ी उसकी ववशशष्टता का, उसकी संभावनाओं का, उसकी रुधचयों का स्पष्ट बोध ि◌ोने ◌ेलगता ि◌ै। कोई भी दो बच्चे एक जैसे निीं◌ोते। ककसी में अमुक ववशेषेता ि◌ोती ि◌ै तो ककसी में अन्य कोई गुण प्रधान ि◌ोते ि◌ैं। यिा ◌ाँतक कक जुिुवा ◌ाँबच्चों के भी गुण, चाररत्रत्रक लक्षण, उनके रुझान शभन्न-शभन्न ि◌ोते ि◌ैं। बािरी रूप से पता निीं◌चल सकता कक ककसके शलए कया उपयुकत ि◌ै और कया अनुपयुकत।

भारतीय संस्कृनत में एक समय ऐसा था जब इन चार मिाशजकतयों की किया के अनुरूप मनुष्यों के चार ववस्तृतृ ववभाजनों का बोध था और साथ ि◌ी यि बोध था कक ककसी व्यजकत में ककसी एक या अधधक मिाशजकतयों का प्राधान्य ि◌ोनेपर भी वास्तव में ये चारों ि◌ी शजकतयााँ व्यजकत में ववद्यमान ि◌ोती ि◌ैं। ककसी भी शजकत से आरंभ कर के व्यजकत अन्त में इन चारों ि◌ी शजकतयों का पूण ि◌रूप से ववकास करने पर श्रीमाताजी के (भगवान् ◌्के) मद्भाव में जा सकता ि◌ै। इन सभी शजकतयों का यिी ि◌ेतु ि◌ै। परन्तु जब व्यजकत आरंभ करता ि◌ै तब वि अज्ञान से

आच्छाहदत िोता िै और उसे अपनेववषय में, अपने स्वभाव आहद के ववषय में कुछ भी ज्ञान निीं िोता। भारतीय व्यवस्था में यि बोध था कक व्यजकत का जो मूलभूत स्वभाव िै उसकी अशभव्यजकत िोनी चाहिए, अथाित् ्उसके कम िऐसे िोने चाहिये जजसमें कक व्यजकत के स्वभाव को अशभव्यजकत शमल सके। उदािरण के शलए ककसी व्यजकत के स्वभाव में यहद मिेश्वरी की प्रधानता िो पर उसे व्यापार करने ेमें लगा हदया जाए तो यि उसके शलए ववषमता की जस्थनत पैदा कर देगा कयोंकक यि उसके स्वभाव के अनुरूप काम निींिोगा। और इस कारण अपनेसच्चे स्वभाव का बिुत क्षीण-सा अंश िी वि उसके अंदर अशभव्यकत कर पाएगा। या कफर, जजस व्यजकत में मिाकाली की किया की प्रधानता िो, उसे सेवा के काय िमें या कफर व्यापार में ननयोजजत कर हदया जाए, तो उसे वि काय ि अपनी प्रकृनत के अनुकूल निींलगेगा। उसके स्वभाव में तो युद्ध करने, शासन करनेआहद की शजकत और संकल्प िोता िै। इसमें काय िके अच्छे या बुरे िोने का प्रश्न निीं। पर अपनेस्वभाव के अनुकूल न िोनेके कारण व्यजकत उस काय िके प्रनत अरुधच रखता िै। इसशलए िमारी संस्कृनत में यि ज्ञात था कक स्वभाव ननयत कम िोना चाहिये। व्यजकत को कम िउसके स्वभाव के अनुरूप शमलना चाहिए। कुछ के स्वभाव का संतुलन ऐसा िो सकता िै कक चारों िी शजकतयााँ उनमें किया कर सकती िों, तो ऐसे व्यजकत कोई भी कम िकर सकतेिैं। परन्तु अधधकांश लोगों में ऐसा निीं ंिोता। इसशलए भारत में ये चार ववस्तृत ववभाजन थे और भगवान् ्यि कि रिे िैं कक ये ववभाजन स्वयं उन्िोंने िी ककए िैं और इससे व्यजकत को इसकी स्वीकृनत शमल जाती िै कक स्वभाव ननयत कम िी करना चाहिए। वैसे तो प्रमयेक व्यजकत के अन्दर िजारों तरीके की शजकतयााँ िो सकती िैं पर ये चार मोटे तौर पर ववभाजन ककये गए िैं। जैसे कक, यहद व्यजकत में ज्ञान प्राजप्त की उमकण्ठा िै और वि समय का पता लगाना चािता िैतो समय के अन्वेषण में अनेकानेक प्रकार के माग िोतेिैं, अनेक तरीके की मनोवृवृर्त्या ाँ िो सकती िैं। परन्तु व्यजकत को यहद स्वतंत्र अधधकार िो तो वि धीरे-धीरे कुछ चीजों को स्वीकृत या अस्वीकृत कर के अपनेमाग िका पता लगा लेता िै। सामान्य मागदशिन के शलए ये चार ववस्तृत ववभाजन ककए गए और उनके अन्दर भी चयन के बिुत ववकल्प िैं, परन्तु प्रमयेक व्यजकत को ककस समय कैसा काम करना चाहिए यि प्रकृनत की अपनी व्यवस्था िै। और व्यजकत अपनी प्ेरणा, भावना, संकेतों और सुझावों के आधार पर आगे बढ़ता रिता िै। केवल मोटे तौर पर समझने ेके शलए िी चार ववभाजन ककए गए िैं। पिला ववभाजन ज्ञान से संबंधधत िै, जजसमें व्यजकत यि जानना चािता िै कक समय कया िै। उसे िम ब्राह्मण की संज्ञा देते िैं। दूसरा िै क्षत्रत्रय जजसमें शजकत की प्रधानता िोती िै जो केवल न्यायपूण िऔर उधचत आचरण और काय–व्यविार को श्ेरेष्ठ मानता िै और अन्याय, अमयाचार और अनुधचत के ववरुद्ध लड़ता िै। वि समय के शलए लड़ता िै न कक अपने पररवार या सुख के शलए, भले उसे युद्ध में मरना िी कयों ना पड़े।े तीसरा ववभाजन मिालक्ष्मी का कायक्षेत्र िै जजसमें व्यजकत को मनुष्यों के बीच, चीजों के बीच, पशुओं के बीच आपसी तालमेल, प्रकृनत के अंदर समन्वय और उधचत व्यवस्था तथा पद्धनत का बोध िोता िै। उदािरण के शलए, यि बोध कक खेती करनेका उधचत तरीका कया िै, पशुओं का उधचत रख-रखाव कैसे करना

चाहिए, व्यापार को समुधचत रूप से कैसे चलाना चाहिए, ककसी भी चीज का सिी रूप से ननमाण कैसे करना चाहिये। इन सब चीजों के उधचत ववधान मिालक्ष्मी प्रदान करती िैं। जजस व्यजकत में यि मिालक्ष्मी की शजकत िोती िै, वि समन्वय और संतुलन का ज्ञान रखता िै, भौनतक वस्तुओं को कैसे संभालना या प्रयोग करना िै, यि बोध रखता िै। चौथेप्रकार के व्यजकत में मिासरस्वती की शजकत िोती िै जजसके प्रभाव से वि छोटे-छोटे ब्यौरे की

चीजों, जैसे कक िाथ की कारीगरी आहद, में कुशल िोता िै। उदिारण के शलए यहद व्यजकत को अमुक प्रकार का भोजन चाहिए तो उसके शलए यि बोध कक इसमें फलां चीज शमलानी चाहिए, इतनी चीज शमलानी चाहिए, और तैयार िोने के बाद ककस तरि से व्यवस्था िोनी चाहिए कक िर एक व्यजकत को वि भोजन शमल जाये, यि उद्योग मिालक्ष्मी का िै। परंतु भोजन को पकाना कैसे िै, कौनसे मसालों का, ककस मात्रा में प्रयोग करना िै, वि सब ब्यौरेवार तैयारी करना और उसे कियाजन्वत करना मिासरस्वती का कायक्षेत्र िै। वास्तव में तो काय िको संपूण ि रूप से शसद्ध करने ेमें चारों िी शजकतयों की आवश्यकता िोती िै। परंतु यि काय िपर ननभरि करता िै कक चारों में से

प्राधान्य कौनसी शजकत का िोगा। इनमें सबसे ब्रिी िै मिेश्वरी, कयोंकक सबसे पिले तो यि बोध िोना आवश्यक िै कक कया करनेयोग्य िै और कया निीं। ववना इस मोटी रूपरेखा के कोई भी काय िआरंभ िी निीं ंककया जा सकता।

एक बार जब रूपरेखा तैयार िो जाए तब उसके शलए शजकत और ऊजिा की आवश्यकता िोती िै जो कक मिाकाली

प्रदान करती िैं। उसके बाद उस काय िके संपादन में ववशभन्न घटकों में सिी संतुलन और समन्वय स्थावपत करने का काय िमिालक्ष्मी करती िैं, और अन्त में उस काय िके ब्यौरों में पूणतिा लाना मिासरस्वती का कायक्षेत्र िै। इस प्रकार इन चारों शजकतयों के सियोग से िी कोई काय ि पूण ि रूप से समपन्न िो पाता िै। ये चारों िी शजकतयाँ प्रमयेक

व्यजकत में ववद्यमान रिती िैं। परंतु व्यजकत में जजस भी शजकत की प्रधानता िोती िै, उसी के अनुरूप काय िमें उसकी रुधच िोगी और उसी में वि अधधक सफल िो पाएगा। यि सब आन्तररक स्वभाव पर ननभरि करता िै, अन्य ककसी चीज पर निीं। एक िी पररवार में िमें चारों वण िभी देखने को शमल सकतिैं। प्राचीन समय में शभन्न स्वभावों का बोध िोने के कारण िी व्यजकत के स्वभाव के अनुरूप व्यवस्था की जाती थी। परन्तु जब कालांतर में यि आंतररक बोध क्षीण िोता गया तब आंतररक स्वभाव की बजाय जन्म को िी वण िका आधार माना जानेलगा। आज के समय में वि व्यवस्था अपना प्राचीन ववशुद्ध स्वरूप खो बैठी िै। उस व्यवस्था को अब िम भ्मवश वतमिान व्यावसानयक श्रेखणयों की व्यवस्था समझ बैठते िैं। िालाकाँक िर मनुष्य अपनेअन्दर से मिसूस कर लेता ैकिक उसके शलए कौनसा कम िकरना उधचत िै और कौनसा निीं। और यहद वि ककसी ऐसे काय िमें संलग्न िोता िै

जो उसके स्वभाव के अनुरूप न िो तो अधधक समय तक वि उसे निीं कर पाएगा और देर-सवेर उसे वि काय ि छोड़ना पड़ेगा। बिुत से ऐसे व्यजकत िैं जजनके शलए व्यापार उपयुकत निींिोता। कुछ दूसरे ऐसे िैं जजनके शलये कृवषकाय िउपयुकत निीं िोता। विीं, यहद ककसी की प्रकृनत ज्ञान की िो तो दूसरे कम िउसे रास निीं आते। इसी प्रकार सेवा करने ेकी भी िर ककसी की सामथ्य िनिीं ंिोती। प्रमयेक काय िको दक्षतापूवकि और ब्यौरेवार पूणतिा के

न शंकराणवि मलमपाजनत न रे करिवले स्पृहा ।

इतत रांयोऽमभजानातत कर्मवभन वस बध्यते ।। १४।।

साथ िर एक निीं ंकर सकता। इसशलए चूकक व्यजकतयों के आंतररक स्वभाव शभन्न-शभन्न िोनेके कारण आंतररक रूप से वि व्यवस्था पूववित् ्ि ि प्रभावी ि परंतु अशभव्यजकत में वे चार ववस्तृत ववभाजन अब और अधधक

प्रचलन में निीं िैं। इस सब में भगवान् ्भीतर से मागदिशनि करते रिते िैं और वे ेमनुष्य को सिी काय िकी ओर, सिी स्थान पर और सिी संपकि में ले िी जाते िैं।

१४. कर् वर्ुझ पर मलप्त नहीं ंहोते(अपना प्रभार् नहीं ंछोड़ते) न ही रे्री कर् वके िल र्ें कार्ना ही है; इस प्रकार जो र्नुष्य र्ुझे ेजानता है र्ह अपनेकर्ााँ से बद्ध नहीं होता।

मनुष्यों को... अपनेस्वभाव (गुण) और कम िके अनुसार चतुववधि धम िका पालन करना पिता िै और सांसाररक कम िके इस क्षेत्र में वे भगवान् ्को उनके ववववध गुणों द्वारा िी ढूाँढ़ते िैं। परन्तु श्रीकृष्ण किते िैं कक यद्यवप म ैंचतुववधि कमों का कतिा और चातुवण्यि िका स्रष्टा िूाँ तो भी मुझे ेअकतिा, अववनाशी, अक्षर-आममा भी जानना चाहिए। "कम िमुझेशलप्त निींकरते, न कमफिल की मुझेकोई स्पृिा िै", कयोंकक भगवान् ्इस अिभावापन्न व्यजकतमव से तथा प्रकृनत के गुणों के इस द्वन्द्व से परे ननगुिण-ननवैयैजकतक िैं, और अपने पुरुषोत्म-स्वरूप में भी, जो उनका ननवैयैजकतक व्यजकतमव िै, वे कम िके अन्दर रिते िुए भी अपनी इस परम स्वतंत्रता से संपन्न िोतेिैं। इसशलए हदव्य कमों के कर्ताा को चातुवण्यि िका पालन करते िुए भी जो परे िै, ननवैयैजकतक आममा में िै और इसशलए परमेश्वर में िै, उसी को जानना और उसी में ननवास करना िोता िै। इस प्रकार "जो मुझेजानता िै, वि अपनेकमों से निीं ंबाँधता..."

एर्ं ंज्ञात्र्ा कृतं कर् वपूर्ैववप र्ुर्ुक्षुमभः ।
कुरु कर्ैव तस्र्ात्त्र्ं पूर्ःैव पूर्तैरं कृतर् ्।। १५।।

१५. ऐसा जानकर ही पूर्कैवालीन र्ुर्ुक्षुओंद्र्ारा कर् वककया गया था; इसमलये तू भी प्राचीनकालीन पुरुषों के द्र्ारा ककये हुए उस अततप्राचीन प्रकार के कर् वको ही कर।

इसमें भगवान् ्ने अपना स्वयं का उदािरण प्रस्तुत ककया िै कक समस्त त्रत्रलोकी में उन्िें कुछ भी प्राप्त करने ेकी आवश्यकता निीं िै परंतु कफर भी वे कम िमें रत रिते िैं। पुरुषोत्म को न तो कम िका बंधन िोता िै और न िी कामना का, और जो व्यजकत इस बात को जान लेता िै वि कमों में निीं ंबाँधता। भगवान् ्ककसी उद्देश्य की पूनत ि के शलए कम िनिीं ंकरते। और यि ननजश्चत िै कक कम िके पीछे जजस प्रकार का फल िम चािते िैं उसके शलये भगवान् ्कम िनिीं ंकरते। और जो व्यजकत यि जानता िै कक भगवान् ्कम िकरते िुए भी उनमें शलप्त निीं ंिोतेवि कमों से बद्ध निीं ंिोता कयोंकक वि तो केवल भगवान् ्के शलए िी कम िकरेगा। इस प्रकार के कम िकर के बिुत लोग पववत्र िो चुके िैं।

अब प्रश्न यि उठता िै कक जो व्यजकत भगवान् ्के शलए कम िकरना चािता िै उसकी कया ववशेषेताएाँ या गुण िैं। अब चचाि यि िै कक हदव्य कमी जो यि जान जाता िै कक ककस प्रकार कम िभगवान् ्को बाधाँते निीं,ं और कम िमें शलप्त न िोते िुए भी भगवान् ्ककस प्रकार कम िकरते िैं, वि कमी ककस प्रकार कम िकरता िै और उसकी कया पिचान िै? तब तक व्यजकत में असमता िोती िै जब तक वि अपनी इच्छाओंऔर कामनाओंको पूण िकरने के शलए कम िकरता िै। परन्तु जब उसके मन में कोई कामना िी न रिे और वि केवल भगवान् ्की प्रसन्नता के शलये िी कम िकरता िो तब काय िकी सफलता और असफलता से उसे कोई फकि निींपड़ता कयोंकक सच्चे

दृजष्टकोण से तो सभी कमों में सवदिा भगवान् ्का संकल्प िी संशसद्ध िोता िै। और इस कारण समता स्वतः िी आ जाती िै। इन सब बातों का स्पष्टीकरण अब आएगा।

।।. हदव्य कायकिर्ता ि

हदव्य जन्म को प्राप्त िोना, जीव का एक उच्चतर चेतना में उठकर हदव्य बना देने वाले नवजन्म को प्राप्त िोना, और हदव्य कम िकरना, नवजन्म शसद्ध िोनेसे पिले साधन के तौर पर और वि शसद्ध िो जाने के बाद उसकी एक अशभव्यजकत के तौर पर, यिी गीता का संपूण िकमयोग िै। गीता ऐसे ककन्िीं बाह्य लक्षणों से कम ि को ननरूवपत करनेका प्रयास निीं ्करती जजनके द्वारा एक बाह्य दृजष्ट के शलए यि पिचानेजाने योग्य िो सके, या लौककक आलोचना-दृजष्ट के शलए पररमेय अथवा थिा पाने योग्य िो सके, यि तो जान-बूझकर सामान्य नीनतधम िके उन ववशशष्ट लक्षणों को भी मयाग देती िै जजनके द्वारा मनुष्य अपनी मानव-बुद्धध के प्रकाश में (कतव्यिाकतव्यि के शलए) अपना मागदिशनि करने ेका प्रयास करते िैं। गीता जजन लक्षणों से हदव्य कम िकी पिचान कराती िै वे गिन रूप से आंतररक और आममपरक िैं; जजस लक्षण या धचह्न से वे पिचाने जाते िैं वि अलक्ष्य, आध्याजममक और परा-नैनतक िै। वे केवल उस आममा के प्रकाश द्वारा िी पिचाने जा सकनेयोग्य िैं जजससे कक वे उद्भूत िोते िैं।

ककं कर् वककर्मकर्ेतत कर्योऽप्यत्र रो्दहताः ।
तत्ते कर् वप्रक्ष्यामर् यजज्ञात्र्ा रो्क्ष्यसेऽर्भात् ्।। १६ ।।
१६. कर् वक्या और अकर् वक्या है इस वर्षय र्ें कवर् (ऋवष अथर्ा ज्ञानी पुरुष) भी भ्रातत एर्ं रो्दहत हैं। उस कर् व को र् ्ैंतुझे बतलाऊँगा जजसे जानकर तू सम्पूि वअतनष्टों से र्ुक्त हो जाएगा।

करि्वो ह्यवप बोद्धव्यंबोद्धव्यंच वर्करि्वः ।
अकरि्वश्र् बोद्धव्यंगहना करि्वो गततः ।। १७।।
१७. व्यजक्त को कर् वके स्र्रूप को जानना चादहये और वर्कर् वअथात्व ्वर्परीत कर् वके स्र्रूप को भी जानना चादहये और अकर् वके स्र्रूप को भी जानना चादहये; क्योंकक कर्ााँ का र्ाग वघने र्न के सर्ान और उलझन र्ाला है।

'झेलता मैंसमान भाव सेइस धरा कीघटनाओं ंको;

सभी में सुनाई देती तेरे कदमों की आिट तेरे अगोचर चरण

मेरे सममुख ननयनत के पथों पर करतेप्रयाण। जीवन के संपूण ि
ववशाल सूत्र का तुम िी िो पूणागां।
कर न सकता कोई संकट ववचशलत मेरी आममा की जस्थरता को:
मेरे कम ितेरे िैं; करता म ैंतेरे काय िऔर आगे ननकल जाता;
असफलता सिारा पाती तेरी अमर भुजाओं में,
सफलता भाग्य के दपणि में प्रनतत्रबंत्रबत तेरा माग ििै।
मानव के भाग्य से इस भीषण संघष िमें
हृदयस्थ तेरी मुसुकान देती मुझेसमस्त बल;
मुझमें तेरी शजकत कायरित िै अपनी ववराट् योजना ितेु,
काल-सप िकी लंबी मंदगनत से अप्रभाववत
कोई शजकत निीं जो ित कर सके मेरी आममा को,
जो करती तुझमें ननवास तेरी उपजस्थनत िी िै मेरी अमरता।

-श्री अरववन्द

संसार में कम िएक गिन जंगल के समान िै, जजसमें मनुष्य अधधक-से- अधधक अपनेकाल के ववचारों, अपनेव्यजकतमव के मानदण्डों और अपनेपररवेश के अनुसार ठोकरें खाता िुआ चलता िै; या यों किें कक वि चलता िै अनेक कालों के ववचारों, अनेक व्यजकतमवों के मानदण्डों और अनेक सामाजजक अवस्थाओंके नैनतक- धमों के अनुसार जो कक एक दूसूरे से अस्तव्यस्तता में घननष्ठ रूप से शमले िुए िैं, जो अपनेसमस्त ननरपेक्ष और अववनाशी िोने के दावे के बावजूद भी तामकाशलक और रूहढ़गत िी िोते िैं, और युजकतपूण ििोने का हदखावा करने े के बावजूद अशास्त्रीय और अयौजकतक िी िोतीं। और अंतत:, इस सबके बीच सुननजश्चत कम–ववधान के ककसी मितर्म आधार और मूल समय को ढूाँढ़ता िुआ ज्ञानी अंत में अपने-आप को इस चरम प्रश्न को उठाने के शलए बाध्य पाता िै कक किीं यि सारा कम िऔर स्वयं जीवन भो केवल एक भ्म तथा एक जाल-फासाँ तो निींिैं और किीं इस कलांत और भ्ाजन्त-मुकत मानव-जीव के शलए कम िका पररमयाग कर अकम िअपनाना िी अंनतम आश्रय तो निीं ंिै। परन्तु श्रीकृष्ण किते िैं कक इस बारे में ज्ञानी भी भ्शमत और मोहित िो जाते िैं। कयोंकक किया द्वारा, कमों द्वारा, न कक अकम िद्वारा, ज्ञान और मोक्ष की प्राजप्त िोती िै।

'संसार में कम िएक गिन जंगल के समान िै, जजसमें मनुष्य अधधक-से-अधधक अपने काल के ववचारों, अपनेव्यजकतमव के मानदण्डों और अपने पररवेश के अनुसार ठोकरें खाता िुआ चलता िै;' जव व्यजकत कम िकरता िैतब उसके मन में अनेकानेक ववचार तथा प्रश्न उठते िैं कक कौन-सा कम िकरना चाहिए, कौन-से कम िमें फायदा िै, ककस कम िमें सुख शमलेगा। कम िके चयन करनेका यि एक आधार िै। और दूसूरा यि कक व्यजकत के मन में आता िै कक अमुक कम िकरना ठीक िै पर उसको लगता िै कक वि दूसूरा कम िकरना भी ठीक िै। इन ववचारों के बाद अब वि सोचता िै कक इनमें से एक कम िकरना तो संभव िै पर दूसूरा करना तो असंभव िै या कफर अधधक मुजश्कल

ैकियोंकक उसके शलए तो इन-इन चीजों की आवश्यकता िोगी। इसके अनतररकत मनुष्य के सामने एकाएक िी कोई सुअवसर भी आ सकता िै और व्यजकत अपनिेाथ के काय िको छिोे़कर उसमें लग जाता िै। अधधकांशतः इसी तरि मनुष्य अपनेकमों का चुनाव करते िैं और इस चुनाव में व्यजकत की पररजस्थनत, वातावरण, पररवेश, ववचार, भावना और लोगों के साथ उसके संबंधों की भी भूशमका रिती िै। इनके साथ–ी-साथ सदा िी यि संभावना भी रिती िै कक कोई अप्रमयाशशत सुअवसर या संयोग प्राप्त िो जाए और वि इन सब से छूटकर ककसी अन्य कम िका चुनाव कर ले। इस तरीके के कम िका जंगल इस संसार में िै। 'या यों किें कक वि चलता िै अनेक कालों के ववचारों, अनेक व्यजकतमवों के मानदण्िों और अनेक सामाजजक अवस्थाओं के नैनतक-धमों के अनुसार जो कक एक दूसूरे से अस्तव्यस्तता में घननष्ठ रूप से शमले िुए िैं,' कमों के ननणयि में भी कोई एक िी ननयत-ननधाररत ववचार या मानदंि निीं िै, पारंपररक या शास्त्र-सममत ववचारों के आधार पर भी एक व्यजकत कम िकरने ेका एक तरीका बताता िै और दूसूरा व्यजकत दूसूरा, तो इस प्रकार िजारों तरीकों के परस्पर पूरक या ववरोधी ववचार आकर उपजस्थत िो जाते िैं। िमारे अपनेमन में भी उथल-पुथल चलती रिती िै और अनेकानेक तरीके के ववचार गुजरते े रितें और साथ िी यि भी तय निीं ंिै कक ककस समय ककस प्रकार का सुअवसर आ जाए। यि सारा मेलजोल चलता रिता िै और यि मेलजोल भी केवल ककसी अवधध ववशेषे का िी निीं बजल्क इसमें पूवजिन्मों की व भूतकाल की घटनाओं और भववष्य की प्रमयाशाओं और वतमिान जीवन और ववचारों की शमलावट िोती रिती िै। इसके अनतररकत इसमें व्यजकत की आकांक्षा, भय, कामना आहद िजारों चीजों का शमश्रण चलता रिता िै कयोंकक िजारों तरीके की शजकतयााँ िोती िैं जो िमें अपने उपयोग में लेना चािती िैं, और जजस समय जजस शजकत को अवसर शमल जाता िै विी िमें अपने उपयोग में ले लेती िै। और इस सब प्रकार के भ्म या भ्ांनत में मनुष्य कम िकरता रिता िै जजसका आसानी से कोई ओर-छोर निीं ंशमलता। इसीशलए मनुष्य पाता िै कक वि सोच कर कुछ चलता िै जबकक उसका पररणाम कुछ और िी ननकलता िै। इन आधारों से कम िके जो ननणयि िोतें उनसे सिज िी छुटकारा निींपाया जा सकता। यि बिुत िी जहटल ववषय िै। 'और अंततः, **इस सबके बीच सुतनजश्चत कर्-व वर्धान के ककसी ईत्तर् आधार और रूल सत्य को ढूाँढ़ता हुआ ज्ञानी अंत र्ें अपने-आप को इस चरर् प्रश्न को उठाने के मलए बाध्य पाता है कक कहीं यह सारा कर् वऔर स्यं जीर्न भी केर्ल एक भ्रर् तथा एक जाल–ासाँ तो नहीं ंहै और कहींइस क्लांत और भ्राजतत-रुक्त र्ानर्-जीर् के मलए कर् वका पररत्याग कर अकर् वअपनाना ही अंततर् आश्रय तो नहीं ंहै।'** अगर व्यजकत के मन में यि भाव आ भी जाए कक इन कमों से वि ऊपर उठ जाएगा, भगवान् ्की ओर चलेगा या कफर पूणतिा के माग िपर चलेगा और उसके शलये वि प्रयास भी करता िै, तब भी वि पाता िै कक वि अपने कमों में फाँसता िी िै, कुछ भी करने से कोई उपाय निीं ंननकलता िै। व्यजकत जब साधना-माग िमें िोता िै तब आरंभ में वि देखता िै कक जब तक वि केवल भगवान् ्का भजन करता िै और कम िकम-से-कम िी करता िै तब तक तो वि कुछ िद तक भगवान् ्पर केंहरत रि पाता िै परन्तु जैसे िी वि कोई व्याविाररक कम िकरता िै, या ककन्िीं ऐसे व्यजकतयों के संपकि में आता िै जो इस माग िपर निींिैं तो उसकी चेतना में धगरावट आती िै जजसके कारण साधना से शभन्न बातें मन में आनेलगती िैं। इसशलये कमों को करने से ऐसा लगता िै मानो कम िकरना योग निीं ंबजल्क एक प्रकार का रोग िै। इससे तो अच्छा िै कक संसार से अपने-आप को िटा के शाजन्त से रि जाए, भगवान् ्का ध्यान ककया जाए, उनकी चेतना से जुिा जाए, और कफर समय पाकर जब नश्वर

शरीर नष्ट ि◌ो तो ि◌ो जावे। जो लोग साधना करते ि◌ैं उनमें सामान्यतः तो यि धारणा प्रमयक्ष या अप्रकट रूप में अंदर ि◌ोती ि◌ी ि◌ै। परन्तु यि सब करने पर भी व्यजकत पाता ि◌ै कक वास्तव में इस समस्या का समाधान निीं ि◌ोता। यिा ◌ाँतक कक जो लोग साधना माग ि◌में ि◌ैं उन्ि◌ें भी अलग-अलग मात्रा में अपनी-अपनी शशकायतें रिती ि◌ैं। और इस सब से थक कर अन्त में व्यजकत इस ननष्कष ि◌पर पिुाँचता ि◌ै कक यि सब प्रपंच ि◌ी शमथ्या ि◌ै और इस प्रकार वि भ्रम

में पि़ जाता कक कया ककया जाए कयोंकक कम ि◌करने ◌के साथ ि◌ी प्राण अपनी किया चालू कर देता ि◌ै और जब तक

व्यजकत इसके ववषय में सचेत ि◌ो पाता ि◌ै तब तक तो बिुत समय ननकल चुका ि◌ोता ि◌ै। और उससे ननकल कर व्यजकत ननश्चय करता ि◌ै कक अब वि अधधक सचेत रिने का प्रयास करेगा पर कुछ ि◌ी समय बाद वि पाता ि◌ै कक प्राण की अन्य कोई किया चल रिी ि◌ै और वि उसमें फाँसा ि◌ुआ ि◌ै। इसशलए व्यजकत को लगता ि◌ै कक भले कोई भी

कम ि◌कर लो पर कामनाओंसे मुजकत पाना तो संभव ि◌ी निीं ि◌ै। कोई न कोई सूक्ष्म ि◌ेतु ◌ुतो चलता ि◌ी रिता ि◌ै। इस

तरीके से व्यजकत कम ि◌के ववषय में बिुत ि◌ी अधधक भ्ांनत में पि़ जाता ि◌ै कक आखखर करे कया। **'श्रीकृष्ट्**
इस बारे में श्रीकृष्ण किते ि◌ैं कक शुरू में व्यजकत के कम ि◌ऐसे ि◌ोने चाहिए जो उसे परमामिा की ओर ले
कहते ◌ैं
जाएाँ। और एक बार जब व्यजकत भगवान् ◌्से जिु जाए तो उनकी पे्ररणा के अनुसार सारे कम ि◌करनेचाहिये।
कक इस बारे रें ज्ञानी भी भ्रमर्त और रोदहत हो जाते हैं। क्योंकक कक्रया द्वारा, कराँ द्वारा, न कक अकर वद्वारा,
श्रीमाताजी जो कम ि◌कराएाँ वे ि◌ी करने चाहिये। उन कमों की पिचान कैसे ि◌ो और उन्ि◌ेंसपाहदत कैसे ककया जाए,
ज्ञान और रोक्ष की प्राजप्त होती है।'
इन सब प्रश्नों की चचािगीता आरमभ से ि◌ी कर रिी ि◌ै और साथ ि◌ी उसमें नए तत्त्व भी जि़ोती जा रिी ि◌ै कक ज्ञान कमों को आगे बढ़ाता ि◌ै और कम ि◌करने ◌से ज्ञान और अधधक बढ़ता ि◌ै और ज्ञान में वृद्धिध कमों में सुधार लाती ि◌ै। यि ि◌म चलता रिता ि◌ै और जब श्रीमाताजी के प्रनत भजकत आ जाती ि◌ै तब इनमें एक ववशेष तत्त्व सजममशलत ि◌ो जाता ि◌ै। भजकत के आनेसे कमों में और अधधक शुद्धध आ जाती ि◌ै। ये सारी बातें गीता ि◌में धीरे-धीरे समझा रिी ि◌ै। इस प्रकार गीता का सारा ववकासिम त्रबल्कुल संबद्ध तरीके से और युजकतयुकत तरीके से चल रिा ि◌ै। आरंभ में वि ननष्काम कम ि◌के ववषय में बताती ि◌ै। और जब प्रश्न यि उठता ि◌ै कक ननष्काम कम ि◌करें कैसे तब उसके उत्तरस्वरूप वि किती ि◌ै कक भगवान् ◌की प्रसन्नता के ननशमत्त् कम ि◌करो। उसके बाद वि इसकी व्याख्या करती ि◌ै कक ज्ञान और कम ि◌का कया संबंध ि◌ै। यि व्याख्या करने के बाद वि यि चचाि करती ि◌ै कक हदव्यकमी की जस्थनत कैसे प्राप्त ि◌ो जो लाभ-अलाभ में, जय-पराजय में और सफलता-असफलता में समान रिता ि◌ै। उसके बाद इस रिस्य का ननरूपण करती ि◌ै कक यि सममव कैसे प्राप्त ि◌ोगा। धीरे-धीरे गीता इसमें भजकत के तत्त्व को समाववष्ट करती ि◌ै और उन प्रभु का स्वरूप बतलाती ि◌ै जजनके प्रनत यि भजकत अवपित करनी ि◌ै। इस प्रकार सारा ि◌ी ि◌म त्रबल्कुल संबद्ध रूप से चल रिा ि◌ै।

कर्ण्वयकर् वयः पश्येदकर्णवि च कर् वयः ।

स बुद्धधरातर्नुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्कृवत् ◌्।। १८ ।।

१८. जो नुष्य कर् वर्ं अकर् वको देखता है और करों के पररत्याग र्ं भी कर् वको होतेहुए देखता है ई नुष्यों र्ं सच्ची बुद्धधर्ाला और वर्ेकयुक्त होता है; ई योगयुक्त होता है, और बहुरुखी वश्र्व्यापी कर् वकरनेर्ाला होता है।

तब समाधान कया िै? कम िका वि कौन-सा प्रकार िोगा जजसके द्वारा िम जीवन के अशुभु से छूट सकेंगे, इस संशय, त्रुहट और शोक से, अपनेववशुदुधतम और श्रेष्ठतम िेतुओं से प्रेररत कमों के भी शमले-जुले, अशुद्ध और भ्ांनतजनक पररणाम से, इन लाखों-लाख प्रकार की बुराइयों और दुःखों से, मुकत िो सकेंगे? उत्र् शमलता िै कक कोई बाह्य ववभेद करने की आवश्यकता निीं, इस जगत् के ककसी भी काय िके पररमयाग की आवश्यकता निीं; िमारी मानव-गनतववधधयों के चारों ओर कोई पररसीमा या बाि लगानेकी आवश्यकता निीं; इसके ववपरीत, सभी कम िककये जानेचाहिए, परंतु भगवान् के साथ योगयुकत िुई आममा से, युकतः कृमस्नकमकृित्। पर् **अकम,** (सिी अथम) ििीं; जो व्यजकत उच्चतम बुद्धध की अंतदृजिष्ट को प्राप्त िो गया िै, वि देखता िै कक इस प्रकार का अकम िभी स्वयंसतत् िोनेवाला एक कम ििै, एक ऐसी अवस्था ै जो प्रकृनत और उसके गुणों की कियाओंके अधीन िै। जो मन शारीररक अकमण्यिता का आश्रय लेता िै, वि अभी भी इसी भ्म में िै कक वि स्वयंकमों का कतिा िै, न कक प्रकृनत; उसनेज़िता या ननजष्यिता को मोक्ष समझ शलया िोता िै; वि यि निींदेखता कक जो पमथर या ढेले की ज़िता से भी अधधक चरम ज़िता प्रतीत िोती िै उसमें भी प्रकृनत कियारत िोती िै, उस पर भी प्रकृनत अपना अक्षुण्ण अधधकार रखती िै। इसके ववपरीत, कम िकी ववपुल बाढ़ में भी आममा अपनेकमों से मुकत िोती िै, वि कतिा निींिोती, जो कुछ ककया जा रिा िै उससे बाध्य निीं िोती, और जो आममा की मुकतावस्था में ननवास करता िै न कक प्रकृनत के गुणों के बंधनों में, उसी को कमों से मुजकत शमलती िै। यिी स्पष्टतः गीता का आशय िोता िै जब वि यि किती िै कक 'जो कम िमें अकम िको और अकम िमें कम िको देखता िै विी मनुष्यों में वववेकी और बुद्धधमान् िै।' यि कथन सांख्य द्वारा पुरुष और प्रकृनत के बीच ककये भेद पर, अथात् कमों के बीच भी शाश्वत रूप से प्रशांत, शुद्ध और अचल मुकत ननजष्यि आममा के तथा ननमय कियाशील प्रकृनत - जो ज़िता और अकमण्यिता में भी उतनी िी कायरित िै जजतनी कक उसके घोर कम िकी गोचर आकुलता के प्रमयक्ष उमपात में- के बीच ककये भेद पर आधाररत िै। यिी वि उच्चतम ज्ञान िै जो बुद्धध का उच्चतम प्रयास िमें प्रदान करता िै, और इसशलए जो कोई भी इस ज्ञान को अधधकृत रखता िै विी यथाथ िमें बुद्धधमान् िै, **'स बुद्धधर्ान् र्नुष्येषु',** - न कक कोई ऐसा भ्ान्त या मोहित बुद्धधवाला मनुष्य जो जीवन और कम िकी परख ननमनतर बुद्धध के बाह्य, अननजश्चत और अस्थायी लक्षणों से करता िो। इसशलए मुकत पुरुष कम िसे भयभीत निीं िोता, वि सभी कमों का करनेवाला ववशाल और मित् कमी िोता िै (कृमस्नकमकृित्)। वि औरों की तरि प्रकृनत के वश में रिकर कम ििनिींकरता, अवपतु आममा की नीरव जस्थरता में प्रनतजष्ठत िोकर, शांतपूवकि भगवान् के साथ योगयुकत िोकर कम िकरता िै। भगवान् उसके कमों के स्वामी िोतेिैं, वि उन कमों का ननशमत्मात्र िोता िै जो उसकी प्रकृनत अपनेस्वामी को जानते िुए, उन्िींके वश में रितेिुए करती िै।

इसमें यि स्पष्ट तरीके से बताया गया िै कक कया कम ििै और कया अकम ितथा कौन कतिा िै और कौन अकता।ि जो व्यजकत कभी भी कोई कम ििनिीं करता, जो त्रबल्कुल पमथर के समान ननजष्यि रिता िै, वि भी प्रकृनत

का दास िै और उसकी किया से निीं बच सकता। भगवान् ्की परा प्रकृनत के द्वारा िी यि समस्त अशभव्यजकत िोती िै अतः इससे कोई निीं ंबच सकता और इससे बचने का कोई उपाय भी निीं ंिै। यहद कोई व्यजकत यि सोचता िै कक वि कुछ भी कम िन कर के पमथर की तरि ज़ि िोकर कमों से मुकत िो जाएगा तो यि उसका भ्म िै। ऐसे व्यजकत के अकम िमें भी घोर तामशसक प्रकार का कम िोता िै। विीं कम िके अंदर घोर रूप से संलग्न हदखाई देने पर भी संभव िै कक व्यजकत वास्तव में कोई कम िन कर रिा िो कयोंकक वि जानता िै कक कम ितो भगवान्

्की

शजकत के द्वारा संपाहदत िो रिे िैं और प्रकृनत के ननयंता के साथ सतत् ्रूप से जुड़े िोने के कारण उसके सारे कम ि

प्रकृनत के िोते िैं और वि स्वयंउनसे मुकत िोता िै। इसशलए वि कम िकरते िुए भी कमों से मुकत िोता िै,

उसके

ऊपर कमों का कोई भी बुरा प्रभाव निीं ंपड़ता। और यिी कमयोग का आधार िै अन्यथा तो कम ियोग निीं ंअवपतु रोग स्वरूप िी िोता िै। जब तक व्यजकत का भगवान् ्के साथ सतत् ्संपकि साधधत निीं िोता तब तक वि चािे कम िकरे या न करे, अधधक करे या कम करे, वि कमरिोगी िी िोता िै कयोंकक वि अपनी कामनाओंऔर इच्छाओं के शलए िी कम िकरता िै। जब व्यजकत पुरुषोत्मि के साथ एक िोता िै तभी वि कमों का स्वामी िोता िै

अन्यथा तो

वि उनका दास िी िोता िै। अक्षर पुरुष में जस्थत िोने ेपर तो व्यजकत कमों से त्रबल्कुल दूर िट जाता िै और वि

कोई भी सृजनाममक काय िनिीं कर सकता कयोंकक अक्षर तो एक जस्थनत िै। उस जस्थनत में व्यजकत को जीवन में कम िका कोई आधार प्राप्त निीं ंिोता। केवल पुरुषोत्मि के साथ एक िोने पर िी व्यजकत को कमों का आधार प्राप्त

िोता िै। इसी जस्थनत में व्यजकत कमों को करने ेपर भी उनसे परे रिता िै। इस प्रकार गीता ने कमों का समाधान

बता हदया िै कक यहद व्यजकत भगवान् ्के साथ युकत िै तो उसके सारे कम िबुित अच्छे िैं और भगवान् ्उसकी सिायता कर रिे िोते िैं और यहद व्यजकत उनके साथ युकत निीं ंिै तो वि ककतनी अधधक कम िकरे या न करे,

वि अपनी इच्छाओंऔर कामनाओं से [illegible] इसशलए उसके सभी कम िकम िनिीं अकम िी िोते िैं और यि एक प्रकार का कमयोग िै। पर इसमें समस्या यि आती िै कक व्यजकत उस आदश जस्थनत

यस्य सर्े सरा्रम्भाः कासङ्कल्पवजजतकाः ।
ज्ञानाजग्नदग्धकर्ा तर्ाहुः पजण्डतं बुधाः ।। १९।।

१९. जजसके सम्पूणग कायों के प्रारंभ और अनुष्ठान कामनायुक्त [illegible] संकल्प से रहित हैं, ज्ञानरूपी अजग्न से जजसके कर्म दग्ध हो गये हैं, उसे ज्ञानी जन पजण्डत कहते हैं।

मे एकाएक [illegible] जा सकता इसशलए [illegible] उपाय [illegible] इसके समाधान के [illegible] गया िै। यज्ञ के द्वारा िी व्यजकत कमरिोग से

कमयोग की ओर जा सकता िै। वतमान प्रसंग में तो इसका वणन िै कक जो व्यजकत इससे मुकत िै उसके कम ि

त्यक्त्वा कर्िलासङ्गं तनत्यतृप्तो तनराश्रयः ।
कर्ण्यमभप्ररृ्तोऽवप नैर् ककजञ्चत्करोतत सः ।। २० ।।

ककस प्रकार के िोते िैं।

२०. अपने कर्ों के िलों र्ें आसजक्त का पररत्याग कर के, ककसी स्तु पर तनभरव नहीं रहतेहुए सदा संतुष्ट, ई अपनी प्रकृतत के द्रारा कर् वर्ें प्रर्ृतृत रहने पर भी (स्यं) कुछ नहींकरता।

इस ज्ञान की प्रदीप्त गिनता और पववत्रता द्वारा उसके कम िजला हदए जाते िैं जैसे कक अजग्न में जलकर भस्म िो गए िों और उसका मन इनके द्वारा ककसी भी दाग या धब्बे से मुकत, जस्थर, शान्त, अचल, ननमलि, शुभ्ु और पववत्र बना रिता िै। कतृमिव-अशभमान से शून्य इस मोक्षदायक ज्ञान में जस्थत िोकर समस्त कमों को करना िी हदव्य कमी का प्रथम लक्षण िै।

दूसूरा लक्षण िै कामना से मुजकत; कयोंकक जिाँकिता का व्यजकतगत अिकार निीं िोता विााँकामना का रिना असंभव िो जाता िै, विााँकामना भूखों मरनेलगती िै, त्रबना ककसी आश्रय या प्रोमसिान प्राप्त ककये यि क्षीण िो जाती िै और भरण-पोषण के अभाव में नष्ट िो जाती िै। बाह्यतः मुकत व्यजकत भी दूसूरे लोगों की तरि िी समस्त कमों को करता िुआ हदखायी देता िै, कदाधचत् ्वि कमों को ब्रे ेपैमाने पर और अधधक शजकतशाली संकल्प और वेगवती शजकत के साथ करता िै, कयोंकक उसकी सकिय प्रकृनत में भागवत् ्संकल्प का बल काम करता िै; परन्तु उसके समस्त उपिमों और उद्योगों में कामना के िीनतर भाव और ननमनतर इच्छा को सवथिा ननष्काशसत कर हदया गया िोता िै, **सरे् सर्ारम्भाः कार्सङ्कल्पर्जजतवाः।** उसने अपनेकमों के फल की समस्त आसजकत का पररमयाग कर हदया िोता िै, और जिाँव्यजकत फल के शलए कम िनिीं करता अवपतु केवल कमों के स्वामी के एक नैव्यजिकतक यंत्र के रूप में िी सारा कम िकरता िै विााँ कामना-वासना कोई स्थान िी निीं ंपाती... मुकत पुरुष का मानव-मन और अंतराममा कुछ भी निींकरता, **न ककजञ्चत् ्करोतत;** यद्यवप वि अपनी प्रकृनत के द्वारा कम िमें प्रवृरूत् तो िोता िै, पर कम िकरती िै वि प्रकृनत, वि की शजकत, वि धचन्मयी भगवती जो हदव्य अंतवासिी के द्वारा ननयंत्रत्र िोती िै।

इसमें दो लक्षण बताए गए िैं। एक िै ज्ञानाजग्न के द्वारा अिं भाव का नष्ट िो जाना और दूसूरा लक्षण िै, **सरे् सर्ारम्भाः कार्सङ्कल्पर्जजतवाः**, अथात् िव्यजकत का कम ितो करना परन्तु उसमें ककसी प्रकार की कामना का न िोना। इस प्रकार - काम-संकल्प से मुजकत और अिं से मुजकत - हदव्य कमी के ये दो लक्षण बताए गए िैं। और भी कई प्रकार के लक्षण श्रीअरववन्द बताएँगे। परन्तु इन दोनों में एक तो यि िै कक ज्ञानाजग्न व्यजकत के अिं को दग्ध कर के शमटा देती िै। और दूसूरा यि कक व्यजकत की कामनाएँ नष्ट िो गईं िैं और उसके सारे कम िभगवान् ् की हदव्य प्रकृनत को, भागवत् ्शजकत को समवपति िैं, और वि हदव्य प्रकृनत िी उसके कम िकरती िै। व्यजकत की उनमें कोई शलप्तता निीं ंिोती। जैसे गीता में भगवान् ्ने किा िै कक 'कम ितो केवल मेरी प्रकृनत िी करती िै, केवल मूढ़ जन िी ऐसा सोचते िैं कक कम िवे स्वयंकर रिे िैं।' पिले तो गीता में किा गया कक 'कमण्येिवाधधकारस्तु मा फलेषु कदाचन' कक व्यजकत को केवल कम िकरनेका अधधकार िै परन्तु कमों को करने पर उसे फल की अपेक्षा निीं ं करनी चाहिए। परंतु उसके बाद यि बता हदया कक कम ितो भगवान् ्की परा शजकत िी करती िै। विी शजकत कममों का आरमभ करती िै और विी उसको पूरा करती िै। और जो व्यजकत इस रिस्य को जान जाता िै कक कम िका आरंभ, उसका संपादन और उसका समापन तो भगवान् ्की हदव्य प्रकृनत करती िै, उसमें कफर काम-संकल्प निीं

रि जाता। और इस जस्थनत में अपनेको कति बतानेका अिभाव निींिति और अिभाव न िो तो कामना स्वतः िी निीं ंआएगी। कामना तो ज़ि से िी समाप्त िो जाती िै। कामना तो केवल इसशलए आती िै कयोंकक व्यजकत अपने-आप को अधूरा या अतृपूत मिसूस करता िै और यि सोचता िै कक म ैंएक अलग व्यजकतमव िूूँ इसीशलए वि कभी ककसी चीज की इच्छा करता िै, तो कभी ककसी चीज से बचनेका प्रयास करता िै। परन्तुजब उसे यि भान िो जाता िै कक उसके अनतररकत संपूण िब्रह्माण्ड्में अन्य ककसी चीज का अजस्तमव िी निींिै तिब कफर वि कामना ककस चीज की करेगा। ऐसी जस्थनत आने पर कामना तो ज़ि से िी समाप्त िो जाती िै। कामना इसीशलए तो खराब बताई जाती िै कयोंकक व्यजकत जब भी कामना करता िै तभी अपने अिं को, अपने पृथक् अजस्तमव को - कक वि अलग िै और दूसूरे लोग अलग िैं - बढ़ावा देता िै और इसी पर आग्रि करता िै। िर बार जब व्यजकत ककसी कामना से और अिभाव से कम िकरता िै कक 'म'ैं यि कम िकर रिा िूूँ, 'म'ैं अमुक चीज प्राप्त करना चािता िूूँ या अमुक चीज प्राप्त निींकरना चािता, तो िर बार इस 'म'ैं 'मेरे' के अज्ञान की छाप लग जाती िै जजससे बचनेके उपायों की िम बात कर रिे िैं। इसशलए ककसी भी प्रकार की कामना का िोना व्यजकत को माग िपर आगे निीं ंबढ़ने देता। िमें यि ध्यान रखना चाहिए कक कामना तथा संकल्प या इच्छा-शजकत में भेद िै। इच्छा-शजकत या संकल्प शभन्न चीज िै। उसमें व्यजकत यि मिसूस करता िै कक वि िी सब कुछ िै और वि चािे जो कर सकता िै। और सच्चा संकल्प तब आता िै जब व्यजकत भगवान् ्के साथ पूण िरूप से एक िो जाता िै। जब अपने-आप को एक पृथक् व्यजकतमव मानकर व्यजकत कुछ करने का प्रयमन करता िै तो यि कामना िै। व्यजकत में इन दोनों चीजों का शमश्रण चलता रिता िै। परन्तु उसे इस चीज का बोध निींिति। जब व्यजकत श्रीमाताजी के साथ युकत िो जाता िै तब उसके कम िबािरी रूप से चािे कैसे भी प्रतीत कयों न िों, पर वे भागवत् ्संकल्प द्वारा चाशलत िोते िैं। उनमें कामना का तो कोई प्रश्न िी निीं ंउठता।

इसका यि तामपय िनिीं ंिै कक कम िको पूणतिः समयक् रूप से, सफलतापूवकि, उपयुकत साधनों को लक्ष्य के अनुरूप रखकर न ककया जाए: इसके ववपरीत, योगस्थ िोकर शाजन्त के साथ कम िकरने ंसे कुशल कम िकरना जजतना अधधक सुलभ िोता िै उतना आशा और भय से अंधे िोकर या कफर अधीर मानव-इच्छा की उमसुकतापूण ि घबरिट के बीच दौि-धूप करती िगमगाती बुद्धध के ननणयिों द्वारा लाँघी ंबने िुए कमों को करनेसे निीं ंिोता। गीता अन्यत्र किती िै, योगः कमसिु कौशलम्,् कक योग िी िै कम िका सच्चा कौशल। परंतु यि सब िोता िै नैयजकतक भाव से एक मिती ववश्व-ज्योनत और शजकत के द्वारा जो व्यजष्टगत प्रकृनत के माध्यम से अपना कम ि करती िै... कम िका फल वैसा भी िो सकता िै जजसे सामान्य मन सफलता समझता िै, अथवा यि उस मन को पराजय और ववफलता' भी प्रतीत िो सकती िै, परंतु हदव्यकमी के शलए यि सदा िी अभीष्ट सफलता िोती िै, जो उसके अपने द्वारा अशभप्रेेत या अभीष्ट निीं िोती, अवपतु कम िऔर फल दोनों के सवज्ञि संचालक के द्वारा िोती ै, कयोंकक वि (हदव्यकमी) ववजय की खोज निीं ंकरता, अवपतु केवल उस भगवमसंकल्प और प्रज्ञा की चररताथतिा के शलए यमन करता िै जो अपनेलक्ष्यों की संशसद्धध जजतनी ऊपरी रूप से हदखने ंमें जो जय प्रतीत िोती िै उसके द्वारा करती िै और उतनी िी और प्रायः उससे भी किीं अधधक शजकत के साथ जो हदखने में असफलता प्रतीत िोती िै उसके द्वारा करती िै। अजुनि को युद्ध के आदेश के साथ-साथ ववजय का आश्वासन भी प्राप्त िै; परंतु यहद उसके समक्ष ननजश्चत िार भी िोती तो भी उसे अवश्य युद्ध करना िै; कयोंकक जजन कियाशजकतयों के समिू

के द्वारा भगवान् ्का संकल्प अवश्य सफल िोता िै उसमें तामकाशलक भाग के तौर पर अजुनि को वतमिान में यि युद्ध-कम िी सौंपा गया िै।

ि्योग यिी कमों में कुशलता िै। जबकक योगः कमसि कौशलम्ʼ् अथात्
अिवश कम िकरता िै तो न तो उसकी बुद्धध शांत िोती िै और न िी उसका धचर्त् शांत िोता िै और वि धचन्तातुर और उद्ववग्न िोकर कम िकरता िै। विीं, जब व्यजकत योग करता िै तो उसकी बुद्धध शांत-प्रशांत िोती िै। ककसी भी प्रकार के कमों को करते िुए उसका हृदय ववचशलत निींिोता। ऐसे कम िमें लोग जजसे सफलता किते िैं वि भी उसके शलए उतनी िी मित्त्वपूण िोती िै जजतनी कक वि जजसे वे असफलता कितेिैं। इसशलए उसके सारे कम ि छोटे-से-छोटे ब्यौरे में भी पूणतिा के साथ ननष्पाहदत िोते िैं। 'योगः कमसि कौशलम्ʼ् का तामपय िककसी कुशल कारीगर या व्यापारी या कफर बढ़ई आहद से निीं ंिै जो अपनेकमों को बिी कुशलता या ननपुणता के साथ करता िै। एक योगी िी िै जो यि जानता िै कक कया करने ेयोग्य िै और कया करने ेयोग्य निीं ंिै। ववना योगयुकत िुए व्यजकत यि सब जान िी निीं सकता। जैसे कक कोई व्यजकत यहद बिुत बहढ़या कार से यात्रा कर रिा िो और कार चलाने में भी बिुत कुशल िो परन्तु गलत हदशा में जा रिा िो तो यि यात्रा की कुशलता निीं ंिुई। यात्रा की कुशलता तो इस बात में िै कक व्यजकत इस ववषय में सज्ञान िो कक किाँऔर कैसे जाना चाहिए। यि ज्ञान केवल योग के द्वारा िी आ सकता िै। और इसमें केवल पता िी निीं चलता अवपतु कमों के संपादन की कुशलता भी योग से िी आती िै। योगयुकत का अथ िै कक व्यजकत हदव्य शजकत के प्रनत समवपति िोता िै और उसके माध्यम से उस शजकत की िी किया िोती िै और उसके सारे कम िउस शजकत के द्वारा िी समुधचत व पूण िरूप से ननष्पाहदत िोतिें। ऐसे में व्यजकत के अिं, उसकी वासनाओं, इच्छाओं, अजस्थरता आहद का कोई िस्तक्षेप निींिोता िै। इसशलए योग की अवस्था में िी कम िकी सच्ची पे्ररणा और उसका पूण िरूप से सटीक ननष्पादन संभव िोता िै। योग न केवल अपने-आप में श्रेष्ठ िै अवपतु कम–िसंपादन में भी वि श्रेष्ठ िै। गीता का तो आरमभ इसी से िोता िै जजसमें भगवान् ् अजुनि को किते िैं कक तू ूजय-पराजय, लाभ–िानन की धचन्ता ककए त्रबना, मेरी प्रसन्नता के ननशमर्त् कम िकरता िुआ युद्ध कर।

'जजसका नेतृमव 'प्रभु' करतिें उसकी ववफलता कोई ववफलता निीं....

कफर हदव्य कमी का लक्षण वि िै जो स्वयं भागवत् ्चेतना का केन्रीय लक्षण िै, अथिात् ्पूण िआन्तररक आनन्द और शाजन्त की जस्थनत जो इस जगत् ्के ककसी भी पदाथ िपर अपनेउद्गम और अपनेननरंतर बनेरिने के शलए ननभरि निीं ंिै; यि सिज अंतननहिित िोती िै, यि अंतराममा की चेतना का तत्त्वमात्र िोती िै, हदव्य सर्त्ा की प्रकृनतमात्र िी िोती िै। सामान्य मनुष्य अपनेसुख या प्रसन्नता के शलए बाह्य पदाथों पर ननभरि रिता िै; इसी से उसमें कामना िोती िै; इसी से उसमें िोध-आवेश, सुख-दुुःख, िषि–शोक िोतिें; इसीशलए वि सब वस्तुओंको सौभाग्य-दुभागि्यि के तराजू में तौलता िै। परन्तु इनमें से कोई भी चीज हदव्य आममा को प्रभाववत निीं ंकर सकती; ककसी भी प्रकार की पराधश्रतता के त्रबना यि ननमय-तृप्त रिती िै, ननमयतृप्तो ननराश्रयः, कयोंकक उसका आनन्द, उसका हदव्य सुख, उसकी प्रसन्नता, उसकी िवषति ज्योनत सदा उसके अन्दर शाश्वत रूप से ननहित िैं, उसमें स्वयं में अंतव्याप्ति िैं. ... सभी पदाथों में वि एक िी समान अक्षय आनन्द लाभ करता िै...

तनरीीयतवधचत्तात्रा त्यक्तसर्पवररग्रहः ।

ारीरं केर्लंकर् वकुर्तवनाप्नोतत ककजल्बषर् ्।। २१ ।।

२१. ई व्यजक्तगत आिा (कार्ना) से रदहत होता है, उसके हृदय और अतत:करि पूरी तरह संयत रहतेहैं, ई र्स्तुओंको अपनी व्यजक्तगत संपवत्त र्ानकर ग्रहि नहींकरता, केर्ल ािीररक कर् वकरता हुआ ई पाप को प्राप्त नहींहोता।

मुकत पुरुष की व्यजकतगत आशाएँ-आकांक्षाएँ निीं िोतीं; वि चीजों को अपनी वैयजकतक संपवर्त् जानकर निीं ंपक़्िे ेरिता, भगवमसंकल्प जो ला देता ि वि उसे ग्रिण करता िै, वि ककसी वस्तु की अशभलाषा निीं ंकरता, ककसी से ईष्यिा निीं ंकरता : जो उसके पास आता ि उसे वि आसजकत और ववकषणि के त्रबना ग्रिण करता ि; जो कुछ उससे चला जाता ि उसके शलए त्रबना प्रलाप या शोक ककये या त्रबना ककसी िानन के बोध के उसे संसार-चि में जानेदेता ि। उसका हृदय और अंत:करण पूणतिः उसके वश में िोते िैं; वे समस्त प्रनतकिया या आवेश से मुकत ीतिे, वेबाह्य ववषयों के स्पश िकी कोई उग्र प्रनतकिया निीं ंकरते। वस्तुतः, उसका कम िकेवल एक शारीररक कममित्र िोता ि, ा**रीरं केर्लं कर्;व** कयोंकक बाकी सब कुछ तो ऊपर से आता ि, मानव-स्तर पर उमपन्न निीं ीता, भगवान् ्पुरुषोर्त्म के संकल्प, ज्ञान और आनन्द का प्रनतत्रबंब-मात्र िोता ि। इसशलए वि कम िऔर उसके उद्देश्यों पर बल देकर भी अपनेमन और हृदय में उनमें से वे कोई भी प्रनतकियाएँ निीं ंउमपन्न करता जजन्िें िम आवेश और पाप की संज्ञा देते िैं। कयोंकक पाप त्रबल्कुल भी बाह्य कृमय में निीं ंिोता, अवपतु व्यजकतगत इच्छा, मन तथा हृदय की अशुद्ध प्रनतकिया में िोता ि जो उस कम िके साथ संलग्न रिती ि अथवा उस कम िको कराती ै; नैयजकतक आध्याजममक मनुष्य तो सदा िी शुद्ध, **अपापवर्द्ध,** िोता ि और जो कुछ भी वि करता ि उस सब को भी स्वयं अपनी वि सिज अपररिाय िशुद्धता प्रदान कर देता ि। यि आध्याजममक नैव्यजिकतमव हदव्य कमी का तीसरा लक्षण ि। वस्तुतः, ककसी अमुक प्रकार की मिानता तथा ववशालता को प्राप्त सभी मनुष्य एक ऐसी नैयजकतक शजकत या प्रेम या संकल्प और ज्ञान के ववषय में सचेतन िोते िैं जो उनके द्वारा काय िकर रि िोतीं, परंतु वे अपने मानव-व्यजकतमव की अिभावापन्न प्रनतकियाओं से, जो कभी-कभी अमयंत प्रचंड िोती िैं, मुकत निीं ंिो पाते। परन्तु मुकत पुरुष इस मुजकत को प्राप्त करता ि; कयोंकक उसने अपने व्यजकतमव को नैयजकतक पुरुष में ननक्षेप कर हदया िोता ि, जिा ँउसका वि व्यजकतमव उसका अपना निीं ंरि जाता, अवपतु उन हदव्य पुरुष, पुरुषोर्त्म, द्वारा िाथों में ले शलया जाता ि जो सभी सीशमत गुणों को अनन्त और मुकत रूप से उपयोग करते िैं और ककसी के द्वारा बद्ध निींिाते। मुकत पुरुष आममा बन जाता ि और प्रकृनत के गुणों का पुंज निीं बना रिता; और प्रकृनत के कम िके शलए उसके व्यजकतमव का जो कुछ आभास बाकी रि जाता ि वि एक ऐसी चीज िोती ि जो बंधनमुकत, उदार, नमनीय और ववश्वव्यापक िोती िै, यि अनन्त के शलए एक मुकत पात्र िोता ि, पुरुषोर्त्म का एक जीवंत आवरण िो जाता ि।

हदव्य कमी के सारे कम िननवैयजकतक िोतीं। उसे एक पृथक् व्यजकतमव का बोध निींिाता कक वि स्वयं कोई कम िकर रिा ि। यि तीसरी चीज ि। ऐसे व्यजकत में एक तो अिं निीं ंिोता, दूसूरे कामना निीं िोती और

तीसरे वि ननवैयजकतक िोता ि।ै इसशलए ऐसा हदव्य कमी भले ककतने भी घोर रूप से कम ि कयों न कर ले, उस पर उन कमों का कोई भी बुरा प्रभाव निीं ंिोता। यहद िम इस सारी चीज को सिती दृजष्टकोण से देखें - जैसे कक जस्थतप्रज्ञ की जस्थनत को, हदव्य कमी के लक्षणों को - तो िम पाएँगे कक वास्तव में तो ये प्रारंशभक चीजें प्रास करना भी इतना मुजश्कल िै कक व्यजकत इनसे आगे की तो सोच भी निीं ंसकता। परन्तु िमें यिाँ यि समझ लेना चाहिए कक ये सभी चीजें और अवस्थाएँ अपनेपूण ि और पररशुद्ध रूप में कभी प्राप्त निीं ंिोतीं। अपनेपूण ि रूप में ये सभी िोने े के शलए तो पूण ि शसद्धध अथात्ि् सभी चीजों के रूपांतर िोनेकी आवश्यकता ि।ै िमारे ननश्चेतन और अवचेतन आहद ननमन भागों के पूण ि रूपांतरण के त्रबना तो इनका प्रभाव सदा िी िमारी सभी जस्थनतयों को तथा िमारी सभी चीजों को दूवूषत करता रिेगा और उन्िें नीचे खींचता रिेगा। जस्थतप्रज्ञ आहद तो केवल ककन्िीं जस्थनत ववशेषे का वणनि करने के शलए िैं जजन्िें व्यजकत अपनी आममपरक (subjective) चेतना में तो प्राप्त कर सकता ि,ै परंतु वास्तव में जब तक िमारे ननमन भागों द्वारा उच्चतर भागों में प्रवेश करनेकी और किया करने ेकी आशंका बनी रिेगी, और जब तक इन भागों को पूरी तरि रूपांतररत निींककया जाता, तब तक व्यजकत का संतुलन सदा िी संहदग्ध बना रिेगा और उसे कभी भी त्रबगािा जा सकता ि।ै यहद ऐसा न िोता तो अब तक तो सिज रूप से सभी कुछ शसद्ध ककया जा चुका िोता। अतः योग की जजन जस्थनतयों का िम वणनि पाते िैं, वे जस्थनतयाँ वास्तव में केवल एक ननजश्चत सीमा तक िी रि सकती िैं। िालाकाँक, वे ेएक बिुत ऊँची सीमा तक िो सकती िैं, परन्तु पूण ि निीं ंिो सकतीं। जब तक पूण ि रूप से रूपांतर निीं िो जाता तब तक वास्तव में कोई भी चीज पूण ि निीं िो सकती। गीता यिी बताएगी कक कैसे व्यजकत इस तक पिुँच सकता ि।ै वि किती िै कक जब व्यजकत यज्ञ के रूप में कम ि करना आरंभ करेगा, तब उसका ज्ञान बढ़ेगा, समझ बढ़ेगी। ज्ञान बढ़ेगा तो कम ि उसके प्रकाश में बेितर िो जाएगा। और जब कम ि और अधधक यज्ञमय िोगा तो ज्ञान और अधधक बढ़ेगा। इस प्रकार ज्ञान और कम ि एक-दूसूरे को आगे बढ़ातेचलेंगे जैसे कक दाएँ और बाएँ पैर के तालमेल से व्यजकत आगे बढ़ता ि।ै वैसे िी ज्ञान और कम ि एक-दूसूरे को आगे बढ़ातेरिेंगे। कफर एक सीमा पर पिुँचने ेपर भजकत का समावेश िो जाता ि।ै भजकत कम ि का आधार और ज्ञान की पराकाष्ठा िोती ि।ै जब ज्ञान एक सीमा तक पिुँच जाता िै तब भजकत उदय िोती ि।ै कम ि का सच्चा आधार भजकत ि,ै उसके त्रबना कम ि में वि सार, वि हदव्यता, वि मुजकत निीं ंआ सकती। ज्ञान के द्वारा कम ि एक सीमा तक िी जा सकता ि,ै पूण ि निीं िो सकता ि।ै िमें गीता के उपदेश व्याविाररक दृजष्टकोण से देखने पर कुछ-कुछ समझ में आते िैं। अन्यथा आरंभ में िी भगवान् ्जब ननष्काम कम ि करने ेका उपदेश देते िैं तब कोई भी व्यजकत असमंजस में पि़ जाएगा कक आखखर ननष्काम कम ि वास्तव में संभव िी कैसे िो सकते िैं? इसके ववषय में श्रीअरववन्द ने अपनी पुस्तक 'योग-समन्वय' में किा िै कक व्यजकत ननष्काम कम ि की ओर चलना शुरू तो कर सकता िै परन्तु वि एकाएक िी पूण ि निीं िो सकता। जब तक अिं िै तब तक यि संभव निीं िै कयोंकक व्यजकत का सबसे पिले तो स्वयंकम ि से िी लगाव रिता ि।ै वि उससे आगे जा िी निींपाएगा। और अिं सिज िी नष्ट निीं ंिो सकता। केवल अपने ऊँचे भागों में िी व्यजकत इससे कुछ मुजकत का अनुभव कर सकता िै परंतु जब तक अवचेतन और ननश्चेतन भाग मौजूद िैं, जब तक भौनतक शरीर िै तब तक पूण ि रूप से अिंमुकत चेतना संभव निीं ि।ै और यहद समाधध अवस्था में उस पूण ि अिंमुकत चेतना का आस्वादन िो भी जाए तो िमारे शास्त्रों में इसका

वणनि ि ै कक ननववकिल्प समाधध की अवस्था में भौनतक शरीर को बनाए रखना अधधक संभव निीिं िोपाता और इककीस हदनों के बाद वि नष्ट िो जाता ि ै।

प्रश्न : जैसा कक हदव्य कमी के पिले दो लक्षण बताए गए िैं, उनके अनुसार इसका अथ ि कया यि ननकलता ि ै कक उस चेतना में रिने ेपर इच्छाएँ और कामनाएँ झि जाती िैं?

उत्तर : यि कोई इतनी सीधी-सरल बात निीं ंि ै कक इसे ककसी एक मानशसक सूत्र में बाधँा हदया जाए। व्यजकत को अिं-मुकत चेतना का अनुभव तो िो सकता ि ै परन्तु वास्तव में ये चीजें यों िी जानेवाली निीं ंिैं, और यिा ँतक कक इनका समाप्त िोना सवथिा उधचत भी निीं ंि ै। वास्तव में िमें करना यि चाहिए कक अपनी कामनाओं और अिं को श्रीमाताजी को समवपति कर दें और कफर वे उनका जैसा चािें वैसा उपयोग करें। कयोंकक भगवान ्की ओर चलना इतना आसान निीं िै। अधधकांश धाशमकि पुस्तकों में सामान्यतः जो शशक्षा दी जाती ि ै उनमें ये िी तो खाशमयाँ िैं जो किती िैं कक अिं और कामना आहद को मार िालना चाहिए। परन्तु वास्तव में िम यि निीं जानते कक िमारी कौन-सी कामना भगवान ्की अशभव्यजकत के शलए किा ँउपयुकत शसद्ध िो सकती ि ै और भगवान ्की अशभव्यजकत के अंदर अिं की भी उपयोधगता किा ँिो सकती ि ै। यि कोई ऐसी सरल बात निीं ंि ै कक कामना समाप्त िो गई तो व्यजकत लक्ष्य तक पिुँच गया। व्यजकत का जैसा संपूण िगठन िोता ि ै उसी के अनुसार वि भगवान ्की ओर चलता ि ै और इस यात्रा में कौन-सी कामना आवश्यक ि ै और कौन-सी निीं,ं और ककतनी कामना इस दौरान शमट जाएगी और ककतनी निीं, या कफर कामना रूपांतर की प्रकिया में सिायक ि ै या निीं,ं इन सब को इतनी आसानी से निींसमझा जा सकता। ये सब सूत्र तो केवल मोटे रूप से समझाने के शलए िोतिैं, जबकक वास्तव में पूरी प्रकिया कोई इतनी ननयत-ननधारिरत निीं िोती। िम इसके शलए ककतने िी भकतों के जीवन के उदािरण देख लें पर उनमें से एक भी ऐसा निीं ंशमलेगा जजसमें कक ऐसा कोई सीधा-सरल सूत्र देखनेको शमलता िो। िा,ँ यि िो सकता ि ै कक जब व्यजकत भगवान ्को, या अपनेगुरु को या श्रीमाताजी को जजतना िी समवपति िोता जाता ि ै उसकी इच्छाएँ, कामनाएँ जजतनी आवश्यक िोंगी उन सबको वे स्वयंिी काम में लेंगे। जैसे कक श्रीरामकृष्ण जी किते ेथे ेकक 'मेरी कामनाएँ-इच्छाएँ तो वैसी िी िो गई िैं जैसे कक कोई जल चुकी रस्सी, कयोंकक अब वे कामना आहद आममा को बाधँ निीं सकतीं।' परन्तु कुछ लोग जो कामना और अिं आहद से मुजकत के बािरी लक्षणों पर िी बल देते िैं वे इस भ्म में पड़ जाते िैं कक वे उनसे मुकत िो चुके िैं और इससे तो वे और अधधक शमथ्यामव में धगर जाते िैं। इसशलए अधधक अच्छा ि ै कक व्यजकत सिज रूप से रिे। कयोंकक िमारे ककन्िीं भी बािरी मानदण्िों के आधार पर यि पता िी निीं ंचल सकता कक कामनाएँ कौनसी िैं और कौनसी निीं। और जब व्यजकत श्रीमाताजी के प्रनत समवपति िोता ि ै तब उसकी सारी कामनाएँ संकल्प में पररवनतति िो जाती िैं। परंतुसंकल्प में और कामना में अन्तर करना बिुत िी कहठन ि ै। बाह्य दृजष्टकोण से तो श्रीमाताजी भी सभी मानवीय कियाकलाप करती थीं। वे भोजन भी करती थीं, लोगों से कायि–व्यविार भी करती थीं, आश्रम की सार-संभाल का काय िभी करती थीं। और जजसके साथ जैसा आवश्यक था वैसा व्यविार भी करती थीं। एक बार उन्िें ककसी पर िोध आया। बाद में उन्िोंनेसोचा कक कया अभी तक वे इसी जस्थनत में िैं कक उन पर िोध िावी िो सकता ि ै। परंतु कफर तुरंत िी भीतर से उन्िें इसका उत्तर प्राप्त िुआ कक संसार में वेअपनी व्यजकतगत पूणतिा के शलए काय िनिीं

कर रिीं। उनके द्वारा परम् ्प्रभु वैजश्वक दृजष्टकोण से जिााँ जो आवश्यक िोता िै उस प्रकार की किया करवा लेते िैं। इसशलए भगवान् ्के काम के शलए जो भाव आवश्यक िोगा विी उनके अन्दर स्वतः िी आ जाएगा और अशभव्यकत िो जाएगा। इसशलए ककसी एक सूत्र में बााँध कर यि किना कक म ैंकामना से मुकत िूाँ, अिं से मुकत िूाँ, ये सब अनावश्यक बातें िैं। वास्तव में तो सारी चीज का ननधारिण ऊपर से जगदमबा करती िैं, इसशलए िम अपने मानवीय मानदंडों के आधार पर कुछ निींकि सकतें। जो व्यजकत व्यविार में इसे जीता िै उसे तो इन बातों का भान िोता िै। योग-साधना के अंदर जस्थतप्रज्ञ आहद जजन जस्थनतयों का वणनि आता िै वे तो केवल समझानेमात्र के शलये िैं। गीता में भी ये बातें अजुनि की बुद्धध में प्रकाश लानेके शलए उसे समझाई गई िैं। परंतुये तो केवल आरंभ में िी बताई गई िैं। गिरी चीजें तो केवल बाद में िी उसके सामने प्रकट की गई िैं। इसशलए इन सबकी तो कर करनेका प्रयास करना तो मूढ़ता िै। व्यजकत के अचेतन और ननश्चेतन भाग ऐसे निीं ंिैं जजन्िें कक ककन्िीं भी मानशसक सूत्रों से ननयंत्रत्रत और संयशमत ककया जा सके।

प्रश्न : मेरा प्रश्न यि निीं ंथा कक अिं और कामनाओं से कैसे मुकत िोना िै। मेरा प्रश्न तो यि था कक कया ऐसा निीं िै कक जब िम आमम-चेतना में रिते िैं तो इच्छाओंऔर कामनाओं से मुकत िो जाते िैं?

उत्तर : यि ऐसी चीज निीं ंिै। कया श्रीमाताजी आमम-चेतना में ननवास निीं ंकर रिीं थीं? तब कफर उन्िें िोध आहद कैसे आते थे?े िम ककन बािरी मापदंडों के आधार पर उनकी कियाओं का आकलन करें? आखखर आमम-चेतना किते ेककसे िैं? इसका अथ ियि निीं िै कक व्यजकत ध्यान की अवस्था में रिकर सतिी चेतना से अपनेको अलग कर लेता िै। ऐसी बात निीं िै। घोर कम िमें रत रिने पर भी आमम-चेतना िो सकती िै और विीं गिन ध्यान की अवस्था में रिते िुए, शांत-धचर्त् रिते िुए भी आवश्यक निीं ंिै कक आमम-चेतना िो। िो सकता िै कक व्यजकत ककसी मानशसक संरचना में या कफर अपनी ककसी व्यजकतगत मानशसक जगत् ्में फाँसा िुआ िो। इसशलए यि िमें बिुत िी स्पष्ट कर लेना िोगा कक आमम-चेतना कोई बााँधी-बाँधाई चीज निीं िै। यि तो ककसी चीज को समझाने के शलए एक शब्द प्रयोग में शलया जाता िै। यों तो िमारे अन्दर और िमारी िर चीज के अन्दर आमम ववद्यमान िै। आममा तो सभी कुछ िै तो कफर आमम-चेतना जैसी कोई अलग चीज किााँसे आ जाएगी। आममा, प्रकृनत आहद शब्द तो केवल मानशसक रूप से समझाने के शलए िैं, व्याविाररक रूप से चीजें बिुत अधधक जहटल िैं। जब तक िमें स्वयं जीवंत अनुभव निींिोगा और िम इन मानशसक ववचारों में िी रिेंगे तब तक िम कुछ निीं समझ सकते। वास्तव में तो कुछ भी पता निींचलता कक िा ोंकया िो रिा िै। यि तो वैसे िी िै जैसे कोई व्यजकत किीं ंजा रिा िै तो उसे कुछ-कुछ पथ-ननदेश हदये जाते िैं। ये सब उसी तरीके को चीजें िैं। इसीशलए तो सभी लोग बार-बार किते िैं कक त्रबना जीये इन चीजों को समझा निीं जा सकता। वास्तव में कोई ननयत-ननधारिरत भेद निीं िै कक यि यौधगक चेतना िै और यि उससे ववपरीत िै, या कफर यि आमम-चेतना िै और यि निीं ंिै। इन सब ववषयों में भेद इतना सूक्ष्म िै कक वि मन की पकड़ में निींआता। ये सब चीजें तो केवल अनुभव से िी समझ में आ सकती िैं। जैसे िम केवल समझने–समझानेके शलए िी मन, प्राण और शरीर आहद ववशभन्न हिस्सों में भेद करते िैं जबकक श्रीअरववन्द किते िैं कक वास्तव में तो उनमें ऐसा कोई स्पष्ट अलगाव निीं ंिै। यि तो ऊपर से नीचेतक सारी एक अटूट श्रृंखला िै। केवल मानशसक रूप से देखने और समझने ेके शलए िी भेद ककया जाता िै

जबकक वास्तव में तो इनमें कोई अलगाव निीं ंिै। इसीशलये मानशसक रूप से ये चीजें समझ में निीं आ सकतीं कयोंकक इसमें मानशसक संरचनाओं का ननमाणि िो जाता िै जो कक समय को नछपा देती िैं। मन की समस्या यि िै कक पिले तो वि समय के ककसी एक अंश को पक़िता िै और उसे भी ब़िे िी अपूण िरूप से समझता िै। और कफर उसी को पूण िसमय मानने पर आग्रि करता िै और कफर उसे दूसूरों पर थोपनेका प्रयास करता िै। और इससे वि चीज शमथ्या िो जाती िै। जबकक वास्तववक बात तो बिुत गिरी िै।

इच्छाएँ, कामनाएँ आहद खमम िोना अपने-आप में उद्देश्य निीं ंबजल्क पररणाम िै। इच्छाएँ, कामनाएँ तो इसशलए समाप्त िोती िैं कक व्यजकत को ऐसी श्रेष्ठ चीजें प्राप्त िो री िोती िैं और इतनी अधधक प्राप्त िो री िीती िैं कक वि दूसूरी ककन्िीं चीजों की इच्छा कर िी निीं सकता। और यि सोचना कक मुझे ेइच्छा निीं ंकरनी चाहिए कयोंकक इच्छा करना तो पाप िो जाएगा, इस तरीके से कभी भी इच्छाएँ वश में निीं ंिो सकतीं। इच्छाएँ-कामनाएँ तो तभी समाप्त िोती िैं जब िमें परमाममा का दशनि िो जाता िै। और इसके बाद भी जजन हिस्सों में वि प्रकाश अभी निींपिुँचा िोता उनमें छोटी-छोटी इच्छाएँ, कामनाएँ उठती रिती िैं। अच्छे-अच्छे मिाममाओंतक से छोटी-छोटी इच्छाएँ निींछूट पाती। इससे स्पष्ट िै कक प्रकृनत के काय िकरने ेका तरीका बिुत िी जहटल िै। सच्ची बात तो एक िी िै कक ककसी भी तरीके से िम अपने-आप को भगवान् ्की ओर, श्रीमाताजी की ओर मो़ि दें, और कफर जो िोना िो सो िो। अन्यथा तो यि प्रयास करते रिना कक म ैंअपनी इच्छाओंको वश में कर के ननष्काम िो जाऊँ, तो इसमें िम ककतना भी समय व्यथ िकयों न त्रबता दें, पर ऐसा िोना संभव निीं ंिै। और विीं यहद व्यजकत श्रीमाताजी की सेवा में लग जाए तो पता भी निीं ंचलेगा कक वि कब ननष्काम िो गया। जजसको ननष्काम िोने ेऔर साधना करनेमें कोई रुधच निींिीं वास्तव में ननष्काम िो सकता िै, परंतुजजसे ननष्काम िोने ेकी धचंता िै वि कभी भी ननष्काम निीं ंिो सकता और न िी कभी उसकी साधना िी िो सकती िै, वि तो केवल अपने-आप को धोखा भले िी दे सकता िै। अधधकांश लोगों की तो इतनी सामथ्य िभी निींिोती कक वे ककसी छोटे से अनुभव को भी पचा सकें। अतः भगवान् ्ब़िे ेकृपालु िैं कक अनधधकारी और अयोग्य व्यजकत को इस तरीके के कोई अनुभव देते िी निीं। व्यजकत को कदम-कदम पर यि पता िोना चाहिए कक वि अभी ककतना अपररपकव िै। इसशलए कामनाएँ, इच्छाएँ आहद तो ऐसी उपयोगी चीजें िैं जो व्यजकत को कम-से-कम धरातल पर तो बनाए रखती िैं। अन्यथा तो वि इतना आमम-संतुष्ट और अपने-आप के ववषय में इतने शमथ्याशभमानों से भर जाता कक उससे छूट पाना तो संभव िी निीं ंिोता, िालाँकक त्रबना ककन्िींअनुभवों के भी पिले से िी वि शमथ्याशभमान से खूब भरा िुआ िोता िै। सामान्यतः जब व्यजकत किता कक वि ननष्काम िो चुका, ननस्पृि िो चुका िै, सबको समान दृजष्ट से देखता िै, तो ये सब त्रबल्कुल शमथ्या बातें िोती िैं कयोंकक वि अपने शमथ्याशभमान से भरा िोता िै। अतः श्रीमाताजी ब़िी िी दयालु िैं जो साधना और योग के शमथ्याशभमानों से िमारी रक्षा करती िैं।

यदृच्छालाभसततुष्टो द्रतद्रातीतो वर्त्सरः ।
सर्ः मसद्धार्मसद्धौ च कृत्रावप न तनबध्यते ।। २२।।

२२. जो र्नुष्य (भगर्ददच्छा से) जो कुछ भी उसे प्राप्त हो जाए उसर्ें संतुष्ट रहता है, (हष-विोक, र्ान-अपर्ान, जय-पराजय, पाप-पुण्य आदद) सर्स्त द्वतद्वों से अतीत हो गया है, ककसी से ईष्यावनहीं ंकरता, सिलता और वर्िलता र्ें सर् रहता है ई कर् वकरता हुआ भी बद्ध नहींहोता है।

इस ज्ञान, ननष्कामता और नैयजकतकता का पररणाम िै आममा और प्रकृनत में पूण िसममव। सममव हदव्य कमी का चौथा लक्षण िै। गीता किती िै कक वि 'द्वन्द्वातीत' िो जाता िै। िमनेदेखा िै कक वि सफलता और ववफलता, जय और पराजय को अववचल भाव से और समदृजष्ट से देखता िै; अवपतु ुये िी निीं ंसभी द्वन्द्व उसमें अनतिम कर हदये जाते िैं और समस्वर बना हदये जाते िैं। जजन बाह्य लक्षणों से मनुष्य जगत् ्की घटनाओं के प्रनत अपनी मनोवृवृर्त् का रुख ननजश्चत करते िैं वे उसकी दृजष्ट में गौण और यांत्रिक िोतिैं। वि उनकी उपेक्षा निीं करता, पर उनसे परे (ऊपर) रिता िै। शुभु और अशुभु, जो कक कामना के वशीभूत मनुष्य के शलए अमयावश्यक चीज िै, परंतु ननष्काम आममवान् ्पुरुष के शलए ये दोनों समान िी सिष िस्वीकाय िैं, कयोंकक इन दोनों के सजममश्रण से िी शाश्वत शुभ के ववकसनशील रूप ननशमति िोतिैं। उसे पराजजत निींककया जा सकता, कयोंकक

उसके शलए क्षेत्र में, **धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे**, अथात् इस कमक्षित्र में जो ववकसनशील धम िका क्षेत्र िै, सभी कुछ िी भागवत् ्ववजय की ओर गनत कर रिा िै, और युद्ध के प्रमयेक मोड़ का नकशा युद्ध के अधधनायक, कमों के स्वामी, धम िके नेता की पूवदृजष्ट द्वारा पिले िी खींचकर तैयार ककया जा चुका िै। मनुष्यों से शमलनेवाला मान या अपमान तथा उनकी ननन्दा या स्तुनत उसे ववचशलत निीं ंकर सकती िैं; कयोंकक उसके पास एक श्रेष्ठतर स्पष्ट रष्टा ननणायिक िोता िै और उसके काय िका एक अलग मापदण्ड िोता िै, और उसका ध्येय या प्रेरक-भाव सांसाररक पुरस्कार पर ननभरिता को जरा भी स्वीकार निींकरता।

उसे ककसी भी ननजी िेतुओंकी पूनत िनिीं ंकरनी िोती, कोई ननजी राग-द्वेषों की तुजष्ट निीं ंकरनी िोती, कम िके संबंध में वि ऐसा कोई कठोर रूप से ननधारिरत मानदण्ड निीं ंरखता जो मनुष्यजानत की उन्ननत की ओर बढ़ती िुई सुनमय अग्रगनत के ववरुद्ध अपनी पमथर की लकीर को अथात् ्रूढ़ ननयमों को खड़ा कर दे, या कफर अनन्त की पुकार की अवज्ञा करता िुआ उसके ववरुद्ध खड़ा िो जाए। उसके कोई व्यजकतगत शत्रु निीं जजन्िें उसे जीतना या मारना िो, अवपतु वि केवल ऐसे लोगों को देखता िै जजन्िें पररजस्थनत ने और वस्तुओंमें ननहित संकल्प ने उसके ववरुद्ध लाकर इसशलए खड़ा कर हदया िै कक वे ेअपनेप्रनतरोध के द्वारा भववतव्यता की गनत में सियोग करें। इन लोगों के ववरुद्ध उसके मन में कोई प्रचण्ड िोध या घृणा निीं िो सकती कयोंकक हदव्य प्रकृनत के शलये िोध और घृणा ववजातीय चीजें िैं। असुर की अपनेववरोधी को चूर-चूर करनेऔर उसका वध कर िालने की इच्छा, राक्षस की संिार करने की ननदियतापूण िशलप्सा का मुकत पुरुष की जस्थरता, शाजन्त और उसकी सवाशिलंगंनकारी सिानुभूनत और समझ में िोना असमभव िै। उसमें ककसी को क्षनत पिुँचाने ेकी इच्छा निीं ंिोती, अवपतु इसके ववपरीत, ववश्वव्यापी मैत्री और करुणा िोती िै, **र्ैत्रः करुि एर् च :** परंतु यि करुणा उस हदव्य आममा की करुणा िै जो मनुष्यों को उच्चासीन िोकर देखता िै, सब जीवों को अपनेअन्दर प्रेम से ग्रिण करता िै, यि कोई हृदय, स्नायुओंऔर दिे या भावनाओं का दुबुलि कंपन या संकुचन निीं ंिै जैसी कक सामान्य मानव रूप में दया िोती िै। न िी वि शरीर के जीवन को िी परम् ्मित्त्व प्रदान करता िै, अवपतु इसके परे आममा के जीवन पर दृजष्ट रखता िै

और शरीर को केवल एक उपकरण समझता ि ै। वि सिसा ि ी संग्राम और संिारि में प्रवृरृत् न ि ोगा, पर यहद धम ि के प्रविा में युद्ध समक्ष आ प़िे े तो वि उसे व्यापक समता के साथ और जजन लोगों की सर्ता और प्रभुमव के भोग को उसे चूण ि करना ि ै और जजनके ववजयी जीवन के उल्लास को उसे नष्ट करना ि ै उनके प्रनत सिानुभूनत और पूण ि सद्भाव के साथ वि उसे स्वीकार करेगा।

कयोंकक सबमें वि दो चीजें देखता ि ै, एक ि ै सभी में समान रूप से वास करते भगवान् ्को, और दूसूरी उनकी नानाववध अशभव्यजकत को जो अपनी अननमय पररजस्थनतयों में ि ी असमान या ववषम ि ै। पशु ्ुमें, मनुष्य में, कुककुर में. अशुधुच जानत-बहिष्कृत में, ववद्वान् ्में, ज्ञानी और गुणी ब्राह्मण में, संतं में और पापी में, उदासीन में, प्ेरेमी में और ववरोधी में, उनमें जो उसे प्यार करते और उसका उपकार करते ि ैं और उनमें जो उससे घृणा करते और उसे पि़ीा पिुँचाते ि ैं, (उन सब में) वि अपने-आपको देखता ि ै, ईश्वर को देखता ि ै और उसके हृदय में सबके शलए एक समान ि ी करुणा और हदव्य प्रीनत ि ोती ि ै। पररजस्थनतयाँ उसके बाह्य आशलंगंन या बाह्य संघष ि को ननधारिरत कर सकती ि ैं. परंतु वे ेकभी भी उसकी समदृजष्ट को, उसके खुले हृदय को और सभी के प्रनत आंतररक आशलंगंन के भाव को प्रभाववत निीं ंकर सकतीं। और उसके सभी कमों में आममा का एक ि ी ववधान, अथात् ्पूण ि सममव ि ोगा और विी शसद्धांत कम ि का ि ोगा, उसके अंदर भगवान् ्की ओर िमशः अग्रसर ि ोती िुई मानव जानत की आवश्यकता के शलए भगवान् ्का संकल्प कियाशील ि ोगा।

यि तो एक स्पष्ट बात ि ै कक जब व्यजकत यि देखने में सक्षम ि ो जाता ि ै कक ककस प्रकार यि सारा संसार भगवान् ् की ओर चल रिा ि ै, और वि इसके सारे उतार-चढ़ावों को और इसकी सारी व्यवस्था को समझ जाता ि ै तब उसमें समता आ जाती ि ै। व्यजकत की सोच-समझ, उसका दृजष्टकोण, उसके शसद्धांत आहद बिुत ि ी सीशमत और संकुधचत ि ोते ि ैं इसीशलए उसे जीवन में वस्तुएँ अच्छी-बुरी, सिी-गलत आहद लगती ि ैं। परन्तु ईश्वर के दृजष्टकोण में िर चीज का अपना एक उधचत स्थान ि ै। जब मनुष्य ईश्वर के दृजष्टकोण को कुछ-कुछ समझने े लगता ि ै तो उसका जीवन के प्रनत दृजष्टकोण बदलता जाता ि ै, ननजी पसन्द-नापसन्द आहद पर अनतशय आग्रि कम ि ोने लगता ि ै और समता आ जाती ि ै। जैसे कक यहद िम ककसी धचत्रकार को कोई धचत्र बनाति ुए देखें तो बिुत ि ी प्राथशमक स्तर पर िमें पता ि ी निींिोता कक वि कया बनाना चाि रिा ि ै और उसके द्वारा काम में शलए जानेवाले रंगों आहद को िम उस धचत्र की आवश्यकता के आधार पर न देख कर अपनी ि ी पसन्द-नापसन्द

२३. जब र्नुष्य रु्क्त हो जाता है, आसजक्त से रदहत हो जाता है, जजसके र्न, हृदय और आत्र्ा आत्र्ज्ञान र्ें दृढ़प्रततजष्ठत हो गये हैं और जो यज्ञ के रूप र्ें कर्् वकरता है तो उसका सम्पूि वकर्् ववर्लीन हो जाता है।

ज्ञान से कामना और उसकी प्रथम संतान, पाप, का ध्वंस ि ोता ि ै। मुकत पुरुष कमों को यज्ञरूप से कर पाता ि ै, कयोंकक उसके मन, हृदय और आममा के आममज्ञान में दृढ़प्रनतष्ठ ि ोने ेके कारण वि आसजकत से मुकत िोता ि ै, **गतसङ्गस्य रु्क्तस्य ज्ञानार्जस्थतचेतसः ।** उसके सारे कम ि ोनेके साथ ि ी सवथिा लय को प्राप्त ि ो जाते ि ैं, किा जा सकता ि ै कक वे ेब्रह्म की सर्ता में ववलीन ि ो जाते ि ैं, **प्रवर्लीयते;** बाह्य पात्ररूप जो कर्ता ि ोता ि ै उसकी अंतराममा पर उन कमों का कोई प्रनतगामी पररणाम निीं ंि ोता। भगवान् ्ि ी उस कम ि को अपनी प्रकृनत के

द्वारा करते िैं, वे मानव-उपकरण के ननजी निींरि जाते... भगवान् ्िी संपूण िकम िका प्रवतनि, प्रेरण और ननधारिण करते िैं; मानव-आममा ब्रह्म में नैयजकतक भाव को प्राप्त िोकर उनकी शजकत का ववशुद्ध और शांत माध्यम बनती िै; यिी शजकत प्रकृनत में हदव्य कम िसंपादन करती िै। केवल इसी प्रकार के मुकत पुरुष के कम िोतिें, **रुत्तस्य कर;व** कयोंकक ककसी भी चीज में मुकत पुरुष ककसी व्यजकतगत प्रवृवृत् से कम िनिीं ंकरता; ऐसे िोतिें शसद्ध कमयिोगी के कम।ि ये कम िएक मुकत आममा से उहदत िोतिें और उसमें कोई ववकार या संस्कार उमपन्न ककये त्रबना िी ववलीन िो जाते िैं, जैसे, अक्षर अगाध धचत्–समुर में लिरें ऊपर उठती िैं और कफर ववलीन िो जाती िैं।

परन्तु आममानुशासन या साधना के ककन व्याविाररक िमों या उपायों से िम इस शसद्धध तक पिुँच सकतिें?

समस्त अिंमूलक किया और उसके आधार, अिंमय चेतना, का ननमूलिन करना स्पष्टतः िी िमारी अभीष्ट शसद्धध का उपाय िै। और, कयोंकक कमयिोग के पथ में कम िी वि सबसे पिली ग्रंधथ िोती िै जजसे िमें खोलना िोता िै, िमें इसे विीं से खोलने का प्रयमन करना िोगा, अथात्िकामना और अिंभाव में, जिााँयि केंरीय (प्रधान) रूप से बाँधी िुई िै; कयोंकक, अन्यथा िम केवल कुछ त्रबखरे धागे िी काटेंगे न कक अपनेबंधन के ममस्थिल को। इस अज्ञानमय एवं ववभकत प्रकृनत के प्रनत िमारी अधीनता की ये िी दो ग्रंधथयाँ िैं कामना और अिंभाव। और इन दो में से कामना का मूल ननवासस्थान या जन्मस्थान िै भावावेगों, संवेदनों और अन्ध-वृवृत्यों में, और विींसे यि ववचारों और इच्छाशजकत पर अपना प्रभाव िालती िै। ननस्संदेि अिंभाव इन चेष्टाओं में रिता िी िै, परंतु साथ िी वि धचन्तनाममक मन और उसकी इच्छाशजकत में भी अपनी गिरी जड़ें फैलाता िै और विींवि पूणतिः आमम-सचेतन भी िोता िै। ग्रशसत कर देने वाली जगद्व्यावपनी अववद्या की ये िी युगल अन्धकारमय शजकतयाँ िैं जजन्िें िमें प्रकाश में लाना और बहिष्कृत करना िोगा।

कम िके क्षेत्र में कामना अनेक रूप धारण करती िै, ककन्तु उन सब में सबसे अधधक प्रबल रूप िै अपने कमों के फल के शलये प्राणमय पुरुष की लालसा या उमकण्ठा। जजस फल की िम लालसा करते िैं वि आन्तररक सुख रूपी पुरस्कार िो सकता िै; वि ककसी मनोनीत ववचार या ककसी वप्रय संकल्प की पूनत िया अिंकारमय भावों की तृजप्त, या कफर अपनी उच्चतम आशाओं और मित्त्वाकांक्षाओं की सफलता का गौरवरूपी पुरस्कार िो सकता िै। अथवा वि एक बाह्य पाररतोवषक िो सकता िै, एक सवथिा रव्याममक प्रनतफल िो सकता िै, जैसे धन, पद, प्रनतष्ठा, ववजय, सौभाग्य अथवा प्राखणक या शारीररक कामना की ककसी और प्रकार की तृजप्त। परन्तु िैं ये सब समान रूप से ऐसे फंदे जजनके द्वारा अिंभाव िमें बाधँ लेता िै। सदा िी ये सुख-सन्तोष िमें स्वाशममव के बोध से और स्वतन्त्रता के ववचार से भ्रशमत करते िैं अथवा छलतिें, जबकक वास्तव में अन्ध 'कामना' की कोई स्थूल या सूक्ष्म, भली या बुरी मूनत िी – जो जगत् ्को प्रचाशलत करती िै, - िमें जोतती िै और चलाती िै अथवा िम पर सवार िोती और िमें कोड़े लगाती िै। इसशलये गीता द्वारा प्रनतपाहदत कम िका जो सबसे पिला ननयम िै वि िै, ननष्काम कम,ि फल की ककसी भी प्रकार की कामना के त्रबना कतव्यि कम िकरना।

हदव्य कमी के लक्षणों का वणनि सुनकर, कक वि िमेशा िर पररजस्थनत में सम रिता िै तथा कामनाओं एवं अिभाव से मुकत िोता िै, प्रश्न यि उठता िै कक ये सब गुण प्राप्त कैसे ककए जाएँ? हदव्य कमी के जो लक्षण बताए गए िैं कक - वि आसजकत से मुकत िोता िै, उसके सारे कम िभगवान् ्के द्वारा ककए जाते िैं आहद-आहद - ये सब पिचान के शलए तो ठीक िैं पर पिचान भी बािरी रूप से निीं िो सकती कयोंकक ये सब तो आन्तररक लक्षण िैं। इसशलये सबसे मित्त्वपूण िप्रश्न तो यि िै कक व्यजकत इन सब गुणों को प्राप्त कैसे करे?

श्रीअरववन्द कि रिे िैं कक िमारी अधीनता की जड़ें अिभाव और कामना में िैं। कामना का सबसे पिला, बािरी और सदा िी बना रिने वाला प्रारूप यि िै कक िम जो कोई भी कम िकरते िैं, उससे िमेशा िी कोई न कोई फल की - चािे वि बािरी िो या आन्तररक, प्रमयक्ष िो या अप्रमयक्ष, भौनतक िो या प्राखणक, सूक्ष्म िो या स्थूल- आशा रखते िैं और िमेशा िी ककसी-न-ककसी संतोष की खोज में रिते िैं। और जब तक ऐसा रिेगा तब तक िमारे कम िइससे प्रभाववत िोतेरिेंगे। िम अपनेप्रमयेक कम िको इसी तराजूपर तोलतेरिेंगे कक कौन-सा कम िििमें िमारी कामना के अनुसार संतोष और सफलता प्रदान करेगा और कौन-सा निीं। इस प्रकार िम कभी भी सिी और सच्चे भाव से कम िनिींकर पाएँगे। कयोंकक जब तक िम अपनेइस सीशमत दृजष्टकोण से कम िको देखेंगे तब तक िम पूवाग्रिों से, अपने-पराये, सिी-गलत आहद द्वंद्वों से बाँधे रिेंगे और सिी ननणयि निींकर सकेंगे। अतः इसके शलये जो पिला ननयम बताया गया िै वि यि िै कक, 'कमण्येवाधधकारस्ते मा फलेषु कदाचन'। परन्तुत्रबना कमफिल की कामना के तो िम कम िकर िी निीं सकते इसशलए इससे भी यि समस्या िल िोने वाली निीं ंिै कयोंकक पिले तो िम स्वयंको िी धोखा देंगे और दूसरे यि काम िमारे वश में निीं ंिै, िम प्रयास कर के भी इस काम को निीं कर सकतेकयोंकक कामना बिुत शजकतशाली और जजद्दी प्रकृनत की िै। और कफर, जैसा कक श्रीअरववन्द कितेिैं कक यि काम टुकड़ों में िोने ेवाला भी निीं ंिै। समग्र पूणताि में िी यि संशसद्ध िो सकता िै।

देखने में तो यि ननयम सीधा-सादा हदखता िै, पर कफर भी इसे ककसी प्रकार की पूण िसच्चाई और मोक्षप्रद समग्रता के साथ ननभाना ककतना कहठन िै! िमारे कम िके अधधक बड़े ेभाग में यहद िम इस शसद्धान्त का प्रयोग करते भी िैं तो बिुत कम, और तब भी प्रायः कामना के सामान्य ननयम को एक प्रकार से सन्तुशलत करने ेऔर इस क्रूर आवेग की अनतशनयत किया को कम करनेके शलये िी करते िैं। अधधक-से-अधधक िम इतने भर से िी सन्तुष्ट िो जाते िैं यहद िम अपने अिभाव को संयत और संशोधधत कर लें जो िमारी नैनतक भावना को बिुत अधधक ठेस पिुँचाने वाला और दूसरों को अमयन्त ननदियतापूवकि पीड़ा पिुँचाने वाला न रिे। और, िमारे इस आंशशक आममानुशासन को िम अनेक नाम और रूप दे देते िैं; अभ्यास के द्वारा िम कतव्यि-बोध, शसद्धान्त के प्रनत दृढ़-ननष्ठा, वैराग्यपूण िसहिष्णुता या धाशमकि समपणि और ईश्वरेच्छा के प्रनत एक शान्त या आनन्दपूण ि ननभरिता आहद के प्रनत अपने-आप को अभ्यस्त बना लेते िैं। परन्तु गीता का आशय इन चीजों से निीं ंिै, यद्यवप ये अपने-अपने स्थान में उपयोगी िैं। गीता का लक्ष्य िै एक ऐसी चरम-ननरपेक्ष, पूण िएवं अटल प्रववृत्् और मनोभाव जो आममा का समपूण िसन्तुलन िी बदल िालेगा। प्राखणक आवेग का मन द्वारा संयमन निीं,ं अवपतु अमर आममा की दृढ़ अववचलता िी इसका ननयम िै।

इसकी परीक्षा कैसे की जाए कक िम ननष्काम कम िकर भी रि िैं या निीं? तो इसकी कसौटी िै समता। यहद िम वास्तव में ननष्काम भाव से कम िकर रि िैं तो समता रिेगी िी कयोंकक कामना तो िमारे अन्दर िोगी िी निीं ंइसशलए कम िप्रभाववत भी कैसे िोंगे। और यहद िम ववचशलत िोतेिैं तो इसका अथ ििै कक कामना अन्दर िै चािे उसे िम देख पाएँ या निीं, परन्तु वि अन्दर ववद्यमान तो िै िी।

इसके शलये वि जजस कसौटी का उल्लेख करती िै वि िै मन और हृदय की सभी पररणामों के प्रनत, सभी प्रनतकियाओं के प्रनत, सभी घटनाओंके प्रनत पूण िसमता। यहद सौभाग्य और दुभाुग्यि, यहद मान और अपमान, यहद यश और अपयश, यहद जय और पराजय, यहद वप्रय घटना और अवप्रय घटना आकर िमें न केवल अववचशलत अवपतु अप्रभाववत या अछूता छिो़ कर चली जाएँ, भावावेगों में मुकत, स्नायववक प्रनतकियाओं में मुकत, एवंमानशसक दृजष्टकोण में मुकत छिो़ जाएँ, प्रकृनत का कोई भी भाग जरा-सी भी उर्ेते्जना या कंपन के साथ प्रमयुत्र न दे, तब समझना चाहिए कक िमारे पास वि पूण िमुजकत िै जजसकी ओर गीता संकेत करती िै, अन्यथा निीं। छोटी-से-छोटी प्रनतकिया भी इस बात का प्रमाण िोती िै कक िमारी साधना या िमारा अनुशासन अभी अपूण ििै, और यि कक िमारी सर्ता् का कोई भाग अज्ञान और बन्धन को अपनेननयम के रूप में स्वीकार करता िै और अभी तक पुरानी प्रकृनत से धचपटा िुआ िै। िमारी आमम-ववजय केवल आंशशक रूप से िी शसद्ध िुई िै; यि िमारी प्रकृनत की भूशम के कुछ भाग में या ककसी हिस्से में या ककसी छोटे से चप्पे में अभी तक अपूण िया अवास्तववक िै। और अपूणतिा का वि जरा-सा कंक्रि योग के समपूण िभवन को भूशमसात् ्कर सकता िै!

सममवपूण िआमम-भाव के िी जैसी हदखाई देनेवाली कुछ अवस्थाएँ िोती िैं जजन्र्ें गीता की गंभीर और बृित् ्आध्याजममक समता समझ बैठनेकी भूल निीं ंकरनी चाहिये। ननराशाजननत पररमयाग की एक समता िोती िै, अशभमानजननत समता, कठोरता एवं ंउदासीनता की समता िोती िै : ये सभी अपनेस्वभाव से अिंभावमय िोती िैं। अवश्यंभावी रूप से ये साधनिाम में आती िी िैं, परंतु इन्र्ें अवश्य िी मयाग देना िोगा अथवा सच्ची शांनत में रूपान्तररत कर देना िोगा। इनसे उच्चतर स्तर पर वैरागी या आममसंयमी की समता, धाशमकि-वृवृत्मय मयाग की या साधु-सन्तों की-सी अनासजकत की समता तथा जगत् ्से ववलग और उसके कमों के प्रनत उदासीन रिनेवाली आममा की समता भी िोती िैं। ये भी अपयाप्ति िैं; ये प्रारजमभक प्रवेश-पथ िो सकती िैं, ककन्तु आममा की सच्ची और पूण िस्वयं-सत् ्ववस्तृत सममवपूण िएकमव में िमारे प्रवेश के शलये ये अधधक-से-अधधक प्रारजमभक आमम-अवस्थाएँ अथवा अपूण िमानशसक तैयाररयाँ भर िोती िैं।

अब िम इस बात तक आ गए िैं कक समता आवश्यक िै, परन्तुइसे कैसे प्राप्त ककया जाए? िमारी चचिा का ववषय यिी था कक जब िम एकाएक िी उसे संशसद्ध निीं ंकर सकते, तब कफर इस गुण को कैसे प्राप्त ककया जाए? यिाँ सबसे मुख्य बात यि िै कक जब तक अिं-भाव और कामना रिेंगे तब तक िम हदव्य कमी की तरि कम ि निीं ंकर सकते। तो गीता ने इसके शलए सबसे पिला उपाय बताया िै कामना को ननयंत्रत्रत करना जजसके शलये कक ननष्काम कम–योग का ननरूपण िुआ। और इसका मापदण्ि िै समता। तो समता कैसे प्राप्त की जाए? अब उस समता की प्राजप्त के शलए व्यजकत कई प्रकार की पद्धनतयाँ अपनाता िै कक ककसी भी चीज की परवाि निीं ंकरनी

चाहिए, कठोरता से ननयमों का पालन करना चाहिए, वैराग्य से रिना चाहिए, ननष्काम कम िकरने ेचाहिए, आहद। परन्तु ये सब अपूण ितरीके िैं जजनके पररणामस्वरूप मनोवैज्ञाननक अशांनत और ववक्षोभ उमपन्न िो जाते िैं। व्यजकत समता प्राप्त करनेके शलए इनमें से गुजरता िै परन्तु ये पूण िनिीं ंिैं। गीता जजस समता की बात करती िै वि तो ब्रह्म की आममजस्थनत िै, ब्रह्म की सर्त्ा से एक िोना िै। यि जस्थनत तो एकदम से प्राप्त निीं िो सकती, उस तक पिुँचने ेके धीरे-धीरे प्रयास िी करने िोतेिैं। उसे कैसे प्राप्त ककया जा सकता िै, अब उसके बारे में चचाि िोगी।

प्रश्न : समता के जो ननमनतर अिपरक रूप िैं उनका िम कया उदािरण ले सकतेिैं?

उत्तर : इसमें िम स्टोइक या तापसी जनों का उदािरण ले सकतेिैं कक चािे ककतना भी अच्छा िो या बुरा िो, दुःख िो या सुख िो, ठंिा िो या गम िो, वे ेअप्रभाववत रिते िैं। या कफर ववरकत व्यजकत का यि भाव कक भगवान् ् ने जो कुछ भी कर हदया िो वि सदा िी सवश्रेिष्ठ िै और चािे सारा संसार नष्ट िी कयों न िो जाए, वि ववचशलत िोने ेवाला निीं िै। परन्तु इस बािरी दृढ़ता में भी वास्तव में तो उसके अन्दर से िलचल चल िी रिी िोती िै। यि अिपरक भाव िी िै, कक कठोरता से व्यजकत सभी चीजों का बािर से ननषेध करता िै। इन सब भावों में या दृजष्टकोणों में अिम् ्का तत्त्व बिुत मजबूत रिता िै।

ब्रह्म के साथ एकता से उमपन्न िोने ेवाली समानता एक सवथिा शभन्त्र चीज िै। उस समता में व्यजकत ककतना भी दबाव सिन कर सकता िै, ककतना भी भारी कम िसिजता से कर सकता िै। विीं अिपरक रूप से अपने ऊपर लादी गई समता में व्यजकत एक सीमा तक तो सिन कर सकता िै पर उससे अधधक आघात या थपेिों से वि टूट जाएगा। इसशलए इसको एक सीमा तक िी ककया जा सकता िै। इसी प्रकार अनेक तामशसक, राजशसक और साजत्त्वक प्रकार की ननवृर्त् या वैराग्य से उमपन्न िोने ेवाली समताएँ िोती िैं जो ककन्िीं आघातों के कारण, जीवन से जुगुप्सा के कारण या ऐसे िी अन्य ककन्िीं कारणों से आती िैं। इसी प्रकार दाशननिक की ननवृर्त् या वैराग्यजननत समता िोती िै जो किता िै कक यि संसार नश्वर िै अतः इसमें िोने ेवाली घटनाओंके कारण ववचशलत निींिोना चाहिए और शांत व सम बनेरिना चाहिए। परन्तु ये सब प्रकार की समताएँ तो केवल मानशसक जस्थनतयाँमात्र िोती िैं जो कक एक सीमा से बािर जाते िी टूट जाती िैं। ये स्थायी निीं ंिो सकतीं कयोंकक इनका आधार आममा की वि समता निीं ंिोती जो कक ककन्िींभी पररजस्थनतयों में सुदृढ़ बनी रिती िै।

यि ननजश्चत िै कक इतने बड़े ेपररणाम पर तुरन्त िी और त्रबना ककन्िीं पूव िअवस्थाओं के निींपिुँचा जा सकता। पिले िमें संसार के आघातों को सिना सीखना िोगा जजसमें िमारी सर्त्ा का केंरीय भाग उनसे अछूता और शान्त रिे, तब भी जब स्थूल मन, हृदय और प्राण प्रचण्ि रूप से ववचशलत िो रिे िों। अपने जीवन की आधारशशला पर अववचल खड़े ेरिकर, िमें प्रकृनत की इन बाह्य कियाओं से आममा को ववलग कर लेना िोगा, जो कक पीछे से देखती रिती िै या कफर अंदर गिराई में प्रनतरक्षक्षत बनी रिती िै। इसके बाद, ननशलप्ति आममा की इस शाजन्त और जस्थरता को इसके उपकरणों तक फैला कर, शाजन्त की ककरणों को प्रकाशमय केंर से अधधक अन्धकारमय पररधध तक प्रसाररत करना शनैः शनैः समभव िो जाएगा। इस प्रकिया में िम बिुत-सी गौण

अवस्थाओं की क्षखणक सियता ले सकतिैं; एक प्रकार की ननस्पृिता या वैराग्यभाव, एक शान्त-जस्थर दशनि, एक प्रकार का धाशमकि भावानतरेक िमें अपनेलक्ष्य से ककजञ्चत् ्ननकटता प्राप्त करने ेमें सियक िो सकतिैं। अथवा िम अपनी मानशसक प्रकृनत की कम प्रबल एवं उन्नत परन्तु तब भी उपयोगी शजकतयों को भी सियता के शलये पुकार सकतिैं। परन्तु अन्त में िमें या तो इनका मयाग करना िोगा या कफर इन्िें रूपांतररत कर इनके स्थान पर संपूण िसमता, एक पूण िस्वतःसत् ्आंतररक शाजन्त, और यिााँतक कक, यहद समभव िो तो, अपनेसभी अंगों में एक पूण िरूप से अखंनीय, आममसंजस्थत और स्वतःस्फूत िआनन्द प्राप्त करना िोगा।

इसमें ननहित संदेश यि िै कक इस समता को िम एकाएक िी पूण िरूप से प्राप्त कर लें, ऐसा संभव निीं ंिै। अतः प्रारमभ में - और प्रायः िी यि िोता भी इसी प्रकार िै - आवश्यक िै कक िम अपनी सर्त्ा के उस गिरे भाग में, जो कक श्रीमाताजी के प्रनत खुला िै और उनके प्रनत समवपति िै तथा जजसके संकल्प से िी िम माग िपर अग्रसर िुए िैं, वि अववचल बना रिे। चािे शरीर, मन, प्राण आहद उद्ववग्न िोते रिें, भावनाएँ ववचशलत िोती रिें, पर आममा यहद जस्थर बनी रिे तो वि िमें पथ पर लगाए रखेगी और िम चलते रिेंगे और ववचशलत रिते िुए भी िम आगे बढ़ते रिेंगे। बाद में धीरे-धीरे उस गिरे भाग - जो कक श्रीमाताजी के प्रनत खुला िै और उनके प्रभाव के प्रनत ग्रिणशील िै, जजसमें उमसाि आहद िैं - की समता व उसका प्रभाव िमारी सर्त्ा के अन्य भागों में भी प्रवेश करने लग जाएगा। धीरे-धीरे उस गिरे भाग का प्रभाव ववस्तीण िोकर सर्त्ा के अन्य भागों में फैल जाएगा जजससे कक समता आती जाएगी। और इस बीच िम जो भी कम िकरते िैं उन कमों में समता पूण िरूप से स्थावपत निीं िोती परन्तु कफर भी कम िमारा उस ओर अग्रसर िोने ेका एक साधन बन जाता िै। कयोंकक इस जस्थनत में िमारा आन्तररक भाग तो शांत िोता िै इसशलये जो बािर का ववचलन िै वि धीरे-धीरे कम िोता जाएगा और िमारे कम ि अधधक-से-अधधक हदव्य िोतेजाएँगे। यिी एक व्याविाररक प्रकिया िै कयोंकक मन, शरीर और प्राण सब एकाएक िी शान्त िो जाएँ ऐसा तो अधधकांशतः देखा-सुना निींजाता। 'सममवं योग उच्यते' अथात् ्समता िी योग िै। इस तरीके से ये सब बातें बिुत मित्त्वपूण िैं और ककसी माग िववशेष के शलए बिुत आवश्यक िैं। समस्या यि िै कक ये सारी बातें मानशसक रूप से समझनेके शलए और बुद्धध में स्पष्टता लानेके शलये तो ठीक िैं परन्तु व्याविाररक रूप से पूरा मागदशनि िमें केवल श्रीअरववन्द के पत्रों से िी शमलता िै। उन पत्रों में अलग-अलग व्यजकतयों के शलए अलग-अलग ननदेश िैं, प्रमयेक व्यजकत के स्तर के अनुसार वे सुझाव और परामश िदेते िैं। ऐसा निीं िैकक सभी लोग ककसी एक िी सूत्र के सिारे या कफर ककसी एक शसद्धांत को लेकर समता की ओर चल पड़ें। यि पूरा ववषय िी कोई इतना सरल निीं िै। यि तो एक देखने का तरीका मात्र िै कक ककस तरीके से भगवान् ्से जुड़ने पर समता आहद जैसी चीजें स्वतः िी आ जाती िैं। परन्तु इन्िें ककसी भी सूत्र में बाधाँ निीं जा सकता। वास्तव में तो इतनी सब बातें केवल एक गंभीर ववषय को सरल रूप से समझाने का तरीका मात्र िैं जबकक अपने-आप में ववषय बिुत िी गिन और जहटल िै। और सच किें तो केवल एक िी सच्चा उपाय िै कक िम श्रीमाताजी की ओर अधधकाधधक बढ़ते जाएँ और अपनेसमपणि को बढ़ातेजाएँ और कफर जैसा वे चािें वैसा िोता रिे। कयोंकक कोई एक ननयत-ननधाररत तरीका या सूत्र निीं िोता। ये सब बातें तो केवल बुद्धध को कुछ हदशा-ननदेश प्रदान करने में सियक िैं, इससे अधधक निीं।

ककन्तु तब िम ककसी भी प्रकार कम िकरना जारी िी कैसे रख सकेंगे? कयोंकक सामान्यतया मनुष्य इसशलये काम करता िै कयोंकक उसे कोई कामना िोती िै अथवा वि कोई मानशसक, प्राखणक या शारीररक अभाव या आवश्यकता अनुभव करता िै; वि या तो शरीर की आवश्यकताओं से, धन-समपवर्त् एवं मान-प्रनतष्ठा की तृष्णा से पररचाशलत िोता िै, अथवा मन या हृदय की ननजी तुजष्टयों की लालसा से या शजकत (अधधकार) या सुख-भोग की उमकट इच्छा से। अथवा वि ककसी नैनतक आवश्यकता द्वारा वशीभूत िोकर इधर-उधर प्रवृर्त् ककया जाता िै, या कम-से-कम इस आवश्यकता या कामना से प्रेररत िोता िै कक उसके ववचारों या उसके आदशों या उसके संकल्प या उसके दल या उसका देश या उसके देवता संसार में प्रभुमवशाली बनें। यहद इनमें से कोई भी कामना अथवा अन्य कोई भी कामना िमारे काय िकी पररचाशलका निीं िोती तो ऐसा प्रतीत िोता िै मानो समस्त प्रोमसािन या प्रेरकशजकत िी िटा ली गयी िै और तब स्वयं कम िभी अननवाय िरूप से बन्द िो जाएगा। गीता इसका उर्त्र हदव्य जीवन के अपने तीसरे मिान् ्रिस्य को खोलकर देती िै। अवश्य िी समस्त कम िएक अधधकाधधक ईश्वरोन्मुख और अन्ततः ईश्वर-अधधकृत चेतना में रितेिुए करनेिोंगे, िमारे कम िभगवान् ्के प्रनत यज्ञ-रूप िोने ेचाहिये, और अन्ततः िमारी समपूण िसर्त्ा का, मन, संकल्प-शजकत, हृदय, इंहरय, प्राण और शरीर, सब का - एकमेव के प्रनत समपणि अवश्य िी ईश्वर-प्रेम और ईश्वर-सेवा को िी िमारे कमों का एकमात्र प्रेरक-भाव या िेतु बना देगा। प्रेरक-शजकत का और कमों के स्वरूपमात्र का यि रूपान्तर िी ननस्संदेि गीता का प्रधान ववचार िै; कम,ि प्रेम और ज्ञान के इसके अद्ववतीय समन्वय का यिी आधार िै। अन्त में, कामना निीं,ं अवपतु सनातन की सचेतन रूप से अनुभूत इच्छा िी िमारे कम िकी एकमात्र पररचाशलका और इसके सूत्रपात की एकमात्र प्रवतकि रि जाती िै।

समता, िमारे कमों के फल की समस्त कामना का मयाग, िमारी प्रकृनत और समजष्ट-प्रकृनत के परम् ्प्रभु ु के प्रनत यज्ञ-रूप से कम िकरना, - ये िी गीता की कमयोिग-प्रणाली में ईश्वरोन्मुख प्रवेश-प्राजप्त के तीन प्रथम साधन िैं।

III. यज्ञ का मित्त्व

यज्ञ का ववधान वि सावजिनीन हदव्य किया िै जजसे इस जगत् ्के आहद में ब्रह्माण्र्के पूण िएकमव (लोकसंग्रि) के प्रतीक के रूप में प्रकट ककया गया था। इसी ववधान के आकषणि से एक हदव्यीकारक, एक रक्षक शजकत इस अिंकारमय और स्वतः-ववभकत सृजष्ट की भूलों को मयाहिदत करने ेऔर उन्िेंसंशोधधत तथा उर्त्रोर्त्र दूर करने के शलये अवतररत िोती िै। यि अवतरण, पुरुष का यि यज्ञ, अथात्ि्'हदव्य आममा' का अपने-आप को शजकत और ज़ि-प्रकृनत के अधीन कर देना जजससे कक इन्िेंअनुप्राखणत और प्रकाशयुकत कर सके - ननश्चेतना और अववद्या के इस संसार से उद्धार का बीज अथवा मूल रिस्य िै।

यज्ञ का रिस्य इसमें असंहदग्ध रूप से त्रबल्कुल स्पष्ट िी दे हदया गया िै। भगवान् ्ने तीसरे अध्याय में किा िै कक ब्रह्मा ने जब सृजृष्ट की तब उन्िोंने किा कक यज्ञ के द्वारा तुम अपने-आप को पररपुष्ट करो। यज्ञ का अथ िै एकता का शसद्धांत।

श्रीअरववन्द का किना िै कक संसार में जो इतना वैववध्य िै, जो ववशभन्नता िै उसका आधार िै एकता। एकता जजतनी िी अधधक मिान् ्िोगी उतनी िी अधधक ववशभन्नता, ववववधता विन की जा सकती िै, कफर उसमें कोई खतरा निीं, वैसे िी जैसे कक यहद िमारा कोई अमयंत वप्रय िै वि िमारे ककसी भी व्यविार से खखन्न निीं िोता, भले उसे िम अनदेखा कर दें, उसकी उपेक्षा कर दें, कयोंकक िमारे प्रेम का आधार इतना सुदृढ़ िोता िै इसशलए िमारे ककसी भी व्यविार से उसे वास्तव में कोई तकलीफ निीं िो सकती। िा, ाँ यहद प्रेम का आधार दृढ़ न िो तब कफर सभी बातों का बिा िी ध्यान रखने की आवश्यकता िोती िै। इसी प्रकार, भगवान् ्की एकता इतनी मिान् ्िै कक यि सारी गोचर और अगोचर ववववधता भी उसके सामने कुछ निीं ंिै, कयोंकक इन सबके अंदर एकता की रक्षक शजकत ननहित िै। यि यज्ञ का मूल रूप िै, उसका मूल तत्त्व िै।

इस एकता के कारण िी स्रष्टा और स्रष्ट जगत् ्तथा इसमें व्याप्त सभी चराचर जीव और पदाथ िसिज रूप से एक दूसूरे के प्रनत आकवषति िोतें। यिााँइस ब्रह्माण्ड्में परमाममा चूाँकक एकमव िैं और उन्िोंनी इस ववववधता का रूप ले शलया िै, और स्वयंवे अनंत परमाममा इसमें व्याप्त िैं, इसशलए वे इससे ववलग कैसे िो सकते

िैं। और इसी कारण वे ेस्वयंिी अपनेइस ववववधतापूण िरूप में अंतननहित िैं। अब परमाममा यि ज़ितत्त्व कैसे बने? उन्िोंनेस्वयं अपने-आप को िी इस रूप में पररवनतति कर हदया। इसशलए जब स्वयं परमाममा उसमें व्याप्त िैं इसशलए ज़ि जगत् ्भी उनकी ओर आकवषति िोने ेको बाध्य िै।

----
* यि आममदान िै। यि वि शब्द िै जजसेगीता आममदान के शलए प्रयुकत करती िै। भेद केवल यि िै, यज्ञ परस्पर िोने वाली चीज िै... भगवान् ्ने स्वयं ंको 'ज़ि-तत्त्व' के अंदर उमसग िकर हदया िै जजससे कक ज़ितत्त्व में, जो ननश्चेतन बन गया था, चेतना जागृत् करें। और यिी िै वि यज्ञ, ज़ितत्त्व में भगवान् ्का उमसग,ि अथात्ि्ज़ितत्त्व में उनका प्रकीणनि या त्रबखराव जो कक भगवान् ्के प्रनत ज़ितत्त्व के यज्ञ का औधचमय शसद्ध करता िै और इस यज्ञ को आवश्यक बना देता िै; कयोंकक यि तो एक िी जैसी पारस्पररक और प्रनतकियाममक किया िै। कयोंकक ज़ितत्त्व को हदव्य चेतना के प्रनत जागृत् करने के शलए भगवान् ्ने स्वयं ंको ज़ितत्त्व में उमसग िकर हदया िै और ज़ितत्त्व में सवत्रि अपने आप को इस प्रकार प्रकीण किर हदया

िै किक ज़ितत्त्व स्वयमेव िी बाध्य िै कक वि स्वयं ंको भगवान् ्के प्रनत उमसग िकरे। यि एक पारस्पररक और अन्योन्य यज्ञ िै और यिी गीता का मिान् ्रिस्य िै: 'ज़ि-तत्त्व' के मम ितक में भागवत् ्'उपजस्थनत' की अशभपुजष्ट। और, इसी कारण, 'ज़ि-तत्त्व' को अवश्य स्वतः िी भगवान् ्के प्रनत उमसग िकरना िोगा, स्वत:, यिााँ तक कक अचेतन रूप से भी भले कोई ऐसा चािे या निीं, यिी िोता िै।

केवल, जब यि अचेतन रूप सेककया जाता िै तब मनुष्य को यज्ञ का िष ि निीं प्राप्त िोता; जबकक यहद यि सचेतन रूप से ककया जाता िै तो मनुष्य को यज्ञ का िष िप्राप्त िोता िै जो कक परमोच्च िष िै।

इसशलए जो ननवतनि (involution) िुआ उसी के प्रमयुर्त्र में िमववकास (evolution) िुआ। यि चेतना ज़ितत्त्व में अंतननहिित िै। इसशलए ज़ितत्त्व स्वयंचािे या न चािे, पर अपनेअंदर से वि अपनेमूल स्वरूप परमाममा की ओर पुनः जाने के शलए बाध्य िोता िै। ज़ितत्त्व की यि सारी प्रकिया चलती रिती िै। पर मनुष्य में जब यि प्रकिया सचेतन िो जाती िै, तब वि इस यज्ञ के आरोिण का आनंद ले सकता िै। जब तक उसे इस आरोिण का भान निीं ं िोता और अवश रूप से वि इसे करता रिता िै, तब तक उसे इसका पूरा आनंद निींशमलता।

आरंभ में मनुष्य इसशलए कम िकरता िै कक उसे ककसी आवश्यकता या कामना की पूनत िकरनी िोती िै। यहद भोजन चाहिये तो अमुक किया करनी िोगी, कुछ और चीज की आवश्यकता िो तो उसके अनुसार किया करनी िोगी। ये सब तो मनुष्य को अवश रूप से करने िोतेिैं। इसशलए व्यजकत को जो कुछ प्राप्त करना िोता िै उसके शलए उसे उतनी ऊजाि व्यय करनी िोती िै, कयोंकक यज्ञ का तत्त्व तो ननहित िै इसशलए आदान-प्रदान तो रिेगा िी। इस आदान-प्रदान के द्वारा िी मनुष्य ववकशसत िो सकता िै और अपने सच्चे स्वरूप में बढ़ सकता िै। ऐसा न िो तो कुछ भी निींिो सकता, कोई भी प्रगनत निीं ंकी जा सकती। इस आदान-प्रदान को रोका जा िी निीं सकता। पर जब व्यजकत इसका मूल शसद्धांत समझ जाता िै, तब वि प्रसन्न िोकर इसे करता िै। और जब प्रसन्न िोकर व्यजकत यि आदान-प्रदान करता िै तब यज्ञ शुरू िो जाता िै। इससे अधधक आनंद और ककसी चीज में निीं िै। अपने-आप को दे देनेमें जो आनंद िै वि अद्भुत िै। िमारे सारे दुःख-कष्ट, पीिा-यंत्रणा केवल अिं के कारण आते िैं, इसशलये आते िैं कयोंकक व्यजकत को स्वयं से लगाव िोता िै। िमने अपने मनोवैज्ञाननक जीवन में इतनी बेड़ियााँ िाल रखी िोती िैं कक उनके कारण आरोिण मुजश्कल िो जाता िै। व्यजकत किता िै 'मेरा तो अपने पुत्र से बिा मोि िै' या कफर 'मुझसे उस व्यजकत का दुःख निींदेखा जाता। पर पुत्र तो उसके अपने अिं का रूप िी तो िै। और दूसूरे व्यजकत के दुःख का भाव भी अिं के कारण िी िै। इस सबका मूल कारण िै कक व्यजकत अपनेअिं से मुकत निीं ंिै। कयोंकक यहद व्यजकत ककसी गिरी चीज के प्रनत समवपित िो तो कफर वि इन बाह्य चीजों या घटनाओं से इस तरि प्रभाववत निीं िो सकता। इसी प्रकार िमने इतनी बेड़ियााँ िाल रखी िोती िैं जजनके कारण िमारे यज्ञ का आरोिण निीं िो पाता।

यि यज्ञ भी तामशसक, राजशसक व साजत्त्वक, तीन प्रकार का बताया गया िै। तामशसक यज्ञ तब िै जब व्यजकत अधधक-से-अधधक फल चािता िै परंतु ऊजाि कम-से-कम देना चािता िै, और केवल बाध्य िोकर िी अपनी ऊजाि व्यय करता िै। राजशसक यज्ञ में व्यजकत इसशलए कम िकरता िै कक यहद वि ककसी के शलए काम करेगा तो बदले में उसे भी लाभ शमलेगा। तीसरे भाव में, साजत्त्वक प्रकार के यज्ञ में व्यजकत इसकी परवाि निींकरता कक सामने वाला उसे लाभ पिुाँचाएगा या निीं, उसे तो जो उधचत कम िि वि करना िोता िै, न कक फल की आशा से। अब, ननलैगुण्य यज्ञ वि िै जजसमें व्यजकत को कम िकरनेया न करने पर कोई आग्रि निीं ंिोता, जजस प्रकार जगदमबा चािती िैं वैसे िी वि कम िकरता िै, उसी प्रकार के ववचार आने लगते िैं, वे िी कम िोने ेलगते िैं, स्वतः वे िी भावनाएाँ आने ेलगती िैं। व्यजकत सिज रूप से परमाममा के प्रनत खुला िोता िै और जैसा वे चािते िैं वैसी िी किया करता िै। कयोंकक भगवान ्की परा प्रकृनत िी िै जो सभी कुछ करती िै। 'अिं हि सवियज्ञानां भोकता च प्रभुरेव

च' अथात्ि्'म ैंस्वयंीं सभी यज्ञों का भोकता और ईश्वर ि्ूाँ।' 'भोकतारं यज्ञ तपसां ंसवलिोकमिेश्वर' 'अथात्ि्सभी यज्ञों और तपों का भोकता म ैंस्वयंिूँ और सभी लोकों का मिान् ्ईश्वर ि्ूाँ।' 'सुहृदं सवभिूतानां ंज्ञामवा मम शाजन्तमररच्छनत' और 'म ैंिी सभी भूतों का सुहृद ि्ूाँ यि जानकर व्यजकत शाजन्त प्राप्त कर लेता ि।ै' कयोंकक जब म ैंस्वयंीं मिान् ्ईश्वर ि्ूाँ और तुमिारा सुहृद ि्ूाँ तो कफर तुमिारे साथ कोई गलत काम िो िी कैसे सकता ि।ै

इस प्रकार यज्ञ का ववधान तो सृजृष्ट में अंतननिहित ि।ै यहद कोई अपने को आमम-ननभरि या अपने-आप में एक स्वतंत्र इकाई मानना चािे तो यि चल निीं सकता, कयोंकक सभी कुछ तो एक ि।ै यहद शरीर के अंदर सभी अंग अपने को स्वतंत्र मान लें तो यि बात चल निीं सकती। वैसे िी ब्रह्माण्ड्में सभी चीजें परस्पर जुिी िुई िैं। यहद ऐसा न िो तो सभी कुछ नष्ट िो जाएगा। इसशलए यिााँआदान-प्रदान के त्रबना कुछ भी अजस्तमव में रि िी निीं ंसकता। शरीर में भी आदान-प्रदान चलता रिता ि,ै जैसे कक सासँ लेने से प्राण-वायु आती ि,ै रकत उसका सभी अंगों तक संचार करता ि,ै सभी अंग अपना-अपना काम करते िैं और एक-दूसरे की किया को पररपूररत करते रिते िैं। इस आदान-प्रदान से िी शरीर की अशभवृद्धध और ववकास िोता ि ैऔर शरीर सुचारू रूप से चलता ि।ै

श्रीअरववन्द कितेि ैंकक गीता जजस यज्ञ की बात करती ि ैवि उस समय ववशेषे से संबंधधत या कोई बाह्य अनुष्ठान िी निीं ंि।ै यि तो एक ऐसा शसद्धांत ि ैजो सभी कुछ के अंदर ननहित ि,ै इस ब्रह्माण्ड्का मूलभूत ववधान ि।ै यि कोई पररपाटी िी निीं ि।ै इसशलए गीता के यज्ञ ववधान का अथ िबुित िी गिन ि।ै इस चौथे अध्याय में तो इस बात में कोई संदिे िी निीं बचता कक गीता केवल ककसी प्रकार के बाह्य यज्ञ की िी बात निीं कर रिी ि।ै

गीता का संपूण िकमि–शसद्धांत उसके यज्ञसंबंधी ववचार पर आधश्रत ि ैऔर यि वस्तुतः ईश्वर, जगत् ्और कम िके बीच सनातन संयोजक समय को अपनेमें समाहित रखता ि।ै सामान्यतया मानव-मन अजस्तमव के बिुमुखी सनातन समय की केवल अपूण िया आंशशक धारणाओं और दृजष्टकोणों को पकिता ि ैऔर उन्िीं के आधार पर जीवन, आचारनीनत और धमसिमबन्धी ववशभन्न शसद्धांतों को गढ़ िालता ि,ै तथा उनके इस या उस लक्षण या रूप पर बल देनेलगता ि।ै परंतु मन जब कभी मिान् ्प्रकाश के युग में अपनेजगत्–ज्ञान के साथ भागवत् ्ज्ञान और आममज्ञान के पूण िऔर समन्वयाममक समबन्ध की ओर लौटता ि ैतो उसका िमेशा िी इन अपूण िशसद्धांतों की ककसी पूणति की ओर पुनजागिृत िोना तय ि।ै गीता की शशक्षा वेदान्त के इस मूल समय पर आधश्रत ि ैकक सारी सर्ता एक िी ब्रह्मसर्ता ि ैऔर सारी अजस्तमवमान सर्ता ब्रह्म का चि ि;ै एक ऐसी हदव्य गनत ि ैजो भगवान् ्से आरंभ िोती ि ैऔर भगवान् ्की ओर लौट जाती ि।ै सभी कुछ प्रकृनत की व्यंजक किया ि ैऔर प्रकृनत भगवान् ्की वि शजकत ि ैजो अपने कमों के स्वामी और अपनेरूपों के अंतयामिी हदव्य पुरुष की चेतना और इच्छा (संकल्प) को िी कियाजिन्वत करती ि।ै उस (अंतयामिी हदव्य पुरुष) की प्रसन्नता के शलये िी वि रूपाकृनतयों में और प्राण तथा मन के कमों में लीन िोकर अवतीण िोती ि ैऔर मन-बुद्धध और आमम-ज्ञान के द्वारा उस अंतयिामी आममा (हदव्य पुरुष) के सचेतन अधधकार की जस्थनत तक पुनः लौट जाती ि।ै पिले आममतत्त्व का, जो कुछ भी वि ि ैतथा नामरूपाममक ववकास से उसका जो कुछ भी अशभप्राय ि ैउस सब का, प्रकृनत में अंतवलियन (involution) िोता ि;ै

इसके बाद आममतत्त्व का ववकास िोता िै, अथात्् वि जो कुछ िै, उसका जो अशभप्राय िै, और जो अदृष्ट िोने ेपर भी नामरूपाममक सृजृष्ट द्वारा संकेत रूप से व्यकत ककया जाता िै, वि सब प्रकट िोता िै। प्रकृनत का यि चि जैसा अभी िै वैसा कभी न िो पाता यहद पुरुष तीन शाश्वत अवस्थाओं को एक साथ धारण कर के बनाये न रखता, कयोंकक प्रमयेक अवस्था इस कम िकी समग्रता के शलये आवश्यक िै। पुरुष के शलए अपने-आप को क्षररूप में प्रकट करना अपररिाय ििै, और विााँ िम उसे सीशमत, अनेक, सवभिूतानन के रूप में देखते िैं। यि पुरुष िमें अपनी अनन्त ववशभन्नताओं और नानाववध संबंधों से युकत असंख्य प्राखणयों के सीशमत व्यजकतमवों के रूप में हदखाई देता िै, और कफर यिी पुरुष िमें इन सब प्राखणयों के पीछे िोनेवाली देवताओं की कियाओंके मूलतत्त्व और उनकी शजकत के रूप में हदखायी देता िै, - अथात्् भगवान् ्की उन वैश्वशजकतयों और गुणों के रूप में जजनके द्वारा जगत् ्के जीवन का संचालन िोता िै और जो िमारी दृजष्ट के शलए एकमेव सत्ता के शभन्न-शभन्त्र वैश्व रूपों का गठन करते े िैं, अथवा िो सकता िै कक ये सब (देवता) एक िी परम् ्पुरुष के व्यजकतमव के ववववध आमम-ननरूपण िों। कफर, सभी रूपों और सत्ताओं के पीछे और इनके अन्दर िमें यि भी प्रतीनत िोती िै कक एक गूढ़, अक्षर, अनन्त, देश-कालातीत, नैयजकतक, अव्यय सत् ्ववद्यमान िै, जो सारे अजस्तमव का एक अखंआिममतत्त्व िै, जजसमें ये सब बिुमव अपने-आप को यथाथतिः एक पाते िैं। अतएव उस एक पुरुष-भाव में लौट आने ेपर व्यजष्टगत पुरुष का सकिय सीशमत व्यजकतमव यि पाता िै कक इस अखंअिनंत से जो कुछ ननःसृतृ िोता िै और उसके द्वारा जो कुछ धारण ककया जाता िै वि उसकी अक्षर और अशलप्त ऐकय की शांनत और समजस्थनत में तथा ववश्वव्यापकता की प्रशांत ववशालता में अपने-आप को मुकत कर सकता िै। या कफर वि व्यजष्टगत सत्ता से इसमें पलायन भी कर सकता िै। परन्तु सबसे परम् ्गुह्य **'उत्तरंरहस्यं**' ं िै पुरुषोत्म। यि परब्रह्म परमेश्वर िैं, जो अनन्त और सीशमत दोनों अवस्थाओं को धारण रखते िैं और जजनमें व्यजकत और ननव्यजिकत (सगुण और ननगुणि), एकमेव आममतत्त्व (ब्रह्म) और अनेक भूत, सत्ता और उसकी बाह्य अशभव्यजकत, संसार-कम िऔर ववश्वातीत शाजन्त, प्रवृवृत् और ननवृवृत्, ये सब-के-सब शमलकर एकमव को प्राप्त िोतिैं, एक साथ और अलग-अलग भी धारण ककये जाते िैं। परमेश्वर के अन्दर सब पदाथ िअपना गुह्य समय और परम् ्समन्वय प्राप्त करते िैं।

इसमें बातें तो बिुत िैं परन्तु मोटे रूप में जजतना िम समझ सकते िैं, उसे समझने का प्रयमन करेंगे कयोंकक ये ववचार सिज िी पकि में निीं ंआते। यिा ाँबता रिे िैं, और यिी िमारे सारे वेद, वेदांत भी किते िैं कक सारे ब्रह्माण्डिमें केवल एक िी सत्ता िै - 'एकमेवाद्ववतीयम्' ्। और वि 'सत्ता' अपनी अंततमि गिराइयों में व्यजकत स्वयं िी िै। जब व्यजकत अपनी अंततमि गिराइयों में जाता िै तब वि पाता िै कक सभी शरीरों में और सभी कुछ में वि स्वयंिी व्याप्त िै, उसके अनतररकत दूसूरा न तो कोई िै और न कभी था और चूंकक उसके अनतररकत ककसी दूसूरे का अजस्तमव िी निीं ंिै इसशलए वि स्वतः िी सवशिजकतमान्, ् सवव्यिापी और सवज्ञि िो जाता िै। परंतु अब प्रश्न यि उठता िै कक जब यि परम् ्समय िै कक केवल 'एकमेवाद्ववतीयम्' ् का िी अजस्तमव िै तो कफर यि सब दृश्य-प्रपंच कया िै। इसे सोचनेऔर समझने ेके अनेक तरीके िैं। एक तरीका जो गीता बता रिी िै वि यि िै कक मान लें कक आप अकेले िी िैं, आपके अनतररकत अन्य ककसी का कोई अजस्तमव िी निीं िै और आपके पास भंडिर भरे िुए िैं। अब, आपके अंदर जजज्ञासा उठती िै कक इस सब को देखा जाए, इसका ननरीक्षण ककया जाए। आप इसे देखते और संभालते िैं। इस सब चचिा में िमें यि ध्यान रखना चाहिये कक यि सब केवल समझनेके शलये िी िै कयोंकक

मि मनुष्य अपनी मानशसक चेतना से इससे अधधक कल्पना निीं कर पाते। तो, िमारी परंपरा में सदा िी यि मानतेिैं कक एक तो परमाममा स्वयीं और दूसूरी िै उनकी धचत्–्शजकत, या कफर उनकी संकल्प-शजकत, किया शजकत। इस प्रकार परमाममा ने स्वयंको दो भागों में बाटाँ शलया कयोंकक त्रबना इसके तो कोई सृजृष्ट िो निीं ंसकती। सृजृष्ट के शलए दो चीजें आवश्यक िैं, एक िै ववषय अथात्् वि पदाथ िजजसे देखा जाए और एक िै उसे देखने वाला रष्टा या कफर आममपरक चेतना। यहद पदाथ िै पर उसे देखने वाला कोई निीं िै तो उसके िोने ेका कोई अथ िी निीं ंननकलता। और यहद रष्टा िै पर पदाथ िनिीं ंिै तो सृजृष्ट िोती िी निीं। इसशलए परमाममा ने अपने-आप को खेल करनेके शलए दो भागों में ववभकत कर शलया। एक भाग तो वि िै जजसमें उनकी सारी समृदृ्धताएँ, सारी भव्यताएँ आहद सभी कुछ समाहित िैं। और दूसूरे भाग में उन्िोंनेरष्टा भाव अपना शलया ताकक इस सारी भव्यता और समृदृ्धता का अवलोकन कर सकें। और वास्तववक सृजृष्ट का अथ िियी िै कक जिाँभी वे अपनी दृजष्ट िालतेिैं विींपर वे भव्यताएँ प्रकट िो जाती िैं, सकिय िो जाती िैं। जैसे कक चीजें तो बिुत िैं परन्तु जजस समय आप जजस चीज को देख रिे िोतेिैं उस समय आपके शलए विी चीज अजस्तमव रखती िै। जजस प्रकार िम जजस स्िक से जा रिे िैं उस समय िमें विी प्रमयक्ष िोती िै, बोध भी उसी का िोता िै, उसी को मिसूस करते िैं, अन्यथा स्िकें तो और भी बिुत-सी िैं। यिी बात सृजृष्ट के शलये भी िै। जो सृजृष्ट िमें हदखाई देती िै उसमें प्रकृनत का काम िै कक वास्तव में जो प्रभु की भव्यताएँ िैं, उनका समस्वरूप िै, उनका जो आंतररक स्वरूप िै उसे प्रकट करे। अब मान लें कक आप अकेले िी िैं, आपके अनतररकत और कुछ भी निीं ंऔर आपने अपनी इच्छा-शजकत को ननदेश हदया कक आपके रूप को प्रकट कर के हदखाए कक आप कया िैं, कैसे िैं कयोंकक आपको अपने-आप को देखने में आनंद आता ै। अतः आपकी इच्छा-शजकत इस काय िको करने में अपनी सारी सामथ्य िलगा देती िै। और वि इस-इस तरीके के रूप बनाती िै, ऐसी ववराट् सृजृष्ट करती िै जजसमें ककसी-न-ककसी रूप में, ककसी-न-ककसी चीज में, किीं ंन किीं ं आपकी कोई बात, कोई चीज पकि में आ जाएगी, कयोंकक उसे तो अंतरंग रूप से आपके स्वरूप का पता िै कयोंकक वि तो आपकी िी कियाशजकत िै, इच्छाशजकत िै, संकल्पशजकत िै, आपकी िी चेतना िै। अब िमें जो सृजृष्ट यिाँ गोचर िो रिी िै उसमें िमें यि समझ लेना चाहिए कक परमाममा ने स्वयंको अनंत रूपों में प्रकट ककया िै। और न जानेकिाँ-किाँ, ककतने-ककतनेब्रह्माण्् िैं और उनमें कया-कया िो रिा िै, उनके बारे में िमें पता भी निीं िै। यि इतनी ववशाल चीज िै जजसको िम अनंत नजररयों से देखें, अनंत तरीकों से देखें तो भी उनके स्वरूप का, उनके तत्त्व का, उनकी अंतवस्ति्ु का कोई अंत निीं िै। अब प्रकृनत ने परमाममा के ववशभन्न रूप बनाए जजससे वे उन रूपों में स्वयंको देख सकें। गीता में भी उल्लेख िै 'सवभूतानन' - जजसमें असंख्यों तरीके की चीजें िैं - जजसमें ज़ितत्त्व भी िै, पशु–ु पक्षी भी िैं, मनुष्य आहद भी िैं। संसार को देखने का इन सबका अपना-अपना नजररया िै। पक्षी अपने तरीके से देखते िैं, पशुअपने तरीके से देखते िैं, प्रमयेक मनुष्य अपने-अपनेतरीके से देखता िै। और ये सभी चािे ककसी भी नजररये से कयों न देख रिे िों, परंतु उस परम तत्त्व के ककसी-न-ककसी अंश को अवश्य देख रिे िोतेिैं। िा, ाँ यि कि सकतेिैं कक कोई अधधक समझदारी से देखता िै, तो कोई कम समझदारी से देखता िै परन्तु सब देखतेउसी की छवव को िैं। कोई उसे धुधाँले तरीके से देखता िै, ककसी की उसको देखने की छवव काली िै, ककसी की सफेद िै और ककसी की रंगीन िै। ये सारे रूप जो प्रकृनत ने सृषूट ककये वे उन्िोंपरमाममा को प्रकट कर रिे िैं, उनको पिचान करा रिे िैं। इस पिचान करने की प्रकिया में चािे कोई किीं से भी शुरू करे पर वि नजररया अंनतम निीं

िता। चीजों की सृजृष्ट कैसे िोती िै इसे िम एक छोटे से उदिारण से समझ सकतिैं। मनुष्य अनेक ववचारों के अनुसार - जैसे कक राष्ट्रीयता का ववचार, जानत का ववचार आहद; अनेक व्यवस्थाओं के अनुसार - जैसे कक आधथकि व्यवस्था, राजनैनतक व्यवस्था आहद: अनेक शसद्धांतों के अनुसार जोता िै। परंतुये चीजें ककसी बंदर की चेतना के शलए अजस्तमव िी निीं ंरखतीं। और कफर ककसी पमथर से तो इसे समझने की अपेक्षा करना त्रबल्कुल िी ननरथकि बात िै। इसशलए ज्यों-ज्यों चेतना का ववकास िोता िै मयोंि-ी-मयों परमाममा के स्वरूप का, उनके तत्त्व का, उनकी समृद्धताओंका अधधकाधधक पता लगता जाता िै।

इस प्रकार, आरंभ में िमें जैसी प्रतीनत िोती िै, उसे गीता क्षर-पुरुष की संज्ञा देती िै। उसके बाद ज्यों-ज्यों व्यजकत की मानशसक शजकतयों का ववकास िोता िै मयोंि-ी-मयों उसमें ववशालता आती जाती िै और वि चीजों को एक शभन्न दृजष्टकोण से देखनेलगता िै। जैसे एक छोटा बच्चा आरंभ में अपनी सीशमत बुद्धध से िी ववश्व को देखता िै, और उसकी दुननया भी बिुत छोटी-सी िोती िै, परंतुज्यों-ज्यों वि वधधति िोता िै, ज्यों-ज्यों उसका मानशसक ववकास िोता िै और ज्यों-ज्यों वि अधधक पररष्कृत और सुसंस्कृत िोता िै मयोंि-ी-मयों ववश्व उसके शलए बदलता जाता िै। वि उसे शभन्न रूप से और अधधक समृद्ध रूप से देखने लगता िै। एक सीशमत दृजष्टकोण का व्यजकत सीशमत रूप से िी चीजों को देखता िै। कफर ज्यों-ज्यों व्यजकत सचेतन िोता जाता िै, या कफर ध्यान आहद कियाओं के द्वारा जब वि अपनी सूक्ष्म और प्रसुप्त शजकतयों को जागृत करता िै, उन्िें वधधति करता िै मयोंि-ी-मयों उसे एक और अधधक ववशाल जगत् ्हदखाई देता िै जो कक त्रबना इन शजकतयों को जागृत ककये हदखाई देना संभव निींथा। इन इजन्रयों की शजकतयों को िी देवता किा जाता िै। जैसे ककसी वैज्ञाननक को अनेक प्रकार के तत्त्वों का ज्ञान िोता िै परन्तु ककसी सामान्य व्यजकत के शलए तो उन तत्त्वों का कोई अजस्तमव िी निीं ंिोता। अब ककसी वैज्ञाननक के शलए वे तत्त्व इसशलए प्रकाश में आए कयोंकक उसनेअपनी चेतना को उनकी खोज में लगाया और उन्िें प्रकट ककया अन्यथा वे ेतत्त्व कभी भी प्रकाश में निींआते। इसीशलए इस जगत् ्को 'लोक' किते िैं अथात्ि ्जजस चेतना के स्तर से िम इसका अवलोकन करते िैं वि िमें वैसा िी गोचर िो जाता िै और उसी के अनुसार चीजें िमारे सामने प्रकट कर देता िै। और ये सारी चीजें देवताओं (अथात्ि ्िमारी मनोवैज्ञाननक शजकतयों) के साथ आदान-प्रदान करने से ववकशसत िोती िैं। िमारे वेदों में यि वणनि िै कक पिले व्यजकत चीजों को एक सीशमत दृजष्टकोण से देखता िै परन्तु ज्यों-ज्यों उसकी मनोवैज्ञाननक शजकतयााँ ववकशसत िोती िैं वि चीजों को और अधधक ववशाल दृजष्टकोण से देखने लगता िै। चूंकक मनुष्य की सामान्य चेतना कोई अंनतम निीं ंिै, वि चेतना के अनंत स्तरों की शीष ि अवस्था निीं िै, सदा िी उसमें व्यजकत उत्तरोत्तर आरोिण कर सकता िै। इसशलए चेतना ज्यों-ज्यों ववकशसत िोती जाती िै मयों-मयों वि और अधधक ववशाल और समृद्ध जगत् ्देखता िै, और उसे वे शजकतयााँ दृजष्टगोचर िोने ेलगती िैं जो ककसी साधारण चेतना में हदखाई निींदेतीं। और इस प्रकार यि आरोिण चलता जाता िै।

इसका दूसूरा पिलू यि िै कक जब व्यजकत की आमम-उन्ननत िोती िै, तो उसके इंहरय-बोध, मन, बुद्धध आहद भागों के बोध अधधकाधधक ववशाल िोते जाते िैं और अन्त में जब वि ववशाल िोकर इन सबसे ऊपर उठ जाता िै तो आखखर में उसे सारा ब्रह्माण्ि निजर आने लगता िै, और कफर सारा ब्रह्माण्ि उसे स्वयं के भीतर िी

हदखाई देने लगता िै। व्यजकत को इस प्रकार के अनुभव िोनेलगर्तिैं। उसे वैजश्वक सर्त्ा का अनुभव िोनेलगता िै। उससे भी परे व्यजकत ककसी ऐसी सर्त्ा के या ककसी ऐसी चीज के संपकि में आ जाता िै जजसका कक यि वैजश्वक सर्त्ा भी एक रूप मात्र िी िै, एक अंग िै। तब व्यजकत जान जाता िै कक इस ववश्व में जो कुछ भी गोचर िो रिा िै वि उसी सर्त्ा का रूप िै, जो शाश्वत िै, अनंत िै, आनंदमय िै। यि एक तीसरा तत्त्व शाशमल िो जाता िै। इन तीनों से संसार बना िै। इनमें एक चौथा तत्त्व िै जो सबसे मित्त्वपूण ििै। वि यि िै कक चेतना के इस ववस्तार में यहद व्यजकत और भी आगे जाए तो एक समय आएगा जब वि देखेगा कक परम प्रभु वि स्वयं िी िै, और विी इन सब चीजों में ववभकत िुआ िै और यि सारा खेल उसी का िै। और उसे अनुभव िोगा कक उसके अनतररकत दूसूरा कोई िै िी निीं। यि स्वयं पुरुषोर्त्म का भाव िै। और सब कुछ उन्िीं की प्रसन्नता के शलए, उन्िीं के ननशमर्त् िो रिा िै। उस चेतना से मनुष्य जुि सकता िै। गीता का किना िै कक 'क्षर और अक्षर से ऊपर उठ कर पुरुषोर्त्म अथात् िमेरे पास आ (मद्भावम् ्आगताः), अथाित् ्मेरा जो भाव िै उसी भाव में तू भी आ। और जब तू मेरी चेतना से जुि जाएगा तो तुझे ेमेरा भाव प्राप्त िो जाएगा।'

और िमारी प्राचीन परंपरा में चतुवणिों का ववभाजन साधना के दृजष्टकोण से ककया गया था, ककसी व्यापाररक या पेशे ेके दृजष्टकोण से निीं। कालांतर में जब इस व्यवस्था का ज्ञान लुप्त िो गया तब इसे जन्म के आधार पर िी मान शलया गया और वंशपरंपरा के आधार पर पेशे ेका ननधािरण िोने ेलगा। परन्तु यि चचाि पिले भी िम कर चुके िैं कक ये चारों वण ितो जगदमबा की चार मिान् ्शजकतयों की किया पर आधाररत िैं। यद्यवप श्रीमाताजी की अनंत शजकतयााँ िैं परंतु अशभव्यजकत में चार िी प्रधान रूप से कियाशील िैं। और प्रमयेक व्यजकत में यों तो चारों िी शजकतयााँ ववद्यमान िोती िैं परंतु आरंभ में अधधकांश में कोई एक या दो िी अधधक प्रभावी िोती िैं। परंतु यज्ञ के आरोिण के द्वारा व्यजकत अंततः इन चारों शजकतयों के स्वामी के रूप में प्रनतजष्ठत िो सकता िै। गीतापुरुषोर्त्म िै ककप्रमयेक मनुष्य को यि अधधकार िै कक वि स्वामी की जस्थनत तक, अथात् पिुाँच सके। और इस जस्थनत तक पिुाँचने का माग ििै यज्ञ जजसकी ववस्तृत चचाि िम पिले कर िी चुके िैं। तो इस प्रकार िम क्षर, देवता, अक्षर, पुरुषोर्त्म-संबंधी इस ववषय को समझ सकते िैं। िमारी भारतीय संस्कृनत की सारी व्यवस्था इसी दृजष्टकोण से बनाई गई थी कक ककस प्रकार प्रमयेक व्यजकत को उसके सच्चे स्वरूप तक यथाशीघ्र ले जाया जा सके।

अवश्य िी कमों का सारा समय सर्त्ा के समय पर िी ननभिर िोता िै। अवश्य िी संपूण िसकिय जीवन अपनी अंतरतम यथाथिता में प्रकृनत द्वारा पुरुष को ननवेहदत एक कमि–यज्ञ िै। यि प्रकृनत का अपनेअन्दर रिने ेवाले सीशमत बिुपुरुष की कामना को उस एक परम् ्और अनन्त पुरुष को भेंट चढ़ाना िै। जीवन एक यज्ञवेदी िै जजस पर प्रकृनत अपनेकमों और कमिफलों को लाती और उन्िें भगवान् ्के उस रूप के सामने रखती िै जजस रूप तक उसकी चेतना पिुाँच पायी िो और इस यज्ञ से उस सब फल की कामना की जाती िै जजसे शरीर-मन-प्राण में रिनेवाला जीव अपना तामकाशलक या परम श्रेय मानता िो। प्रकृनतस्थ पुरुष अपनी चेतना और आममसर्त्ा के जजस स्तर तक पिुाँचा िुआ िोता िै उसके अनुरूप िी उस ईश्वर का स्वरूप िोगा जजसे वि पूजता िै, वैसा िी आनन्द िोगा जजसे वि ढूाँढ़ता िै और वैसी िी आशा िोगी जजसके शलये वि यज्ञ करता िै। प्रकृनतगत क्षर पुरुष की प्रववृर्त् में सारा व्यविार पारस्पररक आदान-प्रदान िै और अवश्य िी िोगा कयोंकक सर्त्ा एक िै और इसके

ववभाजनों को अपने-आप को परस्पर ननभरिता के ककसी ऐसे ववधान पर स्थावपत िोना िोता ि जजसमें प्रमयेक दूसूरे के सिारे बढ़ता ि और सभी के सिारे जीता ि। जिााँ यज्ञिुनत स्वेच्छापूवकि निंदी जाती विााँप्रकृनत बलात् ् ऐसा करा लेती ि, वि अपने जीवन-ववधान की पूनत िकर लेती ि। पारस्पररक आदान-प्रदान जीवन का ननयम ि जजसके त्रबना वि एक क्षण के शलये भी बना निं रि सकता और यि तथ्य संसार पर उस भगवान् ्के सजनिशील संकल्प की छाप ि जजसने संसार को अपनी सर्त्ा में अशभव्यकत ककया ि, और यि इस बात का प्रमाण ि कक यज्ञ को उनका शाश्वत साथी बनाकर प्रजापनत ने इन सब प्रजाओं की सृजृष्ट की थी। यज्ञ का यि ववश्वव्यापक ववधान इस बात का धचह्न ि कक यि संसार ईश्वर तत्त्व का ि और ईश्वर का िी इस पर अधधकार ि, जीवन उसी का राज्य और अचनिा-मंहदर ि, ककसी स्वतंत्र अिंकार की आमम-संतुजष्ट का क्षेत्र निंि; अिंकार की संतृजृप्त निं, - कयोंकक वि तो जीवन का असंस्कृत और अंधकारमय आरमभमात्र ि, अवपतुभगवान् ्की खोज, ननरंतर ववस्तृत िोतेयज्ञ के द्वारा भगवान् ्और अनन्त की पूजा और उनका अन्वेषण, और उस यज्ञ की पररणनत पूण िआममज्ञान पर प्रनतजष्ठत पूण िआममदान में िोती ि, और अंततः जीवन का अनुभव इसी आममदान तक ले जाने िेतु अशभप्रेरेत िोता ि।

यज्ञ का ववचार कोई ऐसी चीज निंि जजसे कक पुरातन समय में तो भारतीय संस्कृनत ने आरमभ ककया िो पर अब उसका समय निं रि िो। गोता में ननहित यज्ञ का शसद्धांत तो एक ऐसी मूलभूत बात ि जजसके त्रबना सारा ब्रह्माण्ड्क्षिण भर भी अजस्तमव में निंरि सकता। कयोंकक यज्ञ का शसद्धांत तो इसमें आरंभ से िी ननहित ि और उसी के आधार पर यि सृजृष्ट िुई ि। इसमें आधारभूत तथ्य यि ि कक परमाममा केवल एक ि - 'एकमेवाद्ववतीयम्'्। इस जगत् ्में िमें उनके ककतने भी बिुरूप कयों न हदखाई देते िों परन्तु चूंकक वे एक िी ि इसशलये उनके ववशभन्न रूपों के बीच आदान-प्रदान िोता ि, जजसे 'यज्ञ' कितेि। इस तरीके से संसार चलता रिता ि और अपनी-अपनी मानशसकता के अनुसार लोग अपने-अपनेकमों में लगे रितेि। अब ज्यों िी व्यजकत का कुछ आन्तररक ववकास िोता ि, तब उसे यि बोध िोता ि कक केवल यक्ष, प्रेरेत आहद की पूजा करना िी आवश्यक निं ि, कैवल अपने ऊपर केजन्द्रत रिकर प्रयमन करने ेकी अपेक्षा उसका गुजारा तो अन्य तरीकों से भी चल सकता ि। और तब व्यजकत घोर स्वाथ िसे िटकर कुछ ननःस्वाथ िकाय िकरने ेलगता ि और, इस प्रकार, वि भूतों और यक्षों की पूजा करनेकी अपेक्षा गंधवो और छोटे देवताओं की पूजा करनेलगता ि और तब वि पाता ि कक उसका काम तो पिले की अपेक्षा और भी अधधक अच्छे तरीके से चल रि ि। इससे भी आगे यहद व्यजकत को ववश्वास आ जाए कक इस सब प्रयास के त्रबना भी उसका काम चल सकता ि और वि अपना समय परमाममा का ध्यान करनेमें लगा सकता ि तो कफर स्वतः िो उसकी सभी आवश्यकताओंकी पूनत िोती रिती ि। प्रकृनत का ऐसा िी ववधान ि। इस तरि आरोिण करते-करते जब व्यजकत परमाममा के संपकि में आ जाता ि तब कफर उसके ऊपर कोई बिारी ववधान लागू निंिोता कयोंकक कफर वि परम् ्में चला जाता ि और अपनी आममसर्त्ा में ननवास करने ेलगता ि। तब कफर वि सिज रूप से जो कोई भी कम िकरता ि वि आनन्द के शलए िी करता ि और ककसी भी प्रकार के कमों को करने की उसकी कोई बाध्यता निंरिती, और सिज रूप से उसे जैसी प्रेरेरणा िोती ि उसके शलए सिज िी वैसी ववशाल व्यवस्था िोती जाती ि कयोंकक उसके सारे कम ितो उसके प्रभु के िी ननशमर्त् िोतेि।

मिारे ऋवष मनुष्य के जीवन को 'यज्ञ का आरोिण' बताते िैं जो कक तामशसक, राजशसक और साजत्त्वक प्रकार का िोता िै। पर तीनों िी जंजीरें िैं। आरोिण में मनुष्य को इन्िीं के द्वारा िोकर चलना िोता िै।

परंतु साजत्त्वक, राजशसक और तामशसक, ये तीनों िी जस्थनतयााँ अपने शुद्ध रूप में निीं शमलतीं। ककसी एक तत्त्व की प्रधानता िोने पर भी दूसूरे दोनों तत्त्व भी न्यूनाधधक मात्रा में ववद्यमान रिते िी िैं कयोंकक मनुष्य में केवल मन या बुद्धध िी निींअवपतु प्राण और शरीर भी िोतेिैं इसशलए इनका भी अपना प्रभाव रिता िी िै। इसशलए गीता जजस ववशुद्ध रूप से साजत्त्वक मनुष्य की बात करती िै वि तो ववरला िी िोता िै। परंतुऐसा िोने पर भी वास्तव में तो व्यजकत बंधनमुकत निींिो सकता। वि तो एक अन्य तत्त्व िै जो कक ककसी चाणिालि में भी सकिय िो जाए, जगाई-मधाई जैसे ककसी घोर पापी, अनाचारी में भी सकिय िो जाए तो तुरंत िी उसे पववत्र बना देता िै। वि व्यजकत तो प्रभु के चरणों में ननवेहदत िो जाता िै और उनसे जुि जाता िै। कयोंकक प्रभु के अनतररकत अन्य कुछ तो समय िै िी निीं, बाकी सब तो केवल हदखावा मात्र िी िै। गीता, भागवत् ्और सारे शास्त्रों में इसी बात पर जोर हदया गया िै कक व्यजकत किींपर भी, कैसी भी जस्थनत में कयों न िो परन्तु जजस हदन उसके यि बात समझ में आ गई कक परमाममा के अनतररकत और कुछ भी मूल्यवान् ्निीं िै, सब ननरथकि िै, उसी हदन से उसके जीवन में दूसूरी धारा आरमभ िो जाएगी, इससे पिले शुरू निींिो सकती।

परन्तु अपने सामान्य प्रगनत िम में प्रकृनत तामशसकता से राजशसकता की ओर और कफर साजत्त्वकता की ओर गनत करती िै। िालाकाँक एकाएक भी इनमें से ननकल कर ननस्त्रैगुण्य तक जाया जा सकता िै। साजत्त्वक व्यजकत के शलए यि अधधक आसान िै, और दूसूरों के शलए अपेक्षाकृत कहठन िै। परंतुकफर भी कोई बाध्यता निीं िै, और यि इस बात पर ननभरि करता िै कक व्यजकत की अन्तराममा ककतनी ववकशसत िो चुकी िै। पिुाँचाएाँगे। इसी प्रकार जब व्यजकत को यि आभास िो जाता िै कक सवत्रि वि स्वयं िी मौजूद िै तब तो सारा दृजष्टकोण िी बदल जाता िै। ऐसा व्यजकत िर एक को इतना प्यार करता िै जजतना कक ककसी मााँको अपनेइकलौतेबच्चे से भी न िोता िोगा। वि जस्थनत िी दूसूरी िै। ऐसा व्यजकत ककसी की भलाई करने केी सोचता िी निींकयोंकक दूसूरा कोई िै िी निीं, ं वि स्वयं िी सभी में मौजूद िै। और इसी कारण उसे अपने िी सभी रूपों में प्रमयेक की वास्तववक आवश्यकता का भी भान िोता िै। इस चेतना के त्रबना तो व्यजकत अपने िी ववचारों के अनुसार, जजन चीजों की उसे स्वयंको चाि रिती िै या कफर जो चीजें उसे स्वयंको पसंद िैं, उन्िीं के द्वारा दूसूरों की भलाई करने की सोचता िै कक वे चीजें दूसूरे को भी प्राप्त िो जाएाँ। अधधकांश व्यजकत तो केवल भौनतक वस्तुओं के द्वारा िी भलाई करने केी सोचते िैं। ऐसे व्यजकत तो बिुत िी कम िोतेिैं जो वास्तव में मनोवैज्ञाननक रूप से, या कफर कुछ आंतररक रूप से भलाई करने की सोचते िैं। यि तो मनुष्य का अिं िै जजससे लगता िै कक वि ककसी की भलाई कर सकता िै। परन्तु ु जब वि दूसूरी जस्थनत िोती िै जजसमें व्यजकत को सभी से तादाममय मिसूस िोता िै, उस जस्थनत में उसे न केवल मनुष्यों से बजल्क पेि़-पौधों से, पशु–ुपक्षक्षयों से भी प्ेरेम िो जाता िै। और इस चेतना में वि ककसी के साथ कोई अनुधचत व्यविार कर िी निींसकता। अवश्य िी इसका यि अथ ि निीं िै कक जिााँ तथाकधथत अवप्रय व्यविार की आवश्यकता िो विााँवि वैसा करने से चूकेगा। जब, जिा,ाँ जैसा व्यविार अपेक्षक्षत िोगा वि ठीक उसी प्रकार का

व्यविार करेगा। इसीशलए पजश्चम के मानवतावाद में, परोपकाररता में और भारतीय संस्कृनत के 'सवभूित हिते रताः' में दूरू-दूरू तक कोई संबंध निीं ंिै।

अतः अपना और दूसूरों का वास्तववक कल्याण तभी िो सकता िै जब िम परमाममा की ओर चलें, कयोंकक केवल वे िी जानते िैं कक ककस व्यजकत का भला कैसे िो सकता िै। यहद वस्तुओं पर, या धन तथा अन्य ककसी चीज पर िी कल्याण ननभरि िोता तो परमाममा सभी को समान रूप से स्वयंिी इन सब की आपूनत िकर देते। परंतु वे िमारे मानदंडों के द्वारा काय िनिींकरते। और वे कफर स्वयं अपनेसाथ िी तो यि सब व्यविार कर रिे िैं। इसशलए सच्ची भलाई तब िोती िै जब िम परमाममा से जुिे िों, कयोंकक तब िम विी काम करेंगे जो परमाममा स्वयंअपने साथ कराना चािेंगे और इसी में सच्ची भलाई िै। बाकी सब तो मनुष्य का अिं िै, भ्रम िै।

प्रश्न : यहद व्यजकत की भावना और सोच अच्छी िो, कया तभी वि ऊपर की ओर उठ सकता िै?

उत्तर : भावना तभी अच्छी िोती िै जब व्यजकत का चैमय पुरुष, उसकी अंतराममा कुछ ववकशसत िोतीिै। अन्यथा तो व्यजकत इतने ेघोर अिं में िोता िै कक दूसूरों के बारे में सोच िी निीं ंसकता। व्यजकत के मन में दूसूरे की पीिा के प्रनत सिानुभूनत, पशुओं के प्रनत दया, अपने देश की दुदिशा के प्रनत पीिा आहद के भाव तभी िोतीिै जब उसकी आममा कुछ ववकशसत िोती िै। परंतु यि आवश्यक निीं ंिै कक व्यजकत की भावना अच्छी िोने पर भी उसे वास्तव में इसकी कोई समझ िो। परंतु चूंकक उसके अन्दर से यि भाव प्रकट िो रिा िै इसशलए यि इस बात का संकेत िै कक वि व्यजकत साजत्त्वक िै। और साजत्त्वक प्रकृनत वाला व्यजकत आगे जा सकता िै, िालाकाँक ऐसा िोना आसान निींिै। कयोंकक साजत्त्वकता के बंधनों से छूट पाना, इन भावों से छूट पाना कक 'म ैंपरोपकारी िूाँ, ननलेप िूाँ, मुझे ेकोई प्रनतफल निींचाहिए' बिुत िी मुजश्कल िै, कयोंकक मनुष्य को अधधकांशतः तो यि आभास िी निीं िोता कक वि बंधन में िै। इसके शलए तो व्यजकत को परमाममा से िी जुिना पिेगा। तभी वि इस बंधन से भी छूट सकता िै। और जैसा गीता किती िै कक चूंकक साजत्त्वक व्यजकत की भीतर से अधधक तैयारी िो चुकी िोती िै इसीशलए तामशसक और राजशसक की अपेक्षा उसके शलए ऊपर उठना आसान िोता िै।

और जो इस बंधन से छूट ननकलता िै उसके शलए कफर भलाई-बुराई, परोपकार आहद के सभी मानदंड समाति िो जाते िैं। कयोंकक परमाममा ने यि सारा ब्रह्माण्ड्अपनेआनंद के शलए रचा िै, इसशलए उस व्यजकत के शलए करनेका काम यि िोता िै कक पिले इस रचना को समझे ेऔर इसके आनंद में स्वयं आनंहदत िो। पृथ्वी पर जजन्िोंनेभी मित् ्काय िककये िैं, जजन्िोंनेभी पृथ्वी के ववकासिम में सिायता प्रदान की िै, वे वे िी आममाएँ या समपुरुष िैं जो परमाममा से जुिे िैं।

परन्तु व्यजकत अज्ञान से आरंभ करता िै और बिुत काल तक अज्ञान में िी लगा रिता िै। अनतशय रूप से अपने-आप के ववषय में िी सचेत रिने ेके कारण वि अिंकार को िी जीवन के मूल कारण और उसके संपूण िअथ ि के रूप में देखता िै, न कक भगवान् ्को। वि स्वयंको कमों के कता के रूप में देखता िै और यि निींदेख पाता कक जगत् ्के सारे कम,ि जजनमें उसके अपने आंतर और बाह्य सब कम िभी सजममशलत िैं, एक िी ववश्व-प्रकृनत द्वारा

ीनेवाले कम िीं, और अलग कुछ निीं। वि अपने-आपको िी सब कमाँ का भोकता समझता िै और यि कल्पना करता िै कक सब कुछ उसी के शलए िै, और इसशलए प्रकृनत को उसे िी संतुष्ट करना चाहिए और उसकी व्यजकतगत इच्छाओं की अनुपालना करनी चाहिए; उसे यि निीं सूझता कक प्रकृनत को ऐसा कोई सरोकार निींकक उसे संतुष्ट करे और उसकी इच्छा की उसे कुछ भी परवाि निीं ंिै, अवपतु प्रकृनत तो एक उच्चतर वैश्व-संकल्प की आज्ञा का पालन करती िै और उस देव को तृपृत करना चािती िै जो उससे, उसके कमाँ और उसकी सृजृष्टयों से अतीत िै। मनुष्य की पररसीशमत सर्त्ा, उसकी इच्छा और उसकी तृनृतया ाँउसकी अपनी निीं,ं अवपतु प्रकृनत की िैं और प्रकृनत इन सब चीजों को प्रनतक्षण उन भगवान् ्को यज्ञ-रूप से अपणि ककया करती िै जजनके िेतु को शसद्ध करनेके शलए वि इन सब चीजों को अज्ञात, अप्रकट साधनमात्र बनाती िै। इस अज्ञान के कारण िी, जजसकी कक छाप अिंकार ै, जीव यज्ञ के ववधान की उपेक्षा करता िै और संसार में जजतना िो सकता िै उतना सब कुछ अपनेशलए िी बटोरना चािता िै और केवल उतना िी देता िै जजतना प्रकृनत अपने भीतरी और बािरी दबाव के द्वारा उसे देनेको बाध्य करती िै। यथाथ िमें वि उससे अधधक कुछ निीं ले सकता, जजतना प्रकृनत उसे उसके भाग के रूप में प्राप्त करने ेदेती िै, जजतना प्रकृनत में जस्थत ईश्वरीय शजकतयाँ उसकी कामना पूरी करने के शलए देती िैं। यज्ञमय संसार में अिंकारववमूढ़ जीव मानो ऐसा िै जैसे कोई चोर या लुटेरा िो जो इन दैवी शजकतयों का हदया िुआ सब कुछ लेता तो िै, पर बदले में कुछ देनेकी नीयत निीं ंरखता। वि जीवन के वास्तववक अशभप्राय से वंधचत रि जाता िै और चूंकक वि अपने जीवन तथा कमों का उपयोग यज्ञ के द्वारा अपनी सर्त्ा को उदार, ववशाल और उन्नत बनानेमें निीं ंकरता, इसशलए वि व्यथ िी जीता िै।

इसमें कुछ बातें बिुत िी मित्त्वपूण िैं परंतु इन्िें बार-बार देखने, समझने और पढ़ने के बावजूद भी प्राय: िी िम भूल जाते िैं। कयोंकक साधारणतया िम सदा िी अपनेअिं में जीते िैं और सब समय उसे िी पोवषत करते ैं। सभी समय िम अपनेववचारों से, भले वे ेककतने भी उदार् कयों न िों, सममोहित रिते िैं। उदािरण के शलये ये ववचार कक म ैंअमुक मिान् ्काय िकरूँगा या कफर श्रीमाताजी के ननशमर्त् काम करूंगा, उसके पररणामस्वरूप मेरी साधना िोगी, आहद-आहद। इजन्रयों के, मन के, बुद्धध के ये सभी किया-कलाप सदा चलते रिते िैं और िम िमारे अिं के पोषण में लगे रिते िैं और िमें इस बात का कोई अंदेशा तक भी निींिोता कक िम कोई गलती कर रिे िैं। कयोंकक िमें यि लगता िै कक "म ैंिंू' और 'मुझे'े कोई तकलीफ निीं िोनी चाहिये। अच्छा वि िै जो 'मेरे अनुकूल िै और बुरा वि िै जो 'मेरे' अनुकूल निींिै। जो 'मेरे' व्यजकतमव को मित्त्व देता िै वि तो अच्छा िै और जो निींदेता वि बेकार िै। ये सभी ववचार िमारे अिं को िी पररपुष्ट करते िैं। सारे हदन यिी चलता रिता िै। श्रीअरववन्द यिाँ कि रिे िैं कक ऐसा व्यजकत अिंकार में शलप्त ववमूढामम िै।

वास्तव में तो केवल दो का िी अजस्तमव िै: परम् ्पुरुष और उनकी आद्या शजकत। परम् ्पुरुष ने स्वयं को इतने ेववशभन्न रूपों में प्रकट ककया िै और आद्याशजकत उन रूपों में प्रववष्ट िोकर परम् ्पुरुष के संकल्प को कायाजन्वत करनेके शलये आवश्यक ववचारों, भावनाओं, कमों आहद को उमपन्न करती िै और उन सब को उन असीम परमामा को भेंट करती िै। इस सारी कियाकलाप में जो स्वयं को कर्त्ा मानता िै और सभी कमों को अपने अिं पर अध्यारोवपत करता िै वि ववमूढ़ िै कयोंकक वास्तव में इस सब कियाकलाप में िमारा कोई लेन-देन निीं

िोता। यि सब तो उन आद्याशजकत या पराप्रकृनत द्वारा ककया जाता िै और वे िमारी पसन्द नापसन्द से प्रभाववत निीं िोतीं। िम देखते िैं कक कुछ लोगों के साथ तथाकधथत अच्छे कम िकरते िुए भी बुरे पररणाम घटते िैं और दूसूरों को बुरे कम िकरते िुए भी तथाकधथत अच्छे पररणाम प्राप्त िोतिैं। परंतुपरा प्रकृनत पर िमारे नैनतकता-अनैनतकता या समय या झूठ के मानदंड बाध्यकारी निीं ंिैं। वि तो परम् ्प्रभु ुके संकल्प की अशभव्यजकत के शलए जो आवश्यक िै, वि कम िकरती िै।

इसशलए गीता पिले तामशसक अवस्था का वणनि करती िै कक ककस प्रकार व्यजकत अपनेअिं के अनतररकत अन्य ककसी प्रकार के दृजष्टकोण से देख िी निीं पाता। वि िमेशा िी अिपरक रूप से स्वयंकी सुख-शांनत के शलये और स्वयंको जो अच्छा लगे उसी अनुसार कम िकरना चािता िै, उसके अलावा निीं। और कफर कम

ि

भी उसके स्वयं के शलए आवश्यक िो तो करना चािता िै, अन्यथा निीं। िा,ाँ वि यि अवश्य चािता िै कक प्रकृनत की कायि–प्रणाली ऐसी िो कक उसे उसका वांनछत सब कुछ शमल जाये – धन शमल जाये, मकान शमल जाये, समृद्धध शमल जाये, बिुत से प्ेरम करने ्वाले लोग शमल जायेंजो उसके बारे में ऊाँचेववचार रखते िों। यि यज्ञ की तामशसक अवस्था िै और ऐसे व्यजकत का जीवन वृथा िै - **रोषंपाथ वस जीर्तत।** ननन्यानबे प्रनतशत लोग तो इसी श्रेणी में आ जाते िैं। िो सकता िै कक कुछ में कोई दूसूरा अंश भी िो परन्तु अधधकांश में तो यिी भाव प्रमुख िोता िै

कक 'म'ैं िूाँ, और कफर इस 'म'ैं के संबंध से सारा प्रपंच। कोई जो ननरा पशुतुल्य और तामशसक िै, वि केवल खाने-

पीने पर तथा शरीर के सुख-भोग आहद पर िी अधधक केजन्रत िोता िै, जो कोई राजशसक स्तर का िै वि प्राखणक

आदान-प्रदान में लगा रिता िै, और जो साजत्त्वक स्वभाव का िै वि उधचत-अनुधचत के ववचारों के अनुसार चलता ि।ै परंतु कफर भी अधधकांशतः यिी भाव िोता िै कक उसके अपनिी ववचार परमोच्च िैं और सभी व्यवस्था उसी के अनुसार िोनी चाहिये। इन तीनों िी प्रकृनत के लोगों का झुकाव प्रायः केवल तामशसक उद्देश्यों की पूनत िकी ओर

िि

िोता िै। ये सभी िमेशा िी व्यजकत के स्थूल भौनतक भाग की कामनाओं, आवेगों आहद की सेवा में िी लगे रितिैं। उसी सेवा के शलये बुद्धध तमपर रिती िै, उसी की सेवा में प्राण रत रिता िै, उसी की सेवा हृदय करता िै। यि प्रथम स्तर िै, जो कक बिुत िी ननमन कोहट का स्तर िै परन्तु अधधकांशतः मनुष्य इससे ऊपर निीं ंजाता। वि केवल अपने'अिं' पर या 'स्व' पर केजन्रत रिता िै, अन्य ककसी के शलए कुछ निींकरना चािता। मनुष्य के दूसूरे भागों के द्वारा इस प्रववृत् को कुछ रंग दे हदये जाते िैं। बुद्धध अपनेरंग दे देती िै, हृदय अपना कुछ रंग दे देता िै जजससे ऊपरी रूप से हदखने ्में वि इतना भौंिा नि हदखे, परंतुवास्तव में तो यि 'स्व' केंहरत प्रववृत् िी िावी रिती िै। न्याय, नैनतकता आहद को तो व्यजकत जब, जिा ाँऔर जैसा अनुकूल िो उस अनुसार केवल इसी की पूनत िके शलये उपयोग में लेता िै। ककसी दूसूरे का आकलन करते समय व्यजकत तुरन्त कि देता िै कक उसका अमुक काम गलत

िैऔर निींककया जाना चाहिये परन्तु बात जब स्वयंकी िोती िै तो उसी काम को सिी और उधचत ठिरा देता िै। यज्ञ का यि तामशसक स्तर िै। इस स्तर पर भ्म का सबसे बडा कारण यि िै कक व्यजकत सोचता िै कक उसका स्वतंत्र अजस्तमव िै और उसके अिं की पूनत िके शलये सारे काम िो रिे िैं और िोने चाहिये। जबकक प्रकृनत को इससे

िोता। और चूँकक वि परमाममा की प्रसन्नता के िी ननशमर्त् सब कुछ करती िै इसशलए स्वतः िी उसके सारे काय ि उर्न्े सिमवपति िोतेिैं। जबकक िमनेअपनी जो दुननया बना रखी िै वि इसके एकदम ववपरीत िै। िम उसी में फंसे रिते िैं इसीशलये अज्ञान में रिते िैं। िमारी इस संकीण िजस्थनत में यहद कोई थोड़ी-सी अभीप्सा प्रवेश कर जाए, या कोई उदार्त् ववचार आ जाए तो कुछ छोटा-मोटा अनुभव िो जाता िै और धीरे-धीरे यज्ञ की यि ऊध्व िप्रकिया शुरू िो जाती िै। परंतु अधधकतर मनुष्यजानत के शलये तो ये सारे आयाम बंद िोते िैं। अधधकांश मनुष्यजानत के यज्ञ का यिी स्तर िोता िै और ऐसी अवस्था वाला मनुष्य वृथा िी जीता िै, 'मोघं पाथ िस जीवनत'।

जब व्यजकत अपनेकिया-व्यविारों में दूसरों में जस्थत आममा के मित्त्व को उतना िी अनुभव करनेऔर स्वीकार करने लगता िै जजतना कक वि अपनेअिं की शजकत और आवश्यकताओं को मानता िै, जब वि अपने कायों के पीछे ववश्वप्रकृनत को अनुभव करने लगता और ववश्वदेवताओं के द्वारा उस एक अखण्ि और अनन्त की झलक पाता िै, केवल तभी वि अिं द्वारा ननधाररत सीमाओंके अनतिमण और अपनी आममा के प्रकटीकरण के माग िपर िोता िै। वि एक ऐसे धम–ववधान को जानना आरंभ करता िै जो उसकी कामनाओं के ववधान से शभन्न िै, जजसके प्रनत उसकी कामनाओं को अधधकाधधक अधीनस्थ और आधश्रत िोना िोगा: अब वि ननरी अिंकारमय सर्त्ा की जगि एक उदार और नैनतक सर्त्ा में ववकशसत िो जाता िै। अब वि दूसरों में ननहित आममा की मागँों को अधधक मित्त्व देनेलगता िै और स्वयं अपनेअिं के दावों को कम मित्त्व देता िै, वि अिंकार और परहित भाव के बीच के संघष िको स्वीकार करता िै और अपनी परोपकारवृवर्त् को बढ़ाकर अपनी चेतना और सर्त्ा का ववस्तार करता िै। वि प्रकृनत और प्रकृनत में जस्थत हदव्य शजकतयों का बोध करने लगता िै जजनके प्रनत उसे यजन, अचनि और अनुपालन उमसग िकरने िैं, कयोंकक इन्िींके द्वारा और इन्िीं के ववधान के द्वारा मानशसक और भौनतक दोनों जगतों की कियाओं को ननयंत्रत ककया जाता िै, और वि यि जान जाता िै कक केवल उन्िींकी उपजस्थनत और मिर्त्ा को अपनेववचार, संकल्प और प्राण में संवधधति करने से वि अपनी शजकत, ज्ञान और उधचत कम िको तथा इनसे प्राप्त िोनेवाली तुजष्ट-पुजष्ट को बढ़ा सकता िै। इस प्रकार वि जीवन के ज़िभौनतक और अिंपरक भाव में धाशमकि और अनतभौनतक भाव को जोड़ देता िै और अपने-आप को सीशमत से िोकर अनन्त में ऊपर उठनेके शलए तैयार करता िै।

जब व्यजकत का कुछ ववकास िोता िै, उसकी मानशसकता का मनोववज्ञान का, उसके हृदय का कुछ ववकास िोता िै तब उसे लगता िै कक जीवन में केवल स्वयंके बारे में, अपनी िी पसंद-नापसंद, अपने सुख-दुःख के बारे में सोचने और केवल अपनेऊपर िी केजन्द्रत रिने के अनतररकत भी कुछ िै। सारी व्यवस्था के सुचारू रूप से चलनेके शलये इसके ऊपर एक नैनतक ववधान भी िै। और यहद उस ववधान में किीं ंकोई भंग पड़ता िै तो व्यवस्था चलेगी निीं। इसशलये सिी रूप से काम चलता रिे उसके शलए ककसके साथ ककस प्रकार का व्यविार करना आवश्यक िै, चीजों के बीच में ककस प्रकार का आपसी तालमेल िै, ककस प्रकार का संतुलन िै, यि सब भान िोने लगता िै। और इसी को अलग-अलग देवताओं के साथ आदान-प्रदान िोना किते िैं। िालाकँाक व्यजकत ऐसा सोच कर और सचेतन रूप से निींकरता कक वि देवताओं के साथ व्यविार या आदान-प्रदान कर रिा िै। ऐसा तो ववचार िी निींआता कयोंकक उसे इस बात का भान निींिोता कक देवताओं का भी कोई अजस्तमव िै। पर त्रबना सोचे-समझे

भी व्यजकत धीरे-धीरे केवल स्वयं के क्षुर स्वाथ िकी अपेक्षा समाज के ववधानों को भी मित्त्व देनेलगता ि ै। वि यि भी सोचने लगता ि ै कक उसके कृमय से दूसूरों को कैसा मिसूस िोगा। उसके कारण ककसी को तकलीफ निीं ंिोनी चाहिये। वि इन सब चीजों का मित्त्व समझने ेलगता ि ै। उसे यि समझ में आ जाता ि ै कक अन्य सभी के हित में िी उसका भी हित साधन ि ै और अनैनतक व्यविार करनेमें स्वयंउसे िी तकलीफ िोगी। यि बात बिुत अधधक सोच-ववचार कर निीं ंअवपतु सिज रूप से िी कुछ पररपकव अवस्था प्राप्त िोने ेपर समझ में आनेलग जाती ि ै। यि दूसूरा स्तर ि ै, जजसमें आदान-प्रदान पिले से बेितर िोने ेलगता ि ै। यि मध्यमा गनत ि ै। इसे राजशसक स्तर भी कि सकते ि ैं जब व्यजकत यि समझ लेता ि ै कक उसे अच्छा व्यविार तभी प्राप्त िोगा जब वि स्वयंदूसूरों के साथ अच्छा व्यविार करेगा। इस स्तर पर ववशभन्न श्रेणी के लोग िो सकतेिैं। राजशसक िोकर भी कोई व्यजकत तामशसक अवस्था के अधधक ननकट िो सकता ि ै और कोई अधधक सुसंस्कृत िो सकता ि ै और संभव ि ै कक सब बातों के बावजूद वि कुछ आंतररक रूप से भी खुला िो और परमाममा को भी कुछ मिसूस करता िो। इसमें कोई तय ननयम निीं ि ै। व्यजकत तामशसक अवस्था में िोकर भी परमाममा को मिसूस कर सकता ि ै। इसशलए ककसी भी अवस्था पर यि संभव ि ै कक व्यजकत परमाममा को मिसूस करे। परमाममा कभी भी, किीं ं भी, ककसी भी व्यजकत
में प्रकाशशत िो सकतेिैं, वि तो एक शभन्न किया ि ै। परंतु सामान्यतया व्यजकत में ज्यों-ज्यों धीरे-धीरे भीतर का प्रकाश बढ़ता ि ै मयोंि-ी-मयों वि इस प्रकार िशमक रूप से आगे बढ़ता ि ै। यि ि ै यज्ञ का आरोिण ।

परन्तु यि केवल एक सुदीघ िमध्यवती अवस्था ि ै। यि अवस्था अभी भी कामना के ववधान के अधीन रिती ि ै, सभी चीजों का केंर उसके अिंकार के दृजष्टकोण और आवश्यकताओं पर केंहरत िोता ि ै, तथा उसकी सर्त्ा और उसके कमों का ननयंत्रण प्रकृनत के द्वारा िोता ि ै, यद्यवप यि कामना एक संयत और मयाहिदत कामना िी रिती ि ै, एक पररष्कृत अिंकार और एक ऐसी प्रकृनत िोती ि ै जो कक प्रकृनत के उच्चतम तत्त्व, साजत्त्वक तत्त्वत, द्वारा अधधकाधधक सूक्ष्म और प्रकाशशत कर दी जाती ि ै। यि सब अभी भी क्षर, सीशमत और व्यजष्टगत के क्षेत्र के अंतगति िी रिता ि ै, भले यि एक बिुत अधधक ववशाल क्षेत्र िो। सच्चा आममज्ञान और फलतः सच्चा कममिाग ि इसके परे ि ै; कयोंकक ज्ञानयुकत िोकर ककया जानेवाला यज्ञ िी सवश्रेष्ठ िोता ि ै और विी पूण िकम िको लाता ि ै। यि अवस्था तभी आ सकती ि ै जब मनुष्य यि अनुभव करे कक उसके अन्दर की आममा और दूसूरों के अन्दर जो
आममा ि ै वे एक िी सर्त्ा ि ैं और यि आममा अिंकार से कुछ उच्चतर वस्तु ि ै, यि एक अनन्त, नैव्यजिकतक, ववश्वव्यापी सत् ्ि ै जजसमें सब प्राणी गनत करते ि ैं और अपना अजस्तमव धारण रखते ि ैं, - जब वि यि बोध करता
ि ै कक समस्त ववश्व-देवता जजनके प्रनत वि अपनेयज्ञ भेंट करता ि ै, वे एक िी अनन्त परमेश्वर के अनेक रूप ि ैं और जब वि उस एक परमेश्वर-समबन्धी अपनी सीशमत और सीमाबद्ध करनेवाली धारणाओं का पररमयाग कर के उन्िें एक अननवचिनीय परमदेव जानता ि ै जो एक िी साथ सीशमत और अनन्त ि ैं, जो एक पुरुष ि ैं और साथ िी
अनेक भी, जो प्रकृनत के परे िोकर भी प्रकृनत के द्वारा अपने-आपको प्रकट करते ि ैं, जो गुणों के बंधनों के परे िोकर भी अपने अनन्त गुणों के द्वारा अपनी सर्त्ा की शजकत को ननरूवपत ककया करते ि ैं। इन्िीं पुरुषोर्त्म को यज्ञ समवपति करना िोता ि ै, ककसी क्षखणक वैयजकतक कमफिल के शलए निीं, अवपतु जीव द्वारा भगवान् ्को प्राप्त ककये जाने के शलए और इसशलए कक भगवान् ्के साथ समस्वरता और एकता में रि जा सके।

ज्यों-ज्यों व्यजकत का ववकास िोता िै मयों-मयों उसके नैनतकता के बोध भी और अधधक पररष्कृत िोते जाते िैं और वि उनके अनुसार जीना शुरू कर देता िै। अमुक काम करते समय कुछ नुकसान भी उठाना पिे ेतो भी वि उसके शलये तैयार रिता िै। उसके भीतर ऐसी चीज ववकशसत िो जाती िै जजससे बािरी नुकसान की अपेक्षा नैनतक ववधान में भंग िोना ज्यादा नुकसानदायक मिसूस िोता िै कयोंकक उसे अब उसमें आनन्द प्राप्त िोता िै। त्रबना आनन्द के तो यज्ञ का आरोिण िो िी निीं ंसकता।

धीरे-धीरे अब व्यजकत अपनेदु:ख-ददि से इतना प्रभाववत निीं िोता जजतना कक दूसूरों के दु:ख-ददि से िोता िै। उसमें संवेदनाएँ इतनी बढ़ जाती िैं कक वि दूसूरों का दु:ख-ददि देख िी निीं ंपाता। ये सब बातें सिज रूप से व्यजकत के भीतर िोना प्रारमभ िो जाती िैं। उसके भीतर कोई चीज ऐसी िोती िै जो इस बात को मिसूस करती िै कक दूसूरे के अंदर विी चीज िै जो उसके स्वयं के भीतर िै और यहद उसके कारण दूसूरों को तकलीफ िोती िै तो अंततः उसे भी तकलीफ िोगी। जब व्यजकत आरोिण माग िपर िोता िै तब वि इन सब बातों के ववषय में त्रबना सोचे-समझे ेभी सिज रूप से दूसूरों की तकलीफ-आराम के प्रनत अमयधधक संवेदनशील िो जाता िै। उसमें एक ऐसा भाग ववकशसत िो जाता िै जो अपनिी अिं की तुजष्ट को, अपने िी मन, प्राण और शरीर की तुजष्ट को अधधक मित्त्व न देकर दूसूरों के बारे में भी संवेदनाएँ-भावनाएँ रखता िै। उसमें आनन्द का एक अधधक गिरा स्रोत खुल जाता िै और वि एक अधधक ऊँचेस्तर पर आ जाता िै जिााँवि एकमव को मिसूस कर सके। साथ िी उसमें यि भाव भी ववकशसत िो सकता िै कक भगवान् ्िैं। वे िी सबके माशलक िैं और सब शरीरों में वे िी ववद्यमान िैं। ऐसा उसके पररवार, वातावरण, संस्ंकारों, संस्कृनत आहद पर ननभिर करता िै। परन्तु यि संवेदनशीलता आना मुख्य बात िै और जब यि प्रास िो जाती िै तब व्यजकत एक अधधक उच्च जस्थनत पर आ जाता िै। इससे ऊपर की जस्थनत तो योधगयों की िै जजसमें व्यजकत को परमाममा का, श्रीमाताजी का बोध िो जाता िै और वि उन्िें समवपित िो जाता िै। कफर श्रीमाताजी िी उसकी सत्ता को अधधग्रिीत कर लेती िैं और वि उनके िाथों में एक यंत्र बन जाता िै और श्रीमााँ उससे जो करवाना चािती िैं विी करा लेती िैं। व्यजकत का कोई अिमाममक 'स्व' निीं ंरि जाता। यि भाव प्राप्त िोनेपर वि कफर तीनों गुणों से परे चला जाता िै अन्यथा तो वि साजत्त्वक स्तर पर आकर िी रुक जाता िै।

यज्ञ के आरोिण को िम अनेकों तरीकों से देख और समझ सकतेिैं। यिा ाँिमने उन अनेकों में से एक दृजष्टकोण को प्रस्तुत ककया िै जजसमें कक व्यजकत अधधकाधधक संवेदनशील िोता जाता िै। व्यजकत स्वयंके सुख-
दु:ख से अधधक दूसूरों के सुख-दु:ख के प्रनत संवेदनशील िो जाता िै। भरत जी के चररत्र का उदािरण िम देखें कक ककस प्रकार भगवान् ्श्रीराम की पीिा का ववचार कर के उन्िें स्वयंइतनी गिरी पीिा का अनुभव िुआ और उन्िोंने स्वयंअपना जीवन तपस्यामय बना हदया, इस सबका वणनि तो िम रामायण में देख िी सकतेिैं। यि आममा का भाव िै। उसके प्रनत खुले त्रबना तो इतना संवेदनशील िोना संभव निीं ंिै। व्यजकत जजतना िी अधधक आममा के
संपकि में िोगा, उसकी संवेदनशीलता उतनी िी बढ़ती जाएगी और वि स्थूल की बजाय अधधकाधधक सूक्ष्म चीजें अनुभव करने लगेगा, उनके प्रनत संवेदनशील िो जाएगा।

गीता के यज्ञ-शसद्धांत का ननरूपण दो पृथक् संदभों में िुआ िै; एक िम तीसरे अध्याय में पातेिैं, दूसरा चौथेअध्याय में; पिला ननरूपण ऐसी भाषा में िै जजससे यहद अपने-आप में िी शलया जाए तो प्रतीत िोता िै कक गीता केवल आनुष्ठाननक यज्ञ की बात कि रिी िै, दूसरा ननरूपण उसी की व्याख्या एक व्यापक दाशननक प्रतीकाममक अथ िमें कर के एकाएक िी उसके संपूण िअशभप्राय को बदल देता िै और उसे आंतररक और आध्याजममक समय के एक ऊँचेक्षेत्र तक उठा ले जाता िै... [यिा ँिमें] गीता की िी भाषा में यज्ञ के संबंध में एक पूणतिः प्रमयक्ष और ववशद व्याख्या प्राप्त िोती िै जो कक शब्दों के प्रतीकाममक प्रयोग के बारे में और गीता की शशक्षा के द्वारा प्रनतपाहदत यज्ञ के मनोवैज्ञाननक अथवा अध्याममपरक िोनेके ववषय में त्रबल्कुल भी कोई संदेि निीं ंछोड़ती"...यज्ञ का यि ववशद वणनि िी यज्ञ की एक ऐसी ववशाल और व्यापक व्याख्या देता िुआ चलता िै जजसमें यि स्पष्ट रूप से घोषणा की गयी िै कक यज्ञ की किया, उसकी अजग्न, िवव, िोता और भोकता, उस यज्ञ का ध्येय और उद्देश्य, सब कुछ एकमेव ब्रह्म िी िै।

ब्रह्मापिंव ब्रह्म हवर्ब्रह्मराग्नौ ब्रह्मा हुतर् ्।
ब्रह्मैर् तेन गततव्यं ब्रह्मकर्सर्वराधधना ।। २४।।
२४. अपिव-रूप कक्रया ब्रह्म है, घृतृ आदद पदाथ वब्रह्म है, ब्रह्म-रूप अजग्न र्ें ब्रह्म के द्वारा हर्न होता है;

उस ब्रह्मरूप कर् वर्ें सराधध के द्वारा ब्रह्म ही प्राप्तव्य लक्ष्य होता है।

तो यिी वि ज्ञान िै जजससे युकत िोकर मुकत पुरुष को यज्ञकम िकरना िोता िै। इसी ज्ञान की घोषणा प्राचीन काल में 'सोऽिं','सव िखजल्वदं ब्रह्म, ब्रह्म एव पुरुषः' आहद मिान् ्वेदांनतक उजकतयों में िुई थी। यि समग्र एकमव का ज्ञान िै; यि वि 'एक' िै जो कति, कम िऔर कमोद्देश्य के रूप में तथा ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के रूप में अशभव्यकत िै। जजस ववश्वशजकत में कम िकी आिुनत दी जाती िै वि स्वयं भगवान् ्िैं; आिुनत की उमसग िकी िुई शजकत भगवान् ्िैं; जजस ककसी वस्तु की आिुनत दी जाती िै वि भगवान् ्का िी कोई रूप िोती िै; आिुनत देनेवाले भी मनुष्य के अन्दर स्वयं भगवान् ्िी िैं, किया, कम,ि यज्ञ सब गनतशील कियाशील भगवान् ्िी िैं; यज्ञ के द्वारा गन्तव्य स्थान भी भगवान् ्िी िैं। जजस मनुष्य को यि ज्ञान िै और जो इसी ज्ञान में रिता और कम िकरता िै उसके शलए कोई कम िबंधनकारी निीं ंिो सकते, उसका कोई कम िवैयजकतक और अिंकारमय रूप द्वारा िस्तगत निीं ंिोता। हदव्य पुरुष िी अपनी हदव्य प्रकृनत के द्वारा अपनी सत्ता में कम िकरते िैं, अपनी आमम-चेतन ववश्व-शजकत की अजग्न में सब कुछ की आिुनत देते िैं; और इस सब भागवत्–पररचाशलत गनत और कम िका लक्ष्य िोता िै भगवान् ्के साथ युकत जीव द्वारा भगवान् ्की हदव्य सत्ता और चेतना के ज्ञान को प्राप्त करना और उसे अधधकृत करना। इसे जानना, इसी एकमव-साधनेवाली चेतना में ननवास करना और उसी में कम िकरना िी मुकत िोना िै।

परन्तु योधगयों में भी सभी ने इस ज्ञान को निींप्राप्त ककया िै।

गीता तीसरे अध्याय में यज्ञ के बारे में जो कि रिी थी उसे तो भ्मवश बिरी अथात्ि्केवल आनुष्ठाननक यज्ञ के अथ िमें शलया भी जा सकता िै, और अधधकांश लोग लेते भी उसी अथ िमें िैं, परन्तु यिा ँचौथेअध्याय में

यज्ञ के ववषय में गीता जो कि रिी ि‍ै उससे तो कोई संदेि ि‍ी निीं रि जाता कक गीता का यज्ञ मात्र बाह्य आनुष्ठाननक यज्ञ निीं ि‍ै। गीता उसे मनोवैज्ञाननक और आंतररक धरातल तक उठा ले जाती ि‍ै और विीँउसका ननरूपण करती ि‍ै। अगर इस आंतररक मनोवैज्ञाननक अथ ि‍का ननरूपण न ि‍ुआ ि‍ोता तो वेदों के ि‍ी समान गीता के प्रनत भी यि शमथ्या-धारणा दृढ़ ि‍ो जाती कक गीता केवल बाह्य अनुष्ठान का ि‍ी प्रनतपादन कर रिी ि‍ै और उसका कोई आंतररक अथ ि‍निीं ि‍ै। यिीँगीता के अनुसार जब व्यजकत ब्रह्म भाव में आ जाता ि‍ै और उस भाव में कम ि‍ करता ि‍ै तो उसके कम ि‍प्रभु की प्रकृनत से ि‍ी चाशलत ि‍ोते ि‍ैं और उनकी ओर ि‍ी जा रि‍े ि‍ोतीं। वि उनसे बद्ध निीं िोता। जब व्यजकत को अि ं का कोई भान ि‍ी निीं ि‍ै और सभी कुछ ब्रह्मरूप देखता ि‍ै और परमाममा को ि‍ी कायरित देखता ि‍ै तब वि मुकत ि‍ो जाता ि‍ै।

"प्राचीन वैहदक पद्धनत में सदा ि‍ी एक दोिरा अथ ि‍रिा ि‍ै, भौनतक तथा दूसरा मनोवैज्ञाननक, बाह्य तथा रूपकाममक, यज्ञ का बाह्य अनुष्ठान तथा उसकी सब ववधधयों का आंतंररक आशय। परन्तु प्राचीन वैहदक गुह्यवाहदयों (ऋवषयों) की गूढ़ रूपकाममक भाषा को, जो सवथि सटीक, अद्भुत, कववमवमय और मनोवैज्ञाननक अथवा अध्याममपरक थी, गीता के काल से बिुत पूव िि‍ी लोग भूल चुके थे, और गीता में उसी के स्थान पर वेदांत और पश्चात्–कालीन योग के भाव को लेकर व्यापक, सवसिामान्य और दाशननक भाषा का प्रयोग ककया गया ि‍ै। यज्ञाजग्न कोई भौनतक अजग्न निीं अवपतु ब्रह्माजग्न ि‍ै अथवा यि ब्रह्म की ओर जानेवाली ऊजा,ि‍ आंतररक अजग्न, यज्ञ के पुरोहित-स्वरूप अंतःशजकत ि‍ै जजसमें आिुनत दी जाती ि‍ै; अजग्न ि‍ै आमम-संयम या शुद्धधकृत इजन्रय-किया अथवा राजयोग और ि‍ठयोग में समान रूप से प्रयुकत श्वास-प्रश्वास के ननयमन की (प्राणायाम-साधना की) प्राणशजकत ि‍ै, अथवा अजग्न ि‍ै आमम-ज्ञानाजग्न, आममापणिरूप परम यज्ञ को अजग्नशशखा। यज्ञ से बचे ि‍ुए भाग का भोजन करना अमृत बताया गया ि‍ै; और यिाँ ि‍म अब भी उस प्राचीन वैहदक प्रतीकवाद का कुछ अंश पाते ि‍ैं जजसमें सोमरस को अमृत का भौनतक प्रतीक किा जाता था - अमृत वि हदव्य परमानन्द का अमरमव प्रदान करने वाला ि‍षि–आनन्द ि‍ै जो यज्ञ से प्राप्त ि‍ोता, देवताओं को चढ़ाया जाता और मनुष्यों द्वारा पान ककया जाता ि‍ै।

परन्तु गीता किती ि‍ै कक अधधकतर योधगयों को भी यि चीज निींप्राप्त ि‍ोती। यि तो ककसी बिुत ि‍ी लमबी साधना के द्वारा या कफर अकस्मात् ि‍ुई भगवत्–कृपा से ि‍ी संभव ि‍ै। अन्यथा यि चेतना प्राप्त निीं ि‍ो सकती। ि‍ो सकता ि‍ै कक ि‍में सैद्धांनतक रूप से, ववचार रूप में यि बात समझ में आ जाए, इसका ववश्वास ि‍ो जाए, इसका बोध ि‍ो जाए कक चूंकक ि‍मारे गुरु यि बात कि रिे ि‍ैं या कफर चूँकक गीता कि रिी ि‍ै तो यि बात पूरी तरि समय ि‍ै, परन्तुवि केवल एक मानशसक ववचार ि‍ो ि‍ोगा और ि‍मारे शलए वि एक जीवंत अनुभव निींिोगा। उसे ि‍म अपनी प्राखणक और भौनतक प्रकृनत पर अंककत निींकर सकते। ि‍मारे अवचेतन भागों में शभन्न-शभन्न तरीके की स्थूल गनतयाँयांत्रत्रक रूप से अपररवनततिि‍ी चलती रिती ि‍ैं। इस ववचार से ि‍मारा केवल थोिा उमथान थोिा पररष्करण ि‍ोता ि‍ै और ि‍म कुछ संवेदनशील बन जाते ि‍ैं। जैसे ि‍ी ि‍मारे दैनजन्दन कायकिलापों के दौरान ि‍में थोिा-सा भी ववचार करने ि‍का मौका शमलता ि‍ै वैसे ि‍ी ि‍म पुनः सचेत ि‍ो जाते ि‍ैं कक ि‍म स्व-केजन्रत ि‍ो रिे ि‍ैं। परन्तु इस बात की अनुभूनत और स्पष्ट बोध कक सब में ब्रिा ि‍ो व्याप्त ि‍ैं और सभी कुछ ब्रह्मस्वरूप ि‍ी ि‍ै, बिुत

ीि मुजश्कल ि ै। यि अनुभूनत तो योधगयों को भी आसानी से निीं िोती, साधारण मनुष्यों की तो बात िी कया ि ै। यहद िम सब में ब्रह्म का दशनि कर सकें, यि अनुभव कर सकें कक िमारे भीतर की आममा और दूसूरों के भीतर की आममा एक िी ि ै, और उस चेतना में, हदव्य प्रकृनत में ननवास कर सकें तब कफर वि हदव्य प्रकृनत जो भी कम ि करवायेगी, जो भी भाव लायेगी, जो भी ववचार लायेगी िम उन सभी में सदा िी आनजन्दत रिेंगे। उनमें कम िसे मिारी कोई शलप्तता अथवा बाध्यता िोगी िी निीं ंकयोंकक िम तो उन सब से ऊपर िोंगे और उनको िोता देख रि

िेंगे। इस कारण उनका कोई कायि–कारण प्रभाव निीं िोगा। इसीशलए हदव्य कमी को 'सवारंभि पररमयागी' अथात् ि् सभी आरमभों के मयागी की संज्ञा दी जाती ि ै। वि ककसी काय िका आरमभ निीं ंकरता। उसकी कोई स्वतंत्र व्यजकतगत इच्छा रिती िी निीं। िमारे कम िकफर हदव्य प्रकृनत से िी चाशलत िोंगे। जजस समय जैसी आवश्यकता िोगी वैसा ववचार आ जाएगा, वैसा िी कम िो जायेगा। इसशलये जब कमों का कर्त्ाि वि स्वयं निीं रिता तो कफर मानशसकता में कमि–जननत कोई प्रनतकिया भी निीं िोती। उसकी सर्त्ा पूण िरूप से परमाममा के प्रनत खुली िोती ि ै और उन्िें समवपति िोती ि ै और वि स्वयं को ब्रह्मस्वरूप जान लेता ि ै। परन्तु गीता इसका वणनि करनेके बाद किती ि ै कक यि जस्थनत योधगयों को भी दुलुभि ि ै। और यहद मानशसक रूप से िम इसे समझ भी लें तो भी यिा ंतक पिुँचना आसान निीं ंि ै। परंतु धीरे-धीरे मन में यि ववचार दृढ़ िो जाएगा, और कफर यि भावनाओं में आने ेलगेगा, जब भी िमें थोिा-सा ववचार करने ेका मौका शमलेगा वैसे िी िम अधधक सजग िोने ेलगेंगे और िम उस दृजष्टकोण से काम करने लगेंगे। परन्तु उस दृजष्टकोण से काम करना अलग बात ि ै और जीवंत रूप से ब्रह्म को मिसूस करना और देखना अलग बात ि ै। यि तो मात्र एक मानशसक समझ िी ि ै कक सबमें एक िी ब्रह्म ववद्यमान ि ै, केवल श्रीमाताजी व श्रीअरववन्द िी िमारे आराध्य िैं और उनके अलावा और ककसी की सर्त्ा निीं और िमें इस बात में जरा भी संशय निीं, िमारा हदल और हदमाग भी यिी बात किता ि ै परंतुकफर भी जीवंत रूप से िमें इसका अनुभव िो यि आवश्यक निीं। इसका कारण यि ि ै कक िमारे अवचेतन भाग अपना प्रभाव िालते रिते िैं और अपनी यांत्रत्रक कियाएँ चालू ूरखते िैं, मनस् ्अपनी तय धुन के अनुसार उसी ढरे पर चलता रिता ि ै, इंहरयााँ अपनी चककरों में फंसी रिती िैं। जब परमाममा से, श्रीमाताजी व श्रीअरववन्द से जुिने ेके बाद कुछ ऊजि ा व शजकत िमें प्राप्त िोती भी ि ै उसे भी ये भाग यथासंभव नछतरा देते िैं, ववकृत कर देते िैं और उसे ननष्प्रभावी बना देते िैं। जैसे िी साधक को कुछ शजकत प्राप्त िोती ि ै वैसे िी उसमें दूसूरों के कल्याण के ववचार, दूसूरों की सिायता करने ेके अिपरक ववचार, या कफर उस शजकत को त्रबखेरने के अन्य कोई ववचार आए त्रबना निीं ंरि सकते। इस दुषुचि को तोिना परम् ्आवश्यक ि ै और इसके पीछे ननरथकि शजकत व्यय करने ेसे बेितर तरीका ि ै कक जब िमें हदल-हदमाग में सद्‌गुरु के प्रनत, श्रीमाताजी व श्रीअरववन्द के प्रनत पूरा ववश्वास आ गया ि ै तो कफर जैसे िी मौका शमले वैसे िी िमें उनसे ननवेदन करना चाहिये। यि भाव तो िोता िी ि ै कक 'उनकी जैसी इच्छा िो उस रूप से वे िमें काम में लें' परंतु साथ िी िम अपनी सभी कियाओं को उनके समक्ष रख दें और जो कियाएँ और चीजें िमसे संयशमत निीं िो रिी िैं उनके शलए उनसे ननवेदन करें कक वे ेउन्िें अनतिम करने में िमारी सिायता करें। यि ननवेदन करें कक 'मेरी शजकत इधर-उधर त्रबखर रिी ि ै जबकक वि सारी शजकत आप िी को समवपति िोनी चाहिये। तो िम देखेंगे कक िम इस माग िपर आगे बढ़नेलग जाएँगे। यि एक व्याविाररक तरीका ि ै। िालााँकक िमारे हृदय में और हदमाग में पूण िववश्वास िोता ि ै परन्तु प्राण में, संवेदनों में, भौनतक शरीर में ऐसा निींिोता। वि तो तब िोगा

 जब श्रीमाताजी की शजकत ऊपर से अवचेतन में, भौनतक शरीर में और बिारी करणों में प्रवेश करेगी, उनमें

अवतररत िोगी। और इसमें समय लगता िै। इसका श्रीअरववन्द ने अपनी पुस्तकों में खूब वणनि कर िी रखा िै। िो

सकता िै कक अचानक ऐसा भाव आ जाये और िमें यि अनुभव िो जाये कक सब जगि केवल श्रीमाताजी िी ववराजमान िैं। ये सभी चीजें िमें और अधधक तैयार करती िैं। ये िमारे संवेदनों पर, प्राण पर, िमारी कियाममक प्रकृनत पर प्रभाव िालती िैं और इस प्रकार के बार-बार िोतेअनुभवों को सियता से मनुष्य माग िपर चलता जाता िै। परंतु केवल ककसी एक बोध से िी सारा काम िो जाता तो कफर तो सब बिुत आसान िो जाता।

दैर्ेर्ापरे यज्ञं योधगनः पयुपवासते ।
ब्रह्माग्नापरे यज्ञं यज्ञेनैर्ोपजुह्वतत ।। २५।।

२५. कुछ योगीजन केर्ल देर्ताओं के तनमत्त यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं; और अतय (योगीजन) ब्रह्-रूप अजग्न र्ें स्र्यं यज्ञ के ही द्वारा यज्ञ करते हैं, (अपिव करते हैं)।

दैव यज्ञ करनेवाले भगवान् ्की धारणा अनेक रूपों और शजकतयों में करते िैं और ववववध साधनों, धमों, ववधानों के द्वारा, अथात्ि्कि सकतिैं कक, कमसंबिंधी सुननजश्चत ववधध-ववधान, आमम-संयम और समवपति कम िे के द्वारा उर्न्िें ढूाँढ़ते िैं; और जो ब्रह्माजग्न में यज्ञ के द्वारा यज्ञ का िवन करनेवाले ज्ञानी िैं उनके शलये, यज्ञ का भाव िै कक जो कुछ कम िकरें उसे सीधे स्वयं भगवान् ्को अपणि करना, अपनी सभी कियाओंको एकीभूत भागवत् ् चेतना और शजकत में ननक्षक्षप्त कर देना िी एकमात्र साधन िै, एकमात्र धम िि िै। यज्ञ के साधन ववववध िैं; िव्य भी नानाववध िैं।

श्रोत्रादीनीजतद्रयाण्यतये संयर्ाजग्नषुजुह्वतत ।
ब्दादीजतर्षयानतय इजतद्रयाजग्नषुजुह्वतत ।। २६॥

२६. कुछ र्नुष्य श्रोत्र आदद इजतद्रयों का संयर्-रूप अजग्न र्ें हर्न करते हैं; दूसरे र्नुष्य िब्द आदद र्षयों का इजतद्रयरूप अजग्न र्ें हर्न करते हैं।

सर्ाणीजतद्रयकर्ाणणि प्राकर्ाणणि चापरे ।
आत्र्संयर्योगाग्नौ जुह्वतत ज्ञानदीवपते ।। २७।।

२७. और अतय कोई र्नुष्य सर्स्त इजतद्रयों की कक्रयाओं का और प्राि–जक्त की कक्रयाओं का ज्ञान से प्रदीप्त हुई आत्र्संयर्-योग रूप अजग्न र्ें हर्न करते हैं।

एक आमम-संयम और आमम-अनुशासन रूपी आंतररक अथवा मनोवैज्ञाननक यज्ञ िै जजससे उच्चतर आममसंवरण (self-possession) तथा आममज्ञान की प्राजप्त िोती िै... अथात्,्िएक साधना यि िै जजसमें इजन्रयों के ववषयों को ग्रिण तो ककया जाता िै, पर उस इजन्रय किया-व्यविार से मन को ववक्षुब्ध या प्रभाववत निीं िोने े

हदया जाता, इजन्रयाँस्वयंिी ववशुद्ध यज्ञाजग्न बन जाती िैं। कफर यि भी एक साधना िै जो इजन्रयों को शांत-जस्थर कर देती िै ताकक जस्थर और शांत मनःकिया के परदे के भीतर से अंतराममा अपनी ववशुद्धता में प्रकट िो सके। एक साधना यि िै जजससे, आममतत्त्व का बोध िोने पर, इजन्रय-बोध के सभी कम िऔर प्राण-सर्तृ के सभी कम िउस एक जस्थर प्रशांत आमम-जस्थनत में िी ग्रिण ककये जाते िैं।

"इजन्रयाँस्वयं िी ववशुद्ध यज्ञाजग्न बन जाती िैं" इससे यि अथ िननकलता िै कक इजन्रयों को उच्चतर उद्देश्यों की प्राजप्त के शलये भी काम में शलया जा सकता िै और ननमनतर उद्देश्यों की प्राजप्त के शलये भी। यहद मि उन्िें उच्चतर उद्देश्यों की प्राजप्त के शलये काम में ले रि िैं तो वे िमें ब्रह्म की ओर ले जायेंगी। इनका अनुशाशसत और वववेकपूण िउपयोग िोना प्रारमभ िो जायेगा और इनमें शांनत आ जाएगी। यहद िम इजन्रयों का उपयोग अपने प्राण तथा अिं आहद ननमनतर िेतुओंको पुष्ट करने ेके शलये करते िैं तो ये बिुत अशांत िो जाती िैं। यहद िम इन्िें उच्चतर िेतुओं के शलये ऊपर से ननदेशशत करेंगे तो कफर ये शांत िो जायगीं और िमारे भीतर और अधधक प्रकाश फैलेगा। िमारा यज्ञ अधधक अच्छी तरि िोगा। कफर ये सभी इजन्रयाँ परमाममा का, िमारी आममा की अशभव्यजकत का माध्यम बन जायगीं जो इनके द्वारा देखती, सुनती और अनुभव करती िै।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।

स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्र् यतयः संमितव्रताः ।। २८ ।।

२८. कुछ ऐसे हैं जो अपनी भौततक संपदाओं को यज्ञ र्ें भेंट कर देते हैं, दूसूरे आत्र्ानुिासन की तपश्चयाओं का हर्न करते हैं, कुछ अतय योग के ककसी रूप (हठयोग, राजयोग आदद) का यज्ञ करते हैं, और दूसूरे हैं जो तीक्ष्ण (कठोर) व्रतों से युक्त हो अपनेअध्ययन और ज्ञान का यज्ञ करते हैं।

अपानेजुह्वतत प्रिांप्रिोऽपानं तथापरे ।

प्रिापानगती रुद्ध्वा प्रिायार्परायिाः ।। २९।।

२९. कुछ दूसूरे ऐसे हैं जो अपान र्ायु (भीतर आनेर्ाले श्र्ास र्ें) प्रि (बाहर जानेर्ाले प्रश्र्ास) का और प्रश्र्ास र्ें श्र्ास का हर्न करते हैं और इस प्रकार प्रि और अपान की गतत को रोक कर प्रिायार् के अभ्यास र्ें तत्पर रहते हैं।

अपरे तनयताहाराः प्रिातप्रिेषुजुह्वतत ।

सर्ेऽप्येते ेयज्ञवर्दो यज्ञक्षवपतकल्र्षाः ।। ३०।।

३०. अतय दूसूरे र्नुष्य अपनेआहार को तनयत और संयत कर के प्रिों का प्रिों र्ें हर्न करते हैं; ये सभी यज्ञ के जाननेर्ाले लोग यज्ञ के द्वारा अपनेपापरूप र्लों को दूरू कर देते हैं ।

इन सब से फलतः सर्त्ा का शुद्धधकरण िोता ि; सब प्रकार के यज्ञ परम् ्की प्राजप्त की ओर माग ि। इन ववववध साधनों में एक आवश्यक चीज, जजसके िोने से िी ये सब साधन बनते िैं, यि ि कक ननमन प्रकृनत को कियाओं ंको अधीनस्थ करना, कामना के प्रभुमव को क्षीण करना और उसके स्थान पर ककसी श्रेष्ठतर शजकत को प्रनतजष्ठत करना, उस हदव्यतर आनन्द के शलए ननरे विकारमय भोग को मयाग देना जो कक यज्ञ से, आममोमसग ि से, आमम-प्रभुमव से, अपनेननमन आवेगों को ककसी मित्र और उच्चतर ध्येय पर न्यौछावर करने ेसे प्राप्त िोता ि।

यज्ञमिष्टारृतभुजो याजतत ब्रह्म सनातनर् ्।
नायंलोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽतयः कुरुसत्तर् ।। ३१।।

३१. जो यज्ञ से बचे ेहुए अरृत का उपभोग करते हैं रे् सनातन ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। हे कुरुश्रेष्ठ अजुनव !

जो यज्ञ नहीं करता उसके मलये यह लोक भी नहीं ंहै तब किर कोई दूसूरा कैसे हो सकता है?

यज्ञ िी ववश्व का ववधान ि, यज्ञ के त्रबना कुछ भी प्राप्त निीं िो सकता, न इस लोक में प्रभुमव प्राप्त िो सकता ि, और न इस लोक के परे स्वग िकी प्राजप्त िो सकती ि, और न िी परमपद की उपलजब्ध िो सकती ि....

"यज्ञ से बचे िुए अमृत के उपभोग" का अथ ि कक जब िम यज्ञ करते िैं, ककसी िेतु ुके शलए अपनी ऊजा ि देते िैं तो उससे आनन्द उमपन्न िोता ि। किया करनेमें जो शारीररक, प्राखणक और मानशसक ऊजिा व्यय िोती ि उसका जो प्रनतफल िमें शमलता ि, उसमें व्यय की गई ऊजिा के अनतररकत जो भाग शेषे बचता ि, वि िमारे पुराणों

के अनुसार भगवान् शिव का भाग अनतररकत ि। जो ऊजिा शेषे रि जाती

ि वि िमें भगवान् ्शशव को, जो कक परमाममा के परामपर स्वरूप िैं, उनिें समवपति करनी िोती ि। जो कुछ भी िमें प्राप्त िोता ि उसे िमें िमारी आममा के उमथान में परामपर देव भगवान् ्शंकर को, या कफर श्रीमाताजी को अपणि करना िोता ि। यि एक मनोवैज्ञाननक किया ि। यहद िमने उसका उपयोग अपनी इजन्रयों आहद के तुजष्टकरण में ककया तो वि भाग राक्षसों आहद को अवपति िो जाता ि और कफर आरोिण निीं िो सकता।

एरं् बहुवर्धा यज्ञा वर्तता ब्रह्मणि रुखे ।
कर्जवाजतद्धि तातसर्ानेवरं् ज्ञात्रा वर्क्ष्यसे ।। ३२॥

३२. इस प्रकार ये सब और दूसूरे बहुत प्रकार के यज्ञ ब्रह्म के रुख रें् (अथात्व ्उस ब्रह्मरूप अजग्न के रुख रें् जो सर्स्त हवर्यों को ग्रहि करता है) वर्स्तृत हुए हैं; उन सबको तू कर् वसे उत्पतन हुए जान; इस प्रकार जान लेनेपर तूरुक्त हो जाएगा।

.....ये सब कम िमें प्रनतजष्ठत उसी एक मिान् ्सत् ्(Existence) के साधन और रूप िैं, जजन साधनों के द्वारा मानव-जीव का कम िउसी 'तत्'् (That) को समवपति िो सकता ि जजसका कक उसका बाह्य जीवन एक अंश ि और जजसके साथ कक उसकी अंतरतम सर्त्ा एक ि। ये सब 'कम िसे उमपन्न िोते िैं: सब भगवान् ्की उसी एक

ववशाल शजकत से ननकलते और उसी के द्वारा ननहदिष्ट ोतिें जो ववश्वकम में अपने-आप को अशभव्यकत करती और इस ववश्व के समस्त कम को उसी एक परमाममा और परमप्रभुका उत्र्ोत्र् वधनिशील नैवेद्य या भेंट बनाती ै जिजसकी अंनतम अवस्था मानव-प्राणी के शलए आमम-ज्ञान की या भागवत् ्चेतना की या ब्राह्मी चेतना की प्राजप्त ै। 'ऐसा जानकर तू ्मुकत ो जाएगा - **एरं् ंज्ञात्रा वर्ीक्ष्यसे ।'**

श्रेयातद्रव्यर्याद्यज्ञाजज्ञानयज्ञः परततप ।

सरं् ंकर्ाणवखलं पाथ वज्ञानेपररसर्ाप्यते ।। ३३ ।।

३३. हे परंतप ! द्रव्य आदद से अनुजष्ठत होने र्ाले यज्ञ की अपेक्षा ज्ञान-यज्ञ श्रेष्ठ होता है; हे पाथ व! सभी कर् वज्ञान र्ें पररसर्ाप्त होतेहैं (ककसी तनम्नतर ज्ञान र्ें नहीं ंअवपतुउच्चतर् आत्र्ज्ञान तथा ईश्र्रज्ञान र्ें)।

तद्वद्धि प्रणिपातेन परप्रश्नेन सेर्या ।

उपदेश्यजतत ते ज्ञानंज्ञातननस्तत्त्दमिनवः ।। ३४।।

३४. उस ज्ञान को तू गुरु के चरिों र्ें प्रिार् करते हुए, वर्वर्ध प्रकार से प्रश्न करते हुए और गुरु की सेर्ा के द्वारा सीख; ऐसे ज्ञानी र्नुष्य जजतहोंने र्स्तुओंके सच्चे स्र्रूप का दिनव ककया है (न कक र्े जो केर्ल बुद्धध से जानते हैं) तुझे ेउस ज्ञान का उपदेि करेंगे।

यजज्ज्ञात्र्ा न पुनर्ोहर्ेर्ं ंयास्यमस पाण्डर् ।

येन भूतातयिेषे द्रक्ष्यस्यात्र्तयथो र्तय ।। ३५।।

३५. हे पाण्डर् ! जजस ज्ञान को प्राप्त कर के किर तू इस र्ोह र्ें नहीं िंसेगा; क्योंकक इस ज्ञान के द्वारा तू संपूि व भूतों को तनःिेष रूप से आत्र्ा र्ें और किर र्ुझ र्ें देखेगा।

जजसमें सब कुछ की पररसमाजप्त ोती ै विी वि ज्ञान ै जजसके द्वारा 'तू सब भूतों को ननःशेषे रूप से आममा के अन्दर और कफर मेरे अन्दर देखेगा।' कयोंकक आममा विी एक अखण्ि, अक्षर, सवव्यािपी, सवसिमावेशी, स्वयं-सत् ्यथाथतिा या ब्रह्म ै जो मारे मनोमय पुरुष के पीछे नछपा ुआ ै जजसमें मारी चेतना अिभाव से मुकत ोनेपर ववशालता को प्राप्त ोती ै और तब म सभी जीवों को उसी एक स्वयं-सत् ्के अन्दर 'भूतानन' के रूप में देख पाते ैं।

परन्तु म देखते ैं कक यि आममतत्त्व या अक्षर ब्रह्म मारी मूलभूत मनोवैज्ञाननक चेतना के प्रनत उन परम् ्पुरुष का आमम-ननरूपण ै जो मारी सर्ता के स्रोत ैं और जो कुछ क्षर या अक्षर ै वि सब उन्िीं की अशभव्यजकत ै। वे िी ईश्वर, भगवान्, ् पुरुषोर्त्म ैं। उन्िीं को म सभी कुछ यज्ञ के रूप में अवपति करते ैं; उन्िीं के ाथों में म अपने सब कम सौंप देते ैं; उन्िीं की सर्ता में म जीते और गनत करते ैं; मारी प्रकृनत में उनके साथ एकीभूत ोकर और उन्िीमें सब जीवों के साथ एक ोकर, म उनके साथ और जीवमात्र के साथ एक-जीव,

सर्त्ा की एक-शजकत िो जाते िैं; उनकी परम् ्सर्त्ा के साथ िम अपनी आमम-सर्त्ा को तरूपू और एक कर लेते िैं। काम का वजनि कर यज्ञ के शलए कमों के करनेसे िम ज्ञान प्राप्त करते िैं और आममा की स्वयं की उपलजब्ध तक पिुाँचते िैं; आममज्ञान और परमाममज्ञान में जस्थत िोकर कम िकरने से िम भागवत् ्सर्त्ा की एकता, शाजन्त और आनन्द में मुकत िो जाते िैं।

गीता एक बात यिााँ स्पष्ट रूप से किती िै कक रव्य आहद से अनुजष्ठत िोने ेवाले यज्ञ की अपेक्षा ज्ञान-यज्ञ श्रेष्ठ िोता िै। ज्ञान-यज्ञ से कया तामपय ििै? एक ववकल्प तो यि िै कक िम ज्ञान को सुख-साधन आहद जुटाने के शलये, मन, प्राण, शरीर की अनेकों प्रकार की तुजष्टयों की पूनतयिों के शलये अपने िि की ओर मिो़ सकतिैं, अथवा दूसूरा ववकल्प िै कक िम उसे परमाममा की सेवा में लगा दें। िम अपनी सारी क्षमताओंको श्रीमाताजी की सेवा के शलये अवपति कर दें। यिी सच्चा ज्ञान-यज्ञ िै।

दूसूरी बात यिााँगीता बता रिी िै कक सभी कम िज्ञान में पररसमाप्त िोतिैं (ककसी ननमनतर ज्ञान में निीं अवपतु उच्चतम आममज्ञान तथा ईश्वरज्ञान में)। यज्ञ रूप से ककये जाय ेंतभी कमों की समाजप्त ज्ञान में िोती िै अन्यथा तो वे केवल एक बािरी किया मात्र िोतिैं। जैसे-जैसे कम िउन्नत िोंगे वैसे-वैसे ज्ञान अधधक समुन्नत िोगा और जैसे-जैसे ज्ञान बढ़ेगा वैसे-वैसे कम िऔर अधधक उन्नत िोंगे। परंतु िम यज्ञ रूप कम िशुरू कैसे करें? व्यजकत अपनी समझ और शजकत-सामथ्य िके भरोसे कमयिज्ञ करने लगे, ऐसा संभव निीं। इसके शलए यहद व्यजकत को समयक् ज्ञान चाहिये तो उसे गुरु की शरण में जाना िोगा, ककसी ऐसे व्यजकत की शरण में जाना िोगा जजसे इस चीज का भली-भानााँत ज्ञान िै। उनसे सीखकर िम यि यज्ञ आरंभ कर सकतिैं। और जब ऐसा यज्ञ संपन्न िो जाएगा तब व्यजकत सभी भूतों को पूण िरूप से आममा में और कफर 'मुझमें' अथात् िपुरुषोत्म भगवान् ् श्रीकृष्ण में देखेगा।

यिा ाँयज्ञ का प्रसंग अजुनि के इस प्रश्न से उठा कक ननष्काम कम िकैसे करें? कयोंकक िमेशा िी कमों के िेतु के रूप में कामना तो रिती िी िै। कफर कौनसा कम िकरना चाहिये और कौनसा निीं ंकरना चाहिये, इसका पता भी निीं ंलगा पाते। इसशलये यिााँगीता बताती िै कक िमें कम ियज्ञ-रूप में और पुरुषोत्म के ननशमर्त् करनेचाहिये। शुरू में िमारी समझ स्थूल िोगी, बिी सीशमत िोगी। परंतु जैसे-जैसे िम परमाममा के ननशमर्त् कम िकरने प्रारमभ करेंगे वैसे-वैसे उनकी शुद्धध िोनी प्रारमभ िो जायेगी। कफर जैसी िमारी संरचना िोगी वैसे-वैसे िम िमारे सभी कम ि परमाममा के ननशमर्त् करना प्रारमभ कर देंगे। धीरे-धीरे िम अपनी दैनंहदन भौनतक कियाकलापों को, उसके बाद उससे कुछ गिरी चीजों को अधधकाधधक यज्ञ के रूप में करना शुरू कर देंगे।

और सभी कमों की समाजप्त ज्ञान में िोती िै इसका अथ ियि निीं िै कक ज्ञान िोने पर कम िसमाप्त िो जाते िैं। कुछ लोग इसका इसी रूप में अथ िलगाते िैं कक ज्ञान िोने ेके बाद कम िसमाप्त िो जाते िैं। यहद ऐसा िी िोता तो भगवान् ्अपनी सारी शशक्षा के बाद अजुनि को युद्ध में प्रवृर्त् िी कैसे कर सकतेथे? े इसका अथ ियि िै कक ज्ञान िोनेपर िमारे कम िऔर अधधक पररशुद्ध िो जाते िैं और वे िमें अधधक उच्चतर ज्ञान में ले जाते िैं। और उस

उच्चतर ज्ञान से ि मारे कम ि और अधधक हदव्य बन जाते ि ैं। इस प्रकार कम ि और ज्ञान एक दूसूरे को पररपूण ि करते ि ैं और यज्ञ का आरिोण चलता रिता ि ै।

IV. ज्ञान एवं कमयोग

गीता की शशक्षा के इस पिले भाग में योग और ज्ञान वे े दो पंख ि ैं जजनसे जीव आरिोण करता ि ै। योग से अशभप्रेत ि ै ननष्काम ि ोकर, समस्त पदाथों और मनुष्यों के प्रनत आमम-सममव रखकर, पुरुषोत्म अथवा परम् ् पुरुष के शलए यज्ञरूप से ककये गये हदव्य कमों के द्वारा भगवान् ् से एकता, जबकक ज्ञान वि ि ै जजस पर यि ननष्कामता, यि समता, यि यज्ञ-शजकत प्रनतजष्ठत ि ोती ि ैं। दोनों पंख ननश्चय ि ी उ़िान में एक-दूसूरे की सियता करते ि ैं; दोनों एक साथ किया करते रिते ि ैं, कफर भी इस किया में बारी-बारी से एक-दूसूरे की सियता करने े का सूक्ष्म ि म रिता ि ै, जैसे मनुष्य की दोनों आखेँ बारी-बारी से देखती ि ैं इसीशलए एक साथ देख पाती ि ैं, इसी प्रकार योग और ज्ञान अपने सारत्त्व के परस्पर आदान-प्रदान के द्वारा एक-दूसूरे को संवद्धिधत करते रिते ि ैं। ज्यों-ज्यों कम ि अधधकाधधक ननष्काम, समधचत् और यज्ञभावापन्न ि ोतेजाते ि ैं, मयों-मयों ज्ञान वधधति ि ोता ि ै; ज्ञान के वधनि के साथ ि ी जीव अपने कम ि की ननष्काम और यज्ञाममक समता में अधधकाधधक दृढ़ ि ोता जाता ि ै। इसशलए गीता ने किा कक ककसी रव्ययज्ञ की अपेक्षा ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ ि ै।

अवप चेदमस पापेभ्यः सर्ेभ्यः पापकृत्तर्ः ।

सर्ं ं ज्ञानप्लर्ेनैर् र्ृजजनं सततररष्यमस ।। ३६ ।।

३६. यदद तू सर्स्त पावपयों से भी अततिय पाप करनेर्ाला है तब भी, उस सर्स्त पाप की कुदटलता-रूप सर्ुद्र को ज्ञान-रूप नौका के द्र्ारा तनश्चय ही पार कर जाएगा।

यथैधांमस समद्धोऽजग्नभस्र्सात्कुरुतेऽजुनव ।

ज्ञानाजग्नः सर्कवर्ाणवि भस्र्सात्कुरुतेतथा ।। ३७।।

३७. हे अजुनव ! जैसे प्रजजर्मलत अजग्न ईंधनों को भस्र्ीभूत कर देती है र्ैसे ही ज्ञानरूप अजग्न सर्स्त कर्ों को भस्र्ीभूत कर देती है।

इसका कदावप यि अशभप्राय नि ीं ि ै कक जब ज्ञान पूण ि ोता ि ै तब कम ि का ववराम ि ो जाता ि ै। इसका वास्तववक अशभप्राय कया ि ै इसे गीता द्वारा स्पष्ट कर हदया जाता ि ै जब वि ऐसा किती ि ै कक 'योगसंन्यस्तकमाणं आममवन्तं न कमाखिण ननबध्नजन्त' अथात् ् जजसने ज्ञान के द्वारा अपनेसब संशयों को काट िाला ि ै और योग के द्वारा कमों का संन्यास ककया ि ै वि आममवान् ् पुरुष अपने कमों से नि ीं बाँधता, और कफर गीता का यि वचन कक, कुवन्निवप न शलप्यते अथात् ् जजसकी आममा सब भूतों की आममा ि ो गयी ि ै वि कम ि

करता िुआ भी अपने कमों में शलप्सत निींिोता, उनमें फाँसता निीं, वि उनसे आममा को बंधन में िालनेवाली कोई प्रनतकिया ग्रिण निींकरता।

गीता कि रिी िै कक यहद िम में बिुत ववकृनतया ाँिैं, िमारे कमों में संतुलन निीं ंिै और वे सभी अिं के नाना प्रकार के आवरणों से, राग-द्वेष, लोभ, मिो, या अन्य ककन्िीं ननमन तुजष्टयों से चाशलत िैं तो इस सब असंतुलन का पररणाम तो िमें भुगतना िी िोगा। ये िी िमारे पापों के पररणाम िैं। और जब िमें ज्ञान िोता िै तब मिारी सभी ननमन गनतयााँखमम िो जाती िैं और िम एक उच्चतर समन्वय में ननवास करना प्रारमभ कर देते िैं और उस सन्तुलन में िोने के कारण उसके कोई दुष्पररणाम निीं ंिोते। इसे इस दृजष्टकोण से देखा जा सकता िै।

दूसूरी बात िै कक 'जैसे प्रज्ज्वशलत अजग्न ईंधनों को भस्मीभूत कर देती िै वैसे िी ज्ञानरूप अजग्न समस्त कमों को भस्मीभूत कर देती िै।' गीता का कमों से तामपय िबिा ववधचत्र िै। 'जो कमों में भी अकम िदेखता िै और अकम िमें भी कमों को देखता िै विी सच्चा वववेकी िै, विी अिं-शूनू्य िै।' अथात्ि्जब िम ककसी िेतु या उद्देश्य की प्राजप्त के शलए और ननमन चेतना के द्वारा कोई प्रयास या चेष्टा करते िैं और अपने-आप को उसका कतिा मानते िैं, तब वि कम िििोता िै। और दूसूरी ओर यहद िम यि देखतिैं कक कम ितो परमाममा की परा प्रकृनत कर रिी िै, िम तो उसके िाथों में यंत्र-मात्र िैं या कफर िम केवल परमाममा की प्रसन्नता के शलये पराप्रकृनत की किया में सिमनत दे रिे िैं और उसमें सिभागी िो रिे िैं तब कफर वे कम ििमारे अपने निींरि जाते। गीता में भगवान् ्ने अजुनि को स्पष्ट किा िै कक 'यहद तू तेरे अिं के वशीभूत िोकर और यि सोचकर युद्ध करेगा कक कौरव पापी िैं और उन्िोंने तेरे साथ अन्याय ककया िै इसशलये उन्िें दण्ि शमलना चाहिये, तो तूपाप का भागी िोगा। विीं यहद तू मेरी आज्ञा मान कर युद्ध करेगा तो तुझे ेसमपूण ित्रलोकी को नष्ट करनेपर भी कोई पाप निीं ंलगेगा।' कयोंकक ऐसा करने ेमें वि भगवान् ्के आदेश का िी पालन कर रिा िोगा। अतः जब व्यजकत को यि सच्चा ज्ञान िो जाता िै कक परम् ्प्रभु ु की शजकत िी िै जो उनकी प्रसन्नता के शलये सारे कम िकरती िै, और इस प्रकार देखतेिुए जो अपनी इजन्रयों को उसी के अनुसार किया में प्रवृत्ू् करता िै, वि कफर कम िकरते िुए भी अकतिा िोता िै। गीता के अकतिाके शसद्धांत से तामपय ियि निीं ंिै कक व्यजकत सब काम छोड़ कर ननजष्िय बैठ जाये। यहद व्यजकत कम िछोड़कर ननजष्िय बैठता िै तो इसका अथ ििै कक वि दुराग्रि से ग्रशसत िै और तामशसक िै। कयोंकक वि कमों को अपनेभौनतक, प्राखणक और मानशसक आवेगों और उनसे िोने ेवाली अिं की तुजष्टयों को प्राप्त करने या कफर उनमें आने वाले संकटों को टालनेके शलये करता िै। यिी तामशसक यज्ञ, तप, दान, और श्रद्धा आहद के संबंध में भी िै। इसशलये सच्चा कम ितो वि िै जो भगवान् ्की हदव्य प्रकृनत करती िै, बाकी सब अकम ििै। यि सब चचािआगे चलकर मयाग और संन्यास के ववषय में भी आएगी। मयाग कमों का निीं ंकरना िोता, अवपतु उन कमाँ के पीछे को उन कामनाओं और वासनाओं का करना िोता िै जो उन कमाँ को दूवूषत करती िैं। वास्तव में, कमों के मयाग का कोई औधचमय भी निींिै और ऐसा करना संभव भी निीं ंिै। उदािरण के शलए, जब िम देखें कक िमारे सभी समबन्ध मिो से ग्रशसत िैं और स्व पर केजन्रत िैं, तो एक मनोभाव तो यि िो सकता िै कक इस ववकृनत से बचने के शलए िम सभी संबंधों को िी काट िालें और शुष्क िो जाएाँ। ऐसा करनेमें परमाममा की ओर ले जानेवाली सबसे शजकतशाली शजकत, 'प्रेम', से िम वंधचत रि जाएाँगे, और ननपट शुष्क संन्यासी बन जायगें और ऐसे में जीवन में कोई मृदुलुता,

कोई िाँसी, कोई भाव निीं रि जाएगा और िम एक नकारामक कता और कठोर दुराग्रि से ग्रशसत एक स्वाथमिय जीव बनकर रि जाएँगे। दूसरा िै एक सकारामक दृजष्टकोण जजसके अनुसार िमें प्रेम करनेसे निीं रुकना चाहिये अवपतु जो तत्त्व उसे दूवूषत करता िै, उसका ननवारण करना चाहिये और सिी रूप से प्रेम करना चाहिये। यहद मिारे समबन्ध गलत आधार पर िैं, अपनी अिं की तुजष्ट के आधार पर िी िैं, तो उन्िें सिी आधार पर स्थावपत करना िोगा, न कक सभी संबंधों को िी खमम कर देना िोगा। जब समपूण िसृजष्ट और उसमें सभी जीव आपस में अववभाज्य रूप से एक िैं तो िम स्वयंको अलग कर िी कैसे सकते िैं। यि संभव िी निीं ंिै। उसके शलए प्रयमन करना तो मूखिता िै और स्वयं अपनी अखंिता और भगवत्ता का िी खंिन करना िै।

परंतु िमारी बािरी प्रकृनत का जैसा गठन िै, वि ननमन चीजों में और ववकारों में धगरनेकी ओर िी वृवृत्त् रखती िै। और इसीशलए संन्यास और ननवृवृत्तपरक वृवृत्त् पर बल हदया जाता िै। परंतु ऐसा करना तो अपेक्षाकृत रूप से आसान िै कक व्यजकत अपने-आप को संबंधों से अलग कर ले और ऐसी व्यवस्था कर ले कक अिं को, स्वाथ ि को कोई मौका िी न शमले, पर यि कोई सच्चा उपाय निीं िै। जबकक यि भी समय िै कक संबंधों के िोते िुए उनके ववकारों को दूरू करना बिुत िी मुजश्कल िोता िै। इसको ननयंत्रत्रत करना बिुत िी मुजश्कल िै। ऐसा एक क्षण में िी िो जाए, यि संभव निीं िै। िमें धैय िरखना िोगा। इसको शुरू करनेके शलये यि संकल्प करना िोगा कक िम अपने-आप को, जैसे िम िैं वैसे के वैसे को िी श्रीमाताजी को सौंप दें और इसे अपनी िी संसाधनों के आधार पर ठीक करने की कोशशश न करें। कयोंकक जैसे िी िम इसे ठीक करने ेका दृजष्टकोण अपनाते िैं तुरन्त िी अिं एक नया भेष बना कर घुस आता िै कक, 'म ैंइसे ठीक करूँगा', 'म ैंश्रीमाताजी की सेवा करूंगा, उनका प्रयोजन शसद्ध करूँगा' अथवा 'मेरी साधना िो जायेगी' आहद-आहद। अतः िमें सच्चेरूप से इसका संकल्प कर के अपनेगुणों-अवगुणों, अपनी कशमयों, अपने सभी कुछ की गठरी बाधँ कर श्रीमाताजी के िाथों में सौंप देनी िोगी। तब कफर वे िमसे चािे जैसा कम िकरा लें, उसके शलये िम तैयार िों। िालाकँक व्यविार में ऐसा िो पाना इतना आसान निीं ंिै और इस भाव को प्राप्त करने में समय लगता िै। इस प्रकिया में िमारे ननमन भाग िमें धोखा देंगे, अपने उमपात करेंगे, परन्तु श्रीमाँ मिारा मागदिशनि करेंगी। तब कफर वे िमें और िमारे अिं को जजतना चािें अपनेकाम में लें। इसमें िमारा कोई स्तिक्षेप न िोगा। यहद िम अपनी अिमामक चेतना से िी अिं का ननषेध करने का और उससे मुकत िोने का प्रयास करें तो यि कैसे संभव िो सकता िै। यहद उसे श्रीमाँ को समवपति कर हदया जाए तब कफर वे उसे अपनी इच्छानुसार काम में लें। तभी िम सच्चे रूप से संबंध बना सकेंगे और उनमें कोई ववकार और कोई बंधन निीं रि जाएगा। जो भी चीज िम अपने-आप के शलए बचा रखनेका, अपने अिं की तुजष्ट के रूप में प्रयोग करने का प्रयास करते िैं, विी िमारे पथ में बाधक बन जाती िै। सभी कुछ को उन्िीं के िाथों में छोड़ देना िोगा, और तब कफर वे स्वयंजैसा, जब, जिा ाँऔर जो करवाना चािें वैसा स्वयं िी करवा लेंगी और इसमें कोई ववकार भी न िोगा। तब सभी चीजें भगवान् ्के काम आने ेलग जाती िैं। यि सच्चा समाधान िै। गीता भी यिी किती िै।

न दह ज्ञानेन सदृिं ंपववत्रमिह वद्यते।

तत्स्वयंयोगसंमसद्धः कालेनात्मन ववंदतत ।। ३८ ।।

३८. इस संसार र्ें ज्ञान के सर्ान पवत्र तनश्चय ही कुछ भी नहीं ंहै; योग के द्वारा मसद्ध हुआ पुरुष उस ज्ञान को उपयुक्त सर्य आनेपर अपने-आप अपने भीतर प्राप्त करता है।

यि ज्ञान िमें कैसे प्राप्त िोता िै इसका वणनि करते िुए गीता किती िै कक पिले इस ज्ञान की उन तत्त्वदशी ज्ञाननयों से दीक्षा लेनी िोती िै, जो केवल बुद्धध से िी नििंजानते िैं अवपतु जजन्िोंनेइसके सारभूत समयों को प्रमयक्ष देखा िै; परन्तु वास्तववक ज्ञान तो िमें अपनेअन्दर से िी शमलता िै : 'योग के द्वारा शसद्ध िुआ पुरुष उस ज्ञान को उपयुकत समय आनेपर अपने-आप अपने भीतर प्राप्त करता िै', अथात्ि्यि ज्ञान उस मनुष्य में संवद्धधित िोता रिता िै और ज्यों-ज्यों वि मनुष्य ननष्कामता, समता और भगवद्भजकत में बढ़ता जाता िै मयों-मयों ज्ञान में भी बढ़ता जाता िै। परन्तु यि बात केवल परम् ्ज्ञान के समबन्ध में िी पूण िरूप से किी जा सकती िै, कयोंकक जो ज्ञान मनुष्य अपनी बुद्धध द्वारा एकत्रत्रत करता िै उसे तो वि इजन्रयों और तकिशजकत के द्वारा पररश्रम कर के बिार से िी इकट्ठा करता िै।

'ज्ञान' शब्द भारतीय दशनिशास्त्रों और योगशास्त्रों में सवत्रि इसी परम् ्आमम-ज्ञान के अथ िमें प्रयुकत िोता िै; यि वि ज्योनत िै जजसके द्वारा िम अपनी समय-सत्ता में संवद्धधित िोते िैं, न कक कोई ऐसा ज्ञान िै जजससे िम अपनी जानकारी और अपनी बौद्धधक संपवत्यों को वधधति करते िैं; यि कोई वैज्ञाननक या मनोवैज्ञाननक अथवा दाशनिनक या नैनतक या सौंदयामिमक अथवा लौककक और व्याविाररक ज्ञान नििं ंिै। ये सब भी ननस्संदेि िमें उन्ननत में सिायता करते िैं पर ये िमारी संभूनत (अशभव्यजकत) के ववकास में सिायक िोते िैं, िमारी आंतररक सत्ता के ववकास में नििं। यौधगक ज्ञान की पररभाषा में इनका समावेश तब िोता िै जब िम इनसे परमामम, आमम, भगवान् ्को जानने में सिायता लें। भौनतक ववज्ञान को िम यौधगक ज्ञान तब बना सकतेिैं जब िम उसकी प्रकियाओंऔर बाह्य घटनाओंके आवरण को भेद कर उस एकमात्र सद्वस्तु को देख लें जो सभी कुछ को स्पष्ट कर देती िै; मनोवैज्ञाननक ववद्या को यौधगक ज्ञान तब बनाया जा सकता िै जब िम उससे अपने-आपको जान सकें और ननमनतर और उच्चतर का वववेक कर सकें जजससे कक ननमन अवस्था को मयाग कर िम उच्च अवस्था में संवद्धधित िो सकें; दशनि-संबंधी ज्ञान को िम यौधगक ज्ञान तब बना सकतेिैं जब िम इसे अजस्तमव के मूलभूत शसद्धांतों के ऊपर एक प्रकाश के रूप में ढाल सकें जजससे कक उसे खोज सकें और उसमें ननवास कर सकें जो शाश्वत िै। नैनतक ज्ञान को यौधगक ज्ञान तब बनाया जा सकता िै जब इससे पाप और पुण्य के भेद को जान कर िम, पाप को दूरू करें और पुण्य से ऊपर उठकर हदव्य प्रकृनत की पूण िननमलिता में पिुँच जाएँ, सौंदयामिमक बोध को िम यौधगक ज्ञान तब बना सकतेिैं जब िम इसके द्वारा भगवान् ्के सौंदय िको खोज लें, लौककक ज्ञान को िम यौधगक तब बना सकतेिैं जब िम उसके भीतर से ईश्वर के अपनी सृजृष्ट के साथ व्यविार को देख पाएँ और कफर उस ज्ञान का उपयोग मनुष्य में रिनेवाले भगवान् ्की सेवा के शलए करें। परंतुतब भी ये ववद्याएँ सच्चे ज्ञान की सिायक भर िोती िैं; वास्तववक ज्ञान तो विी िै जो मन के शलए अगोचर िै, मन जजसका केवल आभासमात्र प्राप्त करता िै, जो आमम में रिता िै।

आम शशक्षा-प्रणाली में ववद्याथी को जो भी जानकाररयााँया िुनर शसखाएँ जाते िैं उनसे वास्तव में शशक्षा निीं ंिोती। ऐसी शशक्षा से व्यजकत के आंतररक गठन में तो वास्तव में कोई सुधार निीं ंआता। इतना भर कि जा सकता िै कक इस प्रशशक्षण से व्यजकत जो पिले कर रिा था उसी को अधधक सुचारू ढंग से कर पाएगा, परंतुउसकी गुणवर्त्ा में तो वास्तव में कोई बदलाव आएगा निीं। और यहद आंतररक गठन िी दोषपूण ििो तो गुणवर्त्ा में लाभ की बजाय धगरावट िी आ जाएगी। कयोंकक उससे कोई आजममक ववकास तो िोगा निीं ंऔर ववद्याथी अपनेगठन के अनुसार उसका उपयोग या दुरूपयोग अधधक दक्षता से करेगा। अतः शशक्षा से तामपय ििै आममा का संवधनि और उसकी मन, प्राण और शरीर में अशभव्यजकत। यिी शशक्षा िै। यिीाँहदव्य गुरु कि रिे िैं: इस संसार में ज्ञान के समान पववत्र ननश्चय िी कुछ भी निीं िै; योग के द्वारा शसद्ध िुआ पुरुष उस ज्ञान को उपयुकत समय आने ेपर अपने-आप अपनेभीतर प्राप्त करता िै।

श्रद्धाराल्ँलभते ज्ञानंतत्परः संयतेजतद्रयः ।
ज्ञानंलब्ध्वा परांाजिततर्धचरिेधधगच्छतत ।। ३९।।

३९. जो र्नुष्य श्रद्धा से युक्त है, जजसने अपनेर्न और इजतद्रयों को अपनेरि्र्ें कर मलया है, जजसने अपनी सम्पूि वचेतन सत्ता को उस परर् ्पुरुष र्ें जस्थर कर ददया है र्ह ज्ञान को प्राप्त करता है। र्ह र्नुष्य ज्ञान को प्राप्त कर के अवर्लम्ब परा िाजततर को प्राप्त कर लेता है।

वास्तव में जीवन में सारी किया िी केवल श्रद्धा की िै और ककसी चीज की निीं। श्रद्धा के अंदर स्वयं को अशभव्यकत करनेकी शजकत िोती िै। यहद श्रद्धा िै तो वि अशभव्यकत िोकर रिेगी। यि अलग बात िै कक अशभव्यजकत की प्रकिया में मन, प्राण, शरीर की अपनी-अपनी कशमयााँ, अपना-अपना गठन रिता िै जजनकी अपनी-अपनी कियाएँ चलती रिती िैं। इसशलये आवश्यक निीं ंिै कक ये भाग प्रारमभ से िी श्रद्धा के अनुरूप सियोगी िों। परन्तु चािे ये सब साथ आयें या निीं,ं काम तो विी िोगा जजसमें िमारी वास्तववक श्रद्धा िै। शुरू में मि भ्शमत िो सकतिें परन्तु चािे ककन्िीं भी प्रमयक्ष-अप्रमयक्ष तरीकों से िो, आखखरकार श्रद्धा िी िमें प्रेररत करेगी और िमारे सभी भागों का एक ननजश्चत हदशा में संचालन करेगी। िमारा वतमिान जीवन पूव िकी श्रद्धा का पररणाम िै और वतमिान श्रद्धा िमारे भववष्य को ननधाररत करती िै। अगर ऐसा निींिोता तो कफर िमारे भीतर भागवत् ्संकल्प का कया औधचमय िोता। भागवत् ्संकल्प की अशभव्यजकत में अनेक सकाराममक व नकाराममक ऊजाएिँ अपना-अपना काम करती रिती िैं। परंतु वास्तव में तो इन सबका अंनतम पररणाम अंतरतम श्रद्धा की अशभव्यजकत िी िै। श्रद्धा के पीछे जो समय िै वि इतना बिु-आयामी िै कक िमारे मन, प्राण और शरीर उसका गठन निींकर सकते। और इस प्रकिया में िमारे समस्त ववरिो, अववश्वास आहद भी अपनी-अपनी भूशमका ननभातिें और अंततः पररणाम श्रद्धा के अनुरूप िी िोता िै। िमारा मन भले ककतना भी ववकशसत और समृद्ध कयों न िो, परंतु कफर भी वि श्रद्धा को पूण िरूप से अशभव्यकत निींकर सकता। व्यजकत जो भी काय िप्रारमभ करता िै वि श्रद्धा की शजकत से िी करता िै कफर वि चािे योग िो या अन्य कोई काय।ि काय िकी संशसद्धध िोने

तक श्रद्धा व्यजकत को बार-बार उसी हदशा में प्रवृत्त् करती रिती िै। यि जीवन का मूलभूत समय िै। यहद ऐसा न िोता तो िम जीवन में कुछ कर िी निींसकते थे।

यहद िमारी समझ और सोच िी सब कुछ िोते तब तो श्रीअरववन्द और श्रीमााँ का योग संभव िी न िोता कयोंकक अनतमानशसक रूपान्तरण तो धरती पर आज तक कभी संशसद्ध िुआ निीं। इसशलये श्रद्धा के शसवा इस योग का और कोई आधार िी निीं ि।ै यि केवल श्रद्धा से िी संभव िै और विी िमें इस मित् प्रयास में लगाये रखती िै। श्रद्धा वि िोर िै जो परमाममा िमारे शलए नीचे िालतीिैं जजसे पकि कर िम ऊपर आरोिण कर सकते िैं। इसकी सिायता से िम ननमन प्रकृनत के गुरुमवाकषिण के ववपरीत जा सकते िैं। 'श्रद्धावाल्लाँभते ज्ञानं'। यि जीवन की केन्द्रीय चीज िै। इसके अलावा जीवन में कुछ और िै िी निीं। जो िमारी श्रद्धा िै वि अवश्य िी चररताथ िकी जा सकती िै। इसमें कोई संशय निीं िै।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च् संयिात्मा वर्नश्यतत ।

नायंलोकोऽजस्त न परो न सुखं संयिात्मनः ।। ४०।।

४०. जो अज्ञ है और श्रद्धा से रदहत है और संयि से युक्त है ई नष्ट हो जाता है; संयि करनेर्ाले र्नुष्य के मलये न यह लोक है न ऊपर का लोक है और न कोई सुख ही है।

वस्तुतः, यि सच िै कक त्रबना श्रद्धा के न िी इस जगत् में कोई ननणायिक चीज प्राप्त िो सकती और न िी परलोक की कोई भी ननधध प्राप्त की जा सकती; और केवल ककसी सुननजश्चत आधार और वास्तववक सिारे को पकिने पर िी व्यजकत ककसी पररमाण में लौककक या पारलौककक सफलता, संतोष और सुख को प्राप्त कर सकता िै; मिज संशयशील मन अपने-आपको शून्य में खो देता िै। परन्तु कफर भी ननमनतर ज्ञान में संदेि और अववश्वास िोने के तामकाशलक उपयोग िैं; ककन्तु उच्चतर ज्ञान में ये माग िके रोिे िैं: कयोंकक विााँसारा रिस्य ननमनतर भूशमका की तरि समय और भ्ाजन्त का सन्तुलन करना निीं अवपतु स्वतःप्रकाशमान समय की सतत्–प्रगनतशील अनुभूनत करना िै। बौद्धधक ज्ञान में सदा िी असमय अथवा अपूणमिव का शमश्रण रिता िै जजसे िटाने के शलये स्वयं समय को संशयाममक परीक्षण की कसौटी से गुजारना पिता िै; परन्तु उच्चतर ज्ञान में असमय निीं घुस सकता और इस या उस मत पर आग्रि कर के बुद्धध जो भ्म ले आती िै वि केवल तकि के द्वारा दूर निीं िोता, अवपतुवि तो अनुभूनत में सुदृढ़ रूप से लगे रिने से अपने-आप िी दूर िो जाता िै।

"आध्याजममक अथ िमें श्रद्धा कोई मानशसक ववश्वास निीं िै जो ववचशलत िो सके और बदल सके। मन में यि ऐसा रूप ले सकती िै, पर वि ववश्वास स्वयं श्रद्धा निीं िै, वि तो उसका केवल बािरी रूप िै। ठीक वैसे िी जैसे शरीर, बािरी आकृनत तो बदल सकतो िै पर आममा विी बनी रिती िै, वैसी िी बात यिा ाँभी िै। श्रद्धा अन्तराममा में ववद्यमान एक ननश्चयता िै जो तकि-बुद्धध पर, ककसी एक या दूसूरे मानशसक ववचार पर, पररजस्थनतयों पर, मन या प्राण या शरीर को ककसी एक या दूसूरी क्षखणक अवस्था पर ननभरि निीं करती श्रद्धा अनुभव पर ननभरि निीं करती; यि कोई ऐसी चीज िै जो अनुभव के पूव सिे िो रिती िै। जब व्यजकत योग प्रारंभ करता िै, तो ऐसा वि प्रायः अनुभव की शजकत पर निीं अवपतु श्रद्धा को शजकत पर करता िै। ऐसा केवल योग और आध्याजममक जीवन के ववषय में िी निीं अवपतु सामान्य जीवन के बारे में भी िै। सभी

कमप्रिधान लोग, खोजकतिा, आववष्कारक, ज्ञान के प्रकाशक श्रद्धा से ि◌ी आरंभ करतिें और जब तक प्रमाण निीं ◌ंशमल जाता या काय ि◌पूरा निीं ि◌ो जाता, तब तक वे ननराशा, असफलता, प्रमाणों के अभाव व अस्वीकृनत के उपरान्त भी प्रयास जारी रखते ◌े िैं, और ऐसा वे अपने अंदर ककसी ऐसी चीज के कारण करतिें जो उनसे कितिी ि◌ै कक यिी समय ि◌ै, यिी वि चीज ि◌ै जजसका अनुसरण करना ि◌ोगा और जजसेशसद्ध करना ि◌ोगा... श्रद्धा अंतराममा का ककसी ऐसी चीज के ववषय में साक्ष्य ि◌ै जो अभी तक अशभव्यकत, संशसद्ध या अनुभूत निीं ि◌ुई ि◌ै, परंतु कफर भी जजसे ि◌मारे अंदर का 'ज्ञाता' सभी लक्षणों के अभाव में भी समय या अनन्य रूप से अनुसरण करने तथा प्राप्त करने योग्य अनुभव करता ि◌ै। ि◌मारे भीतर की यि चीज तब भी बनी रि सकती ि◌ै जब मन में कोई दृढ़ ववश्वास न ि◌ो, तब भी जब प्राण संघष,ि◌ ववरोि और इंकार करता ि◌ो। ऐसा कौन ि◌ै जो योगाभ्यास करता ि◌ो और जजसके ऐसे दौर न आतिें, ननराशा, असफलता, अववश्वास और अंधकार के लंबे दौर? परंतु कोई ऐसी चीज ि◌ै जो उसे थामे रखती ि◌ै और उसकी अपनी (सामथ्यि–असामथ्य)ि◌ के बावजूद भी बनी रितिी ि◌ै, कयोंकक उसे यि अनुभविोता ि◌ै कक जजस चीजका उसने अनुसरण ककया वि सिी थी तथा वि ऐसा अनुभव ि◌ो निींकरता अवपतुजानता ि◌ै।

प्राप्त ज्ञान में जो कुछ भी अपूणतिा रि गयी ि◌ो उसे अवश्य दूरू करना ि◌ोगा, ककन्तु यि काम जो अनुभूनत ि◌ो चुकी िै उसके मूल पर संदेि करनेसे निीं अवपतु आममा में अधधक गिरे, ऊँचेऔर अधधक ववशाल जीवन जीनेसे और आगे की तथा पूणतिर अनुभूनत की ओर बढ़नेके द्वारा ि◌ोगा। और जो कुछ अभी अनुभूत निीं ◌ंि◌ुआ ि◌ै उसके शलये श्रद्धा के द्वारा तैयारी करनी ि◌ोगी, न कक संशयपूण ि◌पूछताछ से, कयोंकक यि ऐसा समय ि◌ै जजसे बुद्धध निीं दे सकती, और ताककिक तथा यौजकतक मन जजन ववचारों में उलझा रिता ि◌ै यि वस्तुतः बिुधा उनसे सवथिा ववपरीत ितिा ि◌ै। यि ऐसा समय निींिै जिजसे प्रमाखणत करने ◌ेकी आवश्यकता ि◌ो, अवपतु ऐसा समय ि◌ै जजसे आंतररक रूप से जीना ि◌ोता ि◌ै, यि वि मिर्त्र सद्वस्तु ि◌ै जजसके स्वरूप में ि◌में संवद्धिधत ि◌ोना ि◌ै।

श्रद्धा और संशय के संबंध में यि बिुत ि◌ी सुंदर व्याख्या ि◌ै। श्रीअरववन्द कि रिे ि◌ैं कक जो श्रद्धावान् ◌् निीं ◌ंि◌ै अथात्ि◌्जो संशयवादी ि◌ै वि बिुी ववषम और दयनीय जस्थनत में ि◌ै।

अब कुछ लोगों के भीतर यि प्रश्न उठता ि◌ै कक कफर संशय का कया औधचमय ि◌ै और ि◌में ककस पर संशय करना चाहिये और ककस पर निीं। कुछ का तो मानना ि◌ै कक या तो सभी कुछ पर संदेि करना चाहिये या कफर सभी कुछ पर ववश्वास करना चाहिये।

आखखर ि◌मारे अंदर संदेि या संशय कयों उठता ि◌ै? इसका कारण यि ि◌ै कक ि◌मारे भीतर जो श्रद्धा ि◌ै उसका प्रनतत्रबंब ि◌मारी बुद्धध में पूरी तरि से निीं आ सकता। अतः जब तक ि◌म बुद्धध के क्षेत्र तक सीशमत ि◌ैं तब तक संशय की उपयोधगता रितिी ि◌ै कयोंकक संशय ि◌में गलत माग ि◌पर चलते रिने से रोकता ि◌ै। इसशलये स्वयं श्रद्धा पर तो संशय निीं ककया जा सकता परंतु जब तक उसका ननरूपण बुद्धध में ि◌ोता ि◌ै तब तक संशय की उपयोधगता ि◌ै। ि◌मारी आन्तररक गिराई में जो श्रद्धा ि◌ै उस पर संशय निींककया जा सकता कयोंकक वि तो समय िै और यहद उस पर ि◌ी संशय करेंगे तो ि◌मारा समय की ओर आरोिण रुक जायेगा। बुद्धध के क्षेत्र में ि◌मारे अनुभव की अशभव्यजकत की क्षमता सीशमत ि◌ोती ि◌ै कयोंकक आन्तररक अनुभव को मानशसक रूप से अशभव्यकत करने की प्रमयेक व्यजकत की क्षमता अलग-अलग ि◌ोती ि◌ै।

एकमात्र सुननजश्चत और सवसिमन्वयाममक समय, जो ववश्व का आधार िी िै, वि यि िै कक जीवन एक अजन्मा आममा तथा आममसर्ता की अशभव्यजकत िै, और जीवन के गुप्त रिस्य की कुंजी िै इस आममा का अपनी रची िुई सर्ताओं से सच्चा समबन्ध। इस सब जीवन के पीछे अपनी असंख्य अशभव्यजकतयों (becomings) को देखती सनातन पुरुष को एक दृजष्ट िै; इसमें सब ओर तथा सवत्रि िी एक अव्यकत कालातीत सनातन पुरुष द्वारा कालगत अशभव्यजकत का समावरण (envelopment) और अंतलयिन (penetration) िै। परन्तु यि ज्ञान योग के शलए मित्त्विीन िोगा यहद यि केवल एक ऐसा बौद्धिक तथा दाशनिनक ववचारमात्र िो जजसमें न कोई जीवन िो और न जजसका कोई फल िो; जजज्ञासु के शलये एकमात्र मानशसक अनुभूनत िी पयाप्ति निीं िो सकती। कयोंकक योग जजसकी खोज करता िै वि केवल ववचार या केवल मन का समय निीं िै, अवपतु एक जीवंत और प्रकाशकारी अध्यामम-अनुभव का शजकतशाली कियाममक समय िै। िमारे अंदर एक सच्ची अनंत उपजस्थनत का सतत् अन्तवासी और सवव्यिापी साजन्नध्य, सुस्पष्ट बोध, घननष्ठ अनुभव तथा समागम और ठोस बोध एवं संस्पश िसदा-सवदि और सवत्रि जागृत रिना चाहिये। वि उपजस्थनत िमारे संग एक ऐसी जीवंत और सवव्यिापक सद्वस्तु के रूप में रिनी चाहिये जजसमें िम और सभी पदाथ िअजस्तमवमान िोते, गनत करते और किया करते िैं। और उसे िमें िर समय और िर जगि मूत,ि गोचर एवं सभी वस्तुओंके ननवासी के रूप में अनुभव करना िोगा। यि िमें सब पदाथों की सच्ची आममा के रूप में गोचर िोना चाहिए, सबके अववनाशी सारतत्त्व के रूप में स्पशि–योग्य िोना चाहिए, सबकी अन्तरतम आममा के रूप में घननष्ठ रूप से शमलन योग्य िोना चाहिए। यिाँ सभी सर्ताओं में इस आममा और आमम-तत्त्व को मानशसक ववचार द्वारा कजल्पत करना िी निीं, अवपतु उसे देखना, अनुभव करना, संवेदन प्राप्त करना तथा िर प्रकार से इसका संस्पश ि प्राप्त करना और उतनिी सुसुपष्ट रूप से सभी सर्ताओं को इस आममा और आममतत्त्व में अनुभव करना िी वि आधारभूत अनुभव िै जजससे अन्य सभी ज्ञान को समावृत करना िोगा।

वस्तुओंकी यि अनन्त और ननमय आममा सवव्यिापक सद्वस्तुिै, सवत्रि ववद्यमान एक िी सर्ता िै; यि एकमेव एकीकारक उपजस्थनत िै और शभन्न प्राखणयों में शभन्न-शभन्न निीं िै। इससे ववश्व में प्रमयेक आममा या प्रमयेक दृश्य पदाथ िके भीतर उसको पूणतिा में साक्षामकार ककया जा सकता िै, दशनि ककया जा सकता िै या अनुभव ककया जा सकता िै। कयोंकक, इसकी अनन्तता आध्याजममक और आधारभूत िै न कक एक ननरी देश मयाहिदत असीमता या एक काल मयाहिदत अंतिीनता ि। एक सूक्ष्मानतसूक्ष्म अणु में या काल के एक क्षण में भी वि अनन्त वैसे िी असंहदग्ध रूप में अनुभव ककया जा सकता िै जैसे कक युगों के ववस्तार या सौर वपण्डों की पारस्पररक दूरी की अनतववशाल बिृर्ता में ककया जा सकता िै। उसका ज्ञान या अनुभव किीं भी शुरू िो सकता िै और अपने आप को ककसी भी वस्तुके द्वारा प्रकट कर सकता िै; कयोंकक भगवान् सबमें िैं औरसब कुछ भगवान्िी िैं।

अतः संशय की भूशमका केवल उस मानशसक अशभव्यजकत तक िी िै और श्रद्धा की जो प्रनतमूनत ि इस मानशसक चेतना में प्रकट िोती िै उसकी ववकृनतयों का पररमाजनि करना िी संशय का मूलभूत काय िै। जो आन्तररक अनुभव िै वि तो सच्चा िै उस पर संशय निींककया जाना चाहिये। यहद िमारे अनुभव में कोई कमी िै अथवा कोई संकीणतिा िै वि केवल अधधक गिरे अनुभव से िी दूर िोगी। वि संशय से दूर निींिो सकती।

योगसंतयस्तकर्मिं ज्ञानसंतछतनसंियर् ्।

आत्र्तंतं न कर्ाणवि तनबध्नजतत धनञ्जय ॥ ४१॥

४१. हे धनञ्जय अजुनव ! जजस र्नुष्य ने योग के द्र्ारा सर्स्त कर्ों का त्याग कर ददया है, ज्ञान के द्र्ारा सर्स्त संियों का वर्नाि कर ददया है, जो आत्र्र्ान् है ई अपने कर्ोंसे नहीं बाँधता है।

तस्र्ादज्ञानसंभूतं ंहृत्स्थं ज्ञानामसनात्र्नः ।

तछत्त्रै्नं संयिं योगर्ाततष्ठोवत्तष्ठ भारत ।। ४२।।

४२. इसमलये हे भारत ! अज्ञान से उत्पतन होनेर्ाले, हृदय र्ें तनर्ास करनेर्ाले अपनेइस संयि को ज्ञानरूप तलर्ार के द्र्ारा काट कर योग का आश्रय ग्रहि कर (अनुष्ठान कर) और युद्ध के मलये ख़िा हो।

[आध्याजममक समय] अपने-आप में एक स्वयं-ववद्यमान समय िै और यि स्वयंशसद्ध भी िोता यहद िम अज्ञान के इन्रजाल में वशीभूत िो न जी रिे िोते। जो संदिे और व्यग्रताएँ िमें इस समय को स्वीकार करने ेऔर इसका अनुसरण करने से रोकती िैं, वे उसी अज्ञान से, इजन्रयववमोहित और दुराग्रि-ववमूढ़ मन और हृदय से उमपन्न िोती िैं, कयोंकक इनकी जस्थनत ननमन और बाह्य समय में िै और इसशलए उच्चतर सद्वस्तु के ववषय में इर्नें संशय िोता िै, **अज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ंसंयिं ं।** गीता किती िै कक जजनके समय को जानने ेसे सब कुछ जाना जाता िै **(यजरून् ्वर्ज्ञाते सर् ववर्ज्ञातर्)**् उन परमाममा के साथ एकमव में ननवास कर, सतत् ्योगस्थ िोकर, अनुभवगमय ज्ञान के द्वारा, इस संशय को ज्ञान की तलवार से काट िालना िोगा।

इस प्रकार चौथा अध्याय 'ज्ञानयोग' सर्ाप्त होता है।

पाचाँवा अध्याय

।. ज्ञान, समता और कमयिोग

[चौथेअध्याय के अजन्तम श्लोकों में श्रीकृष्ण ने यि घोवषत ककया। कक ज्ञान-यज्ञ िी सवोच्च िै, समस्त कम िज्ञान में अपनी पररसमाजप्त पातिं, ज्ञान की अजग्न के द्वारा सब कम िदग्ध िो जाते िैं; इसशलए वि व्यजकत जो अपनी आममा को पा लेता िै, वि योग के द्वारा कमों का मयाग व कमजिननत बंधनों पर ववजय प्राप्त कर लेता िै। अजुनि पुनः ववभ्शमत िो जाता िै; कयोंकक ननष्काम कम,ि जो कक योग का शसद्धांत िै, और कम–िसंन्यास, जो कक सांख्य का शसद्धांत िै, दोनों िी शसद्धांतों को इस प्रकार एक िी साथ रख हदया गया िै मानो दोनों एक िी प्रकिया के भाग िों और कफर भी इनमें प्रमयक्ष रूप से कोई तालमेल िी हदखाई निीं देता। कयोंकक जजस तरि का समन्वय श्रीगुरु पिले िी दे चुके िैं - अथिात् ्बाह्य अकम िोने ेपर भी कम िको िोतेिुए देखना और बाह्य कम िमें यथाथ िअकम िको देखना, कयोंकक पुरुष अपनेकर्त्ृापिन का भ्म मयाग चुका िै और अपने कम िको यज्ञ के स्वामी के िाथों में सौंप चुका 3 - overline 95 अजुनि की व्याविाररक बुद्धध के शलये अमयंत क्षीण, अमयंत धुधाँला और लगभग एक पिेलीनुमा भाषा में प्रकट ककया गया िै; उसनेइसके आशय को निीं समझा िै या कम-से-कम इसके मम िऔर इसकी वास्तववकता में प्रवेश निीं ंकर सका िै। इसशलए वि कफर पूछता िै कक...

अजुनव उर्ाच :

संतयासंकर्िवां कृष्ट् पुनयोगंच िंसंमस ।
यच्रेय एतयोरेकं ततरे् ब्रूदह सुतनजश्र्तर् ्।। १॥

१. अजुनव ने कहा : हे कृष्ट् ! आप रु्झे ेकर्ों के संतयास को बताते हो, और पुनः कर्ों के योग को कहते हो; इन दोनों र्ें जो श्रे्ेष्ठ हो उस एक को स्पष्ट सुतनजश्चतता से रु्झे ेबतलाइये।

भगवान् ्द्वारा हदया गया इसका उर्त्र मित्त्वपूण िै, कयोंकक यि योग और सांख्य के भेद को एकदम स्पष्ट रूप से प्रकट कर देता िै और यद्यवप यि समन्वय की हदशा में ववचार को पूणतिः ववकशसत निींकरता परंतु कफर भी उस समन्वय का संकेत अवश्य कर देता िै।

श्रीभगर्ान् ्उर्ाच :

संतयासः कर्यवोगश्र् तनःश्रे्ेयसकरारु्भौ ।
तयोस्तुकर्संवतयासात्कर्यवोगो वर्मिष्यते ।। २।।

२. श्रीभगर्ान् ्ने कहाः कर्ों का संतयास और कर्ाँ का योग दोनों ही आत्र्ा को र्ोक्ष देनेर्ाले हैं, ककततु ्ुइन दोनों र्ें कर्ाँ के संतयास की अपेक्षा कर्यवोग श्रे्ष्ठ होता है।

ज्ञेयः स तनत्यसंतयासी यो न द्वेजष्ट न काङ्क्षतत ।
तनद्र्वतद्वो दह र्हाबाहो सुखं ्बतधात्प्रर्ुच्यते ।। ३।।

३. हे र्हाबाहो ! जो र्नुष्ट्य न द्वेष करता है और न कार्ना करता है उसे (कर् वकरते हुए भी) तनत्य संतयासी जानना चादहये; द्वतद्वरदहत होने ेके कारि र्ह बंधन से सरलता से और सुखपूर्वक र्ुक्त हो जाता है।

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रर्दजतत न पजण्डताः
एकर्प्याजस्थतः सम्यगुभयोवर्तवदतेलर् ्।। ४।।

४. बालबुद्धध (अल्पबुद्धध) र्नुष्ट्य ही सांख्य और योग को एक-दूसूरे से पृथक् बतातेहैं, ज्ञानी ऐसा नहीं ंकहते;े यदद कोई व्यजक्त अपनेआप को सम्यक् रूप से ककसी भी एक के अनुष्ठान करने ेर्ें प्रर्ृत्त करता है, तो र्ह दोनों के िल को प्राप्त कर लेता है।

....कयोंकक अपनी संपूणतिा में ये दोनों ि ी एक-दूसूरे को धारण ककये िुए िैं।

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानंतद्योगैरवप गम्यते । ए
कं सांख्यं च योगं च यः पश्यतत स पश्यतत ।। ५।।

५. सांख्य र्ाग वका अनुसरि करने ेर्ाले, ज्ञानयोगी संतयामसयों द्वारा जो पद प्राप्त ककया जाता है र्ह योग र्ाग व का अनुसरि करनेर्ाले योधगयों द्वारा भी प्राप्त ककया जाता है; जो र्नुष्ट्य सांख्य को और योग को एक ही देखता है र्ह यथाथ वदेखता है।

संतयासस्तु ्र्हाबाहो दु:खर्ासुर्योगतः ।
योगयुक्तो र्ुतनब्रह्मर् नधचरेिाधधगच्छतत ।। ६।।

६. परततु हे र्हाबाहो! तनष्ट्कार् योग के त्रबना संतयास को प्राप्त करना कदठन है; जो र्ुतन योगयुक्त है र्ह ि ीघ्र ही ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

बाह्य संन्यास की कष्टकर प्रकिया (दु:खमाप्तुं) ं एक अनावश्यक प्रकिया िै। यि पूणतिः समय िै कक सभी कमों को और साथ–ि ी-साथ कमफिल को भी छोड़ना िोता िै, उनका मयाग करना िोता िै, परंतु आंतररक रूप से, न कक बाह्य रूप से; ऐसा प्रकृनत की ज़िता में निीं ंककया जाता, अवपतुउन अधीश्वर के प्रनत यज्ञ रूप से ककया जाता िै, उस ननव्यजिकतक ब्रह्म की शाजन्त और आनन्द में ककया जाता िै जजसमें से त्रबना उसकी शाजन्त को भंग ककये सारा कम िउमपन्न िोता िै। कम िका सच्चा संन्यास िै समस्त कमों को ब्रह्म पर आधश्रत करना...। इसीशलए गीता

किती ि कक कमों के भौनतक संन्यास की अपेक्षा कमयोग श्रेष्ठ ि, कयोंकक जिाँसंन्यास दिधाररयों के शलए कहठन ि, जजन्ि जब तक वे ेदि में ि तब तक कम िकरना िी प़िेगा, वींकमयोग अभीष्टशसद्धध के शलए सवथा पयाप्ति ि और यि जीव को ब्रह्म के पास शीघ्रता और सरलता से ले आता ि।

यहद िम इस पररपे्रेक्ष्य में देखें कक गीता का आरमभ कैसे िुआ तो िम पाएँगे कक शुरू में अजुनि ने किा कक उसे अपने पररजनों एवं गुरुजनों के रकत से सना राज्य निीं ंचाहिये। तब हदव्य गुरु उसे प्रचशलत 'आयि–क्षत्रत्रय धममित' के अनुसार आममा के अमर िोने और शरीर के नाशवान् ्िोनेआहद की बातें बतातीं। कयोंकक अजुनि को उसके वतमिान स्तर से िी समझाना आरंभ ककया जा सकता था, एकाएक िी अंनतम शब्द के शलए तो वि अभी तैयार निींथा। िालाकँक उसके वतमिान स्तर पर भी उसे ककन्िीं भी बातों से सन्तोष निीं ंिो सकता था कयोंकक उसके माध्यम से गीता को अपनेगुह्यतम वचन तक पिुँचना ि। समपूण िगीता उस चरम ज्ञान तक पिुँचने ेके शलए एक ववकशसत िोता िुआ माग िि जजससे िोकर व्यजकत विाँ तक पिुँच सके। जब अजुनि 'आयि–क्षत्रत्रय धममित' से सिमत निीं िुआ यद्यवप वि हदव्य गुरु के समक्ष शशष्य भाव से नतमस्तक िो उनसे प्राथनिा कर चुका था कक वे उसे ज्ञान दें कक उसे कया करना चाहिये, तब भगवान् ्किते ि कक -

नेहामभक्रनिोोऽजस्त प्रत्यर्ायो न वद्यते ।
स्र्ल्पपर्य्स्य धर्स्वय त्रायतेर्हतो भयात् ्।।२.४०।।

इस माग िपर कोई भी प्रयास नष्ट निींिोता, न िी कोई प्रमयागमन िी िोता ि, इस धम िका थो़िा-सा अनुष्ठान भी मिान् ्भय से मुकत कर देता ि।

आरमभ में जब भगवान् ्ने ननष्काम कम िकरने ेका उपदेश हदया तो अजुनि ने पूछा कक पिले तो त्रबना कामना के कम िका चयन कैसे िो और कफर ननष्काम कम िसंभव िी कैसे िो सकते ि। तब हदव्य गुरु ने यज्ञ स्वरूप कम िका उपदेश ककया। इसके उपरान्त ज्ञान की बात आई कक सारे कमों की समाजप्त ज्ञान में िोती ि और ज्ञानयोग िी सबसे पववत्र योग ि। वपछले अध्यायों में बताया जा चुका ि कक जैसे िी व्यजकत ननष्काम कम िकी ओर चलेगा तो ज्ञान आएगा और जैसे िी ज्ञान में वृद्धध िोती ि तब व्यजकत अधधक बेितर तरीके से कम िकर सकता ि। इस प्रकार ये दोनों एक-दूसरे के पूरक ि। ज्ञानयोग और कमयोग एक पक्षी के दो पंखों के समान ि, और ककसी भी एक पंख के त्रबना वि उ़ि निीं ंपाएगा। वास्तव में तो कम ित्रबना भजकत के निीं िो सकतेऔर भजकत ज्ञान के त्रबना निीं िो सकती। सच्चा आंतररक ज्ञान विी िोता ि जब व्यजकत को यि समझ में आ जाता ि कक भगवान् ्िी सवोर्त्म प्राप्तव्य तत्त्व ि। जजसे यि बात निीं ंसमझ आती उसके शलए तो वेदों और शास्त्रों का अध्ययन भी वृथा ि। वि सब अध्ययन कफर केवल सूचना-मात्र िी बनकर रि जाता ि। सर्त्ा के प्रमयेक भाग का जाननेका अपना तरीका िोता ि। बुद्धध अपने तरीके से जानती ि, हृदय अपनेतरीके से जानता ि। इनमें हृदय के द्वारा जानने ेका तरीका अधधक श्रेष्ठ ि। जब हृदय में समझ में आ जाता ि तब व्यजकत के मन में भजकत आती ि। ये बातें गीता में अभी प्रकट रूप से सामने निींआई ि। परन्तु धीरे-धीरे गीता इन ववषयों में प्रवेश कर रिी ि। यिा ँयि बता िी हदया गया ि कक कोई भी व्यजकत कम िककये त्रबना रि िी निींसकता। और कमों से संन्यास तो एक मनोवैज्ञाननक

भाव ि। अतः व्यजकत कमों को यज्ञ, तप और दान के रूप में करता ि। अथित् ्व्यजकत यज्ञ के रूप में कम िकरता ि, अपनी सारी ऊजाि को केंहरत कर के तप स्वरूप कम िकरता ि, और अपनी समस्त चेष्टा, अपनेसमस्त कम ि भगवान् ्को दान कर देता ि। इसशलए जजससे अनुभव िो चुका ि वि तो जानता ि कक वास्तव में ज्ञानयोग के द्वारा जजस पद की प्राजप्त िोती ि विी पद योग माग िपर चलनेपर प्राप्त िोता ि। उसके शलए इन दोनों में कोई अन्तर निीं ंिोता। परन्तु दोनों की सच्ची पररणनत तब िोती ि जब ये दोनों भजकत में पररवनतित िो जाते ि। तब ज्ञानयोग और कमियोग दोनों ऊपर उठते ि। जब व्यजकत पैसे कमाने, पेट पालने या अन्य ककसी ननहित ितु से कोई कम ि करता ि, तब इसका कोई अधधक मूल्य निीं िोता। कमों का वास्तववक मूल्य तो भजकत के आनेपर िी िोता ि। भाव के त्रबना या कफर प्रेम या भजकत के त्रबना तो कम िएक प्रकार का बोझ ि, जुआ ि। इन सब बातों का वणनि छठे अध्याय में ककया गया ि। उसके बाद तो गीता का ववकासिम अद्भुत रूप ले लेगा और अधधकाधधक गूढ़ तत्त्वों का ननरूपण िोगा।

परंतु अभी तो गीता यिा ँतक पिुँची ि कक जो कम िमें अकम िदेखता ि और अकम िमें भी कम िदेखता ि विी सच्चे रूप में देखता ि, और विी कमि–बंधन से छूट जाता ि। जो व्यजकत अविश कम िन कर के भगवान् ्के ननशमत्त् कम िकरता ि उसके कमों का उस पर कोई प्रभाव निींिोता, वे तो अकम िके रूप में िी िोते ि। परंतु जो व्यजकत बािरी रूप से तो कोई कम िनिीं करता परन्तु उसके ववचार, भावनाएँ सब उस ववषय में शलप्त ि तो बािरी अकम िमें भी वि घोर कम िमें शलप्त िोता ि। इसी बात का गिन ननरूपण अठारिवें अध्याय में 'मयाग और संन्यास' के बीच के अन्तर में आएगा। कमों को जो चीजें दूवषत करती ि वे ि कामनाएँ और इच्छाएँ। इसशलए कामनाओं और इच्छाओंका मयाग करना िोगा न कक कमों का और विी सच्चा संन्यास ि। जैसे कक, प्रेम में यहद स्वाथ िआ जाता ि, तो व्यजकत को उस स्वाथ िका मयाग करना िोगा न कक प्रेम का। इसशलए कम िमें, प्रेम में या कफर अन्य ककसी भी चीज में जो ननमन चीजें घुस जाती ि उनका मयाग करना िोता ि न कक स्वयं उस चीज का, अन्यथा जीवन में भगवान् ्की अशभव्यजकत िी निीं िो पाएगी। संभव ि कक ककसी आममा-ववशेष का अशभव्यजकत से सरोकार न िो, और उसका उद्देश्य पाधथवि अशभव्यजकत से छूट ननकलना िो। परंतुएक शसद्धांत बनाकर इसे सभी पर लागूनिीं ंककया जा सकता। इसीशलए गीता में हदव्य कमी के लक्षण बताए ि कक वि सभी कमों को करता िपरंतु उन्िपेरमाममा के ननशमत्त् करता ि। उसके सभी कम िसमवपति िोते ि। इसशलए उसके कम िउस पर बाध्यकारी निीं िोते।

योगयुक्तो वरिुद्धात्रा वर्जजतात्रा जजतेजतद्रयः ।
सर्भूवतात्रभूतात्रा कुर्तवनवप न मलप्यते ।। ७।।

७. जो योगयुक्त है, जो वरिुद्ध धचत्त है, जजसने अपनेआप पर प्रभुत्र् प्राप्त कर मलया है, जजसने ेइजतद्रयों को जीत मलया है, जजसका आत्रा सर्त भूतों का आत्रा हो गया है, ई कर् वकरते हुए भी उनर्ें मलप्त नहींहोता।

वि जानता ि कम िउसके निीं, अवपतु प्रकृनत के ि और ठीक इसी ज्ञान के द्वारा वि मुकत िो जाता ि; उसनेकमों का संन्यास कर हदया ि, वि कोई कम िनिीं ंकरता, यद्यवप कम िउसके द्वारा संपन्न ककये जाते ि, वि

आममा िो जाता िै, ब्रह्मभूत िो जाता िै, वि सृजृष्ट के समस्त प्राखणयों को उसी एक 24 स्वतः ववद्यमान सर्त्ा के व्यकत रूपों, भूतानन, के रूप में और स्वयंअपनी सर्त्ा को उन अनेक व्यकत रूपों में से एक के रूप में देखता िै, वि उन सब 'भूतानन' के समस्त कमों को उनकी व्यजष्टगत प्रकृनत के द्वारा काय िकरती वैश्व-प्रकृनत के ववकासमात्र के रूप में देखता िै और स्वयं अपनेकमों को भी उसी वैश्व-किया' के िी एक अंश के रूप में देखता िै।

अभी तो भगवान् ्अजुनि को अपनी परंपरा से सांख्य आहद के ववषयों में जो बातें उसनेसुन रखी िैं, उन्िीं को बता रिे िैं कयोंकक त्रबना तैयारी के िी ककसी को गूढ़ तत्त्व की बातें निीं ंबताई जा सकतीं। और जो बातें बताई जा रिी िैं उनका अभी सिी-सिी ननरूपण और समन्वय साधधत निीं ककया गया िै। इसीशलए यहद गिन दृजष्ट से देखा जाए तो जो बात अभी बताई जा रिी िै वि तो व्याविाररक रूप में की िी निींजा सकती। इसमें ववरोधाभास यि िै कक जब व्यजकत अक्षर पुरुष की शांनत में चला जाता िै तब कफर वि कम िकैसे कर सकता िै, उस शांनत में जानेपर कम िककसशलए और कैसे िोंगे। ये दोनों बातें त्रबल्कुल असंगत िैं। इस असंगतता का बािरी स्तर पर समाधान निीं ककया जा सकता। परन्तु गीता में यि रिस्य अन्तननिहित िै कक ये दोनों िी एक साथ ककये जा सकतिैं कयोंकक गीता में पुरुषोत्र्म तत्त्व भी अन्तननिहित िै। परन्तु चूँकक अभी उस तत्त्व को ववकशसत निीं ंककया गया िै इसशलए जब तक इस सब का प्रकटन निीं िो जाता तब तक इस ववषय पर पूरा प्रकाश निीं आ सकता और यि ववरोधाभास की-सी जस्थनत चलती रिती िै।

नैर् ककजश्चत्करोर्ीतत युक्तो र्येत तत्त्ववर्् ्।
पश्यञ्ृण्र्स्पृिजञ्जघ्नतनश्नतगच्छतस्रपञ्श्र्सन् ्।। ८ ।।
प्रलपजतसृर्जतगृह्ितनुजतषजतनमषतनवप ।

इजतद्रयािीजतद्रयाथेषु र्ततवत इतत धारयन् ्।। ९।।

८-९. तनजष्क्रय तनव्यजवक्तक (तनगुिव) ब्रह्म के साथ युक्त र्नर्ाला, पदाथों के तत्त्र् को जाननेर्ाला र्नुष्य देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पि वकरता हुआ, सूंघता हुआ, खाता हुआ, चलता हुआ, सोता हुआ, श्र्ास लेता हुआ, बोलता हुआ, र्ल-र्ूत्र त्याग करता हुआ, हाथों से ककसी र्स्तु को ग्रहि करता हुआ, आखेँ खोलता हुआ, आखेँ बंद करता हुआ भी ये केर्ल इजतद्रयााँ हैं जो अपने र्वषयों पर कक्रया कर रही हैं ऐसी धारिा करता है और र् ैंकुछ भी नहीं कर रहा हूाँ ऐसा र्ानता है।

...वि जानता िै कक यि वि स्वयंनिीं ंिै जो कमशील िै, अवपतु ्प्रकृनत के त्रत्रगुण िैं।... वि स्वयंअक्षर अववकाय िआममा में सुप्रनतजष्ठत िोने के कारण त्रत्रगुण की पाश से परे त्रत्रगुणातीत िो जाता िै; वि न साजत्त्वक रिता िै, न राजशसक, न तामशसक; उसके कमों में प्रकृनतगत गुणों और धमों के जो पररवतनि िोते रिते िैं, प्रकाश और सुख, कमण्यिता और शजकत, ववश्राम और ज़्िता रूपी इनका जो छन्दोबद्ध खेल िोता रिता िै उन्िें वि ननमलि और अववकल भाव से देखता िै।

ब्रह्ण्याधाय कर्ाणवि सङ्गंत्यक्त्रा करोतत यः ।

मलप्यतेन स पापेन पद्पत्रमर्ाम्भसा ।। १०।।

१०. जो र्नुष्य आसजक्त का पररत्याग कर के कर्ों को ब्रह्ृ के ऊपर स्थावपत (या प्रततजष्ठत) कर के करता है, र्ह पाप से मलप्त नहीं ंहोता जजस प्रकार जल से कर्ल का पत्र मलस नहीं ंहोता।

' यिी गीता की संपूण िशशक्षा निीं िै; कयोंकक यिा ाँतक केवल अववकाय िआममा या पुरुष, अक्षर ब्रह्म का और उस प्रकृनत का िी ववचार या प्रनतप्रादन िै जो ववश्व का कारण िै, अभी तक ईश्वर का, पुरुषोर्त्म का प्रनतपादन स्पष्टतः निीं ककया गया िै, यिा ाँतक केवल कम िऔर ज्ञान का िी समन्वय िुआ िै, ककन्तु अभी तक, कुछ संकेंतमात्र ककये जाने पर भी, भजकत के उस परमोच्च तत्त्व का प्रस्तुनतकरण निीं िुआ िै जो आगे चलकर अमयधधक मित्त्वपूण िो जाता िै; यिााँ तक केवल एक अकतिा पुरुष और अपरा प्रकृनत की िी बात किी गयी िै, ककन्तुअभी तक त्रत्रववध पुरुष और द्वववध प्रकृनत के भेद को प्रकट निीं ककया गया िै। यि सिी िै कक ईश्वर का उल्लेख आया अवश्य िै, परंतु उनके आममा और प्रकृनत के साथ संबंध को सुननजश्चत रूप से निीं ंबताया गया िै। प्रथम छः अध्याय समन्वय को केवल उतनी िी दूरी तक ले जाते िैं जजतना कक इन अमयंत मित्त्वपूण िसमयों की सुसुपष्ट व्याख्या तथा इनके ननणायिक समावेश के त्रबना ले जाया जा सकता िै और जब इन समयों का प्रवेश िोगा तो वे इन पूवि–साधधत समन्वयों को, त्रबना उनका बहिष्कार ककये. आवश्यक रूप से ववस्तृत और संशोधधत करदेंगे।

कायेन र्नसा बुद्ध्या केर्लैररजतद्रयैरवप ।

योधगनः कर् वकुर्जवतत सङ्गंत्यक्त्रात्र्शुद्धये ।। ११ ।।

११. अतः तनष्ट्कार् कर्यवोगी आसजक्त का पररत्याग कर के आत्र्शुद्धिध के उद्देश्य से िरीर, र्न, बुद्धध के द्रारा अथर्ा केर्ल इजतद्रयों के द्रारा भी कर् वककया करते हैं।

युक्तः कर्िवलं त्यक्त्रा िाजततर्ाप्नोतत नैजष्ठकीर् ्।

अयुक्तः कार्कारे िले सक्तो तनबध्यते े॥ १२॥

१२. जो ब्रह्ृ के साथ युक्त है र्ह र्नुष्य कर्ों के िलों र्ें आसजक्त का पररत्याग कर के ब्रह्ृ र्ें आनतदर्यी-जस्थतत रूप िाजतत को प्राप्त करता है; परततु ुजो ब्रह्ृ के साथ युक्त नहींहै र्ह िल र्ें आसक्त होता है और (सकार् भार् से कर् वकर के) उस कर् वसे बद्ध हो जाता है।

इस लंबे पथ पर प्रथम सोपान िै अपने सभी कमों को अपने में तथा जगत् ्में ववद्यमान भगवान् ्को यज्ञ-रूप से अवपति करना। यि मन तथा हृदय का भाव िै जजसे अपनाना तो कहठन निीं, परंतुजजसे पूण िरूप में सच्चा एवं व्यापक बनाना अमयंत कहठन िै। दूसरा सोपान िै अपने कमों के फल में आसजकत का पररमयाग; कयोंकक यज्ञ का एकमात्र सच्चा, अवश्यमभावी तथा सविथा अभीष्ट फल एकमात्र आवश्यक वस्तु - यिी िै कक मिारे भीतर भागवत् ्उपजस्थनत एवं ंभागवत् ्चेतना तथा शजकत प्रकट िो और यहद वि प्राम िो जाए तो बाकी सब कुछ स्वयमेव प्राप्त िो जाएगा। यि िमारी प्राण सर्त्ा, िमारे काम-पुरुष और िमारी काम-प्रकृनत की अिपरक

इच्छा का रूपांतर ि◌ै, और यि पिले सोपान से किीं अधधक कहठन ि◌ै। तृतीय सोपान ि◌ै केंरीय अिंभाव तथा कतृमिव के अिंकार से भी छुटकारा प्राप्त करना। यि सभी से कहठन रूपान्तर ि◌ै और यहद पिले दो सोपानों पर कदम न उठा शलये गए ि◌ों तो इसे पूणतिया समपन्न नीं ◌ंककया जा सकता। पर वे प्रारजमभक सोपान भी तब तक संपन्न नीं ◌ंि◌ो सकते जब तक रूपान्तर की इस गनत को सफल बनानेके शलये तीसरा सोपान प्रारमभ नीं ◌ंि◌ो जाता और अिंभाव का ववनाश कर कामना के स्वयंमूल का ि◌ी उन्मूलन नीं कर देता।

सवकिमाखिण मनसा संन्यस्यास्ते सुखं ◌ंवशी ।
नवद्वारे पुरे दिी नैव कुवन्नि कारयन् ◌्।। १३।।

१३. जजसने अपनी प्रकृनत को पूरी तरि संयत ककया ि◌ै ऐसा दिेधारी जीव (पुरुष) समस्त कमों का मन से (भीतर से न कक बिार से) संन्यास कर के न स्वयंकरता ि◌ुआ न ककसी से कराता ि◌ुआ इस नौ द्वार वाले नगर (दिे) में सुखपूवकि जस्थत ि◌ोता ि◌ै।

न कतृत्वरं् न कर्ाणवि लोकस्य सृजृतत प्रभुः ।
न कर्र्वलसंयोगं रुभार्स्तुप्रर्तते व ।। १४।।

१४. प्रभु न तो लोक के कर्ाँ की सृजृष्ट करते, और न कतापवन के भार् की सृजृष्ट करते हैं और न कर्ों के उनके ि◌लों के साथ संबंध की सृजृष्ट करते हैं: प्रकृतत ही इन चीजों का प्रर्तनव करती है।

अपने आपमेंयि ववचार प्रकृनत की यांत्रत्रक ननयनत और आममा अथवा पुरुष को पूण ि◌उदासीनता और अनुर्त्रदानयमव के शसद्धांत के ननष्कष ि◌तक ले जा सकता ि◌ै, परंतु गोता इस अपूण ि◌ववचार की भूल का ननवारण पुरुषोर्त्म-तत्त्व के अपने प्रकाशमान परमेश्वरवादी ववचार के द्वारा करती ि◌ै। गीता यि स्पष्ट कर देती ि◌ै कक अंततः यि प्रकृनत नीं ि◌ै जो अपने कमों को यंत्रवत् ◌्ननयत करती ि◌ो, अवपतु उन पुरुषोर्त्म का संकल्प ि◌ै जो प्रकृनत को प्रेरेरत करता ि◌ै; जजन्िोंने धातरिाष्ट्रों को पिले से ि◌ी मार रखा ि◌ै, अजुनि जजनका मानव-यंत्र मात्र ि◌ै, वे ववश्वाममा परामपर परमेश्वर ि◌ी प्रकृनत के समस्त उद्यम या कमों के स्वामी ि◌ैं। ननव्यजिकतक में कमों का आधान करना तो कतृमिव-अशभमान से छुटकारा पाने का एक साधन मात्रि पर ि◌मारा लक्ष्यतो ि◌ै अपनेसमस्त कमोंको सवलिोकमिेश्वर के अपणि करना।

नादत्ते कस्यधचत्पापं न चैर् सुकृतं ◌ंवर्भुः ।
अज्ञानेनार्ृतं ज्ञानंतेन रुह्यजतत जततर्ः ।। १५।।

१५. यह सर्व्यापी तनव्यजवक्तक आत्र्ा न तो ककसी के पाप को ग्रहि करता है और न पुण्य को ही ग्रहि करता है: अज्ञान से ज्ञान आर्ृतृत है इससे जीर् र्ोहग्रस्त हो जाते हैं।

अक्षर ब्रह्म इस द्वन्द्वमय ववक्षुब्ध ननमन प्रकृनत के ऊपर आममा के क्षक्षनतज में ववराजमान िै, जो कक ननमन प्रकृनत के पाप से और पुण्य से अछूता रिता िै, वि न तो िमारे पाप के बोध को और न िी िमारे शमथ्याशभमान अथवा दंभ को स्वीकार करता िै, इस (ननमन प्रकृनत) के िष िऔर शोक से अस्पृशूय रिता िै, िमारी सफलता के िष िऔर ववफलता के शोक के प्रनत उदासीन रिता िै, वि सबका स्वामी िै, प्रभु िै, ववभु िै, जस्थर, समथ िऔर शुद्ध िै, सबमें सम िै. प्रकृनत का मूल िै, िमारे कमों का प्रमयक्ष कर्त्ाा निीं ंपरंतु प्रकृनत और उसके कमों का साक्षी िै, वि िम पर कर्त्ाा िोने के भ्म को आरोवपत निीं करता, कयोंकक यि भ्म तो इस ननमन प्रकृनत के अज्ञान का पररणाम िै। परन्तु इस मुजकत, प्रभुता और ववशुद्धता को िम देख निींपाते; िम प्रकृनतगत अज्ञान के कारण ववमूढ़ िुए रिते िैं जो कक िमारे अन्दर ब्रह्म के सनातन आममज्ञान को िमसे नछपाये रिता िै।

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नामितर्ात्र्नः ।
तेषार्ाददत्यर्जज्ञानं प्रकियतत तत्परर् ्।। १६ ।।

१६. अर्श्य ही, जजनर्ें ई अज्ञान आत्र्ज्ञान के द्र्ारा नष्ट्ट हो गया है, उनके भीतर ई ज्ञान सूय वके सर्ान उस परर् ्आत्र्ा को प्रकामित कर देता है।

तद्बुद्धयस्तदात्र्ानस्तजतनष्ठास्तत्परायिाः ।
गच्छतत्यपुनरार्ृवृत्तं ंज्ञानतनभूतवकल्षाः ।। १७।।

१७. अपनी वर्र्ेकील बुद्धध को 'उस' परब्रह्र् की ओर र्ोकर, अपनी संपिू वसचेतन सत्ता को 'उस' की ओर प्रर्तृ्त कर के, 'उसे' ही अपना संपिू वउद्देश्य और अपनी श्रद्धा-भजक्त का एकर्ात्र लक्ष्य बनाकर, ज्ञान के जल (सर्दु्र) के द्र्ारा जजनकी तनम्न र्ानर्ता के सर्स्त पाप धुल गये हैं र्े उस पद को प्राप्त होतेहैं जहा ाँसे उतहें लौटना नहींहोता।

वद्याववनयसम्पतने ेब्राह्र्िे गवर् हजस्ततन ।
िुतन चैर् श्र्पाके च पजण्डताः सर्दमिनवः ।। १८ ।।

१८. ज्ञानी ऋवष वद्या और वनय से युक्त ब्राह्र्िर्ें, गाय र्ें, हाथी र्ें, कुत्ते र्ें और चाण्डाल र्ें सर्ान दृजष्ट्ट रखनेर्ाले होतेहैं।

इहैर् तैजजतवः सगो येषां साम्ये जस्थतं र्नः ।
तनदोषंदह सर्ं ब्रह्र् तस्र्ाद् ब्रह्र्णि ते जस्थताः ।। १९।।

१९. जजनका र्न सर्ता र्ें जस्थत है उतहोंनेयहा ाँपृथ्र्ी पर रहतेहुए ही सृजष्ट्ट पर वर्जय प्राप्त कर ली है; क्योंकक सर् ब्रह्र् तनदोष है, इसमलये (जो सर्ता र्ें जस्थत हैं) र्े ब्रह्र् र्ें तनर्ास करते हैं।

' ऋग्वेद में समय की धाराओं का इस रूप में वणनि ि कक वे जल या धाराएँ जजर्न्िपूण िज्ञान ि, वे जल जो हदव्य सूयालिोक से पररपूण िि... जो यिााँ अलङ्कार ि, वे विााँ (वेदों में) मूतू िया ठोस प्रतीकों के रूप में प्रयुकत िुए ि।

न प्रहृष्येजत्प्रयं प्राप्य नोद्विर्जेत्प्राप्य चावप्रयर् ्।

जस्थरबुद्धधरसम्मूढो ब्रह्मवर्द् ब्रह्मणि जस्थतः ।। २०॥

२०. जो वप्रय स्तुि के प्राप्त होनेपर हवषतव न हो और अवप्रय स्तुि के प्राप्त होने ेपर दुःणखत न हो, जजसकी बुद्धध जस्थर है, जो र्ोह से रदहत है ई ब्रह्म का ज्ञाता है, ब्रह्म र्ें ही जस्थत है।

व्यजकत ननष्काम कम िकरता ि या निीं, ं इसका प्रमाण कया ि? इसका प्रमाण ि समता। यहद व्यजकत अपनेकमों के पररणाम से ववचशलत िोता ि तो इसका अथ िि कक अभी वि कामना से मुकत निीं ंिुआ ि। अतः समता एक उपलजब्ध भी ि और कसौटी 3 hat pi कयोंकक ननष्कामता, ननशलसिता आहद की जजन जस्थनतयों का

वणनि ककया गया ि वे सब तो आन्तररक और मनोवैज्ञाननक जस्थनतयााँ ि, इसशलये इनकी कसौटी ि समता। यहद

समता निीं तो वि इस बात का अचूक प्रमाण ि कक ये जस्थनतयााँ अभी प्राप्त निींिुई ि। समता तामशसक, राजशसक और साजत्त्वक प्रकार की िोती ि। परन्तु गीता जजस समता की बात करती ि वि ि ब्रह्म के साथ एक िोने ेपर आने वाली समता, जो कक व्यजकत की आममा के पूरे भाव, उसकी पूरी जस्थनत को िी बदल देती ि।

आरंभ

में तो वि समता केन्द्रीय चेतना में आती ि और धीरे-धीरे िी वि सत्ता के अन्य भागों में भी प्रवेश करती ि। आरंभ में एकाएक िी सभी भागों में समता निीं आ जाती। और जि-भौनतक भाग में तो जब तक पूण िरूपांतर साधधत निीं िो जाता तब तक असमता कभी भी प्रवेश कर सकती ि।

आममज्ञान, ननष्कामता, ननवैयजकतकता, आनन्द, प्रकृनत के गुणों से मुजकत, ये सब जब अंतमुखि, अपने-आप में आममलीन और ननजष्क्रय िों तो इनमें सममव की कोई आवश्यकता निीं ंिोती; कयोंकक विााँउन पदाथों का पररज्ञान िी निींजजनमें समता और असमता का द्वन्द्व उमपन्न िोता ि। परन्तु ज्यों िी आममा प्रकृनत के कम ि के बिमवों, व्यजकतमवों, ववभेदों और ववषमताओंका संज्ञान लेकर उन पर काय िकरने लगती ि मयों िी अपनेमुकत स्वरूप के इन अन्य लक्षणों को वि अपनेइस प्रकट लक्षण सममव के द्वारा कायाजन्वित करती ि।... इसीशलए गीता में कमयिोग के जो तत्त्व बतलाये गये ि उनमें सममव को इतना अधधक मित्त्व हदया गया ि, वि जगत् ्के साथ मुकत आममा के मुकत समबन्ध को जोड़नेवाली ग्रंधथ ि।

सममव िी अभीप्सु ुका लक्षण और कसौटी ि। जिााँ किीं जीव में असमता ि विााँप्रकृनत के गुणों की असमान िोगी गोचर िोती ि, विााँगोचर िोतीं कामना का वेग, व्यजकतगत इच्छा, संवेदना या कम िकी िोगी, िष ि और शोक की किया या कफर वि उद्ववग्न या उद्वेगजनक आनन्द की किया जो सच्चा आध्याजममक आनन्द निीं िोता अवपतु एक प्रकार की मानशसक तृजप्त िोती ि जो अपनिम में अननवाय िरूप से मानशसक अतृजप्त रूपी

प्रनतरूप या प्रनतकिया भी साथ लगाए रखती ि ै। जिा ाँकिंजीव के भाव को असमानता ि ै विााँ-विााँज्ञान से ववचलन िोता ि ै, सवाशिलंगंनकारी और सवसिमन्वयकारी ब्रह्म की एकता में और चराचर जगत् के एकमव में दृढ़-प्रनतष्ठ बने रिनेका अभाव िोता ि ै। अपनेसममव के द्वारा अपनेकम िके मध्य में भी कमयिोगी यि जानता ि ै कक वि मुकत ि ै।

परन्तु समता आना आसान निीं ि ै। श्रीअरववन्द यिा ाँशभन्न-शभन्त्र प्रकार की समता की बात करेंगे परन्तु गीता जजस समता की बात करती ि ै, वि एक पूण िजस्थनत ि ै जो कक व्यजकत की आममा की जस्थनत िी बदल देती ि ै। यि समता आंतररक िोती ि ै। समता का अथ ियि निीं ि ै कक व्यजकत पमथर के समान िो जाए और उसके साथ कैसा भी व्यविार ककया जाए, वि ककसी भी बात पर कोई प्रनतकिया न करे। यि समता निीं, यि तो ज़िता ी। ब्रह्म के साथ एकमव स्थावपत िोने पर जो समता आती ि ै विी सच्ची समता ि ै, अन्यथा भगवान् अजुनि को यि कैसे कि सकतेि कक 'समता रख और अपने शत्रुओं को मार िाल।' सामान्यतः समता का जो मनोवैज्ञाननक अथ िलगाया जाता ि ै उसमें तो अजुनि का युद्ध करनेका और अपने शत्रुओंको मार िालने का कोई अथ िी निीं ननकलता, कयोंकक उस समता की धारणा में तो उसे युधधजष्ठर और दुयोधन को समान दृजष्ट से िी देखना चाहिये, पर ऐसा करना मूढ़ता िी िोती। समता एक बिुत गिरी जस्थनत ि ै और इसे समझाने के शलए श्रीअरववन्द यिााँ इसका ववस्तृत वणनि करेंगे। समता से िी व्यजकत की परीक्षा िोती ि ै। यहद व्यजकत संसार को मयाग कर जंगल में चला जाए और ककसी से कोई मतलब निीं रखे तब शांत, ननशलप्ति और उदासीन बने रिनेमें ववशेष कोई समस्या िी निींबचती। परंतु समता की परीक्षा तो तब िोती ि ै जब पररजस्थनतयााँ ववषम या ववपरीत िों। तब यहद व्यजकत उद्ववग्न िोकर अपना संतुलन खो बैठे तो इसका अथ िै कक समता अभी तक स्थावपत निीं िुई ि ै।

अपनेस्वरूप और अपनेसमावेशन में उच्च और सावभिौम जजस सममव का ननदेश ककया गया उसका आध्याजममक स्वभाव िी इस ववषय में गीता के उपदेश को ववशशष्टता प्रदान करता ि ै। अन्यथा सममव का मात्र इस रूप में उपदेश कक यि अपनेआप में मन, भावनाओं और स्वभाव की एक अमयंत वांछनीय अवस्था ि ै जजसमें पिुाँचकर िम मानव-दुबलिता के ऊपर उठ जाते िैं, ककसी भी प्रकार अकेली गीता की िी कोई ववशशष्टता निीं ि ै। सममव को दाशननिक आदश िऔर साधु-मिाममाओं के स्वभाव के लक्षण के रूप में सदा िी सरािा गया ि ै। ननःसंदे गीता इस दाशननिक आदश िको लेती अवश्य ि ै परंतुउसे बिुत दूरू ऐसे उच्च प्रदेशों में ले जाती ि ै जिााँिम अपने-आपको अधधक ववशाल और ववशुद्ध वातावरण में श्वास लेता पाते िैं। आममा की वैरागी अथवा दाशननिक जस्थनत तो भावावेगों के भाँवर और कामनाओंकी िलचलों से ननकलकर स्वयं भगवान् की (न कक देवताओं की) उनकी परम् आमम-प्रभुमवपूण िशाजन्त और आनन्द की अवस्था तक आरोिण में पिली या दूसूरी सीढ़ी ि ै। तापसी (स्टोइक) समता आचरण को अपनी धुरी या केंर-त्रबंदु बनाकर अपने आप को कठोर सहिष्णुता के द्वारा आमम-प्रभुमव पर प्रनतजष्ठत करती ि ै; इससे अधधक सुखकर और शान्त प्रकार की दाशननिक समता ज्ञान के द्वारा, अनासजकत के द्वारा और िमारे प्राकृत स्वभावसुलभ ववक्षोभों से ऊपर उठी िुई उच्च बौद्धधक उदासीनता के द्वारा आमम-प्रभुमव प्राप्त करने को 9 अधधक वरीयता प्रदान करती ि ै, इसी को गीता ने किा ि ै **'उदासीनर्द्** आसीनः।' इसके अनतररकत एक धाशमकि या ईसाई प्रकार की समता भी ि ै जजसका स्वरूप ि ै भगवहदच्छा के

सामने सदा नत ोकर, घुटने टेककर झुके रिना या साष्टांग प्रखणपात के द्वारा भगवान् की इच्छा को शसर माथे चढ़ाना। हदव्य शाजन्त की ओर जानेके ये तीन साधन तथा सोपान ैं - वीरोधचत सिनशीलता, वववेकपूण िया साधु समान उदासीनता और धमनिनष्ठ समपणि, अथात् ्नतनतक्षा, उदासीनता, नमस् ्अथवा ननत। गीता इन सभी को अपनी व्यापक समन्वयाममक रीनत से समाववष्ट कर लेती ै और अपनी ऊध्व िआमम-गनत में उन्ें घुला-शमला लेती ै, परंतु वि इनमें से प्रमयेक को एक गिनतर मूल, एक व्यापकतर दृजष्टकोण, एक अधधक सावभौशमक और सवातीत अथ िप्रदान करती ै। कयोंकक चाररत्रत्रक लक्षणों से परे, बुद्धध की दुष्कर जस्थनत से परे और भावावेगों के तनाव या दबाव से परे यि प्रमयेक को आममा के मूल्य और उसकी आध्याजममक सत्ता की शजकत प्रदान करती ै।

तीन प्रकार की समता बताई गई ैं- तामशसक, राजशसक और साजत्त्वक। मनुष्यों में मानशसक चेतना के कारण ी समता-असमता का ववषय उठता ै अन्यथा पशुओं में समता-असमता का कोई ववषय ी निीं ोता कयोंकक वे तो प्रकृनत के आधीन ैं और अपनी आवश्यकता के अनुसार किया करते रिते ैं। उनमें समता जैसी कोई मनोवैज्ञाननक पररकल्पना ोती ी निीं। मनुष्य अपनी बुद्धध के सिारे समता की जस्थनत प्राप्त करने का प्रयास कर सकतै, जजसके तीन सोपान ै-पिले में तो शरीर-संबंधधत व्याधधयााँ स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य, सददी-गमी, पीड़ा-आराम आहद - मनुष्य को अजस्थर कर देती ैं। ग्रीस में स्टोइक दाशनिनक थे जजनका किना था कक िमें ऐसा कठोर ो जाना चाहिए कक ककसी भी प्रकार की यातना, संकट, सदी-गमी कुछ भी ों परन्तु िम उनसे प्रभाववत न ों। िमारे शास्त्रों में भी ऐसे तपजस्वयों का वणनि ै जो गमी के अन्दर सूरज की तपती धूप में बैठ जाते थे और सहदियों में सारे कपड़े ननकाल कर ठंडे पानी में बैठ जाते थे। इस तरीके से वे शरीर को ऐसा तैयार कर लेते थे कक वि सदी-गमी, दु:ख-ददि आहद से ववचशलत न ो सके। इस पद्धनत से शरीर में दृढ़ता लाकर उस पर ववजय प्राप्त कर समता लानेका प्रयास ककया जाता ै और बिुत-सी असमानताएाँ जजनसे शरीर ववचशलत ोता ै उनको ननयंत्रत्रत ककया जाता ै। जब व्यजकत शरीर पर ननयंत्रण करता ै तो वि अपनेप्राण को भी- जोकक कुछ िद तक उसके दु:ख-ददि आहद से प्रभाववत ोता ै - कुछ िद तक वश में कर सकता ै। इस प्रकार समता की ओर चलने का यि एक तरीका ै। इसमें व्यजकत के अन्दर दु:ख-ददि, आराम-तकलीफ आहद को सिन करनेकी क्षमता आ जाती ैऔर वि ववचशलत निीं ंोता। इस जस्थनत को नतनतक्षा किते ैं, जजसमें भौनतक प्राण और शरीर में समता आ जाती ै। दूसूरी जस्थनत ै, भावाममक समता की। उदिारण के शलये, यों तो दुननया में ककतने ी व्यजकतयों की मृमयु ोती रिती ै, और उससे िमें कोई फकि निीं पड़ता परन्तु जैसे ी िमारे ककसी वप्रय शमत्र या वप्रय व्यजकत की मृमयु का समाचार शमलता ै तो िम ववचशलत ो उठते ैं। कई बार ऐसी चीजें ोती ैं जो िमारी भावनाओं को गिरी चोट पिुाँचाती ैं। िमारा यहद ककसी के प्रनत बिुत भाव ै और उसके साथ कुछ बुरा घहटत ो जाए या उसके बारे में कोई कुछ भला-बुरा कि दे तो िम तुरन्त ववचशलत ो उठते ैं। और मनुष्य के शलए इस प्रकार ववचशलत ो उठना त्रबल्कुल स्वाभाववक ी ै। ये सब भावनाममक कियाएाँ हृदय के द्वारा ोती ैं। ऐसे में यहद िमारे अंदर यि भाव ो कक श्रीमााँववद्यमान ैं और वे िमसे जजतना प्रेम करती ैं उतना दूसूरा कोई कर ी निींसकता। यहद अन्य कोई दूसूरा व्यजकत िमसे प्रेम करता ै तो उसके माध्यम से भी वे ी िमसे प्रेम करती ैं। यहद िमारा ककसी के प्रनत मोि भी ै, तो उसके पीछे भी श्रीमााँ ी उसके माध्यम से िमसे प्रेम कराती ैं। और वे इतनी सवसिमथ िऔर दयालु ैं कक वे जो कुछ भी करती ैं, वि सब िमारे भले के शलए ी करती ैं। अतः यहद श्रीमााँ के प्रनत ऐसी गिरी

भावना िो तो उस भाव के प्रभाव से और उनसे प्रेम के कारण िमारे अन्दर समता अपने-आप िी आ जाएगी। और एक बार यि भाव आ जाने पर व्यजकत ककसी भी चीज से ववचशलत निीं िोता। इसीशलये श्रीअरववन्द आश्रम में श्रीमाताजी सभी के साथ उसकी आवश्यकतानुसार व्यविार करती थीं, उन्िें शभन्न-शभन्न जजममेदाररयाँ हदया करती थीं, शभन्न-शभन्न साधन-संसाधन प्रदान करती थीं। परंतु प्रमयेक साधक गिरे रूप से संतुष्ट था और यि भाव रखता था कक श्रीमाताजी उससे ववशेषे रूप से प्रेम करती िैं और उसकी आममा के शलए जो सवोर्त्म िै विी व्यविार करती िैं।

इस प्रकार यि समपणि का भाव, अपनेइष्ट के प्रनत प्रेम का भाव भावनाममक समता ले आता िै। जब व्यजकत यि ववश्वास करता िै कक भले िी उसे समझ में न आ रिा िो और भले िी वि किया उसे बुद्धध से अनुकूल न लग रिी िो तो भी उसके गुरु ने, इष्ट ने जो भी ककया िै वि तो अच्छे-से-अच्छा िी िै और उसके भले के शलये िी िै। जब यि ववश्वास दृढ़ िो जाता िै तब कैसी भी वप्रय-अवप्रय घटना कयों न िो, व्यजकत ववचशलत निीं िोता और उसमें धीरे-धीरे समता आती जाती िै।

इस प्रकार पिली अवस्था में व्यजकत नतनतक्षा के द्वारा अपने भौनतक भागों में समता लाता िै। न तो वि दुःख-ददि के स्पशों से ववचशलत िोता और न िी सुखद स्पशों से प्रसन्न िो जाता िै। वि शांत भाव से दोनों को समान िी समझता िै। और दूसूरी अवस्था में व्यजकत उदासीनता के द्वारा भौनतक और मानशसक द्वंद्वों से ऊपर उठ जाता िै। वि सभी द्वंद्वमय स्पशों को समभाव से सिन करता िै। उसके बाद िै 'ननत' अथात् िभगवहदच्छा के प्रनत नत िोने के द्वारा, समपणि के द्वारा अपनेभावनाममक भागों में समता ले आना। इसमें व्यजकत सभी स्पशों को भगवान् की ओर से आते स्पशों के रूप में लेता िै। दाशननिक भाव की, बुद्धध की समता में व्यजकत चेतना के एक ऐसे स्तर पर रिता िै जिाँउसे संसार की ननस्सारता हदखाई देती िै। उसे सभी घटनाएँ वैसी िी लगती िैं मानो ककसी ववशाल भूखंड पर कुछ छोटी नगण्य चीजें पड़ी िों जजनके बने रिने या नष्ट िो जानेसे व्यजकत को कोई फकि निीं पड़ता। इस प्रकार व्यजकत इस भाव में ननवास करता िै कक यि सारा संसार तो ममृयुके आधीन िै, क्षणभंगुर िै, पर िम तो भगवान् के अंश िैं और अपनेसच्चे स्वरूप में शाश्वतता में ननवास करते िैं। इसशलए इस क्षखणक संसार में ऐसी कया चीज िो सकती िै या कफर ऐसी कौनसी घटना िो सकती िै जो िमें ववचशलत कर सके। तो यि िै बुद्धध के सिारे समता लाना। इस प्रकार श्रीअरववन्द तामशसक, राजशसक, साजत्त्वक आहद शभन्न-शभन्न प्रकार की समताओं की चचाि कर रिे िैं। गीता इन सभी को स्वीकार तो करती िै कयोंकक ये पथ पर आगे बढ़नेमें सिायक िैं, परन्तुजजस समता की वि बात करती िै वि तो सुदूर एक ववरली जस्थनत में ले जाती िै। वि समता िै परम् प्रभु के साथ ऐकय के द्वारा आनेवाली समता। परम् प्रभु सब कुछ से ऊपर िैं, उन्िें सममव बनाए रखनेके शलए ककन्िीं साधनाओं की, ककन्िीं मानशसक सुझावों की या अन्य ककन्िीं सिारों की आवश्यकता निीं िोती। उनको चेतना अखण्ड िोती िै और उस चेतना में यहद वे सारे संसार के साथ कठोर से कठोर व्यविार भी करें या सारे संसार को नष्ट भी कर दें तो भो अपनी समता से निीं डिगते। श्रीअरववन्द किते िैं कक गीता इन सारी समताओं का वणनि करती िै और अंततः परम् प्रभु की ओर ले जाती िै। इस तरीके की समता केवल भगवान् के साथ ऐकय से िी प्राप्त को जा सकती िै। अन्यथा मानशसक, राजशसक या तामशसक प्रकार को समता मानशसक दृजष्टकोण, समपणि

भाव, सिनशीलता आहद के सिारे स्थावपत करने ेका प्रयास ककया जाता िै जजनमें एक सीमा से अधधक दबाव सिने की क्षमता निीं िोती जजससे उनके भंग िोने की आशंका रिती िै। प्रयमन कर के भावाममक, मानशसक और शरीर की सिनशीलता आहद से जो समता लाई जाती िै वि अधधक समय तक हटक निींसकती। परन्तु गीता की समता तो सिज और पूण िजस्थनत िै।

गीता इसी समता की ओर इंधगत करती िै, जो कक अन्तराममा का सारा भाव िी पररवनतति कर देती िै। व्यजकत का सारा कायि–व्यविार िी बदल जाता िै और वि ककसी भी प्रकार ववचशलत निींिोता। और वि जजसके साथ जैसा व्यविार करना िोता िै वैसा यथायोग्य व्यविार करता िै। समता के संबंध में ये बिुी सूक्ष्म चीजें िैं। बािरी रूप से इनमें ववभेद निीं ककया जा सकता। इनकी कसौटी तो आंतररक िै।

सामान्य मानव जीव अपने प्राकृत-जीवन के सामान्य अथवा अभ्यस्त बिुिों में एक तरि का सुख लेता िै; और चूँकक वि उनमें सुख लेता िै और उस सुख को पाकर वि ननमन प्रकृनत की कष्टमय िीिा को एक स्वीकृनत देता िै इसशलए यि िीिा अनवरत चलती रिती िै; कयोंकक प्रकृनत अपनेप्रेमी और भोकता, **पुरुष**, के सुख के हिताथ िऔर उसके अनुमोदन से िी (िीिा करती िै) उसके अनतररकत कुछ निींकरती। िम इस समय को निीं ं पिचान पाते, प्रनतकूल ववघ्न-अशांनत के प्रमयक्ष आघात के चलते, शोक, पीिा, कलेश, दुभाग्यि, ववफलता, पराजय, दोष या कलंक, अपमान के संताप के आघात से मन शसमकर पीछे िटता िै, विीं वि उमकटता से इसके ववपरीत और सुखद उत्तेजनाओं- िष,ि सुख, िर प्रकार की तुजष्टयों, समृद्धध, सफलता, जय, गौरव, प्रशंसा - को गले लगाने के शलए उछल पिता िै, परंतु इससे इस समय में कोई अन्तर निीं ंपिता कक जीव जीवन में सुख लेता िै और यि सुख मन के द्वन्द्वों के पीछे सदा बना रिता िै। योद्धा को अपने घावों से शारीररक सुख निीं शमलता और न अपनी पराजयों में मानशसक संतोष िी पाता िै; परंतु उसे उस रण के देव में पूण िआनन्द शमलता िै जो उसके शलये जिा ाँपराजय और घाव लाता िै विीं उसके साथि–ी-साथ दूसरी ओर ववजय का िष िभी लाता िै, वि पराजय और घावों की आशंका को और ववजयि–ष िकी आशा को युद्ध के घुले-शमले ताने-बाने के अंग के तौर पर स्वीकार करता िै, और उसका यि आनन्द उसे इसमें बनाए रखता िै। युद्ध के घाव की स्मृनत भी उसे िष िऔर गौरव देती िै, पूरा िषि िऔर गौरव तो तब िोता िै जब घाव की पीिा का अन्त िो जाता िै। परन्तु प्रायः पीिा के रिते िुए भी ये उपजस्थत रिते िैं और पीिा वास्तव में इनका पोषण करती िै। पराजय उसके शलए अधधक बलवान् ्शत्रु ुके अदमय प्रनतकार करनेका िष िऔर गव िरखती िै, अथवा यहद वि िीन कोहट का योद्धा िो तो उसे द्वेष और प्रनतशोध की भावनाओं से भी एक प्रकार का गदिा(darker) और िूर सुख शमलता िै। इसी प्रकार आममा भी िमारे जीवन की प्राकृत िीिा में सुख लेती रिती िै।

गीता तथा िमारे अन्य शास्त्र आहद यिी किते िैं कक प्रकृनत ऐसा कुछ निींकरती जजसमें िमारी सच्ची सत्ता, िमारी अन्तराममा आनंद न लेती िो। िमें ऐसा लगता िै कक प्रकृनत अपनी मनचािी करती िै, और केवल दो घिी का आनन्द देती िै उसके बाद लंबी तकलीफ देती िै अतः यि जीवन दुःखमय और कष्टमय िै। परन्तु ऐसा निीं ंिै, कयोंकक इन दुःखों और कष्टों में भी िमारा कोई भाग आनन्द ले रिा िोता िै इसीशलए ये चीजें िमारे साथ

घहटत िोती िैं। चािे कोई ककतनी भी तकलीफ में कयों न िो परन्तुइस गूढ़ आनंद के कारण िी कोई भी अपनी मृमृयु निीं चािता। उसे इस सब प्रपंच में एक गूढ़ आनंद अनुभव िोता िै।

यिा ॉँश्रीअरववन्द यि समझा रिे िैं कक अन्तराममा कोई इतनी नछछली और तुच्छ निीं िै कक वि जीवन की छोटी-छोटी प्रगनत, िष,ि सुख आहद में आनन्द लेती िो। ये सब तो उसके शलए खेल-मात्र िैं। जैसे जो खखलाड़ी केवल जीतने में िी आनन्द लेता िो और िार जानेपर ववक्षुब्ध िोकर मरनेकी तैयारी करता िो, वि तो कभी अच्छा खखलाड़ी िो िी निीं ंसकता। िार-जीत तो केवल ऊपरी बातें िैं, गिराई में तो उसको उसमें आनंद आता िै। इसी प्रकार िमारी अंतराममा सभी कुछ में आनंद अनुभव करती िै। जय-पराजय, सुख-दुःख, अच्छा-बुरा आहद तो केवल सतिी भौनतक, प्राखणक और मनोवैज्ञाननक प्रनतकियाएँ मात्र िैं जजन्िें िम बिुत िद तक अपनेदृजष्टकोण के सिारे बदल सकतेिैं। यहद िमारे ककसी वप्रय व्यजकत का देिांत िो जाए तो सामान्य प्रनतकिया दुःख और पीड़ा की िोती िै। पर इसमें यहद व्यजकत यि मनोभाव अपनाए कक भले िी उसे अपनेवप्रय के मर जानेका दुःख िै परंतु स्वयंवि व्यजकत तो जो यंत्रणा वि शरीर में पा रिा था उससे अब छूट चुका िै और एक अधधक अच्छी जस्थनत में िै। जब िम इस दृजष्टकोण से देखतेिैं तो िमारी सारी प्रनतकिया िी बदल जाती िै और जो चीज िमें पिले अमयधधक पीड़ा दे रिी थी विी अब उतनी दुःखद निीं ंप्रतीत िोती या कफर कुछ िालातों में तो सुखद लगनेलगती िै। अतः यि सब केवल मनोवैज्ञाननक दृजष्टकोण पर ननभिर करता िै। परंतु अंतराममा इन सब द्वंद्वों से अधधक गिरी जस्थनत में िै और इसीशलये वि दोनों िी पररजस्थनतयों में समान रूप से सुख लेती िै और इसी कारण प्रकृनत का यि खेल चलता रिता िै। यहद अन्तराममा को यि पसंद न िो तो प्रकृनत का यि खेल क्षण भर भी निीं ंचल सकता। वास्तव में तो प्रकृनत अन्तराममा की प्रसन्नता के ननशमत्त् िी सारी व्यवस्था करती िै। इसशलये जब तक अंतराममा को इस सारे प्रपंच में एक गूढ़ आनन्द आता रिेगा तब तक िमारी सभी बािरी प्रनतकियाओंके बावजूद भी यि सब चलता रिेगा।

इसशलये प्रकृनत की िीलाओं से ऊपर उठने के शलए गीता किती िै कक व्यजकत को पिले साक्षी भाव अपनाना िोगा। और जब व्यजकत साक्षी भाव से चीजों को देखता िै तब वि अनुभव करता िै कक उसकी अनुमनत से िी यि सब प्रपंच चल रिा िै। और इसके बाद उसे यि भी अनुभव िो जाता िै कक वि केवल अनुमंता िी निीं बजल्क इस प्रपंच का भर्त्ाि भी िै। और भर्त्ाि भाव के बाद यि ज्ञात िो जाता िै कक वि केवल भतिा िी निीं ंअवपतु इसका भोग करनेवाला भोकता िै। और जब व्यजकत धीर-धीरे ये भाव अपना कर प्रकृनत के रिस्य को जान जाता िै तो अंत में वि उसके ईश्वरमव के भाव में भी जा सकता िै। उसे यि ज्ञात िो जाता िै कक प्रकृनत और कुछ निीं केवल विी करती िै जो स्वयंव्यजकत को अच्छा लगता िै। इसशलए गीता की पद्धनत के अनुसार यहद व्यजकत को प्रकृनत की अधीनता की अपनी वतिमान जस्थनत से ऊपर उठना िो तो उसे साक्षी, अनुमता, भर्त्ाि, भोकता, ज्ञाता और ईश्वर आहद भावों से िमशः बढ़ना िोता िै।

जजस हदन व्यजकत की अंतराममा यांत्रत्रक रूप से प्रकृनत की िीला के वशीभूत िो सुख-दुःख, राग-द्वेष, प्रसन्नता-अप्रसन्नता, ननराशा-उर्त्ेजना आहद द्वन्द्वों में चलते रिने से ऊब जाती िै तब वि साक्षी के भाव से

आरंभ कर धीरे-धीरे प्रकृनत के ईश्वर भाव तक जा सकती िै। परंतु जब तक वि इसमें रस लेती रिती िै तब तक ककतने भी बिारी प्रयास ककये जाएँ तब भी इन द्वंद्वों से मुजकत निीं शमल सकती, कयोंकक इन सबकी कुंजी तो भीतर िै।

मन जीवन के प्रनतकूल आघातों से कष्ट और अरुधच के द्वारा पीछे िटता िै; यि 'जुगुप्सा' प्रकृनत द्वारा आमम-रक्षा के शसद्धांत को लागू ूकरने िेतु ुप्रयुकत की गई युजकत िै, जजससे कक िमारे अनतसंवेदनशील या कमजोर स्नायववक तथा शारीररक अंग अनावश्यक रूप से सिसा अपने आमम-संिार का आशलंगन करनेके शलए न दौड़ पड़ें। जीवन के अनुकूल स्पशों में मन िषष िो लेता िै; यि प्रकृनत का राजशसक सुख का प्रलोभन िै, ताकक जीव
के अंदर ननहित शजकत ज़िता और अकमण्यिता की तामसी प्रववृत्यों को जीत सके और वि कम,ि कामना, संघष ि और सफलता की ओर पूरी तरि से प्रवृत्त िो जाए और मन की इन चीजों के साथ आसजकत के द्वारा प्रकृनत के प्रयोजन शसद्ध िो सकें। िमारी गूढ़ आममा इस द्वन्द्व और संघष िमें, यिा ँतक कक प्रनतकूल पररजस्थनत या आपकाल और संत्रास में भी एक प्रकार का सुख अनुभव करती िै, ऐसा सुख जो कक अतीत ववपद् को याद करने और पीछे कफरकर देखने में तो उसे पूरा शमलता िी िै, पर जजस समय ववपद्काल शसर पर िो उस समय भी प्रच्छन्न रूप से पीछे बना रिता िै और यिाँतक कक प्रायः सति पर आकर संतप्त मन को उसके भावावेग में समथनि तक करता िै। परन्तु जो चीज आममा को सचमुच आकवषति करती िै वि िै इस संसार का नानाववध द्वन्द्वों से भरा िुआ वि पदाथ िजजसे िम जीवन किते िैं, जो संघष िऔर कामना के ववक्षोभ से, आकषणि और ववकषणि से, लाभ और िानन से, िर प्रकार के अपने वैववध्य से भरा िै। िमारे राजशसक कामनामय पुरुष के शलए
एक-समान सुख, संघषरिहित सफलता और ककसी छाया के त्रबना िष िअवश्य िो कुछ काल बाद थकानेवाला, नीरस, और उबाऊ िो जाता िै, इसके प्रकाश के सुख को पूरा मित्त्व प्रदान करने े के शलए इसे अंधकार को पृष्ठभूशम चाहिए: कयोंकक जो सुख वि खोजता और भोगता िै वि ठीक उसी स्वभाव का िै, अपनेमूलस्वरूप में भी यि सापेक्ष अथवा अपूण ििोता िै तथा अपनेववपरीत तत्त्व के बोध और अनुभव पर ननभरि िै। मन जो जीवन में सुख लेता िै इसका रिस्य िै िमारी आममा की द्वन्द्वों में रसानुभूनत।

मेरे सामने प्रकृनत की जो मुख्य समस्या िै वि यि िै कक िमारी प्रकृनत तामशसक और ज़ि िै। इसशलये जब पिले-पिल जीवन का प्रादुभावि िुआ तब उसके संरक्षण के शलये प्रकृनत ने अनेक संवेदन काम में शलये। िमारे जीवन में कामनाएँ और भय न िोतेतो िम कभी भी कोई किया िी निीं करते। मनुष्य कामनाओंके कारण या कफर भय के कारण किया करते िैं। ये प्रलोभन प्रकृनत ने िमारे अन्दर िाल हदये। यहद ये भौनतक संवेदन न िोतेतो जीवन की रक्षा िीनिोपाती। यहद शरीर में पिा़ का संवेदन न िोता तो शरीर की रक्षा मुजश्कल िो जाती। यहद आग में िाथ देनेपर जलनेका संवेदन न िोता और ददि न िोता तो व्यजकत को पूरा जलनेपर भी पता न चलता। उसी प्रकार भूख और जीभ का स्वाद न िोता तो कोई भोजन िी न करता। इसशलये यहद प्रकृनत लोभ, लालच आहद की किया संलग्न न करती तो जीव नष्ट िी िो जाता। और आममा इस धरती पर जजस अशभयान के शलए आई िै वि पूरा निींिो पाता। इसशलये प्रकृनत ने ऐसी व्यवस्था की िै कक जो चीजें आममा के शलए प्रनतकूल िैं और जजन चीजों से जीव की रक्षा िोनी चाहिए वे उसे अवप्रय लगेंगी, खराब लगेंगी और जो अनुकूल िोंगी वे अच्छी लगने

लगेंगी। जब िमारी मानशसकता ववकशसत िोती ि,ै िमारा मनोवैज्ञाननक ढाचाँा ववकशसत िोता ि,ै तब सचेतन रूप से समीकरण में िस्तक्षेप कर िम उसमें पररवतनि ला सकते िैं। जैसे कक जब व्यजकत अधधक ववकशसत निीं िोता तब वि जजस देश या जानत में पैदा िोता िै उसी के भोजन में, उसी के तौर तरीकों में रस लेता िै और उन्िें िी सबसे अच्छा मानता ि।ै परंतु ुज्यों-ज्यों उसकी चेतना में ववस्तृतृता आती ि,ै मयों-मयों वि केवल अपनिी तौर तरीकों पर आग्रि निीं रखता अवपतुसभी तौर-तरीकों के प्रनत सिानुभूनत का भाव रखता ि।ै और धीरे-धीरे इन सबसे ऊपर उठ कर वि सभी में समान रूप से आनंद ले सकता ि।ै इस तरीके की िमारी मनोवैज्ञाननक संरचना बनी िुई ि।ै सारे जीवन का यि खेल इसशलए चलता िै कयोंकक इसमें िमारी आममा को आनन्द आता ि।ै और सिी तौर पर देखा जाए तो इस खेल में िमारी प्राखणक सत्ता को आनन्द आता ि।ै उसे कभी भी कोई एकरस चीज पसंद निीं आती। न उसे एकरस सुख पसंद आता िै और न उसे एकरस दुुःख। उसे तो सदा िी बदलते िुए रंग पसंद आते िैं। एक-समान चीज से वि बिुत िी जल्दी ऊब जाती ि।ै यिी मुख्यतया लड़ाई-झगड़ों का कारण ि।ै कयोंकक उसे लड़ाई-झगड़े ंमें भी उतना िी सुख शमलता िै जजतना कक उसके बाद िोनेवाले मेल-जोल से। यहद प्राण इन चीजों में रस लेना बंद कर दे तो जीवन की सारी वतमिान दशा िी बदल जाएगी। वतमिान में तो िमें इन सिी चीजों में िी आनन्द आता ि।ै परंतु जब िमें इन सिी चीजों में आनन्द आना बंद िो जाता िै तब यि सारा खेल, ये सारी चीजें यों लुप्त िो जाती िैं मानो पिले कभी वे थीं िी निीं। कयोंकक अब िमें ककसी दूसूरी चीज में आनंद आने लगता ि।ै और जब िमें परमाममा के आनन्द का स्वाद आ जाता िै तब अन्य ककसी चीज में अधधक रुधच निींरि जाती। परन्तु जब तक िमें परमाममा का आनन्द निीं प्राप्त िोता तब तक यि आशा निीं की जा सकती कक िम ननमन सुख को छोड़ सकें। जब तक व्यजकत को समपणि में आनन्द निीं आता, तब तक तो उसकी अपनी इच्छाएँ िी बलवती िोती िैं और वि उन्िींके अनुसार काम करता रिता ि।ै परंतु जब उसे गुरु के प्रनत या कफर अपनेइष्ट के प्रनत समपणि का आनंद आता िै तभी वि अपनी ननजी इच्छा को उसके आदेश के अधीन रख सकता ि।ै यहद ऐसा करने ंमें उसे ककसी गिरे आनंद की अनुभूनत न िोती और केवल पीड़ा िी िोती तो वि अधधक समय तक उसमें लगा निींरि सकता था। व्यजकत गुरु के प्रनत या कफर अपनेइष्ट के प्रनत तभी समवपति रि सकता िै जब िजारों कष्टों के बावजूद भी उसकी आममा को उसमें गिरा आनन्द आता िो। तब उसे गुरु के शलये या कफर अपनेप्रेमी के शलए उठाए कष्टों में भी गिरे आनंद की अनुभूनत िोती ि।ै केवल ककसी शसद्धांत के सिारे ऐसा निींककया जा सकता। समस्त साधना की सच्ची उपलजब्ध यिी िै कक बािरी चीजों में सुख बटोरने की बजाय आममा को भगवान् ् में आनन्द आनेलग जाए। और िमें जजस चीज में आनंद आता िै प्रकृनत उसी के अनुरूप व्यवस्था करती ि।ै केवल परम् ्आनन्द िी िै जो अपने-आप को पूण िरूप से दे सकता ि।ै केवल आनन्द िी एक ऐसी चीज िै जजसके द्वारा व्यजकत अपने-आप को अपनेप्रेमी के शलए, गुरु के शलए, परमाममा के शलए पूण िरूप से शमटा सकता ि।ै यिी जीवन का रिस्य ि।ै

यिी साधना का अथ िि-ै अपनी चेतना को संवधधति कर के ननमन चीजों में रस लेने की बजाय अधधकाधधक गिरी चीजों में रस लेना और कफर केवल परमाममा में िी रस लेना। वेदों में भी ववषयों के रस को सोमरस निींबताया गया ि।ै जब व्यजकत को अधधकाधधक पररष्कृत रूप से गिरी चीजों में रस की अनुभूनत िोती ि ैतब उसे सोम किते िैं और धीरे-धीरे वि बढ़नेलगता ि।ै और जब सोम बढ़ता िै तब उसके प्रभाव से अन्य सभी

देवता पुष्ट िोतीं और जब वे ेपुष्ट िोतीं तब िमें अधधकाधधक अमरमव की ओर ले जाते िैं। और इस प्रकार यि सारी किया चलती रिती िै।

गीता के श्लोक में तो ये बातें इस रूप में निीं िैं परंतु इस पूरे ववषय को समझनेके शलये ये सब आवश्यक िैंताकक पूरा ववषय और इससे संबंधधत चीजें अधधक अच्छी तरि समझ में आ सकें। वास्तव में तो जो कुछ िो रिा िैं वि मूलभूत रूप से िमारी अंतराममा की, श्रीमाताजी की, जगज्जननी की स्वीकृनत से िी िो रिा िै। परंतु यहद िमारी गिरी से गिरी सत्ता, िमारी अन्तराममा इन ननमन प्रकृनत की चीजों में इसी रूप में रस ले रिी िोती तब तो कफर कभी पररवतिन िो िी निींसकता था। परंतु िमारी सतिी सत्ता से अधधक गिरी सत्ताएँ िोती िैं - जैसे प्राखणक सत्ता, सौन्दयिग्रािी सत्ता, मनःसत्ता आहद - जो अपना-अपना सन्तोष लेती िैं। िालाकाँक इन सब के द्वारा भी अन्तराममा िी आनंद लेती िै, परंतु परोक्ष प्रयास करता िै उससे अधधक संघष िऔर प्रयास िी अपेक्षक्षत िोता िै।

अधधकांश व्यजकत जो कक इस जस्थनत में रितीं उन्िें यहद यि समझाया जाए कक - ये सुख-दुःख तो क्षखणक िैं, धचरस्थायी निीं, और यि ऐसा नशा िै जो चढ़ता-उतरता रिता िै, स्थायी उन्मत्तता तो आध्याजममक सुख में िी िै - तो उन्िें इस बात में कोई रस निीं ंआता कयोंकक वे तो ववषय-भोग के कीड़े िैं और उसी में सुख लेते िैं। अधधकांश व्यजकतयों की प्रकृनत ऐसी िी िोती िै, वे ेआध्याजममकता की बातें तो बिुत करते िैं परन्तु वास्तव में उन्िें प्रकृनत की इन्िीं ंिीिीओंमें रस आता िै और इन्िें छोड़नेको वेतैयार निीं ंिोते, कफर चािे उनको ककतना भी कष्ट कयों न उठाना पड़े, े वे ेउसी के अन्दर कीड़े ेकी तरि रेंगतेरितें। व्यजकत का ननमन प्राण कभी भी परमाममा की ओर जाने को सिमत निींिोता कयोंकक वि तो प्रकृनत के द्वन्द्वों में िी आनन्द लेता िै। प्राण को परमाममा की ओर जाना बिुत अधधक नीरस लगता िै। जबकक व्यजकत अपनी कामनाओं की तुजष्ट के शलए जीवन भर जजतना घोर प्रयमन करता िै उसकी तुलना में साधना में उसका आधा प्रयमन भी निीं ंिोता और व्यजकत िमेशा के शलए ऊपर उठ जाता िै। परन्तु कफर भी वि यि काम करने को तैयार निीं ंिोता। अधधकांश व्यजकतयों के साथ यिी बात िै। इसशलए जीवन में ववरले िी मनुष्य - जजनकी आममा जन्मों-जन्मों से प्रबल िो चुकी िै - इससे ववरत िोकर अपने जीवन को परमाममा की ओर मोड़ पातें।

इसकी अननच्छुकता का वास्तववक कारण यि िै कक उसे उसके अपनेवातावरण से ऊपर उठनेऔर जीवन की एक अधधक असाधारण और अधधक ववशुद्ध वायु में सासँ लेनेके शलए किा जाता िै, जिाँके आनन्द और शजकत को वि अनुभव निींकर सकता, और जजसकी वास्तववकता तक पर भी उसे मुजश्कल से िी ववश्वास िोता िै, जबकक इस ननमनतर गंदी प्रकृनत के सुख िी उसके शलए एकमात्र सुपररधचत और स्पश िकरनेया भोगने े योग्य िैं। और न िी यि ननमनतर संतुजष्ट या सुखभोग अपने-आप में कोई बुरी और व्यथ िकी चीज िै; अधधक उधचत रूप से किें तो, यि उस तामशसक अज्ञान और जड़ता - जजसके कक उसकी भौनतक सत्ता सबसे अधधक अधीन िोती िै - में से ऊध्वमुिखी ववकास की अवस्था िै; यि मनुष्य के परम् ्आममज्ञान, शजकत और आनन्द की ओर िशमक आरोिण की राजशसक अवस्था िै। परन्तु यहद िम अनन्त काल तक इसी स्तर पर ववश्राम करते रिें, जजस स्तर को गीता ने मध्यमा गनत किा िै, तो िमारा आरोिण अपूण िरि जाता िै, आममा का ववकास अधूरा रि

जाता ि ै। जीव का अपनी शसद्धध तक का माग ि साजत्त्वक सर्त्ा और साजत्त्वक प्रकृनत से ि ोकर उस तक पिुँचता ि ै जो त्रत्रगुणातीत ि ै।

प्राण की अवस्था एक राजशसक अवस्था ि ै। भौनतक सर्त्ा तो ननरी तामशसक ि ोती ि ै जो जरा भी तकलीफ उठाना निीं चािती और केवल अपने ि ी सुख-साधन में लगी रिती ि ै। प्राण में उसकी अपेक्षा अधधक ववशालता िोती ि ै जो दूसूरों के सुख-दु:ख में भी भाग लेता ि ै और कष्ट आहद सिन करने को तैयार रिता ि ै। परंतु यि राजशसक अवस्था मध्यमा गनत ि ै और यहद व्यजकत इसी पर लमबे समय तक चलता रिे तो उसका आगे की ओर आरोिण निीं ि ो सकता। परन्तु प्राण को अपनी ि ी चीजों में इतना सुख शमलता ि ै कक वि इन्िें छोड़नेको तैयार ि ी निीं ि ोता। जब आममा बुद्धध के द्वारा अपना काम करती ि ै तब बुद्धध के दबाव के अन्दर ि ी वि थोड़ा-बिुत आरोिण कर सकता ि ै अन्यथा तो कदम-कदम पर उन्िीं ढरों में लौट जानेके शलए लालानयत रिता ि ै। जैसे कक यहद कोई अनेकों अनुभव प्राप्त कर के एक मिाममा तो बन गया ि ो तो भी प्राण तो उसमें भी अपनी संतुजष्ट लेने का प्रयास करेगा। उसके अंदर प्राण इस प्रकार के भाव उठा देगा कक उसके समान तो कोई दूसूरा मिाममा ि ी निीं ि ै जजसने उतना भारी मयाग ककया ि ो या कफर तप ककया ि ो। इस प्रकार प्राण अंत तक भी अपना प्रभाव ि ाले त्रबना निीं छोड़ता। यि काम तो केवल कोई मिान् आममा ि ी कर पाती ि ै। भले ि ी व्यजकत षड् ररपुओंको भी कुछ ि द तक जीत ले, परंतु जब तक अिं शेषे ि ै तब तक यि भाव जा ि ी निींसकता कक व्यजकत कुछ ववशेषे ि ै। और जब तक यि भाव रिता ि ै तब तक तो सभी आसुररक वृवृत्यों के शलए रास्ता खुला ि ोता ि ै। इसशलए जब तक पूण ि रूपांतर साधधत निीं ि ो जाता तब तक इसका प्रभाव कभी भी दूवूषत कर सकता ि ै।
इसशलए इन सब चीजों से उठकर समता की ओर जो भी प्रयमन ि ैं वे सब अच्छे ि ैं परन्तु इनसे त्रत्रगुणातीतता की जस्थनत प्राप्त निीं की जा सकती। गीता जजस समता की बात कर रिी ि ै वि एक त्रबल्कुल शभन्न चीज ि ै। गीता में भगवान् अजुनि को शभन्न-शभन्न प्रकार की समता समझाते ि ैं। श्रीअरववन्द उनका ववस्तृत वणनि करेंगे।

[गीता का] सममव का जो पिला वणनि ि ै वि स्टोइक दाशनिनक के वणनि के जैसा ि ै। 'दु:खों के बीच जजसका मन उद्ववग्न निीं ि ोता, सुखों के बीच जजसे उनकी इच्छा निीं ि ोती, राग, भय, ि ोध से जो मुकत ि ो चुका ि ै विी जस्थतधी मुनन ि ै।' 'जो इस शरीर में काम-ि ोध से उमपन्न ि ोनेवाले वेग को सि सकता ि ै विी योगी ि ै, विी सुखी ि ै।' नतनतक्षा, अथात् सिनेका अचवा बनेरिने का संकल्प तथा शजकत, इसका साधन ि ै। 'शीत और ऊष्ण, सुख और दु:ख देनेवाले जो भौनतक स्पश ि ैं, अननमय ि ैं और आते-जाते रिते ि ैं, इन्िें सिना सीख। कयोंकक जजस व्यजकत को ये व्यधथत निींकरते न ि ी पीड़ा पिुँचाते ि ैं, जो दृढ़-जस्थर और बुद्धधमान् व्यजकत सुख-दु:ख में सम रिता ि ै वि अपने-आप को अमरमव के शलए उपयुकत बना लेता ि ै।' सममवप्राप्त आममा को दु:ख सिना ि ोता ि ै, पर वि दु:ख से घृणा न करे, उसे सुख ग्रिण करना ि ोता ि ै, पर वि सुख से ि वषति न ि ो। शारीररक यंत्रणाओंको भी सिनशीलता के द्वारा जीतना ि ोता ि ै और यि भी तपश्चयामिमक साधना के एक अंग के रूप में। जरा, मृमृयु, दु:ख, यंत्रणा से बचकर भागना निीं अवपतु इन्िें स्वीकार कर के उच्च उदासीन जस्थनत के द्वारा परास्त करना

ीिता िै। प्रकृनत के ननमन-स्तरीय मुखौटों से भयभीत या स्तंशभत िोकर भागना नीं,ं अवपतु ुउसका सामना कर उसे ववजजत करना िी शजकतशाली प्रकृनत, पुरुषषभि, मनुष्यों के बीच ककसी शसंि-समान आममा की सच्ची प्रववृत्् ैं।

प्रमयेक मनुष्य के शलए आवश्यक िै कक उसे ककसी सीमा तक सुख-दु:ख आहद सिन करनेका अभ्यास ीिना चाहिये। यहद व्यजकत जरा से दु:ख से प्रभाववत िोकर रोने लगता िै और सुख में िवषति िो जाता िै तो वि मनुष्य कििाने योग्य िी नीं। यहद व्यजकत को कोई मिान् ्काम करना िै तो सुख-दु:ख में सम रिना तो परम् ् आवश्यक िै। परन्तु लाखों में से कदाधचत् ्कोई एक व्यजकत भी ऐसा शमलना मुजश्कल िै जजसमें कक यि ववशेषे गुण िो पर जजसका अिं इसके कारण न फूलता िो, कयोंकक जब व्यजकत सुख-दु:ख आहद में अववचल रिता िै, परास्त नीं िोता और सब पररजस्थनतयों में समान रिता िै, उसके मन में अिं आए त्रबना नीं ंरि सकता। इसशलए अकेले इस संयम से िी आगे का माग िनीं खुलता, उसके शलए और भी चीजें आवश्यक िैं।

तापसी अथवा आममसंयमी (स्टोइक) ज्ञान वि िै जो धैय िके द्वारा जीव की आमम-प्रभुमव की शजकत से प्राप्त िोता िै, एक ऐसी समता िै जो अपनो प्रकृनत से संघष िकर के प्राप्त की जाती िै, और जजसे उसके स्वाभाववक
ववरीीं पर सतत् ्ननगरानी रखकर और इनके ववरुद्ध सतत् ्ननयंत्रण रखकर बनाये रखा जाता िै: यि एक उमकृष्ट शाजन्त प्रदान करती िै, एक तापशसक सुख प्रदान करती िै, परन्तु यि उस मुकत पुरुष का परम् ्आनन्द नीं ंदेती जो ककसी ननयम के अधीन नीं, अवपतु अपनी हदव्य सत्ा की ववशुद्ध, सिज-स्वाभाववक पूणति ा में जीता िै, जजससे कक वि 'चािे जजस भी तरि कम िकरे तथा जीये, वि भगवान् ्में िी जीता और कम िकरता ैं',

कयोंकक यिाँ पूणति ा केवल प्राप्त िी नींकी जाती, अवपतु स्वाधधकार से सदा अधधकृत भी रिती िै तथा इसे बनाए रखने के शलए और प्रयास िी नीं करना पडता, कयोंकक वि जीव का स्वभाव मात्र बन चुकी िोती िै।
इस जस्थनत में दोष यि िै कक इसे बनाए रखने के शलए व्यजकत को सतत् ्सजग और सतकि रिना िोता िै। सदा िी व्यजकत को उन ऊजिाओंको, उस भाव को ननरंतर बनाए रखना िोता िै जजनके सिारे वि ननमन प्रभावों से ववचशलत न िो सके। यि वि जस्थनत नीं ंिोती जिा ँव्यजकत ननववघ्नि रूप से, स्वच्छंद रूप से, सिज रूप से अपनी ननमन प्रकृनत से ऊपर उठा िोता िै, और इसे बनाए रखने के शलए ककसी प्रकार के प्रयमन की आवश्यकता नीं ीिती। यि वि जस्थनत नींीिती जजसे गीता कििी िै कक 'जो योगी एकमव भाव में जस्थत िोकर समस्त भूतों में मुझसे प्ेरेम करता िै वि योगी चािे जजस प्रकार रिे और कम िकरे मुझमें िी रिता और कम िकरता िै।' गीता जजस जस्थनत का वणनि करती िै उसमें व्यजकत को प्रयमन कर के अपनेसममव को बनाए रखनेकी आवश्यकता नीं ीिती। सममव तो विाँसिज शसद्ध िोता िै। ऐसी जस्थनत में व्यजकत को ककसी भी प्रकार के प्रयमन या ककसी दमन की आवश्यकता नीं ंिोती। कयोंकक ननमन चीजें व्यजकत को ववचशलत कर िी नींसकतीं। यि जस्थनत बिुत िी गिरी िोती िै जो प्राण और शरीर की सिनशीलता पर आधश्रत नीं ंिोती। यि तो व्यजकत की अंतराममा के भाव पर जस्थत िोती िै।

गीता ननमन प्रकृनत के साथ संघष िके अंदर िमारी सिनशीलता को और दृढ़ता अथवा धैय िको प्रारंशभक साधन के रूप में स्वीकार करती िै, परन्तुयहद अपनी व्यजकतगत शजकत के बल पर ककसी प्रकार का प्रभुमव प्राप्त िोता िै, तो भी इस प्रभुमव की मुकतावस्था केवल भगवान् से िमारे ऐकय के द्वारा िो आती िै, ननजी व्यजकतमव के एकमेव हदव्य पुरुष में लय या उनमें ननवास द्वारा, तथा व्यजकतगत इच्छा का भागवत् इच्छा में लोप िो जाने से िी प्राप्त िोती िै। ..... गीता की मुजकत मुकत पुरुष की मुजकत िै, वि ननमन प्रकृनत से ननकलकर परा प्रकृनत में जन्म लेने से प्राप्त सच्ची मुजकत िै और वि अपनी हदव्यता में स्वत:जस्थत रिती िै। ऐसा मुकत पुरुष जो कुछ भी करता िै, चािे जजस भी तरि जीता िै, वि भगवान् में िी ननवास करता िै; वि घर का ववशेषे सुववधाप्राप्त या वप्रय बालक िै, 'बालवत्' िै जो कोई भूल निीं कर सकता, जो कभी पनतत निीं िो सकता, कयोंकक वि जो कुछ भी िै और जो कुछ भी करता िै वि सब उस परम् पूण,ि सवानिन्दमय, सवपे्रिममय और सवसिौंदयमिय से पररपूण िोता िै।

जब व्यजकत का परमामा के साथ ऐकय िोता िै तब सिज रूप से वि सारी चीजों से ऊपर उठा िोता िै। इसके शलए उसे ककसी प्रकार के प्रयमन की आवश्यकता निीं िोती। परमामा को अपने भाव में बने रिने के शलए ककसी प्रयमन की आवश्यकता निीं िोती। गीता के चौदिवें अध्याय में अजुनि पूछता िै कक ननत्रैगुण्य के कया लक्षण िोते िैं। इसके प्रमयुत्र में भगवान् किते िैं कक जो व्यजकत अपने ननमन अंगों की वेदना तथा कामना, उनके िष िऔर शोक को मुस्कुराते िुए उनका अवलोकन करता िै व उनसे ववचशलत निीं िोता, तथा प्रकाश और प्रसन्नता की जस्थनत आने पर मोहित निीं िोता और केवल उच्चतर इच्छाशजकत के ननदेशों की प्रतीक्षा करता िै, वि ननत्रैगुण्य िोता िै। वि ज्ञान-अज्ञान आहद से त्रबल्कुल भी प्रभाववत निीं िोता। और यि जस्थनत तभी प्राप्त की जा सकती िै जब व्यजकत ब्रह्म में प्रनतजष्ठत िोता िै। अन्त में भगवान् किते िैं कक 'मेरी भजकत के द्वारा यि जस्थनत प्राप्त िोती िै, कयोंकक उस ब्रह्म का आधार भी म ैंिी िूँ।' भगवान् की भजकत के द्वारा सिज रूप से व्यजकत इनसे ऊपर उठ जाता िै। इस तरीके से गीता पुरुषोत्म योग की ओर ले जाती िै।

ववशुद्ध दाशननिक, मनीषी, जन्मजात-ज्ञानी पुरुष...साजत्त्वक समता से आरंभ करता िै। वि भी ज़िभौनतक और बाह्य जगत् की क्षणभंगुरता को देखता िै और कामनाओंको तुष्ट करने में या कफर सच्चा आनन्द प्रदान करने में इसकी असफलता को जानता िै, परन्तु इससे उसे कोई शोक, भय या ननराशा निीं िोती। वि सभी कुछ को जस्थर-शान्त वववेक बुद्धध से देखता िै और त्रबना ककसी ववकषणि अथवा घृणा या व्यग्रता के अपना चयन कर लेता िै। 'इंहरय ववषयों के संयोग से उमपन्न िोनेवाले ये भोग िी दु:ख के कारण िैं, इनका एक आहद िै और एक अंत िै; इसशलए ज्ञानी, प्रबुद्ध बुद्धधवाला पुरुष (बुध:) इनमें रमण निींकरता।' 'उसकी आममा इन बाह्य स्पशों से अनासकत रिती िै; वि अपना सुख अपने िी अन्दर पाता िै।...शत्रु, शमत्र, तटस्थ और उदासीन सबके शलये वि आममभाव में सम िोता िै, कयोंकक वि देखता िै कक ये सब अननमय संबंध जीवन की पररवतनिशील पररजस्थनतयों से उमपन्न िोते िैं। यिाँतक कक ववद्या, शुधचता, सदाचार के शमथ्याशभमान या बाह्याडंबर से तथा इन चीजों के आधार पर मनुष्य जो श्रेष्ठता के दावे आधाररत करते िैं, इन सबसे वि भ्रशमत या भ्ष्ट निीं िोता। वि साधु तथा असाधु के शलए, सदाचारयुकत, ववद्वान और सुसंस्कृत ब्राह्मण तथा पनतत चांडाल के शलए, सभी मनुष्यों के शलए समभाव युकत िोता िै। ये सभी गीता के साजत्त्वक समता के वणनि िैं, और ये

पयाप्ति रूप से भली-भानाँत उस सब को सार रूप में प्रस्तुत करते ि ैं जजससे संसार ज्ञानी मुनन की शांत बौद्धधक या दाशनिनक समता के रूप में जानता ि ै।

समता के अनतररकत यिा ाँअन्य कई मित्त्वपूण ि ववषय भी ननहित ि ैं जजन पर िमें ध्यान देना आवश्यक ि ै। िमारे अंदर आनंद ननहित ि ै, परंतु वि सुषुप्त ि ै और उस पर मन, प्राण, शरीर आहद का एक मोटा आवरण चढ़ा िुआ ि ै। साथ िी िमारी प्राखणक सत्ता की जैसी संरचना ि ै, वि जीवन के सभी अच्छे-बुरे, शुभु-अशुभु रूपों में आनन्द लेती ि ै। जजतना आनंद वि आराम, सुख तथा सफलता आहद में लेती ि ै उतना िी आनंद उसे इनके ववपरीत रूपों में भी शमलता ि ै। और इसी कारण इस सृजृष्ट में ये सभी रूप िमें देखने को शमलति ैं। परंतुजैसा मिारा वतमिान गठन ि ै, िमें यि आनंद ब़िे िी क्षीण रूप में तथा ववकृत व परोक्ष रूप से इंहरयों आहद के माध्यम से प्रास िोता ि ै। और जजन ववशशष्ट प्रकार के स्पंदनों से यि आनंद िम तक पिुाँचता ि ै, उनके अभाव में िमारा उससे ववछो िो जाता ि ै और िमें उस चीज का या व्यजकत का ववरि मिसूस िोनेलगता ि ै। चूंकक यि ककसी के भी वश में निीं ि ै कक उसके पास केवल अनुकूल स्पंदन िी आएाँ तथा प्रनतकूल न आएाँ इसशलए यि आशंका सदा िी बनी रिती ि ै कक कोई ऐसा स्पंदन न आ जाए जो सारे संतुलन को एकदम िी त्रबग़ि दे। और इस कारण व्यजकत सदा िी शंककत बना रिता ि ै। ज्ञानी मनुष्य जब यि सब देखता ि ै और इसका ववश्लेषण करता ि ै तब वि अनुभव करता ि ै कक यि तो एक ब़िी िी दयनीय जस्थनत ि ै। वि अनुभव करता ि ै कक सिज रूप से सच्चा आनंद तो उसके अपने अन्दर िी ि ै, और यहद वि अपनेसच्चे स्वरूप से ज़ुि जाए, जो कक आनन्दघन ि ै, तब तो उसका आनन्द कभी समाप्त िी निींिो सकता। परन्तु यि तभी िो सकता ि ै जब व्यजकत अपनेइस सच्चेस्वरूप के अनतररकत अन्य दूसूरे आकषणिों की ओर ध्यान देना, उनके प्रनत आकवषति िोना बंद कर दे और उनके प्रनत उदासीन िो जाए। जब ये बािरी चीजें व्यजकत का ध्यान अनतशय रूप से आकवषति करना और उसे अनतशय पी़िा या कफर प्रसन्नता प्रदान करना बंद कर देती ि ैं तब व्यजकत का ध्यान दूसूरी ओर लग पाता ि ै।

मिारे सामान्य स्तर से ऊपर के लोकों में श्रेष्ठता यि ि ै कक वािाँपी़िा देनेवाले स्पंदन जल्दी िी निीं आ सकतेइसशलए व्यजकत को इनसे शंककत रिनेकी आवश्यकता निींिोती। जबकक िमारे सामान्य स्तर पर कोई भी स्पंदन आ सकति ैं। उदािरण के शलए, सूक्ष्म भौनतक स्तर पर एक ननजश्चत सीमा से नीचेकी कोई चीज, कोई पी़िा देने वाली चीज आ िी निींसकती। परंतु इसी तरीके से इसके ऊपर भी एक सीमा ननधारिरत की गई ि ै जजससे ऊपर का कोई स्पंदन उस लोक में प्रवेश निींकर सकता। श्रीअरववन्द अपनेसाववत्री मिाकाव्य में इस सूक्ष्म भौनतक जगत् का वणनि करते ि ैं कक ककस प्रकार इस जगत् में वे सारी सुख-सुववधाएाँ और सौंदय ि सिज िी उपलब्ध ि ैं जिनके शलये व्यजकत यिा ाँपृथ्वी पर हदन-रात मिेनत करता ि ै और कफर भी उन्िें उपलब्ध निीं कर पाता। यि सूक्ष्म भौनतक जगत् िमारे भौनतक जगत् के ननकट िी ि ै और िमारी आज की भौनतकवादी संस्कृनत इसी से अपनी प्रेरणा लेती ि ै। परन्तु जो सुख और सौंदय ि उस स्तर पर सिज िी उपलब्ध ि ैं वे यिा ाँइस भौनतक जगत् में प्राप्त निींिो सकतेकयोंकक यिा ाँअवचेतनता का दबाव बना रिता ि ै। जबकक सूक्ष्म भौनतक जगत् में वि दबाव निीं रिता।

उसके बाद में प्राखणक जगत् ्िै। जिााँसूक्ष्म भौनतक जगत् ्में उस जगत् ्ववशेष की चीजों की िी प्रधानता िीती िै तथा प्राखणक चीजों का विााँअधधक प्रवेश नििीिीता और विााँ केवल भौनतक सुख, सौंदय िआहद िी प्रधान चीजें िोती िैं, जबकक प्राखणक जगत् ्में प्राण िी प्रधान तत्त्व िोता िै और दूसूरी सभी चीजें उसके अधीन िोती िैं।

भौनतक स्तर पर तो िमारे प्राखणक आवेगों, कामनाओं, इच्छाओं आहद पर शरीर की सीशमतता तथा मन का अंकुश लगा िोता िै। परंतु प्राखणक जगत् ्में सभी कामनाएँ, वासनाएँ, इच्छाएँ, लोभ-लालच, दूसूरों पर शासन करने ेकी लालसाएँ आहद, तथा सभी भव्य और सुंदर चीजें जजनकी भौनतक जगत् ्में िम केवल कल्पना िी कर पातिैं परंतुजो प्राप्त निीं िो पातीं, वे ेसब सिज िी पूण िरूप से उपलब्ध िोती िैं। परंतु विााँभी ऊपर मानशसक लोकों का और नीचेभौनतक लोकों का अंकुश तथा दबाव निीं ंरिता। इन प्राखणक लोकों को स्वग िकितिैं। किने का अथ ििै कक व्यजकत अपनेप्राण को संतुष्ट करने ेके शलए जो भी इच्छा करता िै, वि सब उस जगत् ्में िूबिू वैसा िी प्राप्त िो जाता िै। विााँपररजस्थनतयााँप्रनतकूल निीं ंिोतीं, व्यजकत के संकल्प मात्र से िी सब कुछ संशसद्ध िो जाता िै। इसीशलये उन्िें स्विग िकितिैं। परन्तु यि सब कुछ आंतररक निींअवपतु केवल बािरी िी िोता िै। इसके बाद में मानशसक जगत् ्आता िै। इन सब सूक्ष्म भौनतक, प्राखणक और मानशसक जगतों में यि बाध्यता िै कक विााँ सब कुछ बािरी स्पंदन पर ननभरि िोता िै। यद्यवप कोई भी गलत स्पंदन विााँ प्रवेश निींकर सकता परन्तु कफर भी अंततः व्यजकत रिता तो बािरी चीजों का िी दास िै। अपनेसच्चे स्वरूप में व्यजकत जब स्वयं आनन्दघन िै तब कफर ककन्िींबािरी चीजों से संतुजष्ट प्राप्त करने का प्रयास करना कोई अधधक संतोषजनक जस्थनत निीं िै जजसमें व्यजकत बािरी माध्यमों के द्वारा, मन, प्राण, शरीर और इजन्रयों के द्वारा सुख बटोरनेका प्रयास करता िै। परन्तुआममा का आनन्द सिज िै जजसे ककन्िींमाध्यमों की आवश्यकता निीं ंिै और वि असीम िै। इसीशलये िमारे ऋवष-मुनन इन सूक्ष्म भौनतक, प्राखणक और मानशसक स्वगों से अधधक अभीभूत निीं ंिोतेथे कयोंकक वे जानते थे कक भले िी अपने-आप में ये स्वग िककतने भी समृद्ध और वैभवशाली कयों न िों, तो भी आंतराजममक आनंद और वैभव से इनकी कोई तुलना निींकी जा सकती।

अब यिा ाँसाजत्त्वक समता की बात करते िुए श्रीअरववन्द किते िैं कक साजत्त्वक व्यजकत को संसार की क्षणभंगुरता और अननमयता का बोध िोता िै और वि जान जाता िै कक सांसाररक चीजों से ववचशलत िोना या उनमें संतुजष्ट पाने का प्रयमन करना ननरथकि िै। वि इन सब चीजों में अपनी चेतना को निीं फाँसाता और इनसे प्रभाववत न िोकर शमत्र-शत्रु, ु वप्रय-अवप्रय, सफलता-ववफलता आहद सभी को समान दृजष्ट से देखकर सबसे समान व्यविार करता िै। ऐसा व्यजकत अपनी बुद्धध को जस्थर कर के उसके द्वारा अपनी इजन्रयों और अपने सारे किया-कलाप पर यथासंभव अधधक-से-अधधक प्रभाव िालता िै - िालाकााँक बुद्धध के माध्यम से एक सीमा से अधधक प्रभाव तो वि निीं ंिाल सकता और वि उस साजत्त्वक अथवा दाशननिक की समता की ओर बढ़ता िै जजसके बारे में श्रीअरववन्द बता रिे िैं।

प्रश्न : कया ज्ञानी या दाशननिक की समता ननषेधाममक िोती िै चूंकक उसे सभी चीजें ननःसार प्रतीत िोती िैं?

उत्तर : जब व्यजकत को ककसी गिरी चीज में रस आने ेलगता िै और उसकी बुद्धध को बिारी चीजों में कोई रस निीं रि जाता तब कफर ये चीजें उसकी नजर में कोई मित्त्व िी निींरखतीं। इसीशलए इन बिारी चीजों में बदलाव आनेपर या कफर कोई उतार-चढ़ाव आने ेपर भी वि इनसे ववचशलत निीं ंिोता। उदिारण के शलए यहद शेयेर बाजार में आपकी कोई रुधच िी निीं िै और न िी आपका उसमें कोई पूँजी ननवेश िै तो उसमें आए उतार-चढ़ाव से आप कयों प्रभाववत िोने ेलगे? इसी प्रकार ज्ञानी या दाशननिक की बुद्धध को इन बिारी चीजों में कोई रस निीं ंरि जाता। यि बात याद रखनेकी िै कक केवल बुद्धध िी यि भाव अपनाती िै और आवश्यक निींिै कक उसके अन्य भाग भी इसमें सजममशलत िों और उनमें भी समता का भाव िो। िो सकता िै कक शरीर में समता न िो, या कफर प्राण में समता न िो। या कफर िो सकता िै कक बुद्धध के साथ-ी-साथ हृदय, आममा या सत्ता के अन्य भाग इसमें सजममशलत िों। परन्तु आवश्यक निीं िै कक सभी भागों में समता स्थावपत िो जाए कयोंकक सभी भागों में व्यजकत के अवचेतन तथा ज़ि-भौनतक भागों का प्रवेश और उनका प्रभाव रिता िै जो कक ऐसी समता को स्वीकार निीं ंकरते। ववशेषेकर प्राण में और ज़ि-भौनतक भागों में समता स्थावपत िोना तो बिुत िी मुजश्कल िै। परन्तु ु बुद्धध और हृदय की समता का स्थावपत िोना भी व्यजकत के जीवन पर ब़िा भारी प्रभाव िालता िै जजसे देखकर सामान्य लोग उसे बिुत िी मिान् ्व्यजकतमव के रूप में देखनेलगतेिैं, कयोंकक जजन बिारी चीजों में सामान्य जन बिुत अधधक आसकत रिते िैं और अमयधधक प्रयास के बाद भी जजन चीजों से ऊपर निीं ंउठ पातेउनसे तो वि आकवषित िी निींिोता और उनके नष्ट िो जानेपर ववचशलत निीं ंिोता। परंतुजजसमें ऐसी समता स्थावपत िो गई िै वि इसशलये िोती िै कयोंकक वि इन बिारी चीजों की क्षणभंगुरता को जान चुका िोता िै और इसशलए उसमें समता स्थावपत िोना तो स्वाभाववक िी िै।

प्रश्न : तो इसका अथ ियि िै कक ऐसे व्यजकत का वववेक जागृत िो गया िै?

उत्तर : िा,ँ कयोंकक बुद्धध के प्रभाव से िी तो वि जागृत िो जाता िै। बुद्धध सत्त्व-गुण प्रधान िै, प्राण रजस् ् प्रधान िै और भौनतक तमस् ्प्रधान िै। इसशलए जब बुद्धध को बिारी चीजों की अननमयता का बोध प्राप्त िो जाता िै तब उसमें समता आ जाती िै। परंतु एक ववचार के रूप में िी यि जान लेना कक केवल भगवान् ्िी अच्छे िैं और सब कुछ बेकार िै, अधधक प्रभावशाली निीं िोता। परंतुजब अंतर से यि भाव आता िै और अन्तराममा प्रबल िोती िै और वि बुद्धध के द्वारा स्वयं को अशभव्यकत करती िै तभी वि िमें ऊपर उठा पाती िै। केवल एक ववचार मात्र से यि कभी निींिो सकता। ववचार रूप से तो अधधकांश लोग ये सब बातें जानते िी िैं। िमारे सारे शास्त्र ऐसी सब शशक्षा से भरे प़िे िैं कक संसार अननमय िै, इसमें मोि निींरखना चाहिये। साथ िी यि किा जाता िै कक यि सब मोि-माया जीवन नष्ट िोने ेपर व्यजकत के साथ निीं ंजाती और सब कुछ यिीं ंरि जाता िै। परंतु जजसके अंदर आममा के प्रभाव से बुद्धध में यि समता आ गई िै उसे तो यि बात ब़िी िी सुखद प्रतीत िोती िै कक कम-से-कम ये सब अननमय चीजें साथ निीं ंजाएँगी, अन्यथा तो जीवन के अंत के बाद भी ये िी चीजें पीछा करती रिेंगी तो यि तो ब़िा िी भयंकर िोगा। इस प्रकार बुद्धध में यि समता स्थावपत िोने ेपर संपूण िदृजष्टकोण िी बदल जाता िै।

गीता बार-बार किती ि कक जो अवलोकन करता ि, उसे पुरुष कितिं और जजसका अवलोकन ककया जाता ि, वि प्रकृनत ि। अवलोकन करने की यि क्षमता िी मनुष्यों को पशुओंसे शभन्न करती ि। परंतुसाक्षक्षमव करने ेका स्तर प्रमयेक मनुष्य की चेतना के अनुसार शभन्न-शभन्त्र िोता ि। व्यजकत अपनी सतिी चेतना से कुछ अलग िटकर साक्षक्षमव कर सकता ि, कुछ उससे अधधक गिरी अवस्था से साक्षक्षमव कर सकता ि, और जो बिुत अधधक ववकशसत िोता ि वि अपनेचैमय या अंतराममा से चीजों का अवलोकन कर सकता ि। परंतु सामान्यतया मनुष्य जजस सतिी चेतना में रितिं उसमें उनका साक्षक्षमव भी बिुत िी सतिी िोता ि इसीशलए जीवन भर ठोकरें खाते िुए भी वे उन्िींभूलों को दोिरातेरितिं और उन्िीं चीजों में शलप्त रितिं। व्यजकत का साक्षक्षमव का स्तर जजतना िी गिरा िोगा उतना िी वि शजकतशाली िोगा कयोंकक उतना िी अधधक वि परमामम तत्त्व के ननकट िोगा और उतनी िी अधधक उसमें जीवन पर प्रभाव िालनेकी तथा उसे पररवनततत करने ेकी शजकत िोगी। इसशलए मित्त्वपूण िबात यि ि कक व्यजकत साक्षक्षमव किा ाँसे और ककस गिराई से करता ि उसी पर यि समता ननभरि करती ि। इसे साजत्त्वक या दाशनिनक समता किते िैं। गीता में इसके कुछ उदािरण भी हदए िैं जैसे कक 'जो ज्ञानी ि वि न तो जीववत के शलए और न िी मृत् के शलए शोक करता ि'।

ii.11

प्रश्न : कया ऐसा निीं ि कक इस साजत्त्वक समता से पिले जो तापसी (स्टोइक) प्रकार की समता के बारे में बताया गया ि वि तो पुरुषाथ िसे प्राप्त की जानेवाली समता ि, परन्तु यि ज्ञान की जो समता ि इसके पाने के शलये तो अधधक पुरुषाथ िकी आवश्यकता निींिोती?

उत्तर : चूंकक यि साजत्त्वक प्रकार की समता ि इसशलए इसमें श्रम अपेक्षाकृत कम लगता ि। जैसे कक यहद िम ककसी के साथ लड़ाई करते िैं तो िमारे अन्दर जजतनी िी अधधक शजकत िोगी उतनी िी कम मेिनत उसे जीतने में िमें करनी िोगी और जजतनी कम शजकत िोगी उतनी िी अधधक मेिनत करनी िोगी। वैसे िी साजत्त्वक समता में शजकत अधधक िोती ि इसशलए इसका प्रभाव अधधक िोता ि और सिज रूप से िी अन्य भागों पर इसकी किया िोती ि। इस समता में आममा बुद्धध के द्वारा अपना प्रभाव िालती ि। तापसी समता में आममा भौनतक चेतना के द्वारा, संवेदनों के द्वारा काम करती ि। अलग-अलग व्यजकतयों का अलग-अलग संतुलन िोता ि। यि तो भगवान् ेकी ववधचत्र लीला ि। कफर भी, व्यजकत समता तभी रख सकता ि जब अन्दर की कोई गिरी चीज उसे प्रश्रय दे। अन्यथा अधधकांश व्यजकत तो अपनी इजन्रयों के िी गुलाम बनेरितिं कयोंकक त्रबना ककसी आंतररक आधार के इजन्रयों से ऊपर उठना संभव निीं। बिुत से लोग ज्ञान का प्रदशनि तो बिुत करते िैं परन्तु जरा-सी बीमारी से भी ववचशलत िो उठते िैं कयोंकक उनमें सिन करनेकी शजकत निींिोती। इसके ववपरीत कई व्यजकतयों को कोई समझ तो निींिोती परन्तु कफर भी वे अन्दर से बिुत मजबूत िोते िैं और ककसी भी चीज की परवाि िी निीं ेकरते। िालाकाँक इसका यि अथ िनिीं ि कक इस कारण से ये बिुत मिान् ेव्यजकत िो गये और दूसरे बेिे िी िीन िो गये। इनमें बस अंतर इतना िी ि कक एक की भौनतक चेतना में ककसी गिरी चीज का सिारा ि जबकक दूसरे को वि सिारा भौनतक चेतना में न प्राप्त िोकर बुद्धध में प्राप्त ि। िा,ाँ यहद बुद्धध के साथ हृदय, प्राण, भौनतक आहद सभी चीजों में यि समथनि प्राप्त िो तो बिुत िी अच्छा ि। गीता इन समताओं के बारे में बात तो करती ि परन्तु

वास्तव में जजस समता को वि चिा करती िै वि तो परम् ्जस्थनत िै जो कक व्यजकत की समपूण िसर्त् को िी पररवनतति कर देती िै और यि समता भगवान् ्के साथ ऐकय से आती िै जो कक अनंत िै। यि समता आने ेपर संपूण िब्रह्माण् में ऐसा कुछ निीं ंिै जो व्यजकत को ववचशलत कर सके कयोंकक यहद परमामममा िी ब्रह्माण् की चीजों से ववचशलत िोतेतब कफर वि इन चीजों के दास िुए, न कक इनके स्वामी। अतः गीता की समता भगवान् ्के साथ एकमव से आने ेवाली समता िै। अन्य सभी तरीके तो उस एकमव को प्राप्त करने ेके और उस समता तक पिुँचने ेके ववशभन्न माग ििैं। ककसी-ककसी के शलए यि भी संभव िो सकता िै कक वि त्रबना ककसी ववशशष्ट माग िका अनुसरण ककए सीधे िी परमामममा तक पिुँच जाए। कयोंकक सबके शलये कोई एक िी तय ननयम लागू निींिोता। भगवान् ्के ऊपर कोई भी ननयम लागू निीं ंिोता। उनके ववधान में जैसा उन्िें उधचत लगता िै वे वैसा िी करते िैं। अतः सब कुछ व्यजकत-व्यजकत के अनुसार शभन्न-शभन्न िोता िै।

तो यिा ंिँमनेतामशसक और साजत्त्वक दो प्रकार की समता के ववषय में चचिा की िै।

यि दाशननिक उदासीनता की समता िै; यि एक उच्च शांत-जस्थरता तो लाती िै परंतु मिानतर आध्याजमममक िष िनिीं ंलाती; यि तो एक एकाकी या अलग-थलग मुकतावस्था िै... जो अंततः संसार से अलग-थलग और ननष्प्रभावी िै। दाशननिक मनोभाव की उदासीनता को गीता एक प्रारजमभक प्रवृवृत्् के तौर पर स्वीकार करती िै; परन्तु जजस उदासीनावस्था तक गीता अंततः लाती िै - उसके शलए यहद इस अपयाप्ति शब्द 'अलगाव' का ककसी तरि से व्यविार ककया भी जाए तो - उसमें दाशननिक अलगाव का भाव निीं ंिै। ननःसंदेि वि 'उदासीनवत्' ् उच्चासीन िोना िै अवश्य, पर वैसे िी जैसे भगवान् ्ऊध्व िमें आसीन िैं, जजन्िें इस जगत् ्में ककसी चीज की आवश्यकता निीं, कफर भी वे सतत् ्कम िकरते िैं और सवत्रि िी प्राखणयों के उद्यम या पुरुषाथ िको आश्रय प्रदान करते िुए, सिायता प्रदान करते िुए और उनका मागदिशनि करते िुए ववद्यमान रिते िैं। यि समता सब प्राखणयों के साथ एकमव पर प्रनतजष्ठत िै। इसमें उस चीज का भी समावेश िोता िै जजसका दाशननिक समता में अभाव िोता िै; कयोंकक इसकी आममा शाजन्त की आममा िै और साथ िी वि प्रेम को आममा भी िै। यि अशेषे रूप से सभी जीवों को भगवान् ्के अंदर देखती िै. यि व्यजकतगत आममा का सवभिूतामममा के साथ एक िो जाना िै और इसशलए यि सभी भूतों के साथ परम् ्सिानुभूनत या तालमेल में रिती िै। इस सवव्यािपी, सवभिावेन सिानुभूनत और आध्याजमममक का एकमव न केवल उस सब के साथ िै जो शुभु िो, सुन्दर िो और रुधचकर िो, अवपतु, ऐसी ककसी चीज को या ककसी भी व्यजकत को **अिेषि**, ननरपवाद रूप से, इससे अलग निीं ंरखा जा सकता भले वि हदखने में ककतना भी नीच, पनतत, पापी या घृखृणत कयों न िो। यिाँन केवल मात्र घृणृा अथवा िोध अथवा अनुदारता के शलए िी कोई स्थान निीं ंिै, अवपतु अलगाव, अविेलना या अपनी श्रेेष्ठता के ककसी प्रकार के क्षुर गव िके शलए भी यिाँकोई स्थान निीं। ककसी बाह्य इंहरयाधश्रत व्यजकत के शलए इस समता में संघषरित मन की अज्ञानता के प्रनत एक हदव्य करुणा प्रतीत िोगी, उस पर समस्त प्रकाश और शजकत और सुख की वषिाकरने ेके शलए एक हदव्य संकल्प अवश्य प्रतीत िोगा; परंतु उसके अन्दर की हदव्य आममा के प्रनत उसमें इनसे भी कोई ब्रिी चीज िोगी, उसके प्रनत िोंगे चिा और प्रेेम। कयोंकक सबके भीतर से, जैसे साधु मिामममा के अन्दर से वैसे िी चोर, वेश्या और चाण्ालि के अन्दर से भी वे िी वप्रयतम झाकाँतें और पुकार कर कित िैं, 'यि म ैंिूँ।' 'जो सब भूतों में

मुझसे प्ेरेम करता ि वि योगी चिो जजस प्रकार रिे या कम िकरे, मुझमें िी रिता और कम िकरता ि' - हदव्य सवव्यािपी प्ेरेम की परम् ्प्रगाढ़ताओंऔर गंभीरताओं के शलए इससे अधधक शजकतशाली वाणी का प्रयोग संसार के और ककस दशनिशास्त्र या धम िमें िुआ ि?

vi.31

दाशनिनक या साजत्त्वक समता के आने ्पर भी व्यजकत में तत्त्वत: कोई ववशेषे पररवतनि निीं ्आता और वि जैसा मूलत: था लगभग वैसा िो कयों बना रिता ि, इसका कारण यिा ्ाँबताया गया ि। वि यि ि कक साजत्त्वक समता और आममा की समता में सारा िी अन्तर ि, जजसे समझना अमयंत मित्त्वपूण िि। आममा की समता का आधार पूण िएकमव में ि न कक जगत् ्की नन:सारता या उसकी क्षणभंगुरता के बोध से उमपन्न िोने वाले सममव के भाव में। आममा की समता में व्यजकत स्वयंको समपूण िजगत् ्के साथ एकमय मिसूस करता ि। साजत्त्वक समता वाला व्यजकत इस संसार के नाटक से अपने-आप को अलग करनेका और इससे ऊपर उठनेका भाव रखता ि जबकक आममा की समता में व्यजकत स्वयं एक सकिय भूशमका ननभाते िुए भी अपने-आप को सभी घटनाओं और पात्रों के साथ एकमय मिसूस करता ि कफर चिो वे ्पात्र नायक िों या खलनायक। मानो वि स्वयं िी सबमें ववद्यमान िो। उसे यि मिसूस िोता ि कक यि सब उसका अपना िी खेल चल रिा ि और उसमें वि अपनेआप को अशभव्यकत कर रिा ि और आनन्द ले रिा ि।

आममा की समता उदासीनवद् या अलगाव की समता निींि, जजसमें व्यजकत को ककसी चीज से कोई मतलब िी न िो। यि समता तो पुरुषोत्म की समता ि। जैसा कक भगवान् ्श्रीकृष्ण कितें कक तीनों लोकों में ऐसा कुछ भी निीं ंि जो उन्ें चािहिए, ऐसा कुछ भी निीं ंि जो उनके पास न िो, कफर भी वे सदा कम िमें रत रितें और कदम-कदम पर इस संसार और प्राखणयों की सिायता करते ि। कयोंकक यिा ्ाँउदासीन िोकर ननशलप्ि रिने ्की बात निींिती अवपतु प्ेरेम का संबंध िोता ि। इस भाव में व्यजकत सभी के अंदर स्वयंअपने-आप को िी देखता ि इसशलए वि ववचशलत निीं ंिोता कयोंकक वि स्वयंि सब जगि मौजूद ि और यि सारा खेल उसी का चल रिा ि। जब िम ककसी नाटक के स्वयंि ननदेशक और प्रनतभागी ि तो उस नाटक के अच्छे-बुरे दृश्यों को देखकर ववचशलत निींिने ्वाले। और चूँकक इसमें सभी पात्रों के साथ व्यजकत एकमव मिसूस करता ि इसशलये वि पात्रों के साथ कोई ऊपरी समता निींरखता वरन् ्उसमें आनंद लेता ि और उस नाटक में अपनी भूशमका बखूबी ननभाते िुए दूसूरों को भी अपनी-अपनी भूशमका बखूबी ननभानेमें सिायता करता ि, भले वे पात्र नायक िों या खलनायक।

और जब व्यजकत सबके अन्दर स्वयं को देखता ि, अपने वप्रयतम को देखता ि, परमामा को देखता ि तो इससे ब़िा आनन्द तो कोई िो िी निीं सकता। ऐसे भाव में कफर जरा-से भी कष्ट का या ककसी प्रकार के उमपीिन के अनुभव का तो कोई प्रश्न िी निीं ंउठता। अन्य सभी प्रकार की समता में िमें शाजन्त तो प्राप्त िो सकती ि परन्तु वि कोई आनन्द निीं देनेवाली, जबकक आममा की समता आनन्ददायी ि। श्रीअरववन्द ने गीता के इस श्लोक का वणनि करते िुए किा ि कक इससे ब़िी बात तो कभी ककसी ने किी िी निीं ि जजसमें भगवान् ्किते ि कक जो सब भूतों में मुझसे प्ेरेम करता ि वि योगी चिो जजस प्रकार भी रिे या कम िकरे, मुझमें िी रिता और कम िकरता

ीं। जब व्यजकत ऐसी चेतना में ननवास करता िै और यि जान लेता िै कक परमाममा में िी सब कुछ िै और वि सभी जीवों में परमाममा को िी देखता िै, उसके आनन्द का तो वणनि िी निीं ंककया जा सकता। यि जस्थनत परम् ् आनन्द की जस्थनत िै। ऐसे व्यजकत के शलए समता-असमता तो खेल मात्र रि जाते िैं। गीता इसी समता की ओर ले जा रिी िै जजसमें व्यजकत परमाममा से एक िो जाता िै। यिा ँसाजत्त्वक समता और आममा की समता के बीच तुलना कर के दशायिा गया िै कक ककस प्रकार से साजत्त्वक समता अपने-आप में अपयाप्ति िै।

प्रश्न : इसमें उदासीनवद् शब्द का प्रयोग ककस अथ िमें ककया गया िै?

उत्तर : उदासीनवद् का अथ ियि निीं िै कक व्यजकत को ककसी से कोई मतलब िी निीीं। उदासीनवद् अथात्ि व्यजकत इन सब चीजों से ऊपर िै। जैसे आप ककसी कफल्म का ननदेशन कर रि ेैं तो आप उसमें भागीदार तो पूरे िैं परन्तु आपके शलए सभी दृश्य समान िैं और आप उनको देखकर ववचशलत निीं िोतेकयोंकक आप स्वयं ं िी भूशमका ननभाने वाले, स्वयंिी ननदेशन करने वाले और स्वयं िी दशकि भी िोते िैं। मानशसक चेतना में तो व्यजकत इस चीज की कल्पना भी निीं ंकर सकता और उसे इन सबका बोध भी निीं िोता।

ईश्वरेच्छाधीनता - भगवदेच्छा के अधीन िो जाना, धैय िके साथ सूली (दुःख-कष्टों) को सिन करना, ववनीत भाव से सहिष्णु िोना - एक प्रकार की धाशमकि समता का आधार िै। यि भगवदेच्छा की अधीनता का तत्त्व गीता में एक अधधक ववशाल रूप धारण कर लेता िै और समग्र सर्त्ा का भगवान् ्के प्रनत पूण िसमपणि बन जाता िै। यि केवल ननजष्िय अधीनता निीं ंिै, अवपतु एक सकिय आमम-दान िै; यि समस्त वस्तुओंमें भगवान् ्की इच्छा को देखना और स्वीकार करना भर निीं ंिै, अवपतु ुअपनी ननजी इच्छा को कमों के प्रभु को उनका उपकरण बनने के शलए सौंप देना िै, और वि भी भगवान् ्का एक सेवक बननेके लघुतर भाव से निीं,ं अवपतु अंत में कम-से-कम इस भाव से कक वि अपनी चेतना और अपनेकम,ि दोनों का िी उनमें संपूण िसंन्यास कर दे, ताकक उसकी सर्त्ा भगवान् ्की सर्त्ा के साथ एक िो जाए और उसकी नैयजकतक प्रकृनत यंत्रमात्र रि जाए, और कुछ निीं। िर फल या पररणाम को चािे अच्छा िो या बुरा, वप्रय िो या अवप्रय, शुभ िो या अशुभ, उसे कमों के प्रभु भगवान् ्का मानकर स्वीकार ककया जाता िै, जजससे कक अंततः शोक और दुःख को केवल सिन िी निींककया जाता, अवपतु ुउन्िें ननष्काशसत कर हदया जाता िैः भावाममक मन (धचर्त्) की पूण िसमता प्रनतजष्ठत िो जाती िै। उपकरण में तब वैयजकतक इच्छा या संकल्प का भान निींिोता; यि हदखाई देता िै कक सभी कुछ पिले से िी ववराट् पुरुष के सवज्ञि पूवज्ञिान और उनकी सवसिमथ िअमोघ शजकत में पिले िी संपन्न िो चुका िै और मनुष्यों का अिंकार उस भागवत् ् संकल्प की कियावली को निींबदल सकता। इसशलए अंनतम मनोभाव वि िोगा जजसका ननदेश अजुनि को आगे के अध्याय में बताया गया िै, 'सब कुछ मेरे द्वारा मेरी हदव्य इच्छा और पूवज्ञिान में पिले िी ककया जा चुका िै; िे अजुनि, तू तो केवल ननशमर्त् मात्र बन', ननशमर्त्मात्रं ंभव सव्यसाधचन्।् यि मनोभाव ननश्चय िी अंततः वैयजकतक इच्छा के भागवत् ्संकल्प के साथ पूण िऐकय तक ले जाएगा और, ज्ञान की वृद्धध के साथ िी जीव रूपी उपकरण की भागवत् ्शजकत और ज्ञान के अनुकूल दोषरहित अनुकिया या प्रमयुत्र ले आएगा। परामपर, ववराट् और व्यजष्ट पुरुष के इस परम् ्ऐकय की संतुशलत अवस्था में आमम-समपणि की पूण िऔर ननरपेक्ष समता िोगी, मन िोगा

 हदव्य ज्योनत और शजकत की ननष्प्रनतरोध वाहिका और सकिय सर्त्ा बन जाएगी जगत्
्में इस हदव्य ज्योनत और
शजकत के काय िके शलए एक परिामी अमोघ यंत्र।

जैसा कक श्रीअरववन्द ने पिले तापसी समता और दाशनिनक या साजत्त्वक समता के बारे में वणनि करते िुए उनका स्वरूप और उनकी सीमा और अपयाप्तिता दशायिी थी और गीता में वखणति समता से उसकी तुलना की थी, उसी प्रकार यिााँवे धाशमकि समता का वणनि कर रिे िैं। तीसरे प्रकार की यि समता िमारे देश में बिुत प्रशसद्ध िै और बिुत लोग इससे आरमभ करते िैं। हिन्दुसुतान में अधधकतर लोग आजस्तक िैं, इसशलये यिा ाँमनोवैज्ञाननक समस्याएाँ पजश्चम की तुलना में बिुत कम िैं। पजश्चम के ववपरीत यिााँ भारत में यहद ककसी व्यजकत के साथ कोई धोखा िो जाता िै या उसके साथ कोई अनिोनी िो जाती िै जजससे उसे आघात पिुाँचता िै तो उसे पीड़ा तो िोती िै परंतु इसके साथ–ी-साथ किीं न किीं ंउसमें यि भाव भी उठता िै कक भगवान् ्जो कुछ भी करते िैं उसके भले के शलए िी करते िैं। यि एक सवसिामान्य सुझाव िै जजससे बिुत-सी मनोवैज्ञाननक समस्याओंको अधधक बल निीं शमल पाता और धीरे-धीरे उनका स्वतः िी अंत िो जाता िै और व्यजकत को जजस अनतशय पीड़ा के दौर से गुजरना पड़ सकता था उससे उसे बिुत कुछ रित शमल जाती िै। यिा ाँभारत में िमारी संस्कृनत िी ऐसी िै कक व्यजकत ककसी-न-ककसी आध्याजममक गुरु से, ककसी मंहदर, देवता, इष्ट आहद से संबद्ध िोता िै, उसमें आस्था रखता िै। और जजसमें उसे आस्था िोती िै उसे वि अपनी तकलीफें, अपनी समस्याएाँ बताता िै और एक बड़ी भारी मनोवैज्ञाननक रित मिसूस करता िै। उदािरण के शलए अपनेककसी स्वजन की या अपनेककसी घननष्ठ संबंधी या शमत्र की मृमयु पर व्यजकत को बिुत िी गिरी पीड़ा िोती िै। परंतु यिााँयि ववचार प्रचशलत िै कक सब कुछ भगवान् ्को मजी से िोता िै और वे सदा भला िी करते िैं चािे बािर से िमें वि चीज ककतनी भी अवप्रय या दुःखद क्यों न प्रतीत िो रिी िो, इसशलए ऐसा उनका ववधान मानकर वि कम-से-कम अपनी बुद्धध में तो उस पीड़ा से कुछ रित पाता िै। यहद यि धाशमकि भाव न िोता तो जजस भयंकर मानशसक तथा मनोवैज्ञाननक पीड़ा से व्यजकत को गुजरना पड़ता उसकी कल्पना निीं ंकी जा सकती। इसीशलए पजश्चम की संस्कृनत में ऐसे ककसी सिारे के अभाव में िम बिुत से लोगों को अपना मानशसक संतुलन तक खोतेदेखते िैं।

परंतु इस स्तर से आगे बढ़ने पर व्यजकत सोचता िै कक जब त्रबना परमाममा की इच्छा के कुछ निीं िोता, और जो िोता िै वि अच्छे से अच्छा िी िोता िै तब उसे ककसी चीज की धचंता करने की कोई आवश्यकता निीं िै। जो कुछ भी उसके साथ िोता िै, वि चािे सुखदायी िो या दुःखदायी, उसके शलए वि तो भगवान् ्को ननववविाद रूप से धन्यवाद िी देगा। इसशलए वि ककन्िींभी पररजस्थनतयों में अधधक ववचशलत निींिोता। िो सकता िै कक ककसी घटना से वि कुछ समय के शलए ववचशलत िो, परंतु इस मनोभाव के कारण शीघ्र िी वि उसमें से बािर ननकल आता िै। इस समता का स्थान व्यजकत के हृदय में िोता िै, और वि भगवान् ्को समवपति िोता िै। व्यजकत यि सोचता िै कक उसके प्रभु िी सारे संसार को चला रिे िैं इसशलए जो कुछ भी िोगा वि तो अच्छा िी िोगा। ये सभी प्रकार की समताएाँ गीता में िैं, परन्तु गीता यिीं ंनिीं ंरुक जाती। िमारी संस्कृनत में पिले स्तर की धाशमकि समता तो साधारणतया सभी में पायी जाती िै। उससे आगे कफर कुछ लोग और अधधक गिराई में चले जाते िैं और किते िैंकक जो कुछ भी िोता िै वि भगवान् ्की इच्छा से िी िोता िै। इससे और आगे का मनोभाव यि िै कक प्रभु जो

कुछ भी करते िैं व्यजकत उसे केवल स्वीकार िी निीं करता और उसके प्रनत अपनी सिमनत िी व्यकत निीं ंकरता, अवपतु अपने गुरु की या भगवान् ्की इच्छा जानकर वि उसमें आनन्द लेनेलगता िै। इसशलये गीता किती िै कक जब व्यजकत के अन्दर यि भाव अधधक गिरा िोता जाता िै तो वि अपनी बािरी यांत्रत्रक प्रकृनत से ऊपर उठकर प्रमयेक पररजस्थनत में प्रभु की िो इच्छा देखकर उसमें गिरा आनन्द लेना आरमभ कर देता िै। उसे उसमें इतना आनन्द आने लगता िै कक उसके शलए ककन्िीिंभी बािरी चीजों का, बािरी घटनाओंका - चािे वे ककतनी भी वप्रय-अवप्रय, सुखद या दु:खद कयों न िो – कोई मूल्य निीं रि जाता। और जब व्यजकत को इतना अधधक आनन्द आने लगता िै तो वि भगवान् ्को समवपित एक ऐसा ननष्ठावान् ्यंत्र बन जाता िै कक भगवद्-इच्छा के शलये वि कुछ भी करने ेको तैयार रिता िै कयोंकक उसे सवित्र प्रभु की इच्छा िी हदखाई देती िै। इसीशलये भगवान् ्अजुनि को किते िैं कक तू तो केवल ननशमर्त् मात्र बन। इस भाव में व्यजकत जानता िै कक जो कुछ भी िो रिा िै वि प्रभु के द्वारा ककया जा रिा िै, उसे तो ननशमर्त् मात्र बनना िै। और जब सारी शजकत, ऊजाि, धीरज, प्ेरम आहद सब कुछ स्वयं प्रभु िी उसे प्रदान कर रिे िैं तब उसे तो केवल ननशमर्त् बनकर ककसी भी कम िको संपाहदत करने ेमें समस्या िी कया िो सकती िै। तब व्यजकत चेतना की उस पराकाष्ठा तक पिुँच जाता िै जिाँवि परमाममा के साथ ऐकय की ओर अग्रसर िोता िै और आममा की समता की ओर अग्रसर िोता िै। इस प्रकार एक सच्ची धाशमकि भाव से उर्त्रोर्त्र बढ़ते िुए वि इस आममा की समता तक आ सकता िै और परमाममा के साथ पूण िऐकय तक आ सकता िै।

किने का अथ ियि िै कक व्यजकत चािे किीं से भी आरंभ करे, चािे तापसी समता या दाशननिक समता से आरंभ करे या कफर धाशमकि समता से, परन्तु गीता व्यजकत को परमाममा से ऐकय की समता की ओर ले जाती िै। िालाँकक उस जस्थनत को समता का नाम िी निीं हदया जा सकता कयोंकक वि तो हदव्य जस्थनत िै। सारांश यि िै कक व्यजकत चािे किीं ंसे भी आरमभ कयों न करे उसे ककसी भी अवस्था ववशेषे पर रुकना निीं ंचाहिए और यहद वि उर्त्रोर्त्र बढ़ता जाता िै तो अन्त में भगवान् ्के साथ अधधकाधधक ऐकय साधता जाता िै। गीता अपनी सारी साधना इसी िम से ववकशसत करती िै और कफर अंत में :

मन्मना भव मद्भकतो मद्याजी मांनमस्कुरु ।
मामेवैष्यशस समयं ंते प्रनतजाने वप्रयोऽशस मे ।। १८.६५।।
सवधिमान्पररमयज्य मामेकं शरणंव्रज ।
अिं मवा सवपािपेभ्यो मोक्षनयष्याशम मा शुचः ।। १८.६६।।

इस जस्थनत की ओर बढ़ना िी तो संपूण िजीवन का सार िै। भले िी िमनेककतनी भी ऊँची जस्थनत कयों न प्राप्त कर ली िो, परंतु किीं ंभी रुकना निीं िै। कयोंकक िमारे सामने अनंत भववतव्यताएँ िैं। और गीता भी िमें किीं ंबीच की अवस्था में रोके त्रबना सीधे अनतमानस के छोर तक ले जाती िै।

इस अवस्था में िमारे ऊपर दूसरों की किया (व्यविार) के प्रनत भी समता रिेगी। वे ऐसा कोई व्यविार या किया निीं कर सकतेजो उस आंतररक एकमव, प्ेरम और सिानुभूनत (सामंजस्य) में कोई अन्तर िाले, जो कक सभी

में एक ि◌ी आममा के, सभी प्राखणयों में व्याप्त भगवान् ◌्के प्रमयक्ष बोध से उमपन्न ि◌ोती ि◌ै। परन्तु व्यविार में ऐसा आवश्यक निीं ि◌ै कक उसमें दूसूरे लोगों और उनकी कियाओं के प्रनत ननष्प्रनतरोध सहिष्णुता तथा अधीनता का, सिनशील ननववरिीध स्वीकृनत का भाव ि◌ो, ऐसा निीं ◌ंि◌ो सकता, कयोंकक भगवान् ◌्और वैश्व संकल्प का उपकरण ि◌ोकिर सतत् ◌्आज्ञाकाररता का अवश्य ि◌ी यिी तो अशभप्राय ि◌ै कक जगत् ◌्में ववरोधी शजकतयों का जो संघष ि◌चल रिा ि◌ै उसमें उन वैयजकतक कामनाओं से युद्ध करना जो ननश्चय ि◌ी अपनी ननजी अिमय तुजष्ट चािती ि◌ैं। इसीशलए अजुनि को आदेश हदया गया ि◌ै कक वि प्रनतरोध करे, युद्ध करे और ववजय प्राप्त करे; परंतुद्वेष-रहित ि◌ोकर अथवा व्यजकतगत कामना या व्यजकतगत शत्रुता या वैर-भाव छिोकर लिे,◌ े कयोंकक मुकत पुरुष के शलए ये भाव असंभव ि◌ैं। लोगों को भगवन्माग ि◌पर बनाए रखनेऔर चलाने के शलए, ननरििंकार रूप से, लोकसंग्रि के शलए कम ि◌ करना, वि धम ि◌या ववधान ि◌ै जो भगवान् ◌्के साथ, ववश्व-पुरुष के साथ अपनी अंतराममा की एकता से स्वभावतः उमपन्न ि◌ोता ि◌ै, कयोंकक ववश्व के अखखल कम ि◌का संपूण ि◌अशभप्राय और लक्ष्य यिी ि◌ै। सभी जीवों के साथ ि◌मारी एकता से इस कम ि◌का कोई ववरोध निीं ◌ंि◌ै, यिा ◌ाँतक कक उनसे भी कोई ववरोध निीं ◌ंि◌ै जो यिा ◌ाँववरोधधयों और शत्रुओं के रूप में प्रस्तुत ि◌ैं। कयोंकक भगवान् ◌्का जो लक्ष्य ि◌ै विी उनका भी लक्ष्य ि◌ै, कयोंकक विी सबका अप्रमयक्ष लक्ष्य ि◌ै, यिा ◌ाँतक कक उन जीवों का भी जजनके बहिमुखि मन अज्ञान और अिंकार से ववभ्शमत ि◌ोकर पथ से भटका करते ि◌ैं और अपनी अंतःपे्रेरणा का प्रनतरोध ककया करते ि◌ैं। उनका प्रनतरोध करना और उन्िें पराजजत करना ि◌ी उनकी सबसे बिी बाह्य सेवा ि◌ै। इस दृजष्ट के द्वारा गीता उस अपूण ि◌शसद्धांत से बच जाती ि◌ै जो समता की एक ऐसी शशक्षा से उमपन्न ि◌ो सकता था जो अव्याविाररक रूप से समस्त संबंधों की अविेलना करती ि◌ो और जो उस दुबुलिकारी पे्रेम की शशक्षा से उमपन्न ि◌ो सकता था जजसके मूल में ज्ञान का सवथिा अभाव ि◌ोता ि◌ै, जबकक गीता उस सारभूत तत्त्व को अक्षुण्ण बनाए रखती ि◌ै। अंतराममा के शलए सबके साथ एकमव, हृदय के शलए अचल ववश्व-पे्रेम, सिानुभूनत और करुणा; परन्तु ि◌ाथों के शलए नैव्यजिकतक रूप से हित-साधन करनेका स्वातंत्र्य - ऐसा हित-साधन निीं ◌ंजो भगवान् ◌्की योजना का कोई ववचार न करे या उसके ववरुद्ध जाकर इस या उस व्यजकत के सुख-साधन में लग जाए, अवपतु ऐसा हित-साधन जो सृजृष्ट के ि◌ेतु का सियक ि◌ो, जजससे मनुष्यों को अधधकाधधक सुख और शे्रेय प्राप्त ि◌ो, सब भूतों का संपूण ि◌कल्याण ि◌ो।

गीता की इन सब बातों का अधधकांश लोग त्रबल्कुल गलत अथ ि◌लगाते ि◌ैं कक सबसे पे्रेम करो, ककसी से भी राग-द्वेष मत करो, सबके साथ समान व्यविार करो आहद-आहद। युद्ध के समय जिााँआसुररक शजकतयााँ सामने खिी ि◌ों और दैवी शजकतयों को पराजजत करने ◌े के शलए तमपर ि◌ों, विााँ अजुनि यहद किे कक मेरे शलए तो कौरव और पांडव सब समान ि◌ैं कयोंकक म ◌ैंएक आममा ि◌ूाँ और इन सब को भी आममा के रूप में देखता ि◌ूाँ, मुझे ◌ेबाकी चीजों से कया मतलब ि◌ै, मुझे ◌ेतो भगवान् ◌्का भजन करना चाहिए, तो यि बुित ि◌ी मूखतिापूण ि◌ि◌ोता। जब लोग नैनतकता की बात करते ि◌ुए किते ि◌ैं कक ि◌में तो सबसे पे्रेम ि◌ै, ि◌मारी दृजष्ट में तो सभी समान ि◌ैं इसशलए ि◌म तो ककसी प्रपंच में निीं ◌ंपिते तब ि◌ो सकता ि◌ै कक ऐसे व्यजकतयों के अन्दर दूसूरों के प्रनत थोिी-बुित सिानुभूनत ि◌ो परन्तु वास्तव में ऐसे लोग ननरे अज्ञानी ि◌ी ि◌ोते ि◌ैं, कयोंकक सच्चा ज्ञान आने पर ऐसा दृजष्टकोण निीं ◌ंरिता।

अब प्रश्न उठता ि◌ै कक गीता जजस समता की ओर इंधगत कर री ि◌ै उसमें ि◌ोने ◌ेपर व्यजकत को जब सबमें परमाममा हदखाई देते ि◌ों तब उसे चीजें कैसी नजर आती ि◌ोंगी और सभी के साथ वि ककस प्रकार का व्यविार करेगा? कयोंकक इन ववषयों में ककसी मानशसक दृजष्टकोण से कोई लाभ निीं ि◌ोता। ककसी प्रकार के मानशसक शसद्धांत के आधार पर ि◌में इस ववषय में कोई सिायता निीं ◌ंशमलती कक दूसूरों के साथ ि◌में ककस प्रकार व्यविार करना चाहिये। इसशलए दूसूरों के साथ जीवन में ि◌म कैसा व्यविार करें, इसका सच्चा आधार कया ि◌ोना चाहिये? यहद ि◌म उपननषदों की वाणी को मानते ि◌ैं कक केवल एक परमाममा की ि◌ी सर्त्ा ि◌ै और वे ि◌ी सबमें अशभव्यकत ि◌ो रि ि◌ैं, उनके अनतरररकत दूसूरा कोई ि◌ै ि◌ी निीं, सबमें ब्रह्म ि◌ै, सारे मनुष्य भगवान् ◌्के चलाए ि◌ुए ि◌ी चल रि ि◌ैं, तो इन सब बातों का व्याविाररक स्वरूप और इनके कियान्वयन का आधार कया ि◌ोना चाहिये? अजुनि के पास तो भगवान् ◌्स्वयं रथ में ववराजमान थे ◌ेऔर उसका हदशाननदेश कर रिे थे परन्तुसामान्य व्यजकत को तो यि परम सौभाग्य प्राप्त निीं ि◌ोता। यहद व्यजकत को सशरीर गुरु की उपजस्थनत का परम सौभाग्य प्राप्त ि◌ो तब तो कफर व्यविार के ककन्िीं बािरी मानदंडों की कोई आवश्यकता ि◌ी निीं ◌ंरिती कयोंकक गुरु का वचन ि◌ी परम ववधान ि◌ोता ि◌ै। जैसे कक, जो लोग श्रीमाताजी के पास रितेथे उन्िें ककन्िीं भी ननणियों के शलए ककन्िींबािरी आधारों की आवश्यकता निींथी। कया करना ि◌ै और कैसे करना ि◌ै उसका ननदेश तो श्रीमाताजी से प्राप्त ि◌ो जाता था और जो वे किती थीं विी अंनतम ननणिय ि◌ोता था। इसशलये इसमें व्यजकत पर स्वयंननणिय करने का ककसी प्रकार का कोई भार निीं रि जाता था। परन्तु आम व्यजकत के शलए अपनेदैननक कायि–व्यविार में ककसी सिी मागदिशनि तथा व्यविार के ककसी उधचत ववधान की समस्या बनी रिती ि◌ै। इसके समाधान के रूप में बिुतों का किना ि◌ै कक सबसे प्ेरम का व्यविार करना चाहिए। परन्तु बाह्य रूप से तथाकधथत प्ेरम का व्यविार और अन्तर में प्ेरम का अनुभव दो शभन्न चीजें ि◌ैं। भगवान् ◌्द्वारा बिुत से असुरों और राक्षसों का संिार ककये जानेपर भी ि◌मारे ऋवष-मुनन और िमारे सभी सद्ग्रंथ यिी किते ि◌ैं कक भगवान् ◌्ने उनका उद्धार कर हदया और उन्िें वि गनत प्रदान की जो ककन्िीं ननयम और व्रतों को पालन करने ◌ेवाले साजत्त्वक व्यजकत के शलए भी दुलुभि ि◌ै। इसशलए ि◌में कया करना चाहिये इस बात का व्याविाररक मागदिशनि ि◌में न तो ककन्िींनैनतक ववधानों से प्राप्त ि◌ोता ि◌ै, न ककन्िीं ◌ंशास्त्रों से, न ककन्िीं तथाकधथत परोपकाररता या हितैवषता के ववचारों से। कयोंकक वास्तव में तो नैनतकता, परोपकाररता, हितैवषता, प्ेरम आहद ऐसी चीजें ि◌ैं जजनका बािरी रूप से कोई मानदंड स्थावपत निीं ◌ंककया जा सकता। इसशलये सच्चे व्यविार के मानक स्थावपत करने ◌ेकी समस्या बनी ि◌ी रिती ि◌ै। और व्यजकत जजतने ि◌ी अधधक मानशसक मानक स्थावपत करता ि◌ै उन्िें लागू ◌ूकरनेमें वि उतनी ि◌ी अधधक पीड़ा भोगता ि◌ै।

इसशलये श्रीअरववन्द वतमिान प्रसंग का उपयोग कर इस ओर ध्यान हदला रिे ि◌ैं कक व्यजकत बािरी रूप से व्यविार का कोई मानक स्थावपत निीं ◌ंकर सकता। सिी किया तो तभी ि◌ोगी जब व्यजकत स्वयंपरमाममा बन जाएगा कयोंकक भगवान् ◌्जो करते ि◌ैं विी सिी ि◌ै। सिी की पररभाषा भी विी ि◌ै। समय कया ि◌ै और कया निींवि तो परमाममा की किया से ि◌ो ननधाररित ि◌ोता ि◌ै और वे स्वयंतो समय से भी परे ि◌ैं। इसशलए उन पर कोई भी मापदण्ड लागू निींि◌ो सकता। जब ि◌म परमाममा की ओर बढ़ना प्रारमभ करते ि◌ैं तो धीरे-धीरे ि◌मारी सभी कियाएँ अपने आप ि◌ी ऊपर उठनेलगती ि◌ैं। चूंकक ि◌मारा ि◌मववकास चल रिा ि◌ै, तो उसमें यहद ि◌म कोई कृत्रत्रम या प्रचशलत मापदण्ड लागू कर दें कक सबसे प्ेरम करना चाहिए, सबके साथ समान व्यविार करना चाहिए आहद, तो यि अधधक

समय तक हटक निींसकता कयोंकक िमें वास्तव में पता िी निीं िै कक ककस समय, ककसके साथ कैसा व्यविार करना चाहिए कयोंकक पृथ्वी पर तो उन असीम परमाममा के परम् ्रूप की अशभव्यजकत िोनी िै और इसे ककसी भी मानशसक आदश िकी सिायता से समझा िी निीं ंजा सकता।

अभी तक समाज में जजतनेभी आदश िलागू ककए गए िैं वेकेवल ऐसे पथसंकेतों के रूप में िी रिे िैं जो मनुष्य को उसकी पाशववक प्रकृनत से कुछ ऊपर उठाने में उसकी सिायता करते िैं और ये इस तरीके के सामूहिक और सावभिौशमक मानक या आदश िके रूप में िोतिैं जो मनुष्यों को एक-दूसूरे को नुकसान पिुाँचाने से रोकतिैं। इसके अलावा व्यजकत को इन मानशसक आदशों से कोई ववशेषे मागदिशनि निीं ंशमल सकता। ब्िी-से-ब्िी नैनतकता भी व्यजकत का मागदिशनि निीं ंकर सकती। ब्िे–से-ब्िा ब्रह्मज्ञान भी जैसे िी िमारे मन के समपकि में आता िै या किं कक मन के द्वारा जजस प्रकार समझा जाता िै वि िमारा मागदिशनि निीं ंकर सकता। यहद िम उसके मापदण्िों को जीवन में लागू करने ेका प्रयास करते िैं तो िम देखेंगे कक िमारी प्रकृनत में जो जगदमबा ववराजमान िैं, जो िमें कदम-कदम पर चलाती िैं, वे इन मानदण्िों को िजारों बार तिो् देंगी। इसशलये आध्याजममक जीवन में ये आदश िकोई मागदिशनि निीं ंकर सकते। आंतररक चीजों का तथा आममा का अपना िी ननराला ववधान िै जो ककन्िींभी मानशसक सूत्रों से त्रबल्कुल परे िै और जजतना िी अधधक िम उस पर िमारे कृत्रत्रम
शसद्धांत लादने ेका प्रयास करेंगे उतना िी अधधक िम अपनी आममा के ववधान का ननषेध कर अपने-आप को संकट की जस्थनत में िालेंगे। आममा का ववधान नैनतक या अनैनतक निींबजल्क मन-बुद्धध से त्रबल्कुल परे िै। इसशलए संभव िै कक व्यजकत आममा की प्रेरणा से सिी कम िकर रिा िो, परंतुउस ववधान को समझना तो उसके शलए भी संभव निीं ंिै, कयोंकक वि ववधान समझ का ववषय िी निीं िै।

इसशलये इसके अंदर व्याविाररक मनोभाव तो यि िै कक जो कुछ घहटत िो चुका िोता िै वि भले िमें अपनी बुद्धध से कैसा भी कयों न प्रतीत िोता िो, परंतुवि सदा सवश्रेिष्ठ िी िोता िै कयोंकक जगदंबा की किया सदा सवश्रेिष्ठ िी िोती िै। इसशलए शसद्धांततः तो सब कुछ सवश्रेिष्ठ िी िो रिा िै परंतुचूंकक यि एक िमववकासमय जगत् ्िै और इसमें चीजें स्थैनतक निींगनतशील िोती िैं, इसशलए जब उत्तरोत्तर ववकास चल रिा िै तो इसमें मिारी भावनाएाँ, िमारे ववचार, िमारी धारणाएाँ, िमारे नैनतकता-अनैनतकता के शसद्धांत आहद भावी ववकास को और भावी घटनिाम को बदलने के शलए श्रीमााँ के साधन िोतिैं। इस दृजष्टकोण से सभी चीजों का अपना मित्त्व िैं। जो कुछ घहटत िो चुका िै वि तो ननजश्चत रूप से सवोत्तम िी घहटत िुआ िै परंतुऐसा दृजष्टकोण िम चीजों के घहटत िोनेके बाद िी अपना सकतिैं, उससे पूव िनिीं। कयोंकक चीजों के घहटत िोने से पूव ि- जैसा कक ऊपर बताया जा चुका िै - िमारे ववचार, भावनाएाँ, कामनाएाँ आहद और इन सब से अधधक सतत् ्चुनाव करने वाली िमारी सचेतन इच्छाशजकत, श्रीमााँ के वे शजकतशाली साधन िैं जो उस चीज को घहटत करते िैं जो कक सवोत्तम िै। यहद मि इस प्रकार के सचेतन चुनाव से इनकार करते िैं- इस प्रकार की मानशसक धारणा की छाया में कक सब कुछ सदा िी श्रेिष्ठ िोता िै - तो जजस हिद तक िम ऐसा करते िैं उस हिद तक िम श्रीमााँ के काम में अपना सियोग सीशमत कर देते िैं। एक अवस्था के बाद जब व्यजकत सचेतन रूप से आध्याजममक पथ पर अग्रसर िोता िै तब उसे मिसूस िोनेलगता िै कक उसके सारे कियाकलाप ऐसे िोंगे जो श्रीमाताजी के काय िके शलए आवश्यक िैं। वि जो

भूलें करता िै वे ेभी उसे कुछ पाठ शसखाने के शलए िी िोती िैं। और ज्यों-ज्यों व्यजकत अधधकाधधक जगदंबा की शजकत के प्रनत अपने-आप को खोलता जाएगा मयों िी मयों उनकी किया उसमें अधधक सुचारू रूप से िोने ेलगेगी और उसके कम िभी अधधकाधधक उनकी किया के अनुकूल और उसमें सियोगी िोंगे। और तब व्यजकत पाएगा कक सारे बािरी मापदंड त्रबल्कुल बेकार िैं। और पिले जो चीजें ववकास में सिायक थींवे िी बाद में बंधनस्वरूप लगने लगती िैं और व्यजकत को उन सब को छोड़ देना िोता िै, उन्िें नष्ट कर देना िोता िै। इसीशलये गीता अपनी सारी

शशक्षा [illegible] जब इस स्तर तक ववकशसत िो

[illegible] शलए पररपकव िो जाता िै।
वास्तववक जस्थनत तो वि िै कक व्यजकत इस सीमा तक हदव्य जननी को हदया जा चुका िो कक उन्िें अपनी किया के शलए व्यजकत की मानशसक, मनोवैज्ञाननक तथा भावनाममक संरचनाओं की अनुमनत की आवश्यकता न िो। कफर व्यजकत के सारे किया-कलाप अधधक गिरे रूप से श्रीमाताजी से जुड़ जाएँगे।

परंतु बािरी किया तथा लक्षणों के आधार पर तो आवश्यक निीं ंकक िम अपनेसामने खड़े ेपरमाममा तक को भी पिचान सकें। िमारे सामनेपरमाममा के अवतार उपजस्थत िों और कफर भी आवश्यक निींकक िम उन्िें उनके कमों से पिचान पाएँ। जब अजुनि िी श्रीकृष्ण को निींपिचान पाया तब दूसरों की तो बात िी कया िै। यि पिचान ककन्िीं भी बािरी तरीकों से निींकी जा सकती। यि केवल भीतर से िी िो सकती िै।

॥. ननवाणि तथा संसार में कम ि

ज्ञानमाग िका एकांगी रूप से अनुसरण करनेवाले संकीण िशसद्धान्त की तरि केवल अक्षर पुरुष के साथ एक िो जाना िी निीं,ं अवपतु समग्र सत्ता के योग द्वारा जीव का पुरुषोत्तम के साथ एक िो जाना िी गीता की संपूण ि शशक्षा िै।....परन्तु ुपुरुषोत्तम के साथ एकता स्थावपत करनेका सीधा रास्ता अक्षर पुरुष की सुदृढ़ अनुभूनत में से िोकर िी िै, और इस पर गीता ने पिली आवश्यकता बताकर बिुत बल हदया िै, केवल जजसके बाद िी कम िऔर भजकत अपना संपूण िहदव्य मित्त्व या अथ िप्राप्त करते िैं, इसी कारण िम गीता के आशय को समझने में भूल कर जाते िैं। कयोंकक यहद िम केवल उन्िींश्लोकों को देखें जजनमें इस आवश्यकता पर अमयंत बलपूवकि आग्रि ककया गया िै और गीता के ववचारों के उस संपूण िम पर ध्यान देनेमें लापरवािी करें जजस िम में ये ववचार आए िैं, तो अनायास िी इस ननणयि पर पिुँच सकतेिैं कक गीता वास्तव में कमिीन लय को जीव की अंनतम जस्थनत के रूप में और कम िको अववचल अक्षर पुरुष की जस्थरता की ओर प्राथशमक साधन मात्र के रूप में प्रनतपाहदत करती िै। पाचाँवें अध्याय के अन्त में और छठे अध्याय में सवत्रि यिी आग्रि अमयंत प्रबल और व्यापक िै। विााँमि एक ऐसे योग का वणनि पातेिैं जो प्रथम दृजष्ट में कममाग िसे ववसंगत प्रतीत िोगा और विााँ िम बारंबार ननवाणि शब्द का प्रयोग उस जस्थनत का वणनि करनेके शलए ककया गया पातेिैं जजस पद को योगी प्राप्त करता िै।

गीता में अक्षर पुरुष की अववचलता और समानता की जो बातें किी गई िैं वे तो साधना में केवल शुरुआती चीजें िैं, अधधकांश लोग इसी को गीता की अंनतम शशक्षा समझकर इसके आधार पर िी ननष्कष िननकाल

लेते ि ैं, जो कक मूढ़ता ि ै। कयोंकक इनका ननरूपण करने ेके बाद गीता कमयियोग, ज्ञानयोग और इनकी पराकाष्ठा के रूप में भजकतयोग के गंभीरतर ववषयों का ननरूपण करती ि ै। इसशलये श्रीअरववन्द यिााँमिें सचेत करते ि ैं कक गीता के अध्ययन में ि िमें यि सावधानी बरतनी चाहिये कक उसके श्लोकों को संपूण ि कलेवर से अलग ि टाकर न लें बजल्क उसकी संपूण ि शशक्षा को ध्यान में रखकर एक उधचत पररपे्रेक्ष्य में ि ी लें अन्यथा गीता की शशक्षा को समग्रता से निीं ंसमझ पाएँगे। ि िमें यि देखना ि ोगा कक गीता क्षर और अक्षर से ि ोतेिुए ककस प्रकार पुरुषोर्त्म तत्त्व की ओर अपनी शशक्षा को ववकशसत कर रिी ि ै। यहद अक्षर ब्रह्म ि ी अंनतम जस्थनत ि ो और कम ि उस जस्थनत तक पिुाँचने ेके शलए साधन मात्र ि ी ि ों, तब तो कफर एकमात्र उद्देश्य रि जाता ि ै कक व्यजकत यथासंभव और यथाशीघ्र कमों का मयाग कर के अक्षर ब्रह्म की शांनत में लीन ि ो जाए। और एक बार अक्षर ब्रह्म की शांनत और समता में लीन ि ोने पर कफर व्यजकत के शलए कोई कम ि निीं ंबचता। पर तब तो पे्रम का, हृदय के भाव का, भजकत का तो कोई स्थान ि ी निींरि जाता। जबकक गीता तो भजकतयोग को कम ि और ज्ञान की पराकाष्ठा के रूप में प्रनतपाहदत करती ि ै। इसशलए यहद ि म अक्षर ब्रह्म को प्रनतपाहदत करने ेवाले श्लोकों को ि ी गीता का अंनतम वचन मान बैठें तो यि गीता की संपूण ि शशक्षा को एकांगी या कफर अधूरे रूप से ि ी देखना ि ुआ।

इस पद या जस्थनत का लक्षण ि ै ननवाणि की परम् ्शाजन्त, शाजन्तंननवाणिपरमां, और मानो इस बात को सवथिा स्पष्ट करने ेके शलए कक यि ननवाणि बौद्धों का शून्यू में, अथिात् ्अपनी सर्त्ा के आनंददायक ननषेध में, ननवाणि निीं ि अवपतु आंशशक सर्त्ा का पूण ि सर्त्ा में वेदाजन्तक लय ि ै, गीता ने सदा 'ब्रह्म-ननवाणि' शब्द का प्रयोग ककया ि ै, जजसका अथ ि ि ै ब्रह्म में ववलीन ि ोना; और 'ब्रह्म' शब्द से यिााँअशभप्राय अवश्य ि ी अक्षर ब्रह्म से प्रतीत िोता ि ै, कम-से-कम मुख्यतः उस अंतःस्थ कालातीत आममा को द्योनतत करने ेके शलए प्रयुकत ककया गया प्रतीत िोता ि ै जो बाह्य प्रकृनत में व्याप्त या अंतननिहित ि ोतेिुए भी सकिय रूप से उसमें कोई भाग निीं ंलेती। इसशलये िमें यि देखना ि ोगा कक गीता का यिााँ अशभप्राय ककस ओर ि ै, और ववशेषेकर यि कक यि शाजन्त कया पूण ि नैष्कमय ि की शाजन्त ि ी ि ै, तथा कया अक्षर ब्रह्म में ननवाणि ि ोने ेका अशभप्राय क्षर के समपूण ि ज्ञान तथा चेतना का तथा क्षर में ि ोनेवाले समपूण ि कम ि का पूण ि उन्मूलन ि ी ि ै? ननश्चय ि ी ि तथा ककसी प्रकार के जगत्-अजस्तमव और कम ि को एक-दूसूरे से सवथिा ववसंगत मानने ेके अभ्यस्त ि ैं और यिा ाँतक तकि दे ि ालनेकी प्रववृर्त् रख सकते ि ैं कक 'ननवाणि' शब्द का प्रयोग ि ी अपनेआप में पयाप्ति ि ै और इस ववववाद का ननणयि कर देता ि ै। परन्तु यहद ि म बौद्ध मत का ि ी सूक्ष्म दृजष्ट से ववचार करें तो ि िमें यि सन्दिे ि ोगा कक कया यि पूण ि ववसंगतता बौद्धों तक के शलए भी यथाथतिः थो या निीं; ं और यहद ि म गीता को ध्यान से देखें तो ि म पाएँगे कक यि ववरोध या ववसंगतता वेदान्त की इस परम् ्शशक्षा के अन्दर निीं ि ै।

'ब्रह्मववद् ब्रह्मखण जस्थतः' अथात्ि ब्रह्मचेतना में पिुाँचे ि ुए ब्रह्मववद् की पूण ि समता की चचिा करने के बाद उसके बाद के नौ श्लोकों में गीता ने ब्रह्मयोग और ब्रह्मननवाणि-संबंधी भाव को ववस्तार के साथ कि ा ि ै।

बाह्यस्पैषेट्रसक्तात्रा वर्तदत्यात्रन यत्सुखर् ्।

स ब्रह्योगयुक्तात्रा सुखर्क्षयश्रुते।। २१ ।।

२१. जब जीर् और अधधक बाह्य वर्षयों के स्पर्शों रें् आसक्त नहीं ंहोता, तब र्ह आत्र्ा रें् जो सुख वर्द्यर्ान है उसे प्राप्त करता है; ऐसे र्नुष्य का आत्र्ा योग के द्र्ारा ब्रह्र् के साथ युक्त होने ेके कारि अवर्निार्शी सुख का लाभ करता है।

ये दह संस्पिजवा भोगा दु:खयोनय एर् ते ।
आद्यततर्तत: कौततेय न तेषु ुरर्ते बुध: ।। २२ ।।

२२. बाह्य पदाथों के (इजतद्रयों के साथ) स्पर्शों से उत्पतन होनेर्ाले जो सुखभोग हैं र्े केर्ल दु:ख का कारि होते हैं; उनका आरंभ और अतत होता है; इसमलये, हे कौततेय! ज्ञानी उनरें् आनतद (सुख) का अनुभर् नहीं करता।

क्नोतीहैर् य: सोढुं प्राक्र्शरीरवर्र्मोक्षात् ्।
कार्क्रोधोद्भर्ं र्ेगंस युक्त: स सुखी नर: ॥ २३॥

२३. जो र्नुष्य र्शरीर छूटने ेसे पहले यहा ाँपृथ्र्ी पर र्शरीर रें् रहतेहुए ही कार् और क्रोध के र्ेग (तीव्रता) को सहन करने ेरें् सर्थ वहोता है र्ह योगी है, र्ह सुखी र्नुष्य है।

गीता किती िै कक कामर्ोध और आवेग के आिमणों से मुकत िोने ेके शलए अनासकत िोना अमयावश्यक िै, एक ऐसी मुजकत जजसके त्रबना सच्चा सुख समभव निीं। वि सुख और वि सममव, मनुष्य को शरीर में रिते िुए िो पूण िरूप से प्राप्त करनिोंगे; ननमन ववक्षुब्ध प्रकृनत के जजस दासमव के कारण वि यि समझता था कक पूण िमुजकत शरीर को छोड़नेके बाद िी प्राप्त िोगी, उस दासमव का लेशमात्र भी उसके अन्दर निीं रि जाना चाहिए: इसी जगत् ्में, इसी मानव-जीवन में अथात् िदेि मयाग करने ेसे पिले िी 'प्राक् शरीर-ववमोक्षणात्' ् पूण िआध्याजममक स्वातंत्र्य लाभ करना और भोगना िोगा।

योऽतत: सुखोऽततरारार्स्तथाततजयोततरेर् य: ।
स योगी ब्रह्र्तनर्ाणं ब्रह्र्भूतोऽधधगच्छतत ।। २४।।

२४. र्ह जजसे आंतररक सुख और आंतररक आरार्-वर्श्रार् और आंतररक प्रकार्श प्राप्त है, र्ह योगी ब्रह्र् हो जाता है और ब्रह्र् रें् तनर्ाणव को प्राप्त हो जाता है।

यिा ाँस्पष्ट रूप से ननवाणि का अथ िि उस उच्चतर आध्याजममक, अंतराममा, में अिंकार का लोप िोना जो सदा देशकालातीत, कायर्कारणबंधनातीत तथा क्षरणशील जगत् ्के पररवतिनों से अबद्ध िै और जो सदा आममानन्दमय, आममप्रकाशमय और ननमय-शाजन्तमय िै। वि योगी अब अिंकारस्वरूप निीं ंरि जाता, ऐसा छोटा-सा व्यजकतमव निीं रि जाता जो मन और शरीर से सीशमत िो; वि ब्रह्म िो जाता िै; उसकी चेतना शाश्वत पुरुष की उस अक्षर हदव्यता के साथ एक िो जाती िै जो उसकी प्राकृत सत्ता में व्याप्त िै।

परन्तु कया यि लौककक-चेतना से दूरू, समाधध की ककसी गिरी ननरा में चले जाना िै, अथवा कया यि प्राकृत सर्ता तथा व्यजष्ट पुरुष के ककसी ऐसे परम् ्ब्रह्म (पुरुष) में लय िो जानेया मोक्ष पाने की तैयारी िै जो सवथिा और सदा प्रकृनत और उसके कमों से परे िै? कया ननवाणि को प्राप्त िोने ेके पिले लौककक-चेतना से संबंध-ववच्छेद आवश्यक िै, अथवा कया ननवाणि जैसा कक उस प्रकरण से मालूम िोता िै, एक ऐसी अवस्था िै जो लौककक-चेतना के साथ-साथ रि सकती और अपनिी तरीके से उसका अपनेअन्दर समावेश भी कर सकती िै? यि बाद वाले प्रकार की अवस्था िो स्पष्ट रूप से गीता द्वारा अशभप्रेत मालूम िोती िै, कयोंकक इसके बाद के िी श्लोक में गीता ने किा िै कक...

लभतततेब्रह्मतनरि्व रृ्षयः क्षीकल्र्षाः ।
तछतनद्वेधा यतात्र्ानः सर्भूवतदहते रताः ।। २५।।

२५. जजनके पापरूप र्ल धुल गये हैं, जजनकी संियरूप ग्रजतथ कट गयी है, जजतहोंने अपनेआत्र्ा (र्न, इजतद्रय आदद) को अपनेरि्र्ें ककया है, जो सर्स्त प्राणियों के दहतसाधन र्ें लगे रहतेहैं ऐसे ऋवष ब्रह्म र्ें तनरि्व को प्राप्त होते हैं।

कार्क्रोधवर्युक्तानां ंयतीनां यतचेतसार् ्।
अमभतो ब्रह्मतनरिं र्ततेव वर्ददतात्र्नार् ्।। २६।।

२६. जो कार् और क्रोध से रु्क्त हो गये हैं और जजतहोंने अपनेधचत्त को संयत ककया है (आत्र्प्रभुत्र् प्राप्त ककया है), ऐसे यततयों (जो योग और तपस्या के द्वारा आत्र्संयर् का अभ्यास करते हैं) के सब ओर ब्रह्म र्ें तनरि्व रहता है, उतहें पररव्याप्त ककये रहता है, र्े पहले ही उसर्ें तनर्ास करते हैं क्योंकक उतहें आत्र्ा का ज्ञान होता है।

ब्रह्मननवाणि कोई ऐसी चीज निींि जो कक तब प्राप्त िो जब व्यजकत शरीर का मयाग कर देता िै। पाधथवि जगत् ्में रितिेुए भी जब व्यजकत उस ब्रह्म चेतना में प्रवेश करता िै तब उसे अपने चारों ओर िी उस ननवाणि का अनुभव तथा आस्वादन प्राप्त िोता िै। यहद ब्रह्मननवाणि शरीर रिते संभव न िो और उसके शलए इस दिे को मयाग देना आवश्यक िो तब तो कफर अजुनि को उस ननवाणि की जस्थनत को प्राप्त करने ेके शलए दिे को मयाग देना िोगा। यहद ऐसा िो तब तो गीता की शशक्षा तो बिुत िी भ्रांत प्रकार की व ऐसी िुई जो अपना िी खंनि करती िै। इसशलए यि स्पष्ट िी िै कक ननवाणि तो चेतना की एक ऐसी जस्थनत िै जो दिे में रितिेुए िी प्राप्त की जा सकती िै और ऐसा भी निीं ंिै कक यि ननवाणि योग की कोई बिुत ऊँची जस्थनत िो। कयोंकक इस जस्थनत को प्राप्त िोने ेपर श्रीभगवान् ्अजुनि को किते िैं कक अब मेरे पास आ जा कयोंकक उस ब्रह्म का आधार भी म ैंिी िूाँ। इसशलए मेरी भजकत करने से तू ब्रह्म के भी परे चला जाएगा। परंतुचूंकक अजुनि ने अपनी परंपरा से ये बातें सुन रखी थी कक ननजनि वनों में जाकर या हिमालय में जाकर तप करने से िी ब्रह्म की प्राजप्त िोती िै, इसशलए भगवान् ्उसकी बुद्धध में प्रकाश लाने के शलए, उसकी पूवधिारणाओंको तोिनेतथा उसे आगे ले जानेके शलए स्पष्ट कर रिे िैं कक

जो उस चेतना में पिुँच गया िै उसके शलए तो चारों ओर ननवाणि िी ननवाणि िै। इस बात से एक बिुत िी मित्त्वपूण ि

कतो स्पष्ट [illegible] बैठते िैं वि तो
केवल एक आरंशभक सोपान िी िै। कयोंकक कमों का मयाग कर वन में जाकर साधना कर के ब्रह्म को प्राप्त करना
िी यिद गीता की शशक्षा का सार िोता तो अजुनि तो पिले िी उसके शलए तैयार था। तब तो शेषे गीता को ववकशसत
करना और उसे युद्ध में प्रवृत्त् करना एक असंगत बात िोती। जब िमें इन बातों के पीछे का रिस्य समझ में आता
िै तभी िम सच्चे रूप से समझ पाते िैं कक जो अकम िका उपदेश कर रिे िैं कैसे वे िी घोर कम िको संपाहदत करते िैं
और जो संसार के मिो को मयागनेकी बात करते िैं वे िी श्री शंकराचाय िअपनी माता के अंनतम संस्कार करने ेके
शलए प्रस्तुत िोते िैं।

अथात् िआममा का ज्ञान िोना और आममवान् िोना िी ननवाणि में रिना िै। यि स्पष्ट िी ननवाणि के ववचार का एक व्यापक ववस्तार रूप िै। काम- िोधाहद दोषों के सभी दाग-धब्बों से मुजकत, और यि मुजकत जजस सममव-बुद्धध के आमम-प्रभुमव पर आधाररत िै वि, सब भूतों के प्रनत सममव, सब के प्रनत कल्याणकारी प्रेम, अज्ञानजननत उस संशय और अंधकार का अंततः नाश जो सवि–एकीकारी भगवान् से और िमारे अन्दर और सबके अन्दर जो 'एक' आममा िै उसके ज्ञान से िमको अलग रखता िै, ये सब स्पष्ट िी ननवाणि की अवस्थाएँ िैं जो गीता के इन श्लोकों में प्रनतपाहदत की गयी िैं, इन्िींसे ननवाणि-पद शसद्ध िोता िै और ये िी उसके आध्याजममक तत्त्व िैं।

इस प्रकार ननवाणि लौककक-चेतना और संसार के कमों के साथ स्पष्टतः संगत िै। कयोंकक जो ऋवष ननवाणि को प्राप्त िैं वे इस क्षर जगत् में भगवान् के ववषय में सचेतन िैं और कमों के द्वारा उनके साथ घननष्ठ संबंध बनाये रखते िैं; वे सब भूतों के कल्याण में लगे रिते िैं सवभूितहिते रता... संसार में कम िकरना ब्रह्म में ननवास करनेकी जस्थनत से बेमेल निीं िै, उल्टे यि तो उस जस्थनत की अपररिाय िशत िऔर बाह्य पररणाम िै, कयोंकक जजस ब्रह्म में ननवाणि लाभ ककया जाता िै, जजस आध्याजममक चेतना में िमारा पृथृक् अिभाव ववलीन िो जाता िै, वि न केवल िमारे अन्दर िी िै, अवपतु इन सब भूतों में भी िै; वि इन सब जगत्–प्रपंचों से केवल पृथृक् और इनके ऊपर िी निीं, अवपतुइन सबमें व्याप्त िै, इन्िें धारण ककये िुए िै और इनमें ववस्ताररत िै..

परन्तु तुरंत इसके बाद िी कफर दो श्लोक िम ऐसे पाते िैं जो इस ननष्कष िसे दूर ले जाते प्रतीत िो सकते िैं।

स्पिातवकृत्र्ा बदहबाह्ययांश्र्क्षुचैर्ाततरे रुर्ोः ।

प्रिाापानौ सर्ौ कृत्र्ा नासाभ्यततरचाररिौ ।। २७।।

यतेजतद्रयर्नोबुद्धधर्ुतवनर्ोक्षपरायिः ।

वर्गतेच्छाभयक्रोधो यः सदा र्ुक्त एर् सः ।। २८।।

२७-२८. बाहरी पदार्थों के सर्स्त स्पिों को अपनेसे बाहर कर के और दृजष्ट को रुर्ों के बीच र्ें जस्थर कर के, नामसका के तछद्रों र्ें गतत करनेर्ाले प्रि और अपान र्ायु को सर् कर के जजसने इजतद्रय, र्न और बुद्धध को संयत ककया है, जजससे कार्ना, भय और क्रोध दूरू हो गये हैं ऐसा जो र्ोक्ष र्ें लगा हुआ र्ुतन है र्ह सर्दवा र्ुक्त ही है।

यिा ◌ॉिम योग की एक ऐसी प्रणाली को पातें जो एक ऐसे तत्त्व को ले आती ि जो कमयिोग से और यिााँ तक कक उस ववशुद्ध ज्ञानयोग से भी शभन्न प्रतीत िोता ि जो वववेक और ध्यान से साधधत िोता ि; यि तत्त्व अपनेसभी लक्षणों से राजयोग की प्रणाली से संबद्ध ि और राजयोग की मनो-भौनतक तपस्या को प्रस्ताववत करता ि। इसमें मन की सभी प्रववृर्त् पर ववजय 'धचर्त्वृर्त्ननरोध' ि; इसमें श्वास पर ननयंत्रण 'प्राणायाम' ि; इसमें इंहरयों और दृजष्ट को भीतर खींचना ि। ये सब आंतररक समाधध की ओर ले जानेवाली प्रकियाएाँ ि, इन सबका लक्ष्य मोक्ष ि और सामान्य व्यविार की भाषा में मोक्ष किते ि, केवल पृथककारी अिं-चेतना के मयाग को िी निीं, अवपतु संपूण िसकिय कमि-चेतना के मयाग को भी, परब्रह्म में अपनी सर्त्ा के संपूण िअजस्तमव का लय कर देनेको। तो कया िम यि समझें कक गीता ने यिा ◌ाँइसका ववधान इस अशभप्राय से ककया ि कक इसी लय को मुजकत का चरम उपाय मानकर ग्रिण ककया जाए या इस अशभप्राय से कक यि बहिमुखि मन को वश में करनेका केवल एक ववशशष्ट उपाय तथा एक शजकतशाली साधन मात्र ि? कया यिी आखखरी बात, परम् ◌्वचन या मिावाकय ि? िम इसे दोनों िी मान सकते ि, एक ववशेषे उपाय, एक ववशशष्ट साधन भी और कम-से-कम चरम गनत का एक द्वार भी; अवश्य िी इस चरम गनत का साधन लय िो जाना निीं, अवपतु ववश्वातीत सर्त्ा में ऊपर उठ जाना ि। कयोंकक यिााँइस श्लोक में भी जो कुछ किा गया ि वि अंनतम वाकय निीं ◌ंि; मिावाकय, आखखरी बात, परम् ◌्वचन तो इसके बाद के श्लोक में आता ि जो इस अध्याय का अंनतम श्लोक ि।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्लवोकर्हेश्र्रर् ◌्।
सुहृदं सर्भूवतानां ◌ंज्ञात्र्ा र्ांजितततर्ृच्छतत ।। २९।।

२९. जब र्नुष्य र्ुझे ◌ेयज्ञ और तपस्याओंके भोक्ता के रूप र्ें, सर्स्त लोकों के र्हान् ◌्ईश्र्र के रूप र्ें, सर्स्त प्राणियों के सुहृद के रूप र्ें जान लेता है, तब र्ह िाजतत को प्राप्त हो जाता है।

जैसा कक श्रीअरववन्द ने स्पष्ट कर िी हदया ि और जो लोग साधना करते ि उनमें से अधधकांश यि जानते भी ि कक साधना में जो सबसे बिी बाधा आती ि वि ि धचर्त् की ववृर्त्यों और प्राण के आवेगों से उठनेवाली चंचलताओं की। िालाकाँक प्राण के ननयमन के शलए प्राणायाम देखने में तो एक बिुत िी यांत्रत्रक उपाय प्रतीत िोता ि परंतु ि बिुत िी कारगर। और जो भी इसे करता ि वि पाता ि कक इसे करनेसे प्राण की चंचलताओं में बिुत कुछ ननयमन आ जाता ि। पतंजशल के सूत्रों के अनुसार यम, ननयम, आसन, प्राणायाम, प्रमयािार, धारणा, ध्यान और समाधध के द्वारा व्यजकत अपनी चंचल मन, प्राण और शरीर की ववृर्त्यों से समाधध की अवस्था तक पिुाँचता ि जजसमें कक प्राणायाम चौथी अवस्था ि जो कक बाकी चार में सिायता पिुाँचाती ि। परंतु अपनी वतमिान पाशववक प्रकृनत को देखते िुए प्रतीत िोता ि कक केवल यम और ननयम को िी जीवन भर अभ्यास कर के शसद्ध कर पाना

ककसी भी व्यजकत के शलए लगभग असंभव ि◌ी ि◌ै। इसशलए पररपाटी यि थी कक लोग संसार का मयाग कर वनों में चले जाते थे ◌ेजिाँकफर बिारी कामनाएँ अधधक ि◌ावी निींिोती थींऔर इनका अभ्यास करना अधधक आसान ि◌ो जाता था। ि◌ालाकाँक आवश्यक निीं ◌ंि◌ै कक इससे भी यम-ननयम पूणतिः शसद्ध ि◌ो जाएँ, परंतुकफर भी कुछ ि◌द तक तो इनका अभ्यास ि◌ो ि◌ी जाता था। इसके बाद आसन और प्राणायाम के माध्यम से जब व्यजकत प्राण और शरीर का अधधक ननयमन कर लेता ि◌ै तब उसका प्राण अधधक पररष्कृत और सूक्ष्म बन जाता ि◌ै और व्यजकत भौनतक चेतना से ऊपर उठ जाता ि◌ै जजसके बाद उसे अनेकों अनुभव ि◌ोने ◌ेआरंभ ि◌ो जाते ि◌ैं। परंतु इस सब को श्रीअरववन्द ने अपनी योग पद्धनत में कोई अधधक ऊँचा स्थान निींप्रदान ककया। वे अपनी योग पद्धनत में भगवान् ◌्के प्रनत पूण ि◌समपणि पर ि◌ी बल देते ि◌ैं और इन सभी प्रचशलत प्रणाशलयों को इस रूप में माननिैं कक इनका अभ्यास व्यजकत अपनी साधना की ककसी जस्थनत ववशेष में और ककसी समय ववशेष पर और वि भी यहद आवश्यक ि◌ो तो कर सकता ि◌ै और ककस मात्रा में इनका अभ्यास करना ि◌ै यि भी उसे अपनी अंतराममा की आवश्यकता के अनुसार तय करना ि◌ोता ि◌ै। कयोंकक श्रीअरववन्द किते ि◌ैं कक अपने आप में इन सभी योग-प्रणाशलयों का अभ्यास मनुष्य को अनतशय अिंकार से भर सकता ि◌ै। ि◌मारे प्राचीन साहिमय में अनेकों उदािरण हदये जाते ि◌ैं कक ककस प्रकार व्यजकत शसद्धधयों के प्राप्त ि◌ोने ◌ेपर अिंकार से भर जाता ि◌ै और तब भगवान् ◌्की कृपा से उसके अिंकार को यथा-तथा भंग भी ककया जाता ि◌ै। सामान्यतया योग की इन प्रणाशलयों को साधना का पयायि समझ शलया जाता िैजबकक आवश्यक निींि किक सच्ची आंतररक साधना में इनका कोई ववशेष सकाराममक योगदान भी ि◌ो। यम-ननयमाहद प्रणाशलयाँ तो मात्र एक माध्यम ि◌ैं जो ककन्िींलोगों के शलए उनकी साधना के अंदर - और वि भी उनके गुरु के परामश ि◌के अनुसार और उनकी देखरेख में - सिायक शसद्ध ि◌ो सकती ि◌ैं। ि◌ा,◌ँ इन प्रणाशलयों के अभ्यास से मनुष्य को सूक्ष्म लोकों के अनुभव ि◌ोने ◌ेलगते ि◌ैं। परंतु श्रीमाताजी के अनुसार इसमें खतरा यि रिता ि◌ै कक अधधकांशतः व्यजकत अपनिी मनोननशमति तथा आमम परक जगतों में ननवास करने ◌ेलगता ि◌ै और वास्तववक जगत् ◌्से उसका संबंध-ववच्छेद ि◌ोता जाता ि◌ै। इसशलये श्रीअरववन्द किते िैं कक यि व्यजकत की अंतराममा के गठन पर ननभरि करता ि◌ै कक उसके शलये कौनसी पद्धनत उधचत ि◌ोगी कयोंकक अपने-आप में तो कोई भी पद्धनत उधचत या अनुधचत निीं ि◌ोती। कोई पद्धनत ककसी के शलए बिुत ि◌ी उपयोगी ि◌ो सकती ि◌ै और ककसी के शलए बिुत िी नुकसानदायक शसद्ध ि◌ो सकती ि◌ै। यिाँतक कक व्यजकत-ववशेष के शलए जो पद्धनत ककसी एक समय लाभदायक शसद्ध ि◌ोती ि◌ै वि आवश्यक निींकक बाद में भी वैसी रिे। इसीशलए ि◌मारी संस्कृनत में सभी चीजों के शलए देश, काल और पात्र पर ववशेष ध्यान हदया जाता था। इसीशलये श्रीअरववन्द किते ि◌ैं कक वास्तव में तो ि◌मारी साधना ि◌मारे प्रयासों के कारण निीं बजल्क उनके बावजूद ि◌ी ि◌ोती ि◌ै। कयोंकक साधना के सभी प्रयास तो उस आंतररक सत्ा के दबाव के कारण उठनेवाली केवल बािरी प्रनतकियाएँ मात्र ि◌ैं जो उस सत्ा की उपजस्थनत को सूधचत करती ि◌ैं। और साधना का वास्तववक अथ ििै कक व्यजकत की विी सच्ची सत्ा बािर आकर उसके सभी हिस्सों पर अधधकार करे और अपने-आप को अशभव्यकत करे। इसशलये श्रीअरववन्द के अनुसार, "व्यजकत योगाभ्यास कर सकता ि◌ै और मन तथा बुद्धध में आलोक प्राप्त कर सकता ि◌ै; वि शजकत आयत्् कर सकता ि◌ै और प्राण के अन्दर सभी प्रकार की अनुभूनतयों का आनन्द भोग सकता ि◌ै; यिाँतक कक व्यजकत आश्चयजिनक भौनतक शसद्धधयाँ भी प्राप्त कर सकता ि◌ै; परंतुपीछे अवजस्थत अन्तराममा की सच्ची शजकत, यहद प्रकट निीं

ीिती, यहद चैमय प्रकृनत सममुख निीं आती तो कफर अभी तक कुछ भी वास्तववक काय िनिीं िुआ िै। ... यहद बौद्धधक ज्ञान या मानशसक ववचारों या ककसी प्राखणक कामना के प्रनत आसजकत िोने के कारण चैमय चेतना में नवजन्म लेना अस्वीकार िो, यहद श्रीमाताजी का नवजात बालक बनना अस्वीकार िो, तो साधना में असफलता िी िोगी।" (CWSA 30, p. 337-38)

प्राणायाम आहद प्रणाशलयों के द्वारा इतना अवश्य िो जाता िै कक व्यजकत को सूक्ष्म जगतों के अनुभव िोने ेके कारण उसकी इस ज़िभौनतक जगत् ्से अनतशय आसजकत कुछ कम िो जाती िै और उसे यि भान िो जाता िै कक इसके अनतररकत और इससे ववशालतर तथा भव्यतर जगतों का भी अजस्तमव िै। इस दृजष्टकोण से ये प्रणाशलयााँ कुछ लाभदायक शसद्ध िो सकती िैं। परंतुयि तो केवल शुरुआत मात्र िै। जब साधना में व्यजकत अधधक आगे जाता िै तब धीरे-धीरे उसे मिसूस िोने ेलगता िै कक जजन चीजों को लेकर उसनेअपनी साधना आरंभ की थी वे ेभी िमशः छोिनी िोती िैं और कफर उसे नये सूत्रों को पकिना िोता िै। यि वैसा िी िोता िै मानो
मिारी जंजीरें कुछ ढीली िोती जा रिी िों तथा िमें ववचरण करने का कुछ अधधक स्थान शमल रिा िो। परंतुकफर भी जंजीरें तो रिती िी िैं। और ये जंजीरें इन पारंपररक योग पद्धनतयों के माध्यम से भी टूट सकती िैं और इनसे शभन्न अन्य तरीकों से भी टूट सकती िैं। और ऐसे लोग भी िो सकते िैं जजनकी त्रबना ककसी बािरी पद्धनत के िी जंजीरें स्वयं िी टूट जाती िैं। ये सारी बातें समझने ेपर िी िम गीता की शशक्षा के ववकासिम को एक उधचत पररप्रेक्ष्य में देख सकेंगे अन्यथा तो िम ककसी एक शशक्षा को िी गीता का संपूण िसार मान बैठनेकी भूल कर बैठेंगे जैसा कक अधधकांशतः िोता िी िै। साधना में सभी अनुभवों का मूल्य व्यजकत की आंतररक सच्चाई पर ननभिर करता िै। यहद आंतररक सच्चाई न िो तो अनुभवों की समयता की भी ननजश्चतता निीं रिती और वे व्यजकत के अिं को िी पोवषत करने ेका काम करते िैं। भगवान् ्की अशभव्यजकत ककन्िीं ऊाँचेसे ऊाँचेअनुभवों की भी पकि में
निीं ंआ सकती। इसशलए श्रीमाताजी किती िैं कक साधना में व्यजकत ध्यान के द्वारा प्रगनत कर सकता िै, परंतु सिी भावना से कम िकर के व्यजकत उससे सौ गुना अधधक प्रगनत कर सकता िै। इसीशलए बिे ेसे बिा ज्ञान भी भगवान् ्की एक छोटी-सी सेवा के सामने कुछ निीं ंिै। जब िम इन सब चीजों को थोिा-थोिा समझने लगते िैं तभी िमें चीजें सिी पररप्रेक्ष्य में समझ में आने ेलगती िैं और िम एकांगी रूप से ककसी एक या दूसरी चीज पर िी आग्रि रखने की भूल करने से कुछ बच जाते िैं।

यिा ाँकमयोग की शजकत िी कफर से आ जाती िै; सकिय ब्रह्म, ववराट् पुरुष, के ज्ञान पर ज्ञानब्रह्मननवाणि की शाजन्त की आवश्यक शतों के रूप में बल हदया गया िै। यिा ाँिम गीता के मिान् ्भाव, पुरुषोत्म के भाव की ओर लौटते िैं, यद्यवप यि नाम गीता के उपसंिार के कुछ िी पिले आता िै, तथावप गीता में आहद से अंत तक जिा–ाँजिााँ श्रीकृष्ण 'अिं', 'माम्' ् इमयाहद पदों का प्रयोग करते िैं विााँ-विााँ उनका अशभप्राय उन्िीं भगवान् ्से िै जो मिारी कालातीत अक्षर सत्ा में िमारे एकमेवाद्ववतीय आममस्वरूप में िैं, जो जगत् ्में भी अवजस्थत िैं, सब भूतों में, सब कमों में ववद्यमान िैं, जो ननश्चल-नीरवता और शाजन्त के अधीश्वर िैं, जो शजकत और कम िके स्वामी िैं, जो इस मिायुद्ध में सारथी रूप से अवतीण िुए िैं, जो परामपर पुरुष िैं, परमाममा िैं, सवशिमदं िैं, प्रमयेक जीव के ईश्वर िैं। वे सब यज्ञों और तपों के भोकता िैं, इसशलए मुजकतकामी पुरुष सब कमों को यज्ञ और तपरूप से करे, वे

सवलिोकमिेश्वर िैं, जो इस प्रकृनत तथा इन सब प्राखणयों में प्रकट िुए िैं, इसशलए मुकत पुरुष मुकत िोने पर भी, इन जगतों में लोगों का समुधचत संचालन व नेतृमृव करने के शलए, लोकसंग्रिाथ,ि काय िकरे; 'वे सब भूतों के सुहृद् िैं' इसशलए विी मुनन िै जजसनेअपने अन्दर और अपने चारों ओर ननवाणि लाभ ककया िै, कफर भी वि सदा सब भूतों के कल्याण में रत रिता िै - जैसे बौद्धों के मिायान पंथ में भी ननवाण का परम् ्लक्षण जगत् ्के सब प्राखणयों के प्रनत करुणामय कम िको िी समझा जाता िै। इसीशलए अपनेकालातीत अक्षर आममस्वरूप में भगवान् ्के साथ एकमव प्राप्त कर लेनेपर भी वि मनुष्य से हदव्य प्ेरम करनेमें, भगवान् ्के शलए प्ेरम और भजकत करनेमें समथ ि िोता िै कयोंकक उसके अन्दर प्रकृनत की िीला के संबंध भी समाववष्ट िैं।

छठे अध्याय के आशय की ति में पिुँचने पर यि बात और भी अच्छी तरि स्पष्ट िो जाती िै कक गीता के इन श्लोकों का यिी तामपय िै। छठे अध्याय में पाचाँवे अध्याय के इन्िींअंनतम श्लोकों के भाव का ववशदीकरण और पूण िववकास ककया गया िै - और इससे यि पता चलता िै कक गीता इन श्लोकों को ककतना मित्त्व देती िै।

प्रश्न : श्रीअरववन्द की पद्धनत में िम प्रायः दो प्रकार की सत्ताओं की चचा पाते िैं। एक िमववकास की प्रकिया से आए (evolutionary) जीव िैं और दूसूरी वे सत्ताएँ िैं जो िमववकास से न िोकर सीधे ननवतनि (involution) के द्वारा धरती पर आती िैं। तो कफर जब िम अद्वैत की बात करते िैं तो कफर ये दो प्रकार की सत्ताएँ कैसे िैं?

उत्तर : भगवान् ्बाध्य थोड़े िी िैं कक वे दो शभन्न कपिे ्धारण न कर सकते िैं, जबकक दोनों में वे िैं तो स्वयंिी। एक रूप में वे ्अपनेको प्रकृनत के अधीनस्थ कर देते िैं और दूसूरे में अधीनस्थ निींकरते। मिववकासमय जीव के अंदर तो उन्िोंने अपनी इच्छा से अपने को सीशमत ककया िै जबकक ननवतनि में आई सत्ताओं में वे ऐसा निीं करते। यि वैसा िी िै जैसे मानो एक जस्थनत में वे अपने िाथों को बाधँ कर िीला करते िैं जबकक दूसूरी अवस्था में वे अपनेिाथों को खुला रखकर िीला करते िैं चूंकक ऐसी उनके नाटक की आवश्यकता िोती िै। परंतु दोनों िी अवस्थाओं में वे ्उतने िी परमाममा िोते िैं। तो ये सभी रूप तो भगवान् ्की चेतना की शभन्न अवस्थाएँ मात्र िैं जजनमें ककसी में भी अवजस्थत िोने ्पर भी परमाममा उतने िी परमाममा िोते िैं। अंतर केवल उनकी अशभव्यजकत में िोता िै। उनकी िीला के शलए जैसी जस्थनत आवश्यक िोती िै वैसी िी वे अपना लेते िैं।

प्रश्न : परंतु िमववकासमय जीव तो साक्षी, अनुमता आहद भावों को तो अपना सकता िै परंतु ईश्वर भाव निीं ्अपना सकता। ईश्वर भाव में तो केवल ननवनतत िुई या कफर अवतररत िुई सत्ताएँ िी जा सकती िैं?

उत्तर : यहद िमववकासमय जीव के अंदर ईश्वर भाव आना िै तो वि उसके अंदर ऊपर से अवतररत िोगा कयोंकक िमववकास से ईश्वर भाव में निीं ्जाया जा सकता। िमववकास की प्रकिया का तो कोई अंत िी निीं िै। इसशलए इस प्रकिया में यहद जीव अनंत काल तक भी ववकास करता रिेगा तो भी वि ईश्वर भाव में निीं ्जा सकेगा। वि तो केवल तभी संभव िै जब उसके शलए ईश्वर भाव में जाना ऊपर से ननयत िो और तब ईश्वर भाव

उसके अंदर अवतररत िो जाता िै। मनुष्य ईश्वर चेतना का अनुभव तो प्राप्त कर सकता िै परंतु उसमें ईश्वर की चेतना निीं िोती। जबकक अवतार में ईश्वर भाव िोता िै परंतु ईश्वर भाव िोतेिुए भी अपनेकाय िके शलए उन्िें जजतनी आवश्यकता िोती िै बिारी रूप से वे केवल उतने िी सचेतन िोतेिैं। इस प्रकार अपनेकाय िके अनुसार वे अपनी चेतना को स्वयं ननधारिरत तथा सीशमत कर लेते िैं। परंतु यि आमम-सीमन िोता िै, कोई अयोग्यता या बाध्यता निीं ंिोती। गीता में भी भगवान् ्इस सूक्ष्म भेद को स्पष्ट करते िैं कक ककस प्रकार वे अवतार के रूप में और साधारण जीव के रूप में शभन्न-शभन्न रूप से जन्म ग्रिण करते िैं। परंतु िम अपनेसीशमत मानशसक उपकरण से इन ववषयों को ककतना भी समझने ेका प्रयास करें, ये उसकी पकि में निीं ंआ सकते। िालाकाँक मिारा

अिंकार िमारी इस अयोग्यता को स्वीकार निीं ंकरता, परंतु ्जजस प्रकार एक पशु ्चेतना मानव चेतना को और उसके दृजष्टकोण से चीजों के स्वरूप को निीं देख सकती, उसी प्रकार मानव चेतना हदव्य चेतना को और उसके नजररये से जगत् ्के ववषयों को निीं ंसमझ सकती। इसशलए मानवता की ऊँची से ऊँची उड़ान भी भगवत्ता को निीं माप सकती। िमारे गंभीरतम अनुभव, िमारे गिनतम तत्त्वधचंतंन आहद भी परम को जान निींसकते। भगवान् ् का स्वरूप तो अधचंमंय िै। वे िमारे ककन्िीं भी वणनिों से अनंत रूप से परे िैं। पर कयोंकक परमाममा स्वयंमिारे अंदर ववराजमान िैं, इसशलये िम उनसे एक िो सकतेिैं।

प्रश्न : भगवान् ्किते िैं कक "ज्ञामवा मांशाजन्तमृच्छनत", कक केवल जान लेनेभर से तुझेशाजन्त प्राप्त िो जाएगी, तो केवल जान लेने भर से िी ककस प्रकार शाजन्त प्राप्त िो सकती िै?

उत्तर : गीता केवल मानशसक ववचार की बात निींकर रिी िै, वि तो जाननेकी बात कर रिी िै। ककसी मानशसक ववचार में और वास्तव में सच्चेरूप से जानने ेमें अंतर िै। ववचार िमें जानने ेतक ले जा सकता िै। और िो सकता िै कक वि ववचार ककसी गिरे ज्ञान के प्रभाव से िी उठ रिा िो। ये सभी संभावनाएँ िैं, परंतुआवश्यक निीं िैकक वि सच्चा ज्ञान िी िो। जानने का वास्तव में अथ िै अनुभव िोना। त्रबना अनुभव के व्यजकत जान निीं सकता। परंतुअनुभव से ऊपर भी अन्यचीजें िैं। श्रीमाताजी किती िैं कक जानना अच्छा िै, उसे जीना और भी अच्छा िै, पर विी बन जाना पूणतिा िै और विी सवश्रेेष्ठ तरीका िै। इसशलये ईश्वर को जानना तो अच्छा िै, परंतु वास्तववक बात िै स्वयंईश्वर बन जाना। अवतारों की ववशशष्टता यिी िै कक वे उस ईश्वर-भाव को अशभव्यकत करते िैं। वेतो अपनेबािरी कमों से, ककसी भी ज्ञान से, शजकत आहद से बिुत ऊपर िैं। तपस्या आहद के प्रभाव से ऋवषयों ने, शसद्धों ने ब्रह्म ज्ञान, ववलक्षण शजकत-सामथ्य िआहद प्राप्त ककया िी िै, परंतु कफर भी ककसी अवतार से उनकी कोई तुलना निीं ंकी जा सकती। इसीशलये िमारी संस्कृनत में इस बात को सभी समझतेिैं कक भगवान् ् चािे पशु शरीर में भी अवतार लेकर कयों न आएँ तो भी ककसी मिान् ्से मिान् ्योगी, तपस्वी या शसद्ध को उनसे तुलना निीं की जा सकती। कयोंकक पशु शरीर में भी उनमें चेतना भगवान् ्की िी िोती िै। इसशलए जिाँ ईश्वर का प्रकाश िोता िै उसको बिुत भारी मित्ता िोती िै। यिाँ तक कक भगवान् ्के आयुधों आहद के जो अवतार िुए िैं, उनकी भी बिुत भारी मित्ता िै और उनसे भी ककन्िींशसद्धों आहद की बराबरी निीं ंकी जा सकती। और जो व्यजकत इस ईश्वर तत्त्व को जान लेता िै वि शाजन्त को प्राप्त िो जाता िै।

इस प्रकार पाचाँर्ा अध्याय 'कर्संवतयासयोग' सर्ाप्त होता है।

छठा अध्याय

ननवाणि समताएवंसंसारमें कम ि

श्रीभगर्ान् ्उर्ाच

अनाधश्रतः करि्वलं कायं ंकर् वकरोतत यः ।

स संतयासी च योगी च न तनरजग्नन वचाकक्रयः ॥ १॥

१. श्रीभगर्ान् ्ने कहा : जो र्नुष्य कर् वके िलों का आश्रय न लेकर करिीय कर् वको करताहैहैही संतयासी है और योगी है, न कक ई जो यज्ञ नहीं ंकरता और कर् वनहीं ंकरता।

यं संतयासमर्तत प्राहुयोगं ंतं वर्द्धध पाण्डर् ।
न ह्यसंतयस्तसंकल्पो योगी भर्तत कश्चन ।। २।।

२. हे पाण्डुपुत्र अजुनव ! जजसे उतहोंने संतयास कहा है उसे स्र्तुतः योग जान; क्योंकक जजसनेअपने र्न से कार्नारूप संकल्प का पररत्याग नहीं ंककया है ऐसा कोई भी र्नुष्य योगी नहीं ंहोता।

परमाममा स्वयंपूणकिाम िैं। उर्न्िंकिकसी भी चीज की कोई कामना निीं िोती। इसशलये यहद व्यजकत कामना के वशीभूत िो संकल्प करता िै, कामना के वशीभूत िोकर साधना करता िै तो इसका अथ िििै कक वि परमाममा के साथ युकत निीं ंिै। कामना तभी िोती िै जब व्यजकत अिं के साथ जुिा िोता िै, न कक अपनी सच्ची अंतराममा के साथ।

....श्रीगुरु बल देते िैं - और यि बुित मित्त्वपूण ििै - संन्यास के मूल तत्त्व के ववषय में अपनेबार-बार दोिराए गए दृढ़कथन पर कक यि आंतररक संन्यास िै, न कक बाह्य...। कम िककये जानें, पर ककस उद्देश्य से और ककस िम से?

आरुरुक्षोर्ुनेवयोगं ंकर् वकारिर्ुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैर् िर्ः कारिर्ुच्यते।। ३।।

३. योग पर्तव पर आरोहि करते हुए र्ुतन के मलये कर् वकारि होता है; जब ई योग के ममखर पर चढ़ जाता है तो उसी र्ुतन के मलये आत्र्-प्रभुत्र् कारि होता है।

योग के शशखर पर आरोिण करते िुए पिले कम िकरने िोंगें, कयोंकक विााँकम ि'कारण' िैं। ककस चीज के कारण? आमम-पूणतिा के, मुजकत के, ब्रह्म-ननवाणि के कारण; कयोंकक आंतररक संन्यास के ननरंतर अभ्यास के साथ कम िकरनेसे यि पूणतिा, यि मुजकत, कामनामय मन, अिंपुरुष और ननमन प्रकृनत पर यि ववजय सिज रूप से प्राप्त िो जाती िै।

पर जब कोई शीष िपर पिुाँच जाता िै तब? तब कफर कम िकारण निीं रि जाते; कम िके द्वारा प्राप्त आमम-प्रभुमव और धीरता अथवा आमम-संयम की शाजन्त कारण बन जाती िै। परंतु पुनः, कारण ककस चीज का? आममस्वरूप में, ब्रह्म-चेतना में जस्थत बनेरिने ेऔर उस पूण िसमममव को बनाये रखनेका कारण बनती िै जजसमें जस्थत िोकर मुकत पुरुष के हदव्य कम िसंपन्न िोतिें।

यिा ंाँश्रीभगवान् ्स्पष्ट कर देते िैं कक संन्यास एक आंतररक भाव िै और इसका तामपय िकमों के मयाग से निीं ंिै। व्यजकत को संन्यास तो कामना का करना िोगा तभी आममप्रभुमव स्थावपत िो सकता िै और तभी सच्चे रूप से कम िककये जा सकते िैं। गीता बार-बार इसी ओर इंधगत करती िै कक व्यजकत को कम ितो करनें िोंगे कयोंकक शरीर से की जानेवाली कियाएाँ िी कम ितनिीं ंिोतीं अवपतु मन और प्राण की कियाएाँ भी कम ििी िोती िैं।

इसशलए इस दृजष्टकोण से व्यजकत कम िककए त्रबना तो रि िी निींसकता। योग साधना आहद में भी व्यजकत जब ककसी कामना के कारण ध्यान, धचंतंन, प्राणायाम आहद करता ि, कफर चािे वि कामना ककतनी भी सूक्ष्म कयों न िो, तो वे कियाएँ योग की श्रेणी में निीं आ सकतीं। श्रीमद्भागवत् ्आहद ग्रंथों में िमें अनेक भकतों की कथाओंके माध्यम से यि देखने को शमलता ि कक जब भकत ककसी प्रकार के िेतुसे भगवान् ्का धचंतंन या ध्यान करता ि तो बाद में भगवान् ्की कृपा प्राप्त करने ेपर उसे यि अनुभव िोता ि कक भगवान् ्के पास ककसी भी ननमन िेतु से जाना तो उधचत भाव निीं ंि। इसशलए कमसंन्यास का अथ िउस आंतररक भाव से ि जिााँककसी कामना के कारण निीं ं अवपतु प्रभु को प्रसन्नता के ननशमर्त् कम िककये जाते िैं। इसशलए पिले िी श्लोक में भगवान् ्किते िैं कक जो यज्ञ निीं ंकरता और कम िनिींकरता वि न तो संन्यासी ि और न योगी ि।

दूसूरी बात यि ि कक योग के पवित पर आरोिण करने ेके शलए कम िसाधन िैं इसशलए कमों को करना आवश्यक ि कयोंकक कम िमें मन, प्राण और शरीर की सभी कियाएँ समाहित िो जाती िैं। इस ि शमक ववकासमय जगत् ्में कमों के यज्ञ अथात्िआदान-प्रदान के द्वारा िी व्यजकत योगारूढ़ िो सकता ि। परंतुजब तक व्यजकत के भीतर कामना रिेगी तब तक वि योग निीं कर सकता। इसशलए कमों को यज्ञ रूप से करना आवश्यक ि। यि चचाितो िम पिले िी कर चुके िैं कक ककस प्रकार िमशः व्यजकत के यज्ञ का आरोिण िोता जाता ि। परंतुजब व्यजकत आरंभ करता ि तब तो उसे अपनी वतमिान जस्थनत से िी अपने यज्ञ को आरंभ करना िोता ि। अतः जब तक व्यजकत ककसी ननजश्चत स्तर तक आरोिण निीं ंकरता तब तक कम िउसके साधन िोते िैं जजनका मयाग निीं ककया जा सकता। और जब व्यजकत परमाममा के साथ युकत िो जाता ि तब उसके कम िउन लीलामय प्रभु ्की लीला के अंग बन जाते िैं जजन्िोंने इस संसार की रचना की ि। इस प्रकार यिा ाँस्पष्ट िो जाता ि कक कमसंन्यास के द्वारा सामान्यतया कमों से ननवृत्त् पाने या जंगल में चले जानेका जो अथ िलगाया जाता ि वि गीता की शशक्षा से त्रबल्कुल असंगत ि।

मूलभूत सच्चाई और तथ्य केवल यिी ि कक प्रमयेक मनुष्य में प्रभु ववराजमान िैं और केवल वे िी अशभव्यकत िो रि िैं। सहद कमों को करते िुए व्यजकत सचेतन िोता जाता ि कक उसकी इच्छाएँ, कामनाएँ आहद भी कम िमें संलग्न िैं और ऐसा निीं ंिोना चाहिये, तो यि भी उसकी साधना का िी एक अंग ि। अशभव्यजकत में ये चीजें रिती िी िैं, व्यजकत अधधकाधधक सचेतन िोता जाता ि और वि इन चीजों पर अधधकाधधक अंकुश लगा कर आमम-प्रभुमव करता जाता ि। इसशलए ऐसा कोई भी मनुष्य, पशु–पक्षी या ऐसी कोई भी चीज निीं ि जजसमें भगवान् ्की इच्छा-शजकत अशभव्यकत न िो रिी िो। िालाकाँक यिााँ गीता में जजस िम से ववषय को समझाया गया िै वि ननःसंदेि त्रबल्कुल सिी ि। यि बात सच ि कक मोटे तौर पर पिले तो कम िसाधना में सिायता करते िैं और कफर वे प्रभुकी अशभव्यजकत में कारण बन जाते िैं परन्तु वास्तव में तो दोनों िी चीजें साथ-साथ चलती रिती िैं।

वास्तव में तो व्यजकत ववशेषे के अनुसार अलग-अलग समीकरण िोतिे, इसशलए सब के शलए कोई एक ननयम निीं ंबनाया जा सकता। बिुत से ऐसे मनुष्य िैं या िुए िैं जजनमें साधना का कोई भाव िी निीं ंिोता और कफर भी उनके द्वारा भगवान् ्की बिुत बड़ी अशभव्यजकत िोती ि। उदािरण के शलए नेपोशलयन का चररत्र तो सभी जानते े िैं। उसका साधना से तो दूरू-दूरू तक कोई संबंध निीं ंथा। परंतुश्रीअरववन्द ने उसे भगवान् ्की ववभूनत बतलाया ि

जजसमें भागवत् ्शजकत की किया साक्षात् ्अशभव्यकत िुई िै। इसशलए कामनाओं, इच्छाओं आहद से भगवान् ्की अशभव्यजकत रुक निीं ंसकती। िमें इन सब बातों को ध्यान में रखना चाहिये ताकक िम कोई एक सीशमत मानशसक दृजष्टकोण अपना कर उससे बंध न जाएँ। मानशसक रूप से किी गई ककसी भी चीज का ववपयिय भी उतना िी सिी िोता िै। इसीशलए िमारी संस्कृनत में देश-काल-पात्र पर इतना अधधक बल हदया जाता था और उसी के अनुसार ककसी चीज का ननणयि ककया जाता था। जैसे कक, खेती आहद ककसी भी काय िको करने ेके शलए अलग-अलग साधनों की या औजारों की आवश्यकता िोती िै और कोई एक िी साधन सभी जगि प्रयुकत निींककया जा सकता। यि बात िमें भौनतक चीजों के साथ व्यविार में तो समझ में आती िै परंतुमनोवैज्ञाननक और साधना संबंधी चीजों में िमेशा िी िम ककसी एक प्रकार के सीधे-सादे ननयम की मागँ करते िैं। चूँकक भगवान् ्की अशभव्यजकत तो एक अनंत आयामी और ववराट् प्रकिया िै जजसमें अनंत तरीके की चीजों की, प्रकियाओंकी आवश्यकता िोती िै। इस पूरी प्रकिया को िम ककसी भी बंिे ेसे बंिे ेसूत्र में भी कैसे बाधँ सकतिें, यिाँतक कक अब तक के सारे मानशसक सूत्रों को शमलाकर भी कैसे बाधँ सकते िैं?

वास्तव में तो यि तामशसक वृवत्त् िी िै जजसके प्रभाव से व्यजकत किता िै कक उसे तो कोई एक सीधा-सा सूत्र बता हदया जाए तो वि उसके अनुसार चलता रिे। परंतुजब परमामेमा स्वयंव्यजकत के अन्दर ववराजमान िैं तो कया वे कभी ककसी सूत्र में बंध सकतिें? परंतु चूँकक मनुष्य सामान्यतया केवल मानशसक दृजष्टकोण से िी चीजों को देखता िै इसशलए वि मन के आधार पर िी चीजों को ककसी सूत्र में बाधँनेका प्रयास करता रिता िै। अपनी सत्ता के उच्चतर और गंभीरतर भागों के संपकि में आने ेपर िी व्यजकत मन की कियाओं ंको दूरू से देख सकता िै, अन्यथा निीं। मन और उसके स्वरूप के ववषय में बताते िुए श्रीअरववन्द किते िैं कक मन समय को जानने ेका यंत्र निीं ंिै। वि तो अधधक-से-अधधक सत्ता के ननमन भागों पर ननयंत्रण करने और उच्चतर प्ेरेरणाओं को ग्रिण कर उन्िें कियाजन्वत करने का यंत्र िै। इसशलए केवल आंतररक तथा उच्चतर भागों से िी परमामेमा के ववषय में अधधकाधधक सच्ची समझ आती िै। गीता को भी यहद िम केवल सतिी मानशसक दृजष्टकोण से देखें तो उसकी शशक्षा में िी िमें अंतववरोध हदखाई देंगे और वि अलग-अलग जगिों पर अपना िी खंडन करती प्रतीत िोगी। परंतुये सभी अंतववरोध वास्तव में िमारी मानशसक अनमयता के कारण िोते िैं। एक व्यापक और गंभीरतर दृजष्टकोण से देखने पर िी िम गीता की शशक्षा के सच्चे अथ ितक पिुँच सकते िैं। िालाकँक गीता के ववकासिम का अपना एक ववशशष्ट तरीका िै। परंतु श्रीअरववन्द के आलोक में ये सभी चचाएँ पूरे ववषय को अधधक स्पष्ट और समग्र रूप प्रदान करती िैं।

यदा दह नेजतद्रयाथेषु ुन कर्स्वनुर्षजजते।
सर्सवंकल्पसंतयासी योगारूढस्तदोच्यते ।। ४।।

४. जब नुष्ष्य इजतद्रय-वर्षयों र्ें या किर कर्ों र्ें आसक्त नहीं ंहोता, और न र्ें से सर्स्त कार्नारूप संकल्प का पररत्याग कर देता है तब ई नुष्ष्य योग के मिखर पर आरूढ़ हुआ कहा जाता है।

उद्धरेदात्र्नात्र्ानं नात्र्ानर्वसादयेत् ्।

आत्रै्र् ह्यात्र्नो बतधुरात्रै्र् ररपुरात्र्नः ।। ५।।

५. 'आत्र्ा' के द्र्ारा तुम्हें आत्र्ा' का उद्धार करना चादहए, तुम्हें आत्र्ा को (भोग या दर्न के द्र्ारा) अधःपततत और णखतन न होनेदेना चादहए; क्योंकक आत्र्ा का 'आत्र्ा' ही मर्त्र है, 'आत्र्ा' ही ित्रु ुहै।

बतधुरात्र्ात्र्नस्तस्य येनात्रै्र्ात्र्ना जजतः ।

अनात्र्नस्तु ित्रुतुर्े र्तेतात्रै्र् ित्रुर्त् ्।। ६।।

६. जजसके अंदर उच्चतर आत्र्ा के द्र्ारा तनम्न आत्र्ा को जीत मलया गया है, उसके मलए उसका आत्र्ा एक मर्त्र है, परंतु जजसने उच्च आत्र्ा को प्राप्त नहीं ंककया है उसके मलये उसका तनम्न आत्र्ा ित्रु के सर्ान है और त्रिुर्त् ्आचरि करता है।

इसमें ननग्रि (अथात्् ्दमन तथा बलप्रयोग) और संयम (अथात्् ्उधचत प्रयोग और उधचत मागदिशनि द्वारा् नननग्रि संयम स्वरूप प्रकृनत भेद अपनीत हैं। इनमें प्रथम, अथात् का तीक्ष्ण बल-प्रयोग ि ैजो अंत में सर्त्ा की सिज शजकतयों को ववक्षुब्ध कर देता ि ैआममानमवसादयेत्;् ् और दूसूरा, अथात्् ्संयम उच्चतर आममा द्वारा ननमनतर आममा को संयशमत करना ि ैजो कक सफलतापूवकि जीव की स्वाभाववक शजकतयों को उनका उधचत कम िि और उसके शलए अधधकतम कौशल प्रदान करता ि ै, योगः कमसिु कौशलम्.्..। दूसूरे शब्दों में, ननमनतर आममा को उच्चतर आममा द्वारा, प्राकृत आममा को आध्याजममक आममा द्वारा वश में करना िी मनुष्य की पूणतिा और मुजकत का माग िि ै।

यिाँ कोई वास्तववक अंतववरिोध निीं ि ै; ये दोनों प्रसंग ('आममा' के द्वारा आममा का vis उद्धार करो', और 'सभी धमों का पररमयाग करो') गीता की प्रणाली में उसके योग के दो शभन्त्र XVII धाराओं को इंधगत करतिैं, जजसकी उच्चतम किया ि ैपूण ि समपणि। व्यजकत को सवप्रिथम अपनी ननमनतर प्रकृनत को जीतना िोता ि ै, ननमनतर कियाओंमें उलझी िुई आममा को उच्चतर आममा की सियता से मुकत करना िोता ि ैजो कक इस तरि हदव्य प्रकृनत में उन्नीत िोती ि ै; इसके साथ-िी-साथ व्यजकत अपने सभी कमों को, योग की आंतररक किया समेत यज्ञ-रूप में पुरुषोत्र्म को, परामपर और अंतयामिी भगवान् ्को अवपति करता ि ै। जब व्यजकत उच्चतर आममा में ऊपर उठ जाता ि ैतब उसे ज्ञान प्राप्त िोता ि ैऔर वि मुकत िो जाता ि ै, वि अन्य सभी धमों का पररमयाग कर, एकमात्र हदव्य चेतना, हदव्य संकल्प और शजकत तथा हदव्य आनन्द में ननवास करता िुआ भगवान्के्प्रनत पूणिसमपणि करदेतिै।

प्रश्न : उच्चतर आममा की सियता से ननमनतर प्रकृनत को संयशमत ककस प्रकार ककया जाता ि ै?

उत्तर : यहद व्यजकत ननग्रि कर के शरीर के द्वारा अमुक किया को अशभव्यकत तो निीं िोने ेदेता परन्तु ु सारे हदन अपनेववचारों और अपनी भावनाओं में उसके ववषय में सोचता रिता ि ैतो यि मूढ़ता ि ैकयोंकक इससे उसके अंदर द्वंद्व पैदा िो जाएगा और उसकी सारी शजकत िी नष्ट िो जाएगी। इसशलए यहद व्यजकत के अन्दर इच्छाशजकत जागृत् िो गई ि ैतो उसे न केवल शारीररक कियाओंको िी ननयंत्रत्र करने में उसका उपयोग करना चाहिए अवपतु उन भावनाओं और ववचारों को भी वश में करनेका प्रयास करना चाहिए जो कक उन कियाओं का

मूल स्रोत िै। िालाकाँक व्यविार में इसका अथ िियि निीं ंिै कक शारीररक कियाएँ चिो जो भी कयों न िोती रिें व्यजकत सबसे पिले उसके ववषय में ववचार को ननयंत्रत्रत करने ेका प्रयास करे। संयम का अथ िैि सबसे पिले भौनतक रूप से उन आवेगों की अशभव्यजकत को रोकना और साथ-साथ उन ववचारों, भावनाओं, आवेगों, कामनाओंआहद पर भी

ननयंत्रण रखना आवश्यक िै जजनसे यहद ये कियाएँ पैदा िोती िैं। उदिारण के शलए, चररत्र ननमाणि भौनतक अशभव्यजकत को ननयंत्रत्रत करनेके शलए जेल में िी िालना एक समाधान िो तो आखखर िम ककतने लोगों को जेल में िालेंगे? मानशसक रूप से िी िम इस ववचार की असंगतता को देख सकतिैं। िमारी संस्कृनत में आरंभ से िी िमारे पूवजिों में यि अंतःप्रज्ञा ववकशसत थी कक यहद व्यजकत अपनी उच्चतर आममा से ननमनतर आममा को अनुशाशसत करनेका प्रयास करे और उसकी ननमनतर आममा भी इस प्रयास में उसका सियोग करे तो वि एक शमत्र िै, अन्यथा तो वि एक शत्रु ुकी भानाँत िी काय िकरती िै।

मिारी आंतररक सर्ता तो सदा िी िमारी सच्ची शमत्र िोती िै कयोंकक वि तो िमारा अपना सच्चा स्वरूप िै, मि स्वयं िी िैं। जब िम अपनी उच्चतर सर्ता के द्वारा ननमनतर सर्ता को सुधारने ेका प्रयास करते िैं तो जब वि भी अपना सियोग प्रदान करती िै और धीरे-धीरे उसमें सुधार आता जाता िै तब वि िमारी शत्रु ुन रिकर सियक बन जाती िै, िमारी शमत्र बन जाती िै। तब िम पातिैं कक िमारी ननमन प्रकृनत की ववृत्यां ाँगलत निीं िैं, वे ेतो केवल अपने सिी स्थान पर निीं ंिैं, और जब वे अपने उधचत स्थान पर आ जाती िैं तो वे िी ववृत्यां ाँहदव्य अशभव्यजकत में सियक बन जाती िैं।

जजतात्र्नः प्रिाततस्य परर्ात्र्ा सर्ादहतः ।

गितौष्ट्सुखदुःखेषु तथा र्ानापर्ानयोः ।। ७।।

७. जब व्यजक्त ने अपने आत्र्ा को जीत मलया होता है और पूि वआत्र्-प्रभुत्र् एर्ं आत्र्संयर् की िांतत को प्राप्त कर मलया होता है तब उसका परर् ्आत्र्ा िीत एर्ं ऊष्ट्िता र्ें, सुख एर्ं ंदुःख र्ें और र्ान एर्ं ंअपर्ान र्ें अपने भीतर जस्थत एर्ंप्रततजष्ट्ठत रहता है।

ज्ञानवर्ज्ञानतृप्ृतात्र्ा कूटस्थो वर्जजतेजतद्रयः ।

युक्त इत्युच्यते ेयोगी सर्लोष्ट्टाश्र्काञ्चनः ।। ८॥

८. जो आत्र्ज्ञान से तृप्ृत है, जो तनश्चल आत्र्जस्थत है, जजसने अपनी इजतद्रयों को अपनेर्ि र्ें कर मलया है, जो ढेले, पत्थर और सोनेको सर्ान सर्झता है, ऐसे योगी को योगयुक्त कहा जाता है।

सुहजतर्त्रायुदवासीनर्ध्यस्थद्रेष्ट्यबतधुषु ।

साधुष्ट्र्वप च पापेषु सर्बुद्धधवर्मविष्ट्यते।। ९।।

९. जो र्नुष्ट्य सुहृद्, मर्त्र, ित्रु, ु उदासीन, र्ध्यस्थ, द्रेष्ट्य और बंधु के प्रतत और सत्कर् वकरनेर्ालों और दुषुट्कर् व करनेर्ालों के प्रतत सर्भार् रखता है, र्ह श्रेष्ट्ठ होता है।

इस अध्याय के चौथेश्लोक में किा गया ि ै कक जब मनुष्य इजन्द्रय-ववषयों में या कफर कमों में आसकत निीं ंिोता, और मन में से समस्त कामनारूप संकल्प का पररमयाग कर देता ि ै तब वि मनुष्य योग के शशखर पर आरूढ़ िुआ किा जाता ि ै। यिााँयि संकेत निीं ि ैकक योग के शशखर पर आरूढ़ मनुष्य कम ि निीं करता, वि कम ितो करता ि ै परन्तु उनमें आसकत निीं िोता कयोंकक वि ककसी कामना के वशीभूत िो कमों को निींकरता। बिुत से लोग इस श्लोक का यि अथ िननकाल लेते िैं कक योगारूढ़ मनुष्य अपनी इजन्द्रयों को उनके ववषयों से िटा लेता ि ै, परन्तु बात ऐसी निीं ि ै। वास्तव में जो चीज कमों में ववकृनत पैदा करती ि ै वि ि ै उनमें जुिी कामना और आसजकत, न कक स्वयं वे कम।ि जैसे कक यहद िमारा ककसी के साथ गिरा संबंध ि ै परंतु उस संबंध के साथ गिरी आसजकत भी ि ै तो उस आसजकत से बचने के शलए सामान्यतया संबंध-ववच्छेद करने की सलाि दी जाती ि ै। परंतु ऐसा करना िमारे हृदय की अशभव्यजकत का बलपूवकि दमन करना िुआ और इससे तो वि शुष्क िो जाएगा। इसकी बजाय िमें उस आसजकत को दूरू करना चाहिये और सच्चेरूप में, आममा की दृजष्ट से संबंध स्थावपत करने का प्रयास करना चाहिये। कयोंकक परमाममा के हदव्य प्रेम की अशभव्यजकत के शलए िी तो िमारा जीवन बना ि ै। और यहद िम ककसी से संबंध रखना िी छोि़ देंगे तब तो िमें हदव्य प्रेम कैसे प्राप्त िोगा और उसकी अशभव्यजकत मि ककस प्रकार कर पाएँगे। सामान्यतया जब िम ककसी से संबंध बनाते िैं तो उसके माध्यम से केवल अपने-आप की तुजष्ट पर िी केजन्द्रत िोते िैं और ऐसे संबंध में प्रेम का तो कोई प्रश्न िी निीं उठता। इसकी बजाय सच्चा तरीका ि ै संबंध को आममा के आधार पर स्थावपत करना। यिी बात सभी चीजों पर लागू िोती ि ै। कभी-कभी माग ि में यि आवश्यक िो जाता ि ै कक कुछ संबंधों को एकदम तोि़ हदया जाये कयोंकक आंतररक जस्थनत ऐसी निीं ंिोती कक उनका सच्चे रूप में पररवतनि ककया जा सके।

प्रश्न : यिााँ इस श्लोक का कया अथ ि ि ै कक, "जब व्यजकत नेअपनेआममा को जीत शलया िोता ि ै और पूण ि आमम-प्रभुमव एवं आममसंयम की शांनत को प्राप्त कर शलया िोता ि ै तब उसका परम् ्आममा शीत एवंऊष्णता में, सुख एवं दु:ख में और मान एवंअपमान में अपनेभीतर जस्थत एवं ंप्रनतजष्ठत रिता ि ै"?

उत्तर : इसका अथ ि ि ै कक जब व्यजकत के अन्दर समता आ जाती ि ै तब वि अपनी आममा को जीत कर परमाममा में समाहित िो जाता ि ै। सामान्यतया व्यजकत की बािरी प्रकृनत, उसके मन, प्राण और शरीर की किया अि ंकी तुजष्ट पर िी केजन्द्रत िोती ि ै और उसी के दृजष्टकोण से वि अपनी इच्छाओं और कामनाओं के अनुसार कुछ चीजों का वरण करता ि ै और कुछ को छोि़ देता ि ै। इसशलए जीतने का अथ ि ि ै कक व्यजकत इस अि-ंकेंहरतता को अधधकाधधक छोि़कर केवल परम् ्आममा की इच्छा पर आधाररत िोता जाता ि ै और केवल उसकी इच्छा को िी पूरा करने का प्रयास करता ि ै। तब धीरे-धीरे उसे ननमनतर प्रकार के स्पंदन आने बंद िो जाते िैं। जब व्यजकत अपनी ननमनतर प्रकृनत को अनुशाशसत कर लेता ि ै तब यि जस्थनत स्वयंिी स्थावपत िो जाती ि ै। िालाकाँक यि कर पाना आसान काम निीं ंि ै।

आममा में जस्थत िोने के पश्चात् ्भी जब तक भौनतक रूपांतर शसद्ध निीं िो जाता तब तक िमारी ननमनतर प्रकृनत का ककसी भी समय िस्तक्षेप िो सकता ि ै और वि अपना प्रभाव िाल सकती ि ै और सारे संतुलन

को कम या अधधक समय के शलए भंग कर सकती िै, कयोंकक रूपांतर से पिले जब तक िम उच्चतर चेतना में रिते िैं तब तक तो चीजें िमारे ननयंत्रण में रिती िैं परंतु उस जस्थनत से नीचे आते िी िम ननमनतर प्रकृनत के चंगुल में फंस सकते िैं। कयोंकक तब िममें अपनी अवचेतना से आनेवाली चीजों को रोकनेकी पयाप्ति शजकत निीं िोती। इसशलए जब तक अवचेतना ववजजत निीं िो जाती, तब तक ि म कभी भी अपनी ननमनतर प्रकृनत को पूण रूप से

अपनेवश में निींकर सकते। स्वयंश्रीरामकृष्ण जी को एक बार यि भाव उठा कक वे काशमनी-कांचन से ऊपर उठ चुके िैं परंतु जैसे िी इस ववचार ने उनकी अवचेतना को स्पश िककया वैसे िी उसमें से उसकी प्रनतकियास्वरूप काम का भयंकर आवेग उठा। तब उन्िोंने िमाँकाली से प्राथनिा की। उन्िोंने अपनेसमय के अनतररकत सभी काम, िोध, मद, लोभ, मोि आहद को उन्िें सौंप हदया था। इससे यि पता चलता िै कक जब तक ज़ि-भौनतक तत्त्व तक का रूपांतरण निीं िो जाता तब तक पूण िरूप से ननमनतर चीजों का ननराकरण निीं िो सकता। आध्याजममक पूणतिा की प्रथम आवश्यकता िै एक पूण िसमता...। परम् िहदव्य प्रकृनत समता पर प्रनतजष्ठत िै। उसके समबन्ध में यि कथन सभी अवस्थाओंमें समय िै, भले िम परमोच्च सर्त्ा को शुद्ध एवं प्रशान्त पुरुष तथा आममा के रूप में देखें या ववश्व-सर्त्ा के हदव्य स्वामी के रूप में...।

पदाथों के स्वामी उनकी प्रनतकियाओंसे प्रभाववत या ववक्षुब्ध निीं िो सकते; यहद वे प्रभाववत या ववक्षुब्ध िो जाएँ तो वे उनके अधीन िोंगे न कक स्वामी, अपनेपरम् िस्वतंत्र संकल्प और ज्ञान के अनुसार तथा उनके समबन्धों के पीछे जो कुछ ववद्यमान िै उसके आन्तररक समय और उसकी आन्तररक आवश्यकता के अनुसार उनका ववकास करने िके शलये मुकत निीं िोंगे, वरन् िइसके ववपरीत अस्थायी आकजस्मक संयोग और घटनाओं की मागँ के अनुसार काय िकरने िके शलये वववश िोंगे।

...स्वामी की पूजा... मागँ करती िै कक िम अपनेमें, सब वस्तुओं तथा सभी घटनाओं में उन्िें स्पिष्ट रूप से पिचानें तथा िषपूवकि स्वीकार करें। सममव िी इस पूजा का लक्षण िै; आममा की वेदी िी िै जजस पर सच्चा समपणि एवं पूजून ककया जा सकता िै। ईश्वर सवभूितों में समान रूप से िैं, िमें अपने-आप में और दूसूरों में, ज्ञानी और अज्ञानी में, शमत्र और शत्रु िुमें, मनुष्य और पशु िुमें, पापी और पुण्याममा में ककसी प्रकार का भी ताजत्त्वक भेद निीं िकरना चाहिये। ककसी से घृणा निीं िकरनी चाहिये, ककसी की उपेक्षा निीं िकरनी चाहिए, ककसी से जुगुप्सा निीं करनी चाहिए; कयोंकक सभी में िमें उस एकमेव के दशनि करने िैं जो स्वेच्छापूवकि प्रकट या प्रच्छन्न िै...।

समता का अथ िकोई कोरा अज्ञान अथवा अंधापन निीं िै, यि िमसे दृजष्ट के धुधँालेपन की तथा समस्त वववववधता के अन्त की मागँ निीं िकरती और न इसे ऐसा करने िकी आवश्यकता िी िै। (इस समता में) शभन्नता रिती िै, अशभव्यजकत की वववववधता रिती िै और इस वववववधता को िम भली-भानाँत समझेंगे, – पिले जब िमारी दृजष्ट पक्षपातपूण ितथा भ्ाजन्तपूण िप्रेम और घृणा से, स्तुनत और ननन्दा से, सिानुभूनत और वैर-ववरोध से तथा राग और द्वेष से मशलन थी तब िम इसे जजतना समझ पातेथे िउसकी अपेक्षा अब बिुत अधधक उधचत रूप में समझ पाएँगे। परन्तु इस वववववधता के पीछे िम सदा उस परम् िपूण ितथा अक्षर ब्रह्म को िी देखेंगे जो इसके अन्दर ववराजमान िै और ककसो भी ववशशष्ट अशभव्यजकत के - चािे वि िमारे मानवीय मानदण्डों के सिुौल एवं

पूण िप्रतीत िोती िो या बौैल एवं ंअपूण िऔर चिो वि शमथ्या एवं अशुभु िी कयों न प्रतीत िोती िो - सज्ञान प्रयोजन तथा हदव्य आवश्यकता को िम अनुभव करेंगे और जानेंगे अथवा यहद यि िमसे नछपी िुई िो तो कम-से-कम इसमें ववश्वास अवश्य करेंगे... इसीशलए िम स्वामी के िाथों से सभी वस्तुओंको सम भाव के साथ ग्रिण करेंगे। जब तक हदव्य ववजय का मुिूत िनिींआ जाता तब तक िम असफलता को भी शाजन्तपूवकि उसी प्रकार ववजय को ओर जाने वाले पथ के रूप में स्वीकार करेंगे जजस प्रकार सफलता को। दारुणतम पिीा और दुःख कष्ट से भी, यहद हदव्य ववधान में वे िमें प्राप्त िों, तो भी िमारे हृदय, मन और तन ववचशलत निीं ंिोंगे, और न ये तीव्र-से-तीव्र िष िएवं सुख से िी अशभभूत िोंगे...।

यि समता सुदीघ िअजग्न-परीक्षा तथा धीर आमम-साधना के त्रबना निींआ सकती; जब तक कामना प्रबल िोती िै तब तक ननस्तब्धता की तथा कामना की थकावट की घड़ियों को छोड़कर समता त्रबल्कुल भी प्राप्त निीं ंिो सकती, और तब (उन घड़ियों में भी) यि, समभवतः, सच्ची शाजन्त तथा ताजत्त्वक आध्याजममक एकता िोने की अपेक्षा किीं अधधक ननजष्यि उदासीनता, या कामना की अपनेआप से खझझक िी िोगी। इसके अनतररकत, इस साधना के या आमम की समता के इस ववकास के अपनेआवश्यक काल एवं अवस्थाएँ िोती िैं। साधारणतया िमें सहिष्णुता की अवस्था से प्रारमभ करना िोता िै; कयोंकक िमें सब स्पशों का सामना करना, उन्िें झेलेना तथा आममसात् ्करना सीखना िै। अपनेअंदर के िर एक तंतु को िमें यि शसखाना िोगा कक जो चीज दुःख देती तथा घृणा पैदा करती िै उससे यि खझझके या शसकुिे निींऔर जो वस्तु वप्रय लगती तथा आकृष्ट करती िै उसकी ओर उमसुकतापूवकि लपके निीं, अवपतु प्रमयेक वस्तु को स्वीकार करे, उसका सामना करे, उसे सिन करे तथा वश में करे। सभी स्पशों को सिने के शलये िमें सशकत िोना चाहिये, केवल उन्िींको निींजो िमारे शलये ववशशष्ट और ननजी िों, वरन् ्उन्िें भी जो िमारे चारों ओर के तथा ऊपर या नीचेके लोकों एवं ंउनके ननवाशसयों के साथ िमारी सिानुभूनत या संघष िसे िमें प्राप्त िों। अपने ऊपर िोने ेवाली मनुष्यों, पदाथों और शजकतयों की किया को तथा अपनेसाथ उनके संघषणि को, देवताओं के दबाव और असुरों के आिमणों को िम शान्त भाव से सिन करेंगे; अपनी आममा की अचल गिराइयों में िम उस सब का सामना करेंगे और उसे अपने अन्दर पूण िरूप से ननमजज्जत कर लेंगे जो कुछ आममा के अनन्त अनुभव के रास्ते िमारे सामने समभवतः आ सकता िै। यि समता की तैयारी का तपस्यापूण िकाल िै, यद्यवप यि इसकी एक सवथिा प्रारजमभक अवस्था िै तथावप यि वीरतापूण िकाल िै। परन्तु शरीर और हृदय एवं मन को इस दृढ़ सहिष्णुता को भागवत् ्इच्छाशजकत के प्रनत आध्याजममक अधीनता के जस्थर भाव का सिारा देना िोगाः इस जीते-जागते पुतले को, अपनी पूणति ा को गढ़ने वाले भागवत् ्िस्त के स्पश िके प्रनत, दुःख में भी, नत िोना िोगा - कठोर व सिसपूण िसिमनतपूवकि िी निीं, अवपतु ज्ञानपूवकि अथवा उमसग िके भाव में। ईश्वर-प्रेमी की ज्ञानपूण,ि भजकतपूण िअथवा यिाँतक कक करुणापूण िनतनतक्षा भी समभवनीय िै और इस प्रकार की नतनतक्षा उस ननरी बबरि और स्व-ननभरि सहिष्णुता से अधधक अच्छी िोती िै जो ईश्वर के इस आधार को अमयन्त कठोर बना सकती िै; कयोंकक इस प्रकार की नतनतक्षा एक ऐसी शजकत तैयार करती िै जो ज्ञान और प्रेम को धारण कर सकती िै; इसकी जस्थरता एक ऐसी गंभीरतः प्रेररत शाजन्त िोती िै जो सिज िी आनन्द में पररणत िो जाती िै। उमसग िऔर नतनतक्षा के इस काल का लाभ यि िोता िै कक िमें समस्त आघातों और समपकों का सामना करनेवाला आममबल प्राप्त िो जाता िै।

इसके बाद उस उच्चासीन तटस्थता एवं ंउदासीनता का काल आता िै जजसमें आममा िष िऔर ववषाद से मुकत िो जाती िै और सुख की लालसा के पाश से तथा दुःख-ददि के शूलों के अाँधेरे जाल से छूट जाती िै। सभी वस्तुओं, व्यजकतयों और शजकतयों पर, अपनेऔर दूसूरों के सभी ववचारों, भावों संवेदनों और कायों पर आममा ऊपर से अपनी दृजष्ट िालती िै, जो स्वयं अखण्ि् एवं ननववकिार रिती िै और इन चीजों से ववचशलत निींिोती। यि समता की तैयारी का धचन्तनाममक या दाशननिक काल िै, एक ववशाल तथा अनतमिान् ्गनत िै। परन्तु इस उदासीनता को कम ितथा अनुभव से ननजष्िय पराङ्मुखता के रूप में स्थायी निींि जाना चाहिये; यि व्याकुलता, ववरजकत तथा अरुधच से उमपन्न घृणा निींिनी चाहिये, न िी यि ननराश या असन्तुष्ट कामना की हठठक या उस पराजजत एवं ंअसन्तुष्ट अिं की उद्ववग्नता िोनी चाहिये जो अपने तीव्र या आवेशपूण िलक्ष्यों से बलात् ्पीछे िटा हदया गया िै। पीछे िटनेकी ये चेष्टाएँ अपररपकव आममा में अवश्यमेव प्रकट िोती िैं और आतुर एवं कामना-चाशलत प्राखणक प्रकृनत को ननरुमसाहित कर के ये एक प्रकार से प्रगनत में सिायक भी िो सकती िैं, ककन्तु ये सब वि पूणतिा निीं जजसकी ओर िम पुरुषाथ िकर रिे िैं। जजस उदासीनता या तटस्थता की प्राजप्त के शलये िमें प्रयमन करना िोगा वि िै वस्तुओं के स्पशों से परे उच्च-अवजस्थत आममा की प्रशान्त शे्रेष्ठता की; यि उन स्पशों को देखती तथा स्वीकार या अस्वीकार करती िै, पर अस्वीकृनत की अवस्था में चलायमान निीं ंिोती और स्वीकृनत से वशीकृत निींि जाती। यि अपने-आप को उस प्रशान्त आममा तथा आमम-तत्त्व के ननकट और उससे समबद्ध तथा एकमय अनुभव करने लगती िै जो स्वयंभू िै और प्रकृनत के व्यापारों से पृथक् िै, पर जो ववश्व की गनत और किया से अतीत, शान्त एवं अचल सद्वस्तु का एक अंश रिकर या उसमें ननमजज्जत िोकर उन व्यापारों को आश्रय देता तथा समभव बनाता िै। उच्च अनतिमण के इस काल के फलस्वरूप एक ऐसी आजममक शाजन्त प्राप्त िोती िै जो जागनतक गनत की मृदुलु हिलोरों अथवा तूफानी तरंगों और लिरों से आन्दोशलत और उद्वेशलत निींिोती।

इसमें मूल बात यि िै कक िमें यि बोध िो जाता िै कक जो कुछ भी घहटत िो रिा िै वि सब त्रबल्कुल ठीक िी रिा िै कयोंकक उसमें िमारे भीतर की कोई चीज अशभव्यकत िो रिी िै। और तब िम ककन्िींघटनाओंसे ववचशलत निीं ंिोते। इसका अथ ियि निीं िै कक व्यजकत उदासीन या ननवृवृर्त्परक भाव अपना लेता िै, अवपतु इसका अथ ियि िै कक िम जो कुछ भी करते िैं वि सब िमारे अिं अथवा मिो आहद के कारण निीं करते अवपतु परमाममा से एक िोकर उनकी लीला में अपनी भूशमका के रूप में करते िैं।

यहद िम आन्तर पररवतनि की इन दो अवस्थाओंमें से ककसी में भी बद्ध या अवरुद्ध िुए त्रबना इन्िें पार कर सकें, तो िम उस मिर्त्र हदव्य समता में प्रवेश पा लेंगे जो आध्याजममक उमसिा तथा शान्त िषावेश को धारण करने ेमें समथ िै और जो पूणतिाप्राप्त आममा की एक आनन्दमयी, सवबोधी और सवसंपन्न समता िै - उसकी सर्त्ा की एक ऐसी प्रगाढ़ तथा सम ववशालता एवं ंपररपूणतिा िै जो सब वस्तुओंको अपने में समाहित करती िै। यि सवोच्च अवस्था िै और इसे प्राप्त करने ेका पथ भगवान् ्तथा ववश्वजननी के प्रनत पूण िआममदान के िष िमें से िोकर जाता िै। कयोंकक, तब शजकत एक आनन्दपूण िप्रभुमव से सुशोशभत िोती िै, शाजन्त गिन िोकर आनन्द में पररणत िो जाती िै, हदव्य शांत-जस्थरता से संपन्न जस्थनत को उन्नीत कर हदव्य गनत से संपन्न जस्थनत का

आधार बना हदया जाता िै। परन्तुयहद यि मित्र पूणतिा शसद्ध िोनी िै तो आममा की उस तटस्थ उच्चासीनता या उदासीनता को, जो पदाथों, व्यजकतयों, गनतयों और शजकतयों के ननरंतर पररवतनि या प्रवाि पर ऊपर से दृजष्टपात करती िै, पररवनततित िोना िोगा और दृढ़ तथा शान्त आममननवेदन और सबल एवं तीव्र समपणि के एक नये भाव में पररणत िो जाना िोगा। यि आममननवेदन तब ईश्वरेच्छा के प्रनत ननराश सिमनत का निीं,ं अवपतु सिष िस्वीकृनत का भाव िोगाः कयोंकक तब दुःख झेलनेअथवा ककसी भार या सूली का कष्ट सिने का भाव तननक भी निीं ंिोगा; प्रेम और आनन्द तथा आममदान का िष ििी इसका उज्ज्वल ताना-बाना िोगा। यि समपणि केवल उस हदव्य संकल्प के प्रनत िी निीं ंिोगा जजसे िम अनुभव और स्वीकार एवं शशरोधाय िकरते िैं, वरन् ्इस संकल्प में ननहित उस हदव्य प्रज्ञा के प्रनत भी िोगा जजसे िम अंगीकार करते िैं और इसके अन्तननिहित उस हदव्य प्रेम के प्रनत भी जजसे िम अनुभव करते और सोल्लास विन करते िैं, - उस आममा अथवा आममसर्त्ा की प्रज्ञा एवं ंप्रेम के प्रनत िोगा जो िमारी और सब की परम् ्आममा एवं ंआममसर्त्ा िै और जजसके साथ िम मंगलमय एवं पररपूण ि एकमव उपलब्ध कर सकते िैं। एक एकाकी शजकत, शाजन्त एवं जस्थरता ज्ञानी की धचन्तनाममक समता का अजन्तम शब्द िै; परन्तु आममा अपनेसवाांगीण अनुभव में अपने-आपको इस स्व-रधचत जस्थनत से मुकत कर लेती िै और सनातन के अनाहद और अनंत आनन्द के परम् ्सवाशिलंगंनकारी उल्लास के सागर में प्रवेश करती िै। तब िम अन्ततः सभी स्पशों को आनन्दपूण िसमता से ग्रिण करने में समथ ििो जाते िैं, कयोंकक उनमें िम उस अववनश्वर प्रेम तथा आनन्द का संस्पश िअनुभव करते िैं जो वस्तुओं के अन्तस्तल में सदा-सवदिा प्रच्छन्न रूप से ववद्यमान िै। इस वैजश्वक एवं(सभी कुछ में) समान िषािवेश के इस शशखर पर पिुाँचने ेका परम् ्फल िोता िै आममा का आनन्द, असीम आनन्द के प्रथम द्वारों का उद्घाटन और एक ऐसे हदव्य िष िकी प्राजप्त जो मन और बुद्धध से परे िै।

उदासीनवत् ्समता आरोिण का एक सोपान िै जिा ाँिम इतने पयाप्ति ऊाँचेउठ जाते िैं कक िमारे शलये ककन्िींभी ननमनतर चीजों का कोई मूल्य निींरि जाता। परन्तु यि कोई बिुत उच्च जस्थनत निीं िै। इस जस्थनत से अलग जब िम यि मिसूस करें कक सवत्रि परमाममा िी ववद्यमान िैं और िमारा उनके साथ सतत् ्आनन्द नृमय चल रिा िै और संपूण िसंसार प्रभु के आनन्द के शलये िै, तो यि अवस्था िी त्रबल्कुल शभन्न िै। िमारी चेतना में तो

मि उस आनन्द की कल्पना भी निीं ंकर सकतेजो श्रीकृष्ण को रौपदी के चीर को बढ़ाने में आया िोगा। इस जस्थनत में तो ज्ञान, वैराग्य, समता आहद की, मन को भगवान् ्की ओर मोड़ने ेकी बातों की तो कोई प्रासंधगकता िी निीं ंरि जाती कयोंकक ऐसी जस्थनत में िमारा मन िमारे अपनेपास तो िोता िी निीं। वि तो प्रभु को अपणि िो चुका

िोता िै और िम उस आनन्द नृमय में शाशमल िो जाते िैं जिा ाँज्ञान, वैराग्य, समता आहद का तो प्रवेश िी संभव

निीं ंिै। परन्तु उस आनन्द नृमय में कोई अकमणण्यता निीं िोती। स्वयं भगवान् ्कृष्ण के जीवन को िी िम देखें कक ककस प्रकार उन्िोंने जन्म पूव िसे लेकर जीवनपयतां मिान् ्एवंघोर कम िककये। िमारे अपनेकाल में िी मि

योगी युञ्जीत सततरा्त्रानं रहमस जस्थतः ।

श्रीअरववन्द का एवं ंश्रीमाताजी का जीवन चररत देख सकतेिैं जजन्िोंने इतना ववराट् कम िककया जजतना कक कोई कल्पना तक निींकर सकता।

एकाकी यतधचत्तात्र्ा तनरीीरपररग्रहः ।। १० ।।

१०. योगी सर्स्त कार्ना और संग्रह करनेकी भार्ना को र्न से तनकालकर, अपनेधचत्त और संपूि वसत्ता को संयत कर के, अकेला एकातत र्ें बैठकर तनरंतर आत्र्ा (परर्ात्र्ा) के साथ युक्त होने का अभ्यास करे।

परन्तु आखखरकार इस योग को प्राप्त करना कोई सुगम बात निीं ंिै, जैसा कक अजुनि वास्तव में आगे चलकर सूधचत करता िै, कयोंकक इस चंचल मन की सदा िी बाह्य पदाथों के आिमणों के द्वारा इस उच्च अवस्था से नीचे खींच शलये जानेकी और पुनः शोक, आवेश और वैषमय के जोरदार कब्जे ेमें जा धगरने की आशंका बनी रिती िै। इसीशलए, मालूम िोता िै कक, गीता में ज्ञान और कम िकी अपनी साधारण पद्धनत के साथ-साथ राजयोग की ववशशष्ट ध्यान-प्रकिया भी बतायी गयी िै जो एक शजकतशाली अभ्यास िै मन और उसकी सब वृवृत्यों के पूण िननरोध का एक प्रबल साधन िै।

शुचौ दि ेप्रततष्ठाप्य जस्थरर्ासनर्ात्र्नः ।
नात्युजच्रतं ंनाततनीचं चैलाजजनकुिोत्तरर् ्।। ११ ।।
तत्रैकाग्रंर्नः कृत्र्ा यतधचते्तेजतद्रयकक्रयः ।
उपवश्र्यासने युजयाद्योगर्ात्र्वरि्द्धये ।। १२ ।।

११-१२. ई योगाभ्यासी र्नुष्य एक पवत्र् स्थान र्ें न बहुत अधधक ऊँचेन बहुत नीचेक्रर्ः र्ृगचर् वऔर खर्ाले अपने दृढ़ आसन को स्थावपत करे; उस आसन पर बैठ कर र्न को एकाग्र कर के धचत्त और इजतद्रयों को कक्रयाओं ंको संयत कर के आत्र्िुद्धध के मलये योग का अभ्यास करे।

सर्ंकायमिरोग्रीर्ं धारयतनचलं जस्थरः ।
सम्प्रेक्ष्य नामसकाग्रं स्र्ंददिश्चानर्लोकयन् ्।। १३ ।।
प्रिाततात्र्ा वर्गतभीब्रह्मचर्ारव्रते जस्थतः ।
र्नः संयम्य र्जच्चत्तो युक्त आसीत र्त्पर: ।। १४।।

१३-१४, पीठ, मसर और गदवन को सीधे और तनश्चल रखते हुए, जस्थर होकर, दृजष्ट को अपनी नामसकाग्र र्ें जस्थर कर के और इधर-उधर न देखते हुए र्न से भय को दूरू हटाकर, ब्रह्र्चय वव्रत का पालन करते हुए, र्न को संयत कर के, िांत धचत्त होकर, र्ुझर्ें (अथात्व ्भगर्ान् ्र्ें) अपनेधचत्त को लगाकर, भगर्त्परायि होकर, योग र्ें जस्थर होकर बैठे।

युञ्जतनेर्ं ंसदात्र्ानं योगी तनयतर्ानसः ।
िाजततं तनर्ािपरर्ां र्त्संस्थार्धधगच्छतत ।। १५।।

१५. इस प्रकार अपनेर्न को संयत ककया हुआ योगी तनरंतर अपने-आपको योग र्ें तनयुक्त करता हुआ र्ुझर्ें प्रततष्ठा र्ाली, तनर्ािक्की परर्ा िांतत को प्राप्त होता है।

ननवाणि की यि परमा शाजन्त तब प्राप्त िोती िै जब धचर्त् पूणतिया संयत और कामनामुकत िोकर आममा में जस्थत रिता िै...कफर भी, जब तक यि शरीर िै तब तक इस अवस्था का फल ननवाणि निीं ंिै, कयोंकक ऐसा ननवाणि संसार में कम िकरने की िर एक संभावना को, संसार के प्राखणयों के साथ िर एक संबंध को दूरू कर देता िै। प्रथम दृजष्ट में यिी जान पड़िता िै कक यि जस्थनत ननवाणि िी िोनी चाहिए। कयोंकक, जब सभी वासनाएँ और सब आवेग बन्द िो गये िों, जब मन को ववचारों में प्रवृर्त् िोने की अनुमनत िी न दी जाती िो, जब इसी मौन और एकांनतक योग का अभ्यास िी ननयम िो गया िो, तब कफर और कोई कम िकरना या बाह्य संस्पशों और अननमय प्रतीनतयों वाले इस संसार से ककसी प्रकार का संबंध रखना और अधधक संभव िी कैसे िो सकता िै? नन:संदेि योगी कफर भी कुछ काल तक इस शरीर में रिता िै, परंतु अब गुिा-कंदरा, वन या पवति-शशखर िी उसके रिने की उपयुकततम, और उसके दैनंहदन जीवन के एकमात्र संभव बाह्य पररवेश िोंगे और सतत् ्समाधध आमम-ववस्मृत जस्थनत िी उसका एकमात्र िष िऔर उसकी जीवनचर्याियोगी। परन्तु पिली बात यि िै कक गीता इस एकांनतक योग के अभ्यास काल में भी अन्य सभी कमों के पररमयाग की सलाि निीं देती।

नात्यश्नतस्तु योगोऽजस्त न चैकाततर्नश्नतः ।
न चातत स्व्प्नीलस्य जाग्रतो नैर् चाजुनव ।। १६ ।।

१६. हे अजुनव ! अर्श्य ही यह योग जो न तो अत्यधधक खाता है उसके मलए है और न उसके मलए जो त्रबल्कुल नहीं ं खाता, जैसे कक यह उसके मलए भी नहीं है जो अत्यधधक सोता है और न ही उसके मलये जो जागता ही रहता है।

[तापशसक उपायों से....कोई लाभ निीं ंिोता। तुम केवल अपने-आपको यि धोखा देते िो कक तुमने ेप्रगनत कर ली िै, परंतु उससे लाभ कुछ निींिोता। इसका प्रमाण यि िै कक यहद तुम अपनेतापशसक उपाय बन्द कर दो, तो समस्या पिले से भी अधधक प्रबल िो जाती िै; और वि प्रनतशोध के भाव से पुनः लौट आती िै। यि इस पर ननभरि करता िै कक तुम ककन चीजों को तापशसक उपाय किते िो। यहद इसका अथ ितुमिारी सभी कामनाओं की तुजष्ट में प्रवृर्त् न िोना िो तो यि वास्तव में तपश्चर्या निीं,ं यि सामान्य बुद्धध िै। यि एक शभन्न चीज िै। तापशसक उपायों से तामपय िऐसी चीजों से िै जैसे बार-बार उपवास करना, अपने-आपको शीत सिने के शलये बाध्य करना... वस्तुतः, अपनेशरीर को कुछ यंत्रणा देना। वास्तव में, यि तुमिें मात्र आध्याजममक अशभमान देता िै, इससे अधधक कुछ निीं। इससे ककसी चीज पर अधधकार निीं ंप्राप्त िोता। यि अमयंत आसान िै। लोग इसे इसशलए करते िैं कयोंकक यि बिुत सरल िै, बिुत सिज िै। ठीक इसशलए कयोंकक इससे अशभमान सवथिा संतुष्ट िोता िै, और दप िइससे फूल सकता िै, इसशलये यि बिुत सरल िो जाता िै। व्यजकत अपनेतापशसक गुणों का बड़िा प्रदशनि करता िै, और इस तरि अपने-आपको एक अमयंत मित्त्वपूण िव्यजकत मान बैठता िै, और इससे उसे बिुत-सी चीजें सिन करने ेमें सिायता शमलती िै।

अपनेआवेगों को शांत जस्थर भाव से वश में करना और उन्हें प्रकट िोने से रोकना, वि भी त्रबना तापशसक उपायों को अपनाये, बिुत अधधक कहठन िै – बिुत अधधक! अपने पास कुछ भी न रखने की अपेक्षा जो चीजें तुमिारे पास िैं उनके साथ आसकत न िोना बिुत अधधक कहठन िै। यि बात सहदयों से जानी जाती रिी िै। अपने अधधकार की वस्तुओंके त्रबना रिने ेया अपनी चीजों को कम-से-कम कर देनेकी अपेक्षा, तुमिारे पास जो कुछ िै उससे आसकत न िोने के शलए बिुत अधधक क्षमता या गुण की आवश्यकता िोती िै। यि बिुत अधधक कहठन िै। यि नैनतक मूल्य की दृजष्ट से अधधक श्रेष्ठ कोहट की चीज िै। बस, यिी मनोवृवृत्: कक जब कोई चीज तुमिारे पास आये तो ले लेना, उसका उपयोग करना; और कफर जब ककसी कारण से वि चली जाए तो उसे जानेदेना और खेद न करना। जब वि आये तो मना न करना, अपने-आपको जस्थनत के अनुकूल बनाना सीखना और जब वि चली जाये तो खेद न करना।

गीता का योग ककन्िींतापशसक उपायों से शसद्ध िोने ेवाला निीं ेिै। इसशलये अगले िी श्लोक में भगवान् ् कि देते िैं कक "जजसका भोजन और वविार (िीिा), कमों में ककया िुआ प्रयास, सोना और जागना सब युकत िैं उसके शलये योग दु:ख का नाश करनेवाला िोता िै।" श्रीमाताजी नेकिा कक अन्ततोगमवा सभी तापशसक उपायों का एक िी पररणाम िोता िै और वि िै आध्याजममक अशभमान की वृद्धध। इन साधनों के अभ्यास से साधक को यहद कोई छोटी-मोटी शसद्धध या शजकत प्राप्त िो जाये तब कफर तो उसके अशभमान की कोई सीमा िी निीं रिती।

इसीशलए गीता ने इन ककन्िीं भी उपायों पर बल न देकर सभी कियाओंमें भगवान् ्के साथ युकत िोने ेपर िी बल हदया िै।

युक्ताहारवर्हारस्य युक्तचेष्टस्य कर्सुव ।
युक्तस्प्नार्बोधस्य योगो भर्तत दु:खहा ।। १७।।

१७. जजसका भोजन और वर्हार (क्रीड़ा), कर्ों र्ें ककया हुआ प्रयास, सोना और जागना सब युक्त हैं उसके मलये योग दु:ख का नाि करनेर्ाला होता है।

प्राय: इसका अथ िियि लगाया जाता िै कक यि सब पररशमत, ननयशमत और उपयुकत मात्रा में िोना चाहिए, और इसका यि आशय िो भी सकता िै। परन्तु जो भी िो, जब योग प्राप्त िो चुका िो तब इन सबको एक दूसरे िी अथ िमें 'युकत' िोना चाहिए, उस अथ िमें जजसमें यि शब्द गीता के अन्य सब स्थानों में साधारण रूप से व्यविार में लाया गया िै। खाते-पीते, सोते-जागते और कम िकरते, सभी अवस्थाओं में योगी तब भगवान् ्के साथ 'युकत' रिेगा और उसके द्वारा सभी कुछ भगवान् ्की िी चेतना में ककया जाएगा, इस रूप में कक भगवान् ्िी उसकी आममा और 'सवशिमदं' िोंगे तथा वि िोंगे जो उसके अपनेजीवन और कम िको आश्रय देते िैं तथा उसे धारण करते िैं। कामना, अिंकार, व्यजकतगत संकल्प और मन के ववचार केवल ननमन प्रकृनत में िी कम िके िेतु िोतिं; जब अिंकार लुप्त िो जाता िै और योगी ब्रह्म िो जाता िै, और यिाँतक कक जब वि एक परामपर चेतना और ववश्व-चेतना में िी रिता और स्वयंविी बन जाता िै, तब कम िउसी में से सिज रूप से ननकलता िै, मानशसक ववचार की अपेक्षा उच्चतर ज्योनतमयि ज्ञान उससे ननकलता िै, उसी में से वि शजकत ननकलती िै, जो व्यजकतगत

संकल्प से अलग और बुित अधधक बलवती ि ै और जो उसके शलये उसके कम िकरती ि ै और उसके फलों को लाती ै: किफर व्यजकतगत कम िबंद िो जाता ि ै, सब कुछ ब्रह्म में िी ले शलया जाता और भगवान् के द्वारा धारण ककया जाता ि ै, मनय संन्यस्य कमाखिण।

ii.30

इसका अथ िय भी लगाया जा सकता ि ै कक व्यजकत को अमयधधक मात्रा में खाने, सोनेआहद की कियाएँ नीं करनी चाहिये अवपतु संयशमत तरीके से सभी कुछ करना चाहिये। परन्तु इसका गिरा तामपय िय ि ै कक व्यजकत जो भी कम िकरे वि भगवान् से युकत िोकर, उनसे जिु कर िी करे। 'योगः कमसिु कौशलम्'। तब कफर वि जो कुछ भी करेगा उसमें परमामा की िी अशभव्यजकत िोगी।

यदा वर्तनयतंधचत्तरा्त्तयेर्ार्ततष्ठते ।
तनःस्पृहः सर्कवारे्भ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ।। १८।।

१८. जजस सर्य सर्स्त धचत्त पूरी तरह से संयत और सर्स्त काम्य पदाथों के प्रतत तृष्ट्ािरिदहत हो आत्रा र्े जस्थत हो जाता है, तब उस योगी को 'युक्त' कहते हैं।

यथा दीपो तनर्ातस्थो नेङ्गतेसोपर्ा स्रृता ।
योधगनो यतधचत्तस्य युञ्जतो योगर्ात्नः ।। १९।।
१९. र्ायुरदहत स्थान र्े रखे हुए दीपक की अवर्चल लौ के सर्ान ही उस योगी का धचत्त संयत या तनरुद्ध होता है जो आत्रा से ऐक्य साधनेअथर्ा युक्त होने का अभ्यास करता है।

यत्रोपरर्तेधचत्तं तनरुद्धं योगसेर्या ।
यत्र चैर्ात्नात्रानं पश्यतनात्तन तुष्यतत ।। २० ।।
२०. जजस जस्थतत र्े योगाभ्यास से तनरुद्ध हुआ धचत्त िांत और तनश्चल हो जाता है; जजस जस्थतत र्े आत्रा का आत्रा के द्वारा आत्रा र्े दिनव ककया जाता है, (जैसा इस बात को गलत रूप र्े मलया जाता है कक र्न द्वारा अिुदुध रूप से या आंमिक रूप से दिनव ककया जाता है और अहंकार द्वारा हर्ारे सर्क्ष प्रस्तुत ककया जाता है र्ैसे नहीं, अवपतुआत्रा द्वारा आत्र-बोध या आत्रानुभर् ककया जाता है) और जीर् (योगी) संतुष्ट हो जाता है;

सुखर्ात्यजततकं यत्तद्बुद्धधग्राह्यर्तीजतद्रयर् ।
र्ेवत्त यत्र न चैर्ायं जस्थतश्चलतत तत्त्तः ।। २१ ।।

२१. जजस अर्स्था र्ें जीर् (योगी) अपनेउस सच्चेऔर चरर् सुख को जानता है जो अतीजतद्रय है जजसे बुद्धध द्वारा अनुभर् ककया जाता है, और जजस (अर्स्था) र्ें जस्थत हो जाने पर र्ह अपनी सत्ता के आध्याजत्र्क सत्य से वर्चमलत नहींहोता;

यं लब्ध्िा चापरं लाभं र्तयते नाधधकं ततः ।
यजस्र्जतस्थतो न दुःखेन गुरुणावप वर्चाल्यते ।। २२।।

२२. और जजस आत्यंततक सुख (अध्यात्र् आनंद) को प्राप्त कर के योगी ककसी भी दूसूरे लाभ को उसकी अपेक्षा र्ह्त्तर नहीं र्ानता; जजसर्ें जस्थत हो जाने पर र्ह र्ानमसक दुःख के भीषितर् आक्रर्ण से भी वर्चमलत नहीं होता;

....जीव तृपूत िोता और अपनेवास्तववक परम् ्सुख को जानता िै, वि अशान्त सुख निींजो मन और इजन्रयों को प्राप्त िै, अवपतु वि आंतररक और प्रशान्त आनन्द जजसमें वि मन की व्याकुलताओंसे सुरक्षक्षत िोता िै और कफर वि कभी अपनी सर्त्ा के आध्याजममक समय से च्युत निींिोता। मानशसक दुःख का प्रचण्र्तम आिमण भी उसे ववचशलत निीं कर सकता, कयोंकक मानशसक दुःख िमारे पास बािर से आता िै, वि बाह्य स्पशों की िी प्रनतकियास्वरूप िोता िै, तथा यि उन लोगों का आंतररक स्वतः-शसद्ध आनन्द िै जो बाह्य स्पशों की चंचल मानशसक प्रनतकियाओं ्के दासमव को अब और स्वीकार निीं ्करते।

यिा ्ाँगीता योगी की जस्थनत का वणनि करते िुए एक पूण िया अनतशय प्रकार का कथन करती प्रतीत िोती िै कक भीषणतम आिमण से भी योगी ववचशलत निीं ्िोता। यहद गीता के कमयिोग के शसद्धांत को ध्यान में रखते ्िुए इस कथन पर ध्यान दें तब यि एक सिी पररप्रेक्ष्य में समझ में आता िै। जब इस माग िपर व्यजकत अग्रसर िोता िै तब वि इस ववषय में सचेतन िोता िै कक िमारी सकिय चेतना में बािर से संवेदन आते रिते िैं। िालाँकक व्यजकत का कोई भाग तटस्थ रूप से यि अवलोकन कर पाता िै कक ये संवेदन बािर से आ रिे िैं परंतु तो भी िमारी अवचेतन, भौनतक तथा प्राखणक प्रकृनत से आिमण की आशंका सदा िी बनी रिती िै। केवल पूण िरूपांतर के बाद िी व्यजकत ककसी भी प्रकार के आिमण की आशंका से पूण िरूप से ननजश्चंत िो सकता िै। परन्तु उससे पूव िभी इतना तो ककया िी जा सकता िै कक ये ननमनतर प्रभाव िमारी बुद्धध को प्रभाववत न कर पाएँ और वि लगभग अप्रभाववत बनी रिे। श्रीअरववन्द के लेखों से िमें यि पता लगता िै कक एक सापेक्ष समता की जस्थनत, एक सापेक्ष प्रकार की पूणतिा की जस्थनत प्राप्त की जा सकती िै जिाँमि अपेक्षाकृत रूप से अधधक समता की जस्थनत में रि सकतिे और ननमनतर प्रभाव अपेक्षाकृत रूप से िमें अधधक ववचशलत निींकर पाते। परंतुजब तक ज़्ि-भौनतक चेतना पर ववजय प्राप्त निीं कर ली जाती तब तक िम इससे पूण िरूप से सुरक्षक्षत निीं। िाँ, एक ननजश्चत स्तर की शांनत, संतुलन, सामंजस्य तथा समता की जस्थनत अवश्य प्राप्त की जा सकती िै। और ज़्ि-भौनतक चेतना पर आज तक कभी पूण िववजय निींप्राप्त की सिी िै कयोंकक त्रबना अनतमानशसक चेतना के ऐसा करना संभव निीं ्िै।

तं वर्द्याद्दुःखसंयोगवर्योगं ्योगसंक्षज्ञतर् ्।

स तनश्र्येन योक्तव्यो योगोऽतनवर्ण्विचेतसा ।। २३।।

२३. र्न के साथ दु्ःख-ददव के संबंध से इस रु्जक्त को ही योग के नार् से जानना चादहये। इस योग का धचत्त र्ें ककसी भी प्रकार के अनुत्साह अथरा् वर्षाद र्ें डूबे त्रबना दृढ़तापूर्कव तनरंतर अनुष्ठान करना चादहए।

यि दु्ःख के साथ संबंध-ववच्छेद करना ि ै, दु्ःख के साथ मन के संयोग का ववच्छेद करना ि ै, दु्ःखसंयोगववयोगम्।् इसी अववच्छेद्य आध्याजममक आनन्द की सुदृढ़ प्राजप्त का नाम योग, अथात्ि् भगवान् ्से ऐकय, ि ै, यिी लाभों में सबसे बड़ा लाभ ि ै और यिी वि धन ि ै जजसके सामने अन्य सब संपवत्यों का कोई मूल्य निीं ंरि जाता। इसशलए पूण िननश्चय के साथ, कहठनाई या ववफलता जजस उमसािीनता को लाते ि ैं उसके अधीन िुए त्रबना, इस योग को तब तक ककये जाना चाहिए जब तक मुजकत न शमल जाए, जब तक कक ककसी शाश्वत उपलजब्ध के रूप में ब्रह्मननवाणि का आनन्द प्राप्त न िो जाए।

परंतु हृदय तथा मन की अधीरता और िमारी राजस प्रकृनत की उमसुक पर स्खलनशील इच्छा-शजकत के कारण योग के ववषम तथा संकीण िपथ पर इस श्रद्धा तथा धैय िकी प्राजप्त करना अथवा उसका अभ्यास करना कहठन िोता ि ै। मनुष्य की प्राखणक प्रकृनत सदा िी अपनेपररश्रम के फल के शलये तरसती ि ै और यहद उसे ऐसा लगता ि ै कक फल देने से इंकार ककया जा रिा ि ै या इसमें बिुत देर लगायी जा रिी ि ै तो वि आदश ितथा नेतृमव में ववश्वास खो बैठती ि ै। कयोंकक, उसका मन सदा िी पदाथों की बाह्य प्रतीनत के द्वारा िी ननणयि करता ि ै, कयोंकक यि उस बौद्धधक तकि की पिली सबसे भारी गिराई तक जमी िुई आदत ि ै जजसमें वि इतने अनतशय रूप से ववश्वास करता ि ै। जब िम धचरकाल तक कष्ट भोगतेया अन्धेरे में ठोकरें खाते ि ैं तब अपनेहृदयों में भगवान् ्को कोसने से अथवा जो आदश िि मने अपने सामने रखा ि ै उसे मयाग देने से अधधक आसान िमारे शलये और कुछ निीं िोता। कयोंकक, िम किते ि ैं, "मनैं ेसवोच्च सत्ा् पर ववश्वास ककया ि ै और मेरे साथ ववश्वासघात कर के मुझे ेदु्ःख, पाप और भ्ाजन्त के गत िमें धगरा हदया गया ि ै।" या कफर, "मनैं ेएक ऐसे ववचार पर अपनेसारे जीवन की बाजी लगा दी ि ै जजसे अनुभव के दृढ़-तथ्य खंडित तथा ननरुमसाहित करते ि ैं। बेितर िोता कक म ैंभी दूसूरे उन सब के जैसा िी िोता जो अपनी सीमाएँ स्वीकार करते ि ैं और सामान्य अनुभव के जस्थर आधार पर ववचरण करते ि ैं।" ऐसी घड़ियों में - और कभी-कभी ये बारमबार आती ि ैं और दीघकिाशलक िोती ि ैं - समस्त उच्चतर अनुभव ववस्मृत िो जाता ि ै और हृदय अपनी कटुता में िूब जाता, उसी पर केंहरत िो जाता ि ै। इन्िीं अंधकारमय कालों में यि आशंका रिती ि ै कक िम सदा के शलये पनतत िो सकते िैं अथवा हदव्य काय िया श्रम से पराङ्मुख िो सकते िैं।

साधना पथ में आने ेपर भी मनुष्य के प्राण को उसकी कियाओं का प्रनतफल निीं ंशमलता तो वि अधीर िो जाता ि ै, ववचशलत िो जाता ि ै। यहद उसे स्थूल प्रनतफल की चाि न भी िो तो भी अधधकांशतः आध्याजममक अनुभव प्राप्त करने ेकी चाि बनी रिती ि ै, योग में शसद्धध की चाि बनी रिती ि ै। और गिन प्रयास के बाद भी जब प्राण की ये तृष्णाएँ पूरी निीं ंिोतीं तो वि अधीर िो उठता ि ै और नकाराममक संवेदन और सुझाव भेजने ेलगता ि ै जैसे कक 'यद्यवप साधना में लगे िमें एक लंबा समय बीत गया ि ै परंतु अभी तक कोई ववशेषे उपलजब्ध निींिुई'

अथवा यि कक 'िम तो दूसूरों से ककसी भी भानाँत कम निीं ंिैं कफर भी िमें कोई उपलजब्ध निीं ंिुई' आहद-आहद। ये सब बुित िी आम सुझाव िैं जो अधधकांश साधकों को साधना के ककसी-न-ककसी पड़ाव पर आते िी िैं। और जस्थनत तब और भी भयंकर बन जाती िै जब िमारी बुद्धध भी प्राण का समथनि करनेलगती िै। साधना पथ पर ऐसा कौन िै जजसके ये काल न आते िों। परन्तु वास्तव में यहद आममा ने ननणयि कर शलया िै तो धगरने के बाद भी वि पुनः व्यजकत को उसी पथ पर ले आयेगी। इसशलये गीता किती िै कक साधना के पथ पर अनवरत लगे रिो। जब तक कोई भी कामना शेष िै तब तक इस प्रकार के काल आयगें िी। इसीशलये श्रीअरववन्द कितेिैं कक योग केवल और अनन्य रूप से भगवान् ्के शलये िी िोना चाहिये। जब िम ककसी अन्य वस्तु की प्राजप्त के शलये योग कर िी निीं रिे िोतेतो कफर उसके शमलने या ना शमलने से तो िमें कोई प्रयोजन िी निींरि जाता।

परन्तु यहद कोई पथ पर दूरू तक तथा दृढ़ता से चल चुका िो तो हृदय की श्रद्धा उग्र-से-उग्र ववरोधी दबाव में भी जस्थर बनी रिेगी; आच्छाहदत या बार-बार से देखने में पराजजत िोने ेपर भी, यि पिला अवसर पाते िी कफर उभर आयेगी। कारण, हृदय या बुद्धध से उच्चतर कोई चीज इसे अनत ननकृष्ट पतनों के िोतेिुए भी तथा अमयन्त दीघकिालीन ववफलता में भी सिारा देगी। परन्तु ऐसी दुबलुिताएँ या अन्धकार की अवस्थाएँ एक अनुभवी साधक तक की प्रगनत में भी गनतरोध लाती िैं और नौशसखखये के शलये तो ये अमयन्त िो असुरक्षक्षत या खतरनाक िोती िैं। अतएव, आरमभ से िी आवश्यक िोता िै कक इस पथ की ववकट कहठनाई को समझा और इसे अंगीकार ककया जाए और उस श्रद्धा की आवश्यकता को अनुभव ककया जाए जो बुद्धध को भले िो अन्धी प्रतीत िोती िो कफर भी िमारी तकिशील बुद्धध से अधधक ज्ञानपूण ििोती िै। कयोंकक यि श्रद्धा ऊपर से शमलने वाला अवलंब िै; यि उस गुप्त ज्योनत की उज्ज्वल छाया िै जो बुद्धध और इसके ज्ञात तथ्यों से अतीत िै; यि उस ननगूढ़ ज्ञान का सारभूत तत्त्व िै जो प्रमयक्ष प्रतीनतयों का दास निीं ंिै। िमारी श्रद्धा, अटल या दृढ़ रिकर, अपनेकमों में युजकतयुकत या उधचत शसद्ध िोगी और अन्त में हदव्य ज्ञान के आमम-प्रकटन में उन्नीत तथा रूपान्तररत िो जाएगी। सदा िी िमें गीता के इस आदेश का दृढ़ता से अनुसरण करना िोगा कक "ननराशा अथवा अवसाद से रहित हृदय के द्वारा योग का ननरन्तर अभ्यास करना चाहिये।" सदा िी िमें संशयशील बुद्धध के समक्ष ईश्वर की यि प्रनतज्ञा दुिरानी िोगी, "म ैंननश्चय िी तुझे ेसमस्त पाप एवं ंअशुभु से मुकत कर दूंगा; शोक मत कर।" अन्त में, श्रद्धा की अजस्थरताएँ दूरू िो जाएँगी, कयोंकक िम भगवान् ्की मुखछवव ननिार लेंगे और भागवत् ्उपजस्थनत को सदा िी अनुभव करेंगे। बुित िी मित्त्वपूण िबात िै कक एक बार जब िमने योग माग िपर

यि कदम रख हदया तब चािे िजार जन्म भी कयों न लग जाय,ें िमें इधर-उधर निीं ंदेखना िै। ककसी भी प्रकार के अन्य संवेदनों के प्रनत िमें अपने आप को त्रबल्कुल भी निींखोलना िै। जब तक िम प्राण के कुतकों को सुनते ेरिेंगे तब तक आममा को अपनी वाणी सुनाने ेका कोई अवसर िी निीं शमलेगा। इसशलये िमें ननश्चय करना िोगा कक चािे कुछ भी कयों न िो जाए पर िम ककसी अन्य ववषय के बारे में निीं सोचेंगे। तब जाकर द्वार खुल जाते िैं। प्राण को जब तक इसकी संभावना लगेगी कक िम पथ से च्युत िो सकते िैं तब तक वि प्रयास करता रिेगा। जिाँिमारी कमजोरी िोगी प्राण विींआिमण करेगा। जब तक िममें कोई भी कमजोरी रिेगी तब तक िम आगे बढ़ िी निीं ंसकते। यि िमारी सारी कमजोररयों से िमें ऊपर उठायेगा। जब िम िमारी श्रद्धा में अडिग

र्िगे तब वि िमें अकेला छोड़ देगा। गीता किती िै कक जब िम त्रबना इधर-उधर देखे चलते रिंगे तो िमें भागवत् ् द्वारों की कुंजी शमल जायेगी। परंतु अब भी िमारा ध्यान भगवान् ्के ऊपर केंहरत िोना चाहिये न कक इस बात पर कक साधना के द्वारा द्वार खुल जाएँगे, वि िमारा ववषय निीं ंिै।

संकल्पप्रभर्ातकार्ांस्त्यक्त्र्ा सर्ानविेषेतः ।
र्नसैर्ेजतद्रयग्रार्ं वर्तनयम्य सर्ततः ।। २४।।
निैः िनैरुपरर्ेद्बुद्धया घृतृतगृहीतया ।
आत्र्संस्थंर्नः कृत्र्ा न ककंधचदवप धचततयेत् ्।। २५॥

२४-२५. संकल्प से उत्पतन होनेर्ाली संपूि वकार्नाओंका तनःिेष रूप से पररत्याग कर के, र्न के द्र्ारा सर्स्त इजतद्रयों को सब ओर से ही तनर्तृ्त कर के (जजससे कक र्े इधर-उधर न दौड़ सकें) जस्थरता से संयत बुद्धध (जस्थरबुद्धध) के द्र्ारा धीरे-धीरे र्न की कक्रया को बंद कर देना चादहए, र्न को उच्च आत्र्ा र्ें जस्थर कर के ककसी भी पदाथ वके बारे र्ें न सोचना चादहए।

यतो यतो तनश्चरतत र्नश्चश्चलर्जस्थरर् ्।
ततस्ततो तनयम्यैतदात्र्तयेर् र्िं नयेत् ्।। २६।।

२६. चंचल और अजस्थर र्न (जब-जब और) जजस-जजस वर्षय की ओर बाहर जाने की चेष्टा करे (तब-तब और) र्िीं-र्िींसे इसे रोककर (हटाकर) आत्र्ा के ही र्ि र्ें ले आये (आत्र्ा र्ें जस्थर करे)।

प्रिाततर्नसं होनं ंयोधगनं सुखर्ुत्तर्र् ्।
उपैतत िाततरजसं ब्रह्र्भूतर्कल्र्षर् ्।। २७।।

२७. जब र्न को पूरी तरह िांत कर ददया जाता है तब तनश्चय ही योगी को उस आत्र्ा का, जो ब्रह्र् बन गई है, असंर्ेगिील, तनर्लव, उच्चतर् आनतद प्राप्त होता है।

युञ्जतनेर्ं ंसदात्र्ानं योगी वर्गतकल्र्षः ।
सुखेन ब्रह्र्संस्पिर्वत्यततं सुखर्श्नुते।। २८।।

२८. इस प्रकार (कार्-क्रोधाददद) वर्कारों से र्ुक्त और सर्दवा अपने-आपको योग र्ें तनयुक्त करता हुआ योगी सरलता से और प्रसतनता के साथ ब्रह्र् के स्पिरूवप चरर् कोदट के आनतद (परर्ानंद) का अनुभर् करता है।

यिा ाँप्रधान बल भावनामय मन, कामनामय मन और इजन्रयों के ननरोध पर हदया गया िै, कयोंकक ये बाह्य स्पशों को ग्रिण करते िैं और िमारी सामान्य अभ्यस्त भावावेगमय प्रनतकियाओंके द्वारा उनका प्रमयुत्र देते िैं; परन्तु यिा ाँतक कक मानशसक ववचार को भी स्वतः-ववद्यमान सर्त्ा की शाजन्त में ले जाकर जस्थर करना

गिा। पिले, कामनामय संकल्प से जननत सभी कामनाओंको त्रबना ककसी को छोड़े या बचाए नन:शेषे रूप से पूरी तरि से मयाग देना िोगा और मन के द्वारा इजन्रयों को वश में करना िोगा ताकक वे अपनी िमेशा की अव्यवजस्थत और चंचल आदत के कारण चारों ओर दौड़ती न कफरें; परन्तु इसके बाद स्वयंमन को िी बुद्धध से पकड़कर अंतमुखि करना िोगा। व्यजकत को ननश्चल बुद्धध के द्वारा मानशसक कम िकरना धीरे-धीरे बन्द कर देना चाहिए और मन को आममा में जस्थत कर के ककसी बारे में कुछ भी न सोचना चाहिए। जब-जब चंचल अजस्थर मन ननकल भागे तब-तब उसका ननयमन कर के उसे पकड़कर आममा के अधीन लाना िोगा। जब मन पूण िरूप से शान्त िो जाए तो योगी आसानी से व प्रसन्नता से ब्रह्म के स्पश िको, जो कक अनतशय आनन्ददायी िै, अनुभव करता िै।

अब प्रश्न यि उठता िै कक इसे ककया कैसे जाये? कयोंकक जजस प्रकिया का यिा ाँवणनि िै उसे यहद कोई व्यविार में लानेका प्रयास करेगा तो कुछ िी समय में वि कलांत िो जाएगा। सामान्य व्यजकत के शलये तो यि रास्ता बिा िी दुःखदायी िो सकता िै। कुछ लोग ऐसे िोतिैं जजनका आन्तररक संतुलन इस प्रकार का िोता िै कक उनमें मयाग और वैराग्य की भावना अधधक िोती िै। वे लोग ककसी ननजनि स्थान पर जाकर और अमयधधक प्रयास कर के, अनेक अभ्यास कर के मन को बिुत िद तक शांत कर लेते िैं। ऐसे लोग ककसी ननजनि स्थान पर जाकर वषों तक कठोर साधना करते िैं। ककसी एक मंत्र अथवा ककसी एक िी ववचार पर स्वयं को केजन्रत कर के वषों तक लगे रिते िैं। बौद्ध धम िआहद में इस प्रकार की बिुत सी पद्धनतयााँ वखणति िैं। इन पद्धनतयों का अभ्यास मन के यांत्रत्रक स्वभाव से भी अधधक यांत्रत्रक रूप से ककया जाता िै। और इस प्रकार के ननषेध के कारण मन और धचर्त्वृत्यााँस्वयं िी धीरे-धीरे शांत िो जाती िैं। जब व्यजकत को उस अवस्था में रस आने लगता िै तब वि न्यूनतम आवश्यक दैननक कायों के अलावा केवल ध्यान में िी रमे रिता िै। इस जस्थनत को प्राप्त करना संभव िै और बिुत से व्यजकतयों ने इसे प्राप्त भी ककया िै परन्तु िर एक की प्रकृनत के शलये यि अनुकूल निीं। कुछ ववशशष्ट व्यजकत िी िोतिैं जो ऐसा कर पातिैं। इसमें व्यजकत स्वयं को इजन्रयों के भोगों से, संवेदनों से िठपूवकि पूणतिः वंधचत कर देता िै और ऐसा करने से धचर्त् की वृवृर्त्या ाँधीरे-धीरे शांत िो जाती िैं जजससे कक अक्षर की जस्थनत का अनुभव प्राप्त िो जाता िै।

परन्तु इस प्रकिया को िम मन पर प्रभुमव िोना निींकि सकतेकयोंकक यि तो ककसी पद्धनत के सिारे प्राप्त ककया गया एक ननयंत्रण िै और जैसे िी साधक का अपनेमन पर से थोड़ा-सा भी ननयंत्रण कमजोर पड़ता िै वि पुन: नीचे धगर जाता िै। और पुन: विााँ तक पिुाँचने के शलए व्यजकत को दुबारा उतनी िी मेिनत करनी पड़ती िै। परंतु परमाममा तक पिुाँचने के िजारों रास्तों में से यि भी एक रास्ता िो सकता िै जो ककसी व्यजकत ववशेषे की प्रकृनत के अनुकूल िो। साधना में ककसी त्रबन्दु ुपर यि प्रकिया आवश्यक िो सकती िै जो व्यजकत को कुछ अनुभव प्रदान कर दे। इसी तरि प्राणायाम भी व्यजकत को कुछ अनुभव प्रदान कर सकता िै। और िो सकता िै कक इससे व्यजकत के जीवन में कुछ पररवतनि आ जाए। परन्तु इससे व्यजकत की प्रकृनत में कोई ववशेषे फकि निींपड़ता। इस प्रकार की ककसी भी साधना से प्रकृनत पर वि प्रभुमव प्राप्त निीं ंिो सकता जैसा भगवान् ्श्रीकृष्ण का कुरुक्षेत्र की भूशम पर िमें देखने को शमलता िै जो कक घोर युद्ध समक्ष िोने ेपर भी िाँसते िुए गीता का उपदेश दे रिे िैं। जिााँ

अजुनि इस पूरे दृश्य को देखकर ववचशलत ि◌ो रि ि◌ै विीं श्रीकृष्ण मुस्कुराति◌ुए ज्ञान दे रि ि◌ैं। यि तो एक अद्भुत भाव ि◌ै जो सामान्य बुद्धध की पक़ि में निीं ◌ंआ सकता।

सर्भूवतस्थर्ात्र्ानं ◌ंसर्भूवतातन चात्र्तन ।
ईक्षते योगयुक्तात्र्ा सर्त्रव सर्दिनवः ।। २९।।
२९. जजसका आत्र्ा योग र्ें युक्त हो गया है ऐसा सबको सर्ान दृजष्ट से देखनेर्ाला योगी आत्र्ा को सर्स्त भूतों र्ें देखता है और सर्स्त भूतों को आत्र्ा र्ें देखता है।

यि आममा ि◌ी ि◌मारी स्वतः ववद्यमान सर्त्ा ि◌ै। यि ि◌मारे वैयजकतक अजस्तमव से सीशमत निीं ि◌ै। यि सभी भूतों में समान, व्यापक, सबके शलए सम, अपनी अनन्तता से अखखल ववश्वकम ि◌को धारण करनेवाली ि◌ै, परंतु जो कुछ भी सीशमत ि◌ै उससे यि सीशमत निीं ◌ंि◌ोती, प्रकृनत और व्यजकतमव के पररवतनिों से पररवनतति िोनेवाली निीं ि◌ै। जब यि आममा ि◌मारे अंदर प्रकाशशत ि◌ोती ि◌ै, जब ि◌म इसकी शाजन्त और नीरवता का अनुभव करते ि◌ैं, तब ि◌म इसमें संवद्धिधत ि◌ो सकते ि◌ैं; ि◌मारा अंतःपुरुष जो अभी प्रकृनत में ननमजज्जत ि◌ोकर ननमनतर अवस्था में ि◌ै उसे आममा में पुनः प्रनतजष्ठत कर सकतिे। ि◌म यि उन वस्तुओंकी शजकत से कर सकते ि◌ैं जो ि◌में प्राप्त ि◌ुई ि◌ैं - जस्थरता, समता, ननववकिार नैयजकतकता। कयोंकक ज्यों-ज्यों ि◌म इन चीजों में ववकशसत ि◌ोतिे, उन्ि अपनी पररपूणताि तक पि◌ुँचाते ि◌ैं और अपनी सारी प्रकृनत को इनके अधीन कर देते ि◌ैं, मयों-मयों ि◌म इस शांत-जस्थर, सम, ननववकिार, नैव्यजिकतक, सवव्यािपक आममा के स्वरूप में ववकशसत ि◌ोतेजाते ि◌ैं। ि◌मारी इजन्द्रयााँउसी नीरवता में जा पि◌ुँचती ि◌ैं और जगत् ◌्के स्पशों को परम् ◌्शाजन्त के साथ ग्रिण करती ि◌ैं; ि◌मारा मन उसी नीरवता को प्राप्त ि◌ो जाता ि◌ै और शान्त वैजश्वक साक्षी बन जाता ि◌ै; और ि◌मारा अिंकार इसी नैयजकतक सर्त्ा में ववलीन िो जाता ि◌ै। तब ि◌म सभी चीजें उसी आममा में देखतिे जो ि◌म स्वयं अपनेआप में बन चुके ि◌ैं; और इस आममा को ि◌म सबके अन्दर देखतिे, ि◌म सब भूतों के साथ उनकी आममसर्त्ा में एकीभूत ि◌ो जाते ि◌ैं। इस अिभावशून्य अथवा ननष्काम शाजन्त और नैयजकतकता में रिते ि◌ुए ि◌म जो कम ि◌करते ि◌ैं वे ि◌मारे कम ि◌निींरि जाते, वे अब अपनी प्रनतकियाओं से ि◌में ककसी भी प्रकार से न तो बाधाँ सकतिे न कोई पी़िा ि◌ी पि◌ुँचा सकतिे।

परन्तु यहद वि लेशमात्र भी क्षर की क्षरशीलता में रि तो कया उसका इस कहठन योग के समस्त फलों को खो देने का, आममा को खो देने का और कफर से मन के अन्दर जा धगरने का खतरा निीं, भगवान् ◌्का उसे खो देने का और उसका जगत् ◌्में रम जानेका, उसका भगवान् ◌्को खो देनेका और उनकी जगि कफर से अिंकार को तथा ननमन प्रकृनत को पाने का खतरा निीं ◌ंि◌ै? गीता उर्त्र देती ि◌ै, निीं.◌ं..

यो र्ांपश्यतत सर्त्रव सर्ं ◌ंच र्तय पश्यतत ।
तस्याहं न प्रिश्यामर् स च र्े न प्रिश्यतत ।। ३० ।।

३०. जो रुझे ेसर्त्रव देखता है और सब को रुझ र्ें देखता है, उसके मलये र् ैंखोया नहीं ंजाता और न ही ई र्ेंरे मलये खोया जाता है।

कयोंकक ननविाण की यि परम् ्शाजन्त यद्यवप अक्षर से प्राप्त िोती िै, परंतु पुरुषोत्र्म की सर्त्ा पर िी प्रनतजष्ठत िै, ममसंस्थाम्,् और यि सर्त्ा व्यापक िै: भगवान्,् ब्रह्म, प्राखणयों के इस जगत् ्में भी व्याप्त िैं और यद्यवप वे इस जगत् ्से परे िैं, ककन्तु ुवे ेअपनी परामपरता में सीशमत निीं ंिैं। मनुष्य को सब कुछ भगवान् ्के रूप में देखना िोगा और पूण िरूप से इसी दृजष्ट या भाव में जोना और कम िकरना िोगा; यिी योग का परम् ्फल िै।

vi.1.5

पर कम िकयों करें? कया यि अधधक ननरापद निीं िै कक िम स्वयंएकान्त में बैठकर इच्छा िो तो जगत् ् की ओर एक ननगािा देख लें, उसे ब्रह्म में, भगवान् ्में देखें पर उसमें कोई भाग न लें, उसमें ववचरण न करें, उसमें रिें निीं, उसमें कम िन करें और साधारणतया अपनी आंतररक समाधध में िी रिें? कया इस उच्चतम आध्याजममक अवस्था का यिी धम,ि यिी ववधान, यिो ननयम निीं ंिोना चाहिए? गीता कफर किती िै कक निीं:ं मुकत योगी के शलए इसके अनतररकत और कोई दूसूरा ववधान, ननयम, धम िनिीं ंिोता कक वि भगवान् ्में रिे, भगवान् ्से प्रेम करे और सब प्राखणयों के साथ एक िो जाए, उसका जो स्वातंत्र्य िै वि ननरपेक्ष िै, ककसी दूसूरे पर आधश्रत निीं,ं वि स्वयंभू िै, ककसी आचार, धम िया मयादि से बाँधा निीं। उसे अब और अधधक योग की ककसी प्रणाली की कोई आवश्यकता निींरिती, कयोंकक अब वि सतत् ्योग में प्रनतजष्ठत िोता िै।

वेजो दो श्लोक िैं (२९-३०) वे िमें पुनः गीता के योग की धारा में ले आते िैं। पिली चीज िै आममा को समस्त भूतों में देखना और समस्त भूतों को आममा में देखना और दूसूरी िै सवत्रि परमाममा को देखना और सब कुछ परमाममा में देखना। और जो इस प्रकार देख लेता िै वि कफर धगरता निींि। उसकी जस्थनत जस्थर िै। शुरू में जो जस्थनत िोती िै उसमें तो िमें स्वयंको उस स्तर पर बनाये रखने का प्रयास करना पिता िै परन्तु यहद एक बार यि अनुभव िो जाए कक िम आममा को, जो कक िमारी स्वत:-ववद्यमान सर्त्ा िै और िमारे वैयजकतक अजस्तमव से सीशमत निींि, समस्त भूतों में देख सकें और समस्त भूतों को आममा में देख सकें तब कफर एक सुदृढ़ जस्थनत प्रनतजष्ठत िो जाती िै। और उसके बाद जब िम केवल परमाममा को िी सवत्रि देख सकें और सबमें केवल परमाममा को िी देख सकें तब कफर अिंकार तथा ननमन प्रकृनत में जा धगरनेका खतरा निीं ंरिता।

अब श्रीअरववन्द यिाँ प्रश्न उठा रिे िैं कक यहद िमने एक बार यि सवोच्च स्तर प्राप्त कर शलया कफर िमें कम िकी कया आवश्यकता िै? गीता अगले श्लोक में किती िै, "जो योगी एकमव भाव में जस्थत िोकर समस्त भूतों में मुझसे प्रेम करता िै वि योगी चािे जजस प्रकार रिे और कम िकरे मुझमें िी रिता और कम िकरता िै।" परंतु इस जस्थनत के शलए शत िियि िै कक योगी सभी भूतों में भगवान् ्से िी प्रेम करे। सब भूतों में केवल परमाममा को िी देखना और कफर केवल उन्िींसे प्रेम करना तो समाधध में बैठ कर परमाममा का ध्यान करने ेसे तो बिुत िी परे की जस्थनत िै और बिुत िी श्रेष्ठ जस्थनत िै। गीता किती िै कक इस स्तर को प्राप्त करने के बाद कफर योगी कुछ भी

कम िकरे और कैसे भी कम िकरे वि परमाममा में िी ननवास करता िै। यिाँगीता कम िका एक सच्चा ववधान बता रिी िै कक ककस प्रकार त्रबना धगरने की आशंका के सच्चे रूप से कम िककये जा सकतेिैं। कयोंकक यहद इस जस्थनत का वणनि न ककया जाता और केवल वन में जाकर मन आहद को इंहरय ववषयों से िटाकर अक्षर की शांनत में जाना िी उद्देश्य िोता तब तो अजुनि इस समाधान के शलए पिले से िी इच्छुक था। परंतु तब तो गीता की सारी शशक्षा िी ननरथकि िो जाती और वि स्वयं अपनी िी बात का खंडन कर रिी िोती। परंतुजब योगी भगवान् को िी सब में देखता और प्रेम करता िै, तब वि घोर से घोर कम िकरने पर भी अपनी जस्थनत से धगरता निीं। और यिी कमयोग का सच्चा उपाय िै। परंतु इसके बाद अजुनि के मन में यि प्रश्न उठना तो स्वाभाववक िी िै कक जजस जस्थनत की भगवान् चचाि कर रिे िैं उससे पूव िकी जस्थनत उसने अनुभव निीं की िै। इसीशलये वि किता िै कक "मन के चंचल िोने के कारण इस योग की म ैं(अपनेभीतर) दृढ़ जस्थनत को निीं देखता िूँ।"

साथ िी, यिाँएक बात ध्यान में रखनी चाहिये कक सबमें परमाममा हदखाई देने का यि अथ िनिीं िै कक व्यजकत को वववववधता हदखना बंद िो जाती िै और उसे ककसी िाथी और मिावत के बीच का भेद िी हदखाई निीं

देता। सबमें परमाममा हदखना तो एक बिुत गिरा अनुभव िै जजसे ककसी भी मानशसक धचत्रण में निींबाधाँ जा सकता। व्यविार में तो भगवान् स्वयंिी ककन्िीं दो व्यजकतयों के साथ एक जैसा व्यविार निीं करते। ककसी को वे प्रेम करते िैं और ककसी का संिार करते िैं। परंतुदोनों िी िालतों में उनके भाव में अंतर निीं आता। संिार कम

भिी

उनके प्रेम और उनकी कृपा की िी अशभव्यजकत िोती िै। इसीशलए िम अपनेपुराणों में सभी जगि वणनि पातेिैं कक भगवान् दुष्टों को मारकर उनका उद्धार करते िैं और उनमें से कुछ को तो ऐसी सद्गनत प्रदान करते िैं जैसी योधगयों को भी दुलभि िै। स्वयं श्रीमाँ और श्रीअरववन्द के योग-संबंधी पत्रों से िम देख सकतेिैं कक उन्िोंने कभी भी दो साधकों के साथ एक जैसा व्यविार निीं ककया। सभी को सुववधाएँ भी अलग-अलग प्रदान की जाती थीं। इसका यि अथ िनिीं िै कक उन्िें सभी के भीतर परमाममा न नजर आते िों। परंतु वे िमारे इस तुच्छ मानशसक उपकरण की सिायता से ननणयि निीं करते थे। इसी कारण सबके साथ शभन्न-शभन्न व्यविार करने पर भी िर एक को ऐसा मिसूस िोता था कक उससे श्रीमाँ अनतशय प्रेम करती िैं और वे कभी उनके ननणयिों पर संदेि निींकरते थे क्योंकक सभी यि जानते थे कक श्रीमाँ विी करेंगी जो उसकी आममा के शलए सवशेष्ठ िोगा।

इसशलए जब व्यजकत सभी में परमाममा के दशनि करने लगता िै तो जीवन की बिुत सी समस्याएँ खमम िो जाती िैं। कयोंकक तब सभी चीजों में प्रभु की किया हदखाई देनेलगती िै। परन्तु यि याद रखना चाहिये कक इस अनुभव से कोई भौनतक रूपांतरण निीं िोता। इससे कोई अनतमानशसक रूपांतर साधधत निीं िो जाता। िा, ँ इस अनुभव के बाद साधक एक जस्थनत ववशेषे से च्युत निीं िोता। अवश्य िी पूण िरूपांतर साधधत िोने से पिले अवचेतन में से ननमन वृवृत्याँ तो उठ िी सकती िैं परंतुसाधक उनसे थोड़े-बिुत काल के शलए प्रभाववत िोकर पुनः अपनी जस्थनत में प्रनतजष्ठत िो जाता िै। स्थायी रूप से उस पर ये अपना प्रभाव निीं डाल सकतीं।

सर्भूवतजस्थतं यो रांभजत्येकत्राजस्थतः ।
सर्थवा तर्वानोऽवप स योगी र्तय तंतेव ।। ३१ ।।

३१. जो योगी एकत्र् भार् र्ें जस्थत होकर सर्स्त भूतों र्ें रु्झसे प्रेर्् करता है र्ह योगी चाहे जजस प्रकार रहे और कर्् वकरे रु्झ' र्ें ही रहता और कर्् वकरता है।

संसार-प्रेम तब आध्याजममकृत िोकर, इजन्रय अनुभव से आममा के अनुभव में पररणत िोकर, ईश्वर-प्रेम पर प्रनतजष्ठत िो जाता िै और तब उस प्रेम में कोई भय, कोई दोष निीं रिता। ननमन प्रकृनत से पीछे िटनेके शलए संसार से भय और जुगुप्सा प्रायः आवश्यक िो सकते िैं, कयोंकक वास्तव में यि िमारे अपने अिं का भय और जुगुप्सा िै जो अपने-आप को जगत् ्में प्रनतत्रबंत्रबत करता िै। परन्तु ईश्वर को जगत् ्में देखना सभी कुछ से ननभयि िो जाना िै, यि सभी कुछ का ईश्वर की सत्ता में आशलंगन करना िै; सब कुछ भगवरूप में देखने का अथ िै ककसी पदाथ िको नापसन्द या ककसी से भी घृणा न करना, अवपतु जगत् ्में भगवान् ्से और भगवान् ्में जगत् ्से प्रेम करना...

गीता सदा की िी भानँत यिा ँभी भजकत को योग की पराकाष्ठा के रूप में ले आती िै, सवभूितजस्थतं ्यो मां भजमयेकमवमाजस्थतः; इसी को गीता की शशक्षा के लगभग संपूण िसार का सवस्वि किा जा सकता िै - जो कोई सबमें जस्थत भगवान् ्से प्रेम करता िै और जजसकी आममा भगवदैकय में प्रनतजष्ठत िै, वि चािे कैसे भी रिता और कम िकरता िो, भगवान् ्में िी रिता और कम िकरता िै।

भगवान् ्के साथ एकमव, सब प्राखणयों के साथ एकमव, सवत्रि सनातन भागवत् ्एकता की अनुभूनत और इसी एकता की ओर मनुष्यों को आगे बढ़ा ले जाना िी उस जीवन का धम िै जो गीता के उपदेशों से उमपन्न िोता िै। इससे अधधक मिान्,् अधधक व्यापक, अधधक गंभीर और कोई धम िनिीं ि्ो सकता। स्वयं मुकत िोकर इस एकमव में रिना और मानव जानत को इसी रास्तेपर आगे बढ़ने में सिायता करना तथा अपने सब कमों को भगवान् ्के शलए करते िुए (कृमस्नकमकृित्)् और मनुष्यों को जजसका जो कतव्यि कम िै उसे िष िऔर उमसाि के साथ करने में बढ़ावा देना (सवकिमाखण जोषयन्)्, इससे अधधक मिान् ्और उदार हदव्य-कमि–ववधान निीं हदया जा सकता। यि मुकतावस्था और यि एकमव िमारी मानव-प्रकृनत का गुप्त लक्ष्य िै और यिी मानव-जानत के अजस्तमव में अंतननहिित चरम इच्छा िै। इसी की ओर मनुष्यजानत को उस सुख की प्राजप्त के शलए मुिना िोगा जजसे वि अभी तक असफल रूप से खोज रिी िै, ऐसा तब िोगा जब मनुष्य अपनेनेत्रों और अपनेहृदयों को ऊपर उठाकर अपने में और अपनेचारों ओर, सब भूतों में, सवेषु,् और सवत्रि, भगवान् ्को देखने लगेंगे और यि जान लेंगे कक िम सब भगवान् ्में िी रिते िैं और िमारी यि भेदजनक ननमन प्रकृनत केवल एक कैदखाने की दीवार िै जजसे तोि िालना िोगा, या कफर अधधक-से-अधधक यि बच्चों के पढ़ने की एक पाठशाला िै जजसकी पढ़ाई समाप्त कर के आगे बढ़ना िोगा जजससे िम प्रकृनत में प्रौढ़ और आममा में मुकत िो जाएँ। ऊध्वजिस्थत भगवान् ्के साथ, मनुष्य में और जगत् ्में जस्थत भगवान् ्के साथ एकाममभाव को प्राप्त िोना िी मुजकत का अशभप्राय और संशसद्धध का रिस्य िै।

ईश्वर और जगत्–ववषयक आध्याजममक दृजष्ट केवल ववचाराममक िी निीं िै, न प्रधानतः या प्रथमतः िी ववचाराममक िै। वि तो प्रमयक्ष अनुभव िै और उतना िी वास्तववक, जीवंत, ननकट, सतत्, ् प्रभावकारी तथा अंतरंग िोता िै

जजतना कक मन के शलए आकारों, पदाथों और व्यजकतयों का इजन्रयों द्वारा अवलोकन करना व संवेदन करना। केवल स्थूल मन िी िै जो ईश्वर एवं आममा को कपोल कल्पना मात्र मानता िै जजससे वि दृजष्टगोचर निीं कर सकता या न िी जजसका स्वयं

के सममुख शब्दों, नामों, प्रतीकाममक रूपों तथा कल्पनाओं के त्रबना ननरूपण िी कर सकता िै। आममा आममा को देखती िै, हदव्यीकृत चेतना भगवान् ्को वैसे िी प्रमयक्ष रूप में तथा उससे भी अधधक प्रमयक्ष रूप में, वैसे िी घननष्ठ रूप से तथा उससे भी अधधक घननष्ठ रूप से देखती िै जजतना कक शारीररक चेतना ज़ि पदाथ िको देखती िै। वि भगवान् ्को देखती, अनुभव करती, उनका धचंतंन करती तथा उनका इंहरयानुभव करती िै। कयोंकक, आध्याजममक चेतना को समस्त व्यकत जगत् ्आममा के जगत् ्के रूप में दृश्यमान िोता िै तथा ज़ितत्त्व का जगत् ्निीं, ् प्राण का जगत् ्निीं, यिा ँतक कक मन के जगत् ्के रूप में

भी निीं; ् ये अन्य चीजें उसकी दृजष्ट में केवल ईश्वर-ववचार ईश्वर-शजकत, ईश्वर-रूप िी िोती िैं। वासुदेव में ननवास करने तथा कम िकरने, 'मनय वततिसे गीता का यिी तामपय ििै। आध्याजममक चेतना परमेश्वर के बारे में उस घननष्ठ तादाममय-ज्ञान के द्वारा सचेतन िै जो धचंमंय वस्तु के ककसी भी मानशसक बोध या गोचर पदाथ िके ककसी भी ऐंहरय अनुभव से बिुत अधधक वास्तववक िै।

आत्रौपम्येन सर्त्रव सर् पश्यतत योऽजुनव ।

सुखं र्ा यदद र्ा दु:खंस योगी परर्ो र्तः ।। ३२ ।।

३२. हे अजुनवा जो र्नुष्य चाहे सुख हो अथर्ा दु:ख, सभी कुछ को सर्त्र् भार् से आत्र्ा के रूरूप र्ें देखता है, उसे र् ैंपरर् योगी र्ानता हूाँ।

और इसका यि अशभप्राय त्रबल्कुल भी निीं िै कक स्वयंयोगी, दूसूरों के दु:ख में िी कयों न िो, अपनेदु:ख रहित आममानन्द से धगर जायेगा और पुनः सांसाररक दु:ख अनुभव करनेलगेगा, अवपतु ्यि कक दूसूरों में उन द्वन्द्वों के खेल को देखकर, जजन्ेिं छो़िकर वि स्वयंऊपर उठ चुका िै, वि सब कुछ आममवत् ्और सबमें अपनी आममा को, सबमें ईश्वर को देखेगा और इन चीजों के बाह्य रूपों में क्षुब्ध या मुग्ध न िोकर केवल उनकी सिायता करने ेऔर उनका दु:ख दूरू करनेके भाव से प्रे्ररत िोगा, सब प्राखणयों के कल्याण में अपने-आप को लगानेमें, लोगों को आध्याजममक आनन्द की ओर ले जाने में, जगत् ्को भगवान् ्की ओर अग्रसर करने के काम में प्रवृरूत् ििर जजतने हदन उसे इस जगत् ्में रिना िै उतने हदन हदव्य जीवन व्यतीत करेगा। जो भगवमप्रे्रेमी ऐसा कर सकता िै, इस प्रकार सब कुछ को भगवान् ्के अन्दर आशलंगंन कर सकता िै, ननमन प्रकृनत और त्रत्रगुणाजममका माया के सब कमों की ओर जस्थर-शांत रूप से देख सकता और त्रबना क्षुब्ध िुए तथा आध्याजममक ऐकय की ऊाँचाई से व्याकुल या च्युत या व्यधथत िुए त्रबना, भगवान् ्की अपनी दृजष्ट की ववशालता में स्वतंत्र भाव से रितेुए, भागवत् ्प्रकृनत की शजकत से मधुर, मिान् ्और प्रकाशमय िोकर उन कमों के अन्दर और उन कमों पर किया कर सकता िै, उसको नन:संकोच परम् ्योगी किा जा सकता िै। यथाथ िमें उसी ने सृजृष्ट को जीता िै, जजतः सग:ि

योगी के ववषय में यि वणनि व्यजकत की आंतररक जस्थनत पर ननभरि करता िै जजसमें संभव िै कक व्यजकत की बािरी प्रकृनत भी उसके वश में िो परंतु वि एक सीमा तक िी वश में िो सकती िै। पुस्तकों में ननमन प्रकृनत पर पूण िप्रभुमव के जो वणनि शमलते िैं, वि जस्थनत तो वतमिान में पाधथवि जगत् ्में संभव िी निीं िै कयोंकक त्रबना अनतमानशसक रूपांतर के ननमन प्रकृनत को जीता निीं जा सकता अन्यथा श्रीअरववन्द के अनतमानस की आवश्यकता िी न रि जाती। यि एक मूलभूत बात िै। परंतु ुवतमिान प्रसंग में िम यि आशा निींकर सकतेकक भगवान् ्श्रीकृष्ण अजुनि को योग साधना की बारीककयाँसमझाएँगे जैसा कक श्रीअरववन्द साधकों को शलखे अपने पत्रों में करते िैं। यिाँयोगी की जजस जस्थनत का वणनि ककया गया िै वि अवश्य िी बिुत िद तक प्राप्त की जा सकती िै और यि प्रमयेक व्यजकत की अपनी प्रकृनत पर ननभरि करता िै कक ककस िद तक वि इसे प्राप्त करता िै। परन्तु जब तक व्यजकत ननमन प्रकृनत के ककसी भी प्रकार के स्पंदनों के प्रनत खुला िोता िै तब तक यि जस्थनत पूण ि रूप से उसमें अक्षुण्ण निीं ंबनी रि सकती। अतः संभव िै कक आंतररक प्रकृनत में वि शांत बना रिे और यि भी संभव िै कक अपनी बािरी प्रकृनत में भी वि बिुत कुछ अववचल बना रिे परंतु ुमनोवैज्ञाननक रूप से ये आिमण न िों, ऐसा िो निींसकता िालाकँक उन्िें भी वि अपनेतरीके से दूरू करनेका प्रयास करता िै। परंतु ये चीजें ककसी को भी निीं ंछोड़तीं। श्रीमाताजी ने भी स्वयंअपना अनुभव बताते िुए किा िै कक श्रीअरववन्द के देिमयाग के बाद - जो कक उन्िें मम ितक स्पश िकरने ेवाली घटना थी आसुररक शजकतयों ने उनके ऊपर भयंकर रूप से आिमण ककया और इस तरीके के सुझाव हदए कक योग-साधना और भगवान् ्आहद की सब बातें त्रबल्कुल ननरथकि िैं, और इस पृथ्वी पर कभी भी पूणतिा स्थावपत निीं ंिो सकती। और इसके साथ िी उन शजकतयों का उन पर इस बात के शलए भयंकर दबाव आया कक वे श्रीअरववन्द आश्रम को िी समाप्त करनेकी घोषणा कर दें। जब ये शजकतयाँसाक्षात् ् जगदमबा तक पर भी दबाव बनानेका प्रयास कर सकती िैं तब ककसी सामान्य व्यजकत की या कफर ककसी योगी की भी कया सामथ्य ििै कक आसुरी शजकतयों के आिमणों से ववचशलत न िो। िालाकँक श्रीमाताजी से वे ऐसा कुछ भी निीं ंकरवा सकीं, परन्तुये शजकतयाँ इस िद तक जा सकती िैं जजससे व्यजकत अपनेमम ितक ववचशलत िो सकता िै। जब कभी कोई व्यजकत श्रीमाताजी से ननवेदन करता था कक उसके अंदर बिुत से बुरे ववचार उठते िैं तब वे किती थींकक व्यजकत की अवचेतना में ये सब चीजें िोती िैं और विीं से ये सब ववचार उठते रिते िैं। उन्िोंने बताया कक जब श्रीअरववन्द के साथ दुघटिना घटी तब से कोई भी सप्ताि ऐसा न बीता िोगा जब आसुरी शजकतयों ने आकर उन्िें यि सुझाव न हदया िो कक योग आहद को बातें सब ननरथकि िैं। श्रीअरववन्द के शरीर मयागने के बाद तो इन्िोंने यिाँ तक सुझाव हदये कक वे व्यथ ििी अपना समय नष्ट कर रिी िैं, इस धरती पर कभी भी भगवान् ्की अशभव्यजकत निीं ंिो सकती। जब ये शजकतयाँ स्वयं श्रीमाताजी को भी आकर ववचशलत करने का प्रयास कर सकती िैं तो अन्य ककसी की तो बात िी कया िै। इसीशलए श्रीअरववन्द ने किा कक व्यजकत एक ननजश्चत सीमा तक संतुलन बनाए रख सकता िै परन्तु उस सीमा से परे के संकट या आिमण से वि अन्दर तक ववचशलत िो सकता िै। इसीशलए जब श्रीकृष्ण के पैर में तीर लगा वि इस बात का सूचक था कक अधधमानशसक चेतना से भी अवचेतन को जीता निींजा सकता। केवल अनतमानस पर पिुँचने पर िी इन चीजों को पराजजत ककया जा सकता िै। उससे नीचेकी चेतना में तो अवचेतन का प्रभाव कभी भी व्यजकत को कम या अधधक ववचशलत और प्रभाववत कर सकता

ैं और मौका शमलते िी चीजों को त्रबगाड़ सकता िै। परंतु गीता का वणनि प्रस्तुत प्रसंग में त्रबल्कुल संगत िी िै कयोंकक यिााँ िम गीता से योग की व्याविाररक बारीककयों के वणनि की आशा निीं ंकर सकते।

अजुनि उवाच

योऽयं योगस्त्व्या प्रोक्तः साम्येन र्धुसूदन ।

एतस्याहं न पश्यामर् चञ्चलत्र्ाजत्स्थततं ंजस्थरार् ्।। ३३ ।।

३३. अजुनव ने कहाः हे र्धुसूदन श्रीकृष्ि! आपके द्र्ारा जो सर्त्र्-रूप यह योग कहा गया है, र्न के चंचल होने के कारि इस योग की र् ैं(अपनेभीतर) दृढ़ जस्थतत को नहींदेखता हूाँ।

चञ्चलं दह र्नः कृष्ि प्रर्ाधथ बलर्द्दढर् ्।

तस्याहं तनग्रहं र्न्ये र्ायोररर् सुदुष्कर्र ्।। ३४।।

३४. क्योंकक हे कृष्ि! तनश्चय ही र्न चंचल स्र्भार् का है; यह उग्र, बलर्ान् ्और हठीला है; उसके तनग्रह करने को र् ैंर्ायु को रोकनेके सर्ान बहुत अधधक दुष्कर र्ानता हूाँ।

श्रीभगर्ान् ्उर्ाच

असंशयं र्हाबाहो र्नो दुतनग्रवहं चलर् ्।

अभ्यासेन तु कौन्तेय र्ैराग्येि च गृह्यते।। ३५।।

३५. श्रीभगर्ान् ्ने कहा : हे र्हाबाहो! तनःसंदेह र्न चंचल स्र्भार् का और बहुत कदठनाई से र्शीभूत होनेर्ाला है; परंतु हे कौन्तेय, र्ह अभ्यास से और र्ैराग्य से तनयंत्रत्रत ककया जा सकता है।

मनुष्य का मन एक सावजिननक स्थान िै जो चारों ओर से खुला िै, और इस सावजिननक स्थान में चीजें आती िैं, जाती िैं, सभी हदशाओंसे आर-पार गुजरती िैं; और कुछ विााँजम जाती िैं और ये सवदिा सवोत्म निीं िोतीं। और विााँ, उस भीड़ के ऊपर ननयंत्रण पाना सभी ननयंत्रणों में सबसे अधधक कहठन िै। अपनेमन में आने वाले ववचार को संयशमत करनेका प्रयमन करो, तुमिें पता चल जाएगा। तुम ठीक-ठीक समझ जाओगे कक तुमिें एक संतरी की तरि, मन की आखाँों को पूरा खुला रखकर, ककस िद तक चौकसी रखनी पड़ती िै, और कफर उन भावों अथवा ववचारों के ववषय में अमयंत स्पष्ट दृजष्ट रखनी िोती िै जो तुमिारी अभीप्साओंके साथ मेल खाती िैं और जो मेल निींखातीं। और उस सावजिननक स्थान पर जिााँसभी ओर से लिकें आकर शमलती िैं, तुमिें प्रनतक्षण ननगरानी रखनी पड़ती िै ताकक सभी रास्ते चलते एक साथ भीतर न घुस आय।ें यि एक भारी काम िै। कफर, यि मत भूलो कक तुम यहद सच्चे प्रयमन भी करते िो तो भी तुम इन सब कहठनाइयों के अंत तक एक हदन में, एक मिीने में, एक वष िमें निीं ंपिुाँच जाओगे। जब तुम आरंभ करते िो तब तुमिें एक अटूट धैय िके साथ आरंभ करना चाहिये।

तुमिें यि किना िोगा, "भले इसमें पचास वष िलगें, भले इसमें सौ वष िलगें, यिा ाँतक कक चािे इसमें अनेक जीवन भी कयों न लगें, तो भी म ैंजो कुछ प्राप्त करना चािता िूाँ उसे म ैंअवश्य प्राप्त करूंगा।"

एक बार यहद तुमने ेऐसा करने ेका ननश्चय कर शलया, एक बार यहद तुम त्रबल्कुल सचेतन िो चुके िो कक चीजें ऐसी िी िैं और यि लक्ष्य सतत् ्और स्थायी रूप से प्रयमन करनेका कष्ट उठाए जानेयोग्य िै, तो तुम आरंभ कर सकते िो। अन्यथा, कुछ समय बाद तुम कलांत िो जाओगे; तुम ननरुमसाहित िो जाओगे, तुम अपने-आप से किोगे, "ओि! यि तो बिुत कहठन िै - म ैंइसे करता िूाँ और यि चौपट िो जाता िै, म ैंकफर करता िूाँ और यि कफर चौपट िो जाता िै, और कफर म ैंइसे दुबारा करता िूाँ और यि िमेशा िी चौपट िो जाता िै...। कफर कया ककया जाए? कब म ैंविााँ पिुाँचूाँगा?" अतएव व्यजकत में प्रचुर धैय िोना चाहिये। यि काय िसौ बार चौपट िो सकता िै, और तुम इसे कफर से एक सौ एकवीं बार करोगे, यि िजार बार चौपट िो सकता िै और तुम कफर से इसे एक िजार एकवीं बार करोगे जब तक कक अंततः यि चौपट निींिोगा। और अंत में यि चौपट निीं ंिोता।

प्राखणक आदान-प्रदान के द्वारा व्यजकत बिुत अधधक प्रभाववत िो सकता िै। जैसे कक ककसी अवसादग्रस्त व्यजकत से फोन पर ककया शाजब्दक आदान-प्रदान भी िमारे अंदर अवसाद के स्पंदन पैदा कर सकता िै, और ककसी प्रोमसाहित व्यजकत से ककया आदान-प्रदान प्रोमसािन के स्पंदन पैदा कर सकता िै। यिााँतक कक पत्रों के जररए आदान-प्रदान से भी व्यजकत बिुत अधधक प्रभाववत िो सकता िै। शारीररक रूप से भी ये सर्त्ाएाँ िम पर िमला कर सकती िैं। एक बार श्रीअरववन्द को मिसूस िुआ कक कोई उनके ऊपर िमला कर रिा िै। पूछताछ करने पर पता लगा कक उनके ननवासस्थान से कुछ दूरी पर जस्थत कोई व्यजकत उनके प्रनत दुभाविनाग्रस्त िोकर दुजश्चंतन कर रिा था। इसशलए सचेतन व्यजकत को तो िर कदम पर िी इन ववरोधी सर्त्ाओंऔर उनके प्रभावों से युद्ध करना िोता िै। यहद ऐसा न िोता तो श्रीअरववन्द को इतनी गंभीर साधना करने ेकी कोई आवश्यकता िी निीं ंथी कयोंकक उनकी व्यजकतगत साधना तो उनके जीवन काल में बिुत पिले िी िो चुकी थी। इसशलए व्यजकतगत तौर पर व्यजकत को कुछ शांनत का अनुभव िो सकता िै परन्तु त्रबना भौनतक रूपांतरण साधधत िुए सच्ची पूणताि संभव निीं ंिै।

----

* मनुष्य अपने अंदर बिुत सारी छोटी-छोटी गुप्त तिें, ऐसी छोटी-छोटी चीजें पाता िै जो प्रारंभ में उसने निीं देखी थी; मनुष्य एक प्रकार का आंतररक पीछा करना शुरू कर देता िै, छोटे-छोटे अंधकारपूण िकोनों में शशकार खोजने लगता िै और अपने-आप से किता िै: "कया, म ैंऐसा था! यि चीज मेरे अंदर थी, मनैंइस नन्िी िंचीज को पोस रखा िै!" - कभी-कभी तो वि इतनी गंदी, इतनी नीच, इतनी नघनौनी िोती िै! और एक बार जब उसका पता लग जाता िै, ककतना आश्चयजिनक लगता िै! कफर मनुष्य उस पर प्रकाश िालता िै और वि ववलीन िो जाती िै! और कफर उसके बाद तुम में और अधधक वे प्रनतकियाएाँ निीं ं िोतीं ंजो पिले तुमिें इतना उदास बना हदया करती थीं,ं जब तुम किा करते ेथे, "ओि! म ैंकभी विा ाँनिीं ंपिुाँच पाऊाँगा।" उदािरणाथ,ि तुम एक बिुत साधारण-सा (ऊपर से देखने में बिुत साधारण) संकल्प करते िोः "म ैंअब कभी कोई झूठी बात निीं किूाँगा।" और अकस्मात्,् तुमिारे त्रबना जानेकक कयों और कैसे, झूठो बात त्रबल्कुल अपने-आप ननकल पड़ती िै और तुम उसे तब देखते-जानते िो जब वि मुिाँ से ननकल चुकी िोती िै। तुम किते िो: "यि तो सिी बात निीं िै जो मनैं अभी किा िै: मेरा मतलब तो कोई और िी बात किनेका था।" अतः तुम खोजते िो, खोजते िो यि कैसे घहटत िुआ? मनैंकैसे उस ढंग से

सोचा और वैसा कि हदया? कौन-सी चीज मेरे अंदर से बोली, ककसने मुझे ेधकका दे हदया?" तुम स्वयं ंको त्रबल्कुल संतोषजनक व्याख्या दे सकते ेऔर कि सकते िो, "यि चीज बिार से आयी थी" अथवा "यि अचेतनता का एक क्षण था", और इस ववषय में और कोई बात न सोचो। और दूसूरी बार कफर विी शुरू िो जाता िै। इसकी बजाय, तुम इस प्रकार खोजतिी, "उस व्यजकत का कया उद्देश्य िो सकता िै जो झूठू बोलता िै?..." और तुम आगे बढ़ते िो और आगे बढ़ते िो और एकाएक तुम एक छोटे-से कोने में एक ऐसी चीज को खोज ननकालते िो जो अपने-आपको सिी शसद्ध करना चािती िै, स्वयं ंको आगे रखना चािती िै अथवा देखने के अपने ननजी तरीके को स्थावपत करना चािती िै (चािे जो भी िो उससे कुछ आता-जाता निीं, ं उसके कई कारण िो सकतिै), अपने-आपको उससे थोिा शभन्न रूप में हदखाना चािती िै जो वि िै, ताकक लोग तुमिारे ववषय में थोिी अच्छी राय बनाय ेंऔर यि समझें कक तुम कोई बिुत ववशशष्ट व्यजकत िो...। बस, यिी चीज थी जो तुमिारे अंदर बोल पिी थी - तुमिारी सकिय चेतना निीं, अवपतु विी चीज जो विा ाँथी और जजसने तुमिारी चेतना को पीछे से धकका हदया था। जब तुम एकदम सावधान निीं ंथे, इसनेतुमिारे मुिाँ का, तुमिारी जीभ का उपयोग कर शलया, और तब तुम सचेत िुए! झूठ ननकल पिा। म ैंतुमिें यि उदािरण दे रिी िूाँ - लाखों-लाखों दूसूरे उदािरण िैं। और यि सब अमयंत मजेदार िै। और जजस िद तक मनुष्य अपने अंदर इस चीज को खोज ननकालता िै और सच्चाई के साथ किता िै, "इसे अवश्य बदलना चाहिये", वि पाता िै कक वि एक प्रकार की आंतररक स्पष्ट दृजष्ट प्राप्त कर रिा िै, वि िमशः इस ववषय में सचेतन िोता जाता िै कक दूसूरों में कया घहटत िो रिा िै, और जब वे त्रबल्कुल वैसेनिीं िोतेजैसा कक वि उन्िें देखना चािता िै तो वि िोध से आग-बबूला िोने के बदले यि समझना आरंभ कर देता िै कक चीजें कैसे घहटत िोती िैं, कया कारण िै कक मनुष्य "इस प्रकार का" िै, प्रनतकियाएँ कैसे उमपन्न िोती िैं!.....तब, ज्ञान से संतुष्ट िोकर वि मुस्कुराता िै। वि अब कठोरतापूवकि आकाँलन अथवा ननणयि निीं ंकरता, वि अपने अंदर की या दूसूरों के अंदर की कहठनाइयों को, चािे उनकी अशभव्यजकत का केंर कुछ भी कयों न िो, हदव्य 'चेतना' को समवपति कर देता िै, और उसके रूपांतर के शलए प्राथनिा करता िै।

अधधकतर शसद्धधयों और समता आहद की जो चचाएिँ िमारे पढ़ने-सुनने में आती िैं वे केवल एक ननजश्चत दायरे में िी िोती िैं और ननजश्चत तरीके के ननयमों का पालन कर के िी बनाए रखी जा सकती िैं। यिाँतक कक अवतारों आहद की, जजनकी आंतररक सत्ता बिुत प्रबल िोती िै, उन्िें भी बािरी रूप से तो उनके जीवन में िम समय-समय पर ववचशलत िोतिेुए देख सकतिैं। इस पररपे्रेक्ष्य में देखने पर िी िमें समझ में आता िै कक श्रीअरववन्द और श्रीमाताजी जजस चीज की ओर संकेत कर रिे िैं वि कोई आंशशक चीज निीं ंअवपतु मूलभूत और पूण िचीज िै। गीता यिाँजजन जस्थनतयों का वणनि कर रिी िै उनका सिी पररपे्रेक्ष्य िमें केवल श्रीअरववन्द की व्याख्या से िी शमलता िै अन्यथा तो िम उसे िी एक पूण िचीज मान बैठनेकी भूल कर सकतिैं जैसा कक अधधकांशतः िोता िी िै।

असंयतात्र्ना योगो दुष्ुट्प्राप इतत र्े र्ततः ।

र्श्यात्र्ना तु यतता िक्योऽर्ासुर्ुपायतः ।। ३६।।

३६. जो र्नुष्ुय आत्र्-संयमर्त नहीं ंहै, उसके मलये इस योग को प्राप्त करना कदठन है; ककंतु आत्र्-संयमर्त व्यजक्त द्र्ारा, उधचत उपाय से प्रयत्न करते रहने पर, इसे प्राप्त करना संभर्् है, ऐसा र्ेरा र्त है।

कयोंकक, िमारी सारी प्रकृनत तथा इसकी पररजस्थनत, िमारी समस्त व्यजकतगत एवं ंसमस्त ववश्वगत सत्ता कुछ ऐसे अभ्यासों और प्रभावों से पररपूण िििै जो िमारे आध्याजममक नवजन्म के प्रनतकूल िैं और िमारे

पुरुषाथ िकी एकननष्ठता का भी ववरोध करते िैं। ककसी अथ िमें िम उन मानशसक, स्नायववक और शारीररक अभ्यासों के एक जहटल पुंज के अनतररकत और कुछ निीं िैं जजसे िमारे कुछ प्रधान ववचारों, कामनाओंऔर संसगों नेएक-दूसूरे के साथ जोि़ ेरखा िै, - एक ऐसा अनेकानेक छोटी-छोटी पुनरावती शजकतयों का शमश्रण जजसमें कुछ एक प्रधान स्पंदन रितीं।

व्यजकत के अंदर अनेकानेक छोटी-छोटी ववरोधी चीजें िोती िैं जो उसकी अवचेतना की गिराई में नछपी रिती िैं। जब व्यजकत साधना में प्रकाशपूण िक्षणों में िोता िै, उसकी आममा बिुत प्रबल िोती िै और जब तक उसके अन्दर श्रीमाताजी के प्रनत बिुत भजकत िोती िै तब तक वे छोटी-छोटी चीजें चुपचाप कोनों में नछपी रिती िैं और अपना शसर निींउठातीं कयोंकक वे ेजानती िैं कक व्यजकत के अन्दर भगवान् ्की भजकत का प्रकाश फैला िुआ िै। परन्तु उन छोटी-छोटी चीजों का समाधान ककये त्रबना यहद यिी प्रकाशपूण िअवस्था बनी रिती तो यि तो बिी संकटपूण िबात िोती कयोंकक ये हिस्से तो आममा के प्रकाश में कभी सामने आ िी निीं पाते। इसशलए भगवान् ्ने उन्िें उद्घाहटत कर के प्रकाश में लाने की बिी सुंदर व्यवस्था कर रखी िै। जैसे िी व्यजकत के ऊपर कोई ऐसा संकट आता िै जजससे वि मम ितक ववचशलत िो जाता िै, उसका सिज संतुलन भंग िो जाता िै और उसका ववश्वास गिमगा जाता िै, वैसे िी ये चीजें अपना शसर उठा लेती िैं और अपना प्रभाव िालती िैं। ऐसे में जो सच्चा साधक िै वि इसे भागवत् ्कृपा के रूप में लेता िै जो कक उसे इन नछपी िुई चीजों के ववषय में अवगत कराती िै और वि उस कृपा के सिारे अपनेइन हिस्सों को साफ करने ेका प्रयास करता िै। िालाकाँक इसका यि अथ िनिीं ंिै कक जब व्यजकत सचेतन िो जाता िै तब प्रकृनत की समस्याएँ िल िो जाती िैं। केवल श्रीअरववन्द और श्रीमाँ िी इन चीजों की बारीककयों के बारे में चचा करते िैं। उनके कथन के अनुसार जब तक अवचेतन और ननश्चेतन िै तब तक इन समस्याओं का सच्चा ननराकरण निीं ंिो सकता। इसशलए व्यजकत जजतना िी अधधक ऊँचाई पर आरोिण करता जाता िै उतनी िी अधधक गिरी सफाई वि अपनेननमनतर भागों की कर सकता िै। और जि़-भौनतक तत्त्व में अनतमानशसक रूपांतर के त्रबना पूण िरूप से इन हिस्सों की सफाई िो भी निीं सकती। उससे पिले तो ये सभी छोटी-छोटी ववरोधी चीजें अन्दर घात लगाकर बैठी रिती िैं और मौका शमलतेिी िमला कर देती िैं। यि कोई तिोमसाहित िोनेकी बात निीं। इसमें सिी दृजष्टकोण यि िै कक पिले िमारी वतमान जस्थनत का िम सिी जायजा लें और त्रबना धीरज खोए अपनी सफाई का काम आरंभ करें और सदा िी यि ध्यान में रखें कक यि काय ि बिुत िी कहठन िै। िमारी आंतररक चेतना इसमें सिायक िोती िै। वि ककन्िीं भी बािरी चीजों से प्रभाववत निीं ं िोती और अवचेतना भी उसमें प्रवेश निीं ंकर सकती। इसशलए जब व्यजकत उसमें ननवास करता िै तब वि इन चीजों के साथ ववजयी रूप से व्यविार कर सकता िै अन्यथा तो उसके पास पावँ जमाने के शलए भी कोई जगि निीं ंिोती।

इसके शलए पिली आवश्यकता िै कक मन की उस केंरीय श्रद्धा और दृजष्ट को ववलीन कर हदया जाए जो उसे अपने ववकास एवं तुजष्ट तथा पुरानी बहिमुखिी व्यवस्था में िी रस-लाभ करनेमें तल्लीन रखती िै। यि अमयावश्यक िै कक इस बहिमुखिी प्रववृत्ति के स्थान पर उस गंभीरतर श्रद्धा और दृजष्ट को स्थावपत कर हदया जाए जो एकमात्र भगवान् ्को िी देखती िै और केवल भगवान् ्की िी खोज करती िै। दूसूरी आवश्यकता िै कक िमारी समस्त

ननमनतर सर्ता को इस नवीन श्रद्धा तथा मित्र दृजष्ट के प्रनत नतमस्तक िोने को बाध्य ककया जाए। िमारी संपूण िप्रकृनत को पूण िसमपणि करना िोगा; इसे स्वयंको अपनेप्रमयेक भाग तथा अपनी प्रमयेक गनत में उस वस्तु के प्रनत सौंप देना िोगा जो असंस्कृत इंहरयबद्ध-मन को स्थूल संसार और इसके पदाथों की अपेक्षा बिुत िी कम यथाथ िप्रतीत िोती िै। िमारी संपूण िसर्ता को - अंतराममा, मन, इंहरय, हृदय, इच्छाशजकत, प्राण और शरीर को - अपनी सभी शजकतयों का अपणि इतनी पूणतिा के साथ तथा ऐसे तरीके से करना िोगा कक वि भगवान् का उपयुकत विान बन जाए। यि कोई सरल काय िनिीं, कयोंकक संसार की प्रमयेक वस्तु अपनी ननयत प्रवृर्त का, जो उसके शलए एक ननयम स्वरूप िोती िै, अनुसरण करती िै और ककसी मौशलक पररवतनि का प्रनतरोध करती िै। और, अन्य कोई भी पररवतनि उतना मौशलक निीं िोगा जजतना कक वि िांनतस्वरूप पररवतनि जजसका पूण ियोग में प्रयास ककया जाता िै। िमारे अंदर की सभी चीजों को सतत् केंरीय श्रद्धा, संकल्प तथा दृजष्ट को ओर मोड़ना पड़ता िै। प्रमयेक ववचार और आवेग को उपननषद् की भाषा में यि स्मरण कराना िोता िै कक "हदव्य ब्रह्म वि िै, न कक यि जजसकी लोग यिा ँउपासना करते िैं।"

इसमें समपणि के ववषय में बड़ी मित्त्वपूण िबात िै जो कक साधना का सार िै और इस समपणि के शलये कया ककया जाये यि समझना बिुत आवश्यक िै।

प्रश्न : श्रद्धा, आन्तररक श्रद्धा और केन्रीय श्रद्धा में कया अन्तर िै?

उत्तर : श्रद्धा तो मूलतः एक िी िोती िै, बस इसकी ये तीन अशभव्यजकतयाँ िैं। जब आममा द्वारा इसकी अशभव्यजकत िोती िै तब वि केन्रीय श्रद्धा िोती िै, जब आन्तररक सर्ता द्वारा इसकी अशभव्यजकत िोती िै तब आन्तररक और बािरी सर्ता में जब वि प्रकट िोती िै तब उसे केवल श्रद्धा का नाम दे देते िैं। वास्तव में तो श्रद्धा एक िी िै।

आखखर िम संसार में कयों फाँसे िैं? कयोंकक िमारी श्रद्धा सांसाररक कियाकलापों - खाने-पीने, सोने-जागने, िँसने- रोने आहद पर िी केजन्रत िै कयोंकक त्रबना श्रद्धा के तो िम कोई भी काम निीं कर सकते। अतः वतमिान में िमारी श्रद्धा िमें बािरी चीजों में लगाए रखती िै या यों किें कक िमारी श्रद्धा की अशभव्यजकत वतमिान में इसी प्रकार से िो रिी िै। संसार िमें जजस प्रकार का प्रतीत िोता िै वि िमें िमारी श्रद्धा के प्रभाव से िी वैसा हदखाई देता िै। िमें बािरी चीजों में प्रवृर्त इस श्रद्धा को शमटाना िोगा और इसे आन्तररक श्रद्धा से प्रनतस्थावपत करना िोगा, कयोंकक जब तक िमारी श्रद्धा ककसी बािरी चीज में रिेगी तब तक िम इस संसार से ऊपर निीं उठ सकते। संसार में श्रद्धा के अनतररकत अन्य कोई ननयम या ववधान निीं िै। सभी कुछ तो श्रद्धा की िी अशभव्यजकत िै। श्रद्धा सवशिजकतमान् िै। इसीशलए िमें अपनी बािरी श्रद्धा को तोड़ना िोगा और वि तभी संभव िै जब िमारी श्रद्धा ककसी बािरी वस्तु पर िोगी। जैसी िमारी श्रद्धा िोगी वैसा िी संसार िमें नजर आयेगा। श्रद्धा िी सब कुछ का ननमिाण करती िै।

अतः श्रीअरववन्द कितेिं कक यि अमयावश्यक िै कक इस बहिमुखी प्रववृत् के स्थान पर उस गंभीरतर श्रद्धा और दृजष्ट को स्थावपत कर हदया जाए जो एकमात्र भगवान् ्को िी देखती िै और केवल भगवान् ्की िो खोज करती िै। जब तक िम आन्तररक श्रद्धा के प्रनत निीं खुल जाते और अपने अिं की तुजष्ट में िी लगे रिते िैं तथा िमारा मन िमारे इन नाना प्रकार के अिं-केजन्रत तकों का िी समथनि करता रिता िै तब तक िमारा जीवन उन्िीं िंचककरों में लगा रिेगा। इसशलये यहद िमें इससे ननकलना िै तो िमें इस बािरी श्रद्धा को उस पववत्रतर श्रद्धा से प्रनतस्थावपत करना िोगा जजसकी आमम-अशभव्यजकत िमारे अंदर िै। िम श्रद्धा की ऐसी गिराइयों में जा सकते िैं जो केवल परमामम‌ा को िी देखती िै और उन्िें िी चािती िै और तभी िम इस सतिी श्रद्धा को शमटा सकतेिं। त्रबना गिरी श्रद्धा के आए िम वस्तुओंमें शलप्त इस सतिी श्रद्धा को शमटा निीं ंसकते। यहद व्यजकत भगवान् ्की ओर गनत करनेका दबाव या पे्ररणा मिसूस करता िै तो ऐसा वि उस आन्तररक श्रद्धा के प्रभाव के कारण िी करता िै। यि इस चीज का सूचक िै कक वि आन्तररक सत्ा िमें संदेश भेज रिी िै और अपनी उपजस्थनत मिसूस करा रिी िै। वतमिान में िमारी सारी सत्ा काम-पुरुष के इदि-धगदि िी केंहरत िै, िालाकाँक काम-पुरुष भी िमारी केंरीय सत्ा का िी भ्ष्ट रूप िै, इसशलए िम बािरी चीजों से िी संतुजष्टया ंाँबटोरनेमें लगे रिते िैं। परन्तु आंतररक श्रद्धा के प्रभाव से आते संदेश तब तक प्रभावी निींिोंगे जब तक कक िम सतिी चीजों में अपनी श्रद्धा को खमम न कर दें। और यि तभी संभव िै जब िमें अपने सभी किया-कलापों के पीछे श्रीमाताजी की किया नजर आने ंेलगे और िम केवल उन्िींके शलये काय िकरने ंेलगें। अन्यथा यि समभव निीं ंिै। िमारे ऊाँचेसे ऊाँचे आदश िभी केवल िमारे अिं के िी रूप िैं। िमारा उद्देश्य केवल और केवल भगवान् ्को प्राप्त करना िोना चाहिये और उनकी सेवा करना िोना चाहिये।

इसके शलये िमें अपनी पूरी क्षमता से काय िकरना िोगा। भगवान् ्िमसे िमारी क्षमता से अधधक की मागाँ निीं ंकरते। ककसी भीषण संकट से उबरने के शलए या कफर अपनी ककसी रुधचकर वस्तु को प्राप्त करनेके शलये िम जजतनी ऊजाि लगाते िैं उतनी िी ऊजाि िमें भगवान् ्को प्राप्त करने के शलये लगानी िोगी और उस चेतना में जाना िोगा जजसमें िम केवल भगवान् ्को िी देखें और केवल उन्िें िी चािें। यि पिली शत िैि। यि उनके शलए लागू िोती िैंजजनके मन में यि पिले िी आ चुका िै कक उन्िें भगवान् ्को प्राप्त करना िै।

इसके बाद जजस दूसूरी चीज की आवश्यकता िै वि िै इच्छा-शजकत, संकल्प-शजकत, कयोंकक िमारी सतिी प्रकृनत सिज िी इस ननणयि को स्वीकार निीं करने वाली िै। उसकी शलप्तता तो संसार की अनेकों प्रकार की कामनाओं में रिती िै। इसशलये िमें पूरी संकल्प-शजकत के साथ अपनी सतिी प्रकृनत को बाध्य करना िोगा कक वि इस केन्रीय श्रद्धा के प्रनत नतमस्तक िो, उसकी अधीनता स्वीकार करे।

अतः पिली चीज िै वि केन्रीय श्रद्धा जो िमेशा श्रीमााँ को िी देखती िै और केवल उन्िें िी चािती िै। और दूसूरी िै, िमारी बािरी प्रकृनत को िमारी इस केन्रीय श्रद्धा के प्रनत नतमस्तक िोनेके शलए बाध्य करना। जब िम केवल श्रीमााँ को िी चािेंगे तो िमें माग िपर दृढ़ बनेरिने ंेके शलये अधधकाधधक शजकत प्राप्त िोती जाएगी और िम संघषों को पार कर के अवश्य िी अपनेलक्ष्य को प्राप्त करेंगे। इसमें ककतना समय लगेगा वि अलग-

अलग िोता िै और व्यजकत ववशेषे पर ननभरि करता िै। परन्तु सच्ची बात तो यि िै कक िमारे भीतर श्रीमााँ के प्रनत भाव के अनतररकत अन्य ककसी प्रकार का भाव िी ना रिे जो कक िम पर अपना अधधकार जमा ले, भले िी वि भाव समाज के प्रनत िो, राष्ट्र के प्रनत िो या अपनेऊपर ककये गये ककसी उपकार की कृतज्ञता का िो। श्रीमाताजी को छोि़कर अन्य कोई कतव्यि का भाव िी न रिे। कयोंकक सामान्यतया जजसे िम कतव्यि किते िैं वि तो वववेकानंदजी के अनुसार एक ऐसा रोग िै जो िमारी आममा को झुलसा देता िै। कर्त्व्यि, कृतज्ञता आहद तब तक बिुत सिायक िोतेिैं जब तक कक व्यजकत अपनी ननमन प्रकृनत के िी वश में िोता िै और उसकी आममा इतनी प्रबल निींिोती कक सचेतन रूप से उसके बािरी हिस्सों पर अपना अधधकार कर सके। अवश्य िी कृतज्ञता एक आंतररक गुण िै। परन्तु जब िम साधना के माग िपर चलते िैं तब िम यि जान जाते िैं कक सभी शरीरों में स्वयं श्रीमााँ िी ववद्यमान िैं और वे िी ककसी एक के या दूसूरे के माध्यम से िमारी सिायता करती िैं। इसशलये यि अनुभव िोनेके बाद िम उस माध्यम ववशेषे से निींअवपतु स्वयंश्रीमााँ के प्रनत िी गिरी कृतज्ञता का भाव अनुभव करने ेलगतेिैं जिा ाँसे कक िमें सभी अनुग्रि वास्तव में प्राप्त िोतेिैं।

परंतु सतिी श्रद्धा को शमटाकर इस गिरी श्रद्धा को स्थावपत करना कोई आसान काम निीं ंिै। कयोंकक ऐसा करनेमें प्रकृनत तरि-तरि के सुझाव देती िै, भानाँत-भानाँत के छलावे करती िै और िमें माग िपर आगे बढ़नेसे रोकनेका प्रयास करती िै। वि िमारे समक्ष कतव्यि-अकर्त्व्यि के बोध रखती िै, धमि–अधम िके ववचार रखती िै और उनका ननष्ठापूवकि पालन करने को बाध्य करती िै। इसशलये जब तक िम अपनेइन सामान्य धमों को तोि़ निीं ंदेते तब तक वास्तव में भगवान् ्की ओर िमारा माग िप्रशस्त निीं िो सकता। िमारी पूव िमें बनी िुई धारणाओं को टूटने में भी बिुत समय लग जाता िै और यि समय की अवधध व्यजकत-व्यजकत पर ननभरि करती िै। ककसी-ककसी को तो अपेक्षाकृत कम समय लगता िै, विींककसी-ककसी की पचासों वष िलगानेपर भी आवश्यक निीं ंकक पूव िमें बनी धारणाएाँ टूट जाएाँ। इसशलये आममा के दृजष्टकोण से कतव्यि-अकतव्यि, धमि–अधम िआहद के सभी बोध अंधकारस्वरूप िी िैं जजसकी सिमनत न तो गीता देती िै और न िी श्रीअरववन्द । कयोंकक यहद बारीकी से देखा जाए तो िमारे सारे कर्त्व्यिबोध और िमारे कृतज्ञता के बोध अंततोगमवा िमारे शरीर के संबंध से या अधधक-से-अधधक िमारे बािरी व्यजकतमव के संबंध से िी तो िोतेिैं। जबकक सच्चे दृजष्टकोण से सभी चीजें तो श्रीमााँके संबंध से िोनी चाहिये। कृतज्ञता तो िमें उन्िींके प्रनत रखनी चाहिये और कतव्यि भी िमारा उनके अनतररकत अन्य ककसी के शलए निीं ंिोना चाहिये। इसीशलये योगी श्रीकृष्णप्रेम किते थे कक भगवान् ्के अनतररकत अन्य कुछ भी देखना तो भ्मपूण िरूप से देखने के िी शभन्न-शभन्न तरीके िैं। कृतज्ञता का बोध तो तब सिायक िै जब कोई ननमन ववृर्त् शसर उठाये या ककसी व्यजकत के प्रनत कोई दुभाुवि उठे तब कृतज्ञता का बोध िमें यि याद हदलाता िै कक उस व्यजकत निेमारे साथ अमुक समय कोई हितैवषता का व्यविार ककया था। इसीशलये समाज में इन गुणों का इतना मित्त्व िै ताकक ये मनुष्य की ननमन प्रकृनत को िावी िोने ेसे रोक सकें। इसी के शलए भारतीय संस्कृनत ने सापेक्ष धमों का ननमाण ककया था। परंतु ये सभी बािरी धम िउस पर और अधधक प्रभावी निीं ंिोतेजजसने अपनी आममा के ववधान को स्वीकार कर शलया िोता िै।

कतव्यि बोध तथा कृतज्ञता के भाव की जजतनी भी बातें िोती िैं वे ेसभी प्राय: िमारी ननमन प्रकृनत पर कुछ अंकुश लगानेके शलये िोती िैं ताकक िम अनतशय रूप से स्व-केंहरत न िो जाय।े ये चीजें िमारी आममा की ननमन प्रकृनत से रक्षा करती िैं। जो व्यजकत स्व-केंहरत िोता िै उसके शलये अपने माता-वपता की सेवा करने का कर्त्व्यि बिुत आवश्यक िै। परंतु ये िी सुझाव उस व्यजकत के शलये बंधनस्वरूप और बाधक िो जाते िैं जजसने परमाममा के प्रनत समपणि करनेका दृढ़-संकल्प कर शलया िै। सामान्य दृजष्टकोण से तो यि एक बिुत िी उच्च भाव िै कक जब कोई िमारा थोिा भी भला करे तो उसके प्रनत िमेशा कृतज्ञता रखना और उसी के अनुरूप व्यविार करना। परन्तुजब िमनेश्रीमााँ के प्रनत सच्चा समपणि कर हदया िोता िै तब कफर िमारा सारा जीवन, िमारे सारे साधन, सारे प्रयास, सारे कतव्यि, सारी कृतज्ञता अनन्य रूप से केवल उन्िींके प्रनत ननवेहदत िो जाते िैं। कयोंकक वे िी िैं जो सभी में तथा सवत्रि ववराजमान िैं और जो कुछ भी िोता िै और जजसके द्वारा भी िोता िै उस सब के पीछे एकमात्र उन्िीं िंका िाथ िोता िै। इसशलये जब िम श्रीमााँ के प्रनत समवपति िोतेिैं तब कफर अन्य कोई अिपरक कतव्यिबोध अथवा ककसी व्यजकत के प्रनत कृतज्ञता के शलये तो कोई स्थान िी निींरि जाता। इसीशलए बािरी चीजों में शलप्त श्रद्धा को बाध्य करना िोगा कक वि आंतररक श्रद्धा की अधीनता स्वीकार करे। सभी कमों के शलये एक िी मापदंड िै कक िमें सभी शमथ्यामव, मोि, भ्ांनत आहद के सुझावों को एक ओर रख कर पूण िसच्चाई के साथ और िमारी चेतना के उच्चतम संभव शशखर पर जस्थत िोकर केवल यि देखना िोगा कक िमारे अमुक काय ि से श्रीमााँ प्रसन्न िोंगी या निीं। विी चीज जो पिले िमें िमारी ननमन प्रकृनत से ऊपर उठनेमें मदद करती थी, उसका उपयोग समाप्त िो जानेपर समपणि के माग िमें बाधा बन जाती िै चािे वि अिं िो, चािे तकि-शजकत िो, चािे ज्ञान िो अथवा चािे अन्य कुछ भी कयों न िो। िमववकास में ये िी सभी पाशववकता से उठकर िमारे मानव

व्यजकतमव के ननमाणि में तो एक सीमा तक सिायक िोतेिैं परंतुजब इनकी उपयोधगता समाप्त िो जाती िै तब ये िी बाधा बन जाते िैं और आगे बढ़नेके शलए इन सब को तोिना िोता िै। इसीशलए भारतीय संस्कृनत में यि सवमान्यि रिा िै कक जैसे िी कोई व्यजकत संन्यास धम िअपनाता िै वैसे िी उसके सभी धम,ि कर्त्व्यि, बंधन आहद नष्ट िो जाते िैं और वि उन सबसे मुकत िोकर आममोमसग िके माग िपर आगे बढ़ सकता िै। उसके बाद उस पर अपनेसंन्यास धम िके अनतररकत अन्य कोई कतव्यि बाध्यकारी निींरिता। परंतुश्रीअरववन्द के योग में चूाँकक बािरी संन्यास का कोई ववधान निीं िै इसशलये व्यजकत कि‍ता तो िै कक वि भगवान् की ओर जाना चािता िै, साधना करना चािता िै, श्रीअरववन्द व श्रीमााँका योग करना चािता िै, परंतुकफर भी लंबे समय तक या कफर जीवनपयतं भी वि अपनेबािरी कतव्यिों के ननवाि में िी शलप्त रिता िै और उस चककर से निीं िननकल पाता। िालााँकक इसका यि अथ िनिीं िै कक संन्यास िी एकमात्र उपाय िै और व्यजकत को अपने पररवार आहद को मयाग देना आवश्यक िै। परंतु इसमें सच्चा मनोभाव यि िै कक अपने पररवार आहद को भी श्रीमााँ को सौंप हदया जाए। तभी पररवार का भी सच्चा कल्याण िो सकता िै। यहद व्यजकत अपने अिं के कारण पररवार का पोषण करने की बजाय श्रीमााँ की इच्छानुसार उनका ननवाि करता तब तो उसमें अिं की निीं िबजल्क हदव्य किया प्रभावी िो जाती िै। िालााँकक व्यजकत योजना बना कर यि काम निीं िकरता कक ऐसा करने से उसके पररवार का भला िो जाएगा। परंतु श्रीमााँ के प्रनत उमसग िोने पर यि तो उसका एक सिज पररणाम िै। इसके कुछ उदािरण िमें स्वयं श्रीअरववन्द आश्रम में िी शमलते िैं और बािर तो इसके अनेकानेक उदािरण शमलते िैं कक ककस प्रकार जजसने

अपने-आप को पूण िरूप से भगवान् ्को अवपति कर हदया उसके पररवार तक का योगक्षेम भगवान् ्स्वयं िी विन करते िैं। कर्त्व्यि आहद की बातों पर एक व्यापक पररपे्रेक्ष्य प्रदान करनेके शलए श्री हदलीप कुमार रॉय द्वारा शलखे एक पत्र के प्रमयुर्त्रस्वरूप श्रीअरववन्द ने जो उर्त्र हदया वि ब्रिा िी पे्ररक िै। श्री हदलीप ने शलखा : पूवी बंगाल में १९४६ में िजारों हिन्दुओंका कमल व उनकी जस्त्रयों से बलामकार ककया गया, उनके घरों को जलाया गया और उनकी लि़ककयों का अपिरण कर शलया गया था। मनैं ेबिुत दुखुखत अनुभव ककया, इसशलए अधधक कयोंकक मेरे अनेक शमत्र मुझे ेशोक-संतप्त हिन्दुओंके शलए रित कायों की भीषण तामकाशलक आवश्यकता के ववषय में शलखतेरिते थे। "गुरु, कयों निींआप मुझे ेरित कशमयियों का साथ देनेके शलए जाने देते?" ..."मेरे पास खोनेको कुछ निीं िै कयोंकक मुझेलगता िै कक कुछ समय से म ैंआपके योग में भी अधधक कुछ निींकर पा रिा िूाँ और इसशलए प्रायः इन हदनों मुझे े१९३८ का टैगोर का कथन याद आता िै: 'हदलीप, तुम और म ैंस्वभाव से कलाकार िैं, योगी निीं।' इसशलए कया आप मुझेजानेकी इज़ाज़त देंगे?" इसके उर्त्र में श्रीअरववन्द ने शलखा : "तुमिारी वतमिान जस्थनत, जजसे म ैंपूरी तरि से समझता िूाँ, का तुमिारा ब्यौरा पाकर मेरी सलाि तुमिें विी िैः ऊषा के आने तक दृढ़ता से लगे रिो - वि अवश्य िी आएगी यहद तुम ककसी बािरी अंधकार में भाग छूटने के प्रलोभन को रोके रखो जिााँपिुाँचने ेमें उसे बिुत अधधक कहठनाई िोगी। ....ये ऐसी चीजें िैं जो लगभग अवश्यंभावी रूप से ककसी-न-ककसी मात्रा में ककसी ववशशष्ट ननणायिक अवस्था में आती िी िैं जजससे िोकर लगभग सभी को गुजरना िोता िै और जो कष्टदायक रूप से एक लंबे समय तक चलती िै परंतुयि त्रबल्कुल भी आवश्यक निींकक वि ननणायिक या अंनतम िो। सामान्यतया, यहद कोई दृढ़ता से लगा रिता िै, तो गिनतम अंधकार की रात्रत्र की अवधध लगभग प्रमयेक आध्याजममक अभीप्सु को ऊषा से पिले आती िी िै। यि इस कारण आती िै कयोंकक व्यजकत को त्रबना ककसी सच्चे मानशसक प्रकाश या जीवन में ककसी प्रकार के िष िके सिारे के िी घोर भौनतक चेतना में ननमग्न िोना पि़ता िै, कयोंकक ये चीजें सामान्यतया आवरण के पीछे चली जाती िैं, िालाकाँक, जैसा कक प्रतीत िोता िै वैसे, वे स्थायी रूप से खो या छूट िी निीं ंजातीं। यि एक ऐसी अवधध िै जब संदेि, इन्कार, शुष्कता, मलानता और इसी के जैसी चीजें बिे ेभारी वेग के साथ उभर आती िैं और कुछ समय के शलए प्रायः पूरी तरि से आधधपमय रखती िैं। इस अवस्था को सफलतापूवकि पार कर शलये जानेके बाद िी सच्चा प्रकाश आनेलगता िै, वि प्रकाश जो मन का निीं अवपतु आममा का िोता िै। ननःसंदेि प्रारंशभक अवस्थाओं में कुछ िद तक आध्याजममक प्रकाश आता िै और कुछ को तो काफी िद तक आ जाता िै, िालाकाँक ऐसा सभी के साथ निींिोता - कयोंकक कुछ को तो तब तक प्रतीक्षा करनी पि़ती िै जब तक कक वे अपनी मानशसक, प्राखणक और शारीररक चेतना में से अवरोधनकारी पदाथ िको िटा न दें, और तब तक उन्िें उसका केवल यदा-कदा िी एक संस्पश िप्राप्त िोता िै। परंतु अपनी सवोर्त्म जस्थनत में भी, यि आरंशभक आध्याजममक प्रकाश कभी भी पूण िनिीं ंिोता, जब तक कक भौनतक चेतना के अंधकार का सामना कर उसे ववजजत न कर शलया गया िो। ऐसा निीं ंकक कोई अपनी गलती के कारण इस अवस्था में धगर जाता िै; यि तब भी आ सकती िै जब साधक आगे बढ़नेके शलए अपना अधधकतम प्रयास कर रिा िोता िै। यि वास्तव में प्रकृनत में कोई मूलभूत अयोग्यता को निीं दशातिा परंतु अवश्य िी यि एक कहठन परीक्षा िै और साधक को इससे गुजरने ेके शलए बिी सुदृढ़ता से लगे रिना िोता िै। इन चीजों को समझाना मुजश्कल िोता िै कयोंकक इसकी मनोवैज्ञाननक आवश्यकता को समझना या उसे स्वीकार करना सामान्य मानव तकि-बुद्धध के शलए कहठन िै। म ैं

ऐसा करनेका प्रयास करूँगा परंतु इसमें कुछ हदन लग सकतेिं। तब तक, जैसा कक तुमने ेमेरी सलिा चािी िै, म ै तुमिें यि संक्षक्षप्त उत्र भेजता िूाँ।"

इसी पत्र की प्रनतकिया में श्रीकृष्णपे्रेम ने शलखा: "अपने मन को श्रीकृष्ण के चरणों में लगाए रखो, सदा यि याद रखो कक तुम 'उनके' िो न कक अपने-आप के और चािे प्रकाश में िो या अंधकार में, िषा िमें िो या शोक में, जैसा 'वे' चािें उसी तरि बस चलते रिो....तुमिारे पुराने जीवन में लौट जानेके ववचार को क्षण भर के शलए भी तूल न दो : वि अब सदा के शलए जा चुका िै और उसके संबंध में ववचार परेशानी के अलावा और कुछ निीं ला सकते। ये चीजें कभी न कभी तो आती िी िैं - और अधधकांश के शलए तो - और मुझेलगता िै वास्तव में तो सभी साधकों के शलये - कभी - कभी बार-बार आती रिती िैं। रूप शभन्न िो सकता िै परंतुकारण समान िी रिता िै : आममा की ऊध्वा–गनत में िमारी 'ननमन प्रकृनतयों' पर राज करने वाली शजकतयों का ववरोध। स्वाभाववक रूप सं, जब वि ऊध्वा–गनत सच्ची िोती िै या जजसके सच िोनेका पूरा ववश्वास िोता िै केवल तभी उन शजकतयों को अपना राज्य खतरे में लगता िै या कफर वे ककसी न ककसी प्रकार के तूफानों और अंधकार के द्वारा इसकी प्रनतकिया देती िैं। यिी निीं, वे ऐसा केवल िमारे अंदर की ककसी कमजोरी, या कुंहठत कामनाओं से जन्मे आंतररक रोष या ववषाद को काम में लेकर िी कर सकती िैं। जैसे जादूगर को अपनेजादू ूकर सकनेके शलये अपनेिोने ेवाले मिोरे की ककसी चीज की जरूरत िोती िै - कोई बालों का गुच्छा या कपड़े ेका टुकड़ा - उसी प्रकार इन शजकतयों को अपनी माया कर सकनेके शलये िमारे अंदर आधारस्वरूप ककसी कमजोरी की आवश्यकता िोती िै। जब भी इस प्रकार के ववचार उभर कर आएँ तभी श्रीकृष्ण के चरणों का ध्यान-धचंतंन करते िुए इन्िें अपनेसे दूरू रखो। और उन्िें तुमिारे अपनेववचार मानने ेसे मना करो और यि अनुभव करो कक वे बािर से आते िैं और कफर 'उनके' चरणों से जगमगाने वाली ज्योनत को उन्िें निछतराकर दूरू भगानेदो। तब कफर यि खोजो कक तुमिारे अंदर वि कौन-सी चीज िै जिजसे आधारत्रबंदु ुबनाकर उन्िोंने तुमिारे अंदर किया की - यि लगभग सदा िी अिं की कोई कुंहठत कामना िी िोती िै जो प्रायः सतिी मन द्वारा सवथा उपेक्षक्षत िोती िै।

"बिरिाल, जजस भी तरि िो, बस इससे लगे रिो, धचपके रिो, पीछे मुड़ने की तो सोचो भी मत। जजस क्षण तुमने ेऐसा ककया (अथात् ि्पीछे मुड़े) े उसी क्षण अपनेप्रयोजन में पुष्ट िोकर ये शजकतयााँअपना माया-जाल छोड़ देंगी और तुम बड़े ेभारी रूप से अफ़सोस करोगे।

"िमारे शलए कोई प्रमयावतनि या पीछे मुड़ना िो िी निीं सकता, हदलीप : िमनेजो पीछे छोड़ हदया िै वि नष्ट िो चुका िै और यि सोचना ननरा भ्म िै कक िम उसे पुनः प्राप्त कर सकते िैं। वि जा चुका िै और भले िमें अच्छा लगे या न लगे, शोक में िो या िषा िमें, िमें चलते िी रिना िोगा। यिा ाँतक कक पीछे मुड़ने ेकी कोशशश भी मत करो ऐसा करना केवल िमारे मजस्तष्क को चकरा सकता िै और िमें जो नजर आती िैं वे केवल छलपूण ि मृगमरीधचकाएँ िैं।

"इसकी बजाय िमें उस भववष्य की ओर ननिारना चाहिये जजसमें वतमान में जो िै उससे सवथा शभन्न चीज का आश्वासन ननहित िै। अब इसी क्षण िमें कृष्ण के शाश्वत चरणों को थाम लेना चाहिये और भववष्य में

ककसी हदन उन्िें थामने की आशा न करें - 'यहद िम अच्छे रिे तो जैसा कक वे िमें तब बतातेथे ेजब िम बच्चे थे। अभी, अभी, अभी! अतीत को जानेदो और भावी को अपनी धचंता खुद करने दो।

"यि स्वाभाववक िी िै कक तुम बंगाल की भयावि जस्थनतयों से बिे ेकष्टमय रूप से प्रभाववत िोवोगे परंतु वि भी तो कृष्ण के िी िाथों में िै। जजसने-अपनेआप को कृष्ण के िाथों में सौंप हदया िै उसे तो अटल रूप से उन्िीं के चरणों में अपनी नजरें रखनी चाहिये चािे तीनों लोक ववध्वंस में िी कयों न जा धगरें।"

इस पत्र की प्रनतकियास्वरूप श्रीअरववन्द ने शलखा : "कृष्णप्रेम का पत्र शुरू से अंत तक सरािनीय िै और िर वाकय मित् ्अथसंगितता और बल के साथ समय से जा टकराता िै। प्रमयक्ष रूप से उन्िें योग में काय िकरने वाली मनोवैज्ञाननक और गुह्य ताकतों का एक सटीक ज्ञान िै; वे जो कुछ भी किते िैं वि मेरे अनुभव से मेल खाता िै और म ैंइससे सिमत िूाँ। तुमिारी वतमान समस्याओं के मूल कारण का उनका ब्यौरा सवथा सिी िै और इसके अनतररकत अन्य ककसी स्पष्टीकरण की आवश्यकता निीं िै – शसवाय मेरे अधूरे पत्र में म ैंजो साधना के भौनतक चेतना में उतर आने ेकी बात कर रिा था, और वि भी वे जो कि रिे िैं उससे ववसंगत निीं ंिै अवपतु उसका पररपूरक िै। इस कथन में भी वे ेसवथा उधचत िैं कक इन भारी आिमणों का कारण भी तुमिारा साधना को सच्चाई के साथ लेना, और, किा जा सकता िै, 'प्रकाश के राज्य' के द्वारों के समीप पिुाँचना िी था। ऐसा उन ताकतों को सदा िी प्रचण्ड िोधावेश से भर देता िै और वे साधक को पीछे मोिने के शलए अपनी एिी-चोटी का जोर लगा देती िैं या उसके शलए िर संभव अवसर काम में लेती िैं, और संभव िुआ तो, अपनेसुझावों, अमयंत उग्र प्रभावों के द्वारा तथा इस प्रकार की पररजस्थनतयों में अधधकाधधक उठनेवाली िर प्रकार की घटनाओं को अपनेननहित प्रयोजन िेतु प्रयोग में लानेके द्वारा उसे पूणतिः पथ से िटा देनेका प्रयास करती िैं ताकक वि द्वारों तक न पिुाँच पाए। मनैंअनेक बार इन ताकतों की ओर संकेत करते िुए तुमिें शलखा िै, परंतु इस बात पर मनैं ेबिुत अधधक बल निीं ंहदया कयोंकक उन अधधकांश लोगों की तरि जजनकी बुद्धध आधुननक यूरोपीय शशक्षा के द्वारा तकिप्रधान िो गई िै, तुमिारा भी इसमें ववश्वास करने ेका, या कम-से-कम, इस ज्ञान को कोई मित्त्व प्रदान करने का कोई रुख निीं ंथा। इन हदनों लोग िर चीज की व्याख्या या उसका स्पष्टीकरण अपनी अज्ञ तकि-बुद्धध, अपनेसतिी अनुभव और बाह्य घटनाओंमें ढूाँढ़ते िैं। वे ेगुप्त या प्रच्छन्न ताकतों और आंतररक कारणों को निीं ंदेखते जो कक पारंपररक भारतीय एवं ंयौधगक ज्ञान में सुपररधचत और दृजष्टगोचर थे। नन:संदेि, ये ताकतें अपने िोने का कारण स्वयंसाधक में, उसकी चेतना के अज्ञानमय भागों म ैंऔर उन ताकतों के सुझावों और प्रभाव के प्रनत उसकी स्वीकृनत में िी पाती िैं; अन्यथा वे किया िी निीं ंकर सकती थींया कम-से-कम ककसी सफलता के साथ किया निीं कर सकती थीं। तुमिारे मामले में, ननमनतर प्राखणक अिं की तुमिारी चरम संवेदनशीलता िी उन ताकतों को सिारा प्रदान करने ेकी मुख्य कारण रिी िै और अब भी तुमिारे रूढ़ मतों अथवा पूवाग्रिों, पूवननणयों, आदतन प्रनतकियाओं, ननजी पसंदों, पुराने ेववचारों और संबंधों से धचपकाव वाली भौनतक चेतना और उसके जजद्दी संदेि को, और साथ िी इन सब चीजों को उच्चतर प्रकाश की अवरोधकारी और ववरोधी दीवार के रूप में बनाए रखना िी उनका आश्रय बना िै। भौनतक मन की इस कियाशीलता को िी लोग बुद्धध तथा तकि-बुद्धध किते िैं जबकक यि तो केवल मानशसक आदतों के घेरे में मशीन का चककर काटना िै और यि उस सच्ची और मुकत बुद्धध, उच्चतर

बुद्धि से सवथिा शभन्न िै जो कक प्रबोधन या ज्ञान में समथ िै और उससे भी किीं अधधक उच्चतर आध्याजममक प्रकाश या आंतराजममक चेतना की उस अंतदृजिष्ट और सूक्ष्म ववचार में समथ िै जो तमक्षण सच्चा और उधचत कया ै उसे देख लेता िै और जो गलत और शमथ्या िै उससे उसका भेद कर लेता िै। जब भी तुम एक अच्छी जस्थनत में थे ेतब यि अंतदृजिष्ट सतत् ्िी तुमिारे साथ थी, ववशेषकर जब कभी तुममें भजकत प्रबल िो जाती थी। जब साधक उन मानशसक और उच्चतर प्राखणक क्षेत्रों को छोड़कर, जजन पर कक वि सबसे पिले भगवान् ्की ओर मुड़ा था, भौनतक चेतना में उतरता िै तो ये ववरोधी चीजें बड़ी प्रबल और धचपकनेवाली िो जाती िैं, और चूंकक उसकी अधधक सियक अवस्थाएँ और अनुभूनतया ाँपदे के पीछे चली जाती िैं और इसका भान भी उसे कदाधचत् ्िी रिता ै कक वे उसे कभी थींभी, तो उस जस्थनत से बािर ननकलना मुजश्कल िो जाता िै। तो जैसा कक कृष्णप्रेम ने किा और मनैं ेभी उस पर बल हदया िै, तब केवल एक िी चीज िै, वि िै धचपके रिना अथात्् पथ को दृढ़ता से पकड़े े रिना। यहद एक बार साधक इन शजकतयों के गुप्त प्रस्तावों को, भले िी वे ककतने भी समय सदृश कयों न प्रतीत िोतीं, माननेसे इंकार करने ेका संकल्प प्राप्त कर सके और उसे बनाए रख सके तो यि जस्थनत मवररत रूप से या मिशः क्षीण िोनेलगती िै और इसे पार ककये जानेके बाद ये बंद िो जाएगी। जैसा कक कृष्णप्रेम ने और मनैं ेतुमिें बताया िै कक योग को मयाग देना कोई समाधान निीं ंिै; और यि करने में तुम सफल निीं ंिो सकतेऔर यिी तुमिारा मन भी तुमिें तब बताता िै जब वि शुद्ध िोता िै। संघष िसे रित के शलए आश्रम से कुछ समय के शलए बािर जाना एक दूसूरी बात िै। िालाकाँक, म ैंनिीं ंसमझता कक रमण आश्रम में ननवास करना मन की कुछ शांनत लौटानेके अनतररकत अंततोगमवा अधधक कुछ सियक शसद्ध िोगा; रमण मिवष िएक मिान् ्योगी िैं और अपने िी माग िमें उनकी अनुभूनत बिुत ऊँची िै; परंतुमुझे ेऐसा निींलगता कक वि कोई ऐसा माग िै जजसका तुम उतना सफलतापूवकि अनुसरण कर सको जजतना कक अवश्य िी तुम भजकतमाग िका कर सकतेिो यहद तुम उससे दृढ़तया धचपके रिो, और कफर अपना खुद का माग िखो देनेऔर एक शभन्न प्रकृनत के शलए उधचत माग िका अनुसरण न कर पाने के कारण तुमिारा दो नतपाइयों के बीच से धगरने का खतरा रिेगा।

"जिाँ तक बंगाल की बात िै, जस्थनतयाँ ननश्चय िी बिुत खराब िैं; हिंदुओंकी जस्थनत वािाँभयंकर िै और हदल्ली में अंतररम सुववधाजनक गठबंधन िोने ेके बावजूद वे बदतर भी िो सकती िैं। परंतुइसका िम पर ननराशाजनक या अनतशय प्रभाव निीं ंिोना चाहिये। बंगाल में कम-से-कम दो करोड़ हिन्दू िैं और उनका सफाया निीं ंककया जा सकता – यिा ाँतक कक नरसंिार के वैज्ञाननक तरीकों से लैस हिटलर भी यहूहदयों का सफाया निीं ं कर सका जो कक अपने-आप को खूब जीवंत हदखा रिे िैं; और, जिा ाँतक हिन्दू ूसंस्कृनत की बात िै, वि कोई इतनी कमजोर और लसलसी या नरम चीज निीं िै जो आसानी से खमम की जा सके; वि कम-से-कम कोई पाचाँ िजार सालों से चली आ रिी िै तथा और भी बिुत लंबे समय तक चलती रिेगी और उसनेइतनी शजकत संग्रिीत कर ली ै कक वि बची रि सकती िै। जो कुछ िो रिा िै वि मेरे शलए कोई आश्चय िकी बात निीं ंिै। मनैं इसका तभी पूवानुिमान कर शलया था जब म ैंबंगाल में था और ऐसी जस्थनतयों की आशंका और लगभग उसकी अवश्यंभाववता के शलए और उसके शलए अपने-आप को तैयार करने के शलये मनैं लोगों को चेताया था। उस समय ककसी ने भी मेरी किी बातों को कोई मित्त्व निींहदया यद्यवप जब बाद में समस्या शुरू िुई तब कुछ लोगों ने याद ककया और स्वीकार ककया कक म ैंसिी था; केवल सी. आर. दास को िी भारी शंकाएँ थीं और जब वे पांडिचेरी आए तब उन्िोंने

मुझे ेबताया भी कक वे निीं चािते कक जब तक वि खतरनाक समस्या ननपट निींजाती िै तब तक त्रब्रहटश को जाना चाहिये। परंतु ुजो कुछ िो रिा िै उससे म ैंितोमसाहित निीं ंिूँ, कयोंकक म ैंजानता िूँ और सैकड़ों बार अनुभव
भी ककया िै कक जो भगवान् ्का एक यंत्र िै उसके शलए घोरतम अंधकार के परे भगवान् ्के ववजय का प्रकाश मौजूद
ि। संसार में ककसी भी चीज के घहटत िोनेके शलए - म ैंव्यजकतगत चीजों की बात निीं ंकर रिा - मेरा ऐसा कोई भी प्रबल और सुजस्थर संकल्प निींरिा जो कक ववलंब, पराजय या कफर ववध्वंस के बावजूद भी अंततः संशसद्ध न िुआ िो। एक समय था जब हिटलर सभी जगि ववजयी था और यि ननजश्चत प्रतीत िोता था कक असुर का काला जुआ (दमनकारी शासन) संपूण ि संसार पर थोप हदया जाएगा; परंतु अब किाँ िै हिटलर और किा ाँिै उसका राज? बशलनि
और न्यूरंबग िमें मानव इनतिास के उस भयावि अध्याय का अंत इंधगत िुआ था। अन्य काशलमाओं ने मानवजानत को हक देने या कफर यिाँतक कक उसे ननगल जानेका संकट प्रस्तत ककया, परंतजजस प्रकार प्रवृद्धिःस्वप्न का अंत िुआ वैसे िी उनका भी अंत िोगा।"*
मिे यि याद रखना िोगा कक िमारे अंदर भी इसी प्रकार के ववशि भाग चुपचाप दबे पड़े िरिते और जब भी उन्िें मौका शमलता ि तभी अपना शसर उठा लेते िैं। और तब वे अपनी सुववधानुसार नीनत, धम िऔर शास्त्र का सिारा लेकर ऊपर से हदखने ेमें इतने ेसुंदर-सुंदर तकि देते िैं कक कोई भी उनके धोखे में आ सकता िै। इसीशलए यि बात अमयंत मित्त्व की िै कक िमारे सोचनेसमझने ेके तरीकों के स्थान पर, िमारी अपनी इच्छाओं-कामनाओं-लालसाओं आहद के स्थान पर श्रीमाँ के तौर तरीकों को और उन्िींकी इच्छा को प्रनतस्थावपत कर हदया जाए। तभी जीवन में सच्चा पररवतिन आ सकता िै। और जब व्यजकत अपना सभी कुछ श्रीमाँ के िाथों में सौंप देता िै तभी स्वयंउसका और उसके सगे संबंधधयों का सच्चा कल्याण िो सकता िै।

---

* योगी श्रीकृ ष्णपे्रेम, पृष् ठ ३९ ४४

यहद ऐसा निीं तो व्यजकत स्वयं भी गत िमें धगरा िोता िै और जो उसके संपकि में िोते िैं उन्िें भी अपनेप्रभाव से गत िमें िी धकेलता िै। श्रीमाँ के संबंध से अलग िमारे अपनेजजतने भी ननजी संबंध िैं उन्िें यहद िमनेश्रीमाँ को समवपति निीं ककया िै तो वे सभी जंजीरें िैं जो िमें बाधेँ रखती िैं और परमाममा की ओर जाने से रोकती िैं। इसीशलये श्रीमाताजी के प्रनत समपणि और उनकी सेवा के भाव के साथ आरंभ तो िजारों लोग करते िैं, परंतु चूँकक माग िमें ये सारे िी भटकाव जाल-घात लगाए रिते िैं, इस कारण वास्तव में पिुँचता कोई-कोई िी िै। जब तक िमारे अंदर परोपकाररता या दूसरों की भलाई करने ेके ववचार आते िैं तब तक तो िम अभी भ्रशमत िी िैं। कयोंकक ककसी की भी भलाई करने का एकमात्र सच्चा तरीका िै अपने-आप को भगवान् ्को सौंप देना कयोंकक सच्चेरूप में वे िी जानते िैं कक ककस व्यजकत की ककस चीज में भलाई िै। अतः ननयम एक िी िै कक पररवार, देश, धम,ि कतव्यि, कृतज्ञता, योग्यता आहद कोई भी चीज यहद आममा के यंत्र न बन सकें तो उसकी जंजीरों के समान िो जाते िैं। ये आममा के यंत्र तभी बनेंगे जब िम अपने-आप को श्रीमाँ के िाथों में सौंप देंगे। िालाकाँक व्यविार में यि कर पाना इतना आसान निीं ंिै कयोंकक िमारे प्राण और शरीर के अपने-अपने बाँधे-बाँधाए ढरें िोते िैं जजन्िें वे सिज िी छोड़ना निीं चािते। परंतु कफर भी कम-से-कम अपने हृदय और अपनी बुद्धध को तो िम श्रीमाँ से संलग्न कर िी

सकतीं। तब धीरे-धीरे आगे का रास्ता बैठनेलगता ि ै। श्रीअरववन्द बारंबार िमें याद हदलाते िैं कक सामान्यतया नैनतकता को, साजत्त्वकता आहद को आध्याजममकता समझ शलया जाता ि ै। जबकक आध्याजममकता से उनका कोई संबंध निीं ि ै। अधधक-से- अधधक वे तो केवल मानव को पाशववकता से ननकाल कर मनुष्य बनाने में सिायक िोते िैं। परंतु केवल गुरु के प्रनत समपणि और उनमें अपनी संपूण िप्रकृनत का उमसग िी मनुष्य को हदव्यता की ओर ले जा सकता ि ै।

अजुनव उराच

अयततः श्रद्धयोपेतो योगाच्चमलतरानसः ।

अप्राप्य योगसंमसद्धधं कांगततं कृष्ट्ि गच्छतत ।। ३७।।

३७. अजुनव ने कहाः हे कृष्ट्ि! जो श्रद्धापूर्कव योग को अपनाता है ककततु र्न आदद को र्श र्ें न कर सकनेके कारि योग से वर्चमलत र्न र्ाला र्नुष्ट्य योग र्ें मसद्धध को न प्राप्त कर के ककस गतत को प्राप्त होता है?

कजच्चतनोभयवर्भ्रष्ट्टजश्छतनाभ्रमर्र् नश्यतत ।

अप्रततष्ट्ठो र्हाबाहो वर्ूढो ब्रह्र्िः पधथ ।। ३८।।

३८. हे र्हाबाहो ! क्या ब्रह्र्प्राजप्त के र्ाग वर्ें र्ोहग्रस्त हुआ, जस्थत न रहने के कारि (इस जीर्न और ब्रह्र्- चेतना) दोनों ओर से भ्रष्ट्ट हो जानेपर तछतन-मभतन हुए बादल के सर्ान नष्ट्ट तो नहीं हो जाता?

एततर्े संशयंकृष्ट्ि छेत्तुर्हवस्यशेषतः ।

त्र्दतयः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ।। ३९।।

३९. हे कृष्ट्ि र्ेरे इस संशय को तनःशेष रूप र्ें तनर्ृत्त कर दो। क्योंकक आप से मभतन कोई दूसरा नहीं है जो इस संशय की तनर्ृवृत्त कर सके।

श्रीभगर्ान् उर्ाच पाथ वनैर्ेह नार्ुत्र वर्नाशस्तस्य वर्द्यते ।

न दह कल्याकृत्कजश्चद्दुगुततवतं तात गच्छतत ।। ४० ।।

४०. श्रीभगर्ान् ने कहाः हे पाथ!व उसका न इस लोक र्ें और न परलोक र्ें ही वर्नाश होता है क्योंकक हे वप्रय! कल्याकारी कर् वकरनेर्ाला कोई भी र्नुष्ट्य दुगुततवत को नहींप्राप्त होता।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुवषत्र्ा शाश्र्तीः सर्ाः ।

शुचीनां श्रीर्तां गेहे योगभ्रष्ट्टोऽमभजायते ।। ४१।।

४१. योगभ्रष्ट र्नुष्ट्य पुण्य कर् वकरनेर्ालों को जो लोक प्राप्त होतेहैं उतहें प्राप्त कर के और उनर्ें बहुत र्षों तक तनर्ास कर के पवत्र और श्रीसंपतन व्यजक्तयों के घर र्ें जतर् ग्रहि करता है।

अथर्ा योधगनार्ेर् कुले भर्तत धीर्तार् ्।

एतद्धध दुलुभवतरं लोके जतर् यदीदृर् ्।। ४२।।

४२. अथर्ा ई बुद्धधर्ान् ्योधगयों के ही कुल र्ें जतर् ग्रहि कर सकता है; ऐसा जो जतर् है यह इस पृथ्र्ी लोक र्ें तनःसंदेह अतत दुलुभव है।

तत्र तं बुद्धधसंयोगं ंलभते ेपौर्देवदहकर् ्।

यतते च ततो भूयः संमसद्धौ कुरुनतदन ।। ४३।।

४३. हे कुरुनंदन अजुनव ! (इस प्रकार प्राप्त हुए जतर् र्ें) ई उस पूर् वदेह र्ें प्राप्त की हुई बुद्धध के साथ संयोग को प्राप्त करता है और तदनंतर पिू वमसद्धध प्राप्त करने के मलये पहले की अपेक्षा अधधक पररश्रर् से प्रयत्न करता है।

पूर्ाभ्वयासेन तेनैर् दहयतेह्यर्ोऽवप सः ।

जजज्ञासुरवप योगस्य िब्दब्रह्मातततर्तेव ।। ४४।।

४४. पूर्जवतर् के अभ्यास के प्रताप से ही अर् रूप से या प्रबल रूप से आगे ले जाया जाता है; योग के ज्ञान का जजज्ञासु भी र्ेद उपतनषदादद के िाजब्दक ज्ञान से परे पहुँच जाता है।

प्रयत्नाद्यतर्ानस्तु योगी संिुधककजल्बषः ।

अनेकजतर्संमसद्धस्ततो यातत परां गततर् ्।। ४५।।

४५. और पररश्रर् के साथ अभ्यास करते हुए, सर्स्त पापों से िुद्ध होकर, अनेक जतर्ों के पररश्रर् से अपनेआप को मसद्ध ककया हुआ योगी परर् ्गतत को प्राप्त होता है।

तपजरुभ्योऽधधको योगी ज्ञातनभ्योऽवप र्तोऽधधकः ।

कमर्भ्वयश्र्ाधधको योगी तस्र्ाद्योगी भर्ाजुनव ।। ४६।।

४६. योगी तपजरूयों से श्रेष्ठ होता है, ज्ञातनयों से भी श्रेष्ठ होता है और कर् वकरनेर्ाले व्यजक्तयों से भी योगी श्रेष्ठ होता है यह र्ेरा अमभर्त है; इसमलये हे अजुनव! योगी हो।

योगी वि िै जो कम िके द्वारा, ज्ञान के द्वारा, तप के द्वारा अथवा चिो जजस तरि से िो केवल आममज्ञान के शलए आममज्ञान, शजकत के शलये शजकत या अन्य ककसी चीज के शलए वि चीज निीं ंचािता, अवपतु केवल भगवान् ्के साथ ऐकय िी खोजता िै और उसे प्राप्त करता िै; उसी ऐकय में सभी कुछ समाहित रिता िै और उसी में सब कुछ

अपनेरूप से ऊपर उठकर परम भागवत् ्अथ िको प्राप्त िो जाता ि। परन्तु योधगयों में भी भकत िी सबसे श्रेष्ठ िोता ि।

योधगनार्वप सर्ेषां र्द्गतेनाततरात्र्ना ।

श्रद्धार्ानभजते यो र्ां स र्े युक्ततर्ो र्तः ।। ४७।।

४७. सर्स्त योधगयों र्ें भी जो योगी अपने संपूि वअंतरात्र्ा से र्ेरे को सर्पिव करता है, र्ेरे प्रतत प्रेर्् और श्रद्धा रखता है, उसे र् ैंअपनेसाथ सबसे अधधक योगयुक्त हुआ र्ानता हूाँ।

इसमें यि तो स्पष्ट िी ि कक गीता सभी चीजों का ननरूपण करने ेके बाद भजकत को िी सवशे्रष्ठ बताती ि और सभी कुछ की पराकाष्ठा या पररणनत ब्रह्म में निीं ंअवपतु भगवान् ्की भजकत, उनसे प्रेम में बतलाती ि। जब अजुनि अपने कमों से िोने वाले फल को सोचकर भयवश सकुचा रिा था तब उसे आश्वस्त करते िुए भगवान् ्ने उसे एक बिा भारी वचन हदया कक इस योग माग िपर ककया गया कोई भी प्रयास नष्ट निीं िोता, न िी कोई प्रमयागमन िी िोता ि, और इस धम िका थोिा-सा अनुष्ठान भी मिान् ्भय से मुकत कर देता ि। परन्तु जैसा कक

अजुनि की प्रकृनत का धचत्रण करते िुए श्रीअरववन्द किते ि कक वि बुद्धध के द्वारा चाशलत निींअवपतु ्अपने इंहरय-संवेदनों के द्वारा चाशलत व्यजकत था और अपनी बिारी प्रकृनत मेंिी ननवास करता था इसीशलए कदाधचत् ् वि उस वचन का मम िपूरी तरि समझ निीं पाया अन्यथा अब जो उसनेप्रश्न ककया बि संभवतः उठता िी निीं। कयोंकक वि जानता था कक मन को वश में करनेका भारी काम उसके शलये संभव निीं ंि, इसशलये योग उसके शलये संभव िी निीं। इसशलए वि पुनः उसी प्रश्न को दोिराता ि जजसके प्रमयुत्र में भगवान् ्उसे समझाते ि कक ज्ञान, तपस्या, कम िआहद तो केवल साधन मात्र ि, साध्य तो परमाममा ि। योगी उनसे ऐकय साधधत करने ेका प्रयास करता ि इसशलए वि श्रेष्ठ िोता ि और योधगयों में भी सवशे्रष्ठ और सवाधिक योगयुकत वि ि जो 'मेरे में प्रेम और श्रद्धा रखता ि और मेरे प्रनत समवपति ि'। कयोंकक जो व्यजकत भगवान् ्के समीप चला जाता ि उसे उनसे प्रेम

न िो, ऐसा िो निीं ंसकता। यहद व्यजकत के अंदर ज्ञान िो परंतु भगवान् ्के प्रनत भजकत न िो तब तो इसका अथ ि

कक वास्तव में उसके अन्दर उनके स्वरूप का सच्चा ज्ञान अभी तक निींआया ि। और यहद व्यजकत के अन्दर भजकत िो पर उनके समस्वरूप का ज्ञान न िो तो इसका अथ ि कक उसके अन्दर सच्ची भजकत निीं ि। सच्ची भजकत और सच्चा ज्ञान दोनों साथ-साथ चलते ि और कफर इनके साथ–ी-साथ सच्चा कम िभी आता िी ि। यहद

व्यजकत के अन्दर ज्ञान और भजकत िो पर वि भगवान् ्के शलए कम िन करता िो तो इसका अथ ि कक न तो उसी

गीता के प्रथम छः अध्यायों का अंनतम वचन ि और इसी में शेषे सब का बीज ननहित ि, उस सबका बीज-ननहित ि जो अभी किना बाकी ि और जो अनतशय पूणत या निगूढ़ रिस्य और गुह्य िी बना रिता 3 - 44 आध्याजममक रिस्य, हदव्य रिस्य।

उनके प्रनत ... सारा प्रेम िो

जजसके प्रनत िमारी भजकत िो उसके शलए िम कम िन करें। इसशलए सच्चा ज्ञान, सच्ची भजकत और सच्चा कम ि

साथ-साथ िी चलते ि और परस्पर एक-दूसूरे को आगे बढ़ाते ि और पूण िबनाति।

[अब िम इस बात पर ववचार कर सकतेिैं कक शुरू के इन छः अध्यायों में जजस मूल प्रश्न को लेकर गीता का उपिम िुआ, उसका समाधान किा ाँतक िुआ िै।। यिााँपुनः यि उल्लेख कर देना उपयोगी िोगा कक स्वयंउस प्रश्न में कोई ऐसी बात निीं ंथी जजसके शलए संपूण िववश्व के स्वरूप का और सामान्य जीवन के स्थान पर आध्याजममक जीवन की प्रनतष्ठा का ववचार आवश्यक िोता। उपजस्थत प्रश्न का ववचार व्याविाररक या नैनतक रूप से या बौद्धधक दृजष्ट से अथवा आदशविाद की दृजष्ट से या इन सब दृजष्टयों से एक साथ िी ककया जा सकता था; और यि वस्तुतः कहठनाई को िल करने की िमारी आधुननक पद्धनत िोती...। गीता यि अनुभव करती िै कक इस दृजष्टकोण से कोई परम् ्ननरपेक्ष समाधान निीं,ं अवपतु एक तामकाशलक व्याविाररक समाधान िी िो सकता िै, और अजुनि के सामने उस काल के उच्चतम आदश िके अनुसार ऐसा िी एक व्याविाररक समाधान प्रस्तुत करने पर, जजसे उसकी धचर्त्-वृवृर्त् स्वीकार करने को तैयार निीं ंिै और वास्तव में उसका स्वीकार करना अशभप्रेत भी निीं ंिै, गीता उस प्रश्न के समाधान के शलए एक सवथिा दूसूरे िी दृजष्टकोण की ओर और सवथिा दूसूरे िी िल की ओर बढ़ती िै।

गीता का समाधान िै िमारी प्राकृत सर्त्ा और साधारण मन से ऊपर, िमारे बौद्धधक और नैनतक भ्मजालों के ऊपर उस दूसूरी चेतना में उठना जिााँ सर्त्ा का एक दूसूरा िी ववधान प्रभावी िै और इसीशलए विााँ मिारे कम िके शलए दूसूरा िी दृजष्टकोण िै; जिााँव्यजकतगत कामना और व्यजकतगत भावावेग उसे संचाशलत निीं करते; जिााँ द्वन्द्व दूरू िो जाते िैं; जिााँकम ििमारे ननजी निीं ंरि जाते और इसशलए जिा ाँव्यजकतगत पाप और पुण्य के बोध को अनतिम कर हदया जाता िै; जिा ाँववराट् नैयजकतक भागवत् ्सर्त्ा िमारे द्वारा जगत् ्में अपने िेतु को कियाजन्वत करती िै; जिााँ िम स्वयंएक हदव्य नवजन्म के द्वारा उसी सत् ्के सत्,् उसी धचत् ्के धचत्,् उसी शजकत की शजकत, उसी आनन्द के आनन्द िो जाते िैं और तब, अपनी इस ननमन प्रकृनत में निींरिने ंसे, मिारे अपने करनेके शलए कोई कम िनिींरि जाते, कोई अपना ननजी िेतु निीं ंरि जाता और यहद िम कम िकरते ं भी िैं, - और यिी एकमात्र वास्तववक समस्या और कहठनाई रि जाती िै, - तो केवल भागवत् ्कम ििी करते िैं, वे कम िजजनमें बाह्य प्रकृनत कम िका कारण या प्ेरेरक निीं, केवल एक अप्रनतरोधी उपकरण मात्र िोती िै; कयोंकक प्ेरेरक शजकत तो िमारे ऊपर िमारे कमों के अधीश्वर की इच्छा में रिती िै। और यिी िमें सच्चेसमाधान के रूप में प्रस्तुत ककया गया िै, कयोंकक यि िमारी सर्त्ा के वास्तववक समय तक लौटता िै और अपनी सर्त्ा के वास्तववक समय के अनुसार जीना िी स्पष्टतया जीवन के प्रश्नों का संपूणतिः सवोमकृष्ट और एकमात्र समाधान िै...। िम

उस ्मिस् के ्द्वारा समय को उसके अनुभव करके िी जान सकते िैं, अथात्

आध्याजममक अनुभव में पिुाँचने ंपर िी जान सकतेिैं। कयोंकक, अंततः योग से िमारा अशभप्राय िी यिी िै कक तब तक आध्याजममक अनुभूनत में जीवन व्यतीत करना जब तक िम मानसभाव से छूट कर आममभाव में प्रनतजष्ठत न िो जाएाँ, जब तक वतमिान प्रकृनत के दोषों से मुकत िोकर अपनी यथाथ िऔर भागवत् ्सर्त्ा में पूण िरूप से रिने न लग जाएाँ।

मिारी सर्त्ा के केन्र का यि ऊध्व िस्थानांतरण और पररणामतः िमारे संपूण िअजस्तमव तथा चेतना का रूपान्तरण जजसके फलस्वरूप अपनी बाह्य प्रतीनत में कम िके वैसे का वैसा िी बने रिने पर भी उसके संपूण ि आंतररक भाव और िेतु का पररवतनि िो जाना िी गीता के कमयोग का सारतत्त्व िै। अपनी सर्त्ा को रूपान्तररत करो, आममा में नवजन्म लो और उस नवीन जन्म से उस कम िमें लगो जजसके शलए तुमिारी अंतःजस्थत आममा ने तुमिें ननयुकत ककया िै, यिी गीता के संदेश का मम िकिा जा सकता िै। अथवा दूसूरी तरि से, अधधक गंभीर और अधधक आध्याजममक आशय के साथ यों किें कक, जो कम ितुमिें यिााँ करना पड़ता िै उसे अपने आन्तर आध्याजममक नवजन्म का साधन बना लो, अपने हदव्य जन्म का साधन बना लो, और कफर हदव्य िोकर, भगवान् ् के उपकरण बनकर लोकसंग्रि के शलए हदव्य कम िकरो। अतः यिााँदो बातें िैं जजन्िें स्पष्ट रूप से ननधारिरत करना और समझना िोगा, एक िै इस पररवतनि, इस ऊध्व िस्थानांतरण का माग,ि यि हदव्य नवजन्म, और दूसूरी बात िै काय िका स्वभाव या यों किें वि मनोभाव जजसमें कक वि काय िननष्पाहदत करना िै...।

मि इस आधार से आरंभ करते िैं कक मनुष्य का वतमिान आंतर जीवन जो लगभग पूरी तरि उसकी प्राण-प्रकृनत और शरीर-प्रकृनत पर ननभरि िै और जो मानशसक शजकत की सीशमत किया के द्वारा कुछ िी ऊपर उठा रिता िै, विी उसका संपूण िसंभाव्य जीवन निीं ंिै, न यि उसके वतमिान वास्तववक जीवन का िी सब कुछ िै। उसके अन्दर एक आममा नछपी िुई िै और उसको वतमिान प्रकृनत या तो उस आममा का केवल बाह्य रूप िै या उसकी किया-शजकत का एक आंशशक फल। गीता सवत्रि इस किया-शजकत की वास्तववकता को स्वीकार करती प्रतीत िोती िै, किीं ंभी ऐसा निीं ंमालूम िोता कक उसनेचरमपंथी वेदांनतयों का यि कठोर मत स्वीकार ककया िो कक यि सर्त्ा केवल एक प्रतीनत या आभास िै, यि एक ऐसा मत िै जो समस्त कायों और कम िके मूल पर िी कुठाराघात करता िै। गीता ने अपनी दाशनिनक वववेचना में इस पिलू को जजस रूप में सामने रखा िै (यि दूसूरे रूप में भी रखा जा सकता था) वि यिी िै कक उसनेसांख्यों का प्रकृनत-पुरुष-भेद मान शलया िै - पुरुष अथात्ि्वि ज्ञान-शजकत जो जानती, धारण करती और पदाथ िमात्र को अनुप्राखणत करती िै और प्रकृनत अथात्ि्वि किया-शजकत जो कम िकरती और नानाववध उपकरणों, माध्यमों और प्रकियाओं को जुटाती रिती िै। भेद इतना िी िै कक गीता ने सांख्यों के मुकत अक्षर पुरुष को ग्रिण तो ककया िै, ककन्तुउसे वेदान्त की भाषा में 'एक' अक्षर सवव्यिापक आममा या ब्रह्म किा िै, और दूसूरे प्रकृनतबद्ध पुरुष से उसका पाथकिय हदखाया िै। यि प्रकृनतबद्ध पुरुष िी िमारा क्षर कमशिील पुरुष िै, यिी बिुपुरुष िै जो समस्त वस्तुओं में िै और जो ववशभन्नता और व्यजकतमव का आधार िै। परन्तु तब प्रकृनत का कम िकया िै?

'गीता सवत्रि इस किया-शजकत की वास्तववकता को स्वीकार करती प्रतीत िोती िै, किीं ंभी ऐसा निीं ं मालूम िोता कक उसनेचरमपंथी वेदांनतयों का यि कठोर मत स्वीकार ककया िो कक यि सर्त्ा केवल एक प्रतीनत या आभास िै, यि एक ऐसा मत िै जो समस्त कायों और कम िके मूल पर िी कुठाराघात करता िै।' वेदाजन्तयों का किना िै कक 'ब्रह्म समय जगत् ्शमथ्या', जगत् ्शमथ्या िै, प्रतीनत मात्र िै, स्वप्न की तरि िै, परछाई मात्र िै, लाठी में सापाँ को देखनेकी भानाँत िै, आहद-आहद। परन्तु ुगीता ऐसा निीं मानती। गीता इसे आममा की िी किया मानती िैं, िालाकाँक वि किया और अशभव्यजकत सीशमत िै, आंशशक िै। और वि इस जगत् ्को शमथ्या निीं ंबजल्क समय

मानती िै, परंतु समय िमारी इंहरयों के अथ िमें निीं, ं अवपतु एक गिरे अथ िमें, आममा की दृजष्ट से। पर वास्तव में इस जगत् ्का स्वरूप कैसा िै इसका बोध तो ज्यों-ज्यों िमारी चेतना ववकशसत िोती जाती िै मयों-मयों अधधक ववशाल और गिन िोता जाता िै। गीता यहद वेदाजन्तयों के चरमपंथी मत को िी स्वीकार करती तब तो वि अजुनि को युद्ध का आदेश देकर स्वयं अपनी िी शशक्षा का खंनि कर री िोती। यहद गीता इस जगत् ्को शमथ्या िी मानती तब तो इसके शलए इस सब युद्ध आहद की बात करना तो त्रबल्कुल असंगत िोता।

यि प्रकिया की शजकत, प्रकृनत, िै जो कक तीनों गुणों की एक दूसूरे पर किया-रूप िीिी िै। और, माध्यम कया िै? यि प्रकृनत के उपकरणों के िम-ववकास से सृषृट जीवन की जहटल प्रणाली िै और जैसे-जैसे ये उपकरण प्रकृनत की किया में जीव की अनुभूनत के अन्दर प्रनतभाशसत िोते िैं वैसे-वैसे िम इर्न्िें िमशः बुद्धध, अिंकार, मन, इजन्रयाँ और पंचमिाभूत कि सकतिैं, और ये पंचमिाभूत िी प्रकृनत के रूपों के आधार िैं। ये सब यांत्रत्रक िैं, ये प्रकृनत का एक जहटल यंत्र िै; और आधुननक दृजष्टकोण से िम कि सकतिैं कक ये सब-के-सब ज़ि प्राकृनतक शजकत में समाए िुए िैं और प्रकृनतस्थ जीव जैसे-जैसे प्रमयेक यंत्र के ऊध्वगिामी ववकास के द्वारा अपने-आपके ववषय में सचेतन िोता जाता िै वैसे-वैसे ये प्रकृनत में प्रकट िोतिैं, ककन्तुजजस िम से िम इर्न्िें ऊपर धगना आये िैं, उसी क्रम से इनका स्पष्टीकरण िोता िै, तब इजन्रय-सिंमू, उसके बाद िम से मन और बुद्धध और अंत में आममचेतना। तकि-शजकत या बुद्धध जो पिले प्रकृनत के कायों में िी लगी रिती िै, बाद में इन कायों के यथाथ िस्वरूप को खोज ननकाल सकती िै, उन कायों को तीनों गुणों के मात्र खेल के रूप में देख सकती िै जजसमें कक जीव फँसा िुआ िै, वि जीव को तथा त्रत्रगुण के इन कायों को अलग-अलग देख सकती िै; तब जीव को यि अवसर शमलता िै कक वि इस बंधन से अपने-आपको छुिा ले और अपनेमूल मुकत स्वरूप और अक्षर सर्त्ा में लौट आये। तब वेदाजन्तक पररभाषा में जीव आममा को, सर्त्ा को, देखता िै; प्रकृनत के उपकरणों और कायों से, उसके अशभव्यकत रूपों से अपना तादाममय बन्द कर देता िै; अपनी यथाथ िआममा के साथ, अपने समस्वरूप के साथ तदामम िोता और अपनी स्वतः शसद्ध अक्षर आममसर्त्ा को कफर से पा लेता िै। गीता के अनुसार इसी आममजस्थनत से वि मुकत भाव से तथा अपनी सर्त्ा के ईश्वररूप से अपनी अशभव्यजकत के कम िका आश्रय बन सकता िै।

लगभग सभी साधनाओं में यि बात तो सवमिान्य िी िै कक आरंभ में व्यजकत मन, प्राण और शरीर की कियाओं में िी रमा रिता िै और उनसे बाँधा िुआ िोता िै इसशलए जब वि इनसे कुछ मुकत िोता िै तब उसे यि आभास िोता िै कक इन सबसे परे ककसी अन्य चीज का भी अजस्तमव िै। गीता की गनत का यि पिला सोपान िै। अठारिवें अध्याय के ६२वें श्लोक में भगवान् ्अजुनि को पिले तो सवभिाव से उन ईश्वर की शरण में जानेके शलये किते िैं 'तमेव शरणंगच्छ' जो कक समस्त भूतों के हृदय में अवजस्थत िैं और अपनी माया के द्वारा यन्त्र पर आरूढ़ के समान समस्त भूतों को घुमातेरिते िैं। परंतु ऐसा किने ेके बाद भगवान् ्उसे स्वयंअपनिी पास आने का उपदेश करते िैं 'मन्मना भव मद्भकतो', 'मामेकं शरणंव्रज'। श्रीअरववन्द यिाँ किते िैं कक इस पाधथवि सृजृष्ट के ननमाणि में जजस िम से चेतना का घनीकरण िुआ, िमववकास में उससे उल्टे िम में उनका ववकास िोता िै। और इसशलए िमववकास के अंदर ज़िभौनतक तत्त्व पिले आता िै और प्राण उसके बाद। केवल मन के आने के

बाद िी प्राखणक प्रकृनत भौनतक पर कुछ अंकुश लगाना आरंभ करती िै। इसीशलए मन पर ननयंत्रण करने ेके शलए उच्चतर मन की, उसके बाद अधधमन की और उसके बाद अनतमन की आवश्यकता िोती िै। जजतना िी िम चेतना के उच्चतर शशखरों पर आरोिण करते जाएँगे उतना िी अधधक ननयंत्रण ननचले भागों पर साधधत िो पाएगा। यि एक सामान्य तरीका िै।

प्रश्न : इस प्रकिया शजकत में प्रकृनत के माध्यम कया िैं? कया मन, प्राण, बुद्धध आहद प्रकृनत के माध्यम िैं जिनके द्वारा वि अपनी किया करती िै?

उत्तर : ये सब आममा के तत्त्व निीं ि,ैं प्रकृनत की चीजें िैं। यिाँ तक कक बुद्धध भी आममा का तत्त्व निीं। प्रकृनत िी वववेक करती िै, विी अपने-आप को ऊपर उठाती िै। िम कि सकते िैं कक परमाममा के दो तत्त्व िैं - सत् ् और धचत्। ् धचत् ्अथात् ्चेतना जजसके दो अंग िैं - धचत् ्और तपस् ्अथात् ्चेतना और ऊजा।ि यिी प्रकृनत का आधधपमय करती िै। इसमें आममतत्त्व तो केवल साक्षीस्वरूप िोता िै। वास्तववक कतृ ितो चेतना िै और यिी प्रकृनत का माध्यम िै। ऊपर की चेतना को पराप्रकृनत कि देते िैं और इसे ननमन प्रकृनत किते िैं। यद्यवप आममतत्त्व िी सभी कुछ का सच्चा कतिा िै तो भी बाह्य प्रतीनत में आममतत्त्व केवल साक्षक्षमव करता िै और किया प्रकृनत के द्वारा िोती िै। वास्तव में प्रकृनत केवल विी करती िै जो आममतत्त्व चािे। उसकी इच्छा के त्रबना प्रकृनत कुछ भी निीं करती। वि तो उसी की अशभव्यजकत करनेके शलए, उसी के समय और उसकी अंतवस्तुि को सामने लानेके शलए िमशः अधधकाधधक उन्नत रूपों का ननमिाण करती िै ताकक ककसी प्रकार उस आममतत्त्व को अशभव्यकत कर सके। यि तो ऐसा िी िै मानो प्रकृनत केवल उस आममतत्त्व के अनंतववध रूपों को िी प्रनतत्रबंत्रबत कर रिी िो। परन्तु चूंकक िमारा प्रकृनत से तादाममय िोता िै इसशलए यि समय िमारे शलए ववस्मृत िो जाता िै और िम अवश रूप से प्रकृनत की कियाकलाप में िी ववचरण करते रिते िैं। जबकक िमारा एक भाग - चैमय - ऐसा िै जो इस भूल-भुलैया में निीं फँसता। वि पराप्रकृनत का िी अंश िोता िै।

केवल उन मनोवैज्ञाननक तत्त्वों को देखतेिुए, जजन पर ये दाशननिक भेद आधाररत िैं, - दशननिशास्त्र अजस्तमव के मनोवैज्ञाननक तथा भौनतक तथ्यों के तथा ऐसी ककसी चरम यथाथतिा (यहद ऐसी कोई िो) के साथ इनके संबंध के सारमम िको िमारे अपनेशलए बौद्धधक रूप से स्पष्ट करनेका एक तरीका मात्र िै, - िम यि कि सकतेिैं कक िम दो तरि के जीवन त्रबता सकतेिैं, एक िै अपनी सकिय प्रकृनत के कायों में लीन जीव का जीवन, जजसमें जीव अपनेमनोवैज्ञाननक और बाह्य उपकरणों के साथ तदाकार, उनसे सीशमत, अपनेव्यजकतमव से बाँधा, प्रकृनत के अधीन िोता िै; और दूसरा िै आममा का जीवन जो इन सब चीजों से श्रेष्ठ, ववशाल, नैयजकतक, ववश्वव्यापी, मुकत, अपररशमत, लोकोत्र िै और अपनेअसीम सममव से अपनी प्राकृत सत्ता और कम िको धारण करता पर अपनी मुकत जस्थनत और अनन्त सत्ता से इनके परे रिता िै। िम चािें तो अपनी वतमिान प्राकृत सत्ता में रि सकते िैं और चािें तो अपनी मित्र आममसत्ता में रि सकतेिैं। यिी वि पिला मिान् ्भेद िै जजस पर गीता का कमयिोग प्रनतजष्ठत िै।

क्षर और अक्षर ये दो भेद िैं। जब व्यजकत प्रकृनत से तदामम िोता िै तब वि क्षर पुरुष किलाता िै जजसमें सब बदलता रिता िै। अक्षर भाव में रिने ेपर वि शाश्वत्, ् अमर, ननववकिल्प, ननराकार, ननलेप और असीम िै। अक्षर भाव में कम िनिीं ककया जा सकता। कम िकरने ेके शलए तो क्षर भाव अपनाना िोता िै। इनसे ऊपर का भाव िै पुरुषोर्त्म भाव जो इन दोनों से परे िै और त्रबना बद्ध िुए वि इन दोनों िी भावों में सफलतापूवकि किया कर सकता ै। पुरुषोर्त्म की इच्छानुसार िी सभी कुछ िोता िै। प्रकृनत तो विी करती िै जो वि चािता िै। इसीशलए भगवान् ् किते िैं कक "म ैंिी समस्त यज्ञों का भोकता और प्रभु िूँ"। प्रकृनत तो उनकी सेवक िोती िै जो उनकी प्रसन्नता के ननशमर्त् सभी कुछ की व्यवस्था करती िै। इसशलए क्षर-अक्षर का ववभाग हदखलाकर और इनकी अपनी-अपनी सीशमतता हदखलाकर अंत में गीता इनसे परे जानेका उपदेश करती िै कयोंकक इन दोनों भावों में तो कमयोिग संभव िी निीं िंै चूंकक क्षर भाव में तो व्यजकत प्रकृनत की किया में शलप्त रिता िै और उससे बद्ध रिता िै, और अक्षर भाव में कम िसंभव िी निीं िंै। इसशलए सच्चा कमयोिग तो तभी संभंव िै जब व्यजकत इनसे परे चला जाए। क्षर भाव में सच्चेकम िकरने ेकी समस्या को देखतेिुए िी शंकराचाय िआहद का मत रिा िै कक केवल अज्ञानी जन िी कम िकरते िैं। जो ज्ञानी िै वि तो अक्षर ब्रि की शांनत में जस्थत िो जाता िै और कमों से मुकत िो जाता िै। परंतु गीता इसका समाधान पुरुषोर्त्म तत्त्व का ननरूपण कर के करती िै।

प्रश्न : इस चचाि से यि समझ आता िै कक व्यजकत या तो प्रकृनतबद्ध इस ननमनतर जीवन में शलप्स रि सकता िै या कफर वि चेतना में ऊपर उठकर प्रकृनत से परे मुकततर भाव में भी जा सकता िै जिा ाँवि श्रेष्ठ तरीके से जी सकता िै और सफलतापूवकि कम िकर सकता िै। परंतुइस चयन की िमें व्यजकतगत स्वतंत्रता ककतनी िै कक िम यि चुनाव कर सकें कक इनमें से िमें कौनसा जीवन जीना िै?

उत्तर : यहद व्यजकत अपने-आप को अिं से तदामम करता िै तब तो चयन का कोई अधधकार निींिोता। और यहद व्यजकत अपने-आप को वि समझता िै जो वास्तव में अपने अंतर में वि िै, तब चयन की पूरा स्वतंत्रता िोती िै। यि ववकल्प चुनने का अधधकार वास्तव में जो आप िैं उसे, अथात्ि्आपकी वास्तववक सर्त्ा को िै। अिं को तो यि सर्त्ा केवल अपनेउपयोग में लेती िै। यि सारा ववधान उसी सर्त्ा का िै। विी मन, प्राण और शरीर को धारण करती िै और इनके द्वारा वि अपना जो काम करवाना चािती िै उसी के अनुसार इनमें इच्छाएँ, कामनाएँ, उमपे्रेरणाएँ आहद जैसी आवश्यक िोती िैं वैसी िी पैदा कर देती िै। जब तक उसे लगता िै कक बािरी प्रकृनत से तादाममय आवश्यक िै तब तक वि तादाममय बनाए रखती िै और जब उसे लगता िै कक यि आवश्यक निीं िंै तब वि उससे तादाममय िटा लेती िै। इसशलए व्यजकत अपनेअिं की अपेक्षा जजतना िी अपनी इस सच्ची सर्त्ा से जुिा िोता िै उतना िी उसका मूल्य िै। और जब वि इससे जुिा िोता िै तब वि सभी ननमन प्रभावों से ऊपर उठ जाता िै और मिर्त् ्कम िकर सकता िै। इसके त्रबना तो व्यजकत कुछ कर िी निीं पाता। इस ववषय में योगी श्रीकृष्णपे्रम किते िैं कक, "जजस िद तक िम अपने उच्चतम और अंतरतम 'आममस्वरूप' के द्वारा किया करते िैं, उस िद तक िम मुकत िोतेिैं।

जजस िद तक िम अपने-आप को आममा के साथ तदामम कर देते िैं, उतना िी िम 'उनकी' सृजृष्ट-किया में मुकत रूप से भागीदार िो रि िोतेिैं और तब न कोई बाध्यताएँ रि जाती िैं न कोई सीमाएँ कयोंकक तब िम िी इसमें संकल्प कर रि िोतेिैं या िर िाल में िम िी 'उनके' साथ इच्छा कर रि िोतेिैं।

जजस िद तक िम अपने-आप को शरीर और मन (स्मरण रि, यि भी प्रकृनत िै) से तदामम करते िैं उस दि तक िम बद्ध िैं कयोंकक िम अपने-आप को उन घटनाओं की श्रृंखला से बाधाँ रि िोतेिैं जो कक आममा की अथात् ि'उनकी' और िमारी इच्छा से श्रृंखलागत रूप से घहटत िोती िैं।

तो तुम देखो कक आध्याजममक रूप से पूण िमनुष्य पूणतिः स्वतंत्र िोता िै जबकक जो देिाहद से पूरी तरि से तदामम िोता िै वि पूणतिः 'बद्ध' िोता िै। वास्तववकता में, िालाकाँक, मुझे ेनिीं लगता कक आममा कभी भी दूसूरे (अथात् िज़ि) के साथ पूणतिः एकामम िोती िै। जिाँ तक आममा पर ज़ितत्त्व िावी िोता िै विाँतक वि बद्ध प्रतीत िोती िै और जिा ाँतक ज़ितत्त्व पर आममा का प्रभुमव िोता िै विाँ तक वि मुकत प्रतीत िोता िै। तो मुझे ेनिीं लगता कक ककसी भी मनुष्य में आममा पूण िरूप से अधीन या पूरी तरि से बद्ध िोती िै। सदा िी उसका 'एक अंश' मुकत और अपनी ननज प्रकृनत में बना रिता िै। और यिींसामान्य मनुष्य का प्रवेश िोता िै, वि मनुष्य जो न तो ननरा पशुि और न िी अभी तक अमयधधक ववकशसत आममा िै।

....ववशुद्ध आममा शुद्ध स्वतंत्रता िै परंतु चूँकक ववशुद्ध आममा का अथ िननजष्िय आममा िै तो यि एक अमूत िववषय िै। शुद्ध ज़ितत्त्व ननरा बंधन िै परंतु शुद्ध ज़ितत्त्व जैसी कोई चीज निीं िोती। वि भी एक अमूत ि ववषय िै। अनुभव में सदा िी आममा और ज़ितत्त्व संलग्न रितेिैं इसशलए अनुभव के साथ स्वतंत्रता और बंधन का शमश्रण लगा रिता िै। जो अनुभव से परे िै वि समस्त वगीकरण से परे िै।" (योगी श्रीकृष्णपे्रेम, पृषृठ १७५-७६) इसशलए अब सारा प्रश्न और सारा तरीका यिी िै कक अंतराममा को अपनी वतमिान प्राकृत सत्ा की सीमाओंसे मुकत ककया जाए। िमारे स्वाभाववक जीवन में प्रथम तथ्य जो िम पर िावी रिता िै वि िै ज़ि प्रकृनत के रूपों, पदाथों के बाह्य स्पशों के प्रनत िमारी अधीनता। ये (रूप और स्पश)ि अपनेआप को इजन्रयों के द्वारा िमारे प्राण के समक्ष प्रस्तुत करते िैं, और प्राण तुरंत इजन्रयों के द्वारा इन्िें पकिने ेके शलए और इनसे व्यविार करने ेके शलए दौि पिता िै, इनकी कामना करता िै, इनसे आसकत िोता िै और फल की इच्छा करता िै। अपने सभी आंतररक संवेदनों, सब प्रनतकियाओं, भावावेगों, बोध करने, धचंतंन करनेऔर अनुभव करने के अपने अभ्यस्त तरीकों में सभी में मन इजन्रयों की इसी किया का अनुगमन करता िै; मन के बिकावे में आकर बुद्धध भी अपने-आपको इजन्रयों के इस जीवन को सौंप देती िै, यि जीवन जजसमें आंतररक सत्ा वस्तुओंके बाह्य रूपों में िी फंसी रिती िै और क्षण भर के शलए भी वास्तव में उनसे ऊपर निींउठ सकती या िमारे ऊपर िोने ेवाली इसकी किया के घेरे से अथवा िमारे अन्दर िोनेवाले उसके मनोवैज्ञाननक पररणामों और प्रनतकियाओं के चककर से बािर निीं ननकल सकती। यि उनसे परे निीं ंजा सकती कयोंकक अिंकार का तत्त्व ववद्यमान िै, जजसके द्वारा बुद्धध िमारे मन, इच्छा, इजन्रयसमूि और शरीर पर िोनेवाले प्रकृनत के संपूण िकाय िको अन्यान्य मनों, स्नायववक संघटनों और शरीरों पर िोनेवाले कायों से पृथक् बोध करती िै; और िमारे शलए िमारे जीवन का उतना

ीि अथ िरि जाता िै जजतना िमारे अिकार पर प्रकृनत का असर पिता िै और िमारा अिकार उसके स्पशों का प्रमयुत्र देता िै, इसके शसवाय िम और कुछ निीं ंजानते, िमें लगता िै कक िम और कुछ िैं िी निीं;ं स्वयंआममा भी मानो मन, इच्छा, भावावेगमय और स्नायवीय अशभग्रिण (reception) और प्रनतकिया का िी कोई पृथक् पुंज लगती िै। िम अपनेअिकार को ववशाल बना सकते िैं, अपने-आपका कुल, जानत, वग,ि देश, राष्ट्र, मनुष्यजानत तक के साथ तादाममय स्थावपत कर सकतेिैं; परन्तु कफर भी इन सब छद्मरूपों में अिकार िी िमारे सब कमों की ज़ि बना रिता िै, केवल बाह्य पदाथों के साथ अपनेइन ववस्तृततर व्यविारों के द्वारा उसे अपनी पृथक् सर्ता की एक बृित्र संतुजष्ट प्राप्त िोती िै।

इस जस्थनत में भी िमारे अन्दर प्राकृत सर्ता की इच्छा िी काम करती िै जो अपने व्यजकतमव की ववशभन्न अवस्थाओं को तृपूत करने के शलए िी बाह्य जगत् ्के स्पशों को ग्रिण करती िै, और इस प्रकार ववषयों को ग्रिण करनेवाला संकल्प सदा िी कम िऔर कमफिल के प्रनत कामना, आवेश और आसजकतमय िोता िै; यि िमारी प्रकृनत की िी इच्छा िोती िै; इसे िम अपनी ननजी इच्छा कितेिैं, पर िमारा अिभावापन्न व्यजकतमव तो प्रकृनत की िी एक रचना िै, यि िमारी मुकत आममा, िमारी स्वाधीन सर्ता निीं िै और न िो िी सकता िै। यि सारा प्रकृनत के गुणों का कम िै। यि कम ितामशसक िो सकता िै और तब िमारा व्यजकतमव ज़िवत्,् वस्तुओंकी यांत्रत्रक धारा के वशवती और उसी से संतुष्ट, ककसी अधधक स्वाधीन कम िको और प्रभुमव के ककसी प्रबल प्रयास को करने में सवथिा असमथ िोता िै। अथवा यि कम िराजशसक िो सकता िै और तब िमारा व्यजकतमव अशांत और कियाशील िोता िै, जो अपने-आपको प्रकृनत पर लादना और उससे अपनी आवश्यकताएँ और इच्छाएँ पूरी करवाना चािता िै, पर यि निीं देख पाता कक उसका यि प्रभुमव का आभास भी एक दासमव िी िै, कयोंकक उसकी आवश्यकताएँ वे िी िैं जो प्रकृनत की आवश्यकताएँ और इच्छाएँ िैं, और जब तक िम उनके वश में िैं तब तक िमें मुजकत निीं शमल सकती। अथवा यि कम िसाजत्त्वक िो सकता िै और तब िमारा व्यजकतमव प्रबुद्ध िोता िै, जो बुद्धध के द्वारा अपना जीवन त्रबतानेऔर ककसी शुभ, समय या सुन्दर के अभीष्ट आदश िको प्राप्त करनेका प्रयमन करता िै; पर अब भी यि बुद्धध प्रकृनत के रूपों के िी वश में िोती िै और ये आदश िमारे अपनेिी व्यजकतमव के पररवतनिशील भाव िोते िैं जजनमें अंततोगमवा कोई सुननजश्चत ननयम निींशमलता न कोई स्थायी संतोष िी शमलता िै। यिाँभी िम पररवतनि के पहिये पर िी घूमते रितेिैं और उस शजकत के अधीन रितेिैं जो िमारे अन्दर और इस सबके अन्दर िै और जो अिकार के द्वारा इस तरि चककर लगवाती िै, पर िम स्वयं वि शजकत निीं िोते न उसके साथ िमारा योग या मेल िी िोता िै। यिाँभी कोई मुकतावस्था या यथाथ िप्रभुमव निीं ंिोता।

कफर भी मुकतावस्था संभव िै। उसके शलए पिले िमें अपनी इजन्द्रयों पर िोनेवाली बाह्य संसार की कियाओं से अलग िटकर अपने-आप में आना िोगा; अथाित् ्िमें अंतमुखि िोकर रिना िोगा और इजन्द्रयाँ जो अपने बाह्य ववषयों की ओर स्वभावतः दौिी रिती िैं, उन्िेंरोकेरखनेमें समथ िोना िोगा। इजन्द्रयों को अपनेवश में रखना और इजन्द्रयाँजजन चीजों के शलए तरसा करती िैं उनके त्रबना सुखपूवकि रिनेमें समथ िोना, सच्चे े आध्याजममक जीवन की पिली शत िै; जब ऐसा िो जाता िै केवल तभी िम यि अनुभव करने ेलगते िैं कक िमारे अन्दर कोई आममा िै जो बाह्य स्पशों से उमपन्न िोनेवाले मन के ववकारों से सवथिा शभन्न वस्तु िै, वि आममा जो

अपनी गंभीरतर सर्त्ा में स्वयंभू, अक्षर, शांत, आममवान्, ् भव्य, जस्थर, गंभीर और मिान् ्िै, स्वयं िी अपना प्रभु िै और बाह्य प्रकृनत की व्यग्रता भरी दौि-धूप से सवथिा अशलप्त िै। परन्तु यि तब तक निीं िो सकता जब तक िम कामना के वश में िैं। कयोंकक िमारे समस्त बाह्य जीवन का मूल तत्त्व यि कामना िी िै जो अपनेआप को इजन्द्रयगत जीवन से तुष्ट करती िै और आवेगों (षडिपुओं) की िलचल में िी अपना पूरा लेखा-जोखा पाती िै।

प्राण का यि प्रभाव मन और शरीर दोनों में प्रवेश करता िै और इसके प्रभाव से कदाधचत् ्िी कोई बच पाता िै। प्राण के आवेगों में जब व्यजकत फाँस जाता िै तब उसकी कामनाएँ और अधधक ववशाल रूप ले लेती िैं जजसके प्रभाव से व्यजकत में गरीबों की सेवा, दुननया में अपना नाम कमाने आहद की बड़ी भारी मित्त्वाकांक्षाएँ उमपन्न िो जाती िैं। और सामान्यतया ऐसे व्यजकतयों को मिान् ्की संज्ञा दे दी जाती िै जो दुननया में कोई अनतववशाल कम िकरते िैं। परंतु कामना के वशीभूत िोकर कम िकरनेमें और भागवत् ्संकल्प की अशभव्यजकत के शलए कम िकरनेमें भारी अंतर िोता िै। इसशलए िम श्रीरामकृष्णजी की तुलना ककसी ऐसे व्यजकतमव से निीं ंकर सकतेजजसने कामना के वशीभूत िो मित् ्काय िशसद्ध ककये िों। और यि कामना व्यजकत के सभी भागों में प्रवेश कर के उनमें अपना प्रभाव छोि देती िै।

इसशलए िमें कामना से छुटकारा पाना िोगा, और प्राकृत सर्त्ा की इस प्रववृर्त् के नष्ट िोने पर िमारे मनोववकार, जो कामना के भावावेगमय पररणाम िोतेिैं, अपने-आप िी शान्त िो जाएँगे; कयोंकक लाभ और िानन से, सफलता और असफलता से, वप्रय और अवप्रय स्पशों से जो सुख-दुःख िुआ करते िैं, जो इन मनोववकारों का समकार करते िैं, िमारी आममाओं में से ननकल जाएँगे। तब एक प्रशान्त समता प्राप्त िोगी। और चूँकक िमें अब भी इस जगत् ्में रिना और कम िकरना िोता िै और िमारा स्वभाव कम िके फल की आकांक्षा करने ेवाला िै, अतः िमें इस स्वभाव को बदलना िोगा और फल की आसजकत को छोि कर कम िकरना िोगा, अन्यथा कामना और उसके सारे पररणाम पूववित् ्बनेरिेंगे। परन्तुिममें कम िके कर्त्ाि का जो स्वभाव िै उसे िम कैसे बदल सकते िैं? कमों को अिंकार और व्यजकतमव से अलग कर के, वववेक-बुद्धध से यि देखकर कक यि सब कुछ केवल प्रकृनत के गुणों का िी खेल िै, और अपनी आममा को इस खेल से ववलग कर के, सबसे पिले उसे प्रकृनत के कमों की साक्षी बना के तथा उन कायों को उस शजकत के भरोसे छोिकर जो वास्तव में उनके पीछे िै; यि शजकत प्रकृनत के अन्दर रिनेवाली ऐसी कोई चीज िै जो िमसे मित्र िै, यि िमारा व्यजकतमव निीं ंअवपतु ुवि शजकत िै जो ववश्व की स्वाशमनी िै। परन्तु मन इस सब की अनुमनत निीं ंदेता; कयोंकक उसका स्वभाव इजन्द्रयों के पीछे भागना और बुद्धध और इच्छाशजकत को अपनेसाथ घसीट ले जाना िै। इसशलए िमें मन को जस्थर करना सीखना िोगा। िमें वि ननरपेक्ष शाजन्त और जस्थरता प्राप्त करनी िोगी जजसमें पिुँच कर िम उस अंतःजस्थत जस्थर, अचल, आनन्दमय आममा को जान सकें जो सदा बाह्य पदाथों के स्पशों से अप्रभाववत, अक्षुब्ध रिती िै, जो अपने-आप में पूण िरिती िै और विंअपनी शाश्वत पररतृजप्त लाभ करती िै...।

प्रश्न : कामना का मूल कारण कया िै?

उत्तर : जैसे िी अिंकार आता िै वैसे िी एक पृथक् अजस्तमव का बोध आ जाता िै। और एक पृथक् अजस्तमव िोतिी व्यजकत को स्वयंको सुरक्षक्षत बनाए रखनेका, चीजों को िस्तगत करनेका, अपने से पृथक् सर्ता के साथ व्यविार का बोध उमपन्न िो जाता िै। वास्तव में तो सभी कुछ एक िी िै इसशलए पृथकता का बोध आते िी अपूणतिा का बोध भी आ जाता िै। और इस अपूणतिा को पूरा करने के शलए कामना आ जाती िै। त्रबना कामना के ज़ि-तत्त्व में जीवन ववकशसत िी निीं ंिो सकता था। यहद पशुओंमें कोई कामना न िो तो वे कोई किया िी निीं ं करेंगे। इसशलए भय और कामना इन दो चीजों को प्रकृनत में रोवपत ककया गया। परंतुये िी चीजें जो ववकास की प्रकिया में ककसी समय आवश्यक थीं, उनकी उपयोधगता खमम िोने पर अवरोध भी बन जाती िैं। इसशलए जो चीज वतमिान में िमारी सियक िै विी कालांतर में िमारे शलए बाधक भी बन सकती िै। गीता भी अपनी सारी शशक्षा को इस ओर ववकशसत कर रिी िै कक साधक सभी कुछ में से िोकर सभी धमों को मयाग देनेकी जस्थनत तक आ जाए। परंतु अक्षर पुरुष के संपकि में आने की जो बात गीता कि रिी िै वि एक बिुत िी मित्त्वपूण िकदम िै। परंतु इससे पाधथवि अशभव्यजकत में कोई ववशेषे लाभ निीं िोता। इससे तो व्यजकत केवल ननमन प्रकृनत के प्रभाव से कुछ सुरक्षक्षत बना रि सकता िै। परंतु इस जस्थनत में कोई वास्तववक प्रभुमव निींिै। उसके शलए तो पुरुषोर्तम भाव में िी जाना िोगा। यिी गीता का रिस्य िै।

जब यि आममा िमारे अंदर प्रकाशशत िोती िै, जब िमें इसकी शाजन्त और नीरवता का अनुभव िोता िै, तब िम इसमें संवद्धिधत िो सकतिैं; प्रकृनत में ननमजज्जत ननमनतर अवस्था में िमारे अंत:पुरुष की जस्थनत को स्थानांतररत कर िम उसे आममा में पुनः प्रनतजष्ठत कर सकतिैं। िम ऐसा उन वस्तुओंकी शजकत से कर सकतिैं जो िमें प्राप्त िुई िैं- जस्थरता, समता, ननववकिार नैव्यजिकतकता। कयोंकक ज्यों-ज्यों िम इन चीजों में ववकशसत िोते िैं, उन्िें अपनी पूणतिा तक पिुँचाते िैं और अपनी सारी प्रकृनत को इनके अधीन कर देते िैं, मयों-मयों िम इस जस्थर, सम, ननववकिार, नैयजकतक, सवव्यिापक आममा के स्वरूप में ववकशसत िोते जाते िैं। िमारी इजन्रयाँ उसी नीरवता में जा पिुँचती िैं और जगत् ्के स्पशों को परम् ्प्रशाजन्त के साथ ग्रिण करती िैं: और िमारा मन उसी नीरवता को प्राप्त िोकर शान्त, ववराट् साक्षी बन जाता िै: और िमारा अिंकार इसी नैयजकतक सर्ता में ववलीन िो जाता िै। तब मि सभी चीजें उसी आममा में देखतिैं जो कक िम अपने आप में बन चुके िोते िैं; और िम सबमें इस आममा को देखतिैं; िम सब भूतों के साथ उनको आममसर्ता में एकीभूत िो जाते िैं। इस अिंभावशून्य शाजन्त और नैयजकतकता में रिते िुए िम जो कम िकरते िैं वे िमारे अपनेकम िनिीं रि जाते, वे अब अपनी प्रनतकियाओं से िमें ककसी भी प्रकार से न तो बाधाँ सकतिैं न कोई पीिा िी पिुँचा सकते िैं। प्रकृनत और उसके गुण अब भी अपनेकम ि का जाल बुना करते िैं, पर उनसे िमारी दु:ख-रहित स्वतःशसद्ध शाजन्त भंग निीं ंिोती। सब कुछ उसी एक सम ववराट् ब्रि में समवपति िोता िै।

यिा ाँयि एक वणनि िै और कुछ-एक व्यजकत इस माग िसे जा सकते िैं। परंतु ये सभी जस्थनतयाँ मनोवैज्ञाननक रूप से या कफर आममपरक रूप से तो संभव िैं परंतु जब तक अचेतन और ननश्चेतन स्तरों का रूपांतर निीं िो जाता, तब तक व्याविाररक रूप से ये संभव निीं िैं। जैसा कक गीता में 'जजतः सग:ि' आहद अवस्थाओं का वणनि आता िै कक ऐसा योगी संसार को जीत लेता िै या कफर वि ननववकिल्प समाधध अवस्था में

चला जाता ि◌ै जिा ◌ाँये ननमन प्रभाव ववचशलत निीं करते, परंतुयि तो बिुत ि◌ी अधधक श्रम कर के सभी चीजों का ननषेध कर के प्राप्त की गई जस्थनतयााँ ि◌ैं। इनमें प्रकृनत पर प्रभुमव स्थावपत करने की भव्यता निीं ि◌ोती। सिज रूप से प्रकृनत पर पूण ि◌प्रभुमव की तो बात ि◌ी अलग ि◌ै। इसी त्रबंदुं ◌ुको श्रीअरववन्द अब सामने लाएाँगे।

परन्तु यिा ◌ाँदो कहठनाइयााँिैंि◌। एक यि कक इस शान्त अक्षर आममा और प्रकृनत के कम ि◌में एक अंतववरोध प्रतीत ि◌ोता ि◌ै...। प्रकृनत कोई पृथक् सर्ता निीं अवपतु ◌ुपरमेश्वर की ि◌ी शजकत ि◌ै जो ववश्वरचना में प्रवृर्त ि◌ोती ि◌ै। परन्तु परमेश्वर यहद केवल यिी अक्षर पुरुष ि◌ैं और व्यजष्ट-पुरुष केवल कोई ऐसी चीज ि◌ै जो उसमें से ननकलकर उस शजकत के साथ इस सृजष्ट में आया ि◌ै, तो जजस क्षण व्यजष्ट-पुरुष लौटकर आममा में जस्थत ि◌ोगा उसी क्षण सारी सृजष्टकिया बन्द ि◌ो जायेगी, और पीछे छिोंगी केवल परम् ◌्एकता और परम् ◌्ननस्तब्धता। दूसूरे, यहद अब भी ककसी अधचंमंय रूप से कम ि◌जारी रिें तो भी आममा जब सब पदाथों के शलए सम ि◌ै तब कम िोंि◌ों या न ि◌ों और ि◌ों तो चािे जैसे ि◌ों, इसका कोई मित्त्व निीं। ऐसी अवस्था में यि भयंकर और सवनिाशी प्रकार का कम ि◌कयों, यि रथ, यि युद्ध, यि योद्धा, यि हदव्य सारथी ककसशलए?

भगवान् ◌्अजुनि को अक्षर ब्रह्म में जाने का उपदेश करते ि◌ैं। परंतु यहद कमों के ि◌ोने ◌ेया निीं ◌ंि◌ोने का कोई फकि निीं पिता और जब व्यजकत ननशलप्ति ि◌ोकर अक्षर ब्रह्म की जस्थनत में पिुाँच जाता ि◌ै और उसका कमों से कोई लेना-देना ि◌ी निीं ◌ंरिता तब कफर अजुनि को ककसी छोटे-मोटे कम ि◌में ि◌ी निीं ◌ंबजल्क इस घोर युद्ध कम ि◌में ननयोजजत करना तो असंगत बात ि◌ोती। इसशलए गीता इस समस्या को लेकर यिीं निीं रुक सकती।

गीता इसका उर्त्र यि बतलाकर देती ि◌ै कक परमेश्वर अक्षर पुरुष से भी मिान् ◌्ि◌ैं, अधधक व्यापक ि◌ैं, वे साथ-साथ यि पुरुष भी ि◌ैं और प्रकृनत में ि◌ोनेवाले कम ि◌के अधीश्वर भी। परन्तु वे अक्षर ब्रह्म की सनातनी शांनत, समता, कम ि◌और व्यजष्टभाव में जस्थत रिते ि◌ुए प्रकृनत के कमों का संचालन करते ि◌ैं। ि◌म कि सकते ि◌ैं कक यिी उनकी सर्ता की वि जस्थनत ि◌ै, जजसमें से वे ◌ेकम ि◌संचालन करते ि◌ैं, और जैसे-जैसे ि◌म इस जस्थनत में संवद्धिधत ि◌ोते िैं वैसे-वैसे ि◌म उन्िीं ि◌ंकी सर्ता और हदव्य कमों की जस्थनत को प्राप्त ि◌ोते ि◌ैं। इसी जस्थनत से वे अपनी सर्ता की प्रकृनतगत इच्छा और शजकत के रूप में ननकल आते ि◌ैं, अपने-आपको सब भूतों में प्रकट करते ि◌ैं, जगत् ◌्में मनुष्यरूप में जन्म लेते ि◌ैं, सब मनुष्यों के हृदयों में ननवास करते ि◌ैं, अवताररूप से अपने-आपको अशभव्यकत करते ि◌ैं (यिी मनुष्य के अन्दर उनका हदव्य जन्म ि◌ै); और मनुष्य ज्यों-ज्यों उनकी सर्ता में संवद्धिधत ि◌ोता ि◌ै, मयों-मयों वि भी इस हदव्य जन्म को प्राप्त ि◌ोता ि◌ै। इन्िींप्रभु के शलये जो ि◌मारे कमों के अधीश्वर ि◌ैं, यज्ञ के तौर पर कम ि◌करनेिोंगे और अपने-आपको आममस्वरूप में उन्नत करते ि◌ुए ि◌में अपनी सर्ता में उनके साथ एकमव लाभ करना ि◌ोगा और अपने व्यजष्टभाव को इस तरि देखना ि◌ोगा कक यि उन्िींका प्रकृनत में आंशशक प्राकट्य ि◌ै। सर्ता में उनके साथ ऐकय लाभ करने से ि◌म जगत् ◌्के सब प्राखणयों के साथ एक ि◌ो जाते ि◌ैं और हदव्य कम ि◌करने लगते ि◌ैं, अपने कम ि◌के तौर पर निीं ◌ंअवपतु लोक संरक्षण और लोकसंग्रि के शलये ि◌मारे द्वारा ि◌ोनेवाली उन्िीं ि◌ंकी किया के तौर पर।

इसशलए कमों की समस्या का समाधान गीता पुरुषोर्त्म तत्त्व के द्वारा करती ि‍ै जजन्ि‍ें किक ककसी व्यजकतगत लाभ की कोई आवश्यकता निीं परंतु कफर भी लोकसंग्रि के शलए वे कमों में रत रिते ि‍ैं। और व्यजकत ज्यों-ज्यों इस जस्थनत की ओर अग्रसर ि‍ोता ि‍ै मयों-मयों वि हदव्य रूप से कम ि‍ करने लगता ि‍ै। तब सारे संसार पर

उसका सिज अधधकार ि‍ो जाता ि‍ै कयोंकक वि प्रभु की चेतना में रिते ि‍ुए किया करता ि‍ै। यिी करने योग्य मूलभूत चीज ि‍ै और एक बार इसे संपन्न करते ि‍ी अजुनि के समक्ष प्रस्तुत ि‍ोने ‍ेवाली सब कहठनाइयााँ लुप्त ि‍ो जाएँगी। प्रश्न तब ि‍मारे वैयजकतक कम ि‍का निीं रि जाता, कयोंकक ि‍मारा व्यजकतमव जजससे बनता ि‍ै वि तो केवल इस लौकिकक जीवन से संबंध रखनेवाली और इसशलए गौण चीज रि जाती ि‍ै, तब कफर जगत् ‍्में ि‍मारे द्वारा भगवहदच्छा के कायाजिन्वत ि‍ोनेका प्रश्न ि‍ी रि जाता ि‍ै। उसे समझने के शलए यि जानना ि‍ोगा कक ये परमेश्वर स्वयंकया ि‍ैं और प्रकृनत के अन्दर इनका कया स्वरूप ि‍ै, प्रकृनत की कमपिरंपरा कया ि‍ै और उसका लक्ष्य कया ि‍ै और प्रकृनतस्थ पुरुष और इन परमेश्वर के बीच आंतररक संबंध कैसा ि‍ै, इसे समझने ‍े के शलए ज्ञानयुकत भजकत ि‍ी आधार ि‍ै। इन्िीं बातों का स्पष्टीकरण गीता के शेषे अध्यायों का ववषय ि‍ै।

इस प्रकार छठा अध्याय 'आत्रसंयर्योग' सर्ाप्त होता है।

सातवााँ अध्याय

I. दो प्रकृनतया ‍ाँ

गीता के प्रथम छः अध्याय एक प्रकार से इसकी शशक्षा का मानो एक प्रारजमभक खण्ि तैयार करते ि‍ैं; शेषे सभी बचेबारि अध्याय इस खण्ि में आए अधूरे तत्त्वों का ि‍ी ववशद ननरूपण ि‍ैं, जो तत्त्व इस प्रथम खण्ि में मूलभावों के पीछे केवल संकेत रूप से ि‍ी आए ि‍ैं परंतुअपने-आप में अमयंत मित्त्व के ि‍ैं अतः इन्िें बाकी के दो

षटकों में ववशद ननरूपण के शलए रख छोड़ा गया ि।ै... इसमें बिुत-सी ऐसी बातें िैं जजन्िें जो आगे आएगा उसके द्वारा िाले गए प्रकाश की सिायता के त्रबना ठीक तरि निीं समझा जा सकता...

स्वयंअजुनि िी, यहद श्रीगुरु अपना उपदेश यिीं ंसमाप्त कर देते तो, यि आपवत्त् कर सकता था कक: "आपने कामना और आसजकत के नाश, सममव, इजन्द्रयों पर ववजय और मन को शांत जस्थर करने, ननष्काम और ननरिंकार कमों, कमों के यज्ञ, बाह्य संन्यास से आंतर संन्यास के श्रेष्ठमव के बारे में बिुत कुछ किा, और इन सब बातों को म ैंबौद्धधक रूप से तो समझता िूूँ, भले िी ये आचरण में लानेमें मुझे ेककतनी भी कहठन प्रतीत कयों न िोती िों, परन्तु आपनेव्यजकत के कम िमें रत रिते िुए भी गुणों से ऊपर उठनेकी बात भी किी िै, और मुझे ेयि निीं ंबताया कक गुण कैसे काय िकरते िैं, और जब तक म ैंयि निीं ंजान लेता, तब तक गुणों का पता लगाना और उनसे ऊपर उठना मेरे शलए कहठन िोगा। इसके अनतररकत आपने भजकत को योग के प्रधानतम अंग के रूप में बताया िै, कफर भी आपनेकम िऔर ज्ञान के बारे में तो बिुत कुछ किा िै, पर भजकत के बारे में कुछ भी निीं ंकिा और किा भी िै तो बिुत थोड़ा। और, कफर यि भजकत, जो सबसे मित् ्चीज िै, ककसे अपिण की जानी िै? अवश्य िी शान्त ननगुिण ब्रह्म को निीं,ं अवपतु आप ईश्वर को। इसशलए अब आप मुझे ेयि बताइए कक आप कया िैं, कौन िैं, कयोंकक जैसे भजकत आममज्ञान से भी मित्र िै वैसे िी आप उस अक्षर ब्रह्म से बड़े िैं जो क्षर प्रकृनत और कममिय संसार से उसी तरि बड़ा िै जैसे ज्ञान कम िसे बड़ा िै। इन तीनों चीजों में परस्पर कया संबंध िै? कम,ि ज्ञान और भगवत् ्प्रेम में परस्पर कया संबंध िै? प्रकृनतस्थ पुरुष, अक्षर पुरुष और वि जो सबके अव्यय आममा िोने ेके साथ-साथ समस्त ज्ञान, भजकत और कम िके प्रभु, परमेश्वर िैं, जो यिा ंूँइस मिायुद्ध और भीषण रकतपात में मेरे साथ िैं, इस घोर भयानक कम िके रथ में मेरे सारथी िैं, इन तीनों में परस्पर कया संबंध िै?" इन्िीं प्रश्नों का उत्र देने के शलए शेषे गीता शलखी गई िै, और समस्या के एक पूण िबौद्धधक समाधान में इन सभी को अववलंब लेकर िल करना िोगा। परंतु वास्तववक साधना के क्षेत्र में व्यजकत को िमशः िी आगे बढ़ना िोता िै और बिुत-सी बातों को, यिा ंूँतक कक बड़ी-से-बड़ी बातों को भी समय आने ेपर अपने-आप उठने और आध्याजममक अनुभव से अपने-आप िी सुलझनेके शलए छोड़ ेरखना पड़ता िै। एक िद तक गीता अनुभव की इस रेखा का अनुसरण करती िै और पिले कम िऔर ज्ञान का एक प्रकार का एक ववशाल प्राथशमक आधार ननशमति करती िै जजसमें एक ऐसा तत्त्व ननहित िै जो भजकत तक और मित्र ज्ञान की ओर ले जाता िै, परंतु अभी गीता विाूँ तक पिुूँचती निीं ंिै। प्रथम छः अध्याय मेंिं यिी आधार प्रस्तुत करते िैं।...

अधधकांश टीकाकार गीता के छठे अध्याय तक आते-आते इसकी शशक्षा की इनतश्री घोवषत कर देते िैं। परन्तु श्रीअरववन्द किते िैं कक प्रथम छः अध्यायों में तो गीता की शशक्षा के तत्त्व केवल संकेत रूप से िी आए िैं जजनका ववशद ननरूपण तो अभी ककया जाना बाकी िै। पिले छः अध्यायों में तो गीता अपनी शशक्षा का एक ववशाल प्राथशमक आधार ननशमति करती िै। सात से बारि तक के अगले छः अध्याय बिुत िी मित्त्वपूण िैं कयोंकक इनमें भजकत तत्त्व का तथा पूण िभगवत्ता का ननरूपण िोगा। िालाकाँक इन अध्यायों में पुरुषोत्म तत्त्व का स्पष्ट ननरूपण तो निीं िुआ िै परंतु कफर भी ववश्वरूप दशनि के बाद अजुनि भगवान् ्के स्वरूप का वणनि करते िुए 'मवमाहददेवः पुरुषः पुराणः' आहद संज्ञाओं से उनका स्तवन करता िै। यहद आम टीकाकारों के मतानुसार पिले छः

अध्याय िी गीता की संपूण िशशक्षा का सार िों तब तो सच्चे कम िआहद की गुजमथयों को सुलझाना तथा अन्य गंभीरतर रिस्यों को उद्घाहटत करना तो बाकी िी रि जाता िै। पुरुषोत्म तत्त्व का ननरूपण िुए त्रबना तो कम िका कोई आधार िी निीं रि जाता कयोंकक क्षर भाव में सच्चे कम िसंभव निीं िैं, और अक्षर भाव में तो कम ििी संभव निीं ंिैं। तब कफर ननष्काम कम ितथा हदव्य कम िकी बात तो एक ऐसी असंगत बात िुई जजसका गीता उपदेश तो करती िै परंतुजो व्यविार में संभव निीं ंिै। वैसे िी, त्रबना पुरुषोत्म तत्त्व का ननरूपण िुए भजकत का भी कोई अथ ि निीं ंननकलता और भजकत का ननरूपण िुए त्रबना न तो ज्ञान िी अपनी सच्ची पररणनत पाता िै और न िी कमों का कोई सच्चा आधार प्राप्त िोता िै। इसशलए आगे आने वाले अध्यायों के त्रबना गीता के पिले छः अध्यायों में ननहित संकेतों का स्पष्टीकरण निीं ंिोता।

इन्िीं तत्त्वों का अब ननरूपण करते िुए सबसे पिले मित्त्वपूण िप्रश्न यि उठता िै कक कया गुणों से परे िकिर कोई कम िसंभव िैं, कयोंकक ननमन प्रकृनत में तो सभी कम ित्रत्रगुणमय िोते िैं और जब तक ये गुण प्रभावी िितें तब तक सच्चा कम िनिींि सकता। अब चूंकक प्रकृनत िी कियाशजकत िै और उसके त्रबना कोई काय ििो िी निीं ंसकता तो कया कोई उच्चतर प्रकृनत भी िै जजसकी किया गुणों से परे िो कयोंकक यहद उच्चतर प्रकृनत न िो तब तो अवतारों की किया भी प्रकृनत के गुणों के अधीन िी िुई, और ऐसे में तो हदव्य कम िआहद की बातें तो त्रबल्कुल बेतुकी और अतकिसममत िुईं जजनमें अपनेआप में िी ववरोधाभास िै। इसीशलए गीता दो प्रकृनतयों के बीच के भेद को प्रकट करती िै जजसके ननरूपण से िी कम िकी गुमथी सुलझ सकती िै। सात से बारि तक के अध्याय भगवान् ्की हदव्य प्रकृनत, जगदंबा के स्वरूप का िी ननरूपण िै। उसी के शलए योग िै, उसी के शलए भजकत िै, विी सभी कुछ का आधार िै। ववश्वरूप-दशनि भी भगवान् ्की हदव्य प्रकृनत का िी दशनि िै कयोंकक अपनेआप में पुरुष का तो दशनि िोता निीं, वि तो एक भाव िै। दशनि तो भगवान् ्की कियाशजकत का िी िोता िै।

सातवें से बारिवें तक के अध्याय हदव्य पुरुष की प्रकृनत का एक व्यापक ताजत्त्वक ननरूपण प्रस्तुत करते िे िैं और उसके आधार पर ज्ञान और भजकत को घननष्ठ रूप से ठीक उसी प्रकार संबद्ध और समजन्वत करते िैं जैसे कक गीता के प्रथम षटक् ने कम िऔर ज्ञान को जोड़ा और समजन्वत ककया था। ववश्वपुरुष-दशनि, जो कक बीच में ग्यारिवें अध्याय में आया िै, इस समन्वय को एक शजकतशाली रूप प्रदान करता िै और इसे कम िऔर जीवन के साथ स्पष्ट रूप से जोड़ देता िै। इस प्रकार सब चीजें कफर से प्रभावशाली रूप से अजुनि के मूल प्रश्न पर लायी जाती िैं जजसके चारों ओर यि व्याख्या घूमती व अपना चि पूरा करती िै। बाद में गीता प्रकृनत और पुरुष का भेद समझाकर गुणों के काय िऔर त्रत्रगुणातीतता या ननखैगुण्य की अवस्था के बारे में तथा ननष्काम कमों की उस ज्ञान में पररसमाजप्त, जिा ाँवि भजकत के साथ एक िो जाता िै, के बारे में अपनेशसद्धान्त को स्पष्ट करती िै। इस प्रकार ज्ञान, कम िऔर भजकत में एकता साधधत कर गीता उस परम् ्वचन की ओर मुड़ती िै जो सब भूतों के मिान् ् ईश्वर के प्रनत आममसमपणि के संबंध में उसका परम् ्रिस्य िै।

'प्रतीत िोता िै कक यिााँ िम कुछ अधधक स्पष्टतर क्षेत्र में आ गए िैं, और एक घनीभूत और अधधक सटीक अशभव्यजकत मिारी पकि में आ रिी िै। परन्तु इस घनीभूतता के कारण िी िमें बराबर सावधानी के साथ आगे बढ़ना िोगा जजससे कक कोई त्रुहट न िो जाए, और किींमि वास्तववक अथ िको चूक न जाए।ाँ कयोंकक, यिााँ िम मनोवैज्ञाननक और आध्याजममक अनुभूनत

की सुरक्षक्षत भूशम पर जस्थत िोकर निीं चल रिे िैं, अवपतुयिााँ िमें आध्याजममक और प्रायः ववश्वातीत समय के बौद्धधक ववववरणों सेव्यविार करना िोता िै। ताजत्त्वक प्रनतपादन में सदा िी यि आशंका और अननजश्चतता बनी रिती िै कक यि उस चीज को िमारी बुद्धध के समक्ष पररभावषत या ननरूवपत करनेका प्रयास िै जो वास्तव में असीम िै; यि एक ऐसा प्रयास िै जो करना तो पड़ता िै पर जो कभी भी सवथिा संतीषजनक, सवथिा ननणायिक या आखखरी निीं िो सकता। परम् आध्याजममक

समय को जीया जा सकता िै, उसका दशनि ककया जा सकता िै, परंतु उसका वणनि केवल अंशतः िी िो सकता िै।

उपननषदों

की गंभीरतर ननरूपण पद्धनत और भाषा िी जजसमें रूपक और प्रतीक का मुकुत प्रयोग िै, जजसमें भाषा की अंतज्ञानिाममक शैली के प्रयोग के कारण बौद्धधक अशभव्यजकत की कठोर और सीशमत कर देनेवाली ननजश्चतता का बंधंन तोड़ हदया गया िै और शब्दों के गशभति अथों को संकेतों की अबाध तरंग में बि ननकलनेहदया गया 3 - 37 (गंभीरतर आध्याजममक) क्षेत्रों में एकमात्र उधचत ननरूपण पद्धनत और भाषा िोती िै। परन्तुगीता इस ननरूपण शैली का सिारा निीं ले सकती कयोंकक इसे बौद्धधक समस्या के समाधान के शलए रचा गया िै, यि मन की एक ऐसी जस्थनत को उत्तर देती िै या उसेसंतुंष्ट करती िै जजसमें तकि-बुद्धध, जो कक ऐसी न्यायकता िै जजसके समक्ष िम अपने आवेगों और भावों की कलिों को समाधान िेतु प्रस्तुत करतें, स्वयं ंअपने आप के साथ संघषरित िै और ककसी समाधान पर पिुाँचनेमें असमथ िै। तकि-बुद्धध को एक ऐसेसमय की ओर ले जाना िै जो उसके परे िै, परंतु उसे विा ाँतक उसी के अपने साधन और अपनी िी रीनत से ले जाना िै। तकि-बुद्धध के

सामने आममानुभव का यहद कोई ऐसा समाधान रखा जाए जजसके तथ्यों के ववषय में उसे स्वयं ंकुछ भी अनुभव न िो तो उसकी समस्या का समाधान ... ननरूपण करके उसे सन्तुष्ट न कर हदया जाए।

गीता के इस तृतीय खण्ड में िम ननरूपण की शैली को अबूलक की शैली की अपेक्षा अधधक सौद्धक्षप्त' और सरल पाते िैं।

यि पादहटप्पणी बिुत िी मित्त्वपूण िै और इसमें ननहित समय बिुत िी गूढ़ िै। इससे िमें इस बात का रिस्य पता चलता िै कक िमारे प्राचीन ऋवषयों ने वेदों और उपननषदों की अशभव्यजकत रूपकों और प्रतीकों के माध्यम से कयों की? ऐसा निीं ंथा कक उनमें स्पष्ट बौद्धधक अशभव्यजकत की क्षमता निीं ंथी, और न िी ऐसा था कक वे जानबूझकर उस समय को नछपाना चािते रिे िों। परंतुबात यि िै कक उस समय को ककसी अन्य तरीके से प्रकट ककया जा िी निींसकता। और यहद उन समयों का बौद्धधक ननरूपण ककया जाए तो, पिले तो, उन समयों का सवागीण स्वरूप िी नष्ट िो जाएगा और, दूसूरे, उनका भयंकर रूप से गलत अथ िलगाये जानेऔर उनका दुरुपयोग िोने ेकी आशंका बन जाती िै। परंतु चूंकक अजुनि के प्रश्न मानशसक धरातल से िी उठ रिे िैं इसशलए उनके उत्तर मानशसक स्तर पर िी हदये जा सकतें। अपनेवतमिान गठन के अनुसार अजुनि से बौद्धधक स्तर से ऊपर उठने की आशा निींकी जा सकती और गिन आध्याजममक अशभव्यजकत के शलए अभी वि तैयार िी निीं ंिै। परंतु जजन मूलभूत प्रश्नों को अजुनि उठाता िै उनका समाधान बौद्धधक स्तर पर संभव निीं ंिै। उनके समाधान के शलए जजस स्तर के समयों की अशभव्यजकत की आवश्यकता िै उन्िें बौद्धधक स्तर पर लानेमें अपने खतरे ननहित

ीं। परंतु गीता को तो इसी धरातल पर उन प्रश्नों के उत्र देनीेंगे कयोंकक यहद वि उन प्रश्नों को उन्ीं की भाषा में उत्र न दे तो उसकी प्रासंधगकता ि ी निीं ्रिेगी। पिले छः अध्यायों में गीता जजन मनोवैज्ञाननक समयों के ववषय में चचािकर रिी थी उन्ें िम कुछ िद तक तो अवश्य ि ी मिसूस कर सकते िैं परंतु जजन ववषयों में गीता अब प्रवेश करने ेजा रिी िै वे तो बिुत ि ी गिन आध्याजममक और ववश्वातीत समय िैं। परंतुबौद्धधक रूप से ननरूपण करने के कारण िम उन्ें सामान्य और सिज मान बैठनेकी भूल कर सकते िैं और अधधकांशतः लोग ऐसा करते ि ी िैं जबकक वास्तव में तो वे अमयंत गूढ़ समय िोतेिैं। बौद्धधक भाषा में अब जो समय प्रकट ककये जाएँगे वे अंतःप्रकाशमय (revelatory) समय िैं जो कक सामान्य अनुभूनत से परे िैं। अंतःप्रकाशमय समयों को अपनी प्रामाखणकता के शलए अनुभव की आवश्यकता निींिोती। यहद अनुभव उन्ें शसद्ध निीं ्करता तो अनुभव को संहदग्ध या अप्रामाखणक माना जाता िै न कक उन अंतःप्रकाशमय समयों को। इस ववषय पर अधधक प्रकाश िालने के शलए िम श्रीअरववन्द के वेद ववषयक लेख के ि ी कुछ अंश को यिाँ प्रस्तुत करते िैं। वे शलखतेिैं, "साधारणतया आधुननक युजकतपूण िमन द्वारा, जो स्वयंअनुमान की ताजत्त्वक पद्धनत द्वारा या ननरीक्षण की वैज्ञाननक पद्धनत द्वारा अपनेबौद्धधक ननष्कषों तक पिुँचने ेका अभ्यस्त िै, ऐसा माना जाता िै कक उपननषदों के उमकृष्ट सामान्य ववचार, जो देखनेमें ताजत्त्वक प्रकृनत के प्रतीत िोते िैं, अवश्य ि ी सकिय ताजत्त्वक अनुमानों का पररणाम रिे िैं जो कक वेदों की आहदम रूप से कल्पनाममक तथा संवेदनाममक धाशमकि धारणाओं को उन्नत एवं बौद्धधक बनानेके प्रयास से उमपन्न िुए थे। म ैंइस मत को एक ऐसी भ्ाजन्त मानता िूँ जो िमारी वतमिान मानशसक प्रणाशलयों को वैहदक ऋवषयों की सवथिा शभन्न मानशसकता में आरोवपत करके समझने के प्रयास के कारण उमपन्न िोती िै। प्राचीन जगत् ्की उच्चतर मानशसक प्रणाशलयाँ बौद्धधक निीं ्अवपतु अंतबोधाममक थीं। वे अमयंत देदीप्यमान, अमयंत प्रभावशाली, अमयंत अस्पष्ट आंतररक कियाएँ ि ी िमारे ज्ञान के ववशालतम और सशकततम स्रोत िैं परंतु ताककिक बुद्धध के शलए इनका अथ िअमयंत अस्पष्ट और प्रामाखणकता संदिेास्पद िै। अंतःप्रकाश (Revelation), अंतःपे्रेरणा (Inspiration), अंतज्ञानि (Intuition), तथा अंतज्ञानिाममक वववेक (Intuitive discrimination) प्राचीन अनुसंधान की प्रधान प्रणाशलयाँ थीं। आधुननक मानव की तकिशील बुद्धध के शलए अंतःप्रकाश एक शमथ्या कल्पना िै, अंतःपे्रेरणा ववचारों और शब्दों का बौद्धधक रूप से केवल रुतु चयन मात्र िै, अंतज्ञानि तकिसंगत बुद्धध की तीव्र और अस्पष्ट प्रकिया िै और अंतज्ञानिाममक वववेक अनुमान करने ेका उमकृष्ट और आनंददायक तरीका िै। ककन्तु वैहदक बुद्धध के शलए वे प्रणाशलयाँ न केवल वास्तववक और सुपररधचत ि ी थीं अवपतु प्रामाखणक प्रकियाएँ थीं; िमारे भारतीय प्राचीन लोग उन्ें समय तक पिुँचने के परमोच्च साधनों के रूप में मानतेथे, और यहद कैंट (Kant) की ि ी रीनत का अनुगमन करते िुए कोई वैहदक ऋवष वेद की समीक्षा करता तो उसनेप्राचीन शब्दों, दृजष्ट, श्रुनत, स्मृनत, केतुके पीछे आधारभूत ववचारों को अपनी समालोचना की मुख्य ववषय-वस्तु बनाया िोता। ननःसंदिे, यहद इन ववचारों का मूल्यांकन निीं ्ककया जाता तो यि समझ पाना असंभव िै कक ककस प्रकार पुरातन ऋवषगण मानव इनतिास के प्रारंशभक काल में ि ी ऐसे ननष्कषों तक पिुँच गए जो कक, चािे स्वीकार ककए गए िों या संशय ककए गए िों, आमम-ववश्वासी आधुननक बुद्धध के भी आश्चय िएवंप्रशंसा को जागृत् करते िैं...

बौद्धधक खोज की सभी प्रणाशलयााँ पुजष्टकरण और प्रमाणीकरण के ऐसे ककन्िीं साधनों पर आधश्रत िोने की आवश्यकता अनुभव करती िैं जो उनके ननष्कषों को अधधकतम सुननजश्चत बनाए रखने िेतु सुरक्षा प्रदान करें तथा मानशसक संशय की सतत् ्पूछताछ या अन्वेषणशीलता से िमें मुकत कर एक पूण िरूप से सुरक्षक्षत आधार की

इसकी मागाँ को पूरा करें, भले ककतने िी अपूण िरूप से कयों न िो। इस प्रकार प्रमयेक की द्धववववध गनतयााँ िोती िैं,

एक िो ती िै तीव्र, सीधी, फलदायी ककन्तु असुरक्षक्षत जबकक दूसरी िो ती िै अधधक सुववचाररत और सुननजश्चत।

तत्त्वज्ञान की सीधी प्रकिया िै अनुमान और उसकी पुजष्टकरण की प्रकिया िै शाजब्दक तकि के कठोर ननयमों के अंतगति ववचार अथवा तकि-ववतकि करना; ववज्ञान की सीधी प्रकिया िै प्रकल्पना या स्थापना (Hypothesis), इसकी पुजष्टकरण की प्रकिया िै भौनतक परीक्षण द्वारा या कफर ककसी प्रकार के इंहरयगमय साक्ष्य द्वारा या ककसी प्रदशनि द्वारा शसद्ध करना; इसी प्रकार वेद की प्रणाली की भी द्धववववध गनतयााँ बताई जा सकती िैं; इसकी प्रकटनकारी प्रणाशलयााँ सीधी प्रकियाएाँ िैं और मन तथा शरीर द्वारा अनुभूनत पुजष्टकारी प्रकिया िै। वेद की इन दोनों प्रणाशलयों में परस्पर संबंध नन:संदेि िी ठीक-ठीक वैसा िी निीं िो सकता जैसा कक तत्त्वज्ञान तथा ववज्ञान की बौद्धधक पद्धनतयों में िोता िै; कयोंकक ऐसा माना जाता िै कक वेद की प्रकटनकारी प्रणाशलयााँ अपनेआप में िी

आमम-प्रकाशकारी तथा आमम-औधचमय शसद्ध करनेवाली िैं। अंत:प्रकाश का स्वभावमात्र िी िोता िै एक ऐसी अनत-बौद्धधक किया जो िमारी खोज और प्राजप्त से स्वतंत्र उस स्वयं-सत् ्तथा आमम-अवलोकनकारी समय के स्तर पर िोती िै....."* इससे यि त्रबल्कुल स्पष्ट िो जाता िै कक ककस प्रकार िमारे वैहदक ऋवषयों ने ककन्िीं बौद्धधक तरीकों से निीं ंबजल्क अंतबोधाममक क्षमताओंके द्वारा उन गिन समयों को प्राप्त ककया। परंतु िमारा जजस प्रकार का मानशसक गठन िै, उसमें अधधकांशत: िमारा अंतबोधाममक क्षमताओं से लगभग कोई संपकि निीं ं रिता और इस कारण जब वे समय ककसी मानशसक भाषा में प्रकट ककये जाते िैं, जैसा कक गीता करती िै, तब

प्रथम छ: अध्यायों में ऐसे स्पष्ट लक्षण निींहदये गये िैं जो अंतननिहित समय की कुंजी प्रदान करते िों;

िम उन्िें केवल कोई मानशसक समय समझने की त्रुहट करनेकी प्रवृवृत् रखते िैं। इससे भी गंभीर बात यि िै कक िमें जिा ंजााँ जो कहठनाइयााँप्रस्तुत िुईं उन्िें लेकर उनका (चलते-चलते) समाधान कर हदया गया िै; ववववेचन का िम

कुछ कहठन िै और ककतनी िी उलझनों और पुनरावृत्तियों में से िोकर चलना रिा िै; ऐसा बिुत कुछ िै जो कथन में

यहद भी निीिीत कक िम उन्िें गलत रूप से समझ रिे िैं। इसीशलये श्रीअरववन्द िमें यि चेतावनी देते िैं कक िमें

समाया तो िै पर जजसका अशभप्राय स्पष्ट निीं ंिो पाया िै।... [उदािरण के शलए प्रथम छ: अध्याय योग में ईश्वर

बराबर सावधानी के साथ आगे बढ़ना िोगा।

के भाव का समावेश करते िैं, ईश्वर का कमों और यज्ञों के भोकता प्रभु के रूप में ननरूपण िै, और इसका संकेत-मात्र ककया गया िै परंतु अभी तक यि स्पष्ट रूप से निीं ंकिा गया कक ये ईश्वर अक्षर ब्रह्म से भी परे िैं और इन्िीं में वैजश्वक अजस्तमव के रिस्य की कुंजी िै। इसशलए अक्षर पुरुष से िोकर इनकी ओर ऊपर बढ़ने से िमारा अपने कमों से आध्याजममक मुजकत पाना और कफर भी प्रकृनत के कमों में लगे रिना संभव िै। परंतुअभी यि निीं ंबताया गया कक ये परम् ्पुरुष, जो यिााँहदव्य गुरु और कम–रथ के सारथी-रूप में अवतररत िैं, कौन िैं अथवा अक्षर पुरुष तथा प्रकृनतस्थ व्यजकतगत सत्ता से उनके संबंध कया िैं। न िी यि स्पष्ट िै कक उनसे आने वाला कमों का संकल्प त्रत्रगुणमय प्रकृनत की इच्छा से ककस प्रकार शभन्न िो सकता िै। यहद वि विी इच्छा िो तो इसका अनुसरण करने े

वाला जीव, अपनेआमम-भाव में न सिी, पर अपनेकम िमें तो त्रत्रगुण के बंधन से कदाधचत् ्िी बच सकता ि;ै और, यहद यिी बात िै तो जजसका वादा ककया गया िै वि मुजकत या तो भ्ांनतपूण िबन जाती िै या कफर अधूरी। ऐसा प्रतीत िोता िै कक यि संकल्प सर्त्ा के कायकािरी अंश का एक पिलू ि,ै प्रकृनत की शजकत और सकिय ऊजाि, - 'शजकत, प्रकृनत' ि।ै तो कया त्रत्रगुणाजममका प्रकृनत से भी उच्चतर कोई प्रकृनत ि?ै कया अिंकार, कामना, मन, इजन्रय-समूि, तकि-बुद्धध और प्राणावेग से शभन्न भी कोई सृजृष्ट-शजकत, संकल्प-शजकत एवं ंकम–िशजकत ि?ै

इसशलए ऐसी संहदग्ध अवस्था में अब जो कुछ करना िै वि यिी िै कक उस ज्ञान को, जजस पर भागवत् ् कमों को आधाररत ककया जायेगा, और अधधक पूणति ा के साथ बतला हदया जाए। और, वि ज्ञान उन भगवान् ्के स्वरूप का िी पूण िऔर समग्र ज्ञान िो सकता िै जो भगवान् ्संपूण िकम िके मूलस्रोत िैं और जजनकी सर्त्ा के अन्दर कमयिोगी ज्ञान के द्वारा मुकत िो जाता ि,ै कयोंकक तब वि उस मुकत आममा को जान लेता िै जजसमें से यि अखखल कम–िप्रवाि ननकलता िै और उसके मुकत स्वरूप में भागीदार बन जाता ि।ै इसके अनतरररकत, उस ज्ञान से वि प्रकाश शमलेगा जजससे गीता के प्रथम भाग के उपसंिार िमें जो बात किी गयी िै उसकी यथाथति ा शसद्ध िोगी।

----

*CWSA 17, p. 551-53

उसे आध्याजममक चेतना और कम िके अन्य सभी िेतुओंऔर शजकतयों के ऊपर भजकत की श्ेरेष्ठता स्थावपत करनी िोगी; वि ज्ञान समस्त प्राखणयों के उन परमेश्वर का ज्ञान िोगा केवल जजनके प्रनत िी जीव उस पूण िआममसमपणि के साथ अपने-आप को उमसग िकर सकता िै जो समस्त प्ेरेम और भजकत की पराकाष्ठा ि।ै सातवें अध्याय के प्रारंभ के श्लोकों में भगवान् ्यिी ववषय प्रस्ताववत करते िैं जो कक उस प्रनतपादन का सूत्रपात करता िै जो शेष पुस्तक में प्रनतपाहदत ि।ै

श्रीभगर्ान् ्उर्ाच

काही र्ें जजन य्र्ासक्तर्नाः पाथ वयोगं युञ्जतर्दाश्रयः ।

असंयिं सर्ग्रंर्ांयथा ज्ञास्यमस तच्छ्रिु ।। १।।

१. श्रीभगर्ान् ्ने कहा : हे पाथ!व रु्झ र्ें अपनेर्न को लगाकर, रु्झे अपना आश्रय (अपनेधचत्त और अपनेकर्ों का संपिू वआधार, तनर्ास-स्थान, आश्रय) बनाकर योगाभ्यास करते हुए पिू वरूप र्ें रु्झे ेजजस प्रकार संयि से रदहत होकर जानेगा उसे सुन।

कयोंकक वास्तव में तो भगवान् ्का अपनेआप में कया स्वरूप िै इस ववषय में तो कुछ किा िी निीं जा सकता। ननरूपण तो केवल उतना िी िो सकता िै जजतना कक योगाभ्यास करते िुए व्यजकत को प्रकट िोता ि।ै इसशलए मनुष्य उसे जजतना जान सकता िै उतना िी ननरूपण गीता या अन्य कोई भी सद्ग्रंथ कर सकता ि।ै

ज्ञानंतेऽहं सवर्ज्ञानमर्दं क्ष्यांम्यिषेतः ।

यजज्ञात्त्रा नेह भूयोऽतयजज्ञातव्यर्र्मिष्यते ।। २।।

२. र् ैंतुझे व्यापक और सवस्तार ज्ञान के साथ उस रूलभूत ज्ञान को कुछ भी छिो ेत्रबना पिू वरूप से कहूँगा, जजसे जान लेने पर इस लोक र्ें किर और कुछ जाननेके मलए िेषे नहीं ंरहता।

vii. 19

इस उजकत का अशभप्राय यि िै कक भागवत् ्सर्ता िी सब कुछ िै, वासुदेवः सवम्, ् और इसशलए यहद उन्िें उनकी सब शजकतयों और तत्त्वों के साथ समग्र रूप से जान शलया जाए तो सब कुछ जान शलया जाता िै, केवल ववशुद्ध आममा िी निीं, ं अवपतुजगत्, ् कम िऔर प्रकृनत भी। तब यिाँ जाननेकी और कोई चीज निीं रि जाती, कयोंकक वि भगवान् ्िी सब कुछ िै। कयोंकक िमारी दृजष्ट यिा ाँइस तरि समग्र निीं ंिै, कयोंकक यि ववभाजक मन तथा तकिबुद्धध पर और ववभकत करने ेवाले विकार के भाव पर आधश्रत िै, इसशलए वस्तुओंका िमारा मानशसक बोध या अनुभव एक अज्ञान िै। िमें इस मन-बुद्धध और विकारमय दृजष्ट से दूरू िटकर सच्चे एकीकारी ज्ञान तक पिुंचना िोगा, और उस ज्ञान के दो पिलू िैं, एक ज्ञान िै मूलभूत अथवा ताजत्त्वक, जजसे ज्ञान किते िैं, और दूसरा िै व्यापक या सवग्रािी, जजसे ववज्ञान किते िैं अथात् ्परम् ्पुरुष का सीधा आध्याजममक अनुभव या बोध िै और उसकी सर्ता के ववशभन्न तत्त्वों - प्रकृनत, पुरुष तथा अन्य सभी - का समुधचत अंतरंग ज्ञान, जजसके द्वारा जो कुछ भी िै वि अपनेभागवत् ्मूलस्वरूप में तथा अपनी प्रकृनत के परम् ्समय में जाना जा सकता िै। गीता किती िैकक वि समग्र ज्ञान बिुत दुलुभि और कहठन वस्तु िै...

र्नुष्याणां ंसहस्रेषु कजश्र्चद्यतनत मसद्धये ।

यततार्वप मसद्धानां कजश्र्चन्र्ां र्ेवत्त तत्त्र्तः ।। ३।।

३. सहस्रों र्नुष्यों र्ें कोई एकाध ही मसद्धध के मलये प्रयत्न करता है, और जो प्रयत्न करते हैं और मसद्धध को प्राप्त कर लेते हैं उनर्ें भी कोई वर्रला ही रु्झे ेर्ेरी सत्ता के सब मसद्धांतों र्ें, तत्त्र् रूप से, जानता है।

इसशलए, उपिम के तौर पर तथा इस समग्र ज्ञान को सुप्रनतजष्ठत करनेके शलए गीता वि गंभीर और मित्त्वपूण िभेद प्रस्तुत करती िै जो कक इसके संपूण ियोग का व्याविाररक आधार िै, यि िै दो प्रकृनतयों का भेद, प्राकृत (phenomenal) और आध्याजममक।

भूमर्रापोऽनलो र्ायुः खं र्नो बुद्धधरेर् च ।

अहंकार इतीयंर्े मभतना प्रकृततरष्टधा ।। ४।।

४. पृथ्र्ी, जल, अजग्न, र्ायु, आकाि, (पंच-तत्त्र्), र्न, बुद्धध और अहंकार - यह र्ेरी अष्टवर्ध वर्भक्त प्रकृतत है।

अपरेयमर्तस्त्र्तयां प्रकृततं ंवर्द्धध र्े परार् ्।

जीर्भूतांर्हाबाहो ययेदं धायतेव जगत् ्।। ५।।

५. यह अपरा (तनम्नतर) प्रकृतत है। हे र्हाबाहो ! यह भी जान कक इससे मभतन र्ेरी अतय प्रकृतत भी है, परा प्रकृतत, जो जीर्् बनती है और जजसके द्र्ारा यह जगत् ्धारि ककया जाता है।

इसमें सबसे पिले समझने की बात यि िै कक आखखर प्रकृनत कया िै? जो कुछ भी िम देख, समझ और सुन सकते िैं, कल्पना कर सकतिैं, जो भी गिरे या सतिी अनुभव िम करते िैं वे सभी प्रकृनत के िी कायक्षेत्र की चीजें िैं। विीं, ईश्वर एक ऐसी परम सत्ा िै जजनका िम अपनी अंतरतम गिराइयों में एक प्रनतत्रबंब मात्र िी प्राप्त कर सकते िैं। और स्वयंवि प्रनतत्रबंब भी लगभग प्रकृनत का िी बना िोता िै। वि परम सत्ा तो एक ऐसा तत्त्व िै जजसे ककसी भी तरीके से, ककसी भी अनुभव से या ककसी भी सूत्र में िम पकड़ िी निींसकते। कयोंकक जजस भी प्रकार से उस तत्त्व का अनुभव करें, उसमें अधधकांशतः तो प्रकृनत का िी तत्त्व रिेगा जबकक वि परम सत्ा तो ककसी भी अनुभव से पूणतिः परे िै। िम जजसे पुरुष किते िैं वि भी प्रकृनत के अंदर उसी परम सत्ा का िी प्रनतत्रबंब िै। अपनेआप में वि परम सत्ा तो सच्चेरूप में चरम-परम िै और िमारे ककन्िींभी ऊँचेसे ऊँचेसूत्रों या ननरूपणों से सवथिा परे िै। इसशलए परम सत्ा के ववषय में िमारा यहद कोई अनुभव भी िै तो वि मात्र उस प्रनतत्रबंब का िी अनुभव िै और वि भी प्रकृनत के दायरे में िी िै। सभी उच्चतम संभव लोक भी प्रकृनत के िी खेल िैं कयोंकक परम

सत्ा तो इन सभी को सूक्ष्म रूप से धारण करते िुए भी, इन सभी में अंतननहित िोतेिुए भी इन सभी से बच ननकलती िै। अब िालाकँक सभी कुछ ईश्वर की िी अशभव्यजकत िै और किीं ंभी ककसी प्रकार का कोई ववभाजन

निीं ंिै तो भी चीजों को समझने की सुववधा के शलए दो प्रकार की प्रकृनतयाँबताई गई िैं। एक िै ननमन प्रकृनत जो

कक अशभव्यजकत के अंदर िमें इंहरयों आहद के माध्यम से गोचर िोती िै, और दूसरी िै आध्याजममक प्रकृनत जो ऊँची से ऊँची आंतररक चीजों के साथ, वस्तुओंमें अंतननहित सत्य के साथ व्यविार करती िै। परंतु ये दोनों िी िैं प्रकृनत िी और परम तत्त्व इन दोनों से िी छूट ननकलता िै।

यिी ाँगीता का वि प्रथम नवीन ताजत्त्वक ववचार या भाव आया िै जो इसे सांख्य-दशनि के मन्तव्यों से आरंभ करके उनसे भी परे चले जाने में सिायता करता िै, और गीता सांख्य की शब्दावली रखते िुए उस शब्दावली को व्यापक अथ िदेते िुए उसे वेदाजन्तक अथ िदे देती िै। अष्टधा प्रकृनत जो पाचाँ मिाभूतों.... अपनी ववशभन्न ज्ञानेजन्रयों और कमेजन्रयों सहित मन, बुद्धध और अिंकार, यिी प्रकृनत का सांख्य के अनुसार वणनि िै। सांख्य यिीं ंरुक जाता िै, और चूँकक यि यिीं रुक जाता िै, इसे पुरुष और प्रकृनत के बीच एक ऐसा भेद करना िोता िै जजससे शमलाया न जा सके; इस कारण उसे इन दोनों को सवथिा शभन्न मूल सत्ाओं के रूप में अवजस्थत करना पड़ता िै।

----

*सब लोकों के ऊपर जस्थत वि उनको संभाले िुए िैं,

एकमात्र सवशिजकतशाशलनी वि 'देवी' ननमय-प्रच्छन्न,

जजसका कक यि जगत् ्रिस्यमय मुखौटा िै;

युग-युगान्तर जजसकी गनत के पदक्षेप िैं,

उनकी घटनाएँ उसके ववचारों की एक रूपाकृनत िै,
और सकल सृजृष्ट उसकी अंतिीन कृनत िै।

गीता को भी, यहद वि यिीं रुक जाती तो, परम् ्पुरुष और ववश्व-प्रकृनत के बीच यिी असाध्य ववच्छेद स्थावपत करना पड़ता और तब यि ववश्व-प्रकृनत त्रत्रगुणाजममका माया मात्र और यि सारा वैजश्वक अजस्तमव मिज उस माया का िी परराणाम रि जाता; इसके अनतररकत (प्रकृनत और इसके इस ववश्व-प्रपंच का) और कोई भी अथ िन िोता। परंतुइसके अनतररकत भी कुछ िै, एक उच्चतर तत्त्वत, एक आममा की प्रकृनत भी िै, पराप्रकृनतमे। भगवान् ् की एक पराप्रकृनत िै जो इस ववश्व के अजस्तमव का मूल कारण िै, इसकी मूलभूत सृजृष्ट-शजकत और कमा–शजकत िै; जजसकी कक यि दूसूरी, ननमनतर और अज्ञानमयी प्रकृनत, केवल एक उपज तथा एक अंधकारमय छायामात्र िै।

इस पराशजकत के अन्दर पुरुष और प्रकृनत एक िैं। प्रकृनत वििाँपुरुष की संकल्प-शजकत और कती-शजकत िै, उसकी सत्ा या अशभव्यजकत की किया िै, - कोई पृथक् वस्तु निीं,ं वरन् ्पुरुष स्वयंिी शजकतयुकत िै।

यि िम पिले िी चचिाकर चुके िैं कक ककस प्रकार मूल प्रकृनत से अिंकार, अिंकार से बुद्धध, बुद्धध से मन, मन से इंहरयाँ, इंहरयों से तन्मात्राएँ और उनसे पंच मिाभूत उमपन्न िोतेिैं। यिी इन चौबीस तमवों के द्वारा सांख्यों का प्रकृनत का ववश्लेषण िै। इसमें ननमन अष्टधा प्रकृनत अिंकार, बुद्धध, मन और इंहरयों से बनती िै। मनुष्य का सारा कियाकलाप इस ननमन प्रकृनत के अंतगति िी रिता िै। इसमें भी अधधकांशतः मनुष्य अपनी बुद्धध में तो रिता िी निीं ंिै। वि तो लगभग अपनेमन, इंहरयों और इंहरय ववषयों, संवेदनों आहद में िी रमण करता रिता िै। शुद्ध रूप से बुद्धध के क्षेत्र तक तो कोई-कोई िी पिुँचता िै। इसशलये जब इस प्रकार की िमारी प्रकृनत िै तब परम प्रभुका, आमम-तत्त्व का तो इससे कोई तालमेल िी निीं ंबैठता। इस ननमन प्रकृनत में ऊँचेसे ऊँचा तत्त्व बुद्धध िै और वि बुद्धध भी साजत्त्वकता के बंधन से ऊपर निींजाती। इसके स्पष्टीकरण के तौर पर अद्वैत आहद ववचारधाराएँ किती िैं कक आमम-तत्त्व िी वास्तववक तत्त्व िै जबकक यि ननमन प्रकृनत तो मानो उसके ऊपर पड़ा एक आवरण िै। इसशलए इस आवरण के कारण से िी िमें यि जगत् ्इस प्रकार का गोचर िोता िै जबकक वास्तव में यि सब एक प्रकार का भ्म िै, माया िै। वास्तववक समय तो अध्यामम तत्त्व िै। उसी में एकमव भाव िै। ननमन प्रकृनत के सारे ववभाजन वििाँ शमट जाते िैं। इसशलए उनके अनुसार मनुष्य का सच्चा काय िै इस सब प्रपंच से दूरू िटकर उसी तत्त्व की ओर जाना। गीता भी आरंभ में अक्षर ब्रह्म की ओर जाने का उपदेश करती िै जो कक सदा शांत, अववनाशी, ननववकार िै। इसी आदश िको भारतीय परंपरा में दीघकाल से पोवषत ककया जाता रिा िै। िालाकँक वैहदक परंपरा ऐसे ककसी भी एकांगी दृजष्टकोण का कभी समथनि निीं ंकरती, न उपननषद् िी ऐसे दृजष्टकोण को समथनि देते िैं। परंतु कफर भी ऐसे ववचार परंपरा से प्रचलन में रि िैं। उसी में पले-बढ़े िोने के कारण गीता को उसी धरातल से लेकर अजुनि को आगे ले जाना िोगा। इसीशलये गीता जब अजुनि को ज्ञान का ननरूपण करती िै तब वि पूछता िै कक जब ज्ञान िी सबसे श्रेष्ठ िै तब उसे उस घोर कम िमें ननयोजजत कयों ककया जा रिा िै। इसशलए इन सभी प्रश्नों का अभी गीता को उत्र देना बाकी िै। यहद गीता यिीं ंरुक जाती िै तब तो एक अपूरणीय खाई रि जाएगी कयोंकक तब कम ितो केवल िमारी बुद्धध, मन, प्राण और शरीर के द्वारा िी िोगा और इस कारण वि अज्ञानमय िी रिेगा और जो ऐसे कम िमें रत िै वि मूढ़ िै। परंतुगीता इससे आगे जाती िै और किती िै कक

इससे शभन्न भगवान् ्की पराप्रकृनत भी ि ै। इसी अध्याय के पाचाँवे श्लोक में गीता किती ि ै 'जीवभूतां मिाबािो ययेदं धायति े जगत्'् अथाति्'् ि ै मिाबािो! मेरी पराप्रकृनत जीव बनती ि ै जजसके द्वारा यि जगत् ्धारण ककया जाता ि ै।'

पर अब इन दोनों प्रकृनतयों को जोड़ने ेवाली क़िी किाँ ि।ै यहद यि संयोजक क़िी न ि ो तब तो उस पराप्रकृनत का जो भी कोई स्वरूप कयों न ि ो, उससे ि मारा कोई सरोकार ि ी निीं ि ो सकता। इसशलए इनके बीच एक संयोजक क़िी ि ै और वि ि ै ि मारी अंतराममा। अशभव्यजकत से परे उसे जीवाममा किते ि ैं और अशभव्यजकत में वि ि मारी अंतराममा बन जाती ि ै और यिी वि संयोजक क़िी ि ै जो परा और अपरा प्रकृनत को जोड़ती ि ै। इसशलए जजतने ेभी बिुपुरुष ि ैं वे सब भी पराप्रकृनत के अंतगति ि ी आते ि ैं, उसी के अंश ि ैं। अपरा प्रकृनत में तो पुरुष प्रकृनत से शभन्न ि ैं परंतु पराप्रकृनत के अंश ि ैं कयोंकक पराप्रकृनत तो परमोच्च ईश्वर की मिाशजकत ि ी ि ै और उनसे अववभाज्य रूप से एक ि ै। वि ईश्वर की कियाशजकत ि ै और स्वयंवे ि ी उसे धारण करने ेवाले ि ैं। ि ालाकाँक अपने सच्चेस्वरूप में ईश्वर और उनकी शजकत अशभन्न ि ैं, तो भी इस प्रकार की अशभव्यजकत के शलए यि ववभाजन ि ुआ ि।ै परम तत्त्व ने ि ी अपनेआप को दो तत्त्वों में ववभकत कर शलया ताकक यि सारी सृजृष्ट-किया संपन्न ि ो सके। इसका ववशद वणनि श्रीअरववन्द अपने साववत्री मिाकाव्य में भी करते ि ैं कक ककस प्रकार ये दोनों एक ि ोते ि ुए भी अपनेआप को दो रूपों में ववभकत कर समस्त लीला कर रिे ि ैं जजसके पररणामस्वरूप ि में अनेकानेक स्तरों पर ऐसी ववराट् सृजृष्ट गोचर ि ोती ि ै। इसीशलए जजतनेभी पुरुष ि ैं, भले वि अनतमानशसक पुरुष ि ी कयों न ि ो, सभी पराप्रकृनत के ि ी अंश ि ैं। परंतु साथ ि ी इसमें एक गूढ़ रिस्य यि ि ै कक ि मारे हृदय में ववराजमान जो ईश्वर ि ै वि उसका अंश निीं ि।ै वि तो परामपर ईश्वर का ि ी अंश ि ै, उन्िीं की उपजस्थनत ि ै, ि ालाकाँक इसकी यिाँ चचाकिरना ववषयांतर ि ोगा। पर समझने ेकी बात यि ि ै कक ि मारी अंतराममा ि ी वि संयोजक क़िी ि ै और उसी की सिायता से िम अपनी ननमन प्रकृनत के ऊपर किया कर सकतिे ैं, उसे पररवनतति और रूपांतररत कर सकतिे ैं, उससे ऊपर उठ सकतिे ैं। इसशलए जब व्यजकत अपनी आममा में, अपनी अध्यामम सत्ता में ननवास करना शुरू कर देता ि ै तब उसके यज्ञ का आरोिण ि ोने लगता ि ै। और धीरे-धीरे व्यजकत इस ननमन प्रकृनत की बजाय उच्चतर प्रकृनत के द्वारा किया करनेलगता ि ै जो कक गुणों से परे ि ै। तब कफर किया के उमप्रेरण का जो सामान्य िम ि ै - कक पिले इंहरय-संवेदनों आहद के द्वारा मनस् ्को सूचना प्राप्त ि ोती ि ै और वि उसे बुद्धध तक भेजता ि ै और विाँसे ननणयि ि ोता ि ै - उसके अनुसार व्यजकत कम ि निीं ंकरता। तब उसे सीधे ि ी अंतःस्फूनिि ि ोने ेलगती ि ै। ि ालाकाँक इससे पूव ि भी सभी कुछ ि ोता तो एकमात्र भगवान् ्की हदव्य प्रकृनत के द्वारा ि ी ि ै और विी ि मारे अवचेतन आहद भागों में आवश्यक भाव, अभीप्साएँ, लालसाएँ, इच्छाएँ-कामनाएँ आहद जैसी आवश्यक ि ोती ि ैं वैसी जगा कर अपनेसंकल्प को चररताथ ि करती ि ैं- और इसी अथ ि में किा जाता ि ै कक छोटी से छोटी चीज भी भगवान् ्की इच्छा के त्रबना निीं ि ोती – परंतु जब व्यजकत अपनी अंतराममा में ननवास करता ि ै तब ननमन प्रकियाओं को काम में लेने की आवश्यकता निीं रिती और उसकी किया सीधे ि ी ि ोने लगती ि ै और भगवान् ्का संकल्प सीधे तौर पर अपने आप को चररताथ ि करने ेलगता ि ै। ऐसे लोगों की किया भले ि ी बािरी रूप से दूसरे सामान्य लोगों की किया जैसी िी प्रतीत ि ोती ि ो, परंतु वास्तव में वि किया हदव्य किया ि ोती ि ै। इसीशलए भले ि ी ककसी मिापुरुष की दैनंहदन कियाएँ सामान्य प्रकार की प्रतीत ि ोती ि ों तो भी यहद कोई थोड़ा बिुत भी संवेदनशील ि ै उसे उनकी किया में,

उनके प्रभामंलि में, उनके वातावरण में एक मूलभूत अंतर मिसूस िोगा। यिी गीता के कमों का रिस्य िै। यिी मिें वि सुदृढ़ आधार प्रदान करता िै जजस पर जस्थत िोकर िम पाधथवि जगत् ्में गुणों से परे रिते िुए भी किया कर सकते िैं और अज्ञान और माया में फाँसने ्से बच सकतेिैं। यहद ऐसा न िोता तो पृथ्वी पर मनुष्य के शलए हदव्य जीवन में आरोिण की तो कोई संभावना िी निीं थी और उसकी पररकल्पना करना सवथिा ववसंगत बात िोती। और ऐसे में सामान्यतः इसके उपाय के रूप में जीवन से बच ननकलनेकी जो युजकत बतायी जाती िै विी एकमात्र करनेयोग्य काम रि जाता। परंतु ्वि तो इस धरती पर इस सारी मानशसक अशभव्यजकत को, इस सारी सृजृष्ट को िी ननरथकि शसद्ध कर देता। परंतु गीता इसका समाधान उस संयोजक कड़ी को प्रदान करके करती िै जो ननमन प्रकृनत को पराप्रकृनत से जोड़ती िै। वास्तव में तो ननमन प्रकृनत केवल एक प्रतीनत मात्र िै। यहद पराप्रकृनत जीव बनकर जगत् ्को धारण न करती तब तो ननमन प्रकृनत का कोई आधार िी निींबचता कयोंकक अपने आप में ननमन प्रकृनत में कोई सामथ्य िनिीं ंकक जगत् ्को धारण कर सके और इसे बनाए रख सके। अतः वास्तव में तो सारी किया पराप्रकृनत की िी िै, परंतु किीं उसकी किया ककन्िीं माध्यमों के द्वारा परोक्ष रूप से िोती प्रतीत िोती िै, तो किीं सीधे तौर पर। िालाकाँक ऐसा कोई भी व्यजकत निीं ंिै जजसमें ककसी न ककसी अंश में पराप्रकृनत की सीधी किया न िोती िो। भेद केवल इतना िै कक यहद यि किया प्रधानतः माध्यमों के द्वारा िोती िै तब िम इसे ननमन प्रकृनत किते िैं अन्यथा तो किया परा प्रकृनत की िी िोती िै। और एक चरम दृजष्टकोण से तो यि ननमन और परा का भेद भी जब तक हदव्य प्रकृनत को भाता िै तब तक िी चलता िै अन्यथा निीं। त्रत्रगुण आहद भी िमें केवल अपनेवतमिान अिमाममक गठन के कारण िी प्रतीत िोतेिैं जबकक वास्तव में तो सभी कुछ हदव्य प्रकृनत की िी किया िै।

आगे इस संयोजक कड़ी का अधधकाधधक ननरूपण िोगा कयोंकक त्रबना इसके तो सच्चे कम िका वास्तव में कोई आधार िी निीं ंिो सकता। इन्िीं विषयों को गीता अब ववकशसत करेगी।

परा-प्रकृनत* का अशभप्राय परमाममा की मूल सनातन प्रकृनत और उनकी परामपर मूल कारण-शजकत से िी िै।

----

* यि पराप्रकृनत केवल ववश्व के कमों में अंतःजस्थत भागवत् ्पुरुष की शजकत की उपजस्थनत मात्र िी निीं ंिै। कयोंकक यहद ऐसा िोता तब तो केवल वि उस सवव्यिापक आममा की िी ननजष्िय उपजस्थनत िोती जो सब पदाथों में ननहित िै या जो सब पदाथों को अपने अन्दर धारण ककये िै, जो कक एक प्रकार से ववश्वकम िका ननयंता तो िै पर जो स्वयं ंसकिय कता निीं िै। और न िी यि पराप्रकृनत सांख्यों का वि 'अव्यकत' िी िै जो व्यकत सकिय अष्टववध प्रकृनत की आहद अव्यकत बीज-जस्थनत िै जजसे उमपादक मूल प्रकृनत किते िैं और जजसमें से उसकी अनेक उपकरणीय और कायकिारी शजकतयाँउमपन्न िोती िैं। और, 'अव्यकत' के भाव की वेदाजन्तक अथ िमें व्याख्या करना और यि किना भी पयापि्त न िोगा कक यि पराप्रकृनत अव्यकत ब्रह्म या आममा में अंतग्रसि्त तथा अंतननहिित शजकत िै जजसमें से ववश्व उमपन्न िोता िै और जजसमें इसका लय िोता िै। यि तिी िो पर इससे भीअधधकबिुत कुछिै उपयुकित तो उसकी अनेकों आममजस्थनतयोंमें से केवल एक िै। पराप्रकृनत

... पराप्रकृनत परम् ्पुरुष की पूण िधचत्–शजकत िै जो जीव और जगत् ्के पीछे िै। अक्षर पुरुष के अन्दर यि आममा में अंतननहिित रिती िै; वि विााँिोती अवश्य िै, पर ननवृत्त् में, अपने को कम िसे िटाए िुए: यिी क्षर पुरुष और

ववश्व में बिार आकर कम िमें प्रवृत्त् िोती िै, प्रववृत्त् में आ जाती िै। विाँअपनी सकिय शजकतशाली उपजस्थनत द्वारा आममा में सवभूितों को उमपन्न करती िै और उन भूतों में उनकी उस मूल आध्याजममक प्रकृनत, अथात्् उनके आंतररक और बाह्य ववषयों की िीिा के पीछे के धचरंतन समय, के रूप में प्रकट िोती िै। यिी वि मूलभूत गुण या भाव और शजकत अथात््'स्वभाव' िै जो सबके िोनेका, प्राकृत रूप में आने ेका आमम-तत्त्व िै, उनके लौककक अजस्तमव के पीछे अंतननिहित तत्त्व व भागवत् ्शजकत िै। त्रत्रगुण की सामयावस्था इस पराप्रकृनत-तत्त्व से उमपन्न िोनेवाली एक पररमेय (quantitative) एवं सवथिा गौण िीिामात्र िै। अपरा प्रकृनत का यि सारा नामरूपाममक कम,ि यि समस्त मनोमय, इजन्रयगत और बौद्धधक व्यापार केवल एक बाह्य प्राकृत दृश्य िै जो उसी आध्याजममक शजकत और 'स्वभाव' के कारण िी संभव िोता िै, एकमात्र उसी से इसकी उमपवत्त् िै और उसी में इसका ननवास िै, उसी से यि िै।.... परम् ्आममा में से इसी धचत्–्शजकत का प्रकट िोना िी उमपवत्त् िै, परा प्रकृनतजीवभूता, क्षर जगत् ्में उसकी यि प्रववृत्त् िै; और परम् ्आममा की अक्षर सत्ता और स्वाममलीन शजकत के अन्दर इस धचत्–्शजकत का अन्तवलियन िोनेसे कम िकी ननववृत्त् िी प्रलय िै।

धचत्–्शजकत के उदय के साथ िी सब उमपवत्त् िोती िै कयोंकक उसी के अभ्युदय के साथ रष्टा भाव आता िै अन्यथा तो अवलोकनकारी चेतना िी निीं िोती और उसके अभाव में तो परम तत्त्व का अपने आप में जो भाव ििता िोगा उसकी तो िम कल्पना भी निीं कर सकते। यि तो वैसे िी िोगा जैसे कक एक कवव के धचत्त् में ककतनी भी गशभति रचनाएँ कयों न िों, परंतु ुयहद वि उन्िें अशभव्यकत न करे तो दूसूरों के शलए तो वे अगम और कल्पना से परे िी िोती िैं। वैसे िी त्रबना धचत् ्शजकत के परमाममा के अंतननिहित तत्त्व तो अशभव्यकत िी निीं िोते। इसशलए

जब धचत् ्शजकत अपनेआप को अशभव्यजकत से पीछे खींच लेती िै तो कम िकी ननववृत्त् िो जाती िै और उसे िम प्रलय कितिैं। और यि पीछे खींच लेनेकी किया भी परा प्रकृनत के एक अंश में िी िोती िै कयोंकक उस प्रलय में भी परा प्रकृनत तो कफर भी सदा िी मौजूद रिती िै।

इस प्रकार, परा प्रकृनत स्वयंभू परम ्पुरुष की अनन्त कालातीत सचेतन शजकत िै जजसमें से ववश्व के सब भूत आववभूति िोतिैं और कालातीतता से ननकल कर 'काल' में आते िैं। परंतुजगत् ्में इस अनेकववध वैजश्वक संभूनत (अशभव्यजकत) को आममा का आधार प्रदान करने के शलए परा प्रकृनत अपनेआप को जीव के रूप में रूपानयत करती िै।... जीव िी ववववध अजस्तमव का आधार िै; यहद िम चािें तो कि सकते िैं कक यि बिु पुरुष िै, या कफर यि भी कि सकतिैं कक जजस बिुमव को िम यिा ाँअनुभव करते िैं यि उसकी आममा िै। वि अपनेस्वरूप में भगवान् ्के साथ सदा एकामम िै, शभन्न िै केवल अपनेस्वरूप की शजकत में, इस अथ िमें शभन्न निीं कक वि विी समान शजकत निीं ंिै, अवपतुइस अथ िमें कक वि आंशशक अनेकववध वैयजकतक किया में केवल एक शजकत को आश्रय प्रदान करता िै। इसशलए सभी पदाथ िआहद में, अंत में और अपनेजस्थनतकाल में तत्त्वतः आममा या ब्रह्म िी िैं। सबका मूल स्वभाव आममा का स्वभाव िी िै, और केवल भेदाममक ननमन भाव में वे कुछ और हदखाई देते िैं, अथात््शरीर, प्राण, मन, बुद्धध, अिंकार और इजन्रय-रूप प्रकृनत हदखाई देते िैं। पर ये बाह्य गौण व्युमपन्न रूप िैं, वे िमारे स्वभाव और िमारे अजस्तमव के मूलभूत समय निीं िैं।

----

* िमें ध्यान रखना िोगा कक िम यि समझनेकी भूल न कर बैठें कक यि परा प्रकृनत काल में अशभव्यकत जीव िी िै और इसके अनतररकत और कुछ निीं ंिै अथवा यि कक यि केवल संभूंनत की िी प्रकृनत िै और आममसर्ता की प्रकृनत त्रबल्कुल भी
निीं िै: यि परम् ्पुरुष की परा प्रकृनत का स्वरूप निीं िो सकता। काल में भी यि परा प्रकृनत इससे अधधक कुछ िै; अन्यथा जगत् ्में इसका समय केवल अनेकववधता की िी प्रकृनत िोता और संसार में कोई ऐकय की प्रकृनत न िोती। गीता ऐसा निीं

.

कितीः वि यि निीं किती कक परा प्रकृनत अपने सारस्वरूप में स्वयं ंिी जीव िै, जीवाजममकाम्,् अवपतु यि किती िै कक वि जीव बन गई िै, जीवभूताम्;् इस जीवभूता शब्द में िी यि ननहित िै कक जीव के रूप में अपनी इस बाह्य अशभव्यजकत के पीछे
यि परा प्रकृनत अपने मूलू रूप में इससे शभन्न और उच्चतर िै, यि एकमेवाद्ववतीय परम् ्पुरुष की ननज प्रकृनत िै।

यहद परा प्रकृनत केवल जीव िी िोती तब तो अनेकववधता में कभी ऐकय िो िी निीं सकता कयोंकक उनके बीच तो कोई एकीकारक शजकत िी न रिती और ऐसे में तो द्वैतता िी रिती। यिी कारण िै कक सांख्य में द्वैतता रिती िै। सांख्य के अनुसार जब प्रकृनत शांत िो जाती िै तब जीव मुकत िो जाता िै और इस जगत् ्प्रपंच के भ्म से ननकल जाता िै। परंतु इस दृजष्टकोण में तो ऐकय का कोई आधार िी निीं िै। परंतु गीता इसे स्वीकार निींकरती। गीता किती िै कक भले परा प्रकृनत िी जीव बनी िै परंतुवि केवल जीव िी निीं ंअवपतु इससे बिुत कुछ और भी िै। सारी प्रतीनतया ँभी उस परा प्रकृनत के िी रूप िैं। इसीशलए अंततः सभी कुछ एक िी िै। संपूण िब्रह्माण्िमें ऐसा कुछ भी निीं ंिै जो परा प्रकृनत का िी क्षुर अंश न िो। और चूँकक सभी उसी के अंश िैं इसशलए सभी एक िैं। जजसे िम माया किते िैं वि भी उसी परा प्रकृनत का िी एक अंधतर रूप िै। उसी में से अनेकानेक पुरुष भी उमपन्न िोते रिते िैं।

एतद्योनीतन भूतातन सर्वाीत्युपधारय ।

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभर्ः प्रलयस्तथा ।। ६।।

६. इस (परा प्रकृतत) को सर्स्त भूतों का गभ-वस्थान (अथात्व ्जननी) जान; र् ैंसंपूि वजगत् ्की उत्पवत्त हूँ और इसका लय भी हूँ।

यिा ँइस तरि परम् ्पुरुष, पुरुषोत्र्म, और परा प्रकृनत को एकीभूत कर हदया गया िै; उर्न्िें एक िी यथाथतिा को देखने के दो तरीकों के रूप में रखा गया िै। कयोंकक जब श्रीकृष्ण यि घोवषत करते िैं कक म ैंिी इस जगत् ्को उमपवर्त् और प्रलय दोनों िूँ, तो यि प्रमयक्ष िै कक उनकी सर्ता की यि परा-प्रकृनत िी िै जो ये दोनों िी चीजें िैं। अपनी अनन्त चेतना में परम् ्पुरुष िी आममा िै और परा-प्रकृनत इस आममा की सर्ता की अनंत शजकत या संकल्प िै, - यि अपनी अंतननहिित या सिज हदव्य शजकत और परम् ्हदव्य कम िसे संपन्न उनकी अनन्त चेतना िी िै...।

इस तरि, परमामम या अध्यामम सर्त्ा की परा प्रकृनत िमें सर्त्ा का ववश्वातीत मूलभूत समय और शजकत, तथा ववश्व के अंदर अशभव्यजकत के शलए आध्याजममक समय का प्रथम आधार दोनों िी प्रदान करती िै। परन्तु उस परा प्रकृनत और इस अपरा प्रकृनत में संयोजक क़िी किााँ?

परमेश्वर और परा प्रकृनत दोनों अववभाज्य रूप से अशभन्न िैं। केवल बौद्धधक ननरूपण के शलये यि भेद ककया जाता िै अन्यथा वास्तव में तो उनमें कोई भेद निीं ंिै। वैसे िी जैसे कक सजच्चदानंद भी तीन चीजें निीं िै, वि तो एक िी तत्त्व िै जजसके तीन लक्षण िैं। ऐसा भी निीं ंिै कक सजच्चदानंद में तीन चीजें अशभन्न रूप से एक िैं, बजल्क कोई ववभाजन िै िी निींकक एक या अनेक की कोई बात की जाए। उसी प्रकार परमेश्वर और परा प्रकृनत में कोई भी ववभाजन निीं िो सकता। िालाकाँक पुरुष और प्रकृनत के बीच तो कोई ववभाजन ककया जा सकता िै परंतु परा प्रकृनत और परमेश्वर में कोई भी भेद निींिो सकता। कई बार िम परम तत्त्व और परा प्रकृनत की एकता बतानेके शलए सूय िऔर उसके प्रकाश, अजग्न और उसके तेज की अशभन्नता जैसे कई उदािरण देते िैं, परंतु परा प्रकृनत और परमेश्वर तो तत्त्वतः इतने ंएकमय िैं कक ऐसे कोई भी उदािरण उनकी एकता को सिी रूप में ननरूवपत निीं ंकर सकते। भेद केवल तब आता िै जब यिा ंिाँम इसका ननरूपण करते िैं। जब िम अपनेआप में अंतननािित िैं, आममजस्थत िैं, अपनी गिन आंतररक चेतना में िैं और कोई अशभव्यजकत निीं िैतब उस भाव को आममा, परमामम या इसी प्रकार की अन्य कोई संज्ञाएँ देते िैं। और ज्यों िी उस भाव में अशभव्यजकत के शलए ककसी प्रकार का कोई संकल्प उहदत िोता िै तो उसे िम परा प्रकृनत कि देते िैं। और जजसे िम परा प्रकृनत किते िैं वि यहद उस आममजस्थत भाव में बिार अशभव्यकत न िो, या कफर कियाशील न िो तो भी भीतर तो वि अजस्तमवमान रिती िी िै कयोंकक बिार अशभव्यकत िोनेया न िोने से उसके अजस्तमव में अंतर निीं प़िता। परम तत्त्व में सभी संभावनाएँ गशभत िैं, कोई भी नई चीज या तत्त्व निीं ंआ सकता। और जब परम तत्त्व स्वाममलीन िोता िै तब ऐसे में कोई अशभव्यजकत निींिोती और जब उसमें ककसी प्रकार का कोई संकल्प उदय िोता िै तब उसकी कियाशजकत परा प्रकृनत अशभव्यजकत में प्रकट िो जाती िै अन्यथा वि उसी परम तत्त्व में अंतननािित रिती िै। इसशलए परमेश्वर और परा प्रकृनत में किीं ंकोई भेद िी निीं िै। जब िम चेतना की श्रृंखला में नीचेउतरते िैं केवल तभी अधधकाधधक यि भेद िोता पाते िैं।

किने ंका तामपय यिै कक उस परम तत्त्व के दो भाव िैं। एक भाव िै वि जब वि अपनेआप में लीन रिता िै, स्वाममकेंहरत रिता िै, तब कोई अशभव्यजकत आहद का तो कोई प्रश्न िी निीं उठता। और दूसूरे भाव में वि अशभव्यजकत की ओर अशभमुख िोता िै तो इसे परा प्रकृनत किते िैं। असंख्यों ब्रह्माण्ि, अनेकानेक स्तरों पर अनेकानेक जगत् ्और सृजष्टया ाँतथा उनके प्रलय आहद तभी िो सकते िैं जब परम तत्त्व ने अशभव्यजकत की ओर अपनेको अशभमुख ककया िो कयोंकक जब वि परम तत्त्व अपनेअंतर में िी ननहित िो तब तो कोई सृजष्ट या प्रलय का प्रश्न िी निींउठता। इसशलए यि संपूण िब्रह्माण्ि और कुछ निींकेवल परा प्रकृनत का िी रूप िै। उसके अनतररकत तो कुछ िै िी निीं। यिााँ तक कक जजन क्षर पुरुष, अक्षर पुरुष और पुरुषोर्त्म की िम बात करते िैं वे भी मूलभूत रूप से परा प्रकृनत के िी अंग िैं। गीता किती िै 'पराप्रकृनतजीवभूता' अथात् ्परा प्रकृनत िी जीव या आममा बनी िै। इसशलए आममा और बािरी प्रकृनत दोनों परा प्रकृनत िी िैं। िालाकाँक परा प्रकृनत के अनतररकत और कुछ िै

ी र्निीं परंतुचचािकी सुववधा के शलए िम इसमें परा और अपरा का भेद करते िैं। जब िम चेतना की ननमनतर श्रेखणयों में आते िैं तब िमारी चेतना के शलए परा प्रकृनत की किया स्पष्टतः गोचर र्निींिोती और तब िम इसे अपरा प्रकृनत किते िैं। परंतु वास्तव में तो परा प्रकृनत के अनतररकत दूसूरी कोई चीज िै िी र्निीं। श्रीअरववन्द के योग में भी परा प्रकृनत को, हदव्य प्रकृनत जगदंबा को परम स्थान प्रदान ककया गया िै। यिााँर्मिें यि सतकिता बरतनी िोगी कक िम जो सामान्य पुरुष-प्रकृनत का जैसा भेद करते िैं इसे वैसा न समझ बैठना चाहिये। सांख्यों का जो पुरुष-प्रकृनत का भेद िै उसमें तो उनके बीच एक भारी खाई िै और इसीशलए कम िका कोई आधार र्निीं ंरिता। परंतु भगवान् ्की हदव्य प्रकृनत में तो क्षर-अक्षर सभी समाहित िैं इसशलए इस भाव में कमों को ववजयी रूप से ककया जा सकता िै और ऐसे भाव में त्रत्रगुणों का तो कोई प्रभाव िी र्निीं ंिोता। अवश्य िी बिारी प्रतीनत में िमें वे कम ित्रत्रगुणमय प्रतीत िो सकते िैं पर वास्तव में तो वे एक दूसूरी िी चेतना से संचाशलत िोतिें जजस पर गुणों का कोई प्रभाव र्निींिोता। अजुनि भी जब पूछता िै कक ऐसे भाव में जस्थत व्यजकत के कया लक्षण िोतिें तब भगवान् ् उसे कुछ बिारी लक्षण बतातेअवश्य िैं परंतु वे भी मात्र कुछ ऐसे सूचक िोते िैं जो अजुनि की बुद्धध के शलए ग्राह्य ी कियोंकक वि इतना ववकशसत र्निीं िै कक इससे अधधक लक्षण उसे बताए जा सकें और दूसूरे, अपने आप में यि भाव या यि तत्त्व इतना गिरा िै कक यि ककन्र्िीं भी लक्षणों में बंध भी र्निीं सकता। इसशलए िो सकता िै कक उस भाव में जस्थत व्यजकत के इस वणनि के अनुरूप लक्षण िों और यि भी संभव िै कक उसमें ऐसे ककन्र्िीं भी लक्षणों का सवथिा अभाव िो कयोंकक अपनेआप में वि भाव और वि जस्थनत तो समस्त लक्षणों से, समस्त वणनिों से, ककन्र्िीं भी मानशसक ननरूपणों से - भले िी वे ककतने भी ऊाँचेकयों न िों - सवथिा परे िै।

अब आगे इस पर प्रकाश िाला जाएगा कक िालाकाँक परा प्रकृनत के अनतररकत तो ककसी चीज का कोई अजस्तमव िै िी र्निीं ंतो भी ननरूपण के शलए िम परा और अपरा प्रकृनत के बीच में भेद करते िैं। तो कफर वि संयोजक क़िी कौनसी िै जो इन दोनों को जोि़ती िै। और इस क़िी को ढूाँढ़ना और उसे समझना इसशलए भी आवश्यक िो जाता िै कयोंकक िमारी चेतना में तो िमें इनमें भेद हदखाई देता िै।

प्रश्न : अपरा प्रकृनत में िमें जो ववकृनतया ाँहदखाई देती िैं कया वे परा प्रकृनत के कारण िी िैं?

उत्तर : 'ववकृनतया' ाँ तो िम अपनेदृजष्टकोण के कारण किते िैं जबकक वास्तव में तो कोई ववकृनत िै र्निीं। जब सभी कुछ स्वयं परा प्रकृनत और उनकी किया और उनके संकल्प की िी अशभव्यजकत िै तब ववकृनत का तो कोई प्रश्न िी र्निीं ंउठता। इसशलए एक दृजष्टकोण से तो सब कुछ सवाांग रूप से पूण िैि। परंतुइतना कि सकते िैं कक इस प्रकार की सृजष्ट के शलए, इस प्रकार के िमववकास के शलए, भगवान् ्की इस प्रकार की ववशशष्ट अशभव्यजकत के शलए जजन्र्िें िम ववकृनतया ाँआहद किते िैं, वे ेसब भी आवश्यक थीं। ये सभी चीजें, सभी पररजस्थनतयााँ िमववकास के शलए आवश्यक थीं। परंतुअष्टधा प्रकृनत के िोने ेके कारण िमारी ववभकत मानशसक चेतना में यहद िमें ये ववकृनतया ाँनजर न आएँ तो िम उन्र्िें छोि़कर आगे बढ़नेके शलए प्रेररत र्निीं िोंगे। िमारा उन्र्िें सुधारकर आगे बढ़नेका प्रयास भी परा प्रकृनत की िी योजना का एक अंग िै। इसे िम अपनेअंदर अंतननहिित एक ऐसे ववधान के रूप में देख सकतिें जो िमें चेतना के अधधकाधधक उच्चतर सोपानों तक उठा ले जानेको

पे्रेररत करता ि ै। यहद यि अंतननगहित ववधान न िो तो िमारी मानव चेतना में िम कभी आरोिण करने ेकी अभीप्सा िी न करेंगे और अपनेवतमिान स्तर पर िी संतुष्ट बनेरिेंगे। और ऐसा करना तो िमववकास के सारे उद्देश्य को िी ननष्फल बना देना िोगा। यहद अज्ञान या अववद्या न िो तो जजसे िम ज्ञान की संज्ञा देते िैं सदा उसी में फंसे रिेंगे। पर भगवत्त्त्वं तो ककसी भी ज्ञान में बाँध िी निीं सकता चािे वि ककतना भी ऊँचा ब्रह्मज्ञान िी कयों न िो। इन सभी ववपययियों के द्वारा िी िम आगे बढ़ते िैं कयोंकक ज्यों िी मानशसक चेतना आती िै मयों िी वि चीजों को ववभकत करने लगती िै। इसीशलए सभी मानशसक सूत्रों के ववपययि भी अपनेउधचत समय और उधचत स्थान पर उतने िी सिी िोते िैं। अतः जिााँभी िमववकास की प्रकिया िै विााँइन ववपययियों का अजस्तमव िै। इसशलए परमाममा एक-अनेक, अनंत-सीशमत, समय-असमय, गुण-ननगुणि, वैयजकतक-ननवैयजकतक, चेतन-अचेतन आहद के िमारे सभी सूत्रों से सवथिा परे िैं। वे ेसच्चे रूप में स्वयं-सत्, ् स्वतंत्र और स्वयंभू िैं।

त्तः परतरं नातयजत्कंधचदजस्त धनञ्जय ।

र्तय सर्मवर्दं प्रोतंसूत्रे ेर्णिगिा इर् ।। ७।।

७. हे धनञ्जय! र्ुझ से परे अतय कुछ परर् ्नहीं ेहै; जो कुछ भी है ई सब र्ेरे ऊपर ही सूत्र र्ें वपरोये र्णियों के सर्ान गुँथा हुआ है।

परन्तु यि केवल एक ऐसी उपमा िै जजसे िम एक सीमा तक िी काम में ले सकतेिैं, उसके आगे निीं; कयोंकक सूत्र के द्वारा इन मखणयों को केवल परस्पर संबंध में िी बनाए रखा जाता िै, और इन मखणयों का उस सूत्र के साथ और कोई ऐकय या संबंध निीं ंिोता शसवाय इसके कक इस परस्पर संबंध के शलए वे उस पर आधश्रत रिते िैं। इसशलए िम इस उपमा से उस उपमेय की ओर िी चलें जजसकी कक यि उपमा िै। परमाममा की पराप्रकृनत अथात् ्परमाममा की अनन्त चेतन-शजकत िी, जो आममववद्, सवववद् और सवज्ञि िै, इन सब गोचर पदाथों को परस्पर संबद्ध ककये रखती िै, उनके अन्दर व्याप्त िोती िै, उनमें ननवास करती तथा उन्िें धारण करती िै और उन्िें अपनी अशभव्यजकत की व्यवस्था के अन्दर बुन लेती िै। यिी एक परा शजकत न केवल सबके अन्दर 'एकमेव' [illegible] अन्दर जीव के रूप में, अथात् भी प्रकट िोती िै; यिी प्रकृनत के संपूण ित्रैगुण्य के सार-रूप में भी प्रकट िोती िै। अतएव ये समस्त दृश्य जगत् ्के पीछे प्रच्छन्न अध्यामम-शजकतयााँ िैं। यि परम् ्गुण त्रत्रगुण की किया निीं ंिै, त्रत्रगुणों के कम ितो गुणों का िी किया-व्यापार िै, उनका आध्याजममक सार-तत्त्व निीं। अवपतु, ु वि सार-तत्त्व अंतननगहित, एकमेव तत्त्व िै, जो कक एकमेव िोनेपर भी इन सभी ऊपरी ववववधताओंकी शभन्न-शभन्न अंतःशजकत भी िै। यि हदव्य संभूनत (Becoming) का मूलभूत समय िै, एक ऐसा समय जो इसकी सभी बाह्य प्रतीनतयों को धारण करता िै तथा उन्िें आजममक तथा हदव्य अथ िप्रदान करता िै।

अतः िमारे अंदर जो आममतत्त्व िै, विी अपरा को परा प्रकृनत से जोड़ता िै। परा प्रकृनत िी एकमेवाद्ववतीयं िै। जब व्यजकत अपने आममतत्त्व में जस्थत िोता िै तब वि अपने मानशसक और प्राखणक बंधनों से मुकत िो जाता िै और इन पर शासन कर सकता िै, इन्िें संशोधधत और रूपांतररत कर सकता िै। त्रत्रगुणों का

सारा आधार िमारी चैमय सर्ता, िमारी आमम सर्ता पर िी आधाररत िै। व्यजष्टगत आममा िी इनका आधार िै और विी परा प्रकृनत की किया के साथ इर्न्िें जोड़ती िै। गीता के अंदर आगे चलकर स्वभाव और स्वधम िका वणनि आएगा। एक िोती िै िमारी बाह्य त्रत्रगुणमयी प्रकृनत और इसके पीछे िोता िै िमारा 'स्वभाव' अथात् ि्वि ववशशष्ट आंतररक गठन जजसके द्वारा िमें अपनी ववशशष्ट अशभव्यजकत करनी िोती िै। और उस स्वभाव के पीछे िोता िै मद्भाव। इसशलए यि स्वभाव िी बाह्य प्रकृनत और मद्भाव के बीच की कड़ी िै। भारतीय संस्कृनत में सदा िी यि बात सुववज्ञात री िै इसशलए सदा िी स्वभावननयत कम िपर बल हदया जाता रिा िै। किनेका अथ िैै कक जीव के अंदर जो व्यजष्टगत आममतत्त्व िै, जो हदव्य संभूनत िै, भगवान् ्की वैयजकतक हदव्य उपजस्थनत िै वि परा प्रकृनत की िी संभूनत िै और उसी के द्वारा वि अशभव्यकत िोती िै और विी वि तत्त्व िै जो िमें परा प्रकृनत से जोड़ता िै।

vii.12

त्रत्रगुणों की कियाएँ तो बुद्धध, मन, इजन्रय, अिंकार, प्राण तथा ज़ि पदाथ िके केवल सतिी अजस्थर भाव ि 'साजत्त्वका भावा राजसास्तामसाश्च', जबकक यि सारभूत तत्त्व 'स्वभाव' अथात् ि्संभूनत की मूल सनातन अंत:शजकत िै। यिी 'स्वभाव' समस्त भूतभाव या अशभव्यजकत का तथा प्रमयेक जीव का मूल ववधान िै; यिी प्रकृनत का मूल तत्त्व िै और यिी प्रकृनत के ववकास का कारण िै। यि प्रमयेक प्राणी में ननहित तत्त्व िै, जो कक परामपर भगवान् ्के िी आममावभावि से, ईश्वर के 'मद्भाव' से ननकलता िै और उससे सीधे समबद्ध रिता िै। भगवान् ्के इस 'मद्भाव' का 'स्वभाव' के साथ और 'स्वभाव' का बाह्य भूतभावों के साथ अथात् ि्भगवान् ्की परा प्रकृनत का व्यजष्टपुरुष की आममप्रकृनत के साथ और इस ववशुद्ध मूल आममप्रकृनत का त्रत्रगुणाजममका प्रकृनत की शमधश्रत और द्वन्द्वमय िीिा के साथ जो समबन्ध िै उसी में उस परा शजकत और इस अपरा प्रकृनत के बीच की कड़ी शमलती िै। अपरा प्रकृनत की ववकृत शजकतयााँ और उसकी संपदाएँ उसे परा प्रकृनत की परम शजकतयों और समपदाओं से िी प्राप्त िैं और इसशलए अपरा प्रकृनत की शजकतयों और संपदाओं को अपना मूलस्रोत और वास्तववक स्वरूप तथा अपने सब कमों और गनतयों के मूल धम िको जाननेके शलए परा शजकत की शजकतयों और संपदाओं के समीप लौट जाना िोगा। इसी प्रकार यि जीव, जो यिााँ प्रकृनत के गुणों की बंधनयुकत, दीन और ननमनतर िीिा में शलप्त िै, यहद इससे ननकलकर हदव्य और पूण िोना चािे तो, उसे अपनेस्वभाव के मूलभूत गुण के ववशुद्ध कम िका आश्रय लेकर अपनेस्वयं के स्वरूप के उस उच्चतर धम िमें लौट जाना िोगा जजसमें वि अपनी हदव्य भागवत् ्प्रकृनत के संकल्प, शजकत, सकिय तत्त्व और परम् ्कमभिाव को खोज सकता िै।

जैसा कक पिले भी यि ववशद चचाि िो चुकी िै कक स्वभावों को मोटे रूप से चार श्रेखणयों में बााँटा गया िै और ये चार श्रेखणयााँ जगदंबा की चार मिाशजकतयों - मिेश्वरी, मिाकाली, मिालक्ष्मी और मिासरस्वती - पर आधाररत िैं। यद्यवप ककसी व्यजकत के स्वभाव में ये चारों िी मिाशजकतयााँ सदा मौजूद रिती िैं, कफर भी इनमें से ककसी एक या अधधक का प्रभाव अधधक िो सकता िै और उसी के आधार पर उसका स्वभाव तय िोता िै। परंतु ककसी एक स्वभाव के अंतगति भी अनंत ववववधताएँ िोती िैं। उदािरण के शलए क्षत्रत्रय स्वभाव िोने ेपर भी कोई भी दो क्षत्रत्रय एक समान निीं ंिोतेऔर प्रमयेक में एक ववशशष्ट प्रकार का संतुलन िोता िै और वि भी समय-समय पर शभन्न-शभन्न िोता रिता िै। इस स्वभाव का पालन करना िी स्वधम िै। परंतुइस स्वभाव का पालन करना

तभी तक आवश्यक माना जाता था जब तक कक व्यजकत इतना ववकशसत न िो जाए कक वि सचेतन रूप से ककसी हदव्य मागदिशनि का अनुसरण करने के शलए तैयार िो जाए। यि हदव्य मागदिशनि ककसी गुरु के रूप में, ककसी पुस्तक के रूप में या कफर अन्य ककसी भी रूप में प्राप्त िो सकता िै। और जब यि मागदिशनि प्राप्त िो जाए तब व्यजकत पग-पग पर अपने अिं के स्थान पर उसे प्रनतजष्ठत करके आगे बढ़ सकता िै। तब कफर व्यजकत को अपने स्वभाव आहद के ववषय में ववचार करने की आवश्यकता निीं ंरिती कयोंकक अब उसे सीधे िी गुरु द्वारा हदशाननदेश प्राप्त िोने लगते िैं। उदिारण के शलए श्रीअरववन्द आश्रम के अंदर श्रीमाताजी की शरण में आने के बाद व्यजकत को इस बात की कोई परवाि निींरिती कक उसका स्वभाव क्षत्रत्रय का िै या ब्राह्मण का या कफर अन्य ककसी का। उनकी शरण में आनेपर तो कफर वे िी वास्तव में जानती िैं कक व्यजकत के शलए सवश्रेि्ष्ठ कम िकौनसा िै और उसी का पालन करना व्यजकत का एकमात्र कतव्यिं कम िबन जाता िै।

यि बात इसके तुरंत बाद वाले श्लोकों से िी स्पष्ट िो जाती िै जजसमें गीता यि दशानिेके शलए अनेक उदिारण देती िै कक ककस प्रकार भगवान् अपनी परा प्रकृनत की शजकत से इस ववश्व के चेतन तथा अचेतन किे जानेवाले प्राखणयों में अशभव्यकत िोतिें और उनमें किया करते िैं।

रसोऽमिप्सुकौन्तेय प्रभाजस्म शशशसूययोिः ।
प्रणविः सववदिेषु शब्दिः खे पौरुषंनृषु ।। ८।।

८. िे कुन्तीपुत्र अजुनि! म ैंजलों में रस' िूाँ, चन्द्रमा और सूय िका प्रकाश िूाँ, समस्त वेदों में प्रणव (प्रणवाक्षर ॐ) िूाँ, आकाश में शब्द और मनुष्यों में मनुष्यमव िूाँ।

पुण्यो गन्धिः पृधृथव्यां ंच तेजश्चाजस्म ववभावसौ ।
जीवनंसवभिूतेषु ुतपश्चाजस्म तपजस्वषु ।। ९।।

९. और म ैंपृथ्वूी में पववत्र गंध िूाँ और अजग्न में तेज िूाँ, सभी भूतों में (उनका) जीवन िूाँ, तपजस्वयों में म ैंतप िूाँ।

बीजंमांसवभिूतानां ंववद्धध पाथ िसनातनम् ्।
बुद्धधबुद्धिधमतामजस्म तेजस्तेजजस्वनामिम् ्।। १० ।।

१०. िे पृथापुत्र अजुनि! मुझेसमस्त भूतों का सनातन बीज जान; म ैंबुद्धधमानों की बुद्धध िूाँ और तेजजस्वयों का तेज िूाँ।

प्रमयेक दृष्टांत में उस मूलभूत गुण की िी ऊजाि िै जजसे उस ववशशष्ट लक्षण के रूप में हदया गया िै जो उन भूतों की प्रकृनत में भागवत् शजकत का संकेत करता िै - उन सब भूतों में से प्रमयेक जो कुछ भी वि इस अशभव्यजकत में बन गया िै उसके शलए वि इस मूलभूत गुण की ऊजाि पर िी ननभरि करता िै। भगवान् कफर किते िैं, "सभी वेदों में म ैं प्रणव िूाँ," अथाित् वि मूल ध्वनन ॐ िूाँ जो श्रुनत-प्रकाशशत शब्द की समस्त शजकतशाली सृजनामसक ध्वननयों का

आधार ि; ॐ िी ध्वनन और वाणी की शजकत का वि एकमात्र सावभौशमक संववन्यास या सूत्रण ि जो कक वाक् और शब्द की समस्त आध्याजममक शजकत और अंतननहित संभावना समाहित रखता ि और उन्िें एकत्रत्रत रखता ि, इन शजकतयों और संभावनाओं को समजन्वत करता ि और इन्िें अपने अंदर से उन्मुकत करता ि, प्रकट करता ि। इसी में से वे अन्य ध्वननयाँ ननकलती और इसी का ववकास मानी जाती िैं जजनमें से भाषाओंके शब्द ननकलते और बुने ेजाते िैं। इससे यि बात सवथिा स्पष्ट िो जाती िै। इजन्रयों के, प्राण के, ज्योनत, बुद्धि, तेज, बल, पौरुष, तप आहद के बाह्य प्राकृत ववकास परा प्रकृनत की चीज निीं िैं। परा प्रकृनत अपनी आममस्वरूप शजकत में वि मूलभूत गुण ि जो 'स्वभाव' का गठन करती ि। आममा की जो शजकत इस प्रकार व्यकत िुई ि, चेतना की ज्योनत तथा वस्तुओं में उसके तेज की जो शजकत ि जो अपने ववशुद्ध मूल स्वरूप में प्रकट िुई ि, विी आमम-स्वभाव ि। वि ऊजिा, ज्योनत, शजकत िी वि सनातन बीज ि जजसमें से अन्य सब चीजें ववकशसत और उमपन्न िुई िैं तथा इसी की पररवतनिशीलताएँ और लचीली अवस्थाएँ िैं। इसीशलए इस श्रृंखला के बीच में गीता एक सवसिामान्य शसद्धान्त के तौर पर यि बात कि जाती ि कक, "ि पाथ,ि मुझे ेसब भूतों का सनातन बीज जान।" यि सनातन बीज आममा की शजकत, आममा की सचेतन इच्छा ि, वि बीज ि जजसे, गीता ने जैसा कक अन्यत्र बतलाया ि कक, भगवान् ्मित् ्ब्रह्म में, ववज्ञान xiv3 ववस्तृतृता में आधान करते िैं, स्थावपत करते िैं और उसी से सब भूतों की बाह्य जगत् ्में उमपवर्त् िोती ि। यिी आममशजकत का वि बीज ि जो अपनेआप को सब भूतों में मूलभूत गुण के रूप में प्रकट करता ि और उनका स्वभाव बनता ि।

इस मूलभूत गुणरूपा शजकत और अपरा प्रकृनत की इजन्रयगोचर उमपवत्यों के बीच, अपनी शुद्धावस्था में मूल वस्तुऔर उस वस्तु के अपर या ननमनतर बाह्य रूपों के बीच जो यथाथ िभेद ि, वि इस श्रृंखला के अन्त में बिुत स्पष्ट रूप से दशािहदया गया ि।

यिा ँमुख्य बात यि ि कक अंतननहित स्वभाव के रूप में परा-प्रकृनत िी प्रकट िोती ि और स्वभाव िी सभी बािरी कियाकलाप का सनातन बीज ि। िालाकँक गीता तो इस ववषय में प्रवेश निींकरती परंतु वेदों में इसका ववस्तृत् वणनि ि कक ककस प्रकार समपूण िसृजृष्ट 'शब्द' के स्पंदन से बनती ि। श्रीअरववन्द से भी िम यि आशा निीं कर सकतेकक गीता पर अपनी टीका में वे ेइस ववषय को ववस्तार से समझाएँ कयोंकक ऐसा करना ववषयांतर िोगा, पर कफर भी इस ओर वे ेसंकेत अवश्य कर रिे िैं। सभी लोकों में ऊपर से लेकर नीचेतक एक अटूट श्रृंखला ि। इसीशलए जब गुह्य जगतों में जाकर व्यजकत कोई ववशशष्ट स्पंदन पैदा करता ि तब उसका प्रभाव िमारे भौनतक जगत् ्तक भी आता ि।

----

*अशिाििूअपनी परा प्रकृनत में स्वयं ंभगवान् ्िी इन सब ववशभन्न इजन्रय-संबंधों के मूलू में जस्थत शजकत या तेजे िैं जजनके कक प्राचीन सांख्य प्रणाली के अनुसार (पंचमिाभूत) आकाशीय, तैजस, वैद्युनतक तथा वायवीय, जलीय तथा ज़ितत्त्व के अन्य मूलूभूत रूप भौनतक माध्यम िैं। ये पंचमिाभूत अपरा प्रकृनत के पररमाणाममक (quantitative) या भौनतक तत्त्व िैं और ये िी सब भौनतक रूपों के आधार िैं। पंचंतन्मात्राएँ - रस, स्पश,ि गंधाहद - अपरा प्रकृनत के गुणाममक (qualitative) तत्त्व 31 hat 9 तन्मात्राएँसूक्ष्म शजकतयााँिैं जजनकी किया के द्वारा िी इजन्रयगत चेतना का ज़ितत्त्व के स्थूल रूपों के साथ

समबन्ध स्थावपत िोता िै, - वे िी बाह्य सृजृष्ट के समस्त ज्ञान का आधार िैं। भौनतक दृजष्टकोण से ज़ितत्त्व िी यथाथतिा िै और इजन्रय ववषय उसी की उपज िैं; परन्तु आध्याजममक दृजष्ट से समय इससे ववपरीत िै। ज़ितत्त्व और भौनतक माध्यम स्वयं ंिी (ककसी अन्य सर्त्ा से) व्युमपन्न शजकतयााँ और मूलतः केवल ऐसेस्थूल तरीके या अवस्थाएँ िैं जजनमें जगत् ्के भीतर प्रकृनत के त्रत्रगुण की कियाएँ जीव की इजन्रय-चेतना के समक्ष प्रकट िोती िैं। एकमात्र मूल सनातन समय िै प्रकृनत की ऊजिाअथात्ि्सर्त्ा की शजकत व गुणवर्त्ा जो इजन्रयों के द्वारा जीव के सममुख इस प्रकार स्वयं ंको प्रकट करती िै। और इजन्रयों के अन्दर जो कुछ सार-तत्त्व िै, परम् ्आध्याजममक और अमयंत सूक्ष्म िै, वि तत्त्वतः विी वस्तु िै जो वि सनातन गुणवर्त्ा और शजकत िै। परंतु 'प्रकृनत' के अन्दर सर्त्ा की जो ऊजिा या शजकत िै वि अपनी ननज प्रकृनत के रूप में स्वयं भगवान् ्
िी िैं; इसशलए प्रमयेक इजन्रय अपने ववशुद्ध स्वरूप में विी प्रकृनत िै, प्रमयेक इजन्रय सकिय सचेतन-शजकत में जस्थत भगवान् ्िी िै।

मिारे वैहदक ऋवषयों का इन जगतों में सिज प्रवेश था जजस कारण वे ेवािाँके ववधान को इस ज़ि-जगत् ्तक के ववशभन्न लोकों में कियाशील कर सकतेथे। इसीशलए वैहदक मंत्र इतने शजकतशाली िैं। वे अपनी बीज ध्वनन से गुह्य शजकतयों की किया को यिा ाँसकिय कर सकतेिैं जजनका प्रभाव अप्रमयाशशत िोता िै। िमारे ऋवषयों ने उस सवोच्च समय को त्रबना ककसी प्रकार के शमश्रण के बीज मंत्रों के रूप में, वाणी, ववचार आहद के रूप में धरती पर प्रकट ककया जजनके द्वारा धरती पर सामंजस्य और हदव्यतर चेतना स्थावपत की जा सकती िै। इन उच्चतर शजकतयों के प्रभाव के कारण िी वैहदक काल में, सतयुग में, ननमनतर शजकतयों को उनकी किया करने े का अधधक
मौका निीं शमलता था कयोंकक उन पर उच्चतर शजकतयों का अंकुश रिता था। ऐसे में व्यजकत स्वभाव ननयत कम ि सिज रूप से कर सकता था। परंतु चूाँकक आममतत्त्व को अधधकाधधक ननमनतर जगतों में उतरकर उनके पदाथों को अपने िाथ में लेकर उन्िें रूपांतररत करना था इसशलए आममतत्त्व को मानशसक, प्राखणक और भौनतक चेतना में उतरना पि़ा जजसके कारण कक पूव िमें ननमनतर चीजों पर जैसा अंकुश था वि निींरि पाया। िालाकाँक इन सब से भी कोई फकि निींपि़ता और अब भी सभी कुछ का सनातन बीज विी आममतत्त्व िी िै। इसशलए कुछ भी ननष्फल निीं ंिुआ िै। इस प्रकार यिा ाँइस परा और अपरा प्रकृनत के बीच की श्रृंखला बता रिे िैं जजनके बीच की ि़िी िै
मिारा स्वभाव जो कक परा प्रकृनत का िी रूप िै। परंतु वि केवल स्वभाव से िी सीशमत निीं ंिो जाती। वि तो स्वभाव के अलावा और सब कुछ भी िै**बलंबलर्तां चाहं कार्रागवर्र्जजतवर् ्।**

धर्ावर्रुद्धो भूतेषु ुकार्ोऽजस् भरतषभव ।। ११।।

११. हे भरतर्ंमियों र्ें श्रेष्ठ अजुनव! र् ैंबलर्ान् ्र्नुष्यों र्ें कार् और राग से रदहत बल हूाँ। प्राणियों र्ें ऐसी कार्ना हूाँ जो उनके धर् वके वर्रुद्ध न हो।

पिला कथन कोई कहठनाई निीं ंदेता। बलवान् ्पुरुष के अन्दर बलतत्त्व की भागवती प्रकृनत िोने ेपर भी वि पुरुष कामना के और आसजकत के वश में िो जाता िै, पाप में धगर जाता िै और पुण्य की ओर जानेके शलए संघष िकरता ि। इसका कारण यिी िै कक वि अपने समस्त जीवनसंबंधी कम िकरते समय नीचेउतरकर त्रत्रगुण की पक्ि में आ जाता िै, अपने कम िको ऊपर से, अपनी मूल भागवती प्रकृनत के द्वारा संचाशलत निीं करता। उसके बल का हदव्य स्वरूप इन ननमन जीवनसंबंधी कियाओं से ककसी प्रकार प्रभाववत निीं िोता, प्रमयेक तमाच्छादन और प्रमयेक स्खलन के बाद भी वि तत्त्वतः वैसा का वैसा िी बना रिता िै।... पर भगवान् ्कामना, 'काम', कैसे िो सकते िैं? कयोंकक इस कामना को िमारा मिाशत्रु बताया गया िै जजसे मार िालनेको किा गया िै। पर वि कामना तो त्रत्रगुणाजममका ननमनतर प्रकृनत की कामना थी जजसका मूल उमपवर्त् स्थान तो रजोगुण िै, रजोगुणसमुद्भवः; और जब िम कामना की बात करते िैं तो प्रायः िमारा अशभप्राय इसी से िोता िै। पर यि जो दूसूरा आध्याजममक िै, वि एक ऐसा संकल्प िै जो धम िके ववरुद्ध निीं ंिै।

कया इस आध्याजममक 'काम' का अशभप्राय पुण्यशील कामना, नैनतक स्वरूप की एक साजत्त्वक कामना ि, कयोंकक, पुण्य अपनी उमपवर्त् और प्रवृर्त् में सदा साजत्त्वक िोता िै? परन्तु तब तो यिााँएक प्रमयक्ष ववरोधाभास उमपन्न िो जाएगा, - चूाँकक इसके ठीक बाद वाली पंजकत में सभी साजत्त्वक भावों को बताया गया िै कक वे भगवद्-जात निीं अवपतु केवल ननमनजात ववकार िैं। ननःसंदेि यहद ककसी को भगवान् ्के ककंधचत्–्मात्र भी सजन्नकट पिुाँचना िो तो पाप का पररमयाग करना िोता िै; परंतुइसी प्रकार यहद िमें भागवत्–्सर्त्ा में प्रवेश करना िो तो पुण्य को भी पार कर जाना िोता िै। पिले साजत्त्वक प्रकृनत प्राप्त करनी िोती िै, परंतु बाद में उससे भी परे जाना िोता िै। नैनतक या सदाचारी कम िकेवल शुद्धध के साधन िैं जजससे िम भागवत् ्प्रकृनत की ओर ऊपर उठ सकते िैं, पर वि प्रकृनत स्वयंिी द्विन्द्वातीत िोती िै, - और वास्तव में, यहद ऐसा न िोता, तो ववशुद्ध भागवत् ् उपजस्थनत या भागवत् ्शजकत ककसी ऐसे बलवान् ्मनुष्य में कभी न रि सकती थी जो राजशसक आवेगों (काम िोधाहद) के अधीन िोता िै। आध्याजममक अथ िमें धम िनैनतकता या सदाचार निीं ंिै। गीता अन्यत्र किती िै कक धम िवि कम ििै जो 'स्वभाव' के द्वारा अथिात् ्अपनी प्रकृनत के मूलभूत ववधान के द्वारा ननयत िोता िै। और यि स्वभाव अपने सारमम िमें आममा की िी अंतःजस्थत धचन्मय इच्छा और ववशशष्ट कमशिजकत का िी ववशुद्ध गुण ि। अतः कामना का अशभप्राय यिा ंिााँमारे अन्दर रिी िुई उस सोद्देश्य भगवहदच्छा से िै जो ननमन प्रकृनत के आमोद की निींअवपतु अपनी िी िििी और आममपूणति़ा के आनन्द की खोज करती और स्वतःशसद्ध िै; यि अजस्तमव के उस हदव्य आनन्द की कामना िै जो 'स्वभाव' के ववधान के अनुसार अपनी सज्ञान कमशिजकत को प्रकट कर रिा िै।

यिा ंजजस कामना की बात िो रिी िै उस कामना को भगवद्-संकल्प किते िैं। मनुष्य की कामना में और उस संकल्प में अन्तर िै। भगवान् ्जब अवतार रूप में प्रकट िोतेिैं तब भी वे कम ितो करते िी िैं, यिा ंतक कक घोर कम िभी करते िैं, परंतु ककसी कामना के वशीभूत िोकर निीं अवपतु अपनेसंकल्प की अशभव्यजकत के रूप में करते िैं। यि संपूण िसंसार कामना के वशीभूत निीं अवपतु भगवद्-संकल्प के आधार पर चल रिा िै जजसमें कामना तो उसे आच्छाहदत करने वाला एक ववकार िै जजसे िम अपनेअिं आहद के कारण कमों में जुड़ते िैं। इसशलए कामना

के कारण कमों में जो दोष आ जाते ैं वे दोष भगवद्-संकल्प की अशभव्यजकत रूप कम ◌में निीं रिते। कमों में जो समस्याएँ पैदा ◌ोती ैं वे तो उसके साथ कामना आहद के जुिने से पैदा ◌ोती ैं। यि अन्तर समझना बुित आवश्यक ै। इस कामना पर अंकुश लगानेके शलए शभन्न-शभन्न लोग शभन्न-शभन्न तरीके के उपाय बताते िैं।

कुछ लोगों का किना ै कक जो साजत्त्वक और धमि–सममत काय ि िों, समाज के द्वारा स्वीकृत ◌ों केवल वे ◌ी काय ◌ि करने ◌ेचाहिए। कुछ अन्य लोगों का मत ै कक इच्छाओंको जजतना अधधक दबाया जाता ै वे उतनी ◌ी अधधक बढ़ती ैं इसशलए मयाहिदत रूप से इच्छाओं-कामनाओंकी तुजष्ट स्वीकाय ि ै। इस तरीके की अनेक ववचारधाराएँ प्रचशलत ैं। परंतु श्रीअरववन्द किते ैं कक ◌मारा एकमात्र उद्देश्य ै धरती पर भागवत् ◌्साम्राज्य की स्थापना

करना जो कक केवल भागवत् ◌्इच्छा-शजकत की अशभव्यजकत से ◌ी संभव ै। इसशलए सच्चेकम ◌ि करनेके शलए कामना या संकल्प के बीच का यि भेद जान लेना अमयावश्यक ै। भागवत् ◌्इच्छा-शजकत की अशभव्यजकत ि किम ◌ि का सच्चा आधार ै जजसके त्रबना संसार में कम ि ◌ो ◌ी निीं सकते। त्रबना इस आधार के या तो व्यजकत पूरी तरि कामना के वशीभूत ◌ो कम ◌ि करता ै, या कफर कोई मध्यमाग ◌ि अपनाता ै या संन्यासमय जीवन त्रबताता ै या कफर

कमों को बलात् ◌्रोकनेका प्रयास करके अपनेअंदर द्वंद्व पैदा कर लेता ै और अपनी ◌ी शजकत क्षीण कर लेता ै। इन सबका ववस्तृत वणनि तीसरे अध्याय में आ चुका ै।

अब प्रश्न यि उठता ै कक कया व्यजकत केवल कामना से ◌ी कमों को करता ै? कुछ कम ◌ि ऐसे ◌ोते ैं जो कामना के कारण निीं ◌ंअवपतु यंत्रवत् ◌्अथवा अभ्यास के कारण ◌ोते ैं। कुछ का उमप्रेरण अवचेतन भागों से ◌ोता ै। वास्तव में इन सबके पीछे भागवत् ◌्संकल्प ◌ी काय ◌ि करता ै। परंतु अिं के कारण ◌म इनमें कामना के ववकार को जोि देते ैं जजससे कक कम ◌ि के पीछे ◌मारे मनोभाव में अशुद्धध आ जाती ै। जब ◌म सचेतन रूप से उस संकल्प से जुि जाते ैं तब ◌मारा शुद्धधकरण ◌ो जाता ै और ◌म भगवान् ◌्के यंत्र बन जाते ैं। अन्यथा काय ◌ि तो सदा ◌ी भागवत् ◌्संकल्प ◌ी करता ै परंतु ◌ुऐसा वि अप्रमयक्ष रीनत से, ◌मारी अवचेतना आहद के माध्यम से इच्छाओं, भयों, कामनाओं, लालसाओं को जब-जिा–ँजैसा आवश्यक ◌ो वैसा भाव उमपन्न करके करता ै कयोंकक ऐसा निीं ै कक व्यजकत अपनी कामना के कारण अपनेननजी सामथ्य ◌ि के बलबूते पर कुछ भी करने ◌ेको स्वतंत्र ै। परंतु यि एक बिी ◌ी ◌ीन प्रकिया ै जजसमें आममा की कोई गररमा निीं ◌ोती। जब व्यजकत भागवत् ◌्संकल्प की प्रेरणा से काय ◌ि कर रिा ◌ो तो इसका अथ ि ै कक उसे कम ◌ि का उमप्रेरण सीधे ऊपर से ◌ी प्राप्त ◌ोता ै, अवचेतना आहद के माध्यम से निीं। यहद यि उमप्रेरण ऊपर से सीधे ◌ी प्राप्त न ◌ो तो भागवत् ◌्संकल्प शुद्ध रूप में प्राप्त निीं ◌ं◌ो सकता। ◌ालाकाँक कम ◌ि तो अंततः सभी भागवत् ◌्संकल्प से ◌ी साधधत ◌ोते ैं परंतु ◌मारे ववकृत मनोवैज्ञाननक गठन के कारण उसके साथ ये कामना आहद ववकृनतयाँ जुि जाती ैं। पर जब एक ननजश्चत शुद्धधकरण ◌ो जाता ै तब ◌म यि संकल्प सीधे ◌ी प्राप्त कर सकते ैं, ककन्ि ◌ु अप्रमयक्ष रीनतयों की आवश्यकता निीं ◌ंरिती। तब कफर ◌मारी बुद्धध और मन का ◌स्तक्षेप कम ◌ोता जाता ै। संकल्प की किया में कोई भी दोष निीं ◌ं◌ोता। तभी तो भगवान् ◌्अजुनि को किते ैं कक 'यहद मेरे किने से तू सारे संसार को भी नष्ट कर देगा तो भी तुझे ◌ेकोई पाप निीं ◌ंलगेगा। और यहद तू धम ◌ि और नैनतकता आहद के ववचार से युद्ध करेगा तो तू ◌ूपाप का भागी ि ◌ोगा और कफर उसके अपने पररणाम ◌ोंगे।'

कम िकी सच्ची शजकत संकल्प से िी प्राप्त िोती ि जो सभी ननमन ववकारों से परे ि इसशलये भगवान् सभी कम िकरते िुए भी सभी ववकारों से रहित िैं। यि कोई नैनतक आदशों के अनुसार ककया गया कम िनिीं कयोंकक नैनतक आदशों के अनुसार करनेसे कम िअि और इच्छाओंआहद से मुकत निीं िो जाते। नैनतक आदश ितो और कुछ निीं बस ऐसे सामूहिक ववधान िैं जो कक मनुष्य की अननयंत्रत पाशववकता पर कुछ अंकुश लगानेका और उसकी मन, प्राण और शरीर की भौनतक तुजष्टयों को कुछ अच्छे रंग देने का काम करते िैं ताकक उनका भद्दापन हदखने में उतना भद्दा प्रतीत न िो। सच्चे कम ितो व्यजकत में स्वभाव रूप से जस्थत भगवान् की भागवत् प्रकृनत - परा प्रकृनत - द्वारा ककये जाते िैं और वे िी स्वभाव ननयत कम िोते िैं।

----

*इसके शलए III.43 पर की गई व्याख्या देखखए।

प्रश्न : यिाँ कि रिे िैं कक यहद ककसी को भगवान् के ककंधचत्–मात्र भी सजन्नकट पिुँचना िो तो पाप का पररमयाग करना िोता ि; परंतु इसी प्रकार यहद िमें भागवत्–सर्त्ा में प्रवेश करना िो तो पुण्य को भी पार कर जाना िोता ि। इसका कया अथ ि?

उत्तर : चूंकक भगवान् ककन्िीं भी ननयमों से बाध्य निीं िैं इसशलए ककसी भी अवस्था से व्यजकत अवश्य िी भगवान् के पास पिुँच सकता ि। अधम से अधम व्यजकत भी एकाएक परमामम के पास पिुँच सकता ि। परंतु गीता जजस सामान्य िम की बात करती ि वि ि तामशसक से राजशसक और उससे साजत्त्वक अवस्था की ओर आरोिण । गीता के सत्रिवें तथा अठारिवें अध्याय में ववस्तृत वणनि ि कक ककस प्रकार भोजन, यज्ञ, दान, तप, श्रद्धा आहद सभी तामशसक, राजशसक और साजत्त्वक प्रकार के िोते िैं। सामान्य िम में व्यजकत तामशसक और राजशसक अवस्था से सीधे िी परमामम की ओर निीं जा सकता। इसशलए साजत्त्वक गुणों का ववकास आवश्यक ि। और अंत में साजत्त्वकता को भी छोड़ कर आगे जाना िोगा कयोंकक आखखर साजत्त्वक गुण भी केवल शुद्ध मानशसक दृजष्टकोण के बंधन िी िैं इसशलए ये भी व्यजकत को परमामम की ओर निीं ले जा सकते। परमामम पाप-पुण्य से परे िैं परन्तु उनका आभास ननमन प्रकृनत में रिने पर निीं िो सकता। भगवान् की भजकत के द्वारा जब चैमय ववकशसत िोता ि तब उसे कोई भी चीज निीं बाँध सकती।

प्रश्न : भगवान् के ननकट पिुँचने और भगवान् में प्रवेश करने में कया अन्तर ि? **उत्तर :** तामशसक और राजशसक गुणों की अपेक्षा साजत्त्वक गुण भगवान् के अधधक ननकट ि परन्तु इससे भी व्यजकत भगवान् में प्रवेश निीं कर सकता। श्रीरामकृष्ण जी तामशसक, राजशसक और साजत्त्वक का उदािरण देते िुए इनकी तुलना लोिे, चाँदी और सोनेकी जंजीरों से करते थे। साजत्त्वक मनुष्य के शलए भी भगवान् में प्रवेश करना आसान निीं िै। इसीशलये श्रीकृष्णप्रेम किते थे कक साधना, मुजकत की इच्छा, ब्रह्मज्ञान आहद तो साजत्त्वक बातें िैं और साजत्त्वक व्यजकत इनकी इच्छा करेगा परन्तु मुकुन्द की सेवा िी ि जो ननत्रैगुण्य ि। वि सभी गुणों से परे ि। परन्तु सेवा तो अंतरामम का भाव ि। त्रबना अंतरामम के भाव के तो सदा लेन-देन या लाभ–िानन का िी ववचार रिता ि। भगवान् की या श्रीमाताजी की या कफर अपनेगुरु की सेवा करने में भी व्यजकत के मन में यि हिसाब-ककताब रिता ि कक उससे उसे आध्याजममक अनुभव प्राप्त िो जाएँगे या कफर अन्य दूसरे लाभ प्राप्त िो

जाएँगे। इसका ववश्लेषण करें तो ननष्कष ियि ननकलता िै कक िमारी दृजष्ट में अनुभव आहद िमारे इष्ट से अधधक श्रेष्ठ िो गए और जबकक वे इष्ट तो उन उद्देश्यों की पूनत िकरानेवाले साधन मात्र िी रि गए।

प्राय: िी िमारे हदन-प्रनतहदन के जीवन में िम सुनते िैं कक भगवान् की या गुरु की कृपा से व्यापार में लाभ िो गया या कफर नौकरी लग गई, या कफर बेटी की शादी िो गई या कफर ऐसी िी अन्य कोई मनोकामना पूण ि िो गई। चेतना के ऐसे स्तर पर भगवान् तो उसके इन सब साधनों को जुटाने के माध्यम िी िैं। इसीशलए गीता में भगवान् कित़े िैं कक चार प्रकार के मनुष्य मुझे भजते िैं - आर्त्,ि अथाथी, जजज्ञासुऔर ज्ञानी अथात्िवे जो कष्ट में िैं, वे जो संसार में लाभ की खोज करते िों, वे जजनको भगवान् को जाननेकी जजज्ञासा िो, और वे जजन्िेंकक आममस्वरूप का ज्ञान िो गया िो। इनमें से ज्ञानी को भगवान् स्वयं अपना स्वरूप िो बतातेिैं। विी भगवान् को उनके अपने शलए भजता िै बाकी तो सभी ककसी न ककसी ननहित िेतु के शलए भगवान् की ओर जाते िैं। श्रीअरववन्द के ननमन वचन इस पूरे ववषय को त्रबल्कुल स्पष्ट रूप से प्रकाश में ले आते िैं, "...योग का उद्देश्य िै भागवत् उपजस्थनत एवं चेतना में प्रवेश करना तथा उसके द्वारा अधधग्रिीत िो जाना, केवल भगवान् के शलए िी भगवान् से प्रेम करना, अपनी प्रकृनत में भगवान् की प्रकृनत से समस्वर िोना तथा अपनी इच्छाशजकत, किया-कलापों तथा जीवन में भगवान् का यंत्र िोना। इसका उद्देश्य कोई मिान् योगी या अनतमानव िोना (यद्यवप यि िो सकता िै) या कफर अिम् की शजकत, अशभमान या तुजष्ट के शलए भगवान् को जक़िना निीं िै। यि मोक्ष के शलए निीं िै यद्यवप इससे मुजकत प्राप्त िोती िै और अन्य सभी वस्तुएँ इससे प्राप्त िो सकती िैं, ककंतु ये िमारे उद्देश्य निीं िोने चाहिये। एकमात्र भगवान् िी िमारा उद्देश्य िै।" (CWSA 29, p. 21)

"ननश्चय िी भगवान् को केवल इसशलए खोजना कक 'उनसे' व्यजकत कया प्राप्त कर सकता िै, सिी मनोभाव निीं िै; परंतु यहद 'उन्िें' इन चीजों के शलए खोजना सवथा वजजत िोता तो संसार में अधधकांश लोग 'उनकी' ओर त्रबल्कुल भी अशभमुख निीं िोते। मेरे ववचार से यि इसशलए स्वीकाय िै ताकक वे एक आरंभ कर सकें - यहद उनमें श्रद्धा िै तो उन्िें उस सब की प्राजप्त िो सकती िै जजसकी वे मागँ करते िैं और ऐसा करते रिने को अच्छी चीज मानतेिैं, और तब सिसा ककसी हदन संयोगवश वे इस ववचार पर आ सकतेिैं कक अंतत: यिी एकमात्र करने योग्य वस्तु निीं िै, और भी श्रेष्ठतर तरीके व भाव िैं जजनके द्वारा व्यजकत भगवान् की ओर उन्मुख िो सकता िै।" (CWSA 29, p. 8)

व्यजकत में जो चैमय सर्त्ा िै वि तो भगवान् की ओर वैसे िी खखंची चली जाती िै जैसे नदी सागर की ओर, लोिा चुंबक की ओर तथा पतंगा लौ की ओर चलता िै। उसे कोई लाभ–िानन का ववचार निीं रिता। चैमय के अनतररकत अन्य भागों में तो सदा िी अपना कोई ननहित िेतु नछपा िोता िै। यहद व्यजकत के अंदर पूण िरूप से अपनेआप को अपनेइष्ट को दे देनेका ववचार आता भी िै तो उसके पीछे कोई लाभ या प्रनतफल की आशा न्यूनाधधक सूक्ष्म रूप से अवश्य नछपी िोती िै। इसशलए सूक्ष्म रूप से भी जब तक इस प्रकार का कोई ननहित िेतु या कोई प्रनतफल की आशा नछपी िोती िै तब तक भगवान् में िमारा प्रवेश ननवषद्ध िै। चैमय के अनतररकत अन्य ककसी भाग के द्वारा इस प्रमयाशा को निींशमटाया जा सकता। केवल विी िै जो भगवान् की ओर जाए त्रबना रि िी

निीं ंसकता। उसे इसकी कोई परवाि निीं ंकक उससे उसे लाभ िोगा या िानन िोगी, या कफर भले उसका सवनिाश िी कयों न िो जाए। जजसके अंदर यि भाव उहदत िो जाता िै ऐसा व्यजकत साधु ुमानने ेयोग्य िै। इसीशलये अपनी शशक्षा की पररणनत के रूप में गीता में भगवान् ्कितेिैं कक सब धमों का पररमयाग करके मेरी शरण में आ जा।

मीरा बाई के प्रसंग में आता िै कक उनके पनत भोजराज एक बित िी भले व्यजकत थे। उन्िोंने मीरा बाई से किा कक उन्िें उनके भजन-कीतनि से कोई आपवर्त् निीं ंिै बस वे केवल इतनी अनुमनत चािते िैं कक वे भी उनके भजन सुन सकें जजससे कक उनका भी कल्याण िो जाए। अब राजा सारे हदन राज-काज संभालते थे ेऔर देर रात को भजन सुनते ेथे। तब मीरा बाई को यि मिसूस िुआ कक इतना काय िकरने ेके बाद रात को जागकर भजन सुनना तो इनके स्वास्थ्य के शलए उधचत निीं िै। अतः उन्िोंने तय ककया कक वे एक ननजश्चत समय अपना गाना बंद करके अपनेकक्ष में जाकर ववश्राम करेंगी ताकक राजा भी समय से ववश्राम कर सकें। इसशलए मीरा बाई ने अपनेतय समय के अनुसार भजन गाना बन्द कर हदया और अपने कमरे में जाकर सो गईं। परंतुतभी उन्िें श्रीकृष्ण की मुरली सुनाई दी और उन्िोंने पुनः अवश रूप hat H भजन गाना शुरू कर हदया। सारी योजनाएँ, ननयम आहद सब बि गए। इसीशलए श्रीकृष्णप्ेरेम किते ेथे कक श्रीकृष्ण जिाँ छू देते िैं विींउन्मर्त् कर देते िैं। उनके स्पश िके बाद व्यजकत के सभी नैनतक आदश,ि शशष्टाचार-लोकाचार आहद के सभी ननयम तो बि जाते िैं।

ये चैर् साजत्त्का भार्ा राजसास्तार्साश्च ये ।

र्त्त एर्ेतत ताजतद्धध न त्र्हं तेषु तेर्तय ।। १२ ।।

१२. जो भार् हैं (प्रकृतत के आत्रपरक रूप हैं), जो कक साजत्त्क, राजमसक और तार्मसक हैं, रे् र्ेरे से ही हैं; ककंतु र् ैं उनर्ें नहीं हूाँ, रे् ही रुझर्ें हैं।

ननःसंदेि यिा ाँयि एक बित िी मित्त्वपूण िपर सूक्ष्म भेद िै। भगवान् ्कितेिैं, "म ैंमूलभूत ज्योनत, बल, कामना, शजकत, बुद्धध िूाँ पर उनसे उमपन्न िोनेवाले ये ववकार म ैंननज स्वरूप में निीं िूाँ नि उनमें म ैंरिता िूाँ परन्तु कफर भी ये सब मुझ से िी िैं और सभी मेरी िी सर्त्ा के अन्दर िैं।"... इस कथन का कया अशभप्राय िै कक भगवान् ्

भूतों में, अपरा प्रकृनत के रूपों और भावों में, साजत्त्वक भावों तक में निीं िैं, यद्यवप वे सब िैं उन्िीं की सर्त्ा के अन्दर? एक अथ िमें तो स्पष्टतः िी भगवान् ्उनके अन्दर िोने िी चाहिये, अन्यथा वे ेअजस्तमवमान िी निीं ंरि सकते। ककंतु अशभप्राय यि िै कक भगवान् ्की वास्तववक परम् ्आममप्रकृनत उनके अन्दर कैद निीं िै; ये सब उन्िीं की सर्त्ा में आभास िोने ेवाली चीजें िैं जो कक उस सर्त्ा में से विकार और अज्ञान की किया द्वारा उमपन्न िोती िैं।

अज्ञान िमें सभी चीजों को उल्टा करके प्रस्तुत करता िै और कम-से-कम एक अंशतः शमथ्या अनुभूनत देता िै।

मि लोग कल्पना करते िैं कक जीव इस शरीर के अन्दर िै, शरीर का िी एक पररणाम और उसी से व्युमपन्न िै; ऐसा िी िम उसे अनुभव भी करते िैं: पर सच तो यि िै कक शरीर िी िै जो जीव के अंदर िै और विी जीव का

पररणाम और उससे व्युमपन्न िै। िम अपनी आममा को अपनेइस मिान् ्अन्नमय और मनोमय व्यापार का एक

अंश-सा जानते 8 - 469 जो अंगूठे से बिा निीं िै - जबकक वास्तव में यि सारा जगद्व्यापार चािे जजतना भी बिा

कयों न प्रतीत िोता िो, यि आममा की अनन्त सर्त्ा के अन्दर एक बिुत छोटी-सी चीज िै। यिााँ भी यिी बात िै; उसी अथ िमें ये सब चीजें भगवान् के अन्दर िैं न कक भगवान् उनके अन्दर िैं।

शरीरबद्ध चेतना के अंदर ननवास करने के कारण िमें यि आभास िोता िै कक ज़ितत्त्व के अंदर प्राण िै और मन िै। जबकक वास्तव में तो प्राणमय जगत् तो पूरे ज़ि जगत् से अनतववशाल िै। इसे एक रूपक के रूप में समझाते िुए िमारे पुराण इसे शेषेनाग के िजार फणों के ऊपर एक सरसों के दाने के बराबर बतातेिैं। और प्राणमय से मनोमय लोक अनतववशाल िै और उससे ववज्ञानमय लोक तो अनंततः ववशाल िै। और कफर आममा उससे भी अमयधधक ववशाल िै। यि तो केवल सूक्ष्म शरीर की घनीभूत चेतना िै जजसके कारण िमें ऐसा ववपरीत भ्म िो जाता िै। और स्वयंसूक्ष्म शरीर भी स्थूल दिे से अधधक ववशाल िै।

त्रत्रमभगुिवर्यैभरैज रेमभः सर्मवर्दं जगत् ।
र्ोदहतं नामभजानातत र्ारे्भ्यः परर्व्यर् ।। १३ ।।
१३. इन तीन प्रकार के भार्ों से, जो कक गुिर्य हैं, यह संपूि वजगत् र्ोहग्रस्त है और उनसे परे र्ुझे परर् और अवनिािी के रूप र्ें नहीं जानता।

यि त्रत्रगुणाजममका ननमन प्रकृनत जो पदाथों को शमथ्या रूप में हदखाती िै और उन्िें ननमनतर रूप दे देती िै, माया िै। माया से यि तामपय िनिींकक वि कुछ िै िी निींया वि अयथाथतिाओं से अशभप्राय रखती िै अवपतु इसका यि तामपय िैकक यि िमारे ज्ञान को भरमा देती िै, झूठे मूल्यों का ननमाणि करती िै और िमें अिंकार, मानशसकता, इजन्रय, दैहिकता और सीशमत बुद्धध से आच्छाहदत कर देती िै और इस तरि वििाँमिसे िमारी सर्त्ा केपरम् समय को नछपाये रिती िै। यि भ्मामक माया िमसे उस भगवमस्वरूप को नछपाती िै जो िम िैं, अथात् अनन्त अक्षर आममस्वरूप। ... यहद िम यि देख पातेकक विी भगवमस्वरूप िमारी सर्त्ा का यथाथ िसमय िै तो और सब कुछ भी िमारी दृजष्ट में बदल जायेगा, अपनेसच्चेस्वरूप में आ जायेगा और िमारा जीवन तथा कम ि भागवत् मूल्यों को प्राप्त कर भागवती प्रकृनत के ववधान के अनुरूप चलेंगे।

यहद िम इसे श्रीअरववन्द की शब्दावली के अनुसार देख पाएाँ कक जजसे िम भौनतक शरीर किते िैं उसमें प्राण के प्रवेश के कारण िी व्यजकत जीववत रि सकता िै। अब भौनतक शरीर के ववषय में िमारी अपनी धारणाएाँ िैं, उसे देखने के तौर-तरीके िैं। उसके प्रनत िम सबके अंदर एक आम दृजष्टकोण िै कक अमुक चीज करनेसे ऐसा या वैसा िो जाता िै और यि दृजष्टकोण िम सबमें अंतननिहित िै। ऐसा कौन व्यजकत िै जो इन धारणाओं को अनदेखा कर सकता िो। िम उनसे बाँधे िुए िैं। इसे िम तामशसक किया-कलाप कि सकतेिैं। जब इस अवस्था में प्राखणक प्रकृनत का संचार िोता िै तब दूसूरों के प्रनत संवेदनाएाँ, भावनाएाँ आहद आती िैं जो घोर भौनतक ववषयों से कुछ मुकत करती िैं। ककसी दूसूरे के प्रनत अपनी भावना के सिारे व्यजकत अपनेभौनतक सुख-आराम को भी बिुत कुछ छोि़ सकता िै कयोंकक अब उसे तामशसक की बजाय राजशसक तुजष्ट प्राप्त िोती िै। जब राजशसकता आती िै तब व्यजकत ककन्िीं भी अशभयानों को िाथ में लेने से या ककन्िीं श्रमसाध्य कायों को करने से निीं िहिचककचाता जबकक

एक तामशसक व्यजकत कभी नए अशभयानों को निीं करना चािता और सदा िी अपनेसुख-चैन के दायरे में ननजश्चंत रूप से रिना चािता िै। यहद यि राजशसक तत्त्व न िोता तो संसार में कोई भी नवीन चीजें आ िी निीं सकती थीं। सत्त्व प्रधान व्यजकत सभी चीजों के सिी ववधान को खोजने का प्रयास करता िै। वि अपनी ननरंकुश प्राखणक प्रकृनत पर अंकुश लगानेका प्रयास करता िै और जो सिी िै विी करना चािता िै। प्रमयेक व्यजकत में ये तीनों िी गुण िोते िैं, भेद केवल इनके प्राधान्य का रिता िै। जजस तत्त्व का प्राधान्य िोता िै उसी के अनुसार िम उस व्यजकत को साजत्त्वक, राजशसक या तामशसक बता देते िैं। इस प्रकार ये तीनों िी गुण मनुष्य जीवन का ताना-बाना बुनतेिैं और व्यजकत प्रायः इनसे ऊपर निीं ंउठ पाता कयोंकक यि ताना-बाना उसे त्रबल्कुल वास्तववक लगने लगता िै। जिाँ तामशसक और राजशसक व्यजकत को अपनेकमों के अनुधचत िोने ेका भान िो सकता िै विीं साजत्त्वक व्यजकत tilde H तो अपनेसिी िोनेका अिंकार उमपन्न िोनेकी बिुत आशंका रिती िै। परन्तुतीनों िी गुणों का यि सारा ताना-बाना माया िी िै। परंतुसत्त्व प्रधान व्यजकत में सामंजस्य अधधक िोता िै जजससे कक आममा को किया करने ेकी अधधक संभावना शमल जाती िै। िालाकाँक यहद भीतर आममा प्रबल िो तो वि ककसी भी अवस्था से बंधनों को तोड़कर बािर आ सकती िै। परंतु गीता का िम एक सवसिामान्य िम िै जजसमें तीनों गुणों का व्यापार चलता रिता िै और धीरे-धीरे व्यजकत साजत्त्वकता की ओर बढ़ता रिता िै। परंतुयि सारा िी व्यापार माया िै।

दैर्ी ह्येषा गुर्णर्यी र्र् र्ाया दुरत्यया ।
र्ार्ेर् ये प्रपद्यततेर्ायार्ेतां तरजतत ते ।। १४ ।।
१४. यह र्ेरी गुिजत्र्का दैर्ी र्ाया है जजसे अततक्रर् करना कदठन है; जो र्नुष्य र्ेरी ओर र्ुड़ते हैं और र्ेरे सर्ीप आते हैं, केर्ल र्े ही इस र्ाया को पार करते हैं।

पर जब भगवान् ्िी इन सब चीजों में िैं और भागवती प्रकृनत िी इन सब भरमानेवाले ववकारों के मूल में भी ववद्यमान िै और जब िम सब जीव िैं और जीव विी भागवती प्रकृनत िै तब कया कारण िै कक इस माया को पार करना इतना कहठन िै, 'माया दुरमयया'? कयोंकक यि माया भी तो भगवान् ्की माया िै, 'दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया' अथात्ि्'यि गुणमयी दैवी माया मेरी िै'। यि स्वयंदैवी िै और भगवान् ्की िी प्रकृनत की उपज िै, ककन्तु ुअवश्य िी देवताओं के रूप में भगवान् ्की प्रकृनत की उपज िै; यि दैवी िै, अथाित् ्देवताओं की िै या यि कहिये कक देवाधधदेव की िै, परन्तु देवाधधदेव के अपने ववभकत आममननष्ठ तथा ननमन वैश्व भावों अथात्ि् साजत्त्वक, राजशसक, और तामशसक भाव की चीज िै। यि एक वैश्व आवरण िै जो देवाधधदेव ने िमारी बुद्धध के चारों ओर बुन रखा िै; ब्रह्मा, ववष्णु और रुर ने इसके जहटल ताने-बाने बुने िैं; पराप्रकृनतरूवपणी शजकत इस बुनावट के मूल में िै और इसके प्रमयेक तंतु में नछपी िुई िै। िमें इस बुनावट को अपने अन्दर पूरा करना िै और जब इसका उपयोग समाप्त िो जाए तो इसमें से िो कर, इसे पीछे छोड़ आगे बढ़ना िै, देवताओं से िटकर उन परम् ् आहदस्वरूप देवाधधदेव की ओर मुड़ना िै जजनमें िम देवताओं और उनके कमों का परम् ्अशभप्राय तथा स्वयं अपनी िी अक्षर आमम सर्ता के परम् ्गुह्य आध्याजममक समयों को एक िी साथ जान जाएँगे।

इन तीनों गुणों ने अपना ताना-बाना बुन रखा ि जजर्न्ें लाघँाकर व्यजकत को अपनी सच्ची प्रकृनत में जाना िगिा। परन्तुयि साधधत कैसे िो इसका ननरूपण अब िोगा कक जब व्यजकत भगवान् ्की ओर मुिता ि तब ज्ञान भजकत में पररणत िो जाता ि और ज्ञान तथा भजकत का समन्वय िो जाता ि। ज्ञान की पररसमाजप्त भजकत में िोती ि और उसी से सच्चेकमों का आरमभ िोता ि। त्रबना भगवान् ्की भजकत के सच्चे कम िो िी निीं सकते।

॥. भजकत और ज्ञान का समन्वय

गीता ... इस अध्याय के पिले चौदि श्लोकों में एक ऐसे प्रमुख दाशनिनक समय को प्रदान कर, जजसे जानने ेकी िमें आवश्यकता ि, तुरंत िी बाद के सोलि श्लोकों में उसका व्याविाररक प्रयोग करती ि। वि इस ज्ञान को कम,ि ज्ञान और भजकत के एकीकरण के प्रथम प्रारंभ-त्रबंदु ुमें बदल देती ि, - कयोंकक कम िऔर ज्ञान का प्राथशमक समन्वय इनके द्वारा अपने-आप में तो पिले िी साधधत ककया जा चुका ि।

.... परा-प्रकृनत किया के शलए, प्रवृवृर्त् के शलए, बिुरूप आमम-व्यजकतमव या जीव बनती ि। परन्तु इस परा-प्रकृनत का आन्तररक या वास्तववक काय िसदा िी एक आध्याजममक, एक भागवत् ्किया िोती ि। इस परा भागवत् परम् पुरुष की सर्जक अथीत् संकल्पशजकत िी जीव के ववशेषे गुण की ववववध बीजभूत और आध्याजममक शजकत के रूप में अपने-आप को प्रकट करती ि; यिी बीजभूत शजकत जीव का स्वभाव ि। इस आध्याजममक शजकत से िी सीधे जो कम िऔर जन्म िोता ि वि हदव्य जन्म और ववशुद्ध आध्याजममक कम िोता ि। अतः इससे यि ननष्कष िननकला कक कम िकरते िुए जीव का यिी प्रयास िोना चाहिये कक वि अपने मूल आध्याजममक व्यजष्ट-स्वरूप को प्राप्त िो और अपने कमों को उसी की परमा शजकत के ओज से प्रवाहित करे, कम िको अपनी अंतराममा और अंतरतम स्वरूप-शजकत से ववकशसत करे, न कक मन-बुद्धध की कल्पना और प्राणों की इच्छा से, और इस तरि अपने सब कमों को परम् ्पुरुष के संकल्प का िी ववशुद्ध प्रवाि बना दे, अपने सारे जीवन को भागवत्–्स्वभाव का गनतशील प्रतीक बना दे।

परन्तु इसके साथ िी यि त्रत्रगुणाजममका अपरा प्रकृनत भी ि जजसका स्वभाव अज्ञान का स्वभाव ि और उसका कम िअज्ञान का कम ि, शमलावटी ि, भ्ांत ि और ववकृत ि; यि ननमनतर व्यजकतमव का, अिंकार का, प्राकृत पुरुष का कम िोता ि, आध्याजममक व्यजष्ट-पुरुष का निीं। उस शमथ्या व्यजकतमव से दूरू िोने के शलए िमें ननवैयैजकतक आममा की शरण लेकर उसके साथ एक िो जाना िोता ि। तब, इस प्रकार अिंकारमय व्यजकतमव से मुकत िोकर, िमारे वास्तववक व्यजष्ट-स्वरूप का पुरुषोर्त्म के साथ जो संबंध ि उसे िम जान सकतिैं।

इस टीका से प्रकट िोता ि कक अपरा प्रकृनत भी परा प्रकृनत का िी रूप ि परन्तु जब व्यजकत सतिी प्रकृनत पर, अपने अिं पर िी केजन्रत िोता ि तब प्रकृनत की जैसी किया िोती ि वि हदखनेमें अज्ञानमय और सीशमत तरीके की िोती ि कयोंकक मनुष्य को उस स्तर से ऊपर उठाने के शलये तब विी आवश्यक िोती ि। इसे िम अपरा

प्रकृनत का नाम दे देते िैं। इसके चंगुल से ननकलने ेके शलये गीता जो उपाय बताती िै, जो कक बिुत से लोगों के शलये बिुत उपयोगी िै, वि िै ननवैयैजकतक िो जाना, अथाित्, ् अक्षर पुरुष से तादाममय स्थावपत करना। कयोंकक वैयजकतकता में, अथात्, ि् क्षर सत्ता में भौनतक, प्राखणक, मानशसक आहद की बाधाएँ आती िैं। और अक्षर ब्रह्म का साक्षामकार करनेके पश्चात् ्पुरुषोत्तम भाव की ओर जाना िोता िै कयोंकक भगवान् ्कित े िैं कक वे उस अक्षर भाव से भी परे िैं।

एक दृजष्टकोण से देखें तो यि सारा किया-कलाप परम प्रभुकी परम शजकत, परा-प्रकृनत, आद्या-शजकत, माँभगवती का िी िै। जब मनुष्य ज़ि-भौनतक चेतना में ननवास करता िै तब उसे पररचाशलत करने के शलए वे भौनतक ननयमों आहद का उपयोग करती िैं। वास्तव में तो सवत्रि उन्िीं का संकल्प पूरा िोता िै जजसके अनतररकत अन्य कोई ननयम-ववधान निीं। परंतु ुइस प्रकार की िमववकासमय सृजष्ट का ननमाणिकरने ेके शलए, जिा ाँसभी चीजें एक सिी व्यवस्था के अनुसार चलें, आममा की शजकत, जजसे कक वेदों में बृिस्पनत किा गया िै, के द्वारा ववशभन्न स्तरों का और उनमें ननजश्चत ननधारररत तौर तरीकों का ननमाणि ककया जाता िै ताकक यज्ञ के आरोिण के शलए यज्ञीय भूशम तैयार की जा सके। यहद इन स्तरों में अपने-अपने उधचत ननयम-ववधान न िों तो त्रबल्कुल ववभ्म की जस्थनत पैदा िो जाएगी और ककसी प्रकार का यज्ञ संपन्न िी निीं िो पाएगा। आरंभ में तो इस आममा की शजकत के द्वारा ननश्चेतना (nescience), जो कक चेतना का त्रबल्कुल ननषेध िै और जिाँ शून्यता तक के शलए भी

कोई स्थान निीं िै, इस प्रकार इस ज़ि सृजष्ट तत्त्व का ननमाणि प्रकृनत के द्वारा िी की जाती िै और सारे ननयम-ववधान भी आममा की शजकत के द्वारा िी लागू ूककये जाते िैं जबकक वास्तव में अपनेआप में कोई ननयम निीं ंिैं। और जब सभी कुछ एक िी िै तो शभन्न-शभन्न चीजें तो िैं िी निीं। केवल मानशसक ननरूपण के शलए िम शभन्न-शभन्न शब्दों का प्रयोग करते िैं। और श्रीअरववन्द भी गीता पर टीका करने के कारण गीता की िी शब्दावली का प्रयोग करते िैं।

परंतु वतमिान में इस त्रत्रगुणमयी प्रकृनत से ननकल कर उच्चतर प्रकृनत में जाने के शलए िमें स्वयंको सभी कमों से अलग िटकर साक्षी भाव में और उसके बाद पुरुषोत्तम भाव में जाना िोगा। गीता में प्रनतपाहदत यि एक तरीका िै। इसके अनतररकत अन्य बिुत से तरीके िो सकते िैं। श्रीमाँ व श्रीअरववन्द का योग भी इस पद्धनत से शभन्न िै। परंतु गीता के ननरूपण के समय यि प्रचशलत तरीका था और अजुनि उससे अशभज्ञ था इसशलए गीता इस पद्धनत का प्रनतपादन करती िै। िालाकाँक ये सभी प्रनतपादन करनेके बाद अंत में गीता सभी धमों (आधारों) को छो़ि कर एकमात्र भगवान् ्की शरण में आने ेकी बात करती िै। और यिी पूण िसमपणि का भाव श्रीअरववन्द के अनतमानशसक योग का मूल तत्त्व िै। गीता अपनी शशक्षा को यिीं ंलाकर छो़ि देती िै और इससे आगे ननरूपण निीं करती कयोंकक इसके आगे तो अनुभव िी करना िोता िै। िालाकाँक उससे आगे के पथ-संकेत भी िमें श्रीअरववन्द व श्रीमाँ की कृनतयों से प्राप्त िोतिें।

अब यिा ाँगीता में पिली बार िम आसुररक स्वभाव का वणनि पातिें। बाद में देव और असुर का अन्तर भी स्पष्ट ककया जाएगा। भगवान् ्कितिें कक आसुररक प्रकृनत वाले लोग उन्िें प्राप्त निींकर सकते। और दैववक

प्रकृनत के लोगों के चार भेद िैं जजन्िें अपने-अपनेतरीके से शभन्न फल प्राप्त िोतेिैं। यि आसुररक और दैववक प्रकृनत सब मनुष्यों में िोती िै। परन्तु गीता जो बात कर रिी िै वि एक मूलभूत आसुररक प्रकृनत और दैववक प्रकृनत की बात िै। जो अपनेमूल गठन मात्र में िी आसुररक प्रकृनत वाला िै वि भगवान् ्की ओर निीं जा सकता। श्रीअरववन्द इसके बारे में बिुत ववस्तार से बतातेिैं। वे किते िैं कक ये सत्ताएाँ धरती की निीं िोतीं बजल्क सूक्ष्म जगतों की िोती िैं और विााँ से अपना प्रभाव डालती िैं जो कक तीन तरीकों का िोता िै। पिले तो ये शजकतयााँ आिमण करती िैं। यि तो एक बिुत िी आम घटना िै जो लगभग सभी के साथ िोती िै और जिााँभागवत् ्काय िो रिा िो विााँ तो इनके आिमण अधधक मात्रा में बढ़ जाते िैं। परंतु इन आिमणों के प्रभाव से कुछ समय के बाद व्यजकत के बािर ननकल आनेकी संभावना रिती िै। इससे अधधक गंभीर िोता िै इन शजकतयों द्वारा मनुष्य पर अपना प्रभाव छोड़ना। एक बार इनसे प्रभाववत िोने ेपर मनुष्य के मन, प्राण, ववचार, दृजष्टकोण आहद सभी चीजें प्रभाववत िो जाती िैं और उनके संतुलन को पुनः स्थावपत करना मुजश्कल िोता िै। परंतु सबसे भयंकर जस्थनत िै इन शजकतयों द्वारा पूरी तरि अधधकृत ककये जाना। जब ये व्यजकत पर अपना अधधकार जमा लेती िैं तब वि उनके वश में िो जाता िै और इसकी पूरी आशंका िोती िै कक वे उसके चैमय पुरुष को पूरी तरि ननष्काशसत कर दें और तब वि आसुरी शजकतयों द्वारा एक पूण िअधधग्रिण िो जाता िै। िालाकाँक बिुत िी ववरले मामलों में ऐसा िोता िै।

न मांदुष्कृततनो मूढाः प्रपद्यतते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रताः ।। १५।।

१५. दुष्कर्मकरनेवाले मोहग्रस्त ननम्न श्रेणी के मनुष्य मुझे ेनहीं ंप्राप्त होते; क्योंकक उनका ज्ञान उनसे माया के द्वारा हरि ककया जा चुका होता है और वे आसुररक भाव का आश्रय ग्रहि करते हैं।

यि मूढ़ता प्रकृनतस्थ जीव को भ्ामक अिंकार द्वारा धोखा हदया जाना िै। दुष्कमी परम् ्पुरुष को प्राप्त निीं ंकर सकता कयोंकक वि सदा िी मानव-प्रकृनत के ननमनतम स्तर पर अपनेइस इष्टदेव अिंकार को िी तुष्ट करने ेका प्रयास करता रिता िै; उसका वास्तववक परमेश्वर यि अिंकार िी िोता िै। उसके मन और संकल्प, जो त्रत्रगुणाजममका माया की कियाओं द्वारा घसीट ले जाए जाते िैं, आममा का उपकरण निीं रि जाते अवपतु उसकी कामनाओं के, स्वेच्छा से गुलाम या अपने-आप को धोखा हदये िुए यंत्र बन जाते िैं। तब वि केवल इस ननमन प्रकृनत को िी देखता िै और अपनेउस परम् ्आममतत्त्व को तथा परम् ्पुरुष या परमेश्वर को निीं देखता जो उसके स्वयंके और जगत् ्के अन्दर िै; वि अपनेमन में सारे जगत् ्की व्याख्या अिंकार और कामना के अथों में करता िै और केवल अिंकार और कामना को िी पुष्ट करता िै। ककसी उच्चतर प्रकृनत और ककसी उच्चतर धम िसे रहित िोकर, अिंकार और कामना की सेवा करना असुर के मन और स्वभाव को प्राप्त करना िै। ऊपर उठने के शलए प्रथम आवश्यक सोपान िै उच्चतर प्रकृनत और उच्चतर धम िके शलए अभीप्सा करना, कामना के शासन की अपेक्षा ककसी मिर्त्र ववधान की पालना करना, और अिंकार या अिंकार के ककसी पररवधधित रूप की अपेक्षा ककसी श्रेष्ठतर देवता का बोध करना और उसे पूजना, सद्ववचार से युकत िोना और समकमी बनना। यि भी अपने-आप

में पयाप्ति निीं ंिै; कयोंकक साजत्त्वक मनुष्य भी गुणों के संभ्रम के अधीन िोता िै, कयोंकक अब भी वि इच्छा (राग) और द्वेष के द्वारा िी चाशलत िोता िै। वि प्रकृनत के नाना रूपों के चि के अंदर िी घूमता रिता िै और उसे उच्चतम, लोकोर्त्र और समग्र ज्ञान निीं ंिोता। तथावप अपनेसदाचारी या धमपिरायण लक्ष्य में सतत् ्ऊध्वमिुखी अभीप्सा के द्वारा वि अन्त में पाप के तमाच्छादन से - जो तमाच्छादन राजशसक कामना तथा आवेगों का पररणाम िै, उससे - मुकत िोता िै और ऐसी ववशुद्ध प्रकृनत अजजित करता िै जो त्रत्रगुणाजममका माया के अधधकार से मुजकत पाने में समथ िोती िै। केवल पुण्य के द्वारा िी मनुष्य सवोच्च को निींपा सकता, परंतु पुण्य के द्वारा

वि उसे पानेका पिला सामथ्य कर सकता ि अथात् ि। कयोंकक अशशष्ट राजशसक या मन्द तामशसक अिंकार को िटा देना और उससे ऊपर उठना कहठन िोता िै; जबकक साजत्त्वक अिंकार को िटाकर उससे ऊपर उठना कम कहठन िोता िै और अंततः जब वि अपने आप को यथेष्ट रूप से सूक्ष्म और प्रकाशयुकत बना लेता िै, तब उसे अनतिम कर जाना, उसे रूपान्तररत करना या शमटा देना भी आसान िो जाता िै।

दुषु्कम िकरनेवाले, अपनी इच्छाओं-कामनाओंकी पूनत िकरने वाले लोग अपनेइष्टदेव अिं को िी पुष्ट करने ेमें लगे रिते िैं। अपने मन, प्राण और शरीर की मागोँ को पूरा करने के अनतररकत तो उन्िें और कुछ पता िो निीं ंिोता। परंतु जब व्यजकत के मन में ककसी लोकोर्त्र चीज के शलये अभीप्सा जागृत िोती िै और वि अपनी मानशसक, प्राखणक और शारीररक कामनाओंके स्थान पर उस अभीप्सा के अनुसार जीनेका प्रयास करता िै तब इसका अथ िै कक वि सिी माग िपर िै। कफर धीरे-धीरे, जैसा कक श्रीअरववन्द बताते िैं कक "केवल पुण्य के द्वारा िी मनुष्य सवोच्च को निीं पा सकता, परंतु पुण्य के द्वारा वि उसे पानेका पिला सामथ्य िअथात् ्'अधधकार' ववकशसत कर सकता िै।" अतः वि सत्त्व के द्वारा पूरी तरि मुकत तो निीं िो सकता परंतुतामशसक तथा राजशसक जस्थनत की अपेक्षा एक बेितर जस्थनत में िोता िै कक आगे की छलागाँ लगा पाए। कयोंकक तामशसक और राजशसक जस्थनत से ऊपर उठ पाना बिुत अधधक मुजश्कल िै जबकक साजत्त्वक अवस्था से ऊपर उठना अपेक्षाकृत आसान िै। और साजत्त्वक अवस्था में व्यजकत जब धीरे-धीरे आगे बढ़ता जाता िै तब उस अवस्था को पार करके आगे भी जा सकता िै। दैवी प्रकृनत वाले तमस् ्प्रधान भी िो सकते िैं और रजस् ्प्रधान भी। परंतु दैवी प्रकृनत का सिी प्रस्फुटन साजत्त्वक प्रकृनत में िी अधधक िोता िै। तमस् ्में तो अंधकार की िी संभावना अधधक रिती िै। परन्तु यहद व्यजकत का गठन दैवी प्रकृनत का िो तो वि इन ननमनतर रूपों से जल्दी िी ऊपर उठ जाता िै। वि सुकृत कम ि करने ेवाला िोता िै दुषु्कम िकरने ेवाला निीं। पर यहद व्यजकत मूल रूप से आसुररक प्रकृनत का िो तो कफर बािरी रूप से उसका ककतना भी ववकास कयों न िुआ िो तो भी वि रिेगा भगवद्ववरोधी िी।

इसशलए मनुष्य को सवप्रिथम 'सुकृत', अथात् ्िसदाचारी िोना चाहिए और तब उसे जीनेके मिज नैनतक ववधान से परे की ऊँचाइयों में ऊपर उठकर अध्याममप्रकृनत के प्रकाश, ववशालता और शजकत की ओर आगे बढ़ना चाहिये... िम पिले िी देख चुके िैं कक इस उद्देश्य के शलए आमम-ज्ञान, सममव, ननरिंकार प्रथम आवश्यकताएँ िैं, और यि भी देख चुके िैं कक यिी ज्ञान और कम िके बीच, आध्याजममकता और सांसाररक काय िके बीच, कालातीत आममा की अचल ननजष्ियता और प्रकृनत की कियाशील शजकत की लीला के बीच सामंजस्य साधने का माग िै। परंतु गीता अब उस कमयिोगी के शलए, जजसनेअपने कम िको ज्ञानयोग के साथ एक कर शलया िै, एक और, इससे

भी ब्रिी चीज की आवश्यकता बतलाती िै। अब उससे केवल ज्ञान और कम िकी िी निींअवपतु भजकत की भी मागाँ की जाती िै, भगवान् ्की भजकत, उनसे प्रेम और उनकी आराधना और सवोच्च से शमलने की अंतराममा की उमकण्ठा भी चािी जाती िै। यि मागाँ, जो अभी तक उतने स्पष्ट शब्दों में तो निीं प्रकट की गयी थी, परंतुइसकी तैयारी तभी िो चुकी थी जब श्रीगुरु ने उसके योग के एक आवश्यक मिो के रूप में सभी कमों को रूपांतररत कर मिारी सर्त्ा के स्वामी के प्रनत यज्ञरूप से ककये जानेका प्रनतपादन ककया था और इसकी पररणनत के रूप में यि ननयत ककया था कक सब कमों को न केवल िमारी ननवैयैजकतक आममा या ब्रह्म को दे देना िै अवपतु ननवैयैजकतक आममा से परे उन परम्–सर्त्ा को समवपति करना िोगा जजनसे िमारा सब संकल्प और शजकत उद्भूत िोते िैं। विााँ जो बात गुप्त रूप से अशभप्रेत थी उसे िी अब सामने लाया गया िै और इससे िम गीता के उद्देश्य को और भी अधधक पूणतिा के साथ समझने लगते िैं।...."जो मुझेपुरुषोर्त्म के रूप में जानता िै, विी संपूण िज्ञान और संपूण ि भाव के साथ मेरी भजकत करता िै (भजनत)।" और संपूण िज्ञान और संपूण िआमम-समपणि वाली यि भजकत िी िै जजसका अब गीता ववस्तार करना आरंभ करती िै।

यि बात ध्यान में रिे कक गीता शशष्य से जजस भजकत की मागाँ करती िै वि ज्ञानयुकत भजकत िै और भजकत के अन्य सभी प्रकारों को अपनेआप में अच्छा समझते िुए भी ज्ञानयुकत भजकत की अपेक्षा ननमन िी मानती िै; भजकत के उन अन्य प्रकारों से लाभ िो सकता िै, पर जीव के परमोमकष िमें वे गीता के अनन्य लक्ष्य निीं ंिैं। जजन लोगों ने राजस् ्अिंकार के पाप को दूरू कर हदया िै और जो भगवान् ्की ओर बढ़ रिे िैं उनमें से गीता ने चार प्रकार के भकतों में भेद ककया िै।

रजस् ्अिंकार अपनेननज बल पर भरोसा करता िै। उसे यि अिंकार िोता िै कक वि स्वयंअपनी िी शजकत-सामथ्य िसे कायों को करता िै। विीं भगवान् ्पर ननभरिता आममा का भाव िै। अतः जब आजस्तकता आती िैतब कफर उस पर िम आगे बढ़ते िैं और िमारी सर्त्ा के ककसी न ककसी भाग में भगवान् ्पर ववश्वास िुए त्रबना यि संभव निींिै। तो जो भगवान् ्की ओर बढ़ रिे िैं ऐसे चार प्रकार के भकतों में गीता ववभेद करती िै। श्रीअरववन्द कितेिैं कक तामशसक, राजशसक, साजत्त्वक और ननस्त्रैगुण्य, ये भजकत के चार रूप िैं।

चतुवर्धवा भजतते ग्रांजनाः सुकृततनोऽजुनव ।
आतो जजज्ञासुरथाथवी ज्ञानी च भरतषभव ।। १६ ।।

१६. हे भरतकुलश्रेष्ठ! िुभु कर् वकरनेर्ाले चार प्रकार के र्नुष्य र्ुझे ेभजतेहैं, र्े जो कष्ट र्ें हों, र्े जो संसार र्ें लाभ की खोज करते हों, र्े जो ज्ञान की खोज करते हों, और र्े ेजो ज्ञानी हों।

ये सभी गीता द्वारा स्वीकृत िैं, परंतु केवल अंनतम प्रकार के भकत पर िी वि अपनी पूण िसममनत की छाप लगाती िै। त्रबना ककसी अपवाद के भजकत के ये सभी प्रकार ननश्चय िी उच्च व उर्त्म िैं, उदाराः सव िएवैते, परन्तु ज्ञानयुकत भजकत इन सभी से श्रेष्ठ िै, ववशशष्यते। िम कि सकते िैं कक भजकत के चार प्रकार िमशः ये िैं : (प्रथम) प्राखणक-रागाममक तथा भावाममक प्रकृनत की भजकत, (द्ववतीय) व्याविाररक और सकिय, कमि–प्रधान

प्रकृनत की, (तृतीय) तकि-प्रधान बौद्धधक प्रकृनत की, और (चतुथ)ि उस परम् ्अंतज्ञानिमय सर्ता की भजकत जो शेषे सारी प्रकृनत को भगवान् ्के साथ एकमव में ले लेती िै। भजकत के अंनतम प्रकार को छोड़ अन्य जजतने प्रकार िैं उन्िें वस्तुतः प्रारंशभक प्रयास िी माना जा सकता िै। कयोंकक गीता स्वयं यिाँ किती िै कक अनेकों जन्मों के अंत में समग्र ज्ञान को पाकर और उसे अनेकों जन्मों तक अपनेजीवन में उतारनेका साधन करके सुदीघ िअन्त में व्यजकत परामपर को प्राप्त करता िै।

vii. 17, vii. 18

तेषांज्ञानी तनत्ययुक्त एकभजक्तवर्मविष्यते ।
वप्रयो दह ज्ञातननोऽत्यथर्वहं स च र्ं वप्रयः ।। १७।।

१७. इन (चार प्रकार के भक्तों) र्ें जो भगर्ान् ्के साथ सतत् ्युक्त रहता है, जजसकी भजक्त पूि वरूप से भगर्ान् ् पर ही केंदद्रत है, ऐसा ज्ञानी भक्त सर्शेरेवष्ठ है। र्ैं ज्ञानी को परर् ्वप्रय हूाँ और र्ह र्ुझे ्वप्रय है।

उदाराः सर् वएर्ैते ज्ञानी त्र्ात्रै्र् रे् र्तर् ्।
आजस्थतः स दह युक्तात्र्ा र्ारे्र्ानुत्तर्ांगततर् ्।। १८ ।।

१८. ये सभी उच्च और श्रेेष्ठ हैं, परंतु ज्ञानी' को र्ैं र्स्तुतः रे्रा तनजस्र्रूप ही र्ानता हूाँ; क्योंकक र्ुझर्ें अपने अंतःकरि को युक्त ककया हुआ र्ह भक्त र्ुझे ्ही अपने उच्चतर् लक्ष्य के रूप र्ें स्र्ीकार करता है।

गीता अब धीरे-धीरे भजकत तत्त्व की प्रधानता की ओर मुड़ रिी िै और किती िै 'उदाराः सव िएवैते' कक सारे िी भकत श्रेष्ठ िैं। कयोंकक वास्तव में तो जो भी कोई भगवान् ्की ओर जजस ककसी भी भाव से मुड़ गया िै अवश्य िी वि श्रेष्ठ िै।

प्रश्न : कया भगवान् ्भी इस अधिकार के दृजष्टकोण से देखते िैं कक जो मेरी भजकत करता िै विी मेरे पास आ सकता िै?

उत्तर : भगवान् ्तो परम अधिकारी िै। कयोंकक उनके अनतररकत अन्य ककसी की तो सर्ता िै िी निीं। इसीशलए सभी भकतों में ज्ञानी भकत को सवशेरेष्ठ बताया गया िै कयोंकक उसे भगवान् ्के आममस्वरूप का, उनके ननजस्वरूप का ज्ञान िोता िै और साथ िी उसे यि भी ज्ञान िोता िै कक उसका अपना आममस्वरूप भगवान् ्के साथ अशभन्न िै। ज्ञानी के अनतररकत दूसूरे भकत तो भगवान् ्को अपनी सर्ता से शभन्न समझतेिैं। परंतुज्ञानी भगवान् ्के और अपने सच्चे स्वरूप को जानता िै और चूंकक वि सच्चे स्वरूप को जानता िै इसशलए सिज रूप से िी वि भगवान् ्की भजकत करता िै कयोंकक तत्त्वतः जाननेके बाद दूसूरा कोई भाव तो िो िी निींसकता। और भले कोई तथाकधथत रूप से बिुत िी ज्ञानी िो पर भगवान् ्की ओर अशभमुख निीं िो तो वि ज्ञानी निीं ्मिामूख िै। अब रावण में भले िी ककतना भी पांडिमय कयों न रिा िो, परंतु वि ककस काम का। इसीशलए िनुमानजी उसे किते िैं:

राम त्रबमुख संपनत प्रभुताई। जाइ रिी पाई त्रबनुपाई।।
सजल मूल जजन् सिररतन् निीं। बरवष गएँ पुनन तबहिं ंसुखािीं ।।

अथात् ्जैसे जजन नहदयों के मूल में कोई जलस्रोत निीं ंिै वेवषाबीत जानेपर कफर तुरंत िी सूख जाती िैं ठीक उसी प्रकार राम ववमुख पुरुष की संपवर्त् और प्रभुता रिी िुई भी चली जाती िै और उसका पाना न पाने के समान िै कयोंकक इन सबका मूल स्रोत तो श्रीराम िी िैं।

प्राय: िी िमारी समझदारी और नासमझी की सारी पररभाषाएँ त्रबल्कुल दककयानूसी िोती िैं। जो भगवान् ् की ओर अशभमुख िै विी सच्चा समझदार िै, विीं, जो बिार से बिुत कुशल िै और बिुत से िुनर जानता िै पर यहद भगवान् ्से ववमुख िै तो वि मिामूख ििै।

...जब ईश्वरप्रेमी ईश्वरज्ञानी भी िो, तो प्रेमी अपने हदव्य वप्रयतम के साथ एकामम िो जाता िै; कयोंकक वि परमोच्च देव का चुना िुआ और परमामममा का वरण ककया िुआ िोता िै। अपने अंदर इस भगवत्–लीन प्रेम को ववकशसत करो; आध्याममीकृत और अपनी ननमन प्रकृनत की सीमाओं ंके ऊपर उठा िुआ हृदय तुमिें परमेश्वर की अशमत सर्त्ा के रिस्य अमयंत अंतरंग रूप में प्रकाशशत कर देगा, उनकी हदव्य शजकत के पूण िसंस्पश िको, प्रविा को और महिमा को तुमिारे अंदर ले आएगा और तुमिारे शलएएकशाश्वत परमोल्लास केगुह्यरिस्यों को खोलदेगा। पूणिप्रेम िी पूण िज्ञानकीकुंजिी।

गीता भजकत के तीन प्रकारों में भेद करती िै, एक वि जो संसार के दु:खों के कारण भगवान् ्की शरण लेती िै, आतिा, दूसूरी वि जो ककसी चीज की कामना करती िुई, इष्टफलदाता के रूप में भगवान् ्के पास जाती िै, अथाथिी; और तीसरी वि िै जो उसके द्वारा आकृष्ट िोती िै जजसे वि प्रेम तो पिले से िी करती िै परंतु उसे अभी तक जानती निींि और इस हदव्य अज्ञात को जानने ंके शलए आतुर िै, जजज्ञासु: परन्तु यि परम् ्श्रेय उस भजकत को देती िै जो ज्ञानयुकत िो। स्पष्ट िी, भाव की जो तीव्रता ऐसा कििती िो कक, "म ैंसमझती तो निीं,ं म ैंप्रेम करती िूँ", और, प्रेम करती िुई, समझनेकी परविा भी निीं ंकरती, तो वि प्रेम की अजन्तम निीं,ं अवपतु प्रथम आमम-अशभव्यजकत िै, और न िी वि उसकी उच्चतम तीव्रता िी िै। वास्तव में, जैसे-जैसे भगवान् ्का ज्ञान ववकशसत िोता िै, वैसे-वैसे भगवान् ्में आनन्द और उससे प्रेम भी बढ़ता िी िै। और कफर, ज्ञान के आधार के त्रबना ननरा आनन्दानतशय सुरक्षक्षत भी निींरि सकता; जजससे िम प्रेम करते िैं उसी में ननवास करना िी वि सुरक्षा प्रदान करता िै, उसमें ननवास करनेका अथ ििै चेतना में उसके साथ एक िोना, चेतना का एकमव िी ज्ञान की सवोर्त्म अवस्था िै। भगवान् ्का ज्ञान भगवमप्रेम को उसकी सुदृढ़तम सुरक्षा प्रदान करता िै, इसके शलए इसके स्वयंके अनुभवजन्य ववपुलतम िष िको खोल देता िै, इसे इसके दृजष्टववस्तार के उच्चतम शशखरों तक उठा देता िै।

अगला श्लोक भी ब़िा िी माशमकि िै। जो ज्ञानी यि जानता िै कक सब कुछ वासुदेव िी िै, ऐसा मिाममा बिुत िी दुलुभि िै।

प्रश्न : पंरिवें अध्याय में श्लोक आता िै : यो मामेवमसंमूढो जानानत पुरुषोत्र्मम् ्। स सवविवद्भजनत मां सवभािवेन भारत ।। १९।।

अथात्,्ा 'िे भारत! मोिरहित जो मनुष्य इस प्रकार मुझे ्पुरुषोत्र्म के रूप में जानता एवं देखता िै वि सवि–ज्ञाता अपनी प्राकृत सत्ा के िर रूप, िर प्रकार से मेरी भजकत करता िै।' तो कया यि बाध्यता िै कक जो पुरुषोत्र्म के रूप को जान लेता िै उसे सवभािव से उन्िें भजना िी िोता िै?

उत्तर : इसमें बाध्यता की बात निीं ्भाव की बात िै कयोंकक वास्तव में परमाममा का स्वरूप जानने ्के बाद व्यजकत अनायास िी और कुछ कर िी निींसकता कयोंकक अब उसकी चेतना इतनी ववकशसत िो चुकी िोती िै कक वि कुछ और चाि िी निींसकता। यिााँज्ञान-युकत भजकत की बात कर रिें िै। और गीता किती िै कक जजसे ज्ञान िो गया िै ऐसे भकत को भी अनेक जन्मों के बाद भगवान् ्प्राप्त िोते िैं।

प्रश्न : कया इसका तामपय िि यि िुआ कक ज्ञानवान् ्िोने ्के शलये बिुत से जन्मों की आवश्यकता िै?

उत्तर : निीं। इसका तामपय िि यि िै कक ज्ञानवान् ्िोने के बाद भी बिुत से जन्मों की आवश्यकता िोती िै। ज्ञान िोने पर व्यजकत को अपनेसच्चे गंतव्य का पता लग जाता िै। और जब एक बार गंतव्य का पता लग जाता िै तब उस ओर चलकर विााँपिुाँचने ्में जो समय लगता िै उतना तो लगता िी िै। इसीशलए ज्ञानवान् ्व्यजकत भी बिुत से जन्मों के अंत में भगवान् ्को प्राप्त करता िै। पिले तो व्यजकत को यि पता िोना आवश्यक िै कक वि कौन िै, और उसका उद्देश्य कया िै, और उसे किााँजाना िै। जब एक बार इन प्रश्नों का ककसी स्तर तक उत्र्र शमल जाता िै तब काय िि समाप्त निीं िो जाता बजल्क वास्तव में काय ितो आरंभ िी उस ज्ञान के बाद िोता िै। और तब उसे संशसद्ध करने ्में जजतना समय लगता िै वि तो लगता िी िै। अन्यथा अधधकांशतः तो कोई यि प्रश्न भी निीं पूछता कक पाधथवि जन्म का कोई अथ िभी िै। और यहद अथ ििै भी तो उसे कैसे खोजा जाए और कैसे प्राप्त ककया जाए। केवल भारतीय संस्कृनत ने िी न केवल इन प्रश्नों को सफल रूप से िाथ में शलया अवपतु ्प्रमयेक व्यजकत को उसके जजस ककसी भी स्तर से शीघ्रानतशीघ्र अपनेसच्चे गंतव्य तक पिुाँचने ्में सिायता प्रदान करने की समुधचत व्यवस्था भी की।

बहूनां ्जतर्नार्तते ज्ञानर्ातरां प्रपद्यते।
र्ासुदेर्: सर्मवर्तत स हार्त्मा सुदुलुभवः ।। १९।।
१९. बहुत से जतरों के अंत र्ें ज्ञानर्ान् ्व्यजक्त र्ुझेप्राप्त करता है; और र्ह यह देखता है कक जो कुछ भी है र्ह सब कुछ सर्व्यापी सत्ता भगर्ान् ्र्ासुदेर् ही हैं। ऐसी र्हान् ्आत्र्ा अतत दुलुभव है।

सभी वस्तुओंकी ईश्वर या ब्रह्म के रूप में इस अनुभूनत के तीन पिलू िैं जजनकी कक िम सुववधापूवकि अनुभव की तीन िशमक अवस्थाएाँ बना सकतेिैं। प्रथम अनुभूनत यि कक, एक ववराट् आममा िै जजसमें सब प्राणी अजस्तमवमान रितेिैं। आममा एवं ्भगवान् ्ने स्वयंको एक ऐसी अनन्त स्वतः-व्याप्त, स्वयंभू, शुद्ध सत्ा के

रूप में अशभव्यकत ककया िै जो देश और काल के अधीन निीं िै, अवपतुइन्िें अपनी चेतना की आकृनतयों के रूप में धारण करती िै। वि सभी वस्तुओंसे ववशाल िै और इन सबको अपनी स्वतःव्याप्त सर्त्ा और चेतना में समाववष्ट ककये िुए िै। जजन भी चीजों को वि रचती िै, धारण करती िै या जजन भी चीजों का रूप ग्रिण करती िै उनमें से

ककसी से भी वि बंधी िुई निीिं, अवपतु मुकत, अनन्त और सवानिन्दमय िै। एक प्राचीन रूपक के शब्दों में, वि उन्िें उसी प्रकार धारण करती िै जजस प्रकार अनन्त आकाश अपने अन्दर सब पदाथों को धारण करता िै... [और आममतत्त्व या ब्रह्म में समाहित ये सभी पदाथ]ि शून्य निीं िैं, ववराट् मन के द्वारा कजल्पत शमथ्या नाम-रूपमात्र निीं ंिैं; ... ये अपनेवास्तववक रूप में आममतत्त्व की सचेतन अशभव्यजकतयााँ िैं, अथात्ि्आममतत्त्व जजस प्रकार िमारे अंदर रिता िै उसी प्रकार इन सबके अन्दर भी उपजस्थत िै, उनके प्रनत सचेतन िै, इनकी गनत को संचाशलत करता िै, जजन चीजों का रूप वि ग्रिण करता िै, जजस प्रकार उनमें ननवास करने में आनंदमय रिता िै उसी प्रकार उन्िें अपने अन्दर समाये रिनेमें भी आनन्दमय बना रिता िै। जैसे आकाश घट को अपनेअन्दर धारण करता िै और साथ िी मानो उसमें समाया भी रिता िै, वैसे िी यि आममतत्त्व या ब्रह्म सब भूतों को धारण करता िै और साथ िी उनमें व्याप्त भी रिता िै, ककसी भौनतक अथ िमें निीं, वरन््आध्याजममक अथ िमें; और यिी उनकी यथाथ ि

सर्त्ा िै। आममा के इस अन्तव्यापिी स्वरूप का िमें साक्षामकार करना िोगा; सब भूतों में अवजस्थत इस आममा के िमें दशनि करनेिोंगे और अपनी चेतना में िमें यिी बन जाना िोगा... इस आममा को, जो िमारा ननज स्वरूप िै, अन्ततः िमारी आमम-चेतना के शलए इस रूप में प्रकट करना िोगा कक यि इन सब भूतों को अनतिम करता िुआ भी इन सब के साथ पूणतिया एक िै। िमें इसे केवल एक ऐसे आममा के रूप में निींदेखना िोगा जो सबको धारण करता िै तथा सब में व्याप्त िै, वरन््ऐसे आममा के रूप में भी जो सब कुछ िै, जो अंतयामिी आममा िी निीं

िै, इस प्रकार ये तीन अनुभूनतया ंिैं। एक िै कक परमामममा सभी कुछ को धारण करते िैं, दूसूरी िै कक सभी

अवपतु नाम और रूप भी िैं, गनत और गनत का स्वामी िै तथा मन, प्राण और शरीर भी िैं।

कुछ में परमामममा व्याप्त िै और तीसरी सबसे मित्त्वपूण िअनुभूनत िै कक सभी कुछ परमामममा िी िैं।

यहद यि अनुभूनत एकांगी िुई तो िमें 'सवेश्वरवादी' एकाममकता का साक्षामकार िोता िै, उन 'एकमेव' का जो सब कुछ िैं: पर यि सवेश्वरवादी दशनि केवल आंशशक दशनि िी िै। यि सारा संसार-ववस्तार िी आममा का संपूण िस्वरूप निीं ंिै, एक 'शाश्वत' िै जो इससे शिन्न िै केवल जजसके द्वारा िी इस संसार-ववस्तार का अजस्तमव संभव िै। ब्रह्माण्ि भी अपनेसमपूण ितत्त्वों से संपन्न भगवान््निीं ंिै, अवपतु यि उनकी केवल एक आममाशभव्यजकत िै, उनकी आममसर्त्ा की एक सच्ची पर गौण किया िै। ये सारे आध्याजममक अनुभव पिली दृजष्ट में चािे ककतनेिी परस्पर शभन्न या ववरुद्ध िों, कफर भी इनका सामंजस्य िो सकता िै यहद िम एकांगी रूप से ककसी एक या दूसूरे पर िी बल देना बंद कर दें और यहद इस सीधे-सादे समय को समझ लें कक भगवर्त्व वैजश्वक अजस्तमव से कोई शिन्न वस्तु िै, परन्तु कफर भी सारा ववश्व और ववश्व के सारे शभन्न-शभन्न पदाथ िविी भगवान््िैं, और कुछ निीं- िम कि सकतिें कक वे भगवान््के िी द्योतक िैं। अवश्य िी ये रूप ककसी अंश में या अपने समुच्चय में पूरी तरि से 'वि' निीं ंिैं परंतु कफर भी यहद ये भगवमसर्त्ा की िी कोई चीज न िोते, और उससे शभन्न कोई दूसूरी िी चीज िोतेतो ये भगवान््के सूचक निीं ंिो सकतेथे। 'वि' िी सत्−तत्त्व िै; परंतु ये रूप उन्िींकी

अशभव्यंजक यथाथतिाएँ ' िैं। वासुदेवः सवशिमनत से यिी अशभपे्रेत िै; भगवान् ्यि सारा जगत् ्जो कुछ िै वि सब िैं, जो कुछ इस जगत् ्में िै वि सब िैं और इस जगत् ्से अधधक जो कुछ भी िै वि भी विी िैं।

----

*भले िी िमारे मन में ये िमें ननरपेक्ष समय के सामने अपेक्षाकृत असत् ्िी प्रतीत िोते िों। शंकराचाय िका मायावाद, उसके ताककिक आधार को अलग करके, उसे आध्याजममक अनुभूनत की दृजष्ट से देखा जाए तो इसी सापेक्ष (relative) असत् ्का अनतशयोजकतपूण िवणनिमात्र प्रतीत िोता िै। मन-बुद्धध के परे यि समस्या लुप्त िो जाती िै कयोंकक विाँ ऐसी कोई समस्या कभी थी िी निीं।ं धाशमकि संप्रदायों तथा दशनि अथवा योग पद्धनतयों के परस्पर भेदों के पीछे ननहित शभन्न-शभन्न अनुभवों का जब रूपांतरण कर हदया जाए तो वे अपने शभन्न-शभन्न मानशसक िमों को छोड़ देतीं और जब उन्िें अपनी उच्चतम समान प्रगाढ़ता या तीव्रता तक उठा शलए जाए तो आपस में समजन्वत िो जाते िैं और अनतमानशसक अनन्तता में एकीभूत िो जाते िैं।

े

इन तीनों अनुभवों को यहद िम संकुधचत दृजष्टकोण से लें तो िम भगवान् ्को इन तीन सूत्रों में बाधँ देंगे और इन तीन को िी भगवान् ्का संपूण िस्वरूप घोवषत कर देंगे। िमारे वैहदक ऋवषयों को इस बात का बोध था कक परमाममा को ककन्िीं भी अनुभवों में, ककन्िींभी सूत्रों में निींबाधाँ जा सकता। और परमाममा की अशभव्यजकत भी उनके समस्वरूप का एक अनतक्षुर अंश मात्र िी िै। िालाकाँक ऐसा निीं िै कक वे इस अशभव्यजकत में पूण रूप से ववद्यमान निीं। परन्तुउनका समस्वरूप अशभव्यजकत से सीशमत निीं, वि तो उसके परे भी िै। इसीशलये िमारे शास्त्रों में परामपर की पररकल्पना िै कयोंकक परमाममा सभी कुछ को सवथिा अनतिम कर जाते िैं, वे सभी सूत्रों से परे िैं। इसशलए परमाममा केवल इस दृजष्टकोण से िी परमाममा निीं िैं कक जो कुछ अशभव्यकत िुआ िै वि वे िी िैं, अवपतु वे इस दृजष्टकोण से परमाममा िैं कक उनके शसवा कुछ और िै िी निीं, वे िी सब कुछ िैं। अतः सब कुछ िै तो उन्िीं का रूप परन्तु वे ेउसके अनतररकत भी बिुत कुछ िैं। उसके बारे में तो कुछ किा िी निीं जा सकता कयोंकक उनका स्वरूप तो अगम, अधचंमंय, वणनिातीत िै। इसीशलये जो कुछ हदखाई दे रिा िै, जो कुछ िमारी कल्पना में िै, जो कुछ िमारे अनुभव में िै वि सब भी और जो कुछ निीं िै वि सब भी और उससे परे भी जो कुछ िै

परंतु सामान्यतया चेतना इतनी संकुधचत िोती िै कक ककसी छोटे-मोटे अनुभव को िी व्यजकत सब कुछ बताकर उसकी नुमाइश करने लगता िै। अब चूंकक मनुष्य का मन संकुधचत िै इसशलए उसके द्वारा भगवान् ्का वि सब कुछ परमाममा िी िैं। अन्य ककसी चीज का अजस्तमव िी निीं, वासुदेवः सवशिमनत, और चूँकक ववरला िी कोई अनुभव प्राप्त िोता िै वि संकुधचत िी िोता िै। िालाकाँक मानशसक चेतना में ककये अनुभव अपनेआप में कोई ऐसी बात कर जाता िै ... सिी स्वरूप परंतु उनका ककसी इसीशलए परमाममा के स्वरूप पर एकाधधकार निीं िै। वैसे िी जैसे सूय िका प्रकाश अनेक दपणिों में पड़ता िै और सभी में उसी एक सूय िका प्रनतत्रबंबं िोने पर भी वि ककसी में भी बाँध निींजाता। वैसे िी मानशसक चेतना में उस समय के जजतनेभी त्रबंबं बनते िैं वे िैं तो उस समय के िी त्रबंबं परंतु ुउनका उस समय पर एकाधधकार निींिोता और न िी वि पूण िसमय उनमें समाहित िोता िै। वि तो उन सब से परे िोता िै। अनतमानशसक चेतना में िी पूण िसमय के दशनि िो सकते िैं। भगवान् ्इतने असीम िैं कक वे िमारी असीम-संबंधी धारणा से भी सीशमत निीं ंिोते। वे ेवास्तव में िी सभी चीजों को, िमारे ऊँचेसे ऊँचेमानशसक ववचारों, मानशसक

सूत्रों को अनतिम कर जाते िैं। इसीशलए गीता भगवान् ्को अनेक स्थानों पर अप्रमेय पद से संबोधधत करती िै। श्रीअरववन्द भी इस पद की ब़्िी प्रशंसा करते िैं और अपनी टीका में भगवान् ्के शलए इस पद का प्रयोग करते िैं।

गीता में भगवान् ्का संबोधन करने ्के चार शब्द िैं - परमाममा, परमेश्वर, परमब्रह्म और पुरुषोर्त्म।
यहद िम पुरुष आहद के दृजष्टकोण से देखर्तें तो वे पुरुषोर्त्म िैं। यहद िम आममा की दृजष्ट से देखर्तें तो वे िमारी वैयजकतक और वैजश्वक आममा से परे परमाममा िैं। यहद सारी सृजृष्ट के ननयंता तथा इसके ईश्वर के रूप में देखें तो वे इस सबके परे परमेश्वर िैं। और यहद इस सारी अशभव्यजकत का ननषेध कर िम एक ऐसी सर्त्ा की बात करें जो इनके परे िै तो वि ब्रह्म िै। और उसके भी परे परमब्रह्म िै। ये सभी पद एक िी परम सर्त्ा को द्योनतत करते िैं पर वणनि में जब िम शभन्न-शभन्न दृजष्टकोणों से बात करते िैं तब शभन्न पदों का प्रयोग करते िैं। और इससे मिारी भारतीय संस्कृनत की समृद्धता का भान िोता िै कक ककतने ्ववववध रूपों में यिा ाँमिापुरुषों को भगवान् ्का साक्षामकार िुआ िै अन्यथा अन्य संस्कृनतयों में तो ककसी एक िी नाम से उस परम सर्त्ा को संबोधधत कर हदया जाता िै, जबकक भारतीय संस्कृनत में तो परमाममा की शभन्न-शभन्न शजकतयों के भी शभन्न-शभन्न नाम िैं। और ऐसा भी निीं कक ये केवल शभन्न नाम िी िैं, इनकी कियाएाँ भी शभन्न-शभन्न िैं।

कार्ैस्तैस्तैहवतज्ञानाः प्रपद्यततेऽतयदेर्ताः ।

तं ्तं ्तनयर्र्ास्थाय प्रकृत्या तनयताः स्र्या ।। २० ।।

२०. मभतन-मभतन प्रकार की बाह्य कार्नाओंके र्ंर्ीभूत होकर, जजससे उनका ज्ञान अपहृत हो जाता है, र्नुष्य अपनी स्र्यं की प्रकृतत द्र्ारा प्रेररत होकर इस या उस वर्धध-तनयर् को स्थावपत कर अतय देर्ताओं का आश्रय ग्रहि करते हैं।

.....जिा ाँज्ञान निीं ंिोता वर्ाािभकत भगवान् ्को उनके समग्र सवसिमावेशी समय (वासुदेवः सवशिमनत) को जानकर उनकी ओर निीं ंजाता, अवपतु भगवान् ्के ऐसे अधूरे नाम और रूप गढ़ता िै जो स्वयंउसकी अपनी िी आवश्यकता, मनोदशा और प्रकृनत के प्रनतत्रबंबं मात्र िोर्तें और इन त्रबंबों को वि अपनी स्वाभाववक या प्राकृत लालसाओं में सिायता पिुाँचाने ्या उर्न्ें तुष्ट करने के शलए पूजता िै।... अब यि प्रश्न ककया जा सकता िै वि भजकत उदार कैसे िो सकती िै जो भगवान् ्को, वे जो सांसाररक वरदान दे सकर्तें केवल उर्न्िें को पाने के शलए ढ़ूाँढ़ती िै या कफर उर्न्ें दुुःख कष्ट में एक आश्रय के रूप में खोजती िै और स्वयंभगवान् ्के शलए िी भगवान् ्को निीं ंचािती? कया ऐसी भजकत में अिंकाररता, दुबुलिता और वासना-कामना िी प्रधान निीं ंरिती, इसशलए कया इसे भी ननमन प्रकृनत की िी चीज निीं ंसमझना चाहिए?

ननःसन्दिे, समस्त आराधन-रूप प्रेम के पीछे एक आध्याजममक शजकत िोती िै और यिााँतक कक जब यि अज्ञानपूवकि तथा ककसी सीशमत पदाथ िको अवपति ककया जाता िै तब भी ववधध-ववधान के अभाव तथा उसके पररणामों की तुच्छता में से भी आध्याजममक वैभव की कुछ छटा हदखायी देती िै। कयोंकक प्रेम जो कक पूजा िै, एक साथ िी अभीप्सा भी िोता िै और एक तैयारी भी : यि अपनी अववद्यागत क्षुर सीमाओंके भीतर भी एक

आश्चयजिनक साक्षामकार की झलक प्राप्त करा सकता िै जो भले अभी न्यूनाधधक अंघ तथा आंशशक िो; कयोंकक ऐसे क्षण आते िैं जब िम निीं अवपतु एकमेव िो प्रेम करने वाला व िममें प्रेम का पात्र िोता िै और एक मानवीय

भावावेश भी इस अनंत प्रेम और प्रेमी की जरा-सी झाकीं से उदात्त् एवंमहिमाजन्वत िो सकता िै। यिी कारण िै कक

देवता एवं प्रनतमा की अथवा ककसी आकषकि व्यजकत या श्रेष्ठ पुरुष की पूजा को तुच्छता की दृजष्ट से निींदेखना चाहियेः कयोंकक ऐसी पूजाएँ ऐसे सोपान िोती िैं जजनके द्वारा मानवजानत अनंत के उस आनंदपूण ि भावावेश और

परमानंद की ओर गनत करती िै जो कक अनंत को सीशमत करते िुए भी उसको िमारी अपूण िदृजष्ट के समक्ष प्रकाशशत करती िैं, जब कक अभी िमें उन ननमन सोपानों को, जो प्रकृनत ने िमारी प्रगनत के शलये बनाये िैं, प्रयोग में लाना तथा अपनी उन्ननत के िमों को अंगीकार करना िोता िै। िमारी भावाममक सत्ता् के ववकास के शलये कई

प्रकार की प्रनतमा-पूजाएँ अननवाय िैं, और वि जो जाती िै तब तक ककसी भी अवसर पर प्रनतमा को भंग करने के शलये उतावला न िोना जब तक कक वि उसके स्थान पर उस सद्वस्तु को, जजसका कक यि प्रतीक मात्र िै, उपासक के हृदय में प्रनतजष्ठत न कर सके।

यिां िप्रनतमा से अथ िकेवल ककसी मजन्दर में पूजी जाने वाली प्रनतमा से निीं। व्यजकत अपनेजीवन में ककसी मानशसक आदश िको या ककसी ववचार को लेकर चलता िै और उसके प्रनत ननष्ठा रखता िै। अन्य कोई व्यजकत ककसी व्यजकत के प्रनत ननष्ठा लेकर चलता िै। अपने-अपने गठन के अनुसार िर एक को अपने-अपनेइन आदशों, ववचारों, अभीप्साओं आहद में कोई समय हदखाई देता िै और चूंकक उसके शलए वि समय िोता िै इसशलए उसके शलए वि एक प्रनतमा बन जाती िै और उसके शलए परमाममा की अशभव्यजकत उस रूप में िोती िै। अपने आप में तो भगवान् िमारी ककन्िीं भी ऊँची से ऊँची धारणाओं से, पररकल्पनाओं से त्रबल्कुल परे िैं और इनमें से ककन्िींमें भी पकि में निीं आते परंतु जजसका जजस प्रकार का गठन िोता िै उसकी चेतना के शलए उस समय की अशभव्यजकत उसी प्रनतमा के रूप में िो जाती िै। अब चूंकक पशु ुचेतना के शलए मनुष्य उनकी चेतना को सवथिा अनतिम कर जाते िैं इसशलए उन्िें वे िी देवता सदृश हदखाई देते िैं। उसी प्रकार मानव चेतना में भी ज्यों-ज्यों ववकास िोता िै देवमव की उसकी पररकल्पना भी ववकशसत िोती जाती िै।

अब प्रनतमा बनानेके पीछे कया औधचमय िै? यहद मनुष्य को अपने क्षुर अिं से ननकलकर ककसी अन्य पूजा के पात्र का सिारा न िो तो वि कभी भी एकाएक सच्चेप्रेम तक, हदव्य प्रेम तक पिुँच िी निींपाएगा। इसशलए जजस भी तरीके से मनुष्य अपनेआप को भूलकर ककसी अन्य ववषय पर केंहरत िोता िै, उसके प्रनत अपने को समवपति करता िै, उतना िी उसे अपनेअिं से कुछ छुटकारा शमलता िै और वि आगे प्रगनत करता िै। यि प्रनतमा पररवार, समाज या राष्ट्र के रूप में िो सकती िै, ककसी आदश,ि ववचार या शसद्धांत के रूप में िो सकती िै, ककसी व्यजकत, प्रेरक भाव या अभीप्सा के रूप में िो सकती िै। इनके सिारे व्यजकत ववकशसत िोता जाता िै और अपनेआप को ककसी के प्रनत समवपति करने ेकी क्षमता भी उसमें ववकशसत िोती जाती िै। अब यद्यवप इन सभी प्रकार के प्रेमों के पीछे मूल में भगवान् ्का प्रेम िी िोता िै तो भी प्रमयक्ष रूप से उसकी (भागवत् ्प्रेम की) अशभव्यजकत सबसे क्षीण रूप से िी रिी िै। उसका कारण िै कक िमने जजन भी प्रनतमाओं का ननमाणि कर रखा िै, प्रेम के जजन भी रूपों का वरण कर रखा िै उनमें िमारा प्रेम नन:स्वाथ िनिीं िै अवपतु ुउसमें िम अपना प्राखणक या

मानशसक या अन्य कोई सुख, अन्य कोई तुजष्ट ढूाँढ़ते िैं। उदिारण के शलए अपनेदेश के प्रनत समवपति व्यजकत को यि भाव रिता िै कक उसका देश सबसे मिान् ्िो। यहद कोई ककसी ववचार के प्रनत समवपति िै तो यि प्रयास रिता िै

कक वि ववचार चररताथ िि्ो जाए तो उसे ककतना सुख शमलेगा। इस प्रकार इन सभी प्रकार के उद्देश्यों में किीं ्न किीं ्रिती तो अिं की िी तुजष्ट िै भले वि किीं ्सूक्ष्म रूप से िो तो किीं अधधक प्रमयक्ष रूप से। केवल हदव्य प्रेम

अिैतुक िोता िै। परंतु आरंभ में िी व्यजकत इस अवस्था तक निींपिुाँच सकता इसशलए वि ववशभन्न प्रनतमाओं की सिायता से धीरे-धीरे ववकशसत िोता िै। िमारी पाशववक प्रवृवृत् िम पर इतनी िावी िोती िै कक जब तक िमें

बदले में कुछ प्राप्त न िो तब तक िम कुछ कर िी निीं सकते। भारतीय संस्कृनत में सदा िी इस बात का भान िोने के कारण कभी भी ककसी के प्रनत समपणि के भाव को गौण निीं ्समझा गया और उस भाव को ितोमसाहित करने की बजाय सदा िी उसे बढ़ावा हदया गया। इसीशलए यिा ाँिम शमत्र के प्रनत शमत्र के प्रेम और मयाग की, सगे-

संबंधी

के प्रनत, माता-वपता के प्रनत, देश के प्रनत मयाग की कथाएाँ सुनतें और उन्िें बिुत िी सरािा जाता रिा िै। इसीशलए गीता भी मानती िै कक भले आर्त् िो, अथाथी िो या जजज्ञासु िो, भगवान् ्की ओर चलने वाले सभी श्रेष्ठ िैं। इसीशलए भारतीय संस्कृनत में सदा िी यि बोध रिा िै कक पूजा का पात्र भले िी ककतना भी तुच्छ कयों न िो, जब तक कक व्यजकत को ककसी श्रेष्ठतर उद्देश्य के शलए, पूजा के ककसी मित्र पात्र या प्रनतमा के शलए तैयार न कर हदया जाए तब तक उसकी पूव िकी प्रनतमा को भंग निीं करना चाहिये अन्यथा तो उसे अपनी अिं की सीमाओं से बािर ननकलने का कोई आधार िी निीं ्रिेगा। जो भी प्रेम के रास्ते पर, आममसमपणि के रास्तेपर चल रिा िै, चािे वि रास्ता ककतना भी क्षुद्र कयों न िो, चािे उसके पीछे ककतना भी हिसाब-ककताब अथवा मागाँ कयों न िो, वे सभी अच्छे िैं। इसीशलये गीता किती िै 'उदाराः सव िएवैते।'

प्रश्न : कया इसमें ये दो चीजें िो सकती िैं जजसमें एक में तो व्यजकत को अपनेआदश िके अलावा या जजस ककसी प्रनतमा को उसने पकि़ रखा िै उसके अलावा और कुछ पता निीं ्िोता और उसके शलये विी सब कुछ िोती िै, और दूसूरी में वि ककसी प्रनतमा को अपनाता अवश्य िै परंतुउसे भान िोता िै कक वि प्रनतमा ककसी परम तत्त्व की प्रनतननधध मात्र िै और वि उसे यथासमय छोि़ सकता िै?

उत्तर : निीं ऐसा निीं ्िै। भारतीय संस्कृनत में कभी भी प्रनतननधध को गौण निीं ्मानते। सदा िी उसे तो परम िी मानते िैं तभी तो िम किते िैं कक 'गुरु साक्षात् ्परम् ्ब्रह्म'। वे तो उसे साक्षात् ्परंब्रह्म िी मानते िैं न कक परम का कोई प्रनतननधध। अब कया िम श्रीमाताजी व श्रीअरववन्द को परम् ्का प्रनतननधध मानेंगे? िमारे शलए तो वे िी परम् ्िैं। यों तो सभी कुछ परम् ्िै, परंतु ककसी एक अथ िमें लेनेपर इस बात की अधधकांश शजकत चली जाती िै।

उदिारण के शलए िमारे शभन्न-शभन्न पुराणों में शभन्न-शभन्न देवताओं को परम् ्भगवान् ्के रूप में प्रनतपाहदत ककया गया िै जजसमें अन्य देवों को उनसे कननष्ठतर बताया गया िै। शशव पुराण में भगवान् ्शशव को परम देव बताया गया िै, गणेश पुराण में गणेश को परम् ्बताया गया िै, विीं देवी पुराण में देवी को िी परम् ्बताया गया िै।

यि एक ऐसा समय िै जो िमारी संस्कृनत में अंतबोधाममक और आध्याजममक प्रवृवृत् के कारण सवमिान्य रिा िै और ककसी को इससे कभी कोई आपवर्त् निीं ्िुई। परंतुमानशसक रूप से इसे निीं ्समझा जा सकता कक परम् ्तो कोई एक िी िो सकता िै, सारे िी परम् ्कैसे िो सकतें। और इसी कारण बिुत से मानशसक दृजष्टकोणों में िम

इसके ववरुद्ध आक्षेप पार्ति। परंतु यहद िम अपने आराध्य देव को वास्तव में िी परम् ्न मानें तो उनकी आराधना से िमें कया लाभ िोने ेवाला िै। कभी िम ककसी गुरुवादी को यि किते निीं सुनते ेकक सभी परम् ्िैं इसशलए वि अपनी सुववधानुसार गुरु की आज्ञापालन और सेवा के शलए स्वतंत्र िै और यिाँतक कक गुरु बदलनेके शलए भी स्वतंत्र िै। सभी सच्चेशशष्य गुरु को िी एकननष्ठ रूप से परम मानतेिैं और अपना संपूण िजीवन ननवववाद रूप से उनके चरणों में अवपति करते िैं। शशष्य के शलए गुरुवाकय िी अंनतम िोता िै। इसीशलये कितेिैं मंत्रमूलं गुरुवाकियं। यि केवल कोई मानशसक दृजष्टकोण निीिं अवपतुएक गंभीर आध्याजममक समय िै। और इस एकननष्ठता के प्रभाव से जब व्यजकत की आँखें खुलती िैं तब उसे सवत्रि अपनेइष्ट के दशनि िोतेिैं। गीता भी इस जस्थनत का वणनि करती िुई किती िै, "जो योगी एकमव भाव में जस्थत िोकर समस्त भूतों में मुझसे प्रेम करता िै वि योगी चािे जजस प्रकार रिे और कम िकरे मुझ में िी रिता और कम िकरता िै।" जैसे श्रीरामकृष्ण परमिंस को तो सभी जगि माँकाली का िी दशनि िोता था। परंतुइसका यि अथ िनिींननकलता कक व्यजकत को जब सवत्रि अपनेगुरु का िी रूप नजर आए तो वि अपनेगुरु को छोड़ कर किींभी जा सकता िो। सच्चा साधक सदा िी नैजष्ठक भाव रखता िै न कक ककसी प्रकार का कोई अधकचरा मानशसक दृजष्टकोण कक जब सभी ब्रह्म िै तो वि तो ककसी के पास भी जा सकता िै। गुरु के प्रनत ननष्ठा का भाव तो एक सवथिा शभन्न भाव िै जजसे सति पर निीं समझा जा सकता।

प्रश्न : इसका कया अथ िििै, "न िी वि जो ज्ञानी िै तब तक ककसी भी अवसर पर प्रनतमा को भंग करने ेके शलये उतावला िोगा जब तक कक वि इसके स्थान पर उस सद्वस्तु को, जजसका कक यि प्रतीक मात्र िै, उपासक के हृदय में प्रनतजष्ठत न कर सके"?

उत्तर : इसका यि अथ िििै कक प्रनतमा के माध्यम से समय का जजतना तत्त्व अशभव्यकत िो रिा िै उससे अधधक गिराई तक यहद व्यजकत को न ले जाया जाए तब तक वि उस प्रनतमा को छोड़ निीं ंसकता। कयोंकक भले वि प्रनतमा ककतनी भी सीशमत कयों न िो परंतु उस व्यजकत को तो अपना सब कुछ उसी के माध्यम से शमलता िै। इसशलए जब तक उसे उससे गिनतर समय के दशनि न कराए जाएँ तब तक वि उस प्रनतमा को निीं ंछोड़ सकता और छोड़ना चाहिये भी निीं अन्यथा तो उसके पास अपनेआप से दूर िट कर ऊपर आरोिण करने का कोई आधार िी निीं ंबचेगा। वास्तव में सब कुछ भगवान् ्का अधधकाधधक आमम-उन्मीलन िै। चेतना के एक अधधक गिरे स्तर पर िमें परमाममा के अधधक प्रगाढ़ दशनि प्राप्त िोते िैं। और ज्यों-ज्यों िम उस सद्वस्तुके अधधकाधधक ननकट जाते िैं मयों-मयों िमें उसकी और अधधक अंतरंग अनुभूनत, अधधक प्रगाढ़ स्पश िप्राप्त िोते िैं। परंतुऐसा निीं ंिै कक व्यजकत यि सोचेकक अपने गुरु या इष्ट देव की सिायता से और उन्िेंअनतिम करके वि भगवान् ्के पास चला जाएगा। वि उस परम सद्वस्तु, परम तत्त्व को उसके माध्यम से निीं ंअवपतु स्वयंउसी के अंदर देखेगा। अब इसको समझने ेके शलए, यहद कोई श्रीकृष्ण से प्रेम करता िै तो एक भाव तो यि िै कक वि उनके शरीर से या बािरी रूप से िी प्रेम करता िो, विीं दूसरा भाव वि िै जो उनके शरीर के अनतररकत उनके अंततत्त्वि को भी जानता िो। वि उनसे और भी प्रगाढ़ रूप से प्रेम कर सकता िै। इसी प्रकार ज्यों-ज्यों साधक उनकी अधधकाधधक गिराई में, उनके समस्वरूप में प्रवेश करता जाता िै मयों िी मयों उसका प्रेम अधधकाधधक गिरा िोता जाता िै। परंतु

इसका यि गलत अथ िलगाना िुआ कक व्यजकत श्रीकृष्ण को छोि़कर भगवान् ्शशव के पास चला जाए कयोंकक वे परामपर देव िैं। यि एक सूक्ष्म भेद िै। इसशलए व्यजकत जब सद्वस्तुकी अधधकाधधक गिराई में जाने लगता िै तब वि उसके बािरी रूप को िी निीं अवपतुउसके गिरे अंतरंग स्वरूप को भी देखता िै और ज्यों-ज्यों वि उसके अधधकाधधक अंतरंग स्वरूप को देखता िै वि उससे उतनिी अधधक प्रगाढ़ रूप से प्ेरम करने ेलगता िै। इसी भाव के कारण जिााँककसी के शलए वि प्रनतमा, वि ववग्रि कोरी प्रनतमा मात्र िी रिगी विींदूसरे व्यजकत के शलए वि साक्षात् ्परमामा का श्रीववग्रि िोगी। इसशलए श्रीअरववन्द किते िैं कक श्रीकृष्ण ने जो भी रूप अशभव्यकत ककये िैं अपनेसमस्वरूप में वे उनसे किीं ंमित्र िैं। जजस रूप में वे प्रकट िुए और लीला आहद कीं वे तो उनके बािरी रूप और कियाकलाप िैं। उनका पूण िस्वरूप इन सबसे अनंततः ववशाल िै। इसशलए िमें उन्िेंकेवल इन्िीं रूपों से निीं

बाधाँना चाहिये।

पर यहद ककसी व्यजकत को श्रीकृष्ण की लीला और रास में िी आनन्द आ रिा िो तो जब तक उस व्यजकत को उससे भी अधधक गिराई में निीं ंले जाया जा सके और भगवान् ्के अधधकाधधक अंतरंग आयामों का दशनि न कराया जा सके तब तक उसके वतमिान भाव को भंग निीं ंकरना चाहिये। आखखर रास आहद भी तो भगवान् ् श्रीकृष्ण की अशभव्यजकत मात्र िी तो िैं। इन सब अशभव्यजकतयों से वे सीशमत निीं ंिो जाते। उनका ननजस्वरूप इन सब अशभव्यजकतयों से किींअधधक ववशाल िै। इसीशलए तो कितेिैं कक िरर अनन्त िरर कथा अनन्ता। पर यहद कोई शबरी के प्रसंग से िी रववत िो उठता िै और उसमें िी उसे आनंद आता िै तो उसके शलए तो विी ठीक िै। पर यहद श्रीराम के स्वरूप में और अधधक गिरे रूप से पैठा जा सके तो अधधक श्ेरष्ठ िै। वास्तव में कोई भी चीज ऐसी निीं िै जो कक परमामा का रूप निीिं। बात केवल इतनी िै कक उस रूप की ककतनी गिराइयों तक िम जा सकतेिैं। स्वयं श्रीअरववन्द को करनाली जस्थत दुगाि मंहदर में जगदमबा के दशनि प्राप्त िुए। अब जो बािरी पूजा-पाठ करते िैं उन्िेंवि केवल एक प्रनतमा हदखाई देती िै जबकक श्रीअरववन्द के शलए तो वे साक्षात् ्जगदमबा के रूप में प्रकट िो गईं। आंतररक दृजष्टकोण में कोई मानशसक रूहढ़वाद निीं रिता। इसीशलए इस संदभ िमें श्रीकृष्णप्ेरम किते ेथे,े "म ैंककसी अपराध क्षमा-याचना के प्रकार की अनमनी-सी पूजा की बात निीं ंकरता जो कक प्रनतमा को एक प्रतीक या कफर ध्यान लगानेके ककसी केंर के रूप में काम में लेती िै, अवपतु उस सच्ची पूणरूिपेण सेवा की बात कर रिा िूाँ जो ववग्रि को स्वयं कृष्ण के रूप में देखती िै।" (योगी श्रीकृष्णप्ेरम, पृष्ठ १६३)

अतः किनेका तामपय यिि कक िम अपने पूजा के पात्र की िी अधधकाधधक गिराई में प्रवेश कर सकते िैं, यि निींकक िम उस पूजा के पात्र का िी मयाग कर दें और ककसी अन्य का वरण कर लें।

यो यो यांयांतनुं भक्तः श्रद्धयाधचतुवमर्च्छतत ।

तस्य तस्याचलांश्रद्धां तारे्र् वर्दधाम्यहर् ्।। २१ ।।

२१. जो कोई भक्त रे्रे जजस ककसी रूप की श्रद्धापूर्कव पूजा करना चाहता है, उस भक्त की उस श्रद्धा को र् ैंदृढ़ और अचल बना देता हूाँ।

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनर्ीहते।
लभते ेच ततः कार्ातर्यैर् वर्दहताजतह तान् ्।। २२॥
२२. ई भक्त, उस श्रद्धा से युक्त होकर उस रूप की आराधना करता है और उसके द्र्ारा अपनी इच्छाओंकी पूतत वकरता है; तनःसंदेह र् ैंस्यंही हूाँ जो उसे ये सब चीजें प्रदान करता हूाँ।

यहद मनुष्य को उसके जजस भी ककसी वतमिान स्तर से भगवान् ्की ओर जाने की अनुमनत न िोती और केवल वे िी भगवान् ्के पास जा सकते थे जजनमें सच्ची भजकत आहद िोती, तब तो भगवान् ्की ओर कदाधचत् ्िी कोई मुि सकता था। परंतु भगवान् ्किते िैं कक जजस ककसी रूप से भी कोई उनकी ओर चलता िै उसकी उस श्रद्धा को वे दृढ़ बना देते िैं। आरंभ में व्यजकत घोर तामशसक तथा राजशसक अवस्था में िोता िै। ऐसे में वि केवल तामशसक और राजशसक उद्देश्यों की पूनत िेतु उनकी ओर मुिता िै। आरंभ में उसे कोई भौनतक लाभ की अपेक्षा िोती िै, ककसी प्राखणक सुख की या लाभ की अपेक्षा िोती िै। मंहदर आहद में लगभग प्रमयेक व्यजकत ककसी न ककसी मनोकामना की पूनत िेतु जाता िै। बिुत तो ऐसे िैं जो इस भय से जाते िैं कक ऐसा न करना उन्िें संकट में िाल सकता िै। इसशलए यहद इन सभी चीजों को अनुमनत न दी जाती तो शायद िी कभी कोई भगवान् ्की ओर चल सकता था। और जब व्यजकत धीरे-धीरे घोर भौनतक और प्राखणक चेतना से कुछ अधधक ववकशसत िोता िै तब उसे मिसूस िोने लगता िै कक केवल ककन्िीं ननमन िेतुओं के शलए भगवान् ्की ओर चलना कोई श्ेरेष्ठ भाव निीं। और इस प्रकार धीरे-धीरे उसका भाव उत्तरोत्तर ववकशसत िोता जाता िै और कफर केवल ककन्िीं िेतुओंकी पूनत िेतु दृजष्टकोण से िी निीं,ं बजल्क उसे भगवान् ्के ननजस्वरूप में रस आने लगता िै। कयोंकक सबसे मित्त्वपूण िचीज िै ककसी प्रकार भी भगवान् ्के संपकि में आ जाना और इसीशलए व्यजकत की श्रद्धा का ववषय ककतना भी छोटा कयों न िो पर उसे प्रमयुत्तर अवश्य शमलता िै। जजन लोगों की शाशलग्राम में आस्था िै उन्िें उनके द्वारा उत्तर शमलता िै, जजनकी ककसी तीथ िमें आस्था िै उन्िें विााँ संपकि प्राप्त िोता िै। इसशलए जजसकी जिााँश्रद्धा िोती िै भगवान् ् उसकी उसी श्रद्धा को दृढ़ कर देते िैं।

....परम् ्देव इन सब भकतों को उनकी अपूण िदृजष्ट िोने के कारण उन्िें अस्वीकार निीं कर देते। कयोंकक भगवान् ्अपनी परम् ्परामपर सत्ता में अजन्मा, अव्यय और इन सब आंशशक अशभव्यजकतयों से श्ेरेष्ठ िोने के कारण सिज िी ककसी प्राणी की समझ में निींआ सकते। वे माया, अपनी योगमाया, के इस अनतववशाल आवरण में अपने-आप को ढके िुए िैं जजसके द्वारा वे जगत् ्के साथ एक िैं और कफर भी उसके परे िैं, अंतयामिी िैं, पर नछपे िुए िैं, सभी हृदयों में अवजस्थत िैं, पर िर ककसी के शलए प्रकट निीं ंिैं। प्रकृनतस्थ मनुष्य समझता िै कक प्रकृनतगत सभी अशभव्यजकतयााँ अथवा सभी पदाथ िभगवान् ्िी िैं जब कक यथाथ िमें ये सब केवल उनके काय,ि शजकतयााँ और आवरण मात्र िैं। भगवान् ्समस्त भूत, वतमिान और भववष्य के जन्मों को जानते िैं पर उन्िें कोई निीं ंजानता। इस कारण यहद प्रकृनत में अपनी किया के द्वारा सब प्राखणयों को इस प्रकार भरमाकर वे ंइन सब पदाथों के अन्दर उन्िें दशनि न दें तो माया में बद्ध ककसी मनुष्य या जीव के शलए कोई हदव्य आशा न रि जाएगी। इसशलए इन भकतों की प्रकृनत के अनुसार, जैसे भी ये भगवान् ्की ओर चलते िैं उसी रूप में भगवान् ्इनकी भजकत

को स्वीकार करते िैं और बदले में हदव्य प्रेम और करुणा द्वारा उनका उत्तर देते िैं। आखखर ये रूप िैं भी तो उन्िीं का एक ऐसा आववभावि जजसमें से िोकर अपूण िमानवी बुद्धध उनका स्पश िपा सकती िै, ये कामनाएँ िी वि प्रथम साधन' बन जाती िैं जजससे िमारे हृदय उनकी ओर मुिते िैं: और, न िी ककसी भी प्रकार की भजकत ननरथकि या ननष्प्रभावी िोती िै, भले उसकी कैसी भी सीमाएँ या कशमयाँ कयों न िों।

'भगवान्सेअपना समस्त कल्याण चािते िुए चािते िुए वि अंत में भगवान् में िी अपना समस्त कल्याण खोजनेलगेगा। अपने सब सुखों के शलए भगवान् पर ननभरि रिने के द्वारा वि भगवान् में िी अपने सभी सुखों को स्थावपत करना सीख लेगा। भगवान् को उनके रूपों और गुणों में जानकर वि उन्िें उस समग्र और परामपर रूप में जानने लगेगा जो सब पदाथों का मूल िै।

....ककतने िी लोग िैं जजनमें धाशमकि श्रद्धा िै और धाशमकि भाव िै और जो कक जब वे पूण िरूप से यि धारणा रखते िैं कक उनके भगवान् उन्िें आगे ले जा रिे िैं तब भी, वस्तुत: अपनेहृदय के आवेगों, अपनी कामना की तृष्णाओं, अपनी इंहरयों की आतुरताओं और अपनिी ववचारों के आदेशों का िी अनुसरण कर रिे िोते िैं! और वे सफल रिते िैं, कयोंकक भगवान् उनका मागदिशनि कर रिे िोते िैं। उनके शलए यि माग ि'उन्िोंने' िी चुना िै, और कयोंकक 'उन्िोंने' इसे चुना िै इसशलए यि उनके शलए सवश्रेष्ठ, सबसे अधधक बुद्धधमत्तापूण िऔर सवाधिधक फलप्रद माग िै। कफर भी यि उनका अपना भगवान् िोता िै - जैसे नाजस्तक मानते िैं उस रूप में निींकक उस भगवान् को उन लोगों ने अपनेस्वरूप के अनुसार गढ़ शलया िै, परंतुइस रूप में कक ये ऐसे भगवान् िैं जो स्वयं को

उस रूप में बना लेते िैं जजस रूप में वे लोग पसंद करते िैं, उस रूप में जो उनकी प्रकृनत या उनके ववकास के सवाधिधक उपयुकत िो। "जजस भी तरीके से मनुष्य मेरे पास आते िैं, उसी रूप iv.11 में म ैंउनसे प्रेम करता िूँ और

उनका आशलंगंन करता िूँ।" यि एक अगाध गिराई की बात िै जजसमें भगवान् और धम िके समय का संपूण बीज

या मम िननहित िै। आखखरकार, केवल इसी तरीके से सीशमत का परम् से शमलाप िो सकता िै, जजसकी अपनी एक प्रकृनत या धम िै उस जीव का उससे शमलन िो सकता िै जो प्रकृनत या धम िकी सभी सीमाओंसे परे िै... कफर भी, िमारी सारी इच्छाएँ, कामनाएँ, कमि–अकम िआहद सभी कुछ रास्ते की घटनाओं के रूप में िैं। और जब ये चीजें घट चुकी िोती िैं तब इनके प्रनत यि मनोभाव िो कक भगवान् की िी इच्छा से जो अच्छा से अच्छा संभव था

जो माग िै (ननममनतर) देवी के प्रमत िमारी अधीनता के द्वारा िमें आगे ले जाता िै उसकी अपेक्षा भगवान् से शमलने

घहटत िुआ िै। परंतु यि तकि उस घटना के घहटत िोनेसे पूव िनिीं हदया जा सकता। शसद्धांतत: तो भगवान् का एक उच्चतर रख इच्छा के त्रबना तो कोई काय िो िी निींसकता परंतुजब व्यजकत के पास चुनाव का समय िो उस समय व्यजकत जो चयन करता िै वि बिुत मित्त्व रखता िै। कयोंकक यि चयन भगवान् के ववधान में एक बिुत िी मित्त्वपूण ियंत्र िै जजसके द्वारा वे दुननया को आगे बढ़ाते िैं। इसशलए व्यजकत कोई उदासीन मनोभाव निींअपना सकता। उसे तो जो कायक्षेत्र शमला िै उसे पूरी ननष्ठा के साथ ननभाना िोता िै। उसमें प्रमाद करके इस ववचार का

दुरुपयोग करना कक सभी कुछ भगवान् ्की िी इच्छा से िोता िै और इसशलए व्यजकत को कोई व्यजकतगत चयन करने ेकी कोई आवश्यकता निीं, एक शमथ्या और तामशसक ववचार िै। इसीशलए श्रीमाताजी कितीं िैं कक सदा अपनी चेतना के शशखर पर बनेरिो और तब सदा तुमिारे साथ सवश्रेष्ठ िी िोगा। परंतु यहद यि आदश िजस्थनत सदा िी न बनाई रखी जा सके तो भी ककन्िींसंकटकालों या ननणाययक क्षणों पर तो व्यजकत अभीप्सा के द्वारा, प्राथनिा के द्वारा, हदव्य संकल्प के प्रनत समपणि के द्वारा अपनी उच्चतम ननयनत का आह्वान कर सकता िै।

इसशलए व्यजकत को प्रयास करना चाहिये कक वि मानशसक रचनाएँ बनाए त्रबना, ककन्िींपूवाग्रिों से प्रभाववत िुए त्रबना व्यविार करे, किया करे। इसशलए इच्छाओं और कामनाओं के वशीभूत िो कम िकरनेकी प्रकृनत के अंतगति जो प्रववृत्त् रिती िै उसी प्रकृनत के अंदर यि व्यवस्था भी ननहित रिती िै कक व्यजकत उच्चतर किया के शलए अभीप्सा रखे, उच्चतर ववधानों का आह्वान करे, ननमनतर चीजों को अस्वीकार करे और उनसे ऊपर उठे।

प्रमादवश यि कि देना कक जो िो रिा िै अच्छा िी िो रिा िै इसशलए िमें कुछ करने की या कफर चयन करने की आवश्यकता निीं, यि भगवान् ्के प्रनत दुभाववना िै। भले िी शसद्धांततः यि त्रबल्कुल सिी िै कक सब कुछ भगवान् ्की िी इच्छा से िो रिा िै और िमारा अब तक का जो भी ववकास रिा िै वि भी भगवान् ्की िी इच्छा से िी रिा िै और िमारे शलए सवश्रेष्ठ रिा िै परंतु ऐसा िम जो चीजें घट चुकी िैं उन्िीं ंके शलए कि सकतिैं, घटनेसे पूव िनिीं ंजिाँकक िमें चुनना िोता िै और जो चररताथ िोगा उसमें वि चुनाव मित्त्वपूण िभूशमका ननभाएगा। व्यजकत के शलए सदा िी चयन की संभावना खुली रिती िै और वि उसके चयन पर ननभमर करता िै कक उस पर कौनसा ववधान लागू िो। व्यजकत अपने चयन से एक उच्चतर ववधान को भी साकार कर सकता िै और अपने चयन के कारण अपनी जस्थनत से नीचे भी धगर सकता िै।

अततर्त्तु िुलंतेषांतद्भर्त्यल्पर्ेधसार् ्।

देर्ान्देर्यजो यान्ति र्द्भक्ता यान्न्त र्ार्वप ॥२३॥

२३. ककंतु अल्प बुद्धधवाले र्नुष्यों द्वारा चाहे जानेवाले ये िल अस्थायी हैं; देर्ताओं की पूजा करने र्ाले देर्ताओं को प्राप्त करते हैं ककंतु र्ेरे भक्त र्ुझे िी प्राप्त करते हैं।

और इस तरि से जो कुछ भी आध्याजममक लाभ िोता िै वि देवताओं की ओर ले जानेवाला िोता िै; वे केवल क्षर प्रकृनत के नानाववध रूपों में जस्थत भगवान् ्को िी अनुभव कर पातिैं जो कमफिल देनेवाले िोतिैं। परंतु जो प्रकृनत से अतीत समग्र भगवान् ्को पूजते िैं वे यि सब भी ग्रिण करते और इसे हदव्य बना लेते िैं, देवताओं को उनके परम् ्स्वरूप तक, प्रकृनत को उसके शशखर तक चढ़ा ले जाते िैं और उनके परे परमेश्वर तक जा पिुँचते िैं, परम् ्पुरुष भगवान् ्का साक्षामकार करते और उन्िें प्राप्त िोतिैं।

यि एक ऐसी उजकत िै जजसका बिुत बार गलत अथ िलगाया जाता िै। इसका सिारा लेकर कुछ लोग ववष्णु या भगवान् ्श्री कृष्ण की अन्य सभी देवताओं से वरीयता हदखाने का प्रयमन करते िैं। वे कितिैं कक शशव या शजकत या अन्य देवता तो भगवान् ्श्रीकृष्ण से ननचले स्तर पर िैं और इसके प्रमाण के रूप में वे ेयि श्लोक उद्धृत करते िैं। परंतु जगि-जगि पर िम देख िी चुके िैं कक ककस प्रकार गीता का गलत अथ िलगाया जा सकता

ैं। श्रीअरववन्द के आलोक में यि एक त्रबल्कुल िी शभन्न और गंभीर आध्याजममक अथ िधारण कर लेता िै। यि चर्चिाम पिले भी कर चुके िैं कक देवता वास्तव में िमारी मनोवैज्ञाननक शजकतयााँ िैं। अधधकतर मनुष्य तो प्राखणक देवों को िी पुष्ट करने में लगे रिते िैं। वे इच्छाओं- कामनाओं, पद-प्रनतष्ठा, धन-संपदा आहद अनेकानेक प्रकार के उद्देश्यों की पूनत िकरने ेमें लगे रिते िैं। इससे ऊपर की अवस्था तब िै जब व्यजकत अपनेमानशसक ववचारों को पुष्ट करने ेके शलए अपनी ऊजिा लगाता िै। सभी प्रकार के परोपकाररता आहद के प्रचशलत ववचार, जैसे कक, गरीबों की और रोधगयों की सेवा, मानव-कल्याण, नारी-कल्याण, या कफर देश-सेवा में आममोमसग िकरने के ववचार और न जानेअन्य ककतने िी ऐसे ववचार इसी दायरे में आते िैं। इन सभी मानशसक प्रकार के आदशों के पीछे अपनी शजकत लगाना मानशसक देवों की पूजा करना िुआ। इस प्रकार मनुष्य यक्षों, गंधवो, राक्षसों आहद की पूजा करते िैं और उनके अनुसार उन्िें फल प्राप्त िो जाता िै। परंतु इन सब की बजाय जो व्यजकत सीधे भगवान् ् की ओर अशभमुख िोता िै, उन्िीं के प्रनत अपनी पूजा अवपति करता िै तो भले वि बािरी रूप से कैसा भी अधम व्यजकत िी कयों न िो परंतु वि साधु मानने योग्य िै कयोंकक उसमें यि संकल्प जागृत िो गया िै कक भगवान् ्के अनतररकत जीवन में अन्य कुछ भी वरण करनेयोग्य निीं िै। और यि एक ऐसा भाव िै जो व्यजकत को सभी कुछ से परे उठा ले जाता िै। इसीशलए िमारे सद्ग्रंथ बार-बार ऐसा किते िैं कक जिााँ भगवान् ्की भजकत से शून्य एक नैजष्ठक साजत्त्वक ब्राह्मण स्वयंअपना भी उद्धार निीं ंकर पाता कयोंकक वि अपनी साजत्त्वकता के अि में िी फाँसा रिता िै, विीं एक पनतत और अधम चेतना का व्यजकत भी सच्चेसंकल्प के जागृत िोते िी अपने पूरे कुल का भी कल्याण कर देता िै। िालााँकक सूक्ष्म जगत् ्की ववशभन्न सत्ताओं और देवताओं की पूजा करते-करते भी जब व्यजकत का कुछ ववकास िोता िै तब उसे यि मिसूस िोता िै कक केवल ककन्िीं भौनतक, प्राखणक और मानशसक लाभों के शलए िी भगवान् ्की ओर मुिना तो एक ननमन िेतु िै। यि भाव आने के बाद व्यजकत अधधकाधधक भगवान् ्के अपनेशलए उनकी ओर मुिता जाता िै। कुछ का गठन इस प्रकार का िोता िै कक सिज िी वे भगवान् ् की ओर आकृष्ट रिते िैं। अब जजसमें भगवान् ्से शमलने की लगन िै वि तो कोई भी उपाय करने के शलए तैयार रिता िै। यहद कोई कि दे कक अमुक ध्यान करने ेसे, या अमुक किया करनेसे या कफर अन्य कोई भी उपाय करने से भगवान् ्की प्राजप्त िो जाएगी तो वि उसे करने ेके शलए तमपर रिेगा और वैसा करनेसे उसे प्राजप्त िो भी जाएगी। विीं कोई दूसरा व्यजकत जजसमें यि लगन निीं ंिै वि चािे उन सारे उपायों को भी करे तो भी उसको प्राजप्त निीं ंिोती। इसशलए मित्त्व बािरी किया से अधधक उस आंतररक ननष्ठा और लगन का िै। अतः कोई भी किया साधना का अंग िो सकती िै और विींआवश्यक निीं ंकक परंपरागत रूप से शास्त्रसममत पद्धनतयााँ भी व्यजकत को एक पग भी आगे बढ़ा सकें। इसशलए ववषय यि निीं ंिै कक व्यजकत श्रीराम की पूजा करता िै या शशव की या श्रीकृष्ण की या कफर देवी की। यहद व्यजकत श्रीकृष्ण के पास इस भाव से जाए कक इससे उसकी साधना िो जाएगी, उसके जीवन में शांनत आ जाएगी, उसके पररवार में सुख-शांनत-समृद्धध आ जाएगी तो इस भाव में व्यजकत भगवान् ्की निींअवपतु ककसी ननमन देव की िी पूजा कर रिा िोता िै। विीं यहद ककसी मानव गुरु के प्रनत ककसी में सेवा भाव, एकननष्ठता और श्रद्धा आहद िैं तो उसके द्वारा भी वि सीधे परमाममा की ओर िी अशभमुख िोता िै। इसशलए व्यजकत ककस की पूजा कर रिा िै वि इतना मित्त्वपूण िनिीं िै, अवपतु उसके पीछे जजस मनोभाव से वि अपनी पूजा अवपति कर रिा िै विी मित्त्वपूण िै। इसशलए जो अपनी स्वाथपूनत िके शलए भगवान् ्की ओर मुिते िैं

उस स्तर तक उन्‍्‍ उसका फल प्राप्त िो िी जाता िै। परंतुवे उसी दायरे में बनेरितेिैं। उससे ऊपर निींउठ पाते। विींजो ककसी स्वाथपूिनत िके शलए निीं ंअवपतु भगवान् ्के स्वयंके शलए उनकी ओर मुिते िैं वे सीधे भगवान् ्की ओर िी जाते िैं और उनके शलए ननमनतर ववधान लागू ूनिीं ंिोतेकयोंकक वे उनसे परे चले जाते िैं।

अव्यक्तं व्यजक्तर्ापतनं र्यततेर्ार्बुद्धयः ।

परं भार्र्जानततो र्र्व्ययर्नुत्तर्र् ्।। २४।।

२४. क्षुद्र बुद्धधर्ाले रुझे,े अव्यक्त को, अमभव्यजक्त द्र्ारा सीमर्त र्ानतेहैं; रे् रे्रे अवनिर्ी और पूितवर् अथर्ा सर्ोत्तर् परं भार् को नहींजानते।

नाहं प्रकािः सर्स्र्य योगर्ायासर्ार्ृतः ।

रूढोऽयं ंनामभजानातत लोको र्ार्जर्व्र्यर् ्।। २५।।

२५. और अपनी योगर्ाया से आर्ृत्त र् ैंसब के मलए प्रकामित भी नहीं होता हूूँ यह र्ोहग्रस्त अथर्ा रूढ़ जगत् ्रुझ अजतर्ा और अवनिर्ी को नहीं ंजानता।

रे्दाहं सर्तीतातन र्तर्ानातन चाजुनव ।

भवष्र्याणि च भूतातन र्ांतु ्ुरे्द न कश्चन ।। २६ ।।

२६. हे अजुनव! र् ैंअतीत के और र्तर्ान काल के और भवष्र्य के सर्स्त भूतों को जानता हूूँ, ककंतु रुझे ेकोई नहीं जानता।

इच्छाद्रे्षसरुत्थेन द्र्तद्र्र्ोहेन भारत ।

सर्भूवतातन सम्र्ोहं सगे याजतत परततप ।। २७।।

२७. हे भारत! इच्छा और द्रे्ष से द्रंद्र्ात्र्क'० र्ोह उत्पतन होता है, और हे परंतप, उससे इस सृजृष्ट र्ें सर्स्त भूत रूढ़ता को प्राप्त होतेहैं।

येषां त्र्ततगतंपापंजनानांपुण्यकर्र्वार् ्।

ते द्र्तद्र्र्ोहतनरुक्वता भजतते र्ांदृढव्रताः ।। २८ ।।

२८. ककंतुपुण्य कर्ो वकरनेर्ाले जजन र्नुष्र्यों का पाप नष्ट हो गया है रे् द्रंद्र्जतनत र्ोह से रुक्त होकर अपने आत्र्-तनरे्दन र्ें दृढ़व्रती होकर रुझेभजते हैं।

...िमारे कमों में सबसे पिली आवश्यकता िै कक िम प्राखणक विकार के पाप से, कामिोध की आग से, राजशसक प्रकृनत की इच्छा के कोलािल से मुकत िो जाएँ, और ऐसा अपनेनैनतक पुरुष की साजत्त्वक प्ेरेणा तथा

प्रवृवृर्त् को दृढ़ करने ेसे िी िो सकता िै। जब ऐसा िो जाए, येषां मवन्तगतं पापंजनानांपुण्यकमणािाम्, ् - अथवा यि कहिये कक जब यि काम िो रिा िो, कयोंकक एक त्रबंदु ुके बाद साजत्त्वक प्रकृनत में समस्त वृद्धिध उच्च शाजन्त, समता और त्रत्रगुणों से अनतिमण की अधधकाधधक क्षमता ले आती िै, तभी - द्वन्द्वों के ऊपर उठकर ननव्यजिकतक, सम, अक्षर ब्रह्म के साथ एकामम, सब भूतों के साथ एकीभूत िो जाना आवश्यक िै। आममस्वरूप में वधधति िोनेकी यि प्रकिया िमारे शुद्धधकरण को पूरा कर देती िै। पर जजस समय यि प्रकिया जारी िो, जब जीव आममज्ञान में पररवधधति िो रिा िो, उस समय उसे भजकत में भी पररवधधति िोना िोता िै.... एक बार सममव और एकमव दृजष्ट पूणरूिप से प्राप्त िो जाए, ते द्वन्द्वमोिववननमुकिताः, तो परा भजकत, भगवान् ्के प्रनत सवभािवेन प्ेरेम-भजकत िी जीव का संपूण िऔर एकमात्र धम िबन जाती िै। अन्य सभी धम िउस एक शरणागनत में लय िो जाते िैं, सवधिमान्पिररमयज्य। तब जीव इस भजकत में तथा अपनी संपूण िसत्ता के, ज्ञान और कम िके आममोमसग िके व्रत में दृढ़ िो जाता िै; कयोंकक अब उसे अपने सुदृढ़ आधार के शलए, अपने अजस्तमव और अपनेकम िके चरम आधार के शलए सवि–प्रवतकि भगवान् ्का पूण,ि समग्र और एकीकारी ज्ञान प्राप्त िोता िै, ते ेभजन्ते मांदृढ़व्रताः।

"[िमारी ननमन जीव-प्रकृनत की मुख्य चार ग्रंधथयों में से एक द्वंद्व िै।... गीता में िमारे शलये इनका ननदेश ककया गया िै और
इन पर ब्रि ेबलपूवकि तथा ननरन्तर, प्रबल शब्दों में एवं बारमबार आग्रि ककया गया िै; ये... ग्रंधथयााँ िैं कामना, अिंकार, द्वंद्व और प्रकृनत के तीन गुण; कयोंकक गीता के ववचार में मुकत िोने का अथ िि िै ननष्काम और ननरिंकार िोना, मन, अन्तरामम और आमम

प्रश्न : आममज्ञान में पररवधधति िोने की प्रकिया में भजकत में भी पररवधधति िोने पर बल कयों हदया गया िै?

उत्तर : यहद सच्चा आममज्ञान िै तो भजकत आएगी िी। त्रबना भजकत के ज्ञान निीं ंआ सकता। संसार में जो तथाकधथत ज्ञानी िैं उनके ज्ञान का आकलन िम उनमें भजकत की मात्रा से कर सकते िैं। यहद वे भजकत शून्य िैं तो वे त्रबल्कुल कोरे िैं। इसी प्रकार यहद कोई स्वयं को भगवान् ्का भकत समझता िै पर ज्ञान-शून्य िै तो उसकी भजकत अधकचरी िै। भजकत जब एक सीमा को लाघाँ जाती िै तब वि आवश्यक रूप से सच्चा ज्ञान लाती िी िै। इसशलये भजकत से आरंभ करनेपर ज्ञान आ जाता िै और ज्ञान से आरंभ करने ेपर भजकत स्वयंिी आ जाती िै। ये दोनों एक िी शसकके के दो पिलू िैं। गीता इसी बात को समझानेके शलए यि सामने ला रिी िै कक जो पापी निीं ंिै वि तो दृढ़ िोकर भगवान् ्की भजकत करेगा िी। पापी मनुष्य में तो ज्ञान आना संभव िी निीं ंिै। सबसे मित्त्वपूण ि बात यिी िै कक भजकत ज्ञान की पराकाष्ठा िै और कम िका आधार िै। त्रबना भगवान् ्की भजकत िुए उनके शलए कम ि करना संभव निीं। ककसी व्यजकत के प्रनत लगाव िोने ेपर िी िम उसके शलए कम िकर सकतिैं अन्यथा निीं। अतः भजकत कमों का आधार िै और ज्ञान की पराकाष्ठा। ज्ञान भजकत में आकर समाहित िो जाता िै। ककसी को आरंभ में ज्ञान का कुछ आभास िो सकता िै परन्तु ुयहद उसके अन्दर भजकत की भावना निीं ंिै तो उसका ज्ञान कोरा और ननरथकि िै। कमयिोग में भी यहद भजकत निीं ंिो तो कम िभी कोई उपयोग के निीं ंिोते। संसार में ककतने

लोग िैं जो घोर पररश्रम करते िैं परंतु इससे कमियोग या कफर उनकी साधना निीं िो जाती। यहद व्यजकत के अन्दर भजकत निीं तो उसके कम ियोग न िोकर एक प्रकार से रोग िी िोते िैं।

प्रश्न : कया पिले एकमव और सममव के आने पर परा-भजकत आती िै?

उत्तर : चीजों को रखने का गीता का अपना एक िम िै, ननरूपण की एक पद्धनत िै। कयोंकक अपनी शशक्षा का ननरूपण करनेके शलए उसे एक िम अपनाने की आवश्यकता िै। परंतु ुभगवान् ्की सर्त्ा अनंत िै और अपनी
अशभव्यजकत में वि ककसी भी तय िम के अनुसार चलनेको बाध्य निीं ंिै। और न िी ऐसा िै कक कोई तय मि िै
जजसमें कक सभी गुणों को या तत्त्वों को एक के बाद एक आना िै। ये सभी चीजें तो समझाने के शलए िी िैं ताकक मिारी बुद्धध इन सूक्ष्म ववषयों के बारे में कुछ समझ सके। इससे अधधक इन सब बातों की उपयोधगता निीं ंिै कयोंकक प्रमयेक व्यजकत के शलए उसका ववकासिम ववशशष्ट प्रकार का िोता िै। इतना भर किा जा सकता िै कक
कुछ चीजें ऐसी िोती िैं जो सबके साथ लगभग समान िोती िैं। परंतु वास्तववक अशभव्यजकत में सब कुछ व्यजकतववशेषे के अनुसार शभन्न िोता िै। उदिारण के शलए साधना में सामान्य धारणा िै कक पिले प्रकृनत को तैयार करना िोता िै तब व्यजकत को सूक्ष्म या कफर आध्याजममक अनुभव प्राप्त िोतेिैं। परंतु श्रीअरववन्द ने किा कक उनके शलए िम इससे उल्टा था। उन्िें अनुभव पिले िुए और प्रकृनत उसके बाद तैयार िुई। कयोंकक उनका किना िै कक ककसी न ककसी भाग में पिले अनुभव िुए त्रबना प्रकृनत तैयार निीं ंिो सकती। इसशलए इन चीजों के
ववषय में पढ़ते समय या कफर इनका वणनि सुनते ेसमय व्यजकत में इतनी समझ िोनी चाहिये और वववेक िोना चाहिये कक ककसी ननरूपण ववशेषे के शलए िी वि िम आवश्यक िै अन्यथा वास्तववक अशभव्यजकत में चीजें शभन्न
रूप से िो सकती िैं। िा,ाँ कुछ चीजें ऐसी िैं जो सवमिान्य िैं जैसे कक िम कि सकतिैं कक जब तक प्रकृनत एक सीमा तक तैयार निीं िो जाती तब तक एक सीमा से बिार के अनुभव िोना कहठन िै। परंतुसाथ िी यि भी समय िै कक यहद व्यजकत को वे अनुभव प्राप्त िो जाते िैं तो उनके पररणामस्वरूप उसकी प्रकृनत भी तैयार िो जाएगी। कयोंकक अनुभवों का प्रवाि, उनकी प्रगाढ़ता, उनका स्तर जजतना िी तीव्र और उच्च िोगा उतनी िी शीघ्र प्रकृनत की तैयारी िोगी। गीता अपना ननरूपण एक शैली ववशेषे में करती िै कयोंकक ककसी एक शैली का अनुसरण ककये त्रबना तो कोई
ननरूपण करना मुजश्कल िै। आरंभ में तो भजकत अप्रकट रूप से केवल मन का एक भाव मात्र िोती िै और बाद में धीरे-धीरे वि बढ़ती जाती िै और प्रकट रूप अपना कर अपना सच्चा स्वरूप अपनाती जाती िै। गीता इसी तत्त्व का मिबद्ध रूप से ननरूपण करती िै। पिले वि कम िसे आरमभ करती िै और बाद में उसमें ज्ञान को समाववष्ट करती िै। ज्ञान और कम िका ननरूपण और समन्वय करने ेके बाद वि उसमें भजकत तत्त्व का समावेश करके नौवें अध्याय में तीनों तत्त्वों का समन्वय साधती िै। परंतु वतमिान में वि ज्ञान और भजकत का समन्वय साध रिी िै। गीता किती िै कक जजस व्यजकत को ज्ञान प्राप्त िो जाता िै वि भगवान् ्की भजकत को भी प्राप्त कर लेता िै। भगवान् ्नेचार प्रकार के भकत बताए िैं - आत िअथाथी, जजज्ञासु, ज्ञानी – परंतु इनमें ज्ञानी को बाकी तीनों से श्रेष्ठ
बताया गया िै कयोंकक वि भगवान् ्के ननजस्वरूप को तत्त्वत: जानता िै और उसी कारण वि उनसे प्रेम करता िै

शमलतीं। जगाई-मधाई के प्रसंग में िम देखते िैं कक ककस प्रकार पापाचरण के अलावा कोई दूसूरा व्यविार तो वे जानते िी निीं थे ◌और कफर भी भगवान् ◌्की कृपा से हृदय पररवतनि िोने के कारण वे परम् ◌्भकत बन गए। इसशलए इन सब चीजों का कोई अपररिाय िबिारी या मानशसक तकि या ववधान निीं। सामान्य तौर पर तो ऐसा हृदय पररवतनि या ऐसा भाव उन लोगों में उहदत िोता िै जजन्िोंने सुकृत कम िककए िों परंतु यि कोई ऐसा अटल ननयम निीं ◌ंिै जजसके कक अपवाद न िोतीं। इन सभी चीजों के कोई तय मानशसक ननयम निींबनाए जा सकते। इनका अपना एक सूक्ष्म या गिरा कारण िोता िै जो कक बुद्धध से परे िै।

आखखर ज्ञान िै कया? सामान्यतः िम जजसे ज्ञान किते िैं वि ज्ञान निींकेवल मानशसक रूप से कुशल िोना िो सकता िै या अधधकांशतः तो वि केवल मानशसक उग्रता या िलचल िी िोती िै। सिी ज्ञान के अंदर तो हृदय का अन्तज्ञानि सजममशलत िोता िै। भले सति पर व्यजकत ककसी चीज का कयों और कैसे न जानता िो परंतु हृदय में उसे एक पकका आभास िोता िै कक सिी चीज कया िै। और यिी सिी ज्ञान िै। जजसे िम मन (Mind) किते िैं उसके दो केन्र िोते िैं - हृदय और बुद्धध। इन दोनों में भी हृदय का केन्र अधधक प्रबल िै। हृदय को अंतबोध प्राप्त िोता िै जो जानता िै कक सिी चीज कया िै। और यिी मित्र और मित्त्वपूण िज्ञान िै। जो भी व्यजकत भगवान् ◌्के माग िपर चलता िै उसे अवश्य िी गिरा अंतज्ञिान िोता िै तभी तो वि उस माग िका अनुसरण करता िै अन्यथा तो वि उस माग िका वरण िी न करता। परंतुचूंकक ज्ञान की िमारी पररभाषा सामान्यतः शभन्न िोने ◌ेके कारण िम उसे ज्ञान निींकिते। जबकक ऐसे व्यजकत को गिराई में सच्चा ज्ञान अवश्य िोता िै तभी तो वि सिी पथ का वरण और अनुसरण करता िै। सच्चे दृजष्टकोण से मूढ़ तो वे िैं जजन्िें इस गिरे समय का साक्षामकार निीं िुआ जजस कारण वे जीवन के प्रपंचों में िी लगे रिते िैं। उदिारण के शलए किने को व्यजकत के अंदर ज्ञान िो परंतु वि पेड़ की उसी िाली को काटनेका प्रयास कर रिा िो जजस पर वि बैठा िै तो इसे ज्ञान कैसे कि सकते िैं। उसी प्रकार जो आममा िमारे अजस्तमव का संपूण िआधार िै उसी की िम उपेक्षा करते िों और कफर भी सुखी िोने ◌ेकी चेष्टा करते िों तो यि ज्ञान कैसे िो सकता िै। जब आममा िी िमारा सच्चा स्वरूप िै, िमारा सच्चा 'स्व' िै तो उसकी ओर आकृष्ट िोना तो सिज िी िै, और ऐसा करना सच्चेज्ञान का द्योतक िै। यहद व्यजकत के अन्दर थोड़ा भी ज्ञान िै तो उसे समझ में आ जाएगा कक जीवन को व्यथ िगाँवानेकी अपेक्षा उसे परमाममा की ओर मोड़ना िी उसे औधचमय प्रदान करता िै।

प्रश्न : इसमें बताया गया िै कक नैनतक पुरुष की साजत्त्वक प्ेरेरणा तथा प्रवृवृत् को दृढ़ करने से िम प्राखणक जिकार के पाप से, कामि-ोध की आग से, राजशसक प्रकृनत की इच्छा के कोलािल से मुकत िो जाते िैं। तो नैनतक पुरुष की प्ेरेरणा से कया तामपय िि?

उत्तर : अलग-अलग समाज के अलग-अलग नैनतक ववधान िोतीं। कुछ नैनतक ववधान वेदान्त के समय पर आधाररत िैं, जैसे कक, चूंकक सभी के अंदर एक िी आममा िै और कोई दो िैं िी निींइसशलए सभी के साथ अपना समझकर व्यविार करना चाहिये, दुव्ुयविार निीं ◌ंकरना चाहिये। अधधकांशतः तो इसी वैदाजन्तक समय के आधार पर अनेक नैनतक ववधानों का ननमाणि िुआ िै। अन्य कुछ अधधक बािरी नैनतक ववधान िैं जैसे कक भोजन ककस

प्रकार का िोना चाहिए, जीवनचयाि कैसी िोनी चाहिये, आहद-आहद। और इस प्रकार के नैनतक ववधान तो समाज में देश, काल के अनुसार बदलते रितेिैं। परंतु कुछ ववधान जो वेदान्त के मूल समयों पर आधाररत िोतेिैं उनका खंनि करना अपनेअजस्तमव के मूल समयों का िी खंनि करना िुआ व अपनेववनाश की ओर कदम बढ़ाना िुआ। उदािरण के शलए यि ववचार कक 'दूसूरों के साथ भेदभाव निींकरना चाहिये' एक मूलभूत समय पर आधाररत बात िैकियोंकक मूल रूप से सभी में एक िी सत्ता िै इसशलए भेदभाव करना तो उस समय का खंनि करना िुआ। अब यहद व्यजकत दूसूरे जीवों के साथ दुवुयिविार करता िै तो भले िी वि इस कृमय को उधचत ठिरानेके शलए ककन्िीं भी नैनतक बातों का सिारा ले परंतु यि तो मूल समय से त्रबल्कुल ववसंगत बात िै। अब मनुष्यजानत त्रबना सोचे-समझे े अपनी क्षुर तृष्णाओंकी पूनत िेके शलए पशुओं के साथ जजस घोर ननदियता का व्यविार करती िै उसमें ककसी प्रकार की कोई नैनतकता का तो कोई लेश मात्र भी निीं ंिै। परंतु उसी नैनतकता की िम दुिाई देनेलगते िैं जब िम पर कोई अमयाचार करता िै, िमारे साथ दुवुयिविार करता िै। उत्तरी अमरीकी भारतीयों (North American Indians) को यि सिज बोध था कक अनेक व्यजकत शमलकर यहद ककसी एक पशु ुपर िमला करें तो यि अनुधचत बात िै। वे लड़ाई में उस पशु ुको भी बराबर का मौका देना चािते थे ेऔर यहद वि पशु ुउन्िें मार िाले तो भी इसे गलत निीं मानतेथे। इस प्रकार उनके नैनतक ववधान त्रबल्कुल शभन्न प्रकार के थे। िालाकाँक वास्तव में तो अपनेआप में नैनतकता कोई मित्त्वपूण िचीज निींिै, इसका केवल इतना उपयोग िै कक यि घोर बबरिता पर कुछ अंकुश लगा सकती िै परंतु अधधकांशतः तो यि अपने कृमयों को उधचत ठिरानेके शलए, अपनेगलत कामों को सिी बतानेके शलए िी प्रयोग में लाई जाती िै। जजस प्रकार का व्यविार मनुष्यजानत पशुओं के साथ करती िै उसका आकलन यहद ककसी पशु ुके दृजष्टकोण से ककया जाए तो कदाधचत् ्िी वि मनुष्यों के पक्ष में कोई नेक बात सोची जा सकती

ैं। इसीशलए गीता ... [illegible] सवभूित हितेरताः' अथात्
वि मुझे ेप्राप्त करता िै। इसमें ककसी जीव ववशेषे के कल्याण की बात निीं िै अवपतु समस्त जीवों के कल्याण की बात िै। एक सच्चेदृजष्टकोण में नैनतकता तो वि िै जो परमाममा की इच्छा िो। उनकी इच्छा के अनुसार काय ि करना िी सच्ची नैनतकता िै। जब व्यजकत उस चेतना में िोगा तभी वि सभी जीवों का कल्याण कर सकता िै और सच किें तो वि कल्याण करनेके भाव से ऐसा कोई काय िनिीं ंकरता। वि तो भगवद् इच्छा की अशभव्यजकत के शलए काय िकरता िै और उसके पररणामस्वरूप सभी जीवों का स्वतः कल्याण िोता िै। यहद िमारे मानवीय नैनतक आदशों के अनुसार सोचें तो मिाभारत का युद्धकम िककन्िीं भी मानदंिों पर नैनतक निीं ंिो सकता। परंतु कफर भी चूँकक वि श्रीभगवान् ्की ननहित इच्छा थी इसशलए उसे चररताथ िकरना िी सच्ची नैनतकता थी। यहद नैनतक ववधान आध्याजममक ववधानों के ववपरीत िों तो उनका कोई मूल्य निीं ंिै। उनका मूल्य तो केवल तभी िै जब वे गिरे आंतराजममक ववधानों को चररताथ िकरनेमें सियोग करें। अवश्य िी घोर पाशववकता में पड़े ेव्यजकत के शलए समाज के कुछ ववधान उस पर कुछ अंकुश लगानेका काम कर सकते िैं और उतनी िी उनकी उपयोधगता िै।

प्रश्न : मिारी ननमन जीव-प्रकृनत की ये मुख्य चार ग्रंधथयाँ कया िैं? **उत्तर :** जैसा कक गीता िी बताती िै कक ये ग्रंधथयाँ िैं कामना, अिंकार, द्वंद्व और प्रकृनत के तीन गुण।

इनमें कामना और अिंकार तो आममपरक अथात् ्पुरुष पक्ष की ग्रंधथयाँ िैं और द्वंद्व और गुण प्रकृनत पक्ष की

ग्रंधथयााँ िैं। व्यजकत यहद कामना के वशीभूत िोकर ककसी चीज को देखता िै तो वि उसे सिी रूप में निीं देख पाएगा। कामना का आधार िै अिं। यहद अिं न िो तो कामना निीं िो सकती। यहद कामना की पूनत िो जाती िै तो सुख का अनुभव िोता िै और यहद वि पुष्ट निीं ंिोती तो उसकी अपनी प्रनतकियाएाँ िोती िैं। इस प्रकार कामना और अिंकार िुई पुरुष पक्ष की ग्रंधथयााँ और प्रकृनत पक्ष में िैं द्वंद्व और त्रत्रगुण। भौनतक प्रकृनत में शीत-ऊष्ण आहद द्वंद्व िोते िैं, राजशसक प्रकृनत में वप्रय-अवप्रय आहद द्वंद्व िोते िैं और साजत्त्वक प्रकृनत में उधचत-अनुधचत आहद द्वंद्व िोते िैं। साथ िी भौनतक प्रकृनत तमस् ्प्रधान िोती िै, प्राखणक प्रकृनत रजस् ्प्रधान िोती िै और मानशसक प्रकृनत सत्त्व प्रधान िोती िै। प्रमयेक व्यजकत में तीनों िी प्रकृनतयााँिोती िैं परंतु अंतर इनकी प्रधानता में िोता िै। इस प्रकार द्वन्द्वों और तीनों गुणों से सारे संसार का खेल चलता रिता िै। यहद व्यजकत अनतशय रूप से तामशसक िै तो भी उसका नाश ननजश्चत िै और अनतशय रूप से राजशसक िै तो भी, कयोंकक यहद व्यजकत में इच्छाएाँ-कामनाएाँ आहद एक सीमा से अधधक प्रबल िैं तो भी व्यजकत उन्िें सिन निींकर सकता और उसका संतुलन त्रबगड़ जाएगा। शरीर और प्राण के भिके िुए आवेगों को तुष्ट करनेकी चेष्टा में िी तो िम व्यजकतयों को अपना संतुलन खोते ेदेखतेिैं। और यि चीज िमें पजश्चमी संस्कृनत में अधधक हदखाई देती िै कयोंकक विााँइन वृवृत्यों पर अंकुश लगानेवाले आध्याजममक प्रभाव का बिुत कुछ अभाव िै जबकक भारत में आध्याजममक प्रवृवृत् प्रबल िोनेके कारण बिुत कुछ बचाव िो जाता िै। परंतु कफर भी व्यजकत द्वन्द्वों से मुकत निीं ंिो सकता। साजत्त्वक प्रकृनत वाले मनुष्य में द्वन्द्वों के प्रनत सिनशीलता थोड़ी बढ़ जाती िै। िालाकक ाँ तकलीफ तो उसे िोती िी िै परन्तुउसकी सिन करनेकी सामथ्य िराजशसक और तामशसक व्यजकत की अपेक्षा बढ़ जाती िै। राजशसक व्यजकत को साजत्त्वक व्यजकत से अधधक और तामशसक व्यजकत को सबसे अधधक कष्ट िोता िै। गीता इन्िीं ंचार ग्रंधथयों को सुलझाने ेके ऊपर सबसे अधधक बल देती िै कयोंकक इन्िींसे यि सारा ववश्व प्रपंच चलता रिता िै। इनमें भी कामना से मुकत िोनेपर गीता सवाधिधक बल देती िै। कामना अिं के कारण िोती िै। अिं से मुकत िोने के दो िी उपाय िैं- या तो अिं मुकत चेतना िमारे अंदर अवतीण िो या कफर भजकत की प्रगाढ़ता िो। जब भजकत प्रगाढ़ िो तब भले िी व्यजकत को अपनेपृथक् अजस्तमव का भान िो तब भी अिं का जो ववष िै वि निीं रिता। श्री रामकृष्ण जी इसको समझानेके शलए जली िुई रस्सी का रूपक देते थे। वे किते ेथे ेकक जजस प्रकार जली िुई रस्सी में ककसी चीज को बाधाँनेकी सामथ्य िनिीं ंिोती उसी प्रकार भजकत आनेसे अिंकार का ववष खमम िो जाता िै और व्यजकत चीजों को जजस प्रकार अिमामयक चेतना से देखकर दूवूषत करता था वि अब निीं ंरिता। भजकत अपने साथ सारे गुण और अच्छी चीजें ले आती िै। जिााँभजकत िोती िै विााँ समय, ज्ञान आहद चीजें अपनेआप िी आ जाती िैं।

प्रश्न : दृढ़ रूप से भजकत ककसकी की जाए?

उत्तर : सच्चे भाव में इस प्रकार का कोई प्रश्न िी निीं ंउठता। यि प्रश्न तो उनके मन में उठ सकता िै जो नाम तो भजकत का लेते िैं परंतु मन में यि सौदेबाजी िी रिती िै कक ककसकी भजकत करने ेसे सवाधिधक लाभ िोगा। हृदय का भाव तो त्रबल्कुल शभन्न प्रकार का िोता िै। वि मानशसक तकि के आधार पर निीं ंचलता। इसशलए यि तो हृदय पर ननभरि करता िै कक वि ककसके प्रनत समवपति िो जाए। भजकत तो ककसी के प्रनत भी िो सकती िै कफर चािे वि

दूसूरों की दृजष्ट में पूजा का छोटा िी पात्र कयों न िो। इसशलए दृढ़ भजकत तो अन्तर की गिराइयों से िी आ सकती िै। यि बिार से प्रयमन करने पर निीं आती। जैसे, जब पावितिी जी भगवान् ्शशव को वर रूप में प्राप्त करनेके शलए तपस्या कर रिी थीं तो कुछ ऋवषयों ने उनकी परीक्षा लेने के शलए उनके समक्ष शशवजी को उनके शलए त्रबल्कुल अनुपयुकत वर बताकर ववष्णु जी से ववविा करने ेका प्रस्ताव रखा। परन्तु पावितिी जी तो अपनेमन में अनन्य रूप से भगवान् ्शशव को िी वरण कर चुकी थींइसशलये उन्िोंनेसभी प्रस्ताव ठुकराते िुए किा कक भले िी भगवान् ्ववष्णु शशव से बिुत श्रेष्ठ िो सकतेिैं परन्तु उनका मन तो भगवान् ्शशव में िी रम गया िै इसशलए या तो वे उन्िीं का वरण करेंगी या कफर आजीवन कँवारी रिना पसंद करेंगी। अतः प्रेम बिारी रूप से सोच-समझकर निींककया जा सकता। ऐसे िी भजकत भी बुद्धध से सोच समझकर निींकी जा सकती।

प्रश्न : तब कफर ज्ञान की कया उपयोधगता िै और ज्ञान के साथ भजकत कैसे जुिेगी?

उत्तर : वास्तव में सच्चा ज्ञान और सच्ची भजकत तो दोनों साथ-साथ िी चलते िैं। त्रबना भजकत के सच्चा ज्ञान आता िी निीं। भगवान् ्के समस्वरूप के बोध को िी तो ज्ञान किते िैं और जब व्यजकत को भगवान् ्से कोई प्रेम न िो तो उसे ज्ञान कैसे प्राप्त िो सकता िै। ये दोनों एक दूसूरे को सुदृढ़ बनातेिुए आगे बढ़ते िैं। श्रीकृष्णप्रेम किते ेथे कक जो व्यजकत किता िै कक वि जानता तो िै परन्तु प्रेम निीं करता तो इसका अथ िि िै कक वि जानता निीं,ं और जो किता िै कक वि प्रेम तो करता िै परंतु जानता निीं िै तो वि प्रेम निींकरता। इसशलए जो यि किता िै कक वि बिुत बड़ा भकत िै पर यहद उसमें ज्ञान निीं ंिै, तो उसमें भजकत भी निीं ंिै। गीता में भगवान् ्बार-बार किते िैं कक विी मुझे ेसमग्र रूप से जानता िै जो मेरा भकत िै। ग्यारिवें अध्याय में भगवान् ्अजुिन को अपना ववश्वरूपदशिन करातेिुए किते िैं कक 'न ज्ञान से, न कम िसे, न तपस्या से, न यज्ञ से, न दान आहद से मेरे इस रूप के दशिन ककए जा सकतेिैं, केवल भजकत के द्वारा मेरे इस रूप को देखा जा सकता िै।' इसशलए जजसमें ज्ञान िै उसमें भजकत आएगी और जजसमें भजकत िोगी वि परमाममा के शलए कम िभी करेगा। ये तीनों िी चीजें एक साथ गनत करती िैं।

इस प्रकार आध्याजममक ववकास के द्वारा भजकत ज्ञान के साथ एक िो जाती िै। जीव एकमेव भगवान् ्में आनन्द लाभ करता िै, - उन भगवान् ्में जजन्िें अखखल सत्, ् धचत् ्और आनन्द के रूप में, सब पदाथों, प्राखणयों और घटनाओं के रूप में जाना जाता िै, जजन्िें प्रकृनत में, पुरुष में, और प्रकृनत और पुरुष के परे जो िै उनके रूप में जाना जाता िै। वि ननमय िी भगवान् ्के साथ सतत् ्युकत िै, ननमययुकत; उसका संपूण िजीवन और उसकी सत्ता उन परम् ्के साथ सनातन योग से युकत िै जजनके परे, जजनसे श्रेष्ठ और कुछ भी निीं िै, उन ववश्वाममा के साथ युकत िै जजनके अनतररकत और कोई निीं, कुछ भी निीं। उसकी सारी भजकत उन्िीं ंएक पर केजन्रत िै, एकभजकतः, ककसी आंशशक देवता, ववधध-ववधान या संप्रदाय पर निीं। यि अनन्य भजकत िी उसके जीवन का संपूण िववधान िै

और वि सब धाशमिक मत-मतांतरों, आचारों और जीवन के वैयजकतक उद्देश्यों से परे जा चुका िै। उसे कोई दुःख निीं ंिैं जो दूरू करने िों, कयोंकक वि सवािनन्दमय परमाममा को पा चुका िै। उसकी कोई इच्छाएँ निीं िैं जजनके पीछे वि भटकता कफरे, कयोंकक वि उच्चतम और 'सव'ि को पा चुका िै, और वि उस सवि–शजकत के सजन्नकट िै जो

पूण िपररतृजृप्त प्रदान करती िै। उसके कोई संशय या भ्शमत खोजें निीं बची, कयोंकक उस पर सारा ज्ञान उस ज्योनत से प्रवाहित िोता िै जजसमें वि ननवास करता िै। वि पूण िरूप से भगवान् ्से पे्रम करता और भगवान् ्का वप्रय िोता िै; कयोंकक जैसे वि भगवान् ्में िष िलेता िै वैसे िी भगवान् ्भी उसमें आनन्द लेते िैं। यिी वि ज्ञान से युकत भगवमपे्रमी िै, ज्ञानी भकत िै।

vii. 17

यहद कोई व्यजकत आपके सच्चे रूप को पिचानता िो तो वि आपके ककन्िीं भी बािरी रूप-रंग से भ्शमत निीं ्िोने वाला भले िी आप ककतनेभी भेष कयों न बदल लें और चूंकक वि आपके िर रूप में आप को जानता िै इसशलए वि ककसी भी रूप में आपके साथ दुवुयिविार निींकरने ्वाला। किने ्का अथ िै कक जब व्यजकत में भजकत ज्ञान के साथ एक िो जाती िै तब वि सभी आवरणों के पीछे केवल परमाममा का िी रूप देखता िै। इसीशलए गीता [illegible] िी इससे ऊपर उठकर उनको जान सकते और उनके पास जा सकते िैं जो उनकी भजकत कर के उनको भजतेिैं। और जब व्यजकत उन्िें तत्त्वतः जान जाता िै तब उसे संसार की ककसी चीज से मोि या घृणा भी निीं ्िोते। साथ िी व्यजकत अपनेदुःखों और सुखों से भी ऊपर उठ जाता िै कयोंकक सुख-दुःख और कुछ निीं केवल शभन्न रूप मात्र िी िैं जजनमें भगवान् ्िमसे आकर शमलते िैं। जब वे ककसी एक प्रकार के वस्त्रों में आकर िमसे शमलते िैं तो उसे िम अभ्यासवश सुख कि देते िैं और यहद दूसूरे परराधान में आ जाएँ तो उसे दुःख कि देते िैं। अब चूंकक िमें वस्तुओं की प्रतीनत के पीछे के समय का कोई ज्ञान निीं ्िोता इसशलए िम शभन्न चीजों के प्रनत शभन्न-शभन्त्र मनोभाव अपना लेते िैं और उन पूवाग्रिों के अनुसार िी चीजों के प्रनत प्रनतकिया करते िैं। पर जब िमें वास्तववकता का ज्ञान िो जाता िै तब वस्तुओंके प्रनत िमारा सारा मनोभाव िी बदल जाता िै और िम यि भी जान सकते िैं कक चीजों के पीछे परमाममा ककस चीज की तैयारी कर रिे िैं। इसशलए ऐसा जानकर िम उनके संकल्प की अशभव्यजकत में रोड़ा न िोलकर सियोग करनेका भाव अपना लेते िैं। अतः सच्चा ज्ञान िोने ्पर तो सुख-दुःख का निीं ्बजल्क सब कुछ आनन्द का ववषय बन जाता िै। जब तक परमाममा से िमारा ककसी प्रकार का संबंध स्थावपत निीं ्िो जाता तब तक िम उनके ववषय में शंककत िी रिते िैं और छोटी सी घटना से भी ववचशलत िो उठते िैं। परंतु जैसे िम अपने अंतरंग शमत्र की कियाकलाप से कभी शंककत निीं िोतेबजल्क िमें दृढ़ ववश्वास िोता िै कक वि िमारे हित के अनतररकत और कुछ कर िी निीं ्सकता वैसे िी जब परमाममा के साथ िमारा संबंध स्थावपत िो जाता िै और िम उस चेतना में ननवास करनेलगते िैं तब िम स्वच्छंद और ननजश्चंत रिते िैं कयोंकक िमें यि आश्वासन िोता िै कक सवत्रि केवल भगवान् ्िी िैं इसशलए ककसी प्रकार के कोई भय, संकोच आहद की कोई आवश्यकता निीं। जब व्यजकत को सवत्रि जगज्जननी के दशनि िोते िैं तब एक बालक की भानाँत वि ननभयि रूप से ववचरण करता िै और त्रबल्कुल ननजश्चंत और आनंदमग्न रिता िै।

िमारे आममसमपणि में समग्र ज्ञान का िोना उसकी प्रभावशाली शजकत की पिली शत िै। और इसशलए िमें सबसे पिले इस पुरुष को, तत्त्वतः, अथात्ि उसकी हदव्य सत्ता की सभी शजकतयों और तत्त्वों में, इसके संपूण ि सामंजस्य में, इसके सनातन ववशुद्ध स्वरूप तथा जीवनलीला में जानना िोगा। परन्तु प्राचीन धचंतन की दृजष्ट

में इस तत्त्वज्ञान का सारा मूल्य बस इस ममय िजीवन से मुकत िोकर एक परम् ्जीवन के अमृतृमव को प्राप्त करने की शजकत में िी ननहित था। इसशलए गीता आगे अब यि दशानि ेकी ओर अग्रसर िोती िै कक यि मुजकत भी ककस प्रकार, अपने उच्चतम अंश में, गीता को अपनी आध्याजममक आममपररपूणतिा की साधना का एक परम् ्फल िै।

जरार्रिोक्षाय रार्धश्रत्य यतजतत ये ।

ते ब्रह्म तद्वर्दुः कृत्स्नर्ध्यात्रं ंकर् वचाणखलर् ्।। २९।।

२९. रुझर्रें आश्रय ग्रहि करके जो लोग अपनेआध्याजत्रक प्रयास को जरा और रृत्यु से रुजक्त प्राप्त करने ेकी ओर लगाते हैं रे् उस ब्रह्म (तद् ब्रह्म) को और सर्ग्र अध्यात्र् प्रकृतत को और संपूि वकर् वको जान लेते हैं।

यिा ाँगीता के कथन का यिी आशय िै कक पुरुषोत्र्म का ज्ञान पूण िब्रह्मज्ञान िै।

साधधभूताधधदैर्रंसाधधयज्ञं च ये वर्दुः ।

प्रयािकालेऽवप च रां ते वर्दुयुक्वतचेतसः ।। ३०॥

३०. क्योंकक रे् रुझेजाननेके साथ-ही-साथ अधधभूत (भौततक प्रकृतत) को और अधधदैर् (दैर्ी प्रकृतत) को और अधधयज्ञ (यज्ञ के स्र्ारी के सत्य) को भी जानते हैं, रे् लोग भौततक जीर्न से प्रयाि के कदठन सर्य रें भी रे्रा ज्ञान बनाए रखते हैं और उस घ्रिी रें भी अपनी संपूि वचेतना रे्रे साथ युक्त ककये हुए रहते हैं।

अतः वे मुझे ेप्राप्त िोतिं। ममयि–जीवन से छूटकर वे भगवान् ्के उस परम् ्पद को उतनी िी सफलता के साथ पाते िैं जजतनी सफलता से वे ेलोग जो अपनेपृथृक् व्यजष्टभाव को ननगुणि अक्षर ब्रह्म में घुला-शमला देते िैं। इस प्रकार गीता इस मित्त्वपूण िऔर ननणाियक सप्तम अध्याय को समाप्त करती िै।

इस प्रकार सातर्वाँ अध्याय 'ज्ञानवर्ज्ञानयोग' सर्माप्त होता है।

पररशशष्ट

भागवत्अवतारोंकारिस्य

्

....इस बात को समझाना ब्रिा आसान िै कक ककस प्रकार वि व्यजकत, जजसे यि अनुभव प्राप्त िै, इसे फैला सकता िै, दूसूरों पर किया कर सकता िै; कयोंकक यि अनुभव प्राप्त करने ेके शलये तुमिें एकमेव का, समस्त अशभव्यजकत के परमोच्च सारतत्त्व का, परम उद्गम और परम साररूप का, जो कुछ भी िै उस सब के परम स्रोत और समस्वरूप का स्पश िकरना िोगा; और एकाएक िी तुम परम ऐकय के क्षेत्र में प्रवेश कर जाते िो - तब कफर व्यजकतयों का कोई पाथकिय निीं ंरिता, एकमात्र एक िी स्पन्दन रिता िै जो बाह्य रूप में अननजश्चत काल तक दुिराया जा सकता िै...यि एकमात्र स्पंदन सवत्रि जस्थनतशील (static) िोता िै, परंतुजब कोई इसे सचेतन रूप से अनुभूत कर लेता िै, तब उस व्यजकत के पास उसे जिा ाँकिंभी वि उसे ननदेशशत करे विीं उसे कियाशील करने ेकी शजकत िोती िै; किने का तामपय िियि िै कक व्यजकत ककसी चीज को हिलाता–िुलाता निीं िै, परंतुजिाँ किीं ंभी वि अपनी चेतना को ननदेशशत करता िै विाँ चेतना का दबाव िी उसे सकिय कर देता िै।

यहद तुम काफी ऊँचेउठ जाओ तो तुम अपने-आप को समस्त पदाथों के केंर में पाते िो। और जो कुछ इस केंर में अशभव्यकत िै वि सब वस्तुओं में अशभव्यकत िो सकता िै। यिी मिान् ्रिस्य िै, व्यजष्टगत रूप में भागवत् ्अवतार का रिस्य, कयोंकक सामान्यतया यि िोता िै कक जो कुछ केन्र में अशभव्यकत िोता िै वि बाह्य रूप में तब अनुभूत या मूत ििोता िै जब वैयजकतक रूप में संकल्प-शजकत जाग उठती िै और प्रमयुत्र देती िै। जबकक, यहद केन्रीय 'संकल्प' एक व्यजष्टगत सर्ता में सतत् ्और स्थायी रूप में प्रकट िोता िै तो यि व्यजष्ट-सर्ता इस 'संकल्प' तथा दूसूरे व्यजकतयों के बीच एक मध्यस्थ का काम कर सकती िै और उनके शलये भी संकल्प कर सकती िै। यि व्यजष्ट-सर्ता जो कुछ देखती िै या अनुभव करती िै और अपनी चेतना में सवोच्च संकल्प को अवपति करती िै वि सब इस प्रकार उत्र्रत (answered) िो जाता िै मानो वि वस्तु प्रमयेक व्यजकत से आई िो। और यहद ककसी कारण उन व्यजष्टगत तत्त्वों का उस प्रनतननधध सर्ता के साथ थोिा-बिुत सचेतन या ऐजच्छक संबंध िो तो उनका संबंध प्रनतननधध सर्ता की प्रभावोमपादकता को, उसकी कायसाधकता को बढ़ा देता िै; और इस प्रकार परम कम िया परम प्रभाव ज़ितत्त्व में अधधक ठोस और स्थायी रूप में काय िकर सकता िै। यिी चेतना के इन अवरोिणों का कारण िै - जजसे िम "ध्रुवीकृत" (polarised) चेतना भी कि सकते िैं, कयोंकक ये अवरोिण पृथूवी पर सदा ककसी ननजश्चत उद्देश्य और ककसी ववशेषे उपलजब्ध और ककसी ववशशष्ट काय िके शलये आते िैं एक ऐसे काय िके शलए आते िैं जो अवतार ग्रिण से पूव ििी ननयत और ननधाररत ककया जा चुका िोता िै। ये काय िपृथूवी पर सवोच्च अवतारों के मिान् ्सोपान िोतेिैं।

श्रीमाँ ने यिाँपरिदािटा कर पूरा रिस्य िी उद्घाहटत कर हदया िै। यिी भागवत् ्व िमारे अन्य पुराणों में शलखी अवतार ववषयक बातों के पीछे का समय िै। यिी किया श्रीअरववन्द आश्रम, पांडिचेरी में चररताथ ििुई। ऐसे-ऐसे लोग जजनका साधना से, आध्याजममकता से कोई सरोकार तक निींथा वे भी श्रीमाँ व श्रीअरववन्द के साथ जुि गए और आध्याजममक पथ पर बिुत ववकशसत िुए।

इस बात का श्रीअरववन्द ने भी संकेत तो हदया था परन्तु उन्िोंने स्पष्ट रूप से इस तरीके से इस बात को निीं ंकिा। श्रीमाँने यिा ाँजजसका वणनि ककया िै उसका अन्यत्र किीं भी उल्लेख निीं ंशमलता, िा,ाँ िमारे पुराणों में

यि ननहित अवश्य िै। भागवत् ्में भी इसका उल्लेख िै कक जो लोग भगवान् ्के समपकि में आते िैं उन्िें ककसी प्रकार की कोई साधना करने की आवश्यकता निीं रिती। वे तो भगवान् ्के संपकि मात्र से िी उच्च जस्थनत में पिुाँच जाते िैं। यि कैसे िोता िै? श्रीमााँमें बताती िैं कक भगवान् ्जब सशरीर ववद्यमान िोतेिैं तब उनके समपकि से मिारी सत्ता में जो समय नछपा रिता िै वि ऊपर आ जाता िै। इसकी पूरी प्रकिया श्रीमााँ ने बताई िै। और यहद इसमें कोई प्रकिया न भी िो तो भी उनकी उपजस्थनत का प्रभाव इतना िोता िै कक यहद उनसे िमारा सीधा समबन्ध न भी िो तो भी वे चािें सो कर सकते िैं। विीं यहद उनके साथ सीधा संबंध िो तब वे अमयंत प्रभावशाली रूप से किया कर सकतेिैं। ऐसा निीं ंिै कक वे ेकेवल व्यजकतगत समबन्ध िोनेपर िी किया करते िों। अवतार की इस प्रकिया द्वारा उनका प्रभाव व्यापक रूप में तथा अधधक आसानी के साथ अनेकानेक लोगों में फैल सकता िै और ऐसी चीज अशभव्यकत कर सकता िै जो उनके आववभाावि के त्रबना समभव निीं ंिोती।

अब इसमें समस्या कया िोती िै? इस प्रश्न का उत्तर यिााँस्पष्ट रूप से तो निीं ंिै परन्तु ननहित अवश्य िै। उदािरण के शलए िम ककसी साधना के आदश,िे भगवान् ्श्रीराम या श्रीकृष्ण की भजकत के आदश िआहद को लेकर चलते िैं और जब िम थोड़ा अपने भीतर जाते िैं तब िमें आममा की किया द्वारा समझ में आ जाता िै कक िमें जीवन में अमुक आदश िकी हदशा में प्रयास करना चाहिये। और िम उसकी ओर बढ़ते िैं। तब उस आदश िको चररताथ िकरने िेतु िमारे अंदर संकल्पशजकत जागृत िोती िै और िम उसे आममसात् ्करनेतथा उसे अशभव्यकत करने ेका प्रयास करते िैं। अब यिााँ अवतार की उपजस्थनत से दो काम िोते िैं। एक तो यि कक अपने अन्दर से ककसी आदश िया ककसी उद्देश्य की ओर आकृष्ट िोने ेपर भी अपनी इच्छा-शजकत को एकत्र कर के उस हदशा में लगाना मनुष्य के शलए आसान निीं िोता। मनुष्य प्रपंचों में इतना फाँसा िोता िै कक यहद उसे बुद्धध से यि समझ में आ भी जाए कक त्रबना भगवान् ्के जीवन बेकार िै तो भी भगवान् ्की ओर अपनी इच्छा-शजकत को लगाना इतना आसान निीं िोता। और वि लगाए त्रबना प्रमयुत्तर बिुत िी थोड़ी मात्रा में शमलता िै। इस समस्या के समाधान के शलये अवतार की आवश्यकता िोती िै। आवश्यक निीं कक अपनी बाह्य प्रकृनत में अवतार को इस पूरी प्रकिया का पता िो परंतु अंतर में उसे यि मिसूस िो जाता िै कक किााँ-किााँकया-कया िोना िै। कयोंकक अवतार उस केन्द्रीय संकल्प का प्रनतननधधमव करता िै जिााँसभी जीवों के संकल्प जुड़े िुए िैं और यिीं से उनको प्रमयुत्तर आता िै। अब अवतार चािे तो वि ककसी भी व्यजकत के भीतर से संकल्प आये त्रबना िी उसके शलए स्वयंिी संकल्प कर सकता िै और उसका प्रमयुत्तर उस व्यजकत को उसी प्रकार प्राप्त िोगा मानो यि उस व्यजकत के स्वयंके िी संकल्प का प्रमयुत्तर िो। श्रीमााँ का संकल्प उसी प्रकार उत्तर देगा मानो व्यजकत ने स्वयंअभीप्सा कर के, बिुत साधना कर के अपना सब कुछ अवपतिकर के स्वयं यि संकल्प ककया िो, और उसी के अनुसार व्यजकत के जीवन में वे चीजें अशभव्यकत िोनेलग जाती िैं। यि एक बात िुई। इसके अलावा एक तत्त्व और िै जो कक नये अवतार के आववभाावि को अननवाय िबना देता िै और उसके त्रबना काम चल िी निीं ंसकता।

स्वयंश्रीमााँ और श्रीअरववन्द का उदािरण तो िमारे सामने िी िै। यहद िम साधना करते िैं और भगवान् ् राम से, कृष्ण से जुड़े िुए भी िैं, उनसे िमें सिायता भी प्राप्त िै, उनकी उपजस्थनत भी ठोस रूप से ववद्यमान िै तो वे िमारे भीतर उस संकल्प को जगा देते िैं जो पूरी तरि निीं तो भी कुछ िद तक िमें साधना में तो लगा िी देता

ै। यि काम तो अभी भी िो रिा िै और िोता िी िै। परन्तु इसमें एक बिुत बड़ी सीशमतता िै। वे ंजो अभीप्सा िममें जगाते िैं उसके आधार पर िम स्वयंजजतनी भी मेिनत करें पर अपने संसाधनों के आधार पर िम एक पररधध से बािर निीं जा सकते। िमारी अभीप्सा उस अमुक अवतार द्वारा जो कुछ भी उन्िोंने अपने व्यजकतमव में अशभव्यकत ककया था उसी तरफ जाएगी और उससे सीशमत िोगी। उसके परे निींजा सकती। कयोंकक िमारी तो परमाममा से सीधे समपकि की कोई व्यजकतगत क्षमता िै निीं। अब श्रीमाँ और श्रीअरववन्द के आने के बाद िमें यि लाभ िुआ कक वे िमारी अभीप्सा को सकिय तो कर िी रिे िैं, जो कक पिले भी िो रिी थी, परन्तु इसके अनतररकत वे परमाममा के व्यजकतमव की ऐसी चीजें िमारे सामने ले आए िैं जो पिले सचेतन रूप से निीं ंथीं। साथ िी वे िमारे संकल्प को उन नये पिलुओंके प्रनत भी जागृत कर रिे िैं जजनके प्रनत िम पिले जागृत निीं ंिो सकतेथे। जजनमें क्षमताएँ िोतीं वे भी एक सीमा से अधधक आगे निीं जा सकते थे। परन्तु परमाममा के व्यजकतमव की यि जो नयी अशभव्यजकत िोती िै वि पिले की अशभव्यजकतयों को अनतिम कर जाती

ै। भगवान ्श्रीराम ने जो अशभव्यकत ककया, श्रीकृष्ण उसे अनतिम कर गये। श्रीराम और श्रीकृष्ण ने जो अशभव्यकत ककया उसे श्रीमाँ व श्रीअरववन्द की नवीन अशभव्यजकत ने अनतिम कर हदया। इस नए तत्त्व की तो मि स्वयं अभीप्सा कर िी निींसकतेथे। और यहद इस नए तत्त्व की अशभव्यजकत धरती पर निीं ंआए तो कफर समृद्धता कैसे आएगी, नए आयाम कैसे खुलेंगे? भगवान ्की ज्यों-ज्यों उर्त्तोर्त्र ववकसनशील अशभव्यजकत िोगी मयों िी मयों प्रकृनत में अधधक समृद्धता आती जाएगी। इसशलए अवतार न केवल उन व्यजकतयों के संकल्प को जागृत िी कर देते िैं अवपतु उसे उस हदशा में सकिय बना देते िैं, उस ओर उद्घाहटत कर देते िैं जजसकी िम पिले

कल्पना भी निींकर सकतेथे। इस प्रकार यि दोिरी किया िो गई। और अवतार का यि भी एक मित्त्वपूण िप्रभाव ै। अन्यथा यहद केवल संकल्प करने ेकी िी बात िोती तो नवीन अवतारों की आवश्यकता िी निींिोती। साथ िी, यि जो नया प्रकटन आता िै पृथ्वी पर उसकी अशभव्यजकत में तथा उसकी स्थापना में समय इसशलए लगता िै कयोंकक शुरू में िर कोई इतना तैयार निींिोता कक उस नए प्रकटन को ग्रिण कर सके। इसके शलए उस तत्त्व तक जाकर एक सेतु बनाना और उनकी शशक्षा का ववस्तार करना आवश्यक िोता िै ताकक लोग उस नये पिलु के प्रनत अभीप्सा कर अपनेमन, प्राण को तैयार कर सकें। अन्यथा व्यजकत आगे जा िी निीं सकता था। यि परमाममा का अधधक पूण िप्रकटन िै और इसके ये दो पिलू िैं। एक तो यि कक जो लोग इस स्तर तक निींआ पातेकक वे भगवान ्की ओर सचेतन रूप से चल पाते, वे भी उसके प्रभाव से उस ओर चल पड़ते िैं। और वे भी भगवान ्की उस अशभव्यजकत की ओर चल पड़ेंगे जो अन्यथा चल िी निीं ंपाते। भगवान ्के नवीन पक्ष को भगवान ्स्वयं िी तो प्रकट कर सकते िैं। जैसे कक सारे बन्दर शमल कर ककतना भी प्रयास कर लें तो भी मानव निीं ं बन सकते, मानव िी बन्दर को नई चीज बता सकता िै। अतः परमाममा की नयी अशभव्यजकत से िी ये नए तत्त्व सकिय िो सकते िैं।

यिा ंाँयि स्पष्ट रूप से तो निीं ंबताया गया िै परन्तु जो श्रीअरववन्द बता रिे िैं उसके अनुसार यि तकिसममत िै कक ये दोनों चीजें इसमें ननहित िैं। केन्रीय चीज तो श्रीमाताजी ने बता िी दी। अवतार की जिा ंाँतक आवश्यकता िै तो उसमें ये दोनों बातें िैं। नया अवतार नयी अशभव्यजकत के शलये आता िै। इसशलये श्रीमाताजी

और श्रीअरववन्द का आना आवश्यक था। वे अनतमानस को अशभव्यकत करनेके शलये आए थे। परमाममा की एक नयी कला को अशभव्यकत करनेके शलये नए अवतार का आना आवश्यक िोता िै।

इस पूरे ववषय पर इतनी चचिाम इसी कारण कर पा रिें िै कयोंकक श्रीमााँ व श्रीअरववन्द का आववभािव ुआ अन्यथा तो इन बातों की कल्पना तक भी निीं ंिो सकती थी। उनके आगमन से मनुष्यजानत के समक्ष एक बिुत बडा अध्याय खुल गया िै। इतना ववशाल काम िुआ िै जैसा पिले कभी िुआ िी निीं। और वे अपना काम अधूरा निींछोडेंगे, उसे अवश्य पूरा करेंगे। जजतनी भी ववपरीत पररजस्थनतयााँ या संकटावस्थाएाँ िम वतमिान में देखतिैं वे तो ऐसी चीजें िैं जो परमाममा की अनंत संभावनाओं में ननहित थींऔर जजनकी यहद अशभव्यजकत न िुई िोती तो परमाममा की ये सारी संभावनाएाँ सामने निीं ंआतीं। अतः इस दृजष्टकोण से ये ववशेषे पररजस्थनतयााँ िैं। सारी अशभव्यजकतयााँ परमाममा की अनंत संभावनाओं को बािर लाने के साधन का काम करती िैं।

संदभ िसूची

इस पुस्तक में गीता के श्लोकों पर प्रस्तुत की गई टीका श्रीअरववन्द व श्रीमााँकी कृनतयों से ली गई िै। जजन श्लोकों के शलए टीका दी गई िै, उनकी श्लोक संख्याओं के सामने उन टीकाओंके संदभ िहदये गये िैं। प्रस्तावना व पररशशष्ट में उद्धरण जजस पुस्तक से शलये गये िैं उनकी खण्ड संख्या तथा पृषठ संख्या दी गई िै। (S) का अथ िै The Synthesis of Yoga (CWSA 23- 24), (L) का अथ िै Letters on Yoga (CWSA 28-31), (Svt.) का अथ िै Savitri (CWSA 33-34), जिा ाँसंदभों के शलए खण्ड संख्या निीं दी गई िै वे ेसभी उद्धरण Essays on

the Gita (CWSA 19) से शलए गए ि ैं। श्रीअरववन्द की अन्य पुस्तकों के संदभों के शलए खण्ड् संख्या तथा पृष्ठ संख्या (CWSA vol no : page no.) दी गई ि ै। श्रीमाँ की कृनतयों से शलए गए उद्धरणों के शलए खण्ड् संख्या तथा पृष्ठ संख्या (CWM Vol no : page no.) दी गई ि ै।

चूँकक यिाँ मुहरत उद्धरणों का तथा श्लोकों का अनुवाद अनुवादक द्वारा ि ी ककया गया ि ै अथवा अन्य स्थानों पर मूल ववचार को अधधक सुगम, स्पष्ट व सटीक बनाने के उद्देश्य से उपलब्ध अनुवाद में संशोधन व पररवतनि ककए गए ि ैं इसशलए उद्धरणों के शलए मूल स्रोतों की ि ी सूची दी गई ि ै।

प्रस्तार्ना

I:4-9, 562-63, 11

II:29-33, 35-38

अध्याय एक

:12	36:24
23:23	39:S331-333
28:23	47:39-40, 47-48, 45-46, 45,
29:23-24	48-49, Svt.657
32:24	

पादटीका (Footnote)

1:20-21

2: Svt.424-25

CWSA: Complete Works of Sri Aurobindo
CWM: Collected Works of The Mother

अध्याय दो

1:57	45:87

3:57-60	46:87-89
6:25-26	47:S222-23
9:60	48:S96
10:60-61	50:CWSA (13)119, 103
13:61	51:103
14;62	53:92-93
15:61-62	54:102
28:63	55:101-02
30:63-64	58:98-99
31:65	59:99-100
37:66	60:100
38:66, 451-52, 66-67	61:100-01
II: 68	65:101
39:81, 68-80, 94	67:98
III:94	69:214
40:94-95	72:104
41:95-96	

पादटीका

1:72-74
2:S683-84
3:S689-90
4:102 5:92

अध्याय तीन

I:105-06
2:106
3:106
4:106-07
5:107-08
6:108
7:108-09
8:109-11
9:111-13
18:115-19
19:115

II 134, 256-57, 135
26:136-37, S272, 139, 141-44 140

III -212-13, L514-15, S95-96. 214

27:231,224-226
28:226-28
29:225,214
33:217,212, 218
35:218
37:S656-57
40:S656
41:99, CWM(5)212-13
42:96-98
43 / S * vt * 0.315 - 16 ,S658-659

पादटीका

1:108 2:109
3:110 4:L433-34
5:S272-273
6:CWSA (21)58
7:S269-70
8:S270 9:S270
10:L(iv)266
11:CWM(3)117

अध्याय चार

3:145 22:181-84

4:146 6:155-56, 159, 156-57 8:147-50, 148, 159-65 9:168-71,174-75 10:175-76 11:176 12:147 13:512-13,6-7 14:147

23:200, 187, S101-05 III:S106, 124-28, 114, 119-20 24:120-21 25:121 27:121 30:121-22 31:122 32:122 35:122-23

II:177 17:177-78 18:178-79 20:179-80, 184 21:180-81

IV:200
37:201
38:204,203-04
40:204-05
42:205

पादटीका

1:150-152
2:L472
3:L476-78 4.CWSA(2), 534-35,537
5:L485-486
6:Svt.67
7:CWM(13)75-76
8:CWSA(2)612
9:Svt.339
10:CWM(8)74-75
11:119-120
12:L(i)89, L(i)92-93
13:S115-16

अध्याय पाचाँ

1:82
1:82-83
4:83
6:185, 201
7:83
9:186
12:S247
15:201-02

20:188, 189-93, 195-97, 206- 07, 197-98, 208-10

II:234-36
23:236
24:236
26:237-38
28:238-39
29:239-40

पादटीका

1:83-84

2:186

3:202

अध्याय छः

2:240

3:240

6:218-19

9:S698-99, S223, S224-25,
S226-28

10:241

15:242-43

16:CWM(6)428-29

17:243-44
22:242
23:242, S244-45

28:242-43

29:255-56,244

30:244-45

31:245-46, 210-11

32:245-46

35:CWM(4)334-35

36:S72

46:246

47:246, 248-55, 256-58

पादटीका

1: L442

2:368-369

3-CWM(4)336-337

अध्याय सात

1:247-48, 263, 265-66

2:266

3:266

5:266-68, 267-69,270

6:269, 270-71
7:271-72

10:273-74

11:274-75

12:274, 275-76

13:276

14:276-77

II:278-79

15:280-82, 284

16:284-85

18:S550-51

19:S371-72, 315-16

20:285, S159

22:286-87, CWSA(12)88-89

23:286

28:282-83, 287-88, 290

29:290-91

30:291

पादटीका

1:263-64

2:Svt.295

3:267

4:269-70

5:272-73

7:589

8:316

9:287

10:S675

श्रीअरववन्द गीता

श्रीअरववन्द गीता के संदेश को उस मिान् ्आध्याजममक गनत का आधार मानतेिं जो मानवजानत को अधधकाधधक उसकी मुजकत की ओर, अथात्ि्शमथ्यामव और अज्ञान से ननकलकर समय की ओर ले गई िै, और आगे भी ले जाएगी।

अपनेप्रथम प्राकट्य के समय से ि◌ी गीता का अनतववशाल आध्याजममक प्रभाव रिा ि◌ै; परंतुजो नवीन व्याख्या श्रीअरववन्द ने उसे प्रदान की ि◌ै, उसके साथ ि◌ी उसकी प्रभावशाशलता अमयधधक बढ़ गई ि◌ै और ननणायिक बन गई ि◌ै।

- श्रीर्माँ